सूर्यमल्ल मीसण द्वारा प्रणीत

वंश भास्कर

संपादक : चन्द्र प्रकाश देवल
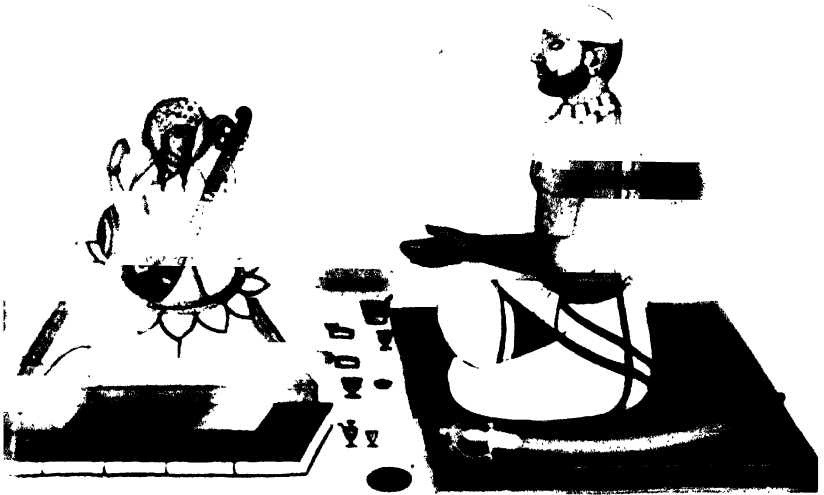
७

वंश भास्कर

(महाचम्पू)

सूर्यमल्ल मीसण द्वारा प्रणीत

वंश भास्कर

(महाचम्पू)

सातवाँ-खंड

(आठवीं-राशि)

अर्थ प्रबोधनी टीका
एवं संपादन

चन्द्र प्रकाश देवल

साहित्य अकादेमी

वंश भास्कर
अष्टम राशि
अनुक्रमणिका

दूत भेजना।

५. होल्कर के पुत्र खांडेराव का महाराणा की सहायता को जाना वहाँ राणंजय, रामचन्द्र और मल्हारराव में बहस होना फिर दोनों मराठा पक्षों का मिलकर अपने वकील जयपुर भेजना।

३०२ इक्कीसवाँ मयूख ५१६०

१. हाड़ा राजा उम्मेदसिंह, कछवाहा माधवसिंह, खांडेराव होल्कर सहित कोटा और उदयपुर की सेना का जयपुर पर चढ़ आना।

२. सामना करने को कछवाहा सेना के साथ हरगोविन्द नाटाणी का आना और दोनों सेनाओं का राजमहल नामक गाँव की सीमा में युद्ध होना।

३. बूंदी के राजा उम्मेदसिंह और खांडेराव के शस्त्र प्रहारों से शत्रुओं का भागना पर इसी समय उदयपुर और कोटा की सेना का भी भागना

४. इसके बाद कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह का आना और उसकी शत्रु सेना का शाहपुरा नगर में पड़ाव डालना।

३०३ बाईसवाँ मयूख ५१६९

१. तखतसिंह सिसोदिया,कुशालसिंह, झाला रायसिंह और ब्राह्मण दयाराम इन चारों सचिवों का महाराणा की सेना के सहायतार्थ शाहपुरा आना।

२. कछवाहा राजा का मेवाड़ में प्रवेश कर भीलवाड़ा नगर को लूटना, यहाँ खांडेराव के निवेदन पर ईश्वरीसिंह का क्रोध मिटा कर वापस जयपुर लौटना।

३. हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के शिविर में महाराणा के सचिवों का 'रूपमल' घोड़ा, सुन्दर तलवार और सिरोपाव ले कर आना फिर नजराना करना इसके बाद हाड़ा राजा का अपने योद्धाओं को वापस बूंदी भेजना।

४. नाटाणी थानसिंह को कैद कर उससे दण्ड के रुपये वसूलना और एक बूंदी को छोड़ कर शेष राज्य पर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह का अधिकार करना।

५. महाराणा के प्रस्ताव पर नाथद्वारा के गोस्वामी गोवर्धनलाल का कोटा के राजा को नाथद्वारा बुलाना पर कोटा के राजा का आने से यह कह कर इनकार करना कि महाराणा उसे यथोचित सम्मान नहीं देता।

३०४ तेईसवाँ मयूख ५१७७

१. महाराणा का बूंदी के बराबर कोटा के राजा को सम्मान देना स्वीकार करना और कोटा के राजा के आने पर दोनों का ढींकोला

नामक गाँव मे डेरा करना।

२. खांडेराव और माधवसिंह का मित्र होना और सारी सेना का वहाँ से चल कर खारी नदी के तट पर मुकाम करना।

३. ईश्वरीसिंह का तब आगामी कार्तिक माह में अपने भाई माधवसिंह को हिस्सा देने और बूंदी पर से अधिकार हटाने का लिख कर खांडेराव होल्कर को देना।

४ महाराणा का चूंडावत मेघसिंह और वैश्य टेकचन्द को बूंदी और टोडा भेजना वहीं माधवसिंह और खांडेराव का रामपुरा जाना और ईश्वरीसिंह का जयपुर में प्रवेश करने का वृत्तान्त।

५ हाड़ा राजा की दूसरी रानी के पुत्र होना और मालमसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को उमराव बना कर कछवाहा राजा का बूंदी आना और यहाँ कोटा व रामपुरा को जीतने का विचार करना।

६. प्रतापसिंह और दलेलसिंह दोनों भाइयों में सुलह करवाना और शाही बुलावे पर कछवाहा राजा का दिल्ली जाना।

७. दलेलसिंह का मथुरा में मरना और ईश्वरीसिंह का रणथंमोर दुर्ग माँगना पर बादशाह का स्वीकार नहीं करना।

८ ईरान के अमहदशाह से युद्ध करने को शाहजादा अहमदशाह का शतद्रु नदी के तट पर पड़ाव डालना और शाही वजीर का कछवाहा राजा को कैद करने का विचार करना।

९ शाही वजीर के भय से ईश्वरीसिंह का हाड़ा प्रतापसिंह और खत्री नारायणदास सहित भाग कर जयपुर आना और शाही पत्र पाकर सितारा के स्वामी के सचिव नन्ह का उत्तर दिशा में आना। नन्ह के साथ माधवसिंह का भी आना और जयपुर के राज में निवाई नामक नगर में पड़ाव डालना।

१०. नन्ह और मल्हारराव होल्कर के पत्र से हाड़ा राजा का भी वहाँ पहुँचना।

११. शतद्रु नदी के तट परदोनों यवन सेनाओं मे युद्ध होना वहीं तोपखाने के हाकिम मन्सूरअली का अपने वजीर को मारना और शत्रु सेना का भागना।

१२. बादशाह का मराठा सेना का आना रोक कर फौजखर्च के बाईस लाख रुपये भेजना तब ईश्वरीसिंह का तिरस्कार कर मराठा दल का इन्द्रगढ को लूटने जाना जहाँ उम्मेदसिंह और माधवसिंह द्वारा दल को रोकना।

१३. नन्ह का मल्हारराव होल्कर को बूंदी की सहायता को भेजना और नन्ह का वापस दक्षिण में लौटना।

१४. उम्मेदसिंह हाड़ा और माधवसिंह कछवाहा की सहायता

करने को तब होल्कर का उदयपुर, जोधपुर और कोटा की सेना बुलवाना और कछवाहा राजा के देश को लूटते हुए टोडा, मालपुरा और टोंक पर अधिकार करना।

१५. होल्कर द्वारा बुलाई हुई तीनों सेनाओं का शामिल होना।

१. लदाना नामक नगर में तीनों सेनाओं का पड़ाव डालना तभी दिल्ली में बादशाह मोहम्मद शाह का मरना सुनना और उसकी जगह अहमदशाह का बादशाह होना।

२. मल्हारराव होल्कर का आठ हजार की संख्या वाली सेना साथ देकर सेनापति गंगाधर को जयपुर भेजना और उसका जा कर जयपुर के बन्द किंवाड़ों पर भाले मार कर शहरपनाह के बाहर के बाग आदि जलाना।

३. कछवाहा राजा का गंगाधर के मुकाबले को शिवसिंह को भेजना और शिवसिंह के भयंकर युद्ध से घबरा कर गंगाधर का भागना।

४. इधर ईश्वरीसिंह का पत्र लिख कर भरतपुर के जाट राजा सूर्यमल्ल को सहायता हेतु बुलाना, और गद्दी के पास बिठाने के लालच में जाट राजा का जयपुर आना।

५. मल्हारराव होल्कर, उम्मेदसिंह हाड़ा और माधवसिंह कछवाहा का उदयपुर, जोधपुर और कोटा की सेना के साथ बगरू में पड़ाव डालना और बगरू से दंड के रुपये वसूलना फिर गंगाधर का नगर द्वार तोड़ कर नगर में प्रवेश करना और वहाँ के लोगों के सिर मुंडवाना तब प्रजा की आर्त्तपुकार पर सूरजमल जाट के साथ ईश्वरीसिंह का शत्रु सेना से सामना करने आना।

१. दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होना और कोटा के सेनापति जोधसिंह का मारा जाना, तभी गंगाधर का घमासान आरंभ करना और ईश्वरीसिंह का छलपूर्वक निकलने की सोचना।

२. मल्हारराव, उम्मेदसिंह हाड़ा और माधवसिंह का सज्जित हो कर ईश्वरीसिंह की राह रोकना और गंगाधर का जयपुर के देश को लूटने के सबब अपने पाँच हजार सिपाही भेजना जिनका सांभर तक लूट मचाना।

३. दूसरे दिन के युद्ध में तांतिया गंगाधर का सीकर के राव शिवसिंह को घायल करना और जयपुर की ओर से आ रही रसद की गाड़ियों को लूटना और कछवाहों की तोपों में कीले ठुकवाना।

४ सूरजमल जाट का युद्ध कर गंगाधर को भगाना और तीसरे

का पूजन कर महल में जाना।

२. होल्कर, माधवसिंह आदि का हाथी, घोड़े, आभूषण आदि राजा को भेंट करना, सभी मेहमानों को भोजन कराना और मल्हारराव को हाथी, घोड़े, आभूषण आदि भेंट देकर उसका सम्मान करना।

३. रामानुज संप्रदाय की शिक्षा ग्रहण कर राज्य की छाप में 'श्री रंग' का नाम लिखवाना फिर अपने सामन्तों, सचिवों एवं सेवकों को जागीर आदि देना।

२. मंत्री हरगोविन्द नाटाणी का सेना को अन्यत्र भेज कर कछवाहा राजा को छलपूर्वक आस्वस्थ करना,इस छल के कारण शत्रुसेना को समीप आया जान कर कछवाहा राजा का जहर पीकर देह छोड़ना।
३. होल्कर मल्हारराव और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह का जयपुर के बाहर कछवाहा राजा के सचिवों को बुलाना और शहरपनाह के पास सेना का पड़ाव देना।

१. कछवाहा राजा के मरने पर महल के पास मराठों के अपने पहरेदार नियुक्त करना और होल्कर द्वारा प्रदत्त कफ़न और अन्त्येष्टी की सामग्री देने पर राजा का दाहसंस्कार होना।
२. मल्हारराव के पुत्र खांडेराव का कछवाहा राजा के अन्त:पुर को लूटने की योजना सुन कर महलों में सभी रानियों का आग में जल मरने का सोचना और राजा की ग्यारह पासवानों का जल मरना।
३. इसकी भनक लगते ही हाड़ा राजा का मल्हारराव को कुपित हो खरी-खोटी सुनाना इस पर होल्कर का अपने पुत्र को धमकाना।

१. कछवाहा राजा के जनाना के त्रास को हाड़ा राजा द्वारा मिटाने के बाद होल्कर का जयपुर से एक करोड़ रुपयों का दण्ड लेना और मल्हारराव का पत्र पाकर रामपुरा से माधवसिंह कछवाहा का जयपुर आना और राजगद्दी पाना।
२. राजा बनते ही पीछे से सिंधिया जयाजीराव का जयपुर पर आना, एक घोड़ी को लेकर हुए बखेड़े में कई मराठों का मारा जाना इस पर सिंधिया और होल्कर का दुबारा दंड वसूलना।
३. दण्ड राशि ले कर मराठा सेना का गमन और हाड़ा राजा का बूंदी लौटना।

१. शाही सेना के सेनापति कायस्थ नवलराय का फरूक्काबाद की मालिक बंगस बीवी से युद्ध करना और वहाँ का वैभव लूटना।
२. दो माह की अवधि व्यतीत होने पर बंगस बीवी का नवलराय

से हाड़ा राजा का युद्ध होना इस संकट की घड़ी में कछवाहा राजा का अपने सामन्त द्वारकादास को भेजना, वहीं शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह का अपने छोटे बेटे मालपसिंह को भेजना पर मारवाड़ के राजा का किसी को नहीं भेजना।

८. जयपुर में राजकुमार पृथ्वीसिंह का जन्म और बूंदी में हाड़ा राजा की छोटी रानी के गर्भ से सरदारसिंह का जन्म और हाड़ा राजा का अपनी बहिन दीपकुमारी का जोधपुर के राजा विजयसिंह से विवाह करना।
९. श्रीमंत माधवराव का मरना और उसके छोटे भाई नारायणराव का श्रीमंत होना, श्रीमंत होते ही अपने काका रघुनाथराव को निकालना और उसका अंग्रेजों की शरण में जाना।
१०. भरतपुर के जाट राजा जवाहरमल का दिल्ली लूटना और बूंदी एवं उदयपुर की सीमा पर विवाद होना।
११. मीणओं द्वारा बूंदी राज के गाँव लूटना और हिंडोली के जागीरदार के वंशज चैनसिंह का मारा जाना।

१. हाड़ा राजा उम्मेदसिंह का मीणाओं के उपद्रव के मिटाने के सबब ऊमरखेड़ा, लुहारी, गाडोली आदि गाँवों को उजाड़ कर नौ सौ मीणाओं का नाश करना और हाड़ा राजा का सोलंकी नाथावत उद्योतसिंह को मार कर उसके काका बखतसिंह को पगारां की जागीर देना।
२. मल्हारराव होल्कर कां निधन और उसके पौत्र मालराव का उसका उत्तराधिकारी होना और हाड़ा राजा का उसके टीका की सामग्री भिजवाना।
३. मालराव की मृत्यु के बाद तक्कूजीराव का पच्चीस लाख रुपये दे कर इंदोर की गद्दी प्राप्त करना।
४. जयपुर को जीतने की इच्छा वाले जाट राजा जवाहरमल का पुष्कर आना और यहाँ राठौड राजा विजयसिंह का उसके बराबरी का सम्मान देना और जाट की सेना से मुकाबले को कछवाहा सेना का मांउडा गाँव में आना।

१. माउंडा के रणखेत में दोनों सेनाओं का युद्ध जिसमें कछवाहा राजा माधवसिंह के सेनापति दलेलसिंह का पुत्र सहित काम आना, वहीं सचिव खत्री हरसाहि, गुरुसाहि, शेखावत गुमानसिंह, बुधसिंह आदि का मारा जाना और जाट राजा

उनकी स्त्रियों को कैद करना और महादजी की सेना की सहायता से कृत्रिम कुमार के पक्ष वालों की सेना और महाराणा अरिसिंह की सेना के मध्य शिप्रा नदी के तट पर युद्ध होना जिसमें शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह सिसोदिया, सलूंबर के पहाड़सिंह, यवन दोला और मराठा रघु का मारा जाना वहीं झाला जालिमसिंह और चूंडावत मानसिंह का पकड़ा जाना। अन्त में अरिसिंह की सेना का भयग्रस्त हो कर भागना।

१. मराठा मित्र का झाला जालिमसिंह को सिंधिया की कैद से छुड़ाना और महादजी की सेना का आकर उदयपुर को घेरना।
२. महाराणा अरिसिंह का सिंधिया को फौजखर्च की राशि देना और कुछ रुपयो की ऐवज में झाला जालिमसिंह को सोंपना बाद में कोटा के राजा गुमानसिंह द्वारा रुपये देकर झाला को छुड़वाना।
३. महाराणा अरिसिंह द्वारा सेना में रखे गये सिंधि यवनों को तनख्वाह नहीं दे पाना और डर कर किशनगढ के राजा बहादुरसिंह की पुत्री से विवाह करने जाना और वहीं रह जाना।
४. हाड़ा राजा उम्मेदसिंह का कुमार अजीतसिंह को बूंदी का राज्य सोंपना और स्वयं श्रीजित की पदवी धारण कर वानप्रस्थी हो केदारेश्वर में रहना।
५. नये राजा अजीतसिंह को सभी राजाओं की ओर से टीका सामग्री भेजना।

अजीतसिंह - चरित्र

१. हाड़ा राजा अजीतसिंह के चरित्र में श्रीजित का (पूर्व राजा उम्मेदसिंह) का अपनी रानी सहित पुष्कर स्नान करेन जाना।
२. किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह का उसे अपने यहाँ मेहमान करना।
३. किशनगढ़ में श्रीजित की महाराणा अरिसिंह से भेंट।
४. बूंदी में राजकुमार प्रतापसिंह का जन्म।
५. महाराणा अरिसिंह का किशनगढ़ में अधिक समय तक रहना जान कर सिंधी (यवन) सिपाहियों का राजकुमार हम्मीरसिंह को रोक कर मेवाड़ से हासिल वसूल करना।
६. हाड़ा राजा अजीतसिंह का बूंदी से मीणाओं का उपद्रव मिटाना।

३४२	दूसरा मयूख	५६१५

१. अपने भाई का बैर याद कर रावराजा का मानपुरा और महुवा के सिसोदिया जागीरदारों को पकड़ कर अपने देश के थाणा नामक पुर में लाना।
२. उदयपुर महाराणा के राज्य मेवाड़ की सीमा के गाँव बीलहटा में हाड़ा राजा का दुर्ग निर्माण करवाना और इस गाँव के बदले में दूसरा गाँव लेने का महाराणा से अनुरोध करना।
३. रावराजा अजीतसिंह का बांसवाड़ा के रावल पृथ्वीसिंह की पुत्री से विवाह करने जाना।
४ पीछे से राणावतों की सेना का बीलहटा दुर्ग को आ घेरना और श्रीजित का मुकाबले में युद्ध करना।
५ राव राजा अजीतसिंह का रास्ते में चूंडावत मानसिंह का आतिन्य ग्रहण कर बूंदी लौटना।

३४३	तीसरा मयूख	५६२१

१. बूंदी के राजकुमार प्रतापसिंह का मरना।
२. श्रीजित का पूर्व दिशा के तीर्थ स्थानों की यात्रा पर जाना।
३. हाड़ा राजा अजीतसिंह का इन्द्रगढ जाना और हाड़ा भक्तराम के कुमार सन्मानसिंह को ताजीम देना।
४ अपनी बकाया तनख्वाह वसूलने को सिंधी यवनों का किशनगढ़ जाना और वहाँ से महाराणा अरिसिंह को उदयपुर लाना।
५ जयपुर गये हुए देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह का महाराणा को मारने का विचार करना और चित्तौड़गढ़ से छल बल (रत्नसिंह) के पक्ष वालों को सलूंबर के रावत भीमसिंह द्वारा निकाला जान।
६ महाराणा अरिसिंह का बीलहटा वापस करने का पत्र भेजना इस पर हाड़ा राजा अजीतसिंह का अपने भाई बहादुरसिंह को उदयपुर भेजना जहाँ से बीलहटा को छोड़ कर महाराणा द्वारा अन्य जागीर का उसे पट्टा देना।

३४४	चौथा मयूख	५६२५

१. हाड़ा राजा अजीतसिंह पर सिसोदिया गुलाबसिंह अपने भाई का बैर लेने हेतु तीर से आक्रमण।
२. गुर्जर सुखराम का बूंदी का सचिव होना।
३. झलाय के कछवाहा कीर्तिसिंह की पुत्री से हाड़ा राजा का विवाह करना और अपने श्वसुर की इज्जत में इजाफा करना।
४ भिनाय के राठौड़ दलेलसिंह की पुत्री से भी हाड़ा राजा का विवाह करना।
५ कोटा के राजा गुमानसिंह का बेगूं सवाई मेघसिंह की पुत्री से विवाह करना।

श्री गणेशाय नमः

अथ अष्टम राशि प्रारंभः

अथ उम्मेदसिंह चरित्र प्रारम्भः

चूलिका पैशाची भाषा

गीतिः

तुसटकतन पलपञ्जो हवति सता य्येव पीतपङ्गुरनो।
सा पउमाए सन्तलपामङ्को णं नमिय्यते तेवो ॥१॥
सम्फुं कन्तप्पहलं चण्डीसं कजमुहं कनाथिपतिं।
तन्तून फारतिं मं करेमि अथउत्तलत्थकं कंथम् ॥२॥

वह देव जिसका वाम अंग लक्ष्मी से शोभायमान है और जो पीले वस्त्रों में सदा सुशोभित रह कर अपनी बुद्धि से दुष्टों का नाश करने वाला है, ऐसे देव को मैं सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ। कामदेव का नाश करने वाले जो चंडी के पति हैं, ऐसे शिव को प्रणाम करता हूँ। उनके साथ हाथी के मुँह वाले गणेश और माँ सरस्वती की आराधना कर मैं इस ग्रंथ की नई राशि का शुभारंभ करता हूँ!

गीर्वाणभाषा

अनुष्टब्युग्मविपुला

वन्देऽस्मदीयवक्षारं चण्डीदानं महामतिम्।
त्रैगुण्यतिमिरब्रघ्नं विद्यावाग्भूषिताननम् ॥३॥
बुधसिंहेऽथ बुन्दीन्द्रे प्रयाते पञ्चतत्वताम्।
सूनुरुम्मेदसिंहोऽस्याऽभिषिक्तोऽभून्महामनाः ॥४॥
षण्णवाद्रीन्दु संख्याभृद्विक्रमाब्दोत्तरायणे।
वसन्ताऽर्जुनवैशाखे त्रयोदश्यां नरेन्द्रता ॥५॥

टिप्पणी : छंद संख्या १ व २ का संस्कृत अनुवाद इस प्रकार होगा

१ दुष्टकदन पर प्राज्ञो भवति सदा एव पीतप्राव रणः।
स पद्मया सुन्दर वामाङ्कोननु नम्यते देवः ॥१॥

2. शंभुं कन्दर्पहरं चण्डीशं गजमुखं गणाधिपतिम्।
नत्वा भारतीं अहं करोमि अथोत्तरस्थकं ग्रन्थम् ॥२॥

जिनका मुख विद्या और वाणी से शोभायमान रहता है और जो त्रिगुणों (सत, तम, रज) के सूर्य हैं। मुझे उत्पन्न करने वाले ऐसे बुद्धिमान और वंदनीय पिता चण्डीदान को मैं प्रणाम करता हूँ। जब बूंदी के हाड़ा राजा बुधसिंह का शरीर पंचतत्वों में विलीन हो गया तो उनका पुत्र महामना उम्मेदसिंह उनका उत्तराधिकारी हो कर राजा बना। विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ छियानवे के उत्तरायन में वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन हाड़ा उम्मेदसिंह बूँदी के राजसिंहासन पर आरूढ हुआ।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

प्रलम्बकम्

पानिग्ग्रहन चउहि करि पाये सुत पंचक उम्मेद सधीर।
उभय खवासि तहाँ इक औरस सुत दुव दुव हि सुतासम सीर।
प्रथम व्याह झल्ल दलपतिकी तनया गर्गराटपुर थान।
कमन बरात पहुँचि अभिधा करि चिमन कुमरि परन्यो चहुवान॥६॥

दूजी रासि नगर पति दुहिता नव बय कुंदनकुमरि सनाम।
ऊदाउति रट्ठोरि बरी इम करि बखतेस स्वसुर जस काम।
बखत कुमारि ईडरेची बलि जुग कर जुग अंचल जुग जोरि।
परनी ईडर भूप पितृव्यक रामसुता तीजी रट्ठोरि॥ ७॥

अजितसिंह ईडर पहु, पुत्री क्रमचोथी तिम उदयकुमारि।
विजय नरेस जोधपुर बुल्लि रु व्याही नृपहिं सनेह बिथारि।
तनय बडो इनमै तीजी भव सजव मर्यो सु न भो तस नाम।
पुनि सुत हुव दूजी पतनी कै अजितसिंह दूजो अभिराम॥ ८॥

हे राजा रामसिंह! राजा उम्मेदसिंह ने चार विवाह किये और उनके पाँच पुत्र हुए। इनमें से दो दो पुत्र तो अपनी विवाहिता रानियों के गर्भ से जन्में और दो पासवानों से (एक पुत्र और एक शीलवती पुत्री जन्मीं)। राजा ने अपना पहला विवाह गर्गराटपुर के झाला दलपतसिंह की पुत्री चिमन कुमारी के साथ सुन्दर बरात सजा कर किया और इस अवसर पर याचकों को दान दे कर सुयश प्राप्त किया। राजा उम्मेदसिंह ने दूसरी शादी रास नगर के स्वामी उदावत वंश के राठौड़ बखतसिंह की पुत्री कुंदन कुमारी के साथ रचाई। राजा

ने तीसरी बार अपना हथजोड़ा और गठजोड़ा ईडर के राजा के चाचा रामसिंह की कन्या बखत कुमारी के हाथ और आंचल से जोड़ा अर्थात् राजा ने ईडरेची रानी को अपनी तीसरी रानी बनाया चौथा विवाह भी राजा उम्मेदसिंह ने ईडर में ही किया। ईडर के राठौड़ राजा अजीतसिंह की राजकुमारी उदयकुमारी से विवाह रचाने को जोधपुर के राजा विजयसिंह ने हाड़ा राजा को जोधपुर बुलाया था अर्थात चौथा विवाह राजा उम्मेदसिंह ने जोधपुर जाकर किया। राजा उम्मेदसिंह हाड़ा का पहला पुत्र तीसरी रानी ईडरेची के गर्भ से जन्मा पर वह जन्म लेते ही मर गया इसलिए उसका नामकरण नहीं हो सका। दूसरी राठौड़ वंशीय रानी के गर्भ से राजा के दूसरे पुत्र अजीतसिंह ने जन्म लिया।

तीजो तनय बहादुर तासहि क्रम सोदर ए दुव हि कुमार॥
पुत्र दुव हि चोथी पतनी कै सुत चोथो तितमैं सरदार।
पुत्र त्रिलोकसिंह हुव पंचम सिसु बय हुव तासहु अवसान॥
सुनहु खवासि रूपरसराय रु अपर गुमानराय अभिधान॥ ९॥

दूजी कै संतति चउ बिधि दिय सुत सिवसिंह तथा संग्राम।
अनिरदकुमरि वडी अरु अनुजा सुता भई ब्रजकुमरि सनाम।
जेठी जनक दई जयसिंह हिं जामाता जदुकुल सम जानि।
सुत तस सप्त राजसिंहादिक प्रकट भये कुल नियति प्रमानि॥१०॥

दूजी सुता जैतसिंह हिं दिय तकि सम कुल रट्ठोर सतेज॥
नवलसिंह ताकै इक नंदन भयो प्रकट हड्डुन भानेज॥
दीपसिंह इत भूप सहोदर दिय जिहिं थान कापरनि ढ्रंग॥
भये बिबाह तास खट भावी सुव इक दोइ सुता बिधि संग॥ ११॥

राजा का तीसरा पुत्र बहादुरसिंह और उसका सहोदर ये दोनों एक ही रानी से उत्पन्न थे। इसी प्रकार राजा की चौथी रानी के गर्भ से इन दो कुमारों ने जन्म लिया जिनमें चौथा कुमार सरदारसिंह नामक था। राजा के पांचवाँ पुत्र त्रिलोकसिंह जन्मा पर वह शैशवकाल में ही चल बसा। राजा की दो पासवाने जो रूपरसराय और गुमानराय नामक थी इनमें से दूसरी गुमानराय के विधि के विधान से चार संताने जन्मी। इनमें से दो पुत्र थे एक शिवसिंह दूसरा संग्रामसिंह। दो पुत्रियां थीं बड़ी अनिरदकुमारी और छोटी ब्रजकुमारी। राजा ने

अपनी बड़ी पुत्री का विवाह यदुकुल के राजा जयसिंह से बराबरी वाला समझ कर किया। सौभाग्य से जिसकी कोख से सात पुत्रों ने जन्म लिया जिनमें राजसिंह आदि थे। राजा ने अपनी दूसरी पुत्री का विवाह भी समान कुल का समझ कर जैत्रसिंह राठौड़ के साथ सम्पन्न करवाया इस पुत्री से राजा को नवलसिंह जैसा हाड़ाओं का भानजा जन्मा। राजा उम्मेदसिंह ने अपने छोटे भाई दीपसिंह हाड़ा को कापरनी नामक नगर की जागीर प्रदान की जिसने आगे चल कर छः विवाह रचाये और सौभाग्यवश एक पुत्र और दो पुत्रियों के आधार पर संततिवान कहलाया।

अनुपमकुमरि बडी ठकुराइनि सावर दीपसिंह हित सत्थ।
इंद्रसिंह तनया सगताउति सील चरित गुन रूप समत्थ॥
अरु उमेदकुमरि गागरनी दूजी अभय सुता रट्ठोरि॥
तीजी तिय ईडरपति तनया गदित भवानकुमरि गुन गोरि॥१२॥

जादव सोनपाल तनया जिम फतैकुमरि चोथी निज नारि।
नृप सामंत सुता रूपनगर क्रम पंचम सु किशोरकुमारि।
परनाई जु पितृव्य बहादुर यह रट्ठोरि कृष्णगढ़ आसु।
क्रमि सीहोर छठी अमर कुमरि सगताउत्त अमान सुतासु॥१३॥

अजित सुता तीजी तिय इनमैं अग्रज की साली जुहि आस।
सुत जेठो सुरतानसिंह हुव तनया चंद्रकुमरि हुव तास।
तिय चोथी जहोनि जनी तिम दूजी सुता विचित्रकुमारि।
परिनाई जयनैर प्रतापहिं सो श्रीजित श्रुति बिधि अनुसारि॥१४॥

राजा के छोटे भाई दीपसिंह ने अपना पहला विवाह सावर के जागीरदार इन्द्रसिंह शक्तावत की गुण, रूप और शील में समर्थ पुत्री अनुपम कुमारी के साथ किया। यह कापरनी की बड़ी ठकुराइन बनी। दूसरा विवाह राठौड़ कुल में जन्में गागरनी के स्वामी अभयसिंह की पुत्री उम्मेद कुमारी से रचाया। तीसरा विवाह दीपसिंह ने ईडर के राजा की गुणवान पुत्री भवान कुमारी से किया। चौथा विवाह दीपसिंह हाड़ा ने यादव सोनपाल की कन्या फतह कुमारी से रचाया। इसी क्रम में रूपनगर के राजा सावंतसिंह की पुत्री किशोर कुमारी से दीपसिंह ने अपना पाँचवा विवाह किया। यह विवाह कन्या के

काका कृष्णगढ के राजा बहादुरसिंह ने सम्पन्न करवाया था। दीपसिंह ने सिहोर जा कर शक्तावत अमानसिंह की कन्या अमर कुमारी से अपना छठा विवाह रचाया। दीपसिंह ने अपना तीसरा विवाह ईडर के स्वामी अजीतसिंह की पुत्री से किया था जो अपने बड़े भाई हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की साली थी। दीपसिंह हाड़ा के सबसे बड़ा पुत्र सुरतानसिंह और एक पुत्री चंद्रकुमारी इसी तीसरी पत्नी के गर्भ से जन्में थे। इसी क्रम में दीपसिंह की चौथी पत्नी यादव कुल वाली फतहकुमारी ने एक पुत्री विचित्रकुमारी को जन्म दिया। इस कन्या का विवाह श्रीजित (बूंदी का राज्य छोड़ कर वानप्रस्थ आश्रम में राजा उम्मेदसिंह ने अपना नाम श्रीजित कर लिया था) ने पूरे विधि-विधान के साथ जयपुर के राजा प्रतापसिंह के संग किया था।

अधिपति को रु अनुज को अक्खिय इहाँ बिबाह प्रजा क्रम एस।
जो सब प्रभु भावी बिधि जानहु बर्त्तमान अब सुनहु बिसेस।
पाइ जनक पट्टहिं दुर्गत पन करि जो जो दुष्कर रन काम।
पुहवि लई रु दई जिम पुत्रहिं रोचक सकल सुनहु प्रभु राम ॥१५॥

हे राजा रामसिंह! मैंने (ग्रंथकार ने) यहाँ बूंदी के राजा उम्मेदसिंह और उसके छोटे भाई दीपसिंह के विवाह और पुत्रों को क्रमशः बताया है। हे स्वामी! विवाह तो भविष्य में सम्पन्न होंगे पर अब मैं उनके वर्तमान का हाल बताता हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुनें। अपने पिता राजा बुधसिंह के कारण दरिद्र अवस्था वाला सिंहासन पा कर इस राजा उम्मेदसिंह ने भविष्य में कौन-कौन से दुष्कर युद्ध जीते और किस तरह अपनी जागीर बढ़ाई। यही नहीं किस-किस को जागीर दी यह सारा रुचिकर वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूँ, उसे हे स्वामी रामसिंह! आप सुनें।

दोहा

पन पटु रन पटु बचन पटु, बीर बरस दस बेस॥
बैठि तखत बुधसिंह कै, हुव उम्मेद नरेस॥१६॥

हे राजा रामसिंह! अपनी प्रतिज्ञा निभाने में चतुर, युद्ध कौशल में निपुण और वचनपटु वह कुमार उम्मेदसिंह मात्र अपनी दस वर्ष की अवस्था में पिता राजा बुधसिंह के सिंहासन पर आसीन हुआ अर्थात् वह बूंदी का राजा बना।

हरिगीतम्

कोटेस दुर्जनसल्ल यह सुनि सोचि कछु हित हेरयो।
बखतेस पृथ्वीसिंह सुत निज बंधु बेघम प्रेरयो।
तिहिं खग्ग निजकर बंधि ओ नृप भाल तिलकहु मंडयो।
नजरि रु निछावरि ठानिकै निज थान परिखद बैठयो॥१७॥

तिमही पुरोहित व्यास चारन भट्ट नजरि निवेदई।
श्रट बर्ग पुनि कछु हे जिन्हैं इम भूप भूपतिता लई।
गोस्वामि गोपियनाथ नृप तब लैन मंत्रहि बुल्लये।
करि नाँहिं आयउ नाँहिं जे जयसिंह के भय भुल्लये॥१८॥

कोटा के राजा दुर्जनसाल ने जब यह समाचार सुना तो उसने इसमें अपना हित देखा। उसने तुरन्त अपने बांधव बखतसिंह को जो पृथ्वीसिंह हाड़ा का पुत्र था को बेगूं भेजा। उसने बेगूं जाते ही नये बनने वाले राजा उम्मेदसिंह के भाल पर तिलक लगाया और अपने हाथ से तलवार बंधाने का दस्तूर किया फिर नजराना और निछरावल की (यह इस बात का प्रमाण था कि हम उम्मेदसिंह के राजा बनने के पक्ष में हैं)। बखतसिंह हाड़ा प्रथानुसार सारे कर्म पूरे कर राजसभा में अपने नियत स्थान पर आ बैठा। उसके बाद पुरोहित, व्यास, चारण और भाटों ने भी नये राजा को नजराने भेंट किये। कुछ बूंदी के सामन्त जो वहाँ उपस्थित थे उन्होंने भी नजराना और न्योछावर (निछरावल) की रस्म अदा की। इस तरह कुमार उम्मेदसिंह ने राजा पद ग्रहण किया। गद्दी पर बैठ कर राजा ने गोस्वामी गोपीनाथ को गुरुमंत्र लेने के लिए बुला भेजा पर वह गोस्वामी नहीं आया। उसने कछवाहा राजा जयसिंह के भय से आने में आनाकानी की और नहीं आया।

पादाकुलकम्

कुम्म दलेल कानि बसु कामी, गोपियनाथ नटिय गोस्वामी।
कहिय मै न कोटापुर छोरौं, दिन चउ मास कितहु नहिं दोरौं॥१९॥

यह सुनि पुर बेघम नृप माता, बिपति स्वीय लखि नीति बिधाता
पुनि बिन्नति पठई कोटा पुर, धारक तँहैं रामानुज मत धुर॥२०॥

द्विज नागर उपपद सह्नोदर, बेणीराम सनाम भट्ट बर।
पठयो दल चुंडाउति तिन प्रति, तुम समदिट्ठि गिनहु सेवक तति ॥२१ ॥

मम सुत कल्हि सत्रु निज मारहिं, बुंदिय अप्पन आन बिथारहिं।
जो यह नियति जोग नाहिं पावहिं, तोपै तुमहिं सदा सिर लावहिं ॥२२ ॥

वह गोपीनाथ गोस्वामी बूंदी के तत्कालीन राजा दलेलसिंह और जयपुर के कछवाहा राजा से धन मिलने की कामना करने वाला था इसीलिए उसने बेगूं से उम्मेदसिंह के बुलावे पर जाना स्वीकार नहीं किया। उस गोस्वामी ने कहलाया कि यह चौमासे की ऋतु है और इस मौसम में कोटा नगर को छोड कर मैं अन्य किसी जगह नहीं जा सकता। गोस्वामी के चौमासे की बात सुन कर बेगूं से राजा उम्मेदसिंह की माता ने अपने पर पडी इस विपदा को विधाता द्वारा प्रदत्त मानते हुए दूसरी तरकीब सोची। उसने कोटा के रामानुज संप्रदाय को मानने वाले आचार्य नागर ब्राम्हण बेणीराम के पास अपनी विनती भिजवाई। चूंडावत रानी ने पत्र लिख कर कोटा आचार्य बेणीराम के पास भिजवाया जिसमें लिखा कि आप समदृष्टा है इसलिए कृपा कर हम लोगों को भी अपने सेवकों की पंक्ति में स्थान प्रदान करें। मेरा पुत्र उम्मेदसिंह कल अपने शत्रुओं से लोहा लेकर उनका नाश करने योग्य हो जाएगां और आगामी दिनों में बूंदी पर अपनी राजाज्ञा चलाएगा पर मान लो भाग्य के दुर्योग से यदि ऐसा न हो सका तब भी वह आपके संप्रदाय और आपकी आज्ञा को तो शिरोधार्य करेगा ही।

जो तुम मंत्र दैन हित हेरहु, तो आवहु पुत्रहिं वा प्रेरहु।
बेणियराम सोधि यह बत्ती, बिरचि अनुग्रह जानि बिपत्ती ॥ २३ ॥

दैन मंत्र पठयो बेघम द्रुत, श्री गोबिंद नाम जेठो सुत।
तिहिं आय रु उपदेस मंत्र दिय, नृप उमेद सानुज सिच्छा लिय ॥२४ ॥

चहि बुंदिय पति भक्ति धर्म चित, गेह रु देह निवेदिय गुरुहित।
श्रद्धामय अर्पित गहि भूसुर, पुनि करि सिक्ख गयउ कोटा पुर ॥२५ ॥

गहिय जबहि बुधसिंह मरन गति, उदयनैर हो तब बेघमपति ॥
अब इस मास माँहिं वह आयो, उर जामीस सोक अकुलायो ॥ २६ ॥

यदि आप स्वयं गुरुमंत्र देना उचित और हितकारी समझें तो पधारें,

यदि नहीं तो हम पर अनुग्रह कर अपने पुत्र को ही भेज दें । वेणीराम ने जब पूरी बात जानी तो उसने सोचा कि इस अनुग्रह में विपत्ती आने का खतरा है पर तब भी उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द को तुरन्त गुरुमंत्र देने के लिए बेगूं भेजा। उसने बेगूं आ कर राजा उम्मेदसिंह को अपने संप्रदाय (रामानुज) की दीक्षा दे कर उपदेश दिये और राजा ने भी अपने छोटे भाई सहित शिक्षा ली। बूंदी के स्वामी राजा उम्मेदसिंह ने भी धर्मभक्ति का मन में विचार कर गुरु गोविन्द को घर और स्वयं को समर्पित किया। श्रद्धापूर्वक जो भी दिया गया उसे स्वीकार कर वह ब्राम्हण गोविन्द विदा की आज्ञा ले कर वापस कोटा नगर में आया। जिस समय हाड़ा राजा बुधसिंह का देहावसान हुआ उस समय बेगूं का रावत उदयपुर में था। जब आश्विन माह में वह बेगूं लौटा तो यहाँ आते ही वह अपने बहिनाई के शोक में व्याकुल हो गया।

नयन श्रवत जलधार निरंतर, आधि अतुल छिज्जत असु अंतर।
बुद्ध भसम पूजन मसान किय, अरु स्वर उच्च टेरि यह अक्खिय ॥२७॥

बिनु सेवक तुम त्वरा बिचारी, करिहौं मैं सेवन द्रुतकारी।
इम कहि देवसिंह गृह आयउ, लालित जामि तनय हिय लायउ ॥२८॥

अजितसिंह मरुईस अग्ग मृत, सुत सप्तक हे तास कलुख कृत।
हो दिल्लिय पट्टप नय हीनौं, तदनुज बखत जनक जिय लीनो ॥२९॥

पंच हुते तासौं लघु भाई, उनकौं कैद करन मति आई।
भाजे सुनत क्रितेक महा भय, डारे कैद कितेकन निर्दय ॥ ३० ॥

रायसिंह आनंद भ्रात दुव , ईडरपुर अधिराज जाय हुव ॥
इक ईडर तजि मालव आयो, जोर मँहंदपुर अमल जमायो ॥ ३१ ॥

बेगूं के स्वामी देवसिंह के नयनों से अविरल अश्रुधार बह निकली। मन की इस पीड़ा से उसके प्राण छीजने लगे। उसने राजा बुधसिंह के दाहस्थल पर जा कर भस्मी का पूजन किया और ऊँचे सुर में यह टेरा (कहा) हे हाड़ा राजा! तुमने अपने मुझ जैसे सेवक की अनुपस्थिति में ही संसार से जाने की उतावली की अब मैं आपकी सेवा करने शीघ्र ही मर कर आपके पास आ रहा हूँ! ऐसा कह कर देवसिँह अपने घर आया। घर पर उसने भानजे का लाड कर स्नेह से उसे अपनी छाती से लगाया। उधर जोधपुर के राजा

अजीतसिंह (मारवाड़ का स्वामी) का भी देहावसान हो गया। उसके पास पाप कर्म में संलग्न रहने वाले सात पुत्र थे। राजा का नीति विहीन पाटवी पुत्र तो दिल्ली में था और पीछे से उसके छोटे भाई बखतसिंह ने पिता को मार डाला। यही नहीं उसने अपने पाँचों छोटे भाईयों को कारागार में डालने की सोची। इसकी खबर पा कर कुछ भाई तो भाग छूटे और शेष उस निर्दय की कैद में रहे। भागने वालों में एक रायसिंह और दूसरा आनंदसिंह था। इन दोनों भाइयों ने भाग कर ईडर राज्य पर अधिकार जमाया। एक वहाँ का अधिपति बना वहीं दुसरा ईडर से चल कर मालवा में आ गया उसने अपने बाहुबल से मँहँदपुर पर अधिकार किया।

यह सुनि आनि लगे दक्खिन दल, काढ्यो वह रट्ठोर बंधि बल॥
आतुर पुर बेघम तब आयो, देवसिंह अति मोद दिखायो॥३२॥

रुप्पय पंच नित्य तंहं दैकरि, धन्वप भ्रात रक्खि लिय हित धरि॥
तदनंतर सक खट नव सत्रह, आगहन मास बिसद पंचमि अह॥ ३३॥

बेघमपति देवहु बपु छोर्‍यो, जिहिँ जस हेत कपर्द न जोर्‍यो।
पट्ट सु दुनियसिंह तस पायो, रान सुनत हिय लोभ रचायो॥ ३४॥

मँहँदपुर पर अधिकार होने की सुन कर दक्षिण से यवन सेना आई और उसने वहाँ से उसे खदेड़ दिया। वह राठौड वीर तब भाग कर बेगूं आ गया। यहाँ के रावत देवसिंह ने मोद पूर्वक उसे अपने यहाँ रखा। देवसिंह ने उसका नित्यप्रति पाँच रूपये का वजीफा बांध दिया इस तरह हाथ खर्ची दे कर मारवाड़ के राजा के भाई का हित सोचते हुए देवसिंह ने उसे आश्रय प्रदान किया। इसके बाद विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ छियानवे के अगहन माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन बेगूं के स्वामी देवसिंह ने अपनी देह का परित्याग किया। वह एक ऐसा बिरला व्यक्ति था जिसने अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए कौड़ी का भी संचय नहीं किया। देवसिंह की मृत्यु के बाद उसका पाटवी पुत्र दुनीसिंह उत्तराधिकारी हुआ। उदयपुर के महाराणा ने जब यह सुना तो उसके मन में लोभ आया और दुनीसिंह पर दो लाख रुपयों का दण्ड कर दिया।

ताके सिर दुवलक्ख दम्म किय किय, बलि लिय तबहिं उदैपुर बुल्लिय॥
रस नव सत्त इक मित बच्छर, बिसद माघ मासग पंचमि पर॥ ३५॥

दुनियसिंह गय रान सभा जब, अह्वरि रान समुख आयउ तब ॥
दंड लियउ वह दोस दबावन, अक्खिय रान कियउ मैं पावन ॥३६ ॥

इम कहि तिलक भाल तस कीनों, अच्छत मुत्तिय मंडि नवीनों ॥
निज हत्थहि तरवारि बँधाई, सयन जोरि कहि मेघसिवाई ॥ ३७ ॥

इस राशि के प्राप्त होने पर ही महाराणा ने उसे उदयपुर आने को आमंत्रित किया। विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ छियानवे के माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन दुनीसिंह उदयपुर महाराणा की राज सभा में गया। जब वह महाराणा के सम्मुख पहुँचा तो महाराणा ने उठ कर उसे आदर दिया और कहा कि मैंने यह दण्ड तुम्हारे एक दोष को दबाने के लिए किया और राशि देने के बाद अब तुम पवित्र निर्दोष हो गए हो। ऐसा कह कर महाराणा ने अपने हाथों दुनीसिंह के ललाट पर तिलक लगाया और मोतियों के अक्षत चढाए। यही नहीं स्वयं के हाथ से उसे तलवार बंधाई और हाथ जोड़ कर उसका नया नाम सवाई मेघसिंह रखा।

दोहा

नाम सिवाईमेघ तस, कहिय रान कर जोरि।
पुर बेघम करि सिक्ख पुनि, वह आयउ मन मोरि ॥ ३८ ॥

उदयपुर के महाराणा ने अपने हाथ जोड़ कर उसका अभिवादन स्वीकार करते हुए बेगूं के नये रावत दुनीसिंह का नया नाम सवाई मेघसिंह रखा। इसके बाद महाराणा से विदा की आज्ञा ले कर बेगूं का नया स्वामी सवाई मेघसिंह बेगूं लौटा।

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे सप्तम राशौ भूभृदुम्मेदसिंहाऽभिषेचनवल्लभसम्प्रदायशिक्षनमिलन श्रीरामानुजशिक्षप्रापण बेघमपतिदेवसिंहमरणदुनीसिंहतत्पीठोपवेशनसिवाईमेघ नामभवनं प्रथमो मयूखः ॥ १ ॥ आदितः ॥ २८२ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की सप्तम राशि में, भूपति उमेदसिंह का अभिषेक होकर बल्लभसंप्रदाय की शिक्षा नहीं मिलने के कारण श्रीरामानुज संप्रदाय की शिक्षा लेना। बेघमनगर के पति देवसिंह का मरना उसकी गद्दी पर बैठकर दुनीसिंह का सवाई मेघ के नाम से प्रसिद्ध होने का प्रथम मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ बयासी मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहादिवृत्तोत्यादिनी चूलिआला

इत बेघम बुंदीस अब, बप दस हायन मान बिराजत।
हप बिद्या सिक्खत हुलसि, नय दमधर्म निधान बिराजत॥१॥

तोमर असि पट्टिस तुपक, चापन सायक चंड चलावत।
खुरली बिनु बित्तै खिन न, मन जाको ब्रहमंड न मावत॥२॥

ब्रह्ममुहूरत जग्गि बलि, संध्या न्हावन आदि सुधारत।
सावित्री जप इक सहँस, अरु हरि नाम अनादि उचारत॥३॥

ब्रत संजम उपवास बिधि, इक्क न टारत अप्प इलापति।
सच्ची मैं हित अनुसरैं, गिनैं न मूढन गप्प महामति॥४॥

हे राजा रामसिंह! इधर बेगूं में रहते हुए बूंदी का राजा उँम्मेदसिंह जो अभी मात्र दस वर्ष की अवस्था वाला था ने खुशी-खुशी घोड़ों की विद्या सीखनी आरम्भ की। घुड़सवारी सीखने वाला वह नृप-बालक नीति और दण्ड की सहायता से धर्म मार्ग का अनुशरण करने लगा। वह शस्त्रविद्या सीखने के लिए सभी प्रकार के शस्त्र यथा भाला, तलवार, कटारी, बन्दूक, धनुष-बाण आदि चलाने का अभ्यास करने लगा। क्षण भर का समय भी वह अपनी शस्त्र विद्या के अभ्यास बिना नहीं खोता था। उसके बाल मन में इस समय ब्रह्माण्ड भी नहीं समाता था। वह जिज्ञासु ब्रह्म मुहूर्त में उठता और संध्या आदि सारे नित्य-कर्म पूरी निष्ठा से करता। वह गायत्री मंत्र के एक हजार जाप सहित विष्णुनाम का पाठ करता। इन्द्रियों पर संयम रख कर वांछित तिथियों पर व्रत-उपवास भी रखता। वह राजा अपने नित्य-कर्मों, विद्याभ्यास और शस्त्रविद्या के अभ्यास को कभी नहीं टालता।

स्वीयजनक बुधसिंह सठ, अति आसव अधिकार उपायो।
सो मग करि उच्छिन्न सब, वैष्णव धर्म विचार बढायो॥५॥

हरिपूजन नति जुत हुलसि, बिधि सह षोड़स अंग बनावैं।
पंच जज्ञ करवाय पुनि, लघुभोजी मन जंग लगावैं॥६॥

भारत स्मृति पुनि भागवत, बेद बचन धरि चेत बिचारैं।
मृगया रस रत्तो मुदित, सिंहन स्वकुल समेत बिडारै॥७॥

राजा उम्मेदसिंह सत्य में ही अपना हित देखता। वह महामति मूढ मनुष्यों की गप्पबाजी को पसन्द नहीं करता था। उसके मूर्ख पिता राजा बुधसिंह ने जो अत्यधिक मद्यपान का रिवाज चलाया था इस कुशाग्रबुद्धि बालक राजा ने उसका अनुशरण नहीं किया। यहीं नहीं बुधसिंह द्वारा विकसित वाम मार्ग को छोड़ कर फिर से वैष्णव धर्म के विचारों का प्रचलन बढ़ाया। वह पूरी नम्रता के साथ सोलह अंगों वाली पद्धति से हरिपूजन सम्पन्न करता। वह नित्य प्रति पाँच यज्ञ करवा कर थोड़ा आहार करता और अपनी सोच युद्धविद्या में संलग्न करता। वह महाभारत, श्रीमद्भागवत, स्मृतिग्रंथों, पुराणों और वेद की सुक्तियों के अनुरूप आचरण करने की सोचता। वह मृगया में रस लेता और विशेषकर सिंहों की शिकार में अपने को व्यस्त रखता।

पज्झटिका

उम्मेदनृपति बुधसिंह पट्ट, दस अब्द बेस अति छक उछट्ट।
अरु मंजु बालससि जिम अनूप, भल बैन सबन मन हरत भूप॥ ८॥

कर्कादि निसा मकरादि दीह, इम बढत रक्खि भुव लैन ईह।
तिम सारदूल सिसु निस रु द्यौंस, हत्थीन हनन मन धरत हौंस॥ ९॥

इम नृपहिं लैन बुंदिय उमंग, आयुध समस्त सद्धत अभंग।
बुधसिंह सुतहिं सुनि इम समत्थ, सब मिलिय आनि भट सचिव सत्थ॥ १०॥

धरि सबहि महासिंहोत धर्म, भृत्या बिनु अहरि भृत्य कर्म।
जे बीर रहे नृप पास जायं, पति आधिपत्य चिंतत उपाय॥ ११॥

इम भूप बढत दिन दिन अमान, अवनी निज लैबे कौं उफान।
इहिं बेरहिं दोलतसिंह रंच, हरदाउत हड्डा किय प्रपंच॥ १२॥

राजा बुधसिंह का उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह दस वर्ष की उम्र में ही वीरता का प्रदर्शन करने लगा। वह मनोहर बालक द्वितीया (तिथि) के चन्द्रमा के समान वृद्धि की ओर अग्रसर होता सभी से मीठा बोल कर उनके हृदय को जीतने लगा। जिस प्रकार कर्क संक्रांति की शुरूआत से रात्रि बढ़ने लगती है और मकर संक्रांति के आरंभ से दिन बड़ा होने लगता है उसी तरह यह भूमि (जागीर) लेने की इच्छा वाला राजा प्रतिदिन बढ़ने लगा। जैसे सिंह का शावक रातदिन हाथी को मार गिराने की इच्छा पालता है उसी तरह यह राजा उम्मेदसिंह दिन-रात मन में बूंदी लेने की उमंग पालता और इसके लिए

शस्त्र-संचालन का अभ्यास करता। हाड़ा राजा बुधसिंह के इस पुत्र उम्मेदसिंह के समर्थ होने की भनक लगते ही कुछ सामन्त और सचिव उससे आ मिले। सारे महासिंहोत कुल के हाड़ा अपने कुलधर्म का स्मरण कर तनख्वाह अथवा जागीर बिना ही आ कर राजा की सेवा में संलग्न हो गए। इस तरह बूंदी के जो भी वीर राजा उम्मेदसिंह के पास आ रहे वे निरंतर अपने स्वामी को बूंदी का अधिपति बना कर उसे वहाँ स्थापित करने के उपाय सोचने लगे। इस तरह राजा उम्मेदसिंह के मन में दिनोदिन अपनी भूमि वापस प्राप्त करने के साहस का संचरण होने लगा था कि हरदावत कुल के हाड़ा दौलतसिंह ने एक प्रपंच रचा।

नृप अनुज दीपसिंहाभिधान, किय तास पृथक परिखद बिधान।
बहु नरन फोरि अप्पिय बिसास, पुनि यह नृप माता हुव सत्रास ॥१३॥

सुखसिंह महासिंहोत बुल्लि, अक्खिय सुलाह गति समय खुल्लि।
मम पुत्र दुव हि अब बय महंत, चल सुभट इनहिं फोरन चहंत ॥१४॥

हम गेह हुती जो राजरीति, आपत्ति सु पै पलटी अनीति।
छोटे रु बडे बैठें समस्त, अंजलि बिनु बुल्लत तिन्ह अत्रस्त ॥ १५ ॥

दोलतसिंह सु बिग्रह बढात, दुव बंधुन बिच अँतर दिखात।
अैसे भट बहु बिरचत अकाज, तसमात हमहिं यह उचित आज ॥१६॥

वह दौलतसिंह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह की अलग से सभा जुटाने लगा। इससे वह कई लोगों को राजा की ओर से इधर मोड़ने में सफल होने लगा। यह देख कर राजा की माता डर गई। उसने तुरन्त महासिंहोत कुल के हाड़ा सुखसिंह को बुलवाया और उससे मंत्रणा कर सलाह पूछी कि क्या करना चाहिए? क्योंकि मेरे दोनों पुत्र अब जवान हो गए हैं और कुछ चंचल बुद्धि के सामन्त इनमें मनमुटाव कराने को आतुर हैं। हमारे घर में जो राजाओं वाली रीति थी वह आपदा आने से उल्टी हो गई है अर्थात् राजरीति अब अनीति में बदल सी गई है। आज यहाँ छोटे और बड़े जो सभी बैठे हैं वे सभी करबद्ध प्रार्थना नहीं करते बल्कि सभी निशंक बोलते हैं। ऐसे में वह दौलतसिंह वैमनस्य बढा रहा है और दोनों भाइयों के मध्य फूट डालना चाहता है। कुछ सामन्त भी उल्टे कर्म करने पर उतारू हैं, ऐसे में हमें आज कुछ उचित उपाय करने चाहिए!

धारत तुम नय जुत स्वामि धर्म, बिस्वासहु तुमरो भक्ति बर्म।
यातैं समस्त ऐसे निकासि, बलि लेहु सुद्ध हृदयन बिसासि॥ १७॥
रहिहैं समस्त जो राजरीति, तो हमहिं बढन ह्वैहैं प्रतीति।
सुखसिंह महासिंहोत बीर, धरि हिय यहैहि किय धर्म धीर॥ १८॥
दौलतसिंहादिक वे दुबुद्धि, सब दिप बिडारि किय रीति सुद्धि।
नृप मातहिं पुनि अक्खिय निदान, स्वनिलय निबाह चिंतहु सुजान॥१९॥
जयसिंह गिनहु अति उग्र जोर, दिल्ली रु दक्खिनहु सहत दोर।
तसमात हमहिं इक मंत्र आय, नृप अनुज हेत बिरचहिं उपाय॥२०॥
जगतेस रान सन यह निवेदि, कछु लेहु पटा भट तास भेदि।
सुनि यह नरेस जननी सुभाय, अब रान हिंतु चिंतिय उपाय॥ २१॥

हे सुखसिंह! तुम अभी भी स्वामिभक्ति की नीति धारण करने वाले हो तुम्हारा विश्वास हमारे लिऐ भक्ति के कवच रूप है इसलिए तुम ऐसे कंटकों को यहाँ से निकाल बाहर करो। फिर शेष रहे सारे स्वामिभक्त और शुद्ध मन वाले सरदारों के हृदय में फिर से विश्वास भरो। यदि ये सभी राजरीति से रहे तो हमें भरोसा है कि हम आगे बढेंगे। नृप माता की बात सुन कर महासिंहोत कुल के वीर हाड़ा सुखसिंह ने धैर्यपूर्वक वही सब कुछ किया जैसा राजा की माता ने कहा था। उसने दौलतसिह हाड़ा जैसे दुर्बुद्धियों को वहाँ से भगा दिया और वातावरण को वापस शुद्ध किया। इसके बाद राजा उम्मेदसिंह की माँ ने कहा कि अब हमें अपने घर और निर्वाह हेतु कुछ करने की चिंता करनी चाहिए। वह कछवाहा राजा जयसिंह तो बहुत ताकतवर है दिल्ली और दक्षिण दोनों ओर उसका बोलबाला हैं इसलिए हमें यह मंत्रणा करनी चाहिए कि राजा के छोटे भाई के लिए जागीर का कुछ उपाय कर सकें। मुझे एक उपाय यह नजर आता है कि महाराणा उदयपुर के किसी उमराव के द्वारा महाराणा जगतसिंह तक यह निवेदन पहुँचाया जाए कि वे दीपसिंह के लिए कोई जागीर का पट्टा दे दें। राजा की माता से यह सुन कर सुखसिंह हाड़ा अपने विश्वासपात्र साथियों के साथ महाराणा से मिलने के उपाय सोचने लगा।

दोहा

इत मरूपति अभमल्ल नृप, सज्जि अनीक अमान।
बीकानैर अधीस सन, चिंतिय लरन प्रयान॥२२॥

इधर मारवाड़ के राजा अभयसिंह ने अपनी एक जंगी सेना सज्जित कर बीकानेर के राजा पर चढ़ाई करने की सोच कर सेना सहित प्रयास किया।

षट्पात्

नृप अनंद अभिधान अग्ग बीकानैरप मृत,
तब काका सुत तास भटन गजसिंह भूप कृत।
यह इक नव हय इंदु भयउ जंगलधर भूपति,
अब हय नव मुनि इंदु मरूप तिहिं लरन किन्नमति।
यह सुनि नरेस गजसिंह अब कूरमपति प्रति पत्र दिय।
हरि गज सहाय तिम तुम हुलसि मम सहाय रक्खहु महिय॥२३॥

पूर्व में बीकारनेर के राजा आनन्दसिंह का निधन हो गया तब सभी सामन्तों ने मिल कर राजा के काका के पुत्र गजसिंह को बीकानेर का नया राजा बनाया। यह गजसिंह विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ इक्यानवे में जंगलधर (बीकानेर का नाम, जांगलु प्रदेश) का राजा बना और इस समय अर्थात् विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ सत्तानवे में जोधपुर के राजा ने चढाई करने का मन बनाया। जोधपुर की सेना के आगमन की खबर पा कर राजा गजसिंह ने तुरन्त जयपुर के कछवाहा राजा जयसिंह को पत्र भेजा कि हे राजा! जिस प्रकार श्रीहरि ने ग्राह से हाथी को उबारा उसी प्रकार कृपा कर मेरी सहायता कर मेरी भूमि की रक्षा करो!

सुनि यह नृप जयसिंह रान अरु अप्प इक्क बनि,
पठये दोउन पत्र सजव मरु देस क्रोध सनि।
इन्ह तुम गिनि अंकस्थ बिभव निज करन बिगारत,
उचित नीति नन एह मूढबनि बंधुन मारत।
इत रूपनग्गर उत वह अतुल दुरग जोधपुर पच्छ दुव।
बिनु पच्छ गिद्ध संपति बिधि धरिहो नहिन उडान ध्रुव॥२४॥

पत्र के समाचार ज्ञात होते ही कछवाहा राजा और महाराणा जगतसिंह ने एकता की। उन दोनों ने कुपित हो जोधपुर के राजा को अलग-अलग पत्र भिजवाए कि तुम बीकानेर के राजा गजसिंह को गोद आया जान कर उस राज्य के वैभव को अपने ही हाथों नष्ट करने पर तुले हो यह कोई अच्छी बात नहीं। न ही यह नीति सम्मत है कि मूर्ख की तरह अपने ही भाइयों का विनाश चाहते हो। तुम यह भूल रहे हो कि इधर रूपनगढ (किशनगढ़ की पुरानी राजधानी) और उधर बीकानेर दोनों जोधपुर के दो पंख हैं। पंख विहीन हो कर जटायु गिद्ध की तरह तुम फिर उड़ान नहीं भर सकोगे अर्थात् अपने ही पंख कुतरने पर आमादा मत हो! यह आत्मघाती कर्म मत करो।

यह कग्गर द्रुत बंचि मरूप नैंक न मन्नैं मन,
अक्खी स्वसुर असंक रानजुत बनत कितोधन।
सुभट मोर गजसिंह ताहि क्यौं नहि समुझाऊँ,
मैं गुज्जर धर जैतवार अरि गरद मिलाऊँ।
यह कहि कबंध लै दल अतुल बीकानैरहिं घिंटि लिय।
तरकाव ताव तोपन तपिय मनहुं दाव तिंदुन मचिय॥ २५॥

दोनों पत्र मिलने पर जोधपुर के राजा ने पढ़े पर उनकी राय को तनिक भी अपने मन में जगह नहीं दी। उल्टे उसने कहा कि मेरा स्वसुर कछवाहा राजा जयसिंह उदयपुर के राणा से मिलकर एक भी हो जाये तब भी उनके पास क्या सामान (धन, बल) है? मैं गुजरात की भूमि को जीतनेवाला हूँ। मेरे सामने जो भी शत्रु आएगा वह धूल में मिला दिया जाएगा। ऐसा कह कर जोधपुर के राठौड़ राजा अभयसिंह ने अपनी सेना की सहायता से बीकानेर को जा घेरा और तोपों से गोलों की झड़ी लगा दी जिससे अग्निकण उछालने वाली तेंदू वृक्ष की लकड़ी की तरह बीकानेर जलने लगा अर्थात् उस पर अग्निकण छा गए।

जिम दंतन बिच जीह इच्छु जिम जंत्र अरोहित,
इम आतुर गजसिंह मन्त्रि संकट हुव मोहित।
सुनि आरति जयसिंह कुंच जैपुर सन किन्नो,
बुल्ल्यो रानहु बेग लैन मरुधर पन लिन्नौं।

दरकुंच चलिय कूरम दुसह खंड चउद्दह खलभलिय।
सुरलोक बत्त फुट्टिय सहज किहिं सिर कूरम कोप किय॥२६॥

जिस प्रकार बत्तीस दांतों के मध्य जिव्हा अकेली है और गन्ना चरखी में डाल कर अकेला पेरा जाता है ऐसी अपनी हालत की कल्पना कर बीकानेर का राजा गजसिंह घबरा गया। उसने फिर से कछवाहा राजा के समक्ष आर्त्ता पुकार भिजवाई जिसे सुनकर कछवाहा राजा जयसिंह ने अपनी सेना सहित जयपुर से कूच किया और उधर से उदयपुर महाराणा को भी बुलवाया कि मारवाड़ को अपने अधिकार में करना है। दर कूच दर मंजिल कछवाहा राजा की सेना ने प्रयाण क्या किया कि भुवन के चौदह खंडों में खलबली मच गई। सुरलोक में चर्चा चल पड़ी कि आज कछवाहा राजा ने किस पर कोप किया है ?

नागराज फन फटिय कमठ रीढक बररक्किय,
बसुधा भर बिहरिय मनहुँ दारिम दररक्किय।
रवि लुक्किय रज मेघ दान दिग्गज गन सुक्किय,
मग रुक्किय पवमान तान अच्छरि चकि चुक्किय।
अतुलित अनीक जयसिंह इम जाय रु बिंटिय जोधपुर।
रानहु प्रयान यह सुनि रचिय प्रबल सेन हंकत प्रचुर॥ २७॥

नागराज शेषनाग के फण चिरने लगे, कच्छप की रीढक में दरार आने लगी। सेना के भार से वसुधा यों फटने लगी जैसे पका हुआ अनार का फल दरकता है। सैन्य संचरण से उड़ी रज के बने मेघों ने सूर्य को ढाँप लिया। दशों दिशाओं के दिग्गज चिंघाड़ उठे। पवन अपने बहने का मार्ग भूल गया और अप्सराएँ अपने गायन की तानें भूल गई। अपनी अतुलित सेना के साथ आ कर कछवाहा राजा जयसिंह ने जोधपुर को घेर लिया। उधर से उदयपुर के महाराणा ने भी जयपुर के समाचार जान कर बड़ी सेना के साथ जोधपुर आने को प्रयाण किया।

दोहा

बिंट्यो कूरम जोधपुर, जोर्यो तोपन जाल।
मनहुँ भगाली दच्छमख, किन्नौं समय कराल॥२८॥
सुनि मरूपति अभमङ्ग यह, सत्थ अलपतम सज्जि।
बेस बदलि आधी निसा, पैठो निजपुर भज्जि॥२९॥

इत कूरम नागौर पुर, दिन्नौं पत्र पठाय।
बखतसिंह आवहु तुम्हैं, दैहैं तखत बठाय॥३०॥
हेरत हो बखतेस यह, भज्यो त्वरित तजि भोन।
जिहिं सठ जनक निपात किय, भ्राता तिहिं चित कोन॥३१॥
सजव आनि जयसिंह सौं, मिल्यो मूढ भुव लोभ।
मरूपति हिय यह सुनि अमित, छयो अनुज सिर छोभ॥३२॥

जयपुर के स्वामी कछवाहा राजा जयसिंह ने जोधपुर को घेर कर उसके चारों ओर अपनी तोपों का जाल ऐसे बिछाया मानो महादेव ने कुपित हो दक्षराज के यज्ञ का विनाश करने को विकराल रूप धारण किया हो। अथवा जोधपुर की वह दशा हो गई जो दक्षराज के यज्ञ की महादेव के आने पर हुई थी। जबजोधपुर को जयपुर की सेना द्वारा घेर लिये जाने का समाचार राठौड़ राजा अभयसिंह को बीकानेर में मिला तो वह तुरन्त अपने छोटे से दल के साथ भाग कर जोधपुर आया और रात्रि समय में भेष बदल कर अपने नगर में आ घुसा। इधर कछवाहा राजा ने नागौर पत्र लिख कर भेजा कि हे बखतसिंह! तुम जोधपुर आ जाओ। मैं तुम्हें यहाँ के तख्त पर आसीन करवा दूँगा। बखतसिंह तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था वह तो पत्र पाते ही नागौर का घर छोड़कर भागा आया, जिस दुष्ट ने अपने पिता को मार गिराया हो भला उसके लिए भाई कौन सी बड़ी बात थी? वह तो शीघ्र ही भूमि पाने के लोभ में राजा जयसिंह से आ मिला। जब जोधपुर के राजा ने यह सुना तो उसने अपने छोटे भाई पर अत्यधिक क्रोध किया।

जान्यो अग्गहि कुम्म यह, उभय लक्ख चतुरंग।
पीछैं आवत रान पुनि, सहँस असी दल संग॥ ३३॥
जित्तै बिनु नहिं जीवनौं, अरु जित्तन बहु दूर।
ध्रुवहि अनुज सिर छत्र धरि, जैहैं स्वसुर जरूर॥ ३४॥
यातैं नतिही उचित अब, मंगैं सुहि दै दम्म।
कूरम कुंच कराइये, कछुदिन जीवन कम्म॥ ३५॥

राठौड़ राजा अभयसिंह ने सोचा कि एक तो यह कछवाहा राजा अपनी दो लाख की संख्या वाली बड़ी फौज के साथ यहाँ मौजूद है और पीछे

से उदयपुर का महाराणा अपनी अस्सी हजार की सेना के साथ बढ़ा चला आ रहा है। ऐसी दशा में जीत हासिल करना अत्यन्त दुभर है और विजय के बिना मेरा जीना दुश्वार है। इससे तो लगता है कि यह श्वसुर (कछवाहा राजा) मेरे छोटे भाई के सिर पर मुकुट और छत्र धर कर ही रहेगा। इसलिए उसने सोचा कि इस अवसर पर नम्रता दिखाना ही श्रेयष्कर होगा और वह दण्ड के जितने रूपये माँगे उतने देने में सार है। अभी कुछ दिन जीवन से काम है अर्थात जीवित रहना है इसलिए कछवाहा राजा की सेना को वापस कूच करवाना ही बेहतर होगा।

स्वसुर पितासम निगम मत, अरु सुत सम जामात।
यहै गली अब कढ्ढिकै, भुव रक्खहिं निज हात॥ ३६॥

कूरम प्रति कहि मुक्कलिय, इम विचारि अभमल्ल।
बंदनीय तुम स्वसुर हो, हम करैं न रन हल्ल॥ ३७॥

जो मंग्गहु सो दैहिंगे, लै जावहु निज गेह।
मम सोदर सठ फोरिकें, अनुचित करहु न एह॥ ३८॥

वेद में श्वसुर को पिता तुल्य कहा गया है और जामाता को पुत्र वत माना है! राठौड़ राजा ने यह गली निकाली कि इसी से अपनी जागीर अपने अधिकार में रह सकती है अन्यथा नहीं! राजा ने इस गली के सहारे कछवाहा राजा को अपना अनुरोध भिजवाया कि आप श्वसुर होने के नाते वंदनीय हैं इसलिए आपसे युद्ध करना मेरे लिए शोभनीय नहीं है। आपकी जो आज्ञा होगी मुझे उतनी राशि दण्ड की देना स्वीकार है! बस, आप किसी तरह मेरे भाई को मेरे विरुद्ध करने का अनुचित कार्य न करें अर्थात उसे राजा न बनायें और अपनी सेना सहित आप वापस अपने घर चले जाएँ।

षट्पात्

नृप कूरम बाईस लक्ख रुप्पय तब मंगिय,
इक्खि समय मरुईस अखिल रुप्पय किय अंगिय।
रट्ठोरन यह जानि बहुत बरज्यो मरु भूपति,
दम्म इते क्यों देत मरन मंडहु निसंक मति।
सचिवन तथापि अभमल्ल सौं दंड दैन अक्खिय उचित।
सो सब कबंध स्वीकार किय देस काल निब्बल तुचित॥३९॥

राठौड़ राजा अभयसिंह के इस निवेदन पर जयपुर के राजा जयसिंह ने फौज खर्च के बाईस लाख रूपये की मांग रखी। जोधपुर के राजा ने भी अपना कठिन समय देख कर पूरी राशि देना स्वीकार कर लिया। जब दूसरे राठौड़ ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपने स्वामी को यह राशि देने की बात स्वीकार करने से रोकते हुए कहा कि हे स्वामी! इतने रूपये देने की क्या आवश्यकता है? हम निर्भय हो कर युद्ध में मुकाबला करते हुए मरने को तैयार हैं लेकिन सचिवों ने अभयसिंह को राय दी कि दण्ड राशि देना उचित रहेगा। राठौड़ राजा ने भी अपनी निर्बल परिस्थिति को ध्यान में रख कर अन्ततः राशि देना स्वीकार कर लिया ।

दोहा

कूरम तब जामात कों नमित जानि इम साफ।
निज तनया कों चोल के, तीन लक्ख किय माफ॥४०॥

सेस लक्ख गुनईस रहि, तिनमैं बहु भरि लिन्न।
अवसेसन हित ओलि मैं, निज प्रधान उन दिन्न॥४१॥

रतनसिंह अभिधान यह, मरूपति सचिव सुभाय।
दम के लक्खन दम्म लै, कूरम डेरन आय॥४२॥

बट्टे के रुप्पय निरखि, पुनि किय कूरम रोस।
रतनसिंहँ तब उच्चरिय, देहु न नाहक दोस॥४३॥

जैसे रुप्पय जोरकरि, हमतैं छिन्नत हाल।
तैसेही तुम दीजियो, हमकों कोउक काल॥४४॥

कछवाहा राजा जयसिंह ने भी तब अपने जामाता को इतना विनम्र देख कर अपनी पुत्री को कांचली देने (एक रिवाज जिसमें पुत्री को कांचली का कपड़ा दिया जाता है) के निमित्त तीन लाख की राशि माफ कर दी। शेष रहे उन्नीस लाख रुपयों के पेटे बहुत कुछ सामान जमा किया फिर भी जो रकम बाकी रह गई उसके एवजाने में राठौड़ राजा ने अपने प्रधान को उनकी हिरासत में सोंपा। रत्नसिंह नामक मारवाड़ के राजा का यह सचिव तब लाखों रूपये लेकर कछवाहा राजा के शिविर में गया पर वहाँ खाते की राशि देखकर

कछवाहा राजा जयसिंह ने कोप किया। इस पर जोधपुर के प्रधान सचिव रत्नसिंह ने कहा कि हे राजा! आप नाहक ही हम लोगों को दोष दे रहे है। आप जिस प्रकार अपने बल का प्रदर्शन कर अभी हमसे रूपये छीन रहे हैं और जो कम है उस पर कभी हमारा समय ठीक हुआ तो हो सकता है आपको भी इसी तरह रूपये देने पड़े तब आप भी कुछ कम दे देना।

यह सुनि कुम्म सिराहि अरु, ओलि माँहिं तिहिं डारि।
करिय कुंच निज गेह कौं, बिन रन बिजय बिचारि॥ ४५ ॥

मिले स्वसुर जामात गिनि, लगी बखत हिय लाय।
मुह बिगारि नागोर कौं, कुम्महि निंदत आय॥४६ ॥

प्रत्यागम जयसिंह किय, अतिदल अतुल उछाह।
नगर नाम सरवाड़ ढिग, मिलिय रान कछवाह॥४७ ॥

रानहि कूरम कहिय हम, कियउ जोधपुर जेर।
अप्पहु अब पच्छे फिरहु, बढहिं खरच बिनु बेर॥४८ ॥

कहिय रान आयउ निकट, पुसकर तीरथ एह।
यौं न अबहि फिरनौं उचित, न्हाय रु जैहै गेह॥४९ ॥

इम कहि गिनि न्हावन उचित, पुसकर रान पधारि।
कूरम आयउ आगरा, सूबा करन सम्हारि॥५० ॥

प्रधान की बात सुन कर राजा जयसिंह ने उसकी सराहना की और शेष राशि अपने खाते में लिखवाई फिर बिना ही युद्ध रचाये अपनी विजय हुई यह जान कर अपनी सेना सहित घर की ओर अर्थात जयपुर जाने को कूच किया। इधर श्वसुर कछवाहा राजा और उसके जामाता राजा अभयसिंह को इस तरह मिला हुआ देख कर बखतसिंह के ह्रदय में आग लग गई। वह अपना मुँह बिगाड़ते हुए और राजा जयसिंह की निन्दा करते हुए वापस नागौर आया। जब कछवाहा राजा की सेना ने अपनी वापसी की तो रास्ते में सरवाड़ नामक स्थान पर उसकी भेंट आती हुई महाराणा की सेना से हुई। यहाँ महाराणा जगतसिंह से कछवाहा राजा जयसिंह ने कहा कि जोधपुर को तो हम ही परास्त कर आए अर्थात फौज खर्च लेकर उनकी अक्ल दुरुस्त कर आए।

अब आप सेना सहित यहीं से वापस उदयपुर लौट जाएं क्योंकि आगे जाने पर बिना ही बात के समय और पैसा खर्च होगा। यह सुनकर महाराणा ने कहा हम यहाँ तक आ गए हैं और यहाँ से पुष्कर तीर्थ निकट है फिर इस तरह राह से वापस खाली हाथ लौटना भी अच्छा नहीं! इससे अच्छा है हम पुष्कर जाएंगे और वहाँ से स्नान कर वापस लौटेंगे। इतना कह कर तीर्थस्थान के स्नान को महाराणा पुष्कर गए और कछवाहा राजा यहाँ से अपने आगरा के सूबे को संभालने हेतु आगरा गया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ पौगण्ड-कालोम्मेदखुरलीसाधनश्रोतव्यश्रवणमहासिंहोतस्वामिसेवनदोलतसिंहा-दिनिष्कासनयोधपुरराजाऽभयसिंहबीकानेरयुद्धकरणतन्नृपगजसिंहजैपुर-सहायपत्रप्रेषणजयसिंहजामातृवारणकूर्मक टकयोधपुरवेष्टनदण्डद्रव्या-नयन सरवाड़राणजगत्सिंहाऽऽगरानगरगमनं द्वितीयो मयूखः ॥ २८३ ॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में दस वर्ष की अवस्था में उम्मेदसिंह का शस्त्राभ्यास करना सुनकर महासिंह के वंशवालों का स्वामी की सेवा करना, दौलतसिंह आदि को निकालना, जोधपुर के राजा अभयसिंह का बीकानेर से युद्ध करना, बीकानेर के राजा गजसिंह का सहाय के अर्थ जयपुर पत्र भेजना, जयसिंह का अपने जमाई (अभयसिंह) को मना करना, कछवाहों की सेना का ज़ोधपुर को घेरना, दंड के रूपये लेकर सरवाड़ में राणा ज़गत्सिंह से मिलकर जयसिंह का आगरै जाने का दूसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ तिरासी मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

सचरणगद्यम्

अग्गैं नादरसाह कै समय जयसिंह दिल्ली न गयो।

मुहुम्मदसाहनैं किल्ला रनथंभोर दैनों करि बुलायो तथापि टरिबेकौं बहानौं लयो।

तदंनंतर नादरसाह दिल्ली की कतलकरि तमाम बादसाही बैभव लूटि अपैं मुलक ईरान सिधायो।

अरु मुहुम्मदवाह नैं सरबस्व के साथ अपनौं तेजही गुमायो ॥१ ॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में जब नादिरशाह ने आ कर दिल्ली को लूटा उस समय कछवाहा राजा जयसिंह दिल्ली नहीं गया। उस समय के बादशाह मुहम्मदशाह ने कछवाहा राजा को रणथंभोर का दुर्ग देना तय कर बुलवाया था पर वह बहाना बना कर दिल्ली जाना टाल गया। ऐसे में नादिरशाह ने दिल्ली में कत्लेआम मचाया और शाही वैभव को लूट कर वापस अपने मुल्क ईरान सुरक्षित चला गया, इससे बादशाह ने अपनी कांति सहित सर्वस्व खोया।

ऐसी अनेक बदफैली जयसिंह नैं कीनी तथापि हिन्दुस्थान मैं
बरजोर जान्यौं।
अरु पहिलैं याकौं सूबा दयेहे ते रजूही राखे रु बिनय सौं बखान्यौं।
राजाधिराज राजराजेन्द्र सवाईजयसिंह ऐसो उपटंक लिखायो।
अरु अग्गैं काहूको न भयो ऐसो फरमान मैं सतकार बिसेस
बढायो॥ २॥

ऐसी अनेक बदफैली राजा जयसिंह ने की तब भी वह हिन्दुस्तान में ताकतवर कहलाया। बादशाह ने भी इसे पूर्व में जो सूबे दिये थे उन्हें यथावत उसके अधिकार में रखा और विनयपूर्वक राजा की सराहना की। यही नहीं उसने राजाधिराज राज राजेन्द्र सवाई जयसिंह जैसा खिताब अपने नाम के साथ जुड़वाया और भविष्य में भी अन्य किसी राजा ने अर्जित नहीं किया वैसा विशेष सम्मान पाया।

यातैं जयसिंह जोधपुर की फतै करि दरकुंच आगरा प्रवेस
कीनौं।
अरु रानौं जगत्सिंह पुष्कर से महातीर्थ के स्नान को लाह लीनौं।
तहाँ व्यास दोलतराम रानौं सौं अरज करि मेवार के उदकीन की
बेगारि मिटाई।
अरु अपने हाथ मैं उदक झेलि दोऊन की कीर्त्ति चोतरफ चलाई॥ ३॥

इसी दबदबे के कारण जब राजा जयसिंह ने जोधपुर को बिना लड़े फतह कर लिया और आगरा के लिए कूच कर नगर में प्रवेश लिया। उधर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने तब पुष्कर जैसे महातीर्थ पर स्नान करने का

लाभ कमाया। इस अवसर पर महाराणा से निवेदन कर व्यास दौलतराम ने मेवाड़ के उदक भूमि वालों की (सांसणदारों की) बेगार समाप्त करवाई। महाराणा ने भी तब अपनी अंजुरी में जल भर कर इसे स्वीकार किया, इससे दोनों की कीर्ति सभी ओर फैली।

अग्गैं रानन की बिपत्ति मैं यह बेगारि जारी भई।
अब व्यास के आतंक सौं तमाम मेवार छोरि गई।

या रीति पुष्कर मैं पाप धोय रानौं जगत्सिंह उदैपुर प्रविष्ट भयो।
अरु रट्ठोर बखतसिंह नैं पछिताय हाथ जोरि अपनैं अग्रज जोधपुर के राजा अभयसिंह को प्रसाद लयो॥ ४॥

पूर्व में महाराणा पर आई विपत्ती के समय वह बेगार जारी हुई थी पर अब व्यास के भय से बेगार की प्रथा मेवाड़ को छोड़ गई अर्थात बंद हो गई। इस प्रकार पुष्कर तीर्थ में अपने पाप धोकर अर्थात स्नान कर महाराणा जगतसिंह ने वापस उदयपुर में प्रवेश लिया। उधर राठौड़ बखतसिंह ने पश्चाताप कर अपने बड़े भाई जोधपुर के राजा अभयसिंह से हाथ जोड़कर माफी मांगी और उनकी कृपा का प्रसाद पाया।

कही स्वामि सौं हरामी भयो सो अपराध मेरो माफ कीजिये।
अरु अपनैं घर के बिगारे कछवाह के ऊपर फोजबंधी को हुकम दीजिये।

राजा अभयसिंह यह बात बिचारमैं लीनी।
अरु अधर्मी अनुज के बिगारबे की सारे रट्ठोरन कौं एकांत मैं सुनाय फोजैं जयसिंह पैं जंग कौं सज्जीभूत कीनी॥ ५॥

उसने कहा कि हे राजा! मैं अपने स्वामी से विमुख हुआ इसका अपराध क्षमा करें और मुझे अब अपना घर बिगाड़ने वाले कछवाहा राजा पर चढाई करने के लिए सेना सज्जित करने की आज्ञा दीजिए। राजा अभय सिंह ने इस बात पर विचार किया और अपने अनुज को सबक सिखाने (बिगाड़ने के अर्थ में) के लिए राजा ने अपने राठौड़ सामन्तों से एकान्त में सलाह की। इसके बाद राजा ने बखतसिंह को जयसिंह पर चढाई करने को फौज सज्जित करने की इजाजत प्रदान की।

अट्ठ नव सत्रह के साल मारवार मैं नर तुरंग न माये।
नव कोटी नाथ के सेना के संभार हजार ही भोग भोगीस के भ्रमाये।
बैंडे हत्थीन पैं लंबी लालरंग की पताका फरकानैं लगी।
मानौं रक्तबीज के समय कालिका जिव्हा कौं थरकानैं लगी ॥६ ॥

विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ अठानवें में मारवाड़ की भूमि पर वीर और घोड़े नहीं समाये। नव कोटी (मारवाड की नव कोठी मानी जाती है) के साथ की इस सेना के भार ने शेषनाग के हजार ही फणों को झुका दिया। बड़े-बड़े हाथियों की पीठ पर लगी लाल रंग की लंबी-लंबी पताकाएं फहरने लगीं मानो रक्तबीज नामक राक्षस के रक्त को पीने के लिए कालिका ने अपनी जिव्हा लपलपाई हो।

कैधौं पिंगल नागराज गरुड़ के आतंक बचिबे कौं बडे मात्राछंद की पताका बनाई।
कैधौं अंधक के ऊपर त्रिलोचन के त्रिसूल की तीखी नौंख न जरि आई।
कैधौं चंदन के दंड पैं पलेटा डारि रक्तराग राजमान नागराज फहरानौं।
कैधौं दुस्सासन के भुजदंड तैं सैरंध्री की साटी को समूह लहरानौं ॥७ ॥

या कि पिंगल नागराज ने गरुड़ के भय से स्वयं को बचाने के लिए जैसे बड़े मात्रा छंद की पताका (छन्दों के षोड़श कर्मों के अन्तर्गत एक कर्म पताका है) बनाई हो (जो समुद्र तट तक पहुंच गई हो और नागराज गरुड़ की कैद से भाग कर समुद्र में कूद कर बच गया हो।) अथवा अंधक राक्षस के ऊपर तानी हुई महादेव के त्रिशूल की तीखी नोक नजर आई हो या कि चन्दन के तने पर लिपटे हुए लाल रंग का सर्प नागराज शोभायमान हो रहा हो। पताकाऐं यों लहराने लगीं जैसे दुःशासन के भुजदंडों द्वारा खींची गई द्रौपदी की साड़ी का समूह लहराया हो।

कैधौं प्रचंड पवन के पात सौं होरी की झार बढनैं लगी।

अरु भद्दव की मेघमाला मैं इंद्रक रोहित चाप सौं लागि चंचला की चलाकी कढनैं लगी।

कैधौं सुमेरु के शृंग तैं संभुसेखरास्त्रवंती के सीधे स्त्रोत छूटे।

अरु कल्पकारस्कर के कंध तैं साखा के समूह फैलि फूटे ॥८ ॥

अथवा कि पवन के जोर से जलती हुई होली की ज्वालाएँ बढ़ने लगीं हों। या कि भाद्रपद माह की मेघघटाओं में इन्द्र के सीधे धनुष से टकरा कर बिजली की चालाक कौंध निकलने लगी हों। या कि सुमेरू पर्वत के शिखर पर बिराजमान शिवजी की जटा से गंगा की धाराऐं फूट निकली हों। राठौड़ सेना की ध्वजाऐं यों फहरने लगी जैसे कल्पतरु के मूल से शाखाओं के समूह फूट कर फैलने लगे हों।

असैं अनेक फतूहैं फीलन पैं फहराय छोनि छाई।

अरु राजा रट्ठौर जयसिंह कौं जीतिबे कौं जैपुर पैं चंड चतुरंगिनी चलाई।

या रीति सोदर बखतसिंह सहित राजा अभयसिंह बडी धक सौं मेरता नगर आय मुकाम दीनैं।

अरु बागन के बिलास की मरजी मानि मालाकारन नैं प्रसूनन के पूर नजरि कीनैं॥ ९ ॥

राठौड़ सेना के हाथियों की पीठ पर फहरती ध्वजाओं ने पृथ्वी को आच्छादित कर डाला। ऐसी चतुरंगिनी सेना जोधपुर के राजा अभयसिंह ने कछवाहा राजा जयसिंह पर विजय प्राप्त करने को जयपुर के मार्ग पर बढाई। ऐसी सेना के साथ प्रयाण करते हुए राजा अभयसिंह अपने सहोदर बखतसिंह के साथ मेड़ता नगर पहुँचा और यहाँ आ कर उन्होंने पड़ाव डाला। राजा ने यहाँ बाग में विलास करने की सोची जहाँ माली ने आ कर पुष्पों का ढेर नजर किया।

ते प्रसून राजा रट्ठोर अपनैं उमरावन कौं बखसीस बंटि दये।

अरु रट्ठोर उमराव अनेक अँडी बँडी तरह लपेटेन पैं धारत भये।

तहाँ आउवानगर के अधिराज चाँपाउत रट्ठोर कुसलसिंह राजा सौं प्रसून नाँहिं लीनौं।

अरु कारन के पूछैं अहंकार के उफान अपुब्ब उत्तर दीनौं ॥१० ॥

इन पुष्पों को राजा अभयसिंह ने अपने राठौड़ सामन्तों में बाँट दिया और राठौड़ वीर भी अपनी बाँकी पगड़ी में उन फूलों को लगाने लगे। इस अवसर पर आउवा नगर के जागीरदार चांपावत राठौड़ कुशलसिंह ने राजा द्वारा प्रदत्त पुष्प स्वीकार नहीं किया और राजा द्वारा कारण पूछे जाने पर अपने अहंकार के उफान में अपूर्व उत्तर दिया।

अज्ञान तैं आपकौं प्रसूनन के पसारिबे मैं लज्जा को लेस हू हमैं न जान्यौं परैं।

रट्ठोरन के पाघ अरु नासिका कछवाहन नैं छीनि लीनैं यातैं अज्ञान के प्रसून लैकैं कोन ठाम धारन करैं।

यहै सुनत ही राजा अभयसिंह को सोदरानुज नागोर को अधिराज रट्ठोर बखतसिंह खिसाय ऊठि बुल्ल्यो।

अरु मेरे मिलैं यह भई ऐसैं अग्रज सौं अक्खी अरु जुदो ही जुद्ध करिबे कौं जयसिंह पैं जनून सौं चंड चंद्रहास तुल्ल्यो ॥११ ॥

चांपावत ने कहा कि हे स्वामी। आपके इस तरह अज्ञानवश पुष्प बांटने पर मुझे पुष्प नहीं लेने में जरा भी लज्जा नजर नहीं आई क्योंकि राठौड़ों की पगडी और नाक तो कछवाहे छीन ले गए अब आप ही बताएँ हम आप से फूल ले कर उनका क्या करें? उन्हें कहाँ लगाएँ? यह सुनते ही राठौड़ राजा का छोटा भाई नागौर का स्वामी बखतसिंह लज्जित होता हुआ उठ खड़ा हुआ और अपने बड़े भाई से कहने लगा कि मेरे कछवाहा राजा से जा मिलने के कारण ही यह हुआ। यह कह कर उसने अलग से राजा जयसिंह से युद्ध करने को कुपित हो अपना बड़ा सा खड्ग म्यान से निकाल कर हवा में लहराया।

अरु या तरफ जोधपुर सौं फोजबंधी करि रट्ठोरन के चलायबे की सुनि बडे बिस्तार की बरूथिनी लै जयसिंह आगरा सौं कुंच कीनौं।

अरु जोधपुर की ही सीमा मैं जाय सज्जीभूत कै निसानन पैं
निहाव को हुकम दीनौं।

वा तरफ सौं रट्ठोर बखतसिंह अपनैं पाँच हजार पखरैतौं सैं बागैं
उठाई।

अरु धूली की धुंधि मैं धकाय संजोगी चक्क चक्कीन के चाह की
चौंप मिटाई॥ १२॥

इधर जोधपुर से राठौड सेना के प्रयाण की खबर पा कर कछवाहा राजा ने अपनी जंगी फौज के साथ आगरा से मुकाबले को कूच किया और जोधपुर राज्य की सीमा में आ कर अपनी सेना को सज्जित कर राजा जयसिंह ने नगारों पर निरंतर प्रहार कर बजाने का आदेश दिया। यह सुन कर उधर से बखतसिंह ने अपने पाँच हजार घुड़सवारों के साथ घोड़ों की लगामें उठाई (खींची) और इससे उड़ी धूल से छाई धुंध के कारण संयोगी चकवा-चकवी के बिछुड़ने की लाग मिटाई।

मकराकर मेखला मही महानाग के मस्तक के हजारे पैं नचन लगी।
अरु बाराह की तुंडा पैं मचक्कन की मार मचन लगी।

अतल बितल सुतल तलातल रसातल महातल पाताल सातौं ही
धरा के अधोभाग धूजि गये।

अरु भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक तपलोक
सत्यलोक सहित ऊपर के ओकबासी व्याकुल भये ॥१३॥

समुद्र की कटिमेखला धारण करने वाली पृथ्वी शेषनाग के हजार फणों पर नाच उठी और वाराह की थुथनी पर वीरों के प्रयाण की मचक की मार पडने लगी। अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल सातों ही धरा के अधोभाग (नीचे के लोक) काँप उठे। यही नहीं युद्ध की विभीषिका से पृथ्वी के ऊपर के लोकों यथा भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महालोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक के निवासी व्याकुल हो उठे।

ऐरावत पुंडरीक बामन कुमुद अंजन पुष्पदंत सार्वभौम सुप्रतीक
आठौं ही आसा के अनेकपन कंपि कैं कातर कूक करी।

अरु पुरुहूत पावक परेतपति पुण्यजन परंजन प्रभंजन पौलस्त्य पिनाकपाणि आठौं ही लोकपालन कौं लोक रक्षा मैं बिपत्ति बिसेस जानि परी।

लवणोद इक्षुरसोद मद्योद आज्योद क्षीरोद दधिमंडोद शुद्धोद सातौं ही समुद्रन क्षोभ पायो।

अरु अनूरु नैं अब्बन की अवछेपनी अँचि आदित्य कौं अरजी अक्खि अपुब्ब आहव आलोकन उछाह लगायो॥ १४॥

यही नहीं इस भयंकर युद्ध के भय से ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक आठों ही दिशाओं के दिग्गजों ने काँपते हुए कातर चिंघाड़ की और पुरुहुत, पावक, प्रेतपति, पुण्यजन, परंजन, प्रभंजन, पौलस्त्य और पिनाकपाणी नामक आठों ही लोकपालों को रक्षा में विशेष विपत्ति प्रतीत हुई। लवणोद, इक्षुरसोद, मद्योद, आज्योद, क्षीरोद, दधिमंडोद और शुद्धोद सातों ही समुद्र चलायमान हुए। उधर सूर्य के रथ के सारथी अनुरु ने घोड़ों की लगाम खींच कर सूर्य से निवेदन किया कि इस अपूर्व युद्ध को देखें। इस तरह उसने सूर्य के मन में युद्ध देखने का उछाह जगाया।

अष्टापद अद्रि सौं अतित्वर आय महानट मनोज्ञ मुंडमाला को मिलाप मान्यौं।

अरु डाकिनीन डिंडिम डमरूक डाहलादिकन पैं डंके डारि हल्लीसक नच्च तान्यौं।

गोदन के गूदन के ग्रास कौं गिद्धि गन गैन मैं गरुरी सौं गहकानैं।

अरु कराल कलहके कोलाहल कातरन के कलाप डहकानैं॥

सुमेरू पर्वत से शिव ने शीघ्र ही आ कर मनवांछित मूंडमाला मिलने की आशा जगाई और डाकिनियों ने अपने वाद्य यंत्र डिंडिम, डमरू और डाहल आदि बाजों पर डंके की चोट दे कर घूमर नृत्य रचाया। गिद्ध पक्षी मरे हुए योद्धाओं के मस्तक का भेजा और मींजी (गूदन) पाने की गरूरी में चहकते (प्रसन्न होते) आकाश में उड़ने लगे, वहीं इस विकराल युद्ध के कोलाहल मात्र से कायरों के समूह चौंक पड़े।

बावन बीर चउसट्ठि जोगिनीन के जाल जुद्ध की जलूसी

जोयबे कौं जारी भये।

अरु रट्ठोर कछ्वाह दोहू सेना के सरदार तत्काल तुमुलयुद्ध मैं तीखे तोर सौं तत्ते तुरंगन तोकिबे कौं तयारी भये।

राजा जयसिंह जंगी होदे के हत्थी पैं आरूढ होय संग्रामभूमि की सीमा के समीप अपनी अनीक के अंतर अतीव उच्छाहसौं उद्धत होय आनि खरो रह्यो।

अरु रचनाबिसेस सौं सेना को व्यूह बनाय बाँई दाहिनी दोऊ तरफ खवासी के हत्थी लगाय सूरबीरन कौं श्रवन करायबे कौं पंडितन कौं उच्चारन को आदेसो कह्यो॥ १६॥

बावन भैरव और चौंसठ योगिनियों के समूह युद्ध की शोभा देखने को आतुर हुए। वहीं राठौड़ और कछवाहा दोनों सेनाओं के वीर योद्धा अवकाश रहित इस तुमुल युद्ध में तत्काल अपने त्वरावाले घोडों की लगामें खींचने की तैयारी करने लगे। राजा जयसिंह अपनी सेना के एक बडे हाथी के होदे पर आरूढ हो रणभूमि की सीमा के समीप अपनी सेना के भीतर अतीव उत्साह का संचरण करने अनम्र हो कर आ डटा और अपनी सेना की अद्‌भुत व्यूहरचना कर बाएँ और दाएँ दोनों तरफ खवासी के हाथी तैनात कर उन पर आरूढ पंडितों को अपने शूरवीरों को सुनाने के लिए जोर से श्लोकों (दोहों) के उच्चारण का आदेश देने लगा।

सो आदेस सुनिकैं दोऊ खवासी के हत्थीन पैं पंडितराज रामायन लंकाकांड महाभारत द्रोनपर्ब कहन लगै।

अरु बैंडे बीरन कौं बंदीजन बीररस मैं बिरुदाय चतुरंग की चलाकी चहन लगे।

कछवाह की सेना को संभार झेलिबे कौं पुहवी हू वा समय समर्थ न भई।

अरु राजा जयसिंह ऐसे अनीक के उफान सौं रट्ठोरन पैं अर्ब उठायबे की आज्ञा दई॥ १७॥

राजा का आदेश पाते ही दोनों खवासी के हाथियों पर सवार पंडित राज रामायण के लंका कांड और महाभारत के द्रोणपर्व का ऊँचे स्वरों में पाठ करने लगे। वहीं भाट लोग मतवाले वीरों में वीर रस के संचार हेतु उनके

विरुद बोलने लगे ताकि वे चला कर युद्ध का आरम्भ कर सके। कछवाहा सेना के भार को वहन करने में उस समय तो पृथ्वी भी अपने आप को समर्थ नहीं पाने लगी। तभी कछवाहा राजा जयसिंह ने अपनी ऐसी सेना के असह्य जोश को देख कर उसे राठौड़ों की सेना पर अपने घोड़े बढ़ाने की आज्ञा दी।

जा सेना मैं साहिपुरा के अधिराज रानाउत उम्मेदसिंह से बाईस राजा सज्जीभूत खरे।

अरु ओरहू अधीन होय आहव पैं उमाहे अनेक सूरबीरन के संघट्ट अरे।

वा समय रट्ठोर बखतसिंह पाँच हजार पखरैतन सौं बडे बेग बाजी बीच डारे।

अरु द्वैलाख सेना के समुद्र मैं पार पूगिबे कौं पोत कैं प्रमान पधारे॥ १८॥

जिस कछवाहा सेना में शाहपुरा के राजा राणावत उम्मेदसिंह जैसे बाईस राजा सज्जित हो कर खड़े हों उनके अतिरिक्त और भी अनेक युद्ध लड़ने के उत्साही शूरवीरों के समूह डटे हुए हों। ऐसे माहोल में राठौड़ बखतसिंह ने अपने पाँच हजार सवारों के घोड़े पूरे वेग के साथ शत्रुसेना के मध्य झोंके। वे घोड़े भी दो लाख की सेना के समुद्र को पार करने को पोत की तरह बढ़े।

दोऊ कटकन के कंकटी क्रूर कालरूप बैंडे बीर कालिंग कुटिल कोसन तैं कालायस कराल करवालन के कलाप काढि कज्जल से कारे कुंजरन के कूट से कुंभन पैं झारन लगे॥

अरु धीर बीर धन्वदेसी बड़ी धक सौं धकाय धूप की धारा सौं धपाय पंचरंगी ध्वजादंडन कौं पारि डारन लगे॥

पर्बत सौं मयूर के माफिक कुंभीन के कलापन के कलापन तैं पताकान के पुंज उडन लगे॥

अरु गाढे गरूरी रट्ठोरन के गंजे गिरन लगे गजराज गुड़न लगे ॥१९॥

दोंनों सेनाओं के कवचधारी, क्रूर, काल रूप मतवाले वीर योद्धाओं ने

काले रंग की वक्र म्यानों से भयंकर काले लोहे से निर्मित विकराल तलवारो के समूह निकाले और काजल जैसे काले रंग वाले हाथियों के शिखररूपी कुंभस्थलों पर प्रहार करने लगे। वहीं मारवाड़ देश वाले धीर-वीर योद्धा पूरे जोश से बढ़ते हुए अपनी तलवार की धार को शत्रु रक्त से अघा कर कछवाहों की पचरंगी ध्वजाओं के दण्ड गिराने लगे। हाथियों के समूह के कलापों से कसे हुए पताकाओं के झुण्ड यों उड़ने लगे जैसे किसी पर्वत से मयूर उड़ते हैं। गाढ़े गरूर वाले राठौड़ों के मारे हुए हाथी रणभूमि में गिर कर गुड़कने लगे।

हयन की हयछटा कबंधन के कराल करवालन तैं कटि कटि
कलह मैं कूदते कबंधन के कंधन पैं फहरन ठहरन लगी।
कैधौं हयग्रीवावतार की हजारन प्रतिमा लास्य के लालित्य सौं
छाकि लहरन लगी॥२०॥
दोऊ चमू के मजबूत मगरूरी महाबीरन के मंडलाग्रन की मार
ऐसैं मचन लगी।
मानौं होलीके हुलास पामर पुरुखन के पानि तैं चच्चरी की डंडेहरि
रचन लगी तेगन की तराकन पोगरन के पलेटे देत सिंधुरन के
सुंडादंड झरन लगे मानौं जन्मेजय के जिह्मग जज्ञ मैं मंत्रन के मारे
पन्नगन के पूर परन लगे गिरे टोपन कौं ग्रहनकरि जोगिनीन कौं
जमाति बैंडैं बीरन के बपा सौं भरन लगी।
अरु लोहित की लाली मैं काली कूदि कूदि सोसनी रंग धारन
करन लगी॥ २१॥

शत्रु घोड़ों के कंधे राठौड़ वीरों की विकराल तलवारों के प्रहार से कट-कट कर उछलते हुए रणभूमि में कूद-फाँद करते कबंधों (बिना मस्तक वाले क्रियाशील शरीर) के कंधें पर जा ठहरने लगे। इससे ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया मानो रणभूमि में हयग्रीव अवतार की हजारों मूर्तियाँ नृत्य की सुन्दरता से भरी लहराने लगी हों। दोनों ओर की सेनाओं के कद्दावर मगरूर महावीरों के तलवारों की मारक प्रहारक क्षमता ऐसी नजर आने लगी मानो होली के हुलास में ग्रामीण लोगों के हाथ से फाग का डांडिया नृत्य आरंभ हुआ हो। हाथियों की सूंडे अपने अग्रभाग में पलटे खाती जो तलवारें

पकड़े हुए थीं उन सहित वीरों के प्रहारों से वे सूंडे कट कर भूमिं पर ऐसे गिरने लगीं मानो जन्मजय के सर्पयज्ञ में मंत्रों द्वारा आहूत सर्पों के समूह आ आ कर गिर रहे हों। रणभूमि में गिरे हुए योद्धाओं के टोपों शिरस्त्राण को योगिनियाँ का समूह उठा उठा कर उन्हें वीरों की गूद (चर्बी) से भरने लगी और रक्त की लालिमा में कालिका कूद-कूद कर अपने रंग को आसमानी (लाल रंग में काला रंग मिलाने से सोसनी अथवा आसमानी रंग बनता है) करने लगीं।

सच्चे सूरनके सीस महेस की मनोज्ञ मुंडमाला मैं गुफे गये तथापि देहु देहु यौं दकालन लगे॥

तिनको सोर सुनि अनेक अभ्रपिसाच आये मानि आतंक सौं भालचंद्र के प्रान चालन लगे॥

जावक के जंत्र जिम सोनित के स्त्रोत की छछक्कैं छूटि छूटि छोनीतल छायबे कौं परन लगी॥

तिनकौं साकिनीन की संहित आनन उबाय ऊपर ही झेलि झेलि पान करन लगी॥ २२॥

सच्चे शूरवीरों के कटे हुए सिर महादेव की मनवांछित मूंडमाला में पिरोये गए तब भी महादेव दे दे, की दकालें करने लगे जिसे सुन कर राहु आया। उधर राहु के आने से शिव के ललाट के चन्द्रमा के प्राण भय से चलायमान होने लगे। रणभूमि में फव्वारे (यंत्र) की तरह घायल वीरों के ताजा लगे घावों से रक्त की पिचकारियां रण आंगन को रक्तिम करने को छूटने लगी पर साकिनियों (देवी की दासियाँ) का समूह अपना मुँह खोले रक्त की पिचकारियों को ऊपर ही झेल कर पीने लगा।

कबंधन के कलाप मानौं अपने उत्तमांग की अंखिन सौं देखि देखि दाव दैबे कौं दोरन लगे॥

अरु पैने मंडलाग्र मारि मदमत्त मातंगन के मस्तक फोड़न लगे॥

सकंचुक पंच फन के पन्नग के प्रमान बाहुल समेत बाहुल बाहु तूटन लगे॥

अरु अवमर्द के आतंक कातरन के गाढ छूटन लगे॥ २३॥

कबंधों के समूह रणभूमि में कटे पड़े अपने मस्तकों की आंखों से

देख-देख कर दाँव देने को इधर-उधर भागने लगे और अपनी तलवारों के प्रहार कर शत्रु-पक्ष के हाथियों के मस्तक फोड़ने लगे। पांच फण वाले कंचुकी सहित सर्पों की तरह बाहुल (दस्ताना कवच) सहित बहुत सारे कटे हुए हाथ कट कर गिरने लगे । वहीं संकुलित युद्ध के भय से कायरें की दृढता छूटने लगी।

बाग टल्ला के इसारैं बेगवान बाजी जंगी होदन की बरब्बर झंप लैन लगे॥

अरु सादीन के सस्त्र संपात करि नष्ट नूर होय निसादीन के नैन नैन लगे॥

बंके कमनैत कठोर कोदंडन कौं गोसपेची की बरब्बर तानि तानि तीर मारन लगे॥

ते तीर कितेक आसमान मैं उड़ान लैकैं सरदकाल के सलभन की सोभा धारन लगे॥ २४॥

अपनी लगाम के हल्का सा झटका लगने पर (घोड़े को उड़ाने का संकेत मिलने पर) बेगवान घोड़े हाथियों के जंगी होदे की ऊंचाई तक उछाल लेने लगे। जिन पर सवार सवारों के शस्त्रों के प्रहार से काया की शोभा नष्ट होने पर निसादीन (हाथियों पर सवार लोग) के नयन शर्म से नीचे होने लगे। बांके धनुर्धर अपने मजबूत धनुषों की प्रत्यचाओं को कान तक खींच खींच कर तीर मारने लगे और ये तीर आकाश में विचरण करते हुए शरद ऋतु में उडती टिड्डियों की शोभा पाने लगे।

रट्ठोर बखतसिंह जयसिंह कौं जोयबे कौं घनैं हत्थीन के होदे हेरि डारे।

अरु द्वैलाख सेना के पार निकसि बचे वीरनसौं बैरी की बरूथिनी मैं बड़े वेग बाजी फेरि डारे॥

ऐसैं दूजावर पैलेन कौं पृतना मैं पैठत देखि राजा जयसिंह साहिपुरा के अधिराज राणाउत उम्मेदसिंह सौं राजा कहि बुल्लयो॥

अरु बखतसिंह कौं पै ने लोह चखायबे कौं सिद्धांत खुल्ल्यो ॥२५॥

उधर राठौड़ बखतसिंह ने कछवाहा राजा जयसिंह को ढूंढने की गरज से कई हाथियों के होदों को देख डाला और दो लाख की संख्या वाली शत्रु सेना के पार आ कर अपने शेष रहे योद्धाओं की सहायता से शत्रु सेना के मध्य तेज गति वाले अपने घोड़े फिरा डाले। इधर अपनी सेना में दो बार शत्रु को घुसते देख राजा जयसिंह कछवाहा ने शाहपुरा के स्वामी राणावत उम्मेदसिंह को राजा कह कर संबोधित किया और बखतसिंह को अपने तीखे शस्त्रों का मजा चखाने का कहा।

अग्गैं राजा न कहतो रु अब कह्यो यातैं साहिपुरा के अधीस राजा उम्मेदसिंह बड़ी उम्मेद सौं ओट होय कबंधन को लकाप झेल्यो।

अरु मारवनको मगरूर मारि खासी खग्गन को फाग खेल्यो॥

वा जुद्ध मैं राजा रट्ठोर बखतसिंह के च्यारि हजार सातसै पखैरत झरि परे।

अरु तीनसै पखैरतन सहित उम्मेदसिंह की असिबर सौं अछक छाकि मरिबोही मानि कछवाह के कादंबिनी रूप कटक सौं टरि परे॥२६॥

इससे पूर्व कछवाहा जयसिंह ने उसे राजा कह कर कभी संबोधित नहीं किया था पर अभी जब कहा तो इससे शाहपुरा का स्वामी राजा उम्मेदसिंह उत्साह से भर उठा। उसने ओट ले कर रणभूमि में राठौड़ों के समूह को अपने सम्मुख लिया और मारवाड़ियों के गरूर को खत्म कर बहुत देर तक तलवारों से फाग खेला। इस भिंड़त में नागौर के राजा राठौड़ बखतसिंह के चार हजार सात सौ योद्धा कट पड़े। शेष रहे अपने तीन सौ योद्धाओं के साथ यह समझ कर कि ये भी सभी उम्मेदसिंह की चलती श्रेष्ठ तलवार से तृप्त हो कर मारे जाएंगे। वह बखतसिंह कछवाहा राजा की मेघमाला जैसी सघन सेना से अपने शेष योद्धाओं के साथ टल गया।

या रीति पलायन होय रट्ठोर बखतसिंह नागोर को मार्ग लीनौं॥

अरु राजा अभयसिंहहू याही के बिगारिबे कौं आयोहो यातैं पच्छो जोधपुर कौं कुंच कीनौं॥

ऐसैं द्वै बेर कछवाह की सेना को समुद्र तरि तीजी बेर की ताकत न जानि बखतसिंह निकसि नागोर आयो॥

अरु जाके इष्ट गिरिधर परमेश्वर के हाथी तथा पातुरिखानैं सहित

डेरन कौं कछवाह को कटक लूटि लायो॥ २७॥

इस तरह राठौड़ बखतसिंह ने रणभूमि से पलायन कर नागौर का मार्ग लिया और राजा अभयसिंह जो उसे ही बिगाड़ने आया था उसने भी जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार दो बार कछवाहा सेना के पारावार को तैर कर पार करने के बाद तीसरी बार पार करने की ताकत नहीं ज़ान कर बखतसिंह रणभूमि से निकल कर नागौर आया और उसके इष्टदेव गिरिधर की मूर्ति, उसकी सवारी का हाथी और पातुरिखाने सहित बखतसिंह के शिविर को कछवाहा सेना ने लूट लिया।

तब वह बखतसिंह को इष्ट परमेश्वर तो जयसिंह नैं नाँहिं पठायो।

अरु पातुरिखानैं कौं पच्छो भेजि कग्गर मैं कातर कहि लिखायो।

कह्यो अंतहपुर हमारे भेट कीनौं परन्तु हमकौं तो अभुक्त के ग्राहक जानौं।

यातैं तुमारो तुम अबरि फेरि ढुंडाहर सौं लरिबे की न हौंस आनौं ॥२८॥

इसके बाद कछवाहा राजा ने बखतसिंह के इष्टदेव की मूर्ति तो वापस नहीं भेजी पर उसके पातुरिखाने को वापस भेज कर एक पत्र कायर के संबोधन के साथ लिखा जिसमें लिखा कि आपने जो अंतहपुर हमें भेंट किया वह तो हमारे काम का नहीं क्योंकि हम तो अभुक्त के ग्राहक हैं (अर्थात् जिसका भोग पहले किसी ने नहीं किया हो हम तो उसके उत्सुक हैं।) इसलिए अब अपना यह पातुरिखाना संभालो और भविष्य में फिर कभी ढूंढाड़ (जयपुर) से लड़ने की इच्छा मत करना।

या रीति अट्ठ नव सत्रह के साल राजा जयसिंह रट्ठोरनसों जंग जीति आयो।

अरु या जंग को जस साहिपुरा के अधिराज रानाउत राजा उम्मेदसिंह पायो।

या तरफ बेघम नगर रावराजा उम्मेदसिंह की माता चुंडाउति अपने निर्बाह को अवलंब बिचारत बरस तीन निकारे॥

अरु सुखसिंह महासिंहोत के सम्मत सौं अपने छोटे पुत्र दीपसिंह

के अर्थ रानाँ जगतसिंह सौं पटा लैबे कौं पुरोहित दयाराम कौं उदयपुर पठावन मैं कारन बिचारे॥ २१॥

इस प्रकार विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ अठानवे में कछवाहा राजा जयसिंह राठौड़ों से युद्ध जीत कर वापस लौटा। इस विजय का यश शाहपुरा के स्वामी राणावत राजा उम्मेदसिंह ने अर्जित किया। इधर बेगूं में बूंदी के राजा उम्मेदसिंह की माता चूंडावत रानी ने अपने निर्वाह का सहारा ढूंढते सोचते तीन वर्ष वहीं निकाले। तभी महासिंहोत हाड़ा सुखसिंह की सम्मति से रानी ने अपने छोटे बेटे दीपसिंह के लिए उदयपुर के महाराणा से जागीर का पट्टा प्राप्त करने को पुरोहित दयाराम को उदयपुर भेजने का विचार किया और संभावना पर मनन किया कि किस कारण से दीपसिंह को उदयपुर जागीर मिल सकती हैं।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ राणा जगतसिंह पुष्करस्नानसोदकदत्तभुग्विष्टित्यजन बखतसिंह स्वाऽग्रजमिलन सेनासज्जीकरण जयसिंह तदभिमुखाऽऽगमन मरुराजानुज कूर्मराज कलह-करण बखतसिंह पराभवनं तृतीयो मयूखः॥ आदितः॥२८४॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में महाराणा जगतसिंह का पुष्कर स्नान कर उदक वालों से ली जाने वाली बेगार छोड़ना, बखतसिंह का अपने बड़े भाई से मिलकर सेना सज्जित करना, कछवाहा राजा जयसिंह का मुकाबले को सम्मुख आना, मारवाड़ के राजा अभयसिंह के छोटे भाई बखतसिंह का जयसिंह की सेना से युद्ध करना और बखतसिंह की पराजय होने का तीसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ चौरासी मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

कहिय मास बाहुल बिसद, प्रतिपद दिन अति प्यार।
सत्त रूप इक्कत करिय, कोटानृप श्रियद्वार॥ १॥

बिठ्ठल अरु नवनीत प्रिय, बहुरि द्वारकानाथ।
गोकुल मथुरा धीस गिनि, गोकुलचंद्र सुगाथ॥ २॥

मदनमोहन हु सत्त मित, ए बल्लभकुल इष्ट।
कोटानृप इक्कत करिय, अप्पन दहन अरिष्ट॥ ३॥

खरचि दम्म इक लक्ख मित, उच्छव रचिय अपार।
रानहिं तत्र निमंत्रदै, बुल्ल्यो विहित विचार॥ ४॥

तँहँ रानाँ कोटेस प्रति, बिरचि नेहमय बैन।
माधव निज भानेज हित, अक्खी जैपुर लैन॥ ५॥

कोटेसहु तब रान प्रति, नय बच अक्खिय नून।
जब मरिहै जयसिंह तब, ऐहैं पहुमि दु हूँन॥ ६॥

बुंदिप मिलहिं उमेदकौं, माधवकौं जयनैर।
पै जोलग जयसिंह प्रभु, बदहु न तोलरा बैर॥ ७॥

हे राजा रामसिंह! कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन कोटा के राजा ने (अपने श्रीद्वार) नाथद्वारा में श्रीकृष्ण के सातों विग्रहों की इकट्ठी पूजा का आयोजन किया। इसके लिए राजा ने विठ्ठलनाथ, नवनीतप्रिय, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, मथुराधीश, मदनमोहन और अच्छी गाथा वाले गोकुलचंद्र सातों वल्लभसंप्रदाय के इष्टदेवों के विग्रह एक साथ स्थापित कर अपने पाप जलाने के लिऐ उनकी पूजा- अर्चना की योजना साकार की। इस पूजा के लिए राजा ने एक लाख रूपए खर्च कर भव्य उत्सव का आयोजन किया और इस अवसर पर अतिथि स्वरूप पूरे आदर के साथ निमंत्रण दे कर उदयपुर के महाराणा को बुलाया। जब दोनों राजा मिले और विचार-विमर्श हुआ। तब महाराणा ने कोटा के स्वामी से स्नेह भरे शब्दों में कहा कि हे हाड़ा राजा! मेरे भानजे माधवसिंह को जयपुर का राज मिल जाए तो कितना अच्छा हो! यह सुन कर कोटा के राजा ने नीतिपूर्वक कहा कि हे महाराणा! यह निश्चय मानिये कि कछवाहा राजा जयसिंह के मरने पर ही दोनों राजा बन सकते हैं। उम्मेदसिंह को बूंदी का और माधवसिंह को जयपुर का राज्य तब तक नहीं मिल सकता जब तक राजा जयसिंह जीवित हैं। इसलिए आप भी उसके जीवित रहते ऐसा न कहें।

कोटापति अरु रान दुव, किस रहस्य यह बत्त।
इहिं तुम जावहु उदयपुर, रान करहु अनुरत्त॥ ८॥

रानाउति पीहर ससुत, रहत कुम्मसों रुट्ठि।
इहिं रानहु कूरम अहित, बप्प बहिनि हित बुट्ठि॥ ९॥
अप्पन पुब्बहि कुम्म अरि, अब रानहु अरि आहि।
यातै कछु दीपहि पटा, दैहिं तु दैहिं सिराहि॥ १०॥
यह बिचारि निज बिप्र वह, दयाराम संबोधि।
पठयो मतिगति उदयपुर, समय देस हित सोधि॥ ११॥

कोटा के राजा ने उदयपुर के महाराणा से एकान्त में बातचीत की। और कहा कि आप आराम से उदयपुर जाएं और अच्छे समय की प्रतीक्षा करें। यही कारण था कि राजा जयसिंह की यह रानी अपने पुत्र माधवसिंह सहित मायका में अर्थात उदयपुर में रह रही थी और महाराणा भी अपने पिता की बहिन अर्थात् बूआ पर हित की वृष्टि करते हुए कछवाहा राजा जयसिंह से रुष्ट थे। इधर बेगूं में चूंडावत रानी ने यही सब सोच कर दयाराम से कहा कि देखें, हम पहले से ही कछवाहा राजा के शत्रु हैं और अब वह महाराणा के लिए भी शत्रुवत हैं इसलिए तू अब उदयपुर जा। वहाँ यदि महाराणा दीपसिंह के लिए कोई जागीर का पट्टा दें तो तू उनकी सराहना करना। ऐसा विचार कर चूंडावत रानी ने पुरोहित दयाराम को उदयपुर रवाना किया और उससे जाते हुए कहा कि देश और काल देख कर अपनी बुद्धि से उचित निर्णय लेना।

तानैं जाय रु तक्कयो, नगर सलूमरि नाह॥
जान्यों या बिनु होय नहिं, सब इहिं हत्थ सलाह॥१२॥
अक्खी केसरिसिंहसों, बत्त यहै तब बिप्र॥
बुंदीपति लघु पुत्र हित, पटा चहत हम छिप्र॥१३॥
यह उदंत कहि रानसों, बिहित दिवावहु बेग॥
हैं हड्डु बाल न गिनहु, कल्हि कसैंगे तेग॥१४॥
सुनि यह केसरिसिंह सठ, मानि लोभ निज मित्त॥
संभर पर उपकृत समय, चाह्यो नेह न चित्त॥१५॥

पुरोहित दयाराम ने उदयपुर पहुँचते ही इस कार्य में मदद मिलने की अपेक्षा से सलूंबर के स्वामी की ओर देखा। उसने सोचा कि इन दिनों वे ही राज्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं इनकी सहमति के बिना कुछ होने

वाला नहीं है। उसने सलूंबर के स्वामी रावत केसरीसिंह के पास जा कर अपने आने का अभिप्राय कहा, हम बूंदी के राजा बुधसिंह के छोटे पुत्र दीपसिंह के लिए शीघ्र ही उदयपुर की ओर से जागीर चाहते है। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप महाराणा तक हमारी यह प्रार्थना पहुँचा कर शीघ्र ही जागीर दिलवाएँ कि ये हाड़ा बच्चे आज बालक हैं तो क्या हुआ? कल ये बड़े होकर तलवार करेंगे। यह वृत्तान्त सुन कर दुष्ट केसरीसिंह ने लोभ को अपना मित्र मानते हुए चहुवान राजा पर उपकार कर सकने की इस बेला में भी उसने अपने चित्त में बंधु के प्रति दिखलाए जाने वाले स्नेह को स्थान नहीं दिया।

षट्पात्

इहिँ चुंडाउत अग्ग मुख्य भुव लोभ सोधि मन।
सजि दलेल सन साम प्रकट अहरि किंकर पन।
रोर नाम लघु सुवन अप्प बुंदियपुर रक्ख्यो।
पटा सहँस पैतीस लेरु अधिपति वह अक्ख्यो।
तिहिँ लोभ अबहु उलटी तकत यह न पुरोहित अहरिय।
बिनु समय कछु न हम सन बनहिँ कहि यहै रु उपहास किय॥१६॥

सलूंबर के इस चूंडावत ने पूर्व में अपने मन में भूमि पाने का लालच पाल कर बूंदी के सिंहासन पर बैठे दलेलसिंह के प्रति साम संधि प्रकट करते हुए स्वयं ने दास्य भाव ग्रहण किया था। उसने अपने रोड़सिंह नामक छोटे पुत्र को बूंदी भेजा और वहाँ से उसके लिए पेंतीस हजार रुपयों की आमदनी वाली जागीर प्राप्त की और इसके लिए उसने दलेलसिंह को अन्नदाता कहा। उसी लोभ को फिर से अपने मन में जगह देकर उसने पुरोहित दयाराम के प्रस्ताव का आदर नहीं किया और कहा कि अच्छे समय के बिना हमसे तुम्हारे लिए कुछ भी करते नहीं बनेगा। ऐसा कह कर केसरीसिंह ने उसका उपहास किया।

दोहा

दयाराम यह सुनि दरित, इच्छि अवर आलंब।
दोलतराम सु व्यास द्रुत, सोध्यो दुख गिरि संब॥१७॥

दयाराम पुरोहित केसरीसिंह का ऐसा निर्णय सुन कर भयभीत हो गया

उसने अब नया अवलंब तलाशने का इरादा किया। अन्ततः उसने दुःख के पहाड़ को तोड़ने वाले वज्र के समान व्यास दौलतराम को अपने आसरे के लिए खोजा।

षट्पात्

पहिलैही यह व्यास छोरि कोटा किहिं कारन,
रहिय रान ढिग आय मंत्र नय चतुर महामन।
तबहि पुरोहित ताहि मिलि रु अक्खिय उदंत सब,
समयो दैन सहाय आहि बुधसिंह सुतहिं अब।
बिनु धन निबाहि सकत न बिभव यातै रानहिं करि अर।
कछु देहु पटा लघु भ्रात हित गिनि बिपत्ति कट्टहु गरज॥१८॥

यह व्यास दौलतराम पहले कोटा में रहता था पर किसी कारणवश वह कोटा छोड़कर अब महाराणा की सेवा में रहने लगा था। ऐसे चतुर और महामना व्यास से जा कर पुरोहित दयाराम ने अपना व्यथा से भरा वृत्तान्त कहा और निवेदन किया कि राजा बुधासिंह के छोटे पुत्र की सहायता करने का यही समय है। आप देखें कि बिना धन और आय के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के लिए अपने रुतबे को बनाये रखना कठिन हो गया है इसलिए आप महाराणा से अर्ज कर उसके छोटे भाई दीपसिंह को छोटी सी जागीर का पट्टा दिलवाएँ। आप उसकी विपत्ति का निवारण करने की गरज से उसका थोड़ा हित सोचें।

दोहा

द्विजबर दोलतराम सुनि, अक्खिय रानहिं एह।
दीपसिंहहित दीजिये, कछुक पटा करि नेह॥ १९॥

सु सुनि रान जयसिंह को, चिंत्यो तहर प्रचंड।
अक्खी वह कूरम अतुल, दिय मरूपंहु जिहिं दंड॥ २०॥

कियैं अहित यह कुम्म को, बिगरहिं राज बिसाल।
यातैं तुम उनसौं कहहु, कट्टहु कछु बिधि काल॥ २१॥

यह उत्तर जगतेस दिय, सो सुनि कुमर प्रताप।
अक्खी घर आयेन कौं, क्यौं नहिं रक्खत आप॥२२॥

सत्रु कोहु आयें सदन, मानत अग्घ महत।
सुपहु अप्प अैसे समय, कूरम त्रास कहंत॥२३॥

द्विजश्रेष्ठ दौलतराम ने पूरी बात सुन समझ कर आगे महाराणा से निवेदन किया कि आप हाड़ा दीपसिंह के प्रति स्नेह दिखाते हुए उसे छोटी जागीर का पट्टा प्रदान करें! यह सुनकर महाराणा ने सर्व प्रथम कछवाहा राजा जयसिंह के प्रताप बाबत सोचा और कहा कि उस प्रचंड और अतुलनीय कछवाहा राजा ने मारवाड़ के राठौड़ राजा को अभी युध्द कर दण्डित किया है। अब यदि हम उसकी इच्छा के विरुद्ध जा कर तुम्हारा हित करने को उनका अहित करें तो हमारा यह विशाल राज्य नष्ट हो जाएगा । इसलिए उचित यह रहेगा कि आप उन्हीं से यह अनुरोध करें और जैसे तैसे अपना समय काटें! महाराणा जगतसिंह ने जब यह उत्तर दिया तो इसे सुन कर राजकुमार प्रतापसिंह को अच्छा नहीं लगा। वह बोला कि हे महाराणा! आप अपने घर आये हुए को अपनी शरण में क्यो नहीं रखते? शत्रु भी यदि हमारे घर आ जाये तो उसे हम महत्त्व देते हुए वांछित आदर देते हैं । आप ऐसे राजा होकर भी कछवाहा राजा के नाराज होने से उत्पन्न भय की बात कह रहे हैं! यह क्या है?

यह कहि कुमर प्रताप तब, पटा हजार पचीस।
जनकहुसों बरजोर बनि, किय तयार बखसीस॥ २४॥

नगर पटा बिच मुख्य लिखि, लाखोला अभिधान।
अवरहु वस्तु अनूप चउ, चित्त करिय पहुँचान॥ २५॥

इक कृपान हय खास इक, इक चामर बर बेस।
इक सिरूपेच उमेद हित, किय तयार कुमरेस॥ २६॥

सगताउत सुरतेस सुत, निडर उमेद सनाम।
किय तयार बुंदीस प्रति, बेघम भेजन काम॥ २७॥

ऐसा कह कर कुमार प्रतापसिंह ने तुरन्त पच्चीस हजार की जागीर का पट्टा तैयार करवाया और अपने पिता की आज्ञा के विरुद्ध जा कर बख्शीश करने की सोची। कुमार प्रतापसिंह ने जागीर के पट्टे में लाखेला नामक नगर लिखवाया और इसके अतिरिक्त चार अनुपम चीजें भेंट करने का भी उसका

मन किया। इन चीजों में एक कृपाण, एक खास घोड़ा एक सुन्दर चँवर और एक सिरपेच (आभूषण) थे जिन्हें राजा उम्मेदसिंह के लिए भिजवाने की कुमार ने तैयारी की। यहीं नहीं ये सारी भेंट की वस्तुएं बेगूं ले जाने के लिए कुमार प्रतापसिंह ने अपने विश्वासपात्र सेवक शक्तावत सूरतसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह को तैयार किया कि वह बेगूं जा कर ये सारी वस्तुएं बूंदी के राजा उम्मेदसिंह को पहुँचाए।

षट्पात्

यह कुमार अति जोर बढ्यो जुब्बन बय उब्बट।
अंगमि जनक अमात्य भेदि कति लिय मिलाय भट।
भिल्लाड़ा पुर भिन्न बंधि अप्पन रजधानी।
दखल राज बिच डारि रहैं उद्धत अभिमानी।
यह सोधि रान जगतेस अब पकरन पुत्तहिं किन्न मत।
तिन दिनन भूप बुंदीस को उदयनैर यह बिप्र गत ॥२८ ॥

हे राजा रामसिंह! यह राजकुमार प्रतापसिंह अपनी यौवनावस्था पा कर सिरजोर हो गया। उसने अपने पिता महाराणा के प्रधान सचिव को पकड़ कर कैद कर लिया और कुछ सामन्तों को अपने पक्ष में मिला लिया। भीलवाड़ा को उसने अपनी अलग राजधानी बना ली और वह उद्धत अभिमानी युवराज राज-काज में दखल देने लगा। उसकी ऐसी चाल-ढाल देख कर महाराणा जगतसिंह ने अपने पुत्र को कैद करने का मन बनाया। ये वे दिन थे जब बेगूं से बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने अपने पुरोहित दयाराम को उदयपुर भेजा था।

दोहा

नटत रान इम निंदि द्रुत, उद्धत कुमर प्रताप।
संभर हित स्वच्छंद तब, लिखि पटा रु किय छाप ॥२९ ॥

लखि सुत को यह मत्तपन, सोचि रान जगते।
हे भट निज अनुकूल ते, इक दिन बुल्लि असेस ॥३० ॥

कहिय कैद मम सुत करहु, अनय प्रचारत एह।
निज निज सुत या ढिग रहत, तिनहिं पठावहु गेह ॥३१ ॥

ग्रह बिचही एते दिनन, करत रह्यो अपकार।
पै हम बिनु पैले नृपन, हुब अब रक्खन हार॥३२॥

याते अब अज्ञान द्रुत, मेटहु गहि उमराव।
अरु जो नहिं तो अग्गि यह, सजलन दहन स्वभाव॥३३॥

उधर महाराणा को मना करते देख उद्धत कुमार प्रतापसिंह ने स्वतंत्र रूप से हाड़ा दीपसिंह के लिए पट्टा लिखवा कर उस पर राजकीय मुहर अंकित की। महाराणा जगतसिंह ने अपने पुत्र की यह मनमानी देखी तो मन में उपाय सोचा। महाराणा ने अपने अनुकूल सामन्तों को एक दिन बुलवाया। उनके आने पर उसने मंत्रणा कर कहा कि आप लोग मेरे पुत्र को कैद कर लें क्योंकि वह अनीति के प्रसार पर उतारू है। उमके पास और साथ जो आप लोगों के पुत्र रहते हैं आप लोगों को उन्हें अपनी जागीर में भेज देना चाहिए। ताकि वे उसका साथ न दे सकें। आप सभी सामन्तों से मेरा कहना है कि ऐसा कर आप कुमार के अज्ञान को दूर करने में सहायता करेंगे। यदि यह नहीं किया गया तो यह वह आग है जिसका स्वभाव ही जलना है।

दृढ़ प्रपंच इम रान करि, भटन सिक्ख दिय भाय।
इन निज पुत्र अनेक मिस, दिन्नैं घरन पठाय॥ ३४॥

सगताउत दारूनगर, पति सुरतेस स नाम।
स्वसुतहिं अक्खिय ताहु नैं, घर जावहु कछु काम॥ ३५॥

यह उम्मेदसिंह सु कुमर, जो किय बेघम त्यार।
ताहूसौं इम पितु कहिय, जावहु गेह कुमार॥ ३६॥

इहिं कुमार मतिबल कछुक, जान्यौं रान प्रपंच।
अक्खिय स्वामि प्रताप अब, जानि न छोरौं रंच॥ ३७॥

तदनंतर इक दिन यहै, रान कुमार प्रताप।
अलपसत्य रहि जनक की, परिखद पत्तो आप॥ ३८॥

महाराणा जगतसिंह ने इस तरह अपने सामन्तों के साथ मंत्रणा कर अपनी दृढ़ योजना बनाई और उसके अनुरूप सामन्तों ने भी अपने-अपने पुत्रों को घर अर्थात उदयपुर से बाहर अपनी जागीर में भेज दिया। दारू नामक नगर का स्वामी सूरतसिंह शक्तावत था उसने भी अपने पुत्र से कहा कि बेटा

गाँव चले जाओ! उसका पुत्र वही उम्मेदसिंह शक्तावत था जिसे कुमार प्रतापसिंह ने अपना विश्वासपात्र सेवक मान कर बेगूं भेजने के लिए चुना था। उसी से उसके पिता ने कहा कि उदयपुर छोड़ कर अपने घर (गाँव) चले जाओ! इस उम्मेदसिंह शक्तावत ने अपनी बुद्धि के बल से महाराणा की अग्रिम योजना को भाँप लिया था इसलिए उसने अपने पिता को उत्तर दिया कि मेरा असली स्वामी तो राजकुमार प्रतापसिंह है मैं उसे छोड़कर कहीं नहीं जाने वाला। इसके बाद एक दिन कुमार प्रतापसिंह अपने थोड़े से साथ के सेवकों सहित अपने पिता महाराणा की राज सभा में गया।

उपबन कृष्णबिलास नृप, बैठो गहन उपाय।
इहिँ बिच कुमर प्रताप यह, डोढी पहुंच्यो आय॥३९॥

प्रतिहारन अक्खिय अरज, लीजै दुव चर पास।
लै जानन अवर न हुकम, चतुर अप्प नय चास॥४०॥

निज सत्थहिं तँहँ रक्खि तब, लै अनुचर दुव संग।
परिखद पत्त प्रताप तँहँ, रानहिं नमि रुचि रंग॥४१॥

अप्प मिसल बैठिय उचित, रचि सैंन रु तब रान।
सुभट च्यारि निज पुत्र सिर, डारिय भरत उडान॥४२॥

नाथनाम लघु भ्रात निज, पुर बग्घोर अधीस।
रानाउत भारत बहुरि, नगर जाजपुर ईस॥४३॥

चुंडाउत पुर देवगढ़, पति जसवंत स एव।
देलवाड़पुर पति बहुरि, झल्ला राघवदेव॥४४॥

इस समय महाराणा जगतसिंह कृष्णविलास नामक महल के उपवन में अपने पुत्र को पकड़ने का उपाय करता बैठा था इसी बीच कुमार प्रतापसिंह महल की ड्योढ़ी पर आया। द्वारपालों ने निवेदन किया कि हे कुमार! आप अपने साथ दो सेवक भीतर ले जा सकते हैं क्योंकि दूसरों को भीतर ले जाने का हुक्म नहीं है फिर आप तो नीति की खबर रखने वाले हैं। तब कुमाार अपने साथ वाले सेवकों को यहीं ड्योढी पर छोड़ कर मात्र दो अनुचरों के साथ भीतर गया। उसने राजसभा पहुँच कर महाराणा से अदब के साथ झुक कर सलाम किया। ऐसा करने के बाद वह अपनी पंक्ति में जा बैठा तभी

महाराणा ने अपनी योजनानुसार संकेत किया जिसे देख कर महाराणा के चार सामन्त उठे। महाराणा ने उन्हें लावा पक्षी पर बाज की तरह अपने कुमार पर झपट पड़ने का अगला संकेत किया। इन झपटने वालों में एक तो महाराणा का छोटा भाई नाथुसिंह था जो बागोर का स्वामी था। दूसरा राणावत भारतसिंह था जो जहाजपुर का जागीरदार था। इसी तरह तीसरा चूंडावत जसवंतसिंह था जो देवगढ़ का रावत था और चौथा देलवाड़ा का राज राणा झाला राघवदेव था।

ए भट रान अधीस की, सैंन होत छल सोर।
चंड परे प्रतिमल्ल चउ, जानि कुमर अति जोर॥ ४५॥

तिनके परत प्रताप तब, जनक गहन मत जानि।
हो कितेक पै पितु हुकम, कहि छोरिय असि पानि॥ ४६॥

इन तथापि मूढन चउन, गहि दिखाय बल दिट्ठि।
नाथसिंह तस बाहु गहि, जानु मचक दिय पिट्ठि॥ ४७॥

कहिय पटा फैंकत कुमर, मल्लन लरत उमाहि।
अज्ज कहाँ वह बल गयउ, होत निबल को चाहि॥ ४८॥

कहि इम कुमरहिं कैद किय, चउ भट कुबच प्रचार।
सक नव अंक सहस्य गत, बिसद तीज रविवार ॥ ४९॥

ये चारों सामन्त महाराणा का संकेत होते ही छलपुर्वक आगे बढे और चारों प्रचण्ड मल्ल की तरह कुमार पर झपटे जो स्वयं बहुत ताकतवर था। इनके ऊपर पड़ते ही कुमार प्रतापसिंह ने सोचा कि यह मेरे पिता की इच्छा से हुआ है। वे चाहे कितने भी होते पर कुमार ने पिता की आज्ञा का आदर करते हुए अपने हाथ की तलवार को नीचे डाल दिया । पर इन चारों मूढों ने कुमार को पकड़ कर अपने बल का प्रदर्शन किया। इनमें से नाथूसिंह ने कुमार के बाहु पकड़े और तुरन्त कुमार की पीठ पर अपने घुटने का प्रहार किया फिर कहा कि हे कुमार! तुम तो हमेशा मल्लों से उत्साहपूर्वक कुश्ती लड़ते थे। दाँव लगााते थे पर आज तुम्हारा बल कहाँ गायब हो गया? क्योंकि चाह कर कौन निर्बल बनता है। ऐसा कह कर उन्होंने कुमार प्रतापसिंह को कैद कर लिया और चारों सामन्तों ने अपने कुमार को कई अपशब्द कहे। विक्रम संवत् के

वर्ष सत्रह सौ निन्यानवे के पोष माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि तदनुसार रविवार के दिन यह घटना हुई।

अग्गैं अनुचित कुमर करि, इहाँ उचित अवधान।
पकरन जानत पहिल किय, खग्ग रु खेटक हान।।५०।।

गहत अचानक इम कुमर, फुट्टिग हक्क अपार।
डोढीपर निज सत्थ सुनि, भज्यो विकल भय भार।।५१।।

कुमर जु कुमर तयार किय, बेघम भेजन वीर।
सगताउत उम्मेद सो, धप्पो सभा बिच धीर।।५२।।

असि झारत मारत अरिन, रान लियउ नियराय।
जिहिं पिक्खित तिहिं बपु जुगल, करत खंड अतिकाय।।५३।।

ताहीको काका तबहि पिल्ल्यो रान प्रचारि।
स नति पुब्ब इक बार सहि, मरद सोहु लिय मारि।।५४।।

कुमार ने पूर्वकाल में भले ही कोई अनुचित कर्म किये हो पर यहाँ पर एक सावधानी बरती वह यह कि अपने पकड़ने की बात जानते हुए भी उसने अपनी ढाल और तलवार को त्याग दिया। इस तरह कुमार को अचानक कैद किये जाने की हाक (हल्ला) फूटी जिसे ड्योढी पर खड़े कुमार के साथियों ने सुना तो वे भयभीत हो कर भाग खड़े हुए पर दारू के जिस कुमार को राजकुमार प्रतापसिंह ने बेगूं भेजने के लिए तैयार किया था। वह उम्मेदसिंह शक्तावत ड्योढी से दौड़ता हुआ राजसभा के मध्य आ खड़ा हुआ और अपनी तलवार के प्रहारों से शत्रुओं को गिराते हुए वह महाराणा के समीप जा पहुँचा। उसका सामना करने महाराणा जिसको भेजता वह उम्मेदसिंह उसके शरीर के टुकड़े कर डालता । तभी महाराणा ने उसके स्वयं के काका को सामना करने भेजा तब उम्मेदसिंह ने नम्रतापूर्वक पहले अपने काका का वार सहा पर अगले ही क्षण अपने प्रहार से उसने काका को मार गिराया।

सुरतसिंह तब तस जनक, रोकन पिल्ल्यो रान।
तिहिं लखि कुमर उमेद तजि, असिबर नमिय अमान।।५५।।

जानि धरम इहिं असि तजिय, इहिं मूरख किय एह।
नमत बेर निज पुत्र सिर, कट्ट्यो नूतन नेह।। ५६।।

कुमर प्रताप सु कैद करि, इम खिजि जनक अमान।
पकरन वारे चउन कौं, मुख्य सचिव किय रान॥ ५७॥

महाराणा ने तब अन्ततः उम्मेदसिंह शक्तावत के अपने पिता सूरतसिंह को सामना करने भेजा। कुमार उम्मेदसिंह ने अपने पिता को सामने आते देखते ही अपनी तलवार फेंक दी और सिर नवा कर झुक गया। अपना धर्म जान कर उस कुमार ने तो अपनी तलवार डाल दी पर उस मूर्ख पिता सूरतसिंह ने अपने पुत्र के झुकते समय नूतन स्नेह का प्रदर्शन करते हुए उसका सिर काट डाला। क्रोध करते हुए महाराणा ने अपने पुत्र प्रतापसिंह को कैद में डालने का हुक्म दिया वहीं उसको पकड़ने वाले अपने चारों सामन्तों को महाराणा ने अपने प्रधान सचिव बनाए।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे सप्तम राशौ कोटा-पतिदुर्जनशल्यश्रीद्वारगमनसप्त स्वरूपैकत्रकरणबुन्दीन्द्रपुरो हित दया-रामोदयपुर प्रेषण दीपसिंहार्थ पटोपनामक निर्वाह वसुप्रार्थन तत्सलूमरी-शकेसरसिंहाऽपहसनव्यासदोलतरामवाक्सहायविरचन राणा जगतौसिंहा-ऽनङ्गीकरणतद्राजकुमार प्रतापसिंहस्वीकरण पटावे घमप्रेषण बिचार-णाद्यौद्धत्यधारणतद्राणाकुमारकाराक्षेपणतद्भटोम्मेदसिंह कुमाररण-मरणराणासोदरनाथादिसचिवचतुष्टयी करणं चतुर्थो मयूखः ॥४॥ आदितः ॥२८५॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की सप्तम राशि में कोटा के पति दुर्जनसाल का नाथद्वारा में जाना, सात स्वरूपों को इकट्ठा करना, बून्दी के राजा का पुरोहित दयाराम को उदयपुर भेजना, दीपसिंह के अर्थ पटा है उपनाम जिसका ऐसे निर्वाह (खरच निबाहने) की प्रार्थना करना, उसकी सलूमर के पति केसरीसिंह का हँसी करना, व्यास दौलतराम की सहायता करने की प्रार्थना को राणा जगतसिंह का अस्वीकार करना, उसको राणा के राजकुमार प्रतापसिंह का स्वीकार करके पट्टा बेघम भेजने का विचार करना, आदि उद्धतता धारण करने से राणा का उस कुमार को कैद करना, उस कुमार के वीर कुमार उम्मेदसिंह का युद्ध में मरना, राणा का सगे भाई नाथसिंह आदि चारों को सचिव करने का चौथा मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ पचासी मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

चूलिकाआला

नृप उमेद इत व्याह किय, मालव धर पुर गर्गराट पति।
झल्ल दलपति की सुता, चिमनकुमरि अभिधान महामति॥१॥

सक नव नव सत्रहसमा, नवमी राध बलच्छ लगन किय।
गुन बासर रहि स्वसुर ग्रह, बेघम आनि मिलान बहुरि दिय॥२॥

प्रतिदिन बुंदिय लैन पटु, बढत भूप उम्मेद बलापति।
सावन गत आसार कै, कै सित पक्खग द्वैज कलापति॥३॥

हे राजा रामसिंह! इधर बेगूं से जाकर राजा उम्मेदसिंह ने मालवा के गर्गराटपुर (गरोठ) के जागीरदार झाला दलपतसिंह की बुद्धिमान पुत्री चिमन कुमारी से विवाह रचाया। विक्रम संवत के वर्ष सत्रह सौ निन्नानवे के वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के लग्न (मुहूर्त) पर शादी हुई। तीन दिन तक श्वसुर के घर ठहर कर राजा उम्मेदसिंह ने वापस बेगूं आ कर पड़ाव डाला। ये वे दिन थे जब राजा उम्मेदसिंह दिन प्रतिदिन बूंदी को वापस अपने अधिकार में करने की सोचता बड़ा हो रहा था। जैसे श्रावण माह की मेघधारा बढ़ती है वह उसी तरह बढने लगा जैसे शुक्ल पक्ष में दूज का चाँद अपनी कलाएँ बढाता हुआ बढता है।

सोरठा

सुनि बुंदिय यह सोर, चूक दलेल बिचारिकै।
चूंडाउत वह रोर, मारन बेघम मुक्कलिय॥४॥

भोपसिंह तस संग, हरदाउत हड्डा दियउ।
जो पति धोवड़ द्रंग, सालम सुत हितकर कुटिल॥५॥

दोउन बेघम आय, द्विरद मत्त निज छोरि दिय।
जान्यौं कोतुक पाय, सिसु उमेद अैहै लखन॥६॥

तबहि दगा बल ताहि, मारि रु बुंदिय मुक्कलहिं।
इम सठ उभय उमाहि, पहर तीन गज सँग फिरिय॥७॥

सो सुनि लखन न आय, सानुकूल नृपकी नियति।
छन्न गये दुख छाय, मुह बिगारि दुव सठ दुमन॥८॥

राजा उम्मेदसिंह की दिन-प्रतिदिन बढ़ने की सुन कर बूंदी के दलेलसिंह ने छलपूर्वक उसे मारने की योजना बनाई। उसने इस काम के लिए सलूंबर के कुमार रोड़सिंह की सहायता ले कर उसे बेगूं भेजा। दलेलसिंह ने रोड़सिंह के साथ वांछित सहायता करने के लिए हरदावत कुल के हाड़ा भोपसिंह को साथ भेजा जो धोवड़ा नगर का स्वामी था और सालमसिंह के पुत्र दलेलसिंह का हित सोचने वाला था। दोनों ने वहाँ आकर अपने मदमस्त हाथी को वहाँ छोड़ दिया और उन्होंने सोचा कि शायद इस हाथी द्वारा उत्पन्न कौतुक को देखने के लिए वह बालक उम्मेदसिंह घर से बाहर आएगा तभी हम धोखे से उसे मार डालेंगे और बूंदी उसका शव भेज देगें। इस तरह दोनों दुष्ट तीन प्रहर तक अपने हाथी के साथ बेगूं में घुमें। पर राजा उम्मेदसिंह का भाग्य अच्छा था कि वह हाथी का सुन कर भी घर से बाहर नहीं निकला। अन्ततः दोनों दुष्ट मुँह बिगाड़ते हुए दुखी ह्रदय से वापस चुपचाप बूंदी चले गए।

दोहा

जैपुर नृप जयसिंह इत, जित्ति मरुस्थल जुद्ध।
अद्वितीय अप्पहिँ समुझि, मान गहिय बनि मुद्ध॥९॥

मद्य पान हित गिनि मुदित, निस दिन रचत अनंत।
निधुवन रुचि धप्पत नहिंन, दम हुव आगम अंत॥१०॥

निस्रु रु दीह आसव नसा, रक्खत ह्रदय अरुढ।
छोरत नहि कामुक छगल, मंजा नारिन मूढ॥११॥

अैसी बिधि अवसान के, आगम हुव कछवाह।
राजामल सिर राज्य की, रक्खी निबहन राह॥१२॥

बैदन सन ओषधि बलन, अधिक ठानि आहार।
उभय घटी ओदन अदन बढ्यो कुम्भ इहिँ बार॥१३॥

इधर जयपुर का कछवाहा राजा राठौड़ों से हुआ युद्ध जीतने के बाद (वह) मूर्ख अहंकारी बन गया। वह अपने आप को अद्वितीय समझने लगा। वह मद्यपान को अच्छा समझ कर दिन रात शराब के नशे में मस्त रहने लगा यही नही वह अपने अंत समय के आगमन से पुर्व काम-वासना में लिप्त हो

कर मैथुन करता अघाता न था। रात और दिन शराब के नशे में डूबा रहता। उसके हृदय पर शराब का ही अखंड अधिकार हो चला और वासना के अधिकार में लिप्त वह कामुक बकरे की तरह स्त्रियों रूपी बकरियों को छोड़ता ही नहीं था। इस स्थिति में कछवाहा राजा का अन्त निकट आया। उसकी जगह पूरे राज्य की देखभाल राजामल नामक प्रधान करने लगा। राजा जयसिंह राज्य के उत्तम वैद्यों से तरह-तरह की बलवर्द्धक औषधियां लेने लगा। इसके कारण उसकी भूख और आहार दोनों बढ़ गए स्थिति यह हो गई कि वह प्रत्येक दो घड़ी में आहार लेने लगा।

आगम सकल अनंग के, सठ एकांत सुधाय।
मोहन मेहन वृद्धि मुख, सेय दवा दरसाय॥१४॥
बरज्यो जदपि चिकित्सकन, मन्यो तदपि न मंद।
आसथल अविरत अतुल, आसव सुरत अनंद॥१५॥
राजामल इक दिन कहिय, क्यों नृप करत कुजोग।
अक्खी तुम छत हम अभय, भुग्गत अब यह भोग॥१६॥
हुव प्रमत्त जयसिंह इम, मन लगि मोहन मद्य।
अवर कोन मम सम यहै, सोधि गरब गहि सद्य॥१७॥

उसके सारे शास्त्र जैसे कामदेव के शास्त्र से शुरू होने लगे और उसे एकान्त अधिक रास आने लगा जहाँ वह नानाविध औषधियों के सेवन के सहारे रति समय और लिंग की वृद्धि हेतु उपक्रम कर सके। उसे चिकित्सकों (वैद्यों) ने मना किया पर वह मूर्ख ऐसी औषधियों के सेवन से बाज नहीं आया। वह तो दिन रात शराब और मैथुन के आनंद की आराधना में संलग्न रहने लगा। ऐसी परिस्थिति में उसके प्रधान राजामल ने एक दिन राजा से कहा कि योग की जगह आप यह कुयोग क्यों करते हैं? इस पर राजा ने जवाब दिया कि राजकाज के लिए जब तुम्हारे जैसा व्यक्ति मेरे पास विद्यमान है तो मैं भोग-विलास क्यों न करूं? अर्थात तुम राज करो और मुझे भोग का आनंद लेने दो। इस तरह प्रमत्त होकर कछवाहा राजा मद्यपान और मैथुन में मन रमाये रहा, यह सोचता हुआ कि इस समय मेरी बराबरी करने वाला अन्य कौन राजा है? वह इन कुकार्यों के अतिरिक्त अहंकार में भी डूब गया।

रोला

इकदिन आसव मत्त होय कछवाह मूढ मति।
उदयनैर लिखवाय पत्र पठयो रानाँ प्रति।
मम आदेस अमोघ चतुर जगतेस बिचारहु।
बेघम जे बुधसिंह नंद निज देस निकारहु॥१८॥

सुनि यह कूरम कथित रान जगतेस भीरू भनि।
दिय बेघम आदेस देस मम तजहु भूप भनि।
यह सुनि भूप उमेदसिंह अरु दीप भ्रात दुव।
कछु दिन कठिन निकारि थरिय धरलैन चित्त ध्रुव॥१९॥

एक दिन शराब के नशे में धुत्त होकर उस मूढमति कछवाहा राजा ने उदयपुर के महाराणा को एक पत्र लिखवाया और दूत के हाथों उदयपुर भिजवाया। जिसमें लिखा था कि मेरे आदेश को अमोघ मान कर ओ चतुर महाराणा जगतसिंह! इसकी पालना करना! आदेश था कि तुम्हारे राज के स्थान बेगूं में जो बुधसिंह का पुत्र रह रहा है उसे तुरन्त अपने देश मेवाड़ से निकाल बाहर करो! कछवाहा राजा का यह निर्देश पा कर महाराणा जगतसिंह कायर बन गया और तुरन्त बेगूं रावत को आदेश भेजा कि उस हाड़ा राजा उम्मेदसिंह से कहो कि वह मेवाड़ छोड़ दे। ऐसा आदेश सुन कर राजा उम्मेदसिंह और उसके छोटे भाई दीपसिंह दोनों ने थोड़े दिन जैसे-तैसे वहाँ गुजारे और मन ही मन इस बात का ध्रुव निश्चय किया कि कुछ भी हो हमें अपनी भूमि वापस प्राप्त करनी चाहिए।

सक ख अभ्र बसु सोम असित पंचमि आसाढ गत।
कोटा जनपद क्रमिय छोरि बेघम रन उद्धत।
सुनि यह दुज्जनसल्ल भीरु कूरम भय भाखिय।
निज ढिग बुल्लिय नाँहिं दुहुँन मधुकरगढ़ राखिय॥२०॥

रहिय तत्थ चउ मास भूप उम्मेद अनुज सह।
मृगयादिक कोतुक अनेक रचि बीर महा मह।
घाट रुक्कि गिर घेरि झुंड तुपकन नृप झारे।
अति प्रगल्भ आयुधन सद्धि मृगपति बहु मारे॥२१॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ के आषाढ माह के कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि के दिन बेगूं छोड़कर राजा उम्मेदसिंह ने कोटा की दिशा में प्रयाण किया। राजा उम्मेदसिंह के इस तरह बेगूं से कोटा आने की खबर पा कर हाड़ा राजा दुर्जनसाल ने कछवाहा राजा जयसिंह के भय से कहा कि उन्हें मेरे पास कोटा मत आने दो! उन्हें मधुकरगढ में रख लो और ऐसा ही किया गया। वहाँ उम्मेदसिंह और उसका छोटा भाई दीपसिंह चार माह तक रहे। इस अवधि में वे शिकार खेलने जाते और वीरता के उत्सव मनाते। पहाड़ को घेर कर घाटी को अवरूद्ध करते हुए शस्त्रविद्या में निष्णात उन दोनों वीरों ने अपनी बन्दूकों से कई शेरों का शिकार किया।

रुचिरा

इत कूरम नृप रोग बिबसि हुव देह बिकसि कृमि पुंज परे।
मास बहुत यह दुक्ख सह्यो अरु गूद पलल तनु बिकृत गरे।
इक अंगुल परिमित लंबे कृमि स्याम लपन सब देह धसे।
त्वच लोहित पल मेद न खावत अस्थिन अंतर बिबिध बसे॥२२॥

इधर जयपुर में कछवाहा राजा जयसिंह अपने रोग से बेबस हो गया उसकी देह में कई प्रकार के कीड़ों के समूह आ जमें। उसे कई माह तक यह पीड़ा रही। उसके शरीर से चरबी, मांस आदि सड़ (गल) कर गिरने लगा। थोड़े समय बाद तो उनकी पूरी देह में एक अंगुल के प्रमाण वाले काले काले मुँह वाले कीड़े फैल गए। वे त्वचा, रक्त, मांसपेशियाँ और चर्बी को नहीं खाते थे बल्कि कीड़े उसकी अस्थियों में प्रवेश कर गए।

भस्म तलप सोवन दुख भजिन नैक न पीड़ित निंद लहैं॥
जिम बिकसत तरबूज पक्यो इम बिग्रह रंचन गाढ गहैं॥
सुप्तहि मूत्र तथा मल मोचन निज कृत दुरितन चिंति करैं॥
अनुज बिजय तिय मात सुतादिक मारिय ते सब दिट्ठि परै॥२३॥

अन्त में राजा को भस्म की शैय्या पर शयन करना पड़ा। ऐसी पीड़ा में तब नींद भी कहाँ? हाय-हाय करते समय गुजरता। विकसित तरबूज की तरह उनका शरीर हो गया। वह राजा सोया हुआ ही मल-मूत्र का त्याग करता

था और अपने किये हुए पापों का स्मरण करता रहता। इसने अपने छोटे भाई विजयसिंह, पत्नी, माता और पुत्र आदि को मारा था, वे अन्त समय में राजा की आँखों में घूमते रहते।

इम अति कष्ट बिकल कूरम नृप संचित अघ भर भूरि भज्यो।
खख वसु ससि बिक्रम सक इस गत बिसद चतुर्दसि देहतज्यो।
हुव जैपुर घर घर हाहारव अंतहपुर अति त्रास परयो।
ईस्वरिसिंह तबहि पट्टप सुत देखि निगम बिधि दाह करयो॥२४॥

इस तरह अपने संचय किये हुए पाप के भार को पूरा-पूरा भोगता हुआ वह कछवाहा राजा अन्त समय में शारीरिक पीड़ा से व्याकुल हो गया। इस तरह कष्ट भोगते हुए विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ के आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन अपनी देह छोड़ गया। जयपुर के घर-घर में अपने स्वामी के मरने के शोक में हाहाकार मच गया। अंतहपुर में भी इस त्रासद् घटना से दुःख छा गया। उसके पाटवी पुत्र ईश्वरीसिंह ने राजा की मृतदेह का वेदोक्त रीति से पूरे विधि-विधानपूर्वक दाह संस्कार सम्पन्न किया।

दोहा

इम उमेद नृप भाग बल, तजिग देह कछवाह।
यह उदंत दिस दिस उडिग, हुव अरि घरन उछाह॥२५॥
यह कथ सुनि कोटा अधिप, खुसिय मन्नि तजि खेद।
मधुकरगढ तैं अनुज जुत, बुल्ल्यो निकट उमेद॥२६॥
मधुकरगढ सामंत हर, हड्डा हरजन नाम।
किल्लापति कोटेस को, जु हो भुजिष्या जाम॥२७॥
मुख्य सचिव बुंदीसको, कोटापति वह किन्न।
कोटा आय उमेद नृप, हयन हेर चउ लिन्न॥२८॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के भाग्य से इस प्रकार कछवाहा राजा ने देह त्याग दी। राजा के देहावसान की खबर चारों ओर फैल गई जिसे सुन कर उसके शत्रुओं के घर में उत्सव जैसा उछाह छा गया। इस वृत्तान्त को जब कोटा के राजा ने सुना तो उसने खेद प्रकट करने की जगह खुशी मनाई और

उसने तुरन्त मधुकरगढ़ से छोटे भाई सहित हाड़ा उम्मेदसिंह को बुला भेजा। मधुकरगढ़ में उस समय सांवतसिंह का वंशज (पासवान स्त्री से जन्मा) हरजनसिंह हाड़ा था जो कोटा के राजा का किलेदार था कोटा के राजा ने उसे बुला कर तुरन्त प्रभाव से बूंदी के राजा का प्रधान सचिव नियुक्त किया। वहीं राजा उम्मेदसिंह ने भी कोटा आ कर अपने लिऐ चार अच्छी नस्ल के घोड़े चुने।

लेत हयन कोटेस लखि, अक्खी भूपहिं एहु।
तुम हित हम रक्खन कटक, लग्गैं खरच सु देहु॥२९॥

सुनि नृप निज भूखन दये, मोल लक्ख दुव दम्म।
इक्क किलंगिय-कटक जुग, करन जंग भुव कम्म॥३०॥

लोभी दुज्जनसल्ल सठ, लखी बिपत्ति न रंच।
इम भूखन बुंदीस के, लिन्नैं कपट प्रपंच॥३१॥

तदनंतर दल इक सहँस, पठयो बुंदिय सीम।
आय रु तिहिं लुट्टिय मुलक, भेद मचायउ भीम॥३२॥

नृपति ईस्वरीसिंह हुव, इत जैपुर लहि पट्ट।
श्रद्धाजुत करि जनक को, प्रेतकरम बिधि बट्ट॥३३॥

अपने लिऐ घोड़े चुनते हुए राजा उम्मेदसिंह को देख कर कोटा के राजा ने कहा कि हे उम्मेदसिंह! हम तुम्हारे लिए एक छोटी सी सेना की व्यवस्था भी कर देंगे लेकिन उसके लिए तुम्हें खर्च की राशि देनी होगी। यह सुनते ही राजा उम्मेदसिंह ने अपने पहने हुए बहुमूल्य आभूषण खोल कर दे दिये। इन आभूषणों में एक जड़ाऊ कलंगी और राजा के दोनों हाथों के रत्नजड़ित कड़े थे जिनका मूल्य दो लाख रूपये था। राजा उम्मेदसिंह ने ये आभूषण अपनी गई हुई भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए (युद्ध करने हेतु) सेना सज्जित करने को दिये पर उस दुष्ट और लालची राजा दुर्जनसाल ने उम्मेदसिंह पर आई हुई इस विपत्ति पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के आभूषण इस तरह प्रपंच रच कर ले लिये। राजा ने थोड़े दिनों बाद एक हजार की संख्या वाली सेना को बूंदी की सीमा में भेजा। उसने वहाँ जा कर लूटपाट की और भयंकर उत्पात मचाया। उधर जयपुर में ईश्वरीसिंह ने अपने पिता की राजगद्दी संभाली फिर उसने अपने मृतक पिता के सारे प्रेतकर्म शास्त्रोक्त विधि-विधान से सम्पन्न किये।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ भूभृदुम्मेदसिंहमालवगर्गराटपति झल्लादलपतिसिंह पुत्री प्रथमोद्वहनतन्मारण दलेलसिंह विचारण कूर्मराजमद्यमदमज्जनललनालोलुपीभवनोद यपुरदलप्रेषणराणाहड्डेन्द्रदेशनिष्कासन जयसिंहमरणतदुम्मेदकोटाऽऽह्वयन कोटेशत द्रूषणमार्गणसैन्यसमुच्चयनबुन्दीदेश विग्रहकरणजयपुरेशेश्वरीसिंह पट्टप्रापणं पञ्चमो मयूखः ॥ आदितः ॥२८६ ॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में भूपति उम्मेदसिंह का मालवे में गर्गराटपुर के पति झाला दलपतसिंह की पुत्री से प्रथम विवाह करना, उम्मेद सिंह को मारने का दलेलसिंह का विचारना कछवाहों के राजा (जयसिंह) का मद्य के नशे में डूबकर स्त्रियों का लोलुप होना और उदयपुर पत्र भेजना राणा का उम्मेदसिंह को देश बाहर निकालना जयसिंह का मरना और उम्मेदसिंह को कोटा में बुलाना, कोटा के पति का उम्मेदसिंह से भूषण लेना, सेना एकत्र करके बूंदी के देश में उपद्रव करना, जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के पाट बैठने का पाँचवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ छियासी मयूख हुए॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

कोटापुर इत मंत्र किय, दुज्जनसल्ल उमेद।
इक्कत करि हड्डे अखिल, भाखिय संगर भेद॥१॥

कहि भट बेणीराम सौं, कोटापति कर जोरि।
गिनत तुम्हैं सब भूप गुरु, छल रु छोनि छक छोरि॥२॥

यातैं जैपुर जाहु तुम, बुंदिय लैन उपाय।
कूरम जो यह स्वीकरैं, तो लरनौं न हिताय॥३॥

हम जावत श्रियद्वार पुनि, मिलहिं रान सौं तत्थ॥
करहिं न हित कछवाह तो, सज्जहिं उभय समत्थ॥४॥

यह सुनि भट जैपुर चलिय, दुजनसल्ल श्रियद्वार।
अन्नकूट सद्धिय समय, अधिक भक्ति उपचार॥५॥

हे राजा रामसिंह! कोटा नगर में तब राजा दुर्जनसाल और उम्मेदसिंह ने मिल कर सारे हाड़ा बांधवों को एकत्रित किया और उनके समक्ष नई सेना बनाने को भेद प्रकट किया अर्थात् संभावित युद्ध की बात बताई। इस समय कोटा के राजा ने हाथ जोड़ कर भट्ट बेणीराम से कहा कि अपनी भूमि और जागीर छोड़ कर सारे राजा लोग आपको गुरु मानते हैं अर्थात् सर्वत्र आपका आदरयोग्य स्थान है इसलिए आप जयपुर जा कर बूंदी वापस दिलवाने का उपाय करें। यदि आपके समझाने पर कछवाहा राजा मान जाये तब फिर हम युद्ध करने का हितवर्द्धक निर्णय नहीं लेंगे। मैं अब वापस श्रीनाथद्वारा जा रहा हूं वहाँ उदयपुर के महाराणा से मिलूंगा और उनसे यह मंत्रणा करूंगा कि यदि कछवाहा राजा नहीं मानता हैं तो हम लोगों को एक साथ उसके विरूद्ध युद्ध करना चाहिए। राजा की बात सुनते ही वेणीराम जयपुर के लिए रवाना हुआ और राजा नाथद्वारा जाने के लिए रवाना हुआ। जहाँ उसे अन्नकूट के दिन श्रीनाथ जी की विशेष पूजा का आयोजन करना था।

हीरकम्

पुन रानहिँ पठयो दल अप्प मिलन आइये।
माधव निज भागिनेय हित हु हृदय लाइये।
बुंदिय पुन लैन कोहु मंत्र मिलि रु ठानिहैं।
ढुंढाहर मेदिनि पर सज्जि समर तानिहैं ॥६॥
यह सुनि जगतेस रान कुंच करिय बेगही।
कोटा पति के मिलाप नीति रीति के गही।
उदयनगर के समीप सेनहिँ फरमान दै।
नाहरमगराभिधान थान तँहैं मिलान दै ॥७॥

फिर कोटा के राजा दुर्जनसाल ने उदयपुर के महाराणा को पत्र भेजकर मिलने बुलवाया। मैं नाथद्वारा आ रहा हूँ हम मिल कर आपके भानजे माधवसिंह के हित साधन हेतु मंत्रणा करेंगे। यही नहीं हम बूंदी नगर को भी वापस लेने की तरकीब सोचेंगे यदि सीधी अंगुली से घी नहीं निकला तो हम ढूंढाड़ (जयपुर) की भूमि पर जा कर युद्ध करेंगे। कोटा के राजा का पत्र प्राप्त होते ही महाराणा ने उदयपुर से कूच किया और हाड़ा राजा से मिलने की रीति-नीति

सोचने लगा। उसने उदयपुर के समीप ही अपनी सेना को आदेश दे नाहरमगरा नामक स्थान पर पड़ाव डाला।

कोटापति पाप पास प्रीति पत्र प्रेरयो।
आवहु मिलिहैं इहाँहिं जो तुम हित हेरयो।
कोटेसहु सुनत एह नाहरमगरा गयो।
रानहिं मिलि रीतिसहित मंत्र सहित मंडयो ॥८॥

अग्गैं अमरेस रानकी पुत्रिय व्याहिबे।
रानाउति दुर्लभ गिनि चिंतित जस चाहिबे।
निजकर जयसिंह कुम्म कग्गर लिखी की सही।
रानाउति पुत्र होहिं ढुंढाहर ईस ही॥९॥

यहीं से उस पापी (भविष्य में बूंदी को हथिया लेगा इसलिए ग्रंथकार ने यह विशेषण लगाया है) कोटा के राजा दुर्जनसाल के पास स्नेह से भरा पत्र भिजवाया कि आप यहीं पधार जाइये। हम मिल बैठ कर आपकी बताई बातों पर मंत्रणा करेंगे। कोटा का राजा भी पत्र मिलते ही नाथद्वारा से रवाना हो कर नाहरमगरा आया। उसने यहाँ पहुँच कर महाराणा से हित सहित विमर्श किया पूर्व में महाराणा अमरसिंह की पुत्री से ब्याह रचाने को (यह सोचकर कि राणा की पुत्री से संबंध होना गर्व की बात है) जयपुर के कछवाहा राजा जयसिंह ने स्वयं अपने हाथों से पत्र लिख कर उदयपुर भिजवाया था। पत्र में यह भी शर्त लिखी थी कि हे महाराणा! यदि आपकी पुत्री के पुत्र जन्मा तो वही मेरा उत्तराधिकारी अर्थात् ढूंढाड़ देश का राजा होगा।

पहिलै इतनी लिखाय रानहु तनया दई।
चिंतहु पटु नीति अप्प तथ्य न सब जो भई।
जिट्ठहि जयसिंह पुत्र राज्य अखिल अंगम्यों।
माधव हित कछु दयो न नति जुत तुमसो नम्यों॥१०॥

बुंदिय दुव हत्थन गाह छोरन हु न उच्चरैं।
अप्पन इहिं कारन दुव सज्जित दल कों करै।
दोउन यह मंत्र थप्पि इक्कत पृतना करी।
बिप्र सु उत बेणिराम कूरम प्रति उच्चारी॥११॥

महाराणा ने भी कछवाहा राजा से ऐसा लिखित करार लेने के बाद ही बेटी ब्याही थी। महाराणा जगतसिंह ने कोटा के राजा से कहा कि आप नीतिपटु हैं आप विचार करें कि फिर शर्त के अनुसार सारा कार्य क्यों नहीं हुआ? राजा जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह ने पूरा राज्य दबा लिया है। उसने हमारे भानजे माधवसिंह के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा और न नम्रता सहित आपके समक्ष भी वह झुका है। उसने बूंदी को भी दोनों हाथों से पकड़ रखा है छोड़ने की बात भी नहीं करता। इसलिए इन दोनों कारणों को ले कर हमें चाहिए कि हम अपनी सेनाऐं सज्जित करें। दोनों राजाओं ने यह मंत्रणा कर अपनी सेनाओं को मिला कर एक सेना बनाई। उधर भट्ट ब्राह्मण वेणीराम ने कछवाहा राजा से निवेदन किया।

छिन्निय ..थसिंह सोहि बुंदिय अब दीजिये।
कूरम उपकार यहहि कोटा सिर कीजिये।
राजामल जुत नरेस बिप्रहिँ तब अक्खई।
बुंदिय हमरे पिचंड क्यौं करि कढिहै गई॥१२॥
अक्खिय सुनि एह बिप्र तुंद कतरि कढ्ढिहैं।
दुद्धर दल हंकि हड्डु जैपुर सिर चढ्ढिहैं।
यह कहि द्विज आय बत्त हड्डुनपति सौं कही।
सो सुनि चहुवान रान सज्जिय पृतना सही॥१३॥

वैणीराम ने अनुरोध किया कि हे कछवाहा राजा! आपके पिता राजा जयसिंह ने जिस बूंदी को छीन लिया उसे अब वापस दीजिए। आप ऐसा कर कोटा के राजा पर उपकार करेंगे! राजामल जो वहाँ विद्यमान था उसके सहित कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने कहा कि बूंदी तो हमारे पेट में चली गई अब उसे वापस कैसे निकाला जा सकता है? यह सुन कर विप्रदेव वेणीराम ने कहा कि फिर तो हम आपका पेट चीर कर ही अपनी बूंदी निकालेंगे। जब दुर्द्धर्ष हाड़ाओं के दल जयपुर पर चढ कर आऐंगे तब आप पेट पकड़ लेना। इतना कह कर वेणीराम जयपुर से चला और उसने कोटा आ कर हाड़ा राजा से पूरा वृत्तान्त कहा। यह सुनते ही हाड़ा राजा दुर्जनसाल और महाराणा ने अपनी सेना को सज्जित किया।

लंबित धुजदंड मस्त हस्थिन सिर खुल्लये।
बीरहु निज निज समस्त बंधन बल बुल्लये।
त्रंबक डक बज्जि बेग सिंधुन स्वर लग्गये।
पव्वय डगमग्गि भोग भोगिय भर भग्गये॥१४॥

संकुलि धर धूलि धुंधि रुंधि रु रवि ढंकयो।
चिक्करि लखि चंड चेत दिग्गज गन संकयो।
दिकपालन के कपाल नाटसाल से चुभे।
बीर सु मगरूर मंडि हूरन हित के लुभे॥१५॥

मस्त हाथियों की पीठों पर लम्बे ध्वजदंडों पर ध्वजाएँ लहराने लगीं। दोनों राजाओं ने अपने-अपने वीर योद्धाओं को बुला कर एकत्र किया। त्रबंक (नगाड़े) पर डंके की चोट हुई। वीर रस बढ़ाने वाली सिंधु रागिनी के स्वर गूंजने लगे। पर्वत डोलने लगे और सेना के भार से शेषनाग के फण लचकने लगे। सेना के प्रयाण से धरती की रज उड़ कर आकाश में छा गई जिसने सूर्य को ढांप लिया। दिग्गजों की चिंघाड़ सुन कर सभी दिशापालों (दिकपालन) के कपालों में नटसाल से चुभने लगे। वीर अपने दर्प के साथ अप्सराओं के हित के लिए लुभायमान होने लगे।

सागर सबि लै हिलोर ओर ओर उज्झले।
हाटक गिरि के समस्त शृंग भंग व्है हले।
कोटापति सेन रान सेन उभय यों चली।
सो सुनि कछवाह भूप इक्कत बल कैं बली॥ १६॥

मंडिय दरकुंच रान सम्मुह मगरूर तैं।
मानहु घन भद्द मास पाय पवन पूर तैं।
राजामल कग्गर लिखि रान निकट पिल्लयो।
हड्डुन के पेच मांहिं मानस तुम क्यों दयो॥ १७॥

जो हित हमसों बनैं सु ओरन सन नाँ बनैं।
आवत हमहू हजूर अप्पन सिर ही मनैं।
माधव निज जामिज हित बंटि पहुमि लीजिय।
हड्डुन सन भिन्न होय नैंकहु न पतीजिये॥१८॥

सभी समुद्र अपनी लहरों के बहाने उछालें भरते दिशा-दिशा में मर्यादा छोडने लगे। सुमेरू पर्वत के सारे शिखर कांपते हुए टूटने लगे। कोटा के राजा दुर्जनसाल और उदयपुर के महाराणा जगतसिंह की सेनाएँ यों बढ़ीं। इस बात की खबर पता चलते ही कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने भी मुकाबले के लिए अपनी सेना सज्जित की और महाराणा की सेना का सामना करने के लिए कछवाहा सेना ने दर कूच दर मंजिल कूच किया। दर्प से भरी यह सेना ऐसे बढी मानो भाद्रपद माह के मेघ पवन के समूह के सहारे बढते हैं।उधर राजामल ने पत्र लिख कर महाराणा जगतसिंह के पास भेजा जिसमें लिखा कि हे महाराणा! आपने इन हाड़ाओं के दाँव पेच में अपना मन क्यों लगाया है? आपका जितना हित हम साध सकते हैं उतना दूसरा अन्य कोई नहीं साध सकेगा आपको हम अपने सिर-माथे (मस्तक) पर मानते हैं इसलिए आपके पास हाजिर हो रहे हैं आप अपने भानजे माधवसिंह के लिए हमसे बंटवारे में जागीर का हिस्सा लीजिए पर आप इन हाड़ाओं से अलग हो जाइये और इनके भुलावे में न आइये।

दोहा

यह दल अग्गहि मुक्कल्यो, राजामल सचिवेन।
पुनि नृप ईस्वरिसिंह जुत, सम्मुह हंकिय सेन॥१९॥
इत रान रु कोटेस दुव बेग सु कग्गर बंचि।
धाये सम्मुह खरचि धन, सेना अतुलित संचि॥२०॥
नगर जाजपुर के निकट, जामोली इक गाम।
उत्तरि तँहँ भूपति उभय, किय चालीस मुकाम॥२१॥
सगताउत सावर अधिप, इंद्रसिंह अभिधान।
तिहिँ दब्ब्यो इक रान को, नगर देवली थान॥२२॥

जयपुर के सचिवों के सचिव अर्थात् प्रधान सचिव राजामल ने ऐसा पत्र लिख कर पहले रवाना किया फिर वह स्वयं राजा ईश्वरीसिंह के साथ आ रही सेनाओं का मुकाबला करने के लिए उनके सम्मुख जाने को सेना सहित रवाना हुए। इधर कोटा के हाड़ा राजा और महाराणा ने राजामल के पत्र को पढा और खूब धन खर्च कर जुटाई गई सेना के साथ बढे। इनकी

सम्मिलित सेना जब चालीस पड़ावों के बाद जहाजपुर के समीप जामोली गाँव में पहुँची तो दोनों राजाओं ने यहाँ पड़ाव डाला। यहाँ सावर का जो जागीरदार इन्द्रसिंह शक्तावत था उसने महाराणा की जागीर में से देवली का परगना दबा लिया था।

ताहि तजन जगतेस तब, बहुत कहाई बत्त।
सगताउत मन्त्री न सो, मुररि रह्यो जिम मत्त॥२३॥
इहि रानाँ अच देवली, रचन लैन गढ रारि।
राणाउत भारत सहित, पठयो कटक प्रचारि॥२४॥
दलहिँ जात अब देवली, सुनि सावर पति पुत्त।
सालम नाम सु सुज्जि बनि, धस्यो लरन गढ धुत्त॥२५॥
दिन पंचक पहिलैं यहै, ब्याह्यो सालम वीर।
कंकन मोचन हू न किय, हुव जुज्झन हमगीर॥२६॥

यहाँ जामोली पहुँचते ही उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने फिर से इन्द्रसिंह को कहलवाया कि मेरी जागीर का दबाया हुआ हिस्सा छोड़ दे पर उस शक्तावत ने यह बात नहीं मानी और उल्टे मदमत्त व्यक्ति की तरह व्यवहार किया। इस कारण से महाराणा ने देवली को फिर से अपने अधिकार में करने को राणावत भारतसिंह के साथ सेना भेजी। जामोली से महाराणा का यह दल रवाना हुआ इसकी खबर जब सावर पहुँची तो इन्द्रसिंह का सालमसिंह नामक अनग्र पुत्र अपने दल को सज्जित कर देवली गढ पर मुकाबला करने पहुँचा इस कुमार सालमसिंह शक्तावत का विवाह अभी पाँच दिन पूर्व ही सम्पन्न हुआ था। अभी उसके हाथ से कांकण-डोरड़े भी नहीं खुले थे कि वह वीर महाराणा की सेना से जूझने देवली आया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह दुर्जनशल्य मन्त्रणवेणीरामभट्ट जैपुर प्रेषण कोटेश श्रीद्वारगमनराणा-समाव्हयननाहरमगरोभय मिलनबेणीरामेश्वरीसिंहबिरसीभवन भट्ट प्रत्यागमनराणा महारावसेनाभिनिर्याणतदभिमुख कूर्मराजाऽऽगमन, देवली कुमारसालमसिंह सज्जीभवनतद्राणाससैन्यभारतसिंह प्रेषणशंसन षष्ठो मयूखः॥ आदितः॥ २८७॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह और दुर्जनसाल का सलाह करना। भट्ट बेणीराम को जयपुर भेजना। कोटा के राजा का नाथद्वारा जाकर राणा को बुलाना। नाहरमगरा नामक स्थान पर दोनों का मिलना। बेणीराम और ईश्वरीसिंह का परस्पर बिरस होना। भट्ट के वापस आने पर राजा और महाराणा का सेना सहित गमन करना। इनके सम्मुख कछवाहा राजा का आगमन। देवली में कुमार सालमसिंह का सज्जित होना, उस पर महाराणा का सेना सहित भारतसिंह को भेजने के कथन का छठा मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ सतासी मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकत मिश्रित भाषा

मुक्तादाम

गह्यो जिहिँ अग्ग प्रताप कुमार, वहै हुव भारतसिंह तयार।
दयो तस संग अभंग अनीक, सजे भट उद्धत चाहि समीक ॥१॥

सिराहि कह्यो सब सौं इम रान, लहो गढ घोर रचो घमसान।
चल्यो सुनि भारतसिंह प्रचंड, उमंगत हंकिय सेन अखंड ॥२॥

भयो दिकपालन मोह भयान, प्रकंपत दिग्गज भुल्लिय प्रान।
मचक्किय पन्नग की फनमाल, भचक्किय पक्किय सूकर भाल ॥३॥

छछक्किय अद्रिन तैं कटि धातु, लचक्किय लोक कहै हरि पातु।
सरक्किय एम उदैपुर चक्क, फरक्किय हत्थिन पै बहरक्क ॥४॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में उदयपुर में जिन चार योद्धाओं ने मिलकर कुमार प्रतापसिंह को पकड़ कर कैद किया था उनमें से एक भारतसिंह भी था। इसी भारतसिंह को अपने दल के साथ भेजने का महाराणा ने तय किया। देवली जाने को दल के उद्धत वीर युद्ध का सुनते ही उत्साह से भर उठे और भारतसिंह सहित सभी सज्जित हुए। इनकी सराहना करते हुए महाराणा ने कहा कि वीरों जाओ और घमासान रचा कर देवली का गढ़ वापिस लो! यह सुन कर प्रचंड वीर भारतसिंह ने अपनी सेना को पूरे उमंग के साथ प्रयाण करने को कहा। इसे देख कर दिकपालों को भयंकर भ्रम हुआ। सारे दिशाओं के दिग्गज अपने प्राणों को भूल कर काँपने लगे। शेषनाग के फण लचक गए। सेना के प्रयाण के झटके से वाराह का भाल तक पिचक गया अर्थात

उसे घाव लगा। पर्वतों से धातुएँ उबकने लगीं। सारे लोक के वासी डर कर 'हे प्रभु! हे प्रभु!' बचाना करने लगे। हाथियों की पीठ पर बंधी ध्वजाएं फहराती उदयपुर की सेना इस प्रकार चली।

करक्किय कंकटकी कटिकालि, ढरक्किय पब्बय शृंगन ढालि।
खरक्किय खप्पर जोगिनि संग, झरक्किय नालन अग्गि दमंग॥ ५॥

घुरक्किय अक्खर पक्खर घोर, थरक्किय अच्छरि अंबर ओर।
दरक्किय छोनिय दारिम रीति, भरक्किय खंड चउद्दह भीति॥ ६॥

घमंकिय घोरन घुग्घरमाल, चमंकिय सेलन सोचि सचाल।
छमंकिय अच्छरि नेउर गैन, झमंकिय भूखन लक्खन लैन॥ ७॥

टमंकिय त्रंबिय बंबिय बज्जि, ठमंकिय घंट मतंगन रज्जि।
डमंकिय डाहल डिंडिम लोल, ढमंकिय सद्दल मद्दल ढोल॥ ८॥

युद्ध के लिये प्रयाण करती सेना के वीर योद्धाओं के कवच की कड़ियां टूटने लगी। पर्वतों के शिखर चलायमान हो कर गिरने लगे। योगिनियों के खप्पर आवाज करने लगे। घोड़ों के पावों में लगी खुरतालों के पत्थर पर रगड खाने से अग्निकण उडने लगे। घोड़ों के पहने अक्षय पाखरों के बजने की ध्वनि सभी ओर छा गई। थिरकती हुई अप्सराएँ आकाश में आ ठहरीं। भूमि पके अनार की तरह फटने लगी। भय से चौदह लोक चौंक पड़े। घोड़ों ने व्रताकार बढ़ते हुए पावों से भूमि पर आघात की घमक लगाई। चपलता से हिलते भालों की कांति चमकी। आकाश में अप्सराओं के नूपुर बज उठे और अप्सराओं की असंख्य पंक्तियों में उनके आभूषण झिलमिलाये। तासे और नगारे बज उठने की ध्वनि हुई। हाथियों के गले में बंधे घंटे बज उठे। डाहल और डिंडिंम तेजी से बजने लगे। शब्दायमान हो कर ढोल और मर्दल वाद्य बजे।

द्रमंकिय दुंदुभि दिग्घ द्रमाम, धमंकिय धुज्जि रमातल धाम।
उलट्टिय सेन कि सागर अभ, पलट्टिय जानि पुरंदर जंभ॥९॥

चल्यो इम रान महीपति चक्क, लग्यो उडि पावक तोप ललक्क।
लयो गढ देवलिका गरदाय, धम्यौं रन तोपन भुम्मि धुजाय॥१०॥

कही तँहँ भारत सालम काज, मिलै गढ छोरि लहो असु आज।
यहै सुनि बीर न किन्न अबेर, कहाइय सालम जुज्झन केर॥११॥

उदैपुर को दल दुर्लभ लाय, इहाँ तुमसे भट पाहुन आय।
नकैं हम जो तुमरी मनुहारि, लजै पितु मात लगै कुल गारि ॥१२॥

खरे तुमहू नय जानत ख्यात, करैं सब स्वागत पाहुन आत।
अवैं इहिं कारन धर्महिं धारि, पधारहु स्वीकरि मो मनुहारि ॥१३॥

बड़े-बड़े नगाड़े और दमामे (बड़े ढोल) बजने लगे। युद्ध की धमक से रसातल तक काँप उठा। दोनों ओर की सेनाएँ क्या उमड़ी जैसे समुद्र उलट पड़ा हो अथवा जैसे जंभासुर राक्षस पर इन्द्र टूट पड़ा हो। उदयपुर के महाराणा की सेना इस प्रकार पूरे वेग से चली जैसे तोप के बारूद में उड़ कर अग्नि आ गिरी हो। जाते ही इस सेना ने देवली के गढ़ को घेर लिया और तोपों के धमाकों से पूरे क्षेत्र को दहला दिया। तभी भारतसिंह ने कुमार सालमसिंह से कहलाया कि यदि अपने प्राण चाहते हो तो गढ़ को छोड़ दो अथवा आज अपने प्राण रख लो और गढ़ को छोड़ दो। यह सुन कर उस वीर कुमार ने भी विलम्ब नहीं करते हुए कहलाया कि जूझने में देरी क्यों हो रही है? हमारे यहाँ उदयपुर के महाराणा का यह दुर्लभ दल आया है और तुम्हारे जैसे योद्धा मेहमान लाया है, ऐसे में भला हम आपकी कोई मनुहार न करें, आपका सत्कार नहीं करे तो हमारे माता-पिता लज्जित होंगे। हमारे कुल को भी दाग लगेगा। आप तो नीति जानने में विख्यात हैं और यह ख्यात नीति है कि मेहमानो के आगमन पर स्वागत तो करना ही होता है। इसलिए अब आप धर्म की गति को धारण कर आगे पधारो और मेरी मनुहार को स्वीकार करो।

हुते हम सावरके पति हंत, कहाँ तिनकों सुख स्वर्ग मिलंत।
परंतु कृपा करिकैं तुम आय, ततो मम बिन्नति मन्नि हिताय ॥१४॥

गुरु तुम आसिख अक्खहु एहु, सुपुत्रक स्वर्ग सभा सुख लेहु।
कथा यह सालमसिंह कहाय, रुप्यो जिम अंगद कों रनराय ॥१५॥

रची सुनि भारत तोपन रारि, हनी इन सेन घनी हलकारि।
चलैं पबिपात कि गोलक चंड, दिपैं जिम मोर उडैं धुजदंड ॥१६॥

गिरैं गृह मंडप फुट्टि लदाव, तप्यो पुर तोपन के तरकाव।
नठे चहुँकोद निवानन नीर, परी जलजंतुन दुस्सह पीर ॥१७॥

हे भारतसिंह! यदि मैं सावर का स्वामी हो जाता तो फिर यह मुझे स्वर्ग का सुख भोगने का अवसर कहाँ मिलता ? पर कृपा कर आप पधार गए। अब आप मेरी हित भरी विनती को क्यों नही मानते ? आप बड़े हैं इसलिए हमें यह आशीर्वाद दो कि हे पुत्र! जाओ स्वर्ग की सभा का सुख भोगो! सालमसिंह ने जिस गंभीरता और आत्मविश्वास के साथ प्रत्युत्तर में यह जो कुछ कहा उसी आत्मविश्वास से भरा जिसका युद्ध ही धन हो ऐसा वह वीर रणभूमि में अंगद की तरह अपने पाँव रोप कर मुकाबले को खड़ा हुआ। यह सुन कर भारतसिंह ने तोपों से युद्ध शुरू किया और ललकार कर उसने सामने वाली सेना के बहुत सारे वीरों को मार गिराया। तोपों के गोले क्या चले मानो वज्रपात होने लगा जिनके प्रहारों से प्रतिपक्षी सेना के ध्वज टूट कर हवा में यों उड़ने लगे जैसे मयूर उड़ रहे हों। देवली के घरों पर जब गोले गिरे तो मकानों की छतें (लदावों के टूटने से) गिरने लगीं और पूरा नगर तोपों के गोलों के उत्ताप से झुलसने लगा। नगर के चारों और वाले पानी के स्रोत सूखने लगे जिससे जल-जंतुओं पर दुस्सह पीड़ा आ पड़ी।

घिरयो पुर देवलिका दल घोर, जम्यौं दुहुँ ओर प्रबीरन जोर।
जँबूर जजावलि तोप तुपक्क, चलैं द्रुत चंड मचैं धमचक्क॥१८॥

चुहट्टन हट्टन बट्ट बजार, उडै दमकैं बहु वृंद अँगार।
जरंत कि्रंत बिजाजन पट्ट, गुढी जनु लग्गिय राल गरट्ट॥१९॥

बनिक्कन आपन लग्गि अलाव, दहै घन कानन ज्यों तृन दाव।
जरैं घृत ओदन तेल रु तूल, दिवारिय दीपक होत दुकूल॥२०॥

जरैं कट छप्पर टप्पर ज्वाल, झगैं जिम फग्गुन होरिय झाल।
छिकैं बहु अट्टन कंगुर छुट्टि, तरक्कत पत्थर छत्रिन तुट्टि॥२१॥

देवली नगर चारों ओर से सेना से घिर गया ओर दोनों और के वीर अपना-अपना बल दिखाने लगे। छोटी तोपें, बन्दूकें और बड़ी तोपें आग उगलने लगीं। शीघ्र ही युद्ध ने भंयकर रूप लिया। देवली के चोराहे, गलियाँ, मार्ग और बाजारों में दहकंते हुए अंगारों के समूह उड़ने लगे। बजाजों की दुकानों में कपड़े के थान जलने लगे और जलते हुए गिरने लगे मानो पंतगों के समूह में आग लगी हो और वे जलती हुई गिर रही हों। बनिकों की गली में

अग्नि सामान यों जलाने लगी जैसे जंगल में लगी आग से तृणों के साथ वन जलता है। बाजार में घी, तेल, अन्न-धान, रूई-कपास यों जलने लगे मानो ये सभी दीपक हों और आज दीवाली हो। वहीं काठ के छप्पर और टापरे (झोंपड़े) ऐसी ज्वाला के साथ जलने लगे जैसे आज होली हो। दुर्ग और शहरपनाह के कंगुरे गिरने पर बुर्जे रह गई और उनकी गुमटियों (छत्रियों) के पत्थर आँच लगने से तड़क-तड़क कर टूटने लगे।

परैं प्रजरैं बहु मंच कपाट, घिर्‌यो पुर पावक दुस्सह घाट।
जरै ससिसालन ज्वालन जूह, दगैं गृह अंगन अग्गि दुरूह॥ २२॥

द्रवैं जरि नाग रु बंग अदब्भ, उडैं लगि पावक पारद अब्भ।
मनों गढ को अघ मेटन मान, करायउ सालम अग्गि सनान॥ २३॥

घने दिन भो रन तोपन घोर, छिक्यो गढ गोलन मार दु ओर।
कढ्यो तब सालम खुल्लि कपाट, झुक्यो रन बीर बजावत झाट॥२४॥

बजी सगता उतकी हतबाह, चले कर ओदन ज्यौं सिसु चाह।
उडैं हय खंध गिरैं असवार, कटैं भट छत्तिन छेदि कटार॥ २५॥

पास पड़े कई पलंग जलने लगे। घरों के किंवाड़ जलने लगे। पूरा नगर ही दुस्सह अग्नि से घिर गया। घरों में सबसे उपर बनी चन्द्रशालाओं में अग्नि भर गई। घरों के चौक-आंगनों में भी दुरूह अग्नि पसर गई। इस अग्नि से पिघल कर सीसा और रांगा बड़ी मात्रा में बह निकला और पारा अग्नि की आंच पा कर आकाश में उछला। मानो देवली के गढ के पाप जलाने को सालमसिंह ने उसे अग्निस्नान करवाया हो। तोपों का यह घोर संग्राम कई दिन चला जिससे गढ़ में गोलों की मार से दोनों ओर छेद ही छेद हो गए। इसके बाद गढ के किवाड़ खुलवा कर वीर सालमसिंह शक्तावत अपने साथियों सहित बाहर आया। उसने बाहर निकलते ही आक्रान्ता सेना पर अपनी तलवार बजाई अर्थात बेशुमार प्रहार करने लगा। शक्तावत वीर की तलवार ऐसे चली जैसे किसी चावल खाते भूखे बच्चे के हाथ चल रहे हों। तलवार के प्रहारों से कहीं घोड़ों के कंधे कटने लगे और उनके सवार गिरने लगे तो कहीं वीर कटार घोंप कर सामने वाले योद्धा को मारने लगे।

तरक्कत टोपन पैं तरवारि, दिपैं मनु देवल झल्लरि झारि।
कटैं फटि कंकट बीरन अंग, तजैं निरमोक कि भीम भुजंग॥२६॥

चटक्कत टोप समस्तक चीर, किधौं जगदीस प्रसाद करीर।
उलट्टन अब्बन तुट्टन तंग, पलट्टत के जिम एन पलंग॥२७॥

झरैं गज सुंडिन झंडन झुंड, रचैं घन घुम्मत तंडव रुंड।
परैं दृग रत्त फदक्कत पुंज, गिरैं जिम सीतसमै पकि गुंज॥२८॥

थरक्कहिं अंबर अच्छरि थट्ट, भरक्कहिं भीरुक उब्बत बट्ट।
परैं कति पक्खर बग्ग पलान, सरैं भट छाकि रजोगुन मान॥२९॥

कहीं तलवारें प्रतिपक्षी वीर के सिरस्त्राण (टोप) से टकरा कर टूटने लगीं और ऐसी आवाज करने लगी मानों कहीं पास के मन्दिर में पूजा के समय झालर बज रही हो। कहीं कवच के कट जाने पर वीरों के अंग उससे यों बाहर आ रहे है मानों कोई जंगी सर्प अपनी कांचली छोड़ कर बाहर आ रहा हो। कहीं टोप सहित योद्धा का मस्तक कट कर चीर-चीर हो रहा है मानो जगदीश भगवान के प्रसाद का कलश फोड़ा गया हो। कहीं पर तंग टूट कर घोड़े उलट रहे हैं तो कहीं घोड़े किसी का पीछा करते यों लपक रहे है जैसे हरिण को पकड़ने चीता लपका जा रहा हो। कहीं हाथियों की कटी हुई सूंडें गिरने लगी तो कहीं कटे हुऐ ध्वजदंड, कही बिना मस्तक वाले कबंध घूम - घूम कर तांडव नृत्य करने लगे। कहीं तलवार के प्रहार से किसी वीर के लाल नेत्र यों उछल कर भूमि पर गिर रहे हैं जैसे शरद ऋतु में पकी हुई चिरमी की फली से चिरमियां गिरती हैं। आकाश में अप्सराएँ ऐसे वीर योद्धाओं को मरते देख खुशी से थिरकने लगीं, वहीं कायर लोग बिना ही मार्ग के भागे जा रहे हैं। कहीं घोड़ों के पाखर गिर रहे हैं। कहीं पलान (काठी) गिर रहे हैं और रजोगुण से भरे वीर कट-कट कर गिर रहे हैं।

उरझ्झत अंत्रन गिद्ध अनेक, तरफ्फत घायल मूढ कितेक।
किलक्कहिं कालिय कूदि कराल, खलक्कहिं सोहित लोहित खाल॥३०॥

छुलक्कहिं घाय छछक्कत रत्त, झलक्कहिं सूरन ओज उमत्त।
न तक्कहि कातर दूरहु नट्ठि, ललक्कहिं बावन ओ चउसट्ठि॥३१॥

उलट्टत हत्थिन तैं भट आहिं, मनौं तिहरी नट भग्गल माँहिं।
उछट्टहिं आयुध तुट्टहिं तोन, सुलट्टहिं केत उचट्टहिं सोन॥३२॥

दपट्टहिं बाजिन जुट्टहिं दाव, झपट्टहिं ज्यौं तरिता झमकाव।
भटक्कहिं इक्कहिं इक्क झंझोरि, पटक्कहिं भूतन को रन रोरि॥३३॥

कहीं मरे हुए वीरों की निकली आंतों में गिद्ध उलझ रहे हैं और कहीं रणभूमि में गिरे हुए घायल तड़प रहे हैं। कहीं पर कालिका विकराल रूप में कूदती-फांदती किलकारियाँ कर रही थी और कहीं पर रक्त के नाले बहने लगे। कहीं पर शूरवीरों के चेहरे का ओज चमक रहा है तो कहीं घायल वीरों के घावों से रक्त के फव्वारे छूट रहे हैं। ऐसे दृश्य को कायर नहीं देखते और वे वहां से दूर भागते हैं। वहीं बावन भेरव और चौसठ योगिनियां ललक भरी नजरों से देखते हैं। कुछ वीर हाथियों से उछलकर यों गिर रहे हैं मानो नट लोगों की तरह तिहरी कुलाँचें भरने का ढोंग कर रहे हों। कहीं आयुध उल्टे पडे है तो कहीं तीर टूटे हुए पड़े हैं। कहीं ध्वजा सीधी पड़ी है तो कहीं रक्त उबक रहा है। कहीं पर वीर अपने घोड़ों को दौड़ा कर दाँव लगा रहे हैं तो कहीं वीर बिजली की गति से झपट रहे हैं। कहीं एक वीर अपने प्रतिपक्षी को झिझोंड़ रहा है तो दूसरा वीर युद्ध में मार कर शत्रु को भूत की योनि में डाल रहा है अथवा भूत जैसे बलशाली प्रतिपक्षी को युद्ध में हरा कर गिरा रहा है।

अटक्कहिं पाय रकाबन केक, गटक्कहिं गोदन गिद्ध अनेक।
खटक्कहिं हड्डुन पैं लगि खग्ग, छटक्कहिं के उडि अंबरमग्ग ॥३४॥

लटक्कहिं थक्कहिं रान अनीक, सटक्कहिं के सठ घोर समीक।
बढ्यो इम सालम बाजि उडाय, लयो द्रुत भारतसिंहहिं जाय ॥३५॥

कह्यो तुम मन्निय मो मनुहारि, अरे दल सज्जि बनैं उपकारि।
पितामह मोहि गिन्यौं सिसु बग्ग, दयो करुणाकरि दुर्लभ स्वर्ग ॥३६॥

बच्यो खिल जो मम आयु बहोरि, मिलौं तुमकौं सु घटी पल जोरि।
तज्यो तिहिं याविधि अक्खि कुमार, पर्यो भट ओरनपैं रन प्यार ॥३७॥

कहीं पर किसी वीर का पैर रकाब में फंसा है तो कहीं मरे हुए वीर का कपाल गिद्ध अपनी चोंचो से खोल रहे हैं। कहीं पर किसी वीर की तलवार शत्रु की हड्डियों तक गहरे वार करती हुई 'खट', की आवाज कर रही है। कई वीर छिटक कर आकाश की और उछल कर पड रहे हैं। कहीं पर कायर शीघ्र ही इस भंयकर मारकाट से सिसक रहे हैं। तभी वीर सालमसिंह अपना घोड़ा बढ़ाते हुए आगे बढ़ा और वह सीधा भारतसिंह के समीप पहुँचा। और वहाँ जा कर बोला कि आपने शर्तिया मेरी मनुहार रखी और दल सहित

हठपूर्वक ठहर कर मुझ पर उपकार किया (मेरे उपकारी बनें) हे पितामह! आपने मुझे अपना बालक गिना और करुणा कर मुझे स्वर्ग दिया। ऐसे में मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर मेरी बची उम्र भी आपको दे। वह भी सारी घड़ियां और पल तत्काल जोड़ कर दे अर्थात् आप जीवित रहें, मैं मरता हूँ। इतना कह कर सालमसिंह ने भारतसिंह को छोड़ दिया और वह वीर युद्ध में प्यार का इजहार कर दूसरों पर गिरा (टूट पड़ा)।

दु हत्थन झारत खग्गन दाय, गयो बहु बैरिन के असु खाय॥
घनी अरि नारिन कंकन झारि, घनैं मदमत्त मतंगन मारि॥ ३८॥

तज्यो पहिलो वह कंकन चाहि, नयो बलि बंधिय अच्छरि ब्याहि॥
तज्यो इम सालम मानुज देह, लयो सुर बिग्रह नूतन नेह॥ ३९॥

उदैपुर के बड बीर पचास, हनैं अरु अल्प गिनैं उपहास॥
परे निज बीरहु सत्रह संग, मर्यो इम सालम स्वर्ग उमंग॥ ४०॥

वह वीर सालमसिंह शक्तावत अपने दोनो हाथों से तलवारो के प्रहार मचाता हुआ अन्ततः बहुत सारे प्रतिपक्षी वीरों के प्राण ले कर मारा गया। उसने कई शत्रु नारियों के हाथ के कंगन तोड़े अर्थात् उन्हें विधवा बनाया। यही नहीं वह कई मदमस्त हाथियों को काट कर मरा। उस वीर ने अपने हाथ पर पहले से बंधा कांकण-डोरड़ा तोड़ कर अप्सरा से विवाह कर नया कांकण-डोरड़ा बंधवाया। सालमसिंह ने इस तरह अपनी मानव देह छोड़ी और नूतन स्नेह दर्शाते हुए देव शरीर धारण किया। उसने इस भिड़ंत में उदयपुर की सेना के पचास बड़े योद्धाओं को मारा और छोटे योद्धाओं की गिनती को तो उपहास में उड़ा गया। उसके पक्ष के सत्रह योद्धा वीरता से लड़ते हुए मरे। अपने वीर साथियों सहित वह वीर सालमसिंह स्वर्ग पाने की उंमग में मारा गया।

दोहा

रानाउत भारत वहै, इम रन सालम मारि।
रान अमल किय देवली, अप्पन बिजय उचारि॥४१॥

सगताउत सावर अधिप, मंद सु सुनहिँ सराय।
जामोली जगतेस कैं, पामर लग्गो पाय॥४२॥

तदनंतर कछवाह नृप, आयउ कटक अमान।
ग्राम नाम पंडेर ढिग, दिन्ने मुदित मिलान ॥४३॥
बुंदियतैं यह सुनि बिदित, करिय दलेलहु कुच्च।
कूरम ईस्वरिसिंह सौं, उतहि मिल्यो छक उच्च ॥४४॥

उस रानावत भारतसिंह ने इस युद्ध में सालमसिंह को मार कर देवली पर फिर से महाराणा का अमल करवाया और आप विजयी कहलाया। पर वह सावर का मूर्ख स्वामी शक्तावत अपने पुत्र को युद्ध में मरवा कर जामोली गया और वहाँ जा कर वह नीच महाराणा जगतसिंह के चरणों पर गिरा। इसके बाद कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह अपनी बड़ी भारी सेना के साथ वहाँ पहुँचा। उसने पंडेर नामक गाँव के पास अपनी जंगी सेना सहित पड़ाव डाला। बूंदी से भी तब दलेलसिंह ने यह सुन कर कूच किया और अपने दल के साथ आ कर यहाँ राजा ईश्वरीसिंह से मिला।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशो राणाजगत्सिंहसेनानी भारतसिंह देवली युद्ध करणशावरपतीन्द्रसिंह कुमार सालमसिंह मरणतज्जनकराणाचरणपतन देवल्युदयपुर केत्वा रोपण-कूर्मराजेश्वरीसिंह पणडेरग्रामशिविरस्थापन तद्दलेल सिंह मिलनं सप्तमो मूखः ॥ आदितः ॥२८८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में राणा जगतसिंह के सेनापति भारतसिंह का देवली में युद्ध करना, सावर के पति इन्द्रसिंह के कुमार सालमसिंह का मरना, उसके पिता का राणा के चरणों में गिरना और देवली में उदयपुर का निशान रोपना, कछवाहों के राजा ईश्वरीसिंह का पंडेर नामक ग्राम में डेरे लगाना, उससे दलेलसिंह के मिलने का सातवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ अठासी मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

गगनागनम्

राजामल कूरमनृप सचिव तत्थ गो रान मैं।
अक्खिय कर जोरि चढन कौंन काज घमसान पैं।
यह सुनि जयसिंह लिखित लै रु रान बंच्यो तहाँ।
अक्खिय इहिं पत्र माँहिं जो लिखी सुं अब है कहाँ ॥१॥

बुल्लिय सुनि कुम्म सचिव जवनईस यह जानिकैं।
अक्खिय लिखि पत्र भूप करहु जेठ्ठसुत मानिकैं।
यों यह नृपता भई सु जवनइंद्र फरमान सों।
लोपन तिहिं को समत्थ बिरचि बैर बलवान सों॥२॥

हे राजा रामसिंह! तब कछवाहा राजा का प्रधान सचिव राजामल चल कर महाराणा के शिविर में गया। उसने वहाँ जा कर हाथ जोड़ कर पूछा कि हे महाराणा! आप किस कारण युद्ध करने को तत्पर हो चढ़ाई कर आए? प्रधान से यह सुन कर महाराणा ने पूर्व राजा जयसिंह का लिखा हुआ पत्र मंगवाया और उसे पढ़ कर सुनाया। इसके बाद पुछा कि इस पत्र में लिखी शर्तों का पालन कहाँ हुआ?- (इस पत्र में लिखित करार था कि महाराणा की बहिन का बेटा ही जयपुर का उत्तराधिकारी होगा।) इसके जवाब में प्रधान राजामल ने कहा कि यह इसलिए नहीं हो सका क्योंकि दिल्ली के बादशाह ने फरमान भेज कर राजा जयसिंह से कहा था कि तुम्हारा ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह ही तुम्हारे बाद जयपुर का राजा होगा। हे महाराणा! यही कारण है कि ईश्वरी सिंह को नृपता का अधिकार मिला। अब आप ही बताएँ कि समर्थ के आदेश की अवहेलना कर कौन ऐसा होगा जो अपने से बलवान से बैर मोल ले?

अप्पहु नृप नीति चतुर समय देस हिय लाइये।
किहिं बिधि जवनेस हिंतु समर सज्जि जय पाइय।
नाथ जु निज अनुज तांहिं तुम दयो सु पुनि पेखिय॥
गृह गृह सबके यहैहि राजनीति दृढ देखिये॥३॥

अनुचर हमतो तथापि नृप समेत सब रावरे।
अप्पहिं बहिकाय लरन लै चले सु सठ बावरे।
अब मम बिनती विचारि हुकम धर्मगहि दीजिये।
माधव हित रीति रक्खि कछु सिवाय भुव लीजिये॥४॥

हे महाराणा! आप नीतिपटु हैं आप देश और काल को देखकर निर्णय कीजिये और आप अपनी सेना सज्जित कर सीधे बादशाह से युद्ध कर विजय हासिल कीजिये। फिर रहा सवाल इस बात का कि राजा ईश्वरीसिंह ने अपने छोटे भाई और आपके भानजे को कुछ नहीं दिया तो इस संदर्भ में

निवेदन है कि आप देखें आपने अपने छोटे भाई नाथूसिंह को क्या दिया है ? राजाओं के प्रत्येक घर में यही दृढ़ नियम है फिर जयपुर अपवाद कैसे हो सकता है ? हम तो अपने राजा सहित आपके अनुचर हैं। आप ही उन बावरे (कोटा के राजा) लोगों के बहकावे में आ कर युद्ध लड़ने को उद्यत हो गए। अब आपसे मेरा अनुरोध है कि आप धर्म सम्मत विचार कर हमें हुक्म दीजिये कि आप अपने भानजे माधवसिंह का हित देखते हुए चाहें तो उसके लिए और अधिक जागीर ले सकते हैं।

रानहु सुनतहि इतीक गिनि बलिष्ठ कछवाह कों।
राजामल इंद्रजाल बनि विमूढ तजि राह कों।
अक्खिय सर लक्ख दम्म पहुमि माधवहिं दीजिये।
सुनतहि द्रुत कुम्म सचिव लिखि पटा रु कहि लीजिये।।५।।
टौंक नगर को समस्त परगनाँ सु लिखि यौं दयो।
रानहु बनि मंद भागिनेय हेत वहही लयो।
तदनंतर यह उदंत सुनि अनिष्ठ कोटेसहू।
रानहिं बहक्यो बिचारि तजिय तत्थ मुद लेसहू।।६।।

यह सुन कर महाराणा ने मन ही मन सोचा कि कछवाहा राजा बहुत बलवान है। इसके साथ ही राजमल के अपने बात कहने के जादू के कारण महाराणा मूर्ख बन गए और उन्होंने इतना भर कहा कि यदि ऐसा है तो माधवसिंह को पाँच लाख की जागीर दे दीजिये। महाराणा के इस प्रस्ताव को सुनते ही कछवाहा राजा के प्रधान सचिव ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और हाथोंहाथ पट्टा लिख कर दे दिया। इस पट्टे में टोंक का परगना माधवसिंह को लिख दिया। महाराणा ने भी मूर्खता कर अपने भानजे के लिए वह ले लिया। बाद में जब कोटा के राजा को इस बात का पता चला तो उसे यह वृत्तान्त अपने प्रतिकूल लगा। उसे लगा कि सेना सहित साथ आ कर भी महाराणा बहक गए इसलिए हर्षपूर्वक उसने साथ छोड़ दिया।

दोहा

राजामल कूरम सचिव, माया बचनन मंडि।
दिय माधव हित टौंक पुर, लरन रान मत खंडि।।७।।

तदनु रान जगतेस अरु, कोटापति चहुवान।
दुव भूपन कूरम सिविर, किन्नो मिलन प्रयान॥८॥

हो पहिले आवन उचित, कुम्महिँ रान महीप।
पै तस पितु सुच मेटनोँ, मन्नयोँ प्रथम महीप॥९॥

यातैँ रान अरोहि अब, कानक तखत रवान।
रतन छत्र छायित चल्यो, जँहँ दल कुम्म मिलान॥१०॥

कछवाहा राजा के प्रधान सचिव राजामल ने अपने मृदु वचनों की माया से माधवसिंह को टोंक का परगना देना तय कर महाराणा के लड़ने का निश्यच टाल दिया। इसके बाद महाराणा जगतसिंह और कोटा के राजा दुर्जनसाल दोनों मिल कर कछवाहा राजा के शिविर में जाने को रवाना हुए। उचित तो यह था कि पहले जयपुर का राजा चला कर महाराणा से मिलने आता पर इन दोनों राजाओं ने सोचा कि अभी ईश्वरीसिंह को अपने पिता का शोक है इसलिए हमें जा कर इसका शोक मिटाना चाहिए। यह सोच कर महाराणा स्वर्णनिर्मित पालकी पर सवार हुए फिर अपना रत्नजड़ित छत्र छादित करवाया और वहाँ गए जहाँ कछवाहा सेना का पड़ाव था।

संग गमन कोटेसहू, कूरम डेरन कीन।
निज निज भट अंदर लये, कलह जई रु कुलीन॥११॥

तँहँ कोटापति के भटन, किय भटभीर बिसेस।
कीलन सहित सिरायचे, गिरे ठलाठल ठेस॥१२॥

पिक्खत यह कोटेस प्रति, कुम्म भयउ प्रतिकूल।
तिम रानहु अहितहि तकिय, मन फट्टिय सह मूल॥१३॥

इम रान रु कोटेस दुव, कूरम डेरन पत्त।
रान चित्त पलट्यो समुझि, हुव कोटेस बिरत्त॥१४॥

महाराणा के संग कोटा के राजा ने भी कछवाहा राजा के शिविर में जाने के लिए गमन किया। वहाँ पहुँच कर दोनों अपने-अपने रणजयी कुलीन सामन्तों को शिविर में साथ ले गए। वहाँ कोटा राजा के सामन्तों ने विशेष धक्कमपेल मचाई जिससे कछवाहा राजा का डेरा उस भीड़ की टक्कर से खूंटियों सहित गिर पड़ा। यह देख कर कछवाहा राजा ने मन ही मन कोटा के

राजा पर कोप किया और महाराणा का भी मन में अहित ही सोचा। दोनों राजाओं से इस तरह कछवाहा राजा का मन फट गया। इस तरह महाराणा और हाड़ा राजा दोनों कछवाहा राजा के शिविर में मातमपुर्सी करने गए। वहीं कोटा का राजा महाराणा के इस तरह मन पलट लेने पर उनसे विरक्त हो गया।

तीन सहँस कछवाह तँहँ, सज्जित पिक्खि सिपाह।
कोटापति सब सहि रह्यो, किन्नी इन जु कुराह॥ १५॥

कदुक काल रहि सिक्ख करि, इम दुवडेरन आय।
रान पटालय कूरमहु, पुनि आयउ हित पाय॥ १६॥

अह दूजे नृप रान अरु, मिलि कूरम अतिमोद।
बिक्ख्यो सरित बनास बिच, बारन जुद्ध बिनोद॥ १७॥

बुल्ल्यो न्हँ कोटेस तँहँ, यातैं अनखि बिसेस।
बिनुहिं सिक्ख कोटा गयउ, लुट्टत बुंदिय देस॥ १८॥

राजा ईश्वरीसिंह ने जब तीन हजार सिपाही सज्जित देखे तो वह कोटा के राजा द्वारा किये गये कुरीति के प्रदर्शन को चुपचाप सहन कर गया। उसने कुछ कहा नहीं। थोडी देर शिविर में ठहर कर दोनों राजा विदा मांग कर अपने-अपने शिविर में आ गये। इसके बाद कछवाहा राजा भी महाराणा के शिविर में अपना हित सोच कर मिलने आया। दूसरे दिन कछवाहा राजा और महाराणा ने मोदपूर्वक साथ रहते हुए बनास नदी के तट पर हाथियों की लड़ाई का कुतूहल देखा। कोटा के राजा को वहाँ नही बुलाया गया इससे वह और कुपित हो गया इसलिए बिना ही महाराणा की विदाज्ञा लिये कोटा चला गया और रास्ते में बूंदी के प्रदेश को लूटता हुआ गया ।

इत रानहि कूरम अधिप, अद्दरि साम उपाय।
टौंक नगर लघुभ्रात हित, अप्पि रु जैपुर आय॥ १९॥

रानहु पत्तन बनेहड़ा, महिमानी इक मानि।
कितव कूरमन को ठग्यो, आयो गृह भय आनि॥ २०॥

इस तरह कछवाहा राजा ने आदर और साम (संधि) का सहारा लेकर महाराणा को प्रसन्न कर दिया और अपने छोटे भाई माधवसिंह के लिए टोंक के परगने की जागीर देकर वह जयपुर लौटा। महाराणा भी जामोली से

मेहमानी स्वीकार कर बनेड़ा गया और वहाँ से छली कछवाहों का ठगा हुआ मन में भय लिये हुए वापस अपने घर उदयपुर आया।

षट्पात्

मरूपति सौं जयसिंह दम्म गुनईस लक्ख लिय,
ते अब ईस्वरिसिंह पिक्खि समय रु पच्छे दिय।
इत कोटापति अनखि सेन बुंदिय सिर सज्जिय,
करि हड्डुन एकत्त गुमर धरि उच्च गरज्जिय।
बज्जिय निसान डाहल बिसम यह उदंत जग उज्झलिय।
संभर उमेद कोटेस सह क्रमत लैन बुंदिय बलिय ॥२१ ॥

मारवाड़ के राजा अभयसिंह से पूर्व में कछवाहा राजा जयसिंह ने जो उन्नीस लाख रूपये का फौजकसी का दण्ड लिया था। वह राशि नये राजा ईश्वरीसिंह ने समय देखते हुए वापस लौटा दी। इधर कोटा के राजा ने कुपित होकर बूंदी पर चढ़ाई करने को अपनी सेना सज्जित की। सारे हाड़ाओं ने संगठित हो गर्व से उच्च स्वर में गर्जना की। निसान, डाहल जैसे युद्ध के वाद्य बज उठे और इन्हें सुनकर संसार को इतना पता चला कि राजा उम्मेदसिंह कोटा के राजा दुर्जनसाल के साथ अपनी बूंदी वापस लेने को जा रहा है।

दोहा

नागर द्विज गोबिंद जिन, सेनापति कोटेस।
तबहि जोधपुर मुक्कल्यो, लैन मदति बल बेस॥ २२ ॥

नागर जाति के ब्राह्मण गोंविद जो कोटा के राजा का सेनापति था को राजा ने जोधपुर भेजा ताकि वह वहा जाकर सैन्य सहायता पा सके।

षट्पात्

द्विज नागर गोबिंदराम कोटेस सेनपति,
पठयो तब जोधपुर मंडि कग्गर सहाय मति।
यहै समय मरुईस लैन बुंदिय दल पिल्लहु,
सिर हड्डुन आसान करहु कूरम अहि किल्लहु।
गोबिंद बिप्र यह पत्र गहि अभयसिंह अंतिक गयउ।
बहुदिन बिताय अवसर उचित भूपति प्रति हाजरि भयउ ॥२३ ॥

कोटा के राजा ने सेनापति नागर गोविंदराम को जोधपुर एक पत्र देकर भेजा जिसमें सहायता मांगी गयी थी। राजा ने लिखा कि हे राठौड़ राजा बूंदी लेने का यही उपयुक्त समय है इसलिये आप हमारी सहायता को सेना भेजिये। यह अवसर है जब आप हम हाड़ाओं पर अहसान कर सकते हैं और कछवाहा रूपी सर्प का कीलन कर सकते हैं। गोविंदराम इस आश्रय का पत्र लेकर जोधपुर के राजा के पास गया। कुछ दिन बिताने के बाद उसे राजा के समक्ष हाजिर होने का अवसर मिला।

दोहा

कछुक व्याज मरु भूप कहि, सेन दयो नहिं संग।
तरकि बिप्र अजमेर तब, आयो मुररि अभंग॥२४॥

फकरुद्दोला नाम इक, सबल नबाब सिपाह।
पठयो जो गुजरात प्रति, सूबापति करि साह॥२५॥

जवन पीर जारति करन, आयो वह अजमेर।
तासौं मिलि गोबिंद तब, किय रहस्य हित केर॥२६॥

कहिय बिप्र इक लक्ख तुम, हम्सन रुप्पय लेहु।
संग चलहु चतुरंग सजि, लरि बुंदिय लै देहु॥२७॥

यह अंगीकरि मिच्छ वह, भयउ सहाय अभंग।
साहिपुरम सीसोद पुनि, सजि उमेद हुव संग॥२८॥

गोविंदराम द्वारा पत्र दिये जाने पर जोधपुर के राजा ने बहाना बनाया और उसके साथ सेना नही भेजी इससे ब्राह्मण सेनापति को गुस्सा आ गया और वह जोधपुर से सीधा अजमेर आया। यहाँ नवाब फकरुद्दौला नामक वीर योद्धा था। जिसे बादशाह ने गुजरात का सुबेदार बना कर भेजा था। वह यवन नवाबपीर (ख्वाजा) की जियारत करने अजमेर आया हुआ था। कोटा के सेनापति गोविंदराम ने इस नवाब से मिलकर एकांत में गुप्त वार्ता की। यहाँ गोविंदराम ने नवाब के समक्ष एक लाख रूपये देने का प्रस्ताव रखा और कहा कि आप सेना सहित मेरे साथ चलें और हमे बूंदी वापस दिलवा दें। नवाब फकरुद्दौला ने इस शर्त को अंगीकार कर लिया और वह अभंग वीर सहायता करने को तत्पर हो गया। उसके साथ ही शाहपुरा का सिसोदिया राजा उम्मेदसिंह

भी अपने दल को सज्जित कर इनके साथ हो गया।

पादाकुलकम्

द्विज तब लिखि कोटा पठयो दल, इततैं हम आवत रन उज्झल।
गुज्जर धर सूबापति संगति, पुनि उमेद नृप साहिपुरापति ॥२९॥

उततैं तुम दोऊ नृप आवहु, चंड लरन चतुरंग चलावहु।
दुज्जनसल्ल उमेद भूप दुव, हड्डुनपति सुनि लरन सज्ज हुव ॥३०॥

सेनापति ब्राह्मण गोविंदराम ने तब पत्र लिखकर कोटा भेजा कि इधर से हम लोग युद्ध को उद्यत होकर आ रहे हैं। मेरे साथ गुजरात के सूबेदार फकरूद्दौला और शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह अपनी सेना सहित है। उधर से आप दोनों राजा अपनी प्रचण्ड सेना को लेकर युद्ध के लिये आइये। यह सुनकर दोनों हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और दुर्जनसाल युद्ध करने को अपनी सेना सज्जित करने लगे।

दोहा

खुरली पटु नय धिज्ज खम, बरस चउद्दह बेस।
निडर सज्यो उम्मेद नृप, दुपहर जेठ दिनेस ॥३१॥

रसा रसातल बोरि दिय, कनकनैन बुध कूर।
अब उमेद किरिराज इहिँ, सज्यो उधारन सूर ॥३२॥

स्वसा दीपकुमरी सहित,. कोटा मातहिँ रक्खि।
सानुज भूपति सज्ज हुव, अवनि लैन निज अक्खि ॥३३॥

सक इक नभ बसु ससिसमा, मिलि द्वादसि सुचिमास।
कोटापुर सज्जिय कटक, निडर करन अरि नास ॥३४॥

शस्त्र विद्या में पटु, नीति, धैर्य और क्षमा धारण करने वाला जो मात्र चौदह वर्ष की अवस्था में था वह ज्येष्ठ माह की दोपहरी में सूर्य की तरह चमकने वाला निडर राजा उम्मेदसिंह हाड़ा युद्ध के लिये सज्जित हुआ। राजा बुद्धसिंह रूपी हिरण्याक्ष ने पूरी पृथ्वी को रसातल में डुबो दिया था उसका फिर से उद्धार करने को वाराह अवतार रूपी वीर उम्मेदसिंह सज्जित हुआ। बहिन दीप कुमारी और अपनी माता को कोटा में रख कर अपने छोटे भाई के साथ अपनी गई हुई भूमि (बूंदी की जागीर) को वापस लेने के लिये राजा ने

कमर कसी। विक्रम संवत् अट्ठारह सौ एक के आषाढ़ माह की द्वादशी तिथि के दिन कोटा से सेना सज्जित हुई जो निर्भय हो अपने शत्रुओं का नाश करने वाली थी।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ राणा-शिविरकूर्मसचिवागमनमाधवसिंहार्थपंचलक्षरौप्यकाऽऽर्घटोङ्कन गरदेश-लिखनराणानिवेदन तन्माया जगत्सिंहमोहनतत्पूर्व जयपुरशिविरागमन कोटेश्वर दुर्मनी भवन बुन्दी देशधाटिपातनाऽनुकोटाऽऽगमनकूर्मराज-जनकनीतमरुदण्डद्रव्यप्रत्यर्पण महारावसहायार्थगोबिंदरामयोधपुर प्रेषणसाहिपुरेश्वरादिसहिततत्मत्यागमन बुन्दी विजयार्थहड्डेन्द्रसेन-संचयनमष्टमो मयूखः ॥ आदितः ॥२८९ ॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में राणा के डेरे पर कछवाहे के सचिव का आना और माधव सिंह के अर्थ पांच लाख रुपयों के मूल्य (हाँसिल) का टोंक नगर का देश लिखकर राणा की नजर करना, उसके इन्द्रजाल में राना का ठगा जाना, राणा जगतसिंह का पहिले ईश्वरीसिंह के डेरे आना और कोटा के पति का उदास होकर बूंदी का देश लूटकर कोटा जाना, ईश्वरीसिंह का पिता (जयसिंह) के लिये हुए मारवाड़ के दंड के रूपये वापस देना, महाराव का सहाय के अर्थ गोविन्दराम को जोधपुर भेजना, शाहपुरा के पति सहित उसका वापस आना, बूंदी को विजय करने के अर्थ हाड़ों के इन्द्र का सेना संचय करने का आठवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ नवासी मयूख समाप्त हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रितभाषा

भुजङ्गप्रयातम्

सटा धूनिकैं सिंह उम्मेद सज्ज्यो, गदा लै कि दुज्जोध पैं भीम गज्ज्यो।
बिडोजा मनौं जंभ पैं छोह छायो, लग्यो लंक कै अंजनी को लडायो ॥१ ॥

किधौं कुंडली पैं बली पन्नगासी, रिसानौं कि अंधार पैं तेजरासी।
किधौं सिंधु के सूनु पैं संभु तंड्यो, मनौं चंड पैं कालिका कोप मंड्यो ॥२ ॥

जटाजूट तैं बीरभद्रेस जग्गयो, महासेन कै क्रौंच कौं लैन लग्गयो ॥
फटाटोप कै राग पैं नाग किन्नौं, कुबेलाश्व कै धुंधु पैं दाव दिन्नौं ॥ ३ ॥

हे राजा रामसिंह! हाड़ा राजा उम्मेदसिंह अपनी बूंदी लेने के लिए यों सज्जित हुआ मानो कोई सिंह अपनी अयाल (गर्दन के बाल) धुनता हुआ शिकार को जा रहा हो या कि दुर्योधन पर गदा युद्ध में भीम आ रहा हो। मानो जंभासुर पर इन्द्र कुपित हुआ हो या लंका पर अंजनी पुत्र हनुमान ने क्रोध किया हो अथवा किसी नाग पर गरुड़ झपटने को आतुर हो या कि अंधेरे पर सूर्य ने गुस्सा किया हो। मानो समुद्र के पुत्र कामदेव पर शिव ने गर्जना की अथवा चंड नामक दैत्य पर कालिका ने कोप किया हो। मानो शिव की जटा के जूट से वीरभद्र उठा हो अथवा स्वामी कार्तिकेय क्रौंच नामक पर्वत लेने को बढा हो। मानो गिरनारी राग पर सर्प ने फन को छत्र की तरह ताना हो अथवा कुवलयाश्व राजा धुंध राक्षस पर दाँव लगाने को उद्यत हुआ हो।

किधौं हैहयाधीस पैं राम कुप्यो, किधौं राम लंकेस के आजि उप्यो।
रच्यो चाप गांडीव टंकार रंग्यो, गज्यो कै गुडाकेस राधेय गंज्यो॥ ४॥

सज्यो कन्ह कै साहगोरीस सत्थैं, मुरयो लंगरी जानि जैचंद मत्थैं।
धक्यो सोखिबे सिंधु बातापि ध्वंसी, अरयो द्वुंद्व पै बालिज्यौं इंद्रअंसी॥५॥

बलाधीस भूलैन यौं भूप बक्र्यो, चमू संकुली भद्द ज्यौं मेघ चक्र्यो।
लगे सान झंझान धाराल धारी, भ्रमासक्त दज्झैं झरैं फूल भारी॥ ६॥

मानों हे हयाधीश (कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन) पर परशुराम ने भृकुटी तानी हो या कि लंकापति रावण के विरुद्ध रामचन्द्र युद्धोन्मुख हुए हों। मानो गांडीव की प्रत्यंचा को तान कर टंकार करता अर्जुन महाभारत में कर्ण को मारने बढ़ा हो। मानो शाह गोरी के समक्ष पृथ्वीराज चौहान का काका कन्ह सज्जित हुआ हो अथवा लंगरीराय (पृथ्वीराज का सामन्त) जयचन्द्र को मारने मुड़ा हो। मानो समुद्र को सोखने को वातापि राक्षस के संहारक अगस्त्य ऋषि ने कोप किया हो अथवा इन्द्र के अंशवाला बलि नामक वानरराज द्वंद्व राक्षस से भिड़ने को आतुर हुआ हो। इस प्रकार बलाधीश (अरावली का स्वामी) अर्थात् बूंदी का राजा उम्मेदसिंह अपनी जागीर लेने राजा पर चढ़ाई करने चला। इसके लिए उसने अपनी सेना संकुलित की जैसे भाद्रपद की माह की मेघमाला एकत्रित हुई हो। शस्त्रों पर धार देने वाले सकलीगर अपनी सानों को झनझनाने लगे हों और तलवारों की धारों से उड़ते अग्निकणों से स्वयं दाझने लगे।

लरो गाय नोबत्ति पैं घाय लग्गैं, भराक्रांत ह्वै सर्प्पके दर्प्प भग्गैं।
पताका खुली मत्त हत्थीन मत्थैं, सजे डाकिनी प्रेत बेताल सत्थैं ॥ ७ ॥

धुरी टोप सन्नाह बिक्रांत धारैं, इच्चैं चाप घाँघाँ निसानाँ उतारैं।
दसबीन आरूढ़ के तोप दग्गैं, जटा ज्वाल की माल ज्यौं उज्ज जग्गैं ॥ ८ ॥

समै कल्पको भो डिग्यो रत्नसानू, भयो दीह के भेसके बेस भानू।
धैंरैं कुंकुमी चैल के सस्त्रधारी, नचैं मोद के व्यहिबे स्वर्गनारी ॥ ९ ॥

निरन्तर (डाकों) डंडों के प्रहारों की झड़ी से नोबतें गूँजायमान होने लगीं। सेना के प्रयाण से भाराकान्त हो शेषनाग का दर्प चूर हुआ। मदमत्त हाथियों की पीठों पर पताकाएँ फहरने लगीं और रणभूमि में जाने को प्रेत, बेताल और डाकिनियाँ तैयार हुईं। युद्ध की धुरी धारने वाले वीरों ने टोप और कवच पहनें। धनुर्धर धनुष की प्रत्यंचाएं तान-तान कर निशाना साधने लगे। चरखियों पर चढ़ी हुई तोपें दागी जाने लगीं जो ज्वालाओं की माला सी बना कर प्रकाश फैलाने लगीं। प्रलय का सा समां बंध गया सुमेरु पर्वत डिगा और दिन के नक्षत्रेश (चन्द्रमा) के भेष में सूर्य हो गया। कई शस्त्रधारी अपने वस्त्रों को केसरिया कर पहनने लगे और अप्सराओं से विवाह होगा इस हर्ष में उनका मन नाच उठा।

बनैं पिट्ठि बेतंड होदे बिसाली, रचैं जीन बाजीन के पक्खराली।
धुजादंड हत्थीन पैं बेणु बड्ढे, मनौं सैल के शृंग पैं ताल ठड्ढे ॥ १० ॥

लची मेदंनी राग सिंधून लग्गे, भ्रमैं भुम्मियाँ भुम्मि कौं छोरि भग्गे।
परी त्रास मेवास आवास पत्ती, बढी यौं बलाधीस की जोर बत्ती ॥ ११ ॥

घुरैं गज्ज दंती खुलैं सज्ज घोरे, डकेती रचैं चार के हत्थ डोरे।
जरी ओपकैं तोप जंजीर जाली, करैं पिक्खि उच्छाह काली कपाली ॥ १२ ॥

हाथियों की पीठ पर बड़े-बड़े होदे कसे गए और घोड़ों को पाखर पहनाने के बाद उन पर जीन कसे गए। हाथियों की पीठ पर लंबे-लंबे बांसों के ध्वजा दंड लगाये गए मानों पर्वत के शिखर पर ताड़ के ऊँचे वृक्ष खड़े हों। सिंधु राग गाई जाने लगी। पृथ्वी डोलायमान होने लगी जिससे भोमिया भ्रम वश भूमि छोड़ने लगे। लुटेरों और चोरों के आवासों में भय छा गया। चारों ओर बलाधीश (अरावली के स्वामी बूंदी के राजा का संबोधन) उम्मेदसिंह

के साहस की बातें होने लगी। गर्जना करते हाथी घूमने लगे और घोड़े अपनी अश्वशाला से खुल कर बाहर सज्जित होने आए। चार-चार चाकरों के हाथों में पकड़ी डोर से बंधे होने पर भी घोड़े कूद फांद करने लगे। शोभा वाली तोपों की जंजीरों से बंधी पंक्तियां जाल में गुंथी हुई सी लगने लगीं। इन्हें देख कर महादेव और पार्वती (रणचंडी कालिका) उछाह से भर उठे।

दोहा

जंगर टोप बाहुल जटित, हुलसि सूर असि हत्थ।
सजिय सेन बुंदिय सुपहु, सह कोटेस समत्थ॥१३॥

कवच, शिरस्त्राण और बाहुल से सजे-धजे वीर योद्धा अपने हाथों में तलवार उठाते हए हर्षित हुए। ऐसे वीर योद्धाओं वाली बूंदी के राजा की सेना कोटा के समर्थ राजा की सेना के साथ युद्ध के लिए सज्जित हुई।

षट्पात

गज मत्तन गरदाय मिलिग बिरुदाय महाउत,
पालकाप्य आगम प्रभाव जव पाव दाव जुत।
नट कछनी कछि निडर मल्ल रन निपुन महाबल,
आडपेच रचि अतुल अंक भसमी धरि उज्जल।
त्रयरेख अलिक नागज त्रिलक कारे मनहुँ पिसाच कुल।
इभपाल गयउ बिकराल इम बारिन ढिग डंकत बहुल॥१४॥

मदमत्त हाथियों को घेर कर बिरुदाते हुए महावत उनके पास आए पालकाप्य ऋषि के रचे हुए गज शास्त्र (हस्त्यायुर्वेद) के प्रभाव से उन महावतों के पाँव शीघ्रता से दबाव बनाने वाले हैं। ये महावत नटों की तरह कमर पर कच्छी पहने हुए एकदम निडर और रणविद्या में निपुण हैं। पूरे शरीर पर भस्मी और मस्तक पर आड़ी तीन रेखाओं वाले सिंदूर के तिलक लग जाने से ये काले रंग वाले हाथी अभी किसी पिशाच कुल के परिलक्षित हो रहे हैं। इन विकराल देह वाले हाथियों के ठांणों (बांधने के खूंटे) की जगह से उन्हें खोलने को बहुत सारे महावत एक साथ कूदते हुए जाते हैं तब जाकर ये विशालकाय कहीं खुल पाते हैं।

लगि दुकच्छ लंगोट कठिन बजरंग तंग कसि,
दंड अँचि दस बीस फैंकि मुग्दर बिद्या बसि।
झंपन बिबिध बनाय अंग उछटाय अँड भरि,
प्रान त्रान कारन पुकारि केसव प्रनाम करि।
गजबाग हत्थ निब्भर गुमर आयउ सिर गौरव अलप।
मारुत प्रजात बंदर मनहुं मंदर पर लिन्निय मलप ॥१५॥

बजंरगबली की तरह ये महावत दोहरी लंगोट कसे हुए जमीन पर दस बीस दण्ड पेलते हैं फिर अखाड़े के मल्लों की तरह पाँच दस बार मुग्दर घुमाते हैं। इधर उधर की कुछ उछल-कूद कर पहले अपने शरीर में थोड़ी गर्मी लाते हैं। हल्के शरीर वाले ये महावत तब घमण्डपूर्वक अपने शरीर को सांस भर फुलाते हैं अर्थात् पूरी वर्जिश से शरीर का मर्दन करते हैं। फिर अपने प्राणों की रक्षा के लिए अपने इष्टदेव को प्रणाम कर हाथ में बड़ा अंकुश उठाते हैं फिर आत्मविश्वास के साथ हल्के से अपने पाँव का भार सूंड पर दे कर ये इस तरह हाथी के मस्तक पर जा चढ़ते हैं मानो पवनपुत्र हनुमान ने मदंराचल पर्वत पर छलांग भरी हो।

इम कलाप द्रुत आय अक्खि बिरुदन आधोरन,
फोजां नायक फील फते अप्पहु जस जोरन।
जय व्यंजक भंजक कपाट बंके गढ गंजक,
अब तेरे सिर यार भार रक्खिय रन रंजक।
आरुहि मलंगि बिरुदाय इम झट मिलाय लिय मदझरन।
कहि जनक नाम बुल्लिय कुसल कुंभत्थल थप्पलि करन ॥१६॥

इस तरह के प्रयत्नों से हाथी के कलावे पर शीघ्र आरूढ़ हो महावतों ने अपने-अपने हाथी की स्तुति की कि हे सेना के नायक हाथी! यश प्राप्त करने को विजय दिलाना! ओ जय का प्रकाश फैलाने वाले और बांके गढ़ों के कपाटों को तोड़ने वाले हाथी! अब तेरे सिर पर ही युद्ध का भार है। तुम युद्ध में प्रीति रखने वाले हो, इसलिए विजय का घ्यान रखना। इस प्रकार हाथियों पर चढे हुए महावतों ने अपने-अपने हाथी को बिरुदा कर उन्हें शीघ्र ही पंक्तिबद्ध

किया। उन्होंने 'बाप-बाप' का संबोधन दिया और हाथ से कुंभस्थल थपथपाते हुए हाथियों को युद्ध कार्य में संलग्न किया।

फुरत अंग फटकारि रंग रज झारि रुमालन,
अति मेचक आमलन जाल मंडिग जंगालन।
कट बिचित्र कुरुवृंद बहुरि हरिताल बिथारिय,
जंगी अदुक जोर दोर डुंगर पय डारिय।
त्रिपदीन गत्त नद्धिय अतुल लगि कलाप जेवर लसिय।
कुथ डारि गुडन सन्नद्ध करि क्रम बरत्त होदन कसिय॥१७॥

हाथियों के शोभायमान शरीरों पर रंग की लगी रंजी को महावतों ने अपने-अपने रूमाल से झाड़ा फिर उनकी अत्यन्त काले रंग वाली देह पर आंवलों और जंगाल (तांबे से बना रंग) के रंगो से झूल (जाली) बनाई। उनके कपालों पर हिंगलू लगा कर हरताल का विचित्र मिश्रण लगाया अर्थात् श्रृगांरित किया। इसके बाद उनके पृथुल पाँवों में भारी श्रृंखलाएँ (सांकलें) डाली गई। इसके बाद उनके शेष तीनो पाँवों सहित उनके अतुलनीय शरीर को रस्सों से बाँधा और उनके कलावा लगा कर उन्हें जेवरों से विभूषित किया गया। फिर उनकी पीठ पर गद्दा (कुथ) बिछाकर पाखरों से सज्जित किया गया और मोटे रसों से होदे कसे गये।

सकल हेति सिर सज्जि छिप्र आलान छुरायउ,
दैदै बिरुद दुरूह घोर घन गज्ज घुरायउ।
बारी बाहिर बाक डाक बल अचल डगाये,
बढि चरखिन बारुद ज्वाल बिकराल जगाये।
हिंजीर लंब अैंचत हुलसि बल अमान हरवल बढिय।
मानहुं अपुब्ब मेचक मुदिर कज्जलगिरि जंगम कढिय॥१८॥

ऐसे सज्जित हाथियों के होदे में शस्त्र रखे गये फिर उन्हें खंभों जैसे खूंटों (खुंभालों) से खोला गया इसके बाद तरह-तरह के बिरुद के बोल बोल कर उनकी स्तुति की गयी तब मेघ के सामान भंयकर गर्जना (चिंघाड़) करने वाले उन हाथियों को ठाणों (बारी) से बाहर ला महावतों ने अंकुश की हल्की-हल्की चोट दे उन्हें कुपित कर आगे बढ़ाया। इनके बढ़ने से चरखियों

पर लदी तोपें और गोला बारूद भी बढे। क्योंकि मोटी-मोटी लंबी जंजीरों से बंधे इस भारी आयुधों के जखीरे को ये अप्रमाण बल वाले ही अग्रिम पंक्ति में खींचने की सामर्थ्य रखते हैं। ये हाथी ऐसे चले मानों अपूर्व काले मेघ चले या काजल के जड़ पर्वत जंगम हो उठे हों।

भद्र मंद मृग भव्य मिश्र चउ जाति महाबल,
बसा लोभ अति बेग सरत उछटावत शृंखल।
बाल पोत अरु बिक्क कलभ मक्कुन अतिकायक,
जूहनाह जब जोर सज्ज हुव समर सहायक।
गज्जित अनेक उद्धत गुमर बहु सज्जित मदकल बलिप।
गंभीरबेदि परिणत गजब चतुरंगन रच्छक चलिय ॥१९ ॥

इन हाथियो में कोई भद्र जाति का है तो कोई मृग जाति का। ऐसी चारों जातियों वाले भव्य और बलवान हाथी, हथनियों के लोभ से सांकलें उछालते हुए बड़े वेग से चलते हैं। इनमें से कई छोटे बच्चे (ताजा जन्मे हुए) पाठा, मुकने (बिना दाँत वाले)और महाकाय है। ऐसे यूथ के पति, बेगवान और बलवान युद्ध में सहायता देने वाले हाथी सज्जित हुए। घमण्ड के साथ गर्जना करने वाले ऐसे अनेक निरंकुश बलवान और मदमस्त हाथी युद्ध के लिए तैयार किये गये। युद्ध में गंभीर पर अपनी तिरछी घात से गजब ढाने वाले ऐसे सेना के रक्षक हाथी चले।

कतिक व्याल अतिकोप कतिक उपबाह्य कुलाचल,
ईसादंत अनेक बढिग घुम्मत समीर बल।
झरत प्रवृत्ति पटान भोंर करटन भननंकत,
अरु कंदुक जिम उडत झाट अंदुक झननंकत।
फटाकरि सुंडि बमथुन फुहरि पच्छिन नभ छिरकत प्रकट।
बुंदीस सेन अग्ग ति बढिग कमठानन तजि पीनकट ॥२० ॥

इन हाथियों में से कुछ अतिकोप करने वाले दुष्ट हाथी हैं वहीं कुछ सवारी के पर्वत है। कु छ लम्बे-लम्बे दांतों वाले है वहीं कुछ घूमते हुए बढने वाले पवन की तरह बलशाली हैं। इनमें कुछ के अपने पटों से मद झरता है वहीं इन के कपोलों के आस-पास भ्रमर मँडराते रहते हैं। ये अपने

पाँवों में बंधी श्रृंखला के चपेट में आने वाली प्रत्येक चीज को गेंद के समान उड़ा देने वाले हैं। ये हाथी अपनी सूंड में जल भरकर फूंक के जोर से जल कणों की फुहार कर आकाश में पक्षियों पर जल छिड़कने वाले हैं। बूंदी की सेना के अग्रभाग में पुष्ट कमर वाले खँभालो (खुँटों) से छूटे हुए ऐसे हाथी बढ़े।

अहि फन जिम आटोप रचत पुक्खर सिर रक्खत,
दृग लघु दीरघ दिट्ठि चलत मोचाफळ चक्खत।
बंगर कनक बिखान जटित अति जेब जवाहर,
आधोरन आसनन बीत मारत हंकत बर।
चूलिका हरित चित्रित रुचिर अच्छिकूट पीत रु अरुन।
बुंदीस हुकम हंकिय बिबिध तोर जोर बारन तरुन॥२१॥

सर्प के फन की तरह से अपनी सूँड के अग्रभाग को फैलाकर ये जैसे अपने ही मस्तक पर छत्र ताने रहते हैं। ऐसे छोटी आँख पर लम्बी दृष्टि रखने वाले हाथी केले के गाछ को चबाते हुए बढ़ चले। ये अपने दाँतों पर स्वर्ण निर्मित बंगड़ पहने अलग ही शोभा देते अपने महावतों के पैरों से हूलने पर और अकुंश मारने पर चल पड़े। इनके कानों के मूल के चारो ओर हरा रंग पुता हुआ है। वहीं नेत्रों के बाहर गोल-गोल पीले और लाल रंग से चित्रकारी की हुई है। ऐसे तरह-तरह के बड़े प्रताप और बलवाले तरुण हाथी बूंदी के राजा की आज्ञा पाकर रणभूमि की ओर हाँके जाने लगे।

नील हरित निज्जान कतिक करटन कलमासन,
कतिक अवग्रह कपिस अधिक रोहित कति आसन।
अति कडार आरच्छ बिसद बाहित्थ बिराजत,
पीत अरुन प्रतिमान लखत सुरुगुरु कुज लाजत।
बिदुदेस हरिन पालास बनि बातकुंभ नील रु बिसद।
बुंदीस संग हरवल बढिग मातंगप इम झरत मद॥२२॥

जिनके नेत्रों के पास हरा और नीला रंग लगा है और कपोलों पर काला रंग। जिनके ललाट काले और पीले रंग के मिश्रित रंग से पुते हैं और आसन (होदे) वाला हिस्सा लाल रंग की झूल (जाली) से शोभित है। एक

दम गाढा पीला रंग कुंभस्थल पर पुता है और कुम्भस्थल के नीचे का हिस्सा स्वेत रंग से रंगा है। इन हाथियों की पृथुल देह पर लगा ऐसा पीला रंग देखकर बृहस्पति और लाल रंग की शोभा देखकर मंगल लज्जित हों। इनके कुंम्भस्थल के बीच का भाग काला और हरा पुता है वहीं कुंभस्थल का अधोभाग नीला और श्वेत नजर आता है। बूंदी के राजा के साथ ऐसे मदझर हाथियों की हलचल हुई और वे अग्रिम पंक्ति में बढ़ने लगे।

तलपन पीन रु तुंग छजत रीढक पर छादित,
कच्छा रेसम कठिन नद्ध होदन घन नादित।
झुकि कतिकन झंडाल कतिन मेघाडंबर कसि,
सिंहासन कति सज्ज लंब हिंजीर अवर लसि।
डाकन अमान निढ्ढिन डगत झगत जंग अमरख झलक।
उम्मेद हुकम घुम्मत अतुल हंकिय इम हत्थिन हलक॥२३॥

इन हाथियों की पीठ पर मोटे और ऊचें गदद् शोभा दे रहे हैं और होदों के खम्भे से लटकाये गये रेशम के लच्छे (फुंदने) हाथियों के चलने पर हिलते सुंदर लगते है। किसी हाथी की पीठ पर बड़े झंडे झुके (लगे) हैं तो किसी की पीठ पर मेघाडंबर (छायादार होदे) कसे हुए है। किसी हाथी की पीठ पर लंबी जंजीरों से सिहांसन (सिंह के आकार का होदा) बांधा गया इस कारण से वह हाथी दूसरे हाथियों से अधिक शोभायुक्त नजर आता है। ये हाथी सांटमारों के कुपित करने वाले प्रहारों से भी बमुश्किल तमाम आगे बढ़ते हैं। ऐसे अतुलनीय झूमते हाथी राजा उम्मेदसिंह की आज्ञा से रणभूमि की ओर बढ़ाये जाने लगे।

मिलि अनेक मंदुरन प्रीति मंडिय हय पालन,
झलक खेह झटकारि देह फटकारि दुसालन।
दै खलीन बिरुदाय अंस थप्पलि कर ओपित,
जंगी पक्खर जीन अैंचि तंगन आरोपित।
गजगाह मंडि चित्रित गहर लहरदार लूमन ललित।
आनिय तुरंग कंपन अरिन कृत कजाक झंपन कलित॥२४॥

राजा की हयशालाओं में से अनेक अच्छी तरह पाले हुए घोड़ों के शरीर

की दुशालों की फटकार से धूल-रंजी झाड़ (पोंछ) कर उनके मुँह में लगामें दी गई फिर उनके कंधे थपथपा कर ओप वाले सुन्दर घोड़ों को बाहर लाया गया। इनके तंग कसे गए, जीन-काठियाँ लगाई गई और जंगी पाखरों (कवच) से उन्हें सज्जित किया गया। गहरे रंग की गजगाहें बांधी गई और दोनों ओर लहराने वाली लूमों से उनका श्रृंगार किया गया। ऐसे घोड़े सज्जित कर आगे लाये गए जो अपनी लगाम पर सवार की अंगुलियों का संकेत पा कर झंप भर शत्रुओं को भयभीत करने वाले हैं।

गरुत रूप गजगाह उडत मानहुं उरगासन,
पय नेउर रव प्रचुर ललित मंडत बहु लासन।
खुरासान ताजिक तुखार भाडेज भुम्मि भव,
बनायुज रु बाल्हीक जात कांबोज महाजव।
केकान गोजिकानहु कतिक प्रोढहार धावन प्रबल।
हाजरि हइंद नृप अग्ग हुव पलटत पल न लगात पल॥२५॥

तेज गति से चलते इन घोड़ों के गजगाह हवा में यों लहराते हैं मानो अपने पंख हिलाता गरुड़ उड़ रहा हो। इनके पाँवों में बंधे नेवर इस तरह बज रहे हैं मानो कहीं नृत्य हो रहा हो। इन घोड़ों में कोई खुरासान, तो कोई ताजिक, कोई भाड़ेज और कोई तुखार जैसी प्रसिद्ध नस्लों वाले है (अर्थात् उन देशों की भूमि पर उत्पन्न है।) इनमें से कोई बनायुज प्रजाति का है तो कोई कांबोज देश में उत्पन्न हुआ है। कोई बाल्हिक देश में जन्मी हुई प्रजाति का है। ये बहुत तेज गति से चलने वाले हैं। कितने ही गोजिकान के ये घोड़े बल पूर्वक दौड़ने में निपुण हैं ऐसी उत्तम नस्लों के घोड़े बूंदी के राजा के साथ हाजिर हुए। ये घोड़े पलटने में भी पलभर लगाते हैं अर्थात् अतिशीघ्र इधर उधर मुड़ जाने वाले हैं।

आजानेय अनेक पारसीक हु बिनीत पथ,
पंचभद्र जय पूर अष्ठमंगल सुलाभ अथ।
चक्रवाक जवचपल मल्लिलोचन अछेह मन,
कति कियाह काकाह पीत खुंगाह सुद्ध मन।
आलील कपिल बोल्लाह अरु हालक सोन हलाह हय।
पंगुल कुलाह उकनाह पुनि बारुखान अति रय सु बय॥२६॥

कई आजानीक और पारसीक प्रजाति के घोड़े हैं जो मार्ग पर शिक्षा पाये हुए घोड़ों की तरह विचरण कर रहे हैं। विचरण करने वाले घोड़ों के इस समूह में कोई पंचभद्र (जिस घोड़े के चारों पैर और ललाट श्वेत रंग का हों उसे पंचभद्र या पंचमंगल कहते है।) घोड़ा है जो विजय दिलाने वाला है तो कोई अष्टमंगल (चारों पैर ललाट अयाल, मददू अथवा छाती बालछा (पूंछ) के बाल जिसके श्वेत रंग के हो ऐसा घोड़ा) है जो लाभ अर्जित करवाने वाला है कोई चक्रवाक (पीले रंग के घोड़े के पैर और नेत्र श्वेत रंग के हो ऐसा) है तो कोई चपल वेग वाले मल्लिलोचन (महुआ रंग का घोड़ा जिसके चरण और मुख श्वेत हो) हैं जो छेह देने वाले नही हैं। कुछ घोड़े कुमेत (कियाह, रंग विशेष) है तो कुछ काकाह (श्वेत रंग के) है। कुछ पीले (पीत) तो कुछ श्याम (खुंगाह) रंग वाले हैं। कई घोड़े लाख के रंग वाले तो कई नीले (आलील) हैं तो कुछ पीले-नीले रंग के अबलख हैं। कुछ घोड़े बोल्लाह (पीले और श्वेत रंग के अबलख) हैं तो कुछ हालक (पीले और हरे रंग के अबलख) हैं। कई घोड़े स्वर्ण के रंग के सुनहरी (सोन) अथवा कमल के रंग के है तो कुछ घोड़े चित्र-विचित्र रंग वाले है (अर्थात् अनेक मिले रंगों वाले है।) कुछ पंगुल (काँच के सामान कांति वाले) कुछ काले रंग के घुटने वाले (कुलाहे) है। कुछ (पीले और लाल रंग के अबलख) उकनाह है कुछ बारूखान (समदे) पर सारे घोड़े अत्यंत वेगवान और श्रेष्ठ उम्र वाले अर्थात जवान है।

सुलभ लाट अरु सीस कंध मणिबंध कथित क्रम,
देस नाभि हिय देस भाति मुख त्रिक उत्तम भ्रम।
रंध्र जठर गल रुचिर बिहित आवर्त्त बिराजत,
चन्द्रकोस जुत चपल लखत नच्चत मन लाजत।
कति इन्द्र पदम लच्छन कतिक चक्रवर्ति चिंतामनिक।
हुव सज्ज दबत छोनिय हयति फबत माल यालन फनिक ॥२७॥

हे राजा रामसिंह! अब इन घोड़ों में क्रमशः ललाट, मस्तक और गले में बने हुए केशवलयों (मणिबंधों) के बारे में बताता हूँ। जिन घोड़ों के नाभि और हृदय के स्थान पर एक एक केशवलय (भंवरी) विद्यमान है और मुँह

पर ये तीन भंवरियों वाले घोड़े जो उत्तम माने जाते हैं। जिन घोड़ों के रंध्र प्रदेश घोड़े की कुक्षि और नाभि के मध्य की जगह, पेट और गले पर ये आवर्त (केशवलय) बने हैं ऐसे घोड़े भी शुभ हैं। कुछ घोड़े जो चन्द्रकोस (जिस घोड़े के ललाट में दो भंवरियाँ हो) है वे चपलगति वाले जब नाचते हैं तो देख कर मन लजा जाता है। इनमें से कुछ इन्द्र (जिस घोड़े के कंठ में दक्षिण दाएँ मुँहवाले दो केशवलय हों वह इन्द्र कहलाता है) हैं तो कछं पद्म (जिस घोड़े के कंधे के एक ओर भंवरी हो) के लक्षणों वाले हैं तो कई चक्रवर्ती (जिस घोड़े की नासिका पर एक अथवा दो भँवरियां हो) और चिंतामणि (जिसके कंठ की मणियों पर भँवरी हो) लक्षणों वाले हैं। ऐसे घोड़े राजा उम्मेदसिंह के साथ भूमि दबाते हुए रणभूमि की ओर बढ़ने लगे जिनकी अयालें काले सर्पों की माला जैसी लगती हैं।

इक्क बिजय आवर्त्त बहत इक सुकल महाबल,
इक्क कुसुम आमोद इक्क चंदन भव उज्जल।
इक लोहित इक असित इक्क सारंग सेत इक,
पिंग इक्क इक पीत इक्क पालास एत इक।
खुरअग्ग भुम्मि सज्जित खनत बलि गज्जत ऊरध बदन।
चहुवान राज आयस चलिय सहंसन हय जब जय सदन।।२८।।

कोई घोड़ा विजयमणि (पीठ पर केशवलय) धारण करता है तो कोई सुकल (भंवरी विशेष) वाला महाबली है। इनमें से कोई घोड़ा कुसुम आमोद (जिसके मुँह से पुष्प जैसी गंध आती है और जिसका ब्राह्मण वर्ण माना जाता है) है तो कोई उज्वल चन्दन (जिसके मुँह से चंदन की गंध आती है और जिसका वर्ण क्षत्रिय मानते है) हैं। कोई लाल रंग वाला तो कोई काले रंग वाला लक्खी है। कोई नुकरा (श्वेत रंग) का है तो कोई सारंग (चित्र विचित्र) रंग के है। कोई पिंग (पीतल जैसे पीले रंग वाला) जिसे सोवन कलश भी कहते है है तो कोई सामान्य पीले रंग का ही है कोई पलास (हरे रंग वाला) है तो कोई कर्बुर अबलख है। अपने अगले खुर से भूमि खोदने वाले और ऊंचा मुँह कर गर्जना ही सेना करने वाले ये घोड़े हैं जिन्हें शुभ माना जाता है। ऐसे घोड़ों का समूह चहुवान राजा उम्मेदसिंह की आज्ञा से बढ़ा जिसमें ऐसे घोड़े हैं जो वेग और विजय के घर हैं।

दिपत परुख चउ दड्ड रंग कालिक रद बारह,
अंगुल सत बपु उच्च कुच्छ संगर जयकारह।
बीससत्त मुख बिहित करन अंगुल खट केतक,
चाप उपम चालीस अड्ड मित कंध उपेतक।
चउबीस पिट्ठि आयत रुचिर कलित तीस अंगुल कमर।
बालधि प्रलंब चालीस बसु चल धुनाय ढारत चमर॥२९॥

ये घोड़े एक पुरुष (परस, एक नाप) ऊँचे और काले रंग की चार दाढ़ सहित बारह दाँतों वाले हैं। जिनका शरीर सौ अंगुल (एक नाप विशेष) ऊँचाई वाला है और जो रणभूमि में विजय दिलाने वाले हैं। जिनका मुँह सत्ताईस अंगुल लम्बा और जिनके कान केतकी की कली जैसे छह अंगुल लंबे हैं। यही नहीं धनुष की ओपमा वाले जिनके पुष्ट कंधे अड़तालीस अंगुल लंबे हैं। जिनकी चौबीस अंगुल की चौड़ाई वाली पीठ और बीस अंगुल के प्रमाण में जिनकी कमर लंबी है। अपने गात पर चपलता से चँवर ढुलाती हुई जिनकी पूंछ (बालधि) अड़तालीस अंगुल लंबी और घनी है। राजा उम्मेदसिंह की सेना के ऐसे घोड़े पूरे वेग से रणभूमि की ओर रवाना हुए।

चउ दीरघ चउ रत्त च्यारि सुच्छम चउ उन्नत,
च्यारि ह्रस्व नत च्यारि च्यारि आयत मुनीन मत।
मुख भुज केस निगाल सेफ जीह रु ओठ काकुद,
करन पुच्छ पयकोष्ठ प्रोथ सफ गोधि तथा गुद।
दुव करन बंस अंतर दुहुन कक्ष उदर जानुक ककुद।
मुख खंध जानु पंसुलि महित लच्छन हयन मचात मुद॥३०॥

हे राजा रामसिंह! शालिहोत्र बनाने वाले मुनियों के मतानुसार शुभदायक इन घोड़ों के चार अंग लंबे, चार अंग लाल, चार अंग पतले और चार अंग उभरे हुए हैं। वहीं चार अंग झुके हुए और चार अंग मोटे हैं। मैं (ग्रंथकार) अब इन अंगों को यथाक्रम स्पष्ट बताता हूँ। इन घोड़ों के मुख, भुज केश और गला ये चारों अंग लंबे हैं। वहीं इनके चार अंग यथा लिंग, जीभ, ओठ और तालु ये सभी राक्तिम अर्थात् लाल रंग के हैं। इनके दोनों कान, बालछा

और पैरों के गाले (पय कोष्ठ) ये चारों पतले हैं इनकी नासिका, खुर (सूम) ललाट और गुदा ये चारों अवयव उठे हुए हैं। इन घोड़ों के दोनों कान पीठ की हड्डी बार्से का हाड और दोनों कानों के बीच की दूरी छोटी है अर्थात् ये चार छोटे है। इनके चार अंग यथा कोख, पेट, घुटने और मद्दु (ककुद) झुके हुए हैं वहीं मुख, कंधा, घुटना और पंसुलि ये चारों अंग बड़े है। शालिहोत्र के अनुसार ऐसे शुभ लक्षणों वाले घोड़े पूज्य और खुशी देने वाले हैं वैसे ही घोड़े राजा उम्मेदसिंह की सेना में सज्जित हो युद्ध को चले।

कति किसोर अति जोर कतिक जुब्बन छक डंकत,
प्रोथ बजत पवमान हुलसि अंबर बढि हंकत।
धोरित बल्गित धाव इमहि प्लुति अरु उत्तेरित,
उत्तेजित पुनि अटत पंचधारन मनग प्रेरित।
झारत फुलिंग नालन झपटि अतुल प्रसारत उड्डयन।
चातुरि मगंल धारत चपल पातुरि गति डारन पयन॥३१॥

इन घोड़ों में से कई किशोरवय के होने से और कुछ यौवनावस्था के कारण बड़े बल से कूद-फांद करते बढ़े। जिनके नासाछिद्र प्राणवायु के जोर से बजने लगे जिससे प्रसन्न हो ये अंबर में बढने की सोचते हुए बढे। ये घोड़े अपनी पाँच प्रकार की चालों (गतियों अर्थात् धोरित, बल्गित, धाव, (प्लुति) और उत्तेरित नामक पंचधाराओं) में निष्णात हैं ये उन्हीं से प्रेरित हो मार्ग पर बढ़ने लगे। चलते हुए अपंनी खुरतालों से स्फुलिंग (अग्निकण) उड़ाते और अतुलनीय उड़ान भरते बढ़े। राजा उम्मेदसिंह की सेना के ये घोड़े नृत्यरत गणिका की तरह अपने पाँव धरती पर रखते हुए और कहीं-कहीं पर खड्डा आ जाने से चपल फलांग को साधते हुए बढ़े।

रजत पत्त खुर रजत ललित अय पक्क नाल लगि,
थित जिम देवल थंभ चरन अति दृढ लगैं न चगि।
पुट्ठे गरद प्रपीन रुचिर छतिय परिणाहत,
कंध कुटिल कोदंड सजव धज कसत उसमाहित।
मारत मलंग सेनन मुकुट एनन जब पारत अलप।
उम्मेद नृपति अग्गल अटत मानहु नट भग्गल मलप॥३२॥

इनके खुर (सूम) चांदी के पतरों की पर्त से मँडे हुए हैं ओर उन सुन्दर खुरों में पक्के लोहे (इस्पात) की नालें लगी हैं। ऐसे घोड़ों के चरण मन्दिर के स्तम्भ की तरह दृढ हैं जो भूल कर भी ठोकर नही खाते हैं। जिनके पुष्ट और गोल पुट्ठे (पीठ), सुन्दर चौड़ी छाती और धनुष के समान झुके हुए कंधे हैं ऐसे घोड़े एकाग्रचित्त हो कर वेग के साथ चलने में भी अपनी शोभा दे रहे हैं। सेनाओं के मुकुट कहलाते ये घोडे छंलागे लगाते हुए जब दौड़ते हैं तो हरिणों की गति इनके समक्ष न्यून हो जाती है अर्थात उनकी गति को अपने वेग से अल्प बना देते हैं। राजा उम्मेदसिंह के आगे चलते हुए ये ऐसे लगते हैं मानों कोई नट अपने खेल में मलाफ रहा हो अर्थात् कूद रहा हो।

नव चेरिन नखराल घलत घुम्मर नचि घेरिन,
फेट लगत जिन फाल पिरत हत्थिय चकफेरिन।
तीय कनीनिय तरल सरल सच्चे मुख सोहत,
मंजु पसम मखतूल मुकुर बिग्रह छबि मोहत।
रय जोर लैन संगर रचक भचक पारि अहि झुम्मि भर।
चरनन नमाय मारत मचक लचक जानि हिंडोल लर।।३३।।

ये घोड़े नवयुवतियों की तरह नखराले हैं और उन्हीं की तरह घूमर लेकर नृत्य करने में प्रवीण हैं। ये वही घोड़े हैं जो संमरागण में उछल कर दी हुई अपनी जोरदार टक्कर से हाथियों को चक्कर गिन्नी खिलाने वाले है। ये स्त्रियों के नेत्रो की तरह चपल हैं पर इनका चेहरा सरल और सच्ची शोभा वाला है। रेशम के धागों की तरह इनके शरीर के बाल और काँच की तरह चमक वाली अपनी छवि से ये देखने वाले को मोहित करने की क्षमता वाले है। ये अपने बल के वेग से युद्ध में टक्कर लेने वाले है और अपने पैरों की मचक से पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग के फणों को लचकाने वाले है। ये जब अपने पाँवो को झुका कर छलांग लेते हैं तब सवार को झूले की लड़ी में बैठ कर पेंग लेने जैसा अनुभव होता है। राजा उम्मेदसिंह की सेना के ऐसे घोड़े बढ़े।

चरखन तोप चढाय चित्र मंडिग ति[illegible] चारन,
सनि आनन सिंदूर पूर सज्जिय गढ पारन।

दिपत लंब धुजदंड जीह अंतक जिम हल्लत,
इक्क निमेस अनेह अट्ठ नव फैर उगल्लत।
बिथुरात ज्वाल लालिय बिखम अरि छत्तिन सालिय अपित।
आलिय अनेक नालिय अतुल कालिय जिम चालिय कुपित ॥३४॥

हाथी और घोड़ों के अतिरिक्त राजा उम्मेदसिह की सेना की तोपों के चाकरों अर्थात् तोपचियों ने भारी तोपों को चरखियों पर चढा कर उन्हें चित्र-विचित्र रंगों से सजाया। उनके मुख पर सिंदूर का आलेप लगा कर इन दुर्गों को खंडित कर ढहाने वाली तोपों का श्रृंगार किया। इनके साथ चलने वाले लंबे (ऊँचे) ध्वजदंड हिलते हुए ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे यमराज की जिव्हा लपलपा रही हो। निमेष भर में आठ-नौ धमाके करने वाली और अग्नि की असहनीय ललाई का प्रसार करने वाली ऐसी काली लंबी नालों वाली तोपों की पंक्तियां राजा उम्मेदसिंह की सेना के साथ यों बढ़ी जैसे कुपित स्वरूप में कालिका चढ़ी आ रही हो।

कुंभीनस आनत किनीक मकर रु मइंद मुख,
करभ सरभ कति कोल बदन धारंत रीस रुख।
हंकत खिन हरबल्ल होत दुद्धर नर हल्ले,
अँचत वृख गन अग्ग पिट्ठि मारत गज टल्ले।
अयपिंड गिलत धटिक्क उभय बलि दर्गेन पब्बय बचत।
हंकिय दलेल उप्पर हलक रव चटट्ठ चक्रन रचत ॥३५॥

इनमें से कुछ तोपों की मुखाकृति फण किये हुए सर्प जैसी है तो कुछ सिंहमुखी हैं। कुछ मकरमुखी हैं तो कुछ ऊँट के मुँह जैसी हैं। कुछ तोपों का मुख सूअर जैसा है तो कुछ केसरी सिंह जैसे मुखवाली हैं। जिनके मुख पर सदैव क्रोध ही नजर आता है ऐसी तोपें चलीं। जिसके चलने की हलचल के साथ दुर्द्धर्ष वीर योद्धा रण भूमि की ओर बढ़े। इन तोपों को आगे से बैलो की जोड़ियां खींचती और पीछे से जिन्हें हाथी धकेलते हैं। दस सेर (एक धड़ी) के भार वाले दो-दो गोले निगलने वाली ये तोपें जब दागी जाती है तो सामने वाले पर्वत भी सुरक्षित नहीं रहते। बूंदी के दलेलसिंह हाड़ा पर चढाई करने जाती हुई अपने पहियों से 'चटठ्ठ' की ध्वनि करने वाली ये तोपें राजा उम्मेदसिंह की सेना के साथ बढीं।

सब अनीक इम सज्जि अप्प हयराज अरोहिय,
लिय कोटेसहिं लार सार अक्खिय रन सोहिय।
घुरि नोबति घनघाय कलह त्रंबक जय कारन,
बजि कजाक बड बाक हार प्रतिहार हजारन।
संक्रमि अनेक उद्धत सुभट तरिन बैठि चम्मलि तरन।
बुधसिंह सुवन आदेस बस लगिय मग्ग बुंदिय लरन॥३६॥

अपनी ऐसी सेना के पूरी तरह सज्जित हो जाने पर राजा उम्मेदसिंह हाड़ा अपने अश्वराज पर आरूढ हुआ और कोटा के राजा को अपने साथ ले कर युद्ध करने रवाना हुआ। इस समय उसने बड़े नगारे बजवाये और युद्ध में विजय करने को तासे बजवाये। हजारों द्वारपालों (नकीबों) ने अपनी ऊँची आवाज में युद्ध में उत्साह के बड़े वचन (बड़बाक) कहे। इसके बाद उनके अनेक उद्धत योद्धा चल कर आगे चम्बल नदी को पार करने हेतु नावों में सवार हुए। राजा बुधसिंह के पुत्र राजा उम्मेदसिंह हाड़ा की आज्ञा के वशीभूत हो उसकी सेना ने युद्ध करने हेतु बूंदी जाने वाला मार्ग लिया।

चम्मलि तट मिलि चक्र पंति छादित जल पोतन,
क्रीड़ा बहुबिध करत सूर छेकत जब स्त्रोतन।
उडुपन कति आरूढ तिरत कति भेल तरंडन,
कतिक झारि बंदूक रचत कुंभीरन खंडन।
दल भीर नीर बढि बढि दु दिस मरजादन लोपत महत।
सजि सेतु मनहुं दसकंध सिर बंदर जल अंदर बहत॥३७॥

चंबल नदी के तट पर पहुँच कर सेना नावों की पंक्तियों में सवार हुई। फिर जलक्रीड़ा करते योद्धाओं ने शीघ्रता के साथ नदी पार की। नदी में कहीं पर छोटी नाव (उडुपी) कहीं भेल (नाव विशेष) और कहीं तरंड नावों में सवार योद्धा ही योद्धा नजर आने लगे। नाव में सवार कुछ योद्धा चलती नाव से अपनी बंदूक चला कर मगरमच्छों को घायल करने लगे। इस भीड़ अर्थात् बड़ी सख्या वाली सेना के नावों में आरूढ होने पर नदी का पानी अपने तटों की सीमा का उल्लंघन करने लगा। ऐसा लगता था मानों सेतु बना कर रावण पर चढ़ाई करने राजा रामचन्द्र की वानर सेना बढ रही हो।

अवधिराज उम्मेद दीप सोदर लछमन दुति,
कोटापति कपिराज निडर सुग्रीव रजत नुति।
सजि अंगद सिवसिंह बैरिसल्लोत देव सुव,
पवन पुत्त सुखसिंह महासिंहोत धीर धव।
तोक रु प्रयाग नल नील तिम मिलि हंकिय जय जंग मन।
बुंदिय बिदेह तनया अरथ हठि दलेल रावन हनन॥३८॥

इस सेना में राजा उम्मेदसिंह तो जैसे रामचन्द्र हो और राजा का छोटा भाई दीपसिंह जैसे लक्ष्मण हो। कोटा के राजा निडर कपिराज सुग्रीव की तरह स्तुति करने वाले हुए और वैरीसालोत देवासिंह हाड़ा का पुत्र शिवसिंह अंगद की तरह शोभा पा रहा हो। महासिंहोत कुल के धीरसिंह हाड़ा का पुत्र सुखसिंह यहाँ इस सेना का हनुमान हो। संतोखसिंह (तोकसिंह) और प्रयागसिंह ये दोनों नल और नील हों। बुंदी रूपी सीता को अपने घर वापस लाने के लिए और दलेलसिंह रूपी रावण का नाश करने को ऐसी सेना युद्ध में विजय पाने को बढ़ी।

तरि इम चम्मलि तोय कटक आरुहि केकानन,
हंकिय रन हुसियार बीर बेधत खग बानन।
चालुक कति चहुवान, जोध कूरम कति जद्दव,
कति सीसोद कबंध भटन मंडिय घन भद्दव।
कोतुक अनेक खुरलिय करत रन दुरूह पंडित रजिय।
बुधसिंह सुवन अतिजोर बल सठ दलेल उप्पर सजिय॥३९॥

चंबल नदी के पानी की धारा को इस तरह पार कर सेना जब दूसरे तट पर पहुँची तो यहाँ से वीर योद्धा अपने-अपने घोड़े पर सवार हो आगे चले। युद्ध में अपनी तलवारें और तीर चलाने में निष्णात ये वीर योद्धा रणभूमि की ओर बढ़े। इस योद्धाओं के समूह में कोई चालुक्य तो कोई चहुवान वंशीय था। ऐसे वीर भाद्रपद माह की मेघ घटा की तरह रणोत्साह में घुमड़ते बढ़े। जिनमें कुछ दुरूह रणविद्या के पंडित चले, वहीं कई शस्त्रविद्या से कौतुक रचने वाले योद्धा शोभायमान हुए। हाड़ा राजा बुधसिंह का पुत्र राजा उम्मेदसिंह अपनी बलवान सेना के साथ दुष्ट दलेलसिंह पर चढ़ाई करने चला।

चलत रेनु रवि ढंकि चक्क चक्किन बियोग बनि,
कुंभीनस कसमसत भोग फट्टंत हंत भनि।
दिग्गज गन डगमगत जगत संकर समाधि जिम,
उदधि नीर उच्छलत तुंग गिरि हलत शृंग तिम।
जिम फल अनार कन रद जगध इम भीरुन जल उत्तरिग।
दिस दिस जिहान मंडिग दुमन प्रलयकाल संभ्रम परिग।।४०।।

सेना के प्रयाण से उड़ी धूल ने अबंर में पसर कर सूर्य को ढक लिया उसके कारण रात का सा आभास होने लगा जिसे देख कर चक्रवाक पक्षियों की जोड़ी ने वियोग लिया। सेना के भार से लचकते हुए अपने फणों के कारण शेषनाग ने 'हाय-हाय' के बोल उचारे। सभी दिशाओं के दिग्गज डगमगाने लगे और महादेव की समाधि भंग हो गई। समुद्र का पानी अपनी मर्यादा छोड़ कर उछलने लगा। ऊंचे पर्वतों के शिखर डगमगाने लगे। जिस प्रकार अनार के दानों को दांतों से कुचलने पर पानी उतरता (निकलता) है उसी तरह युद्ध की हलचल सुन कर कायरों का पानी उतरने लगा अर्थात् उनका पराक्रम छुटने लगा। सभी दिशाओं के लोग भय से उदास हो गए क्योंकि उन्हें यह भ्रम होने लगा कि प्रलय की वेला आ गई लगती है।

प्रत्यागम रचि पवन फिरत लगि लगि दल फेटन,
झुंड गजन झंडाल झुकत फहरात झपेटन।
बन जंतुव हतबेग रहत थकि थकि जिहिं अंतर,
चलिग चक्र इम चंड दब्बि निज ओघ दिगंतर।
भय सुनि अपार गन भुम्मियन जित तित बढि भज्जन जिकर।
पक्खर न मात गेलन पहुमि नभ न मात सेलन निकर।।४१।।

सेना के झुण्ड से टकरा कर पवन प्रत्यागमन करने लगा। हाथियों की पीठों पर लगी ध्वजाओं के फहरने की झपट से हाथियों के झुण्ड झुकने लगे। इसी बीच वन्य जीव भी हतवेग हो कर थके-थके से नजर आने लगे। वे समूह के समूह इस प्रचण्ड सेना की हलचल सुन कर सुरक्षित स्थानो में दुबक गए और वहाँ शेष रहे लोग भी जिधर रास्ता मिला उस मार्ग पर भाग

निकले। सेना भी ऐसी कि भूमि के मार्गों में पाखरों समेत घोड़े नहीं समाते थे और आकाश में भालों के समूह नहीं समाते थे।

निज हठ कच्छप निठुर हत्थ बासुकि छवि छावत,
तिम मंदर तक्राट भिदुर करवाल भ्रमावत।
दल कोटापति दितिज अदिति संभव दल अप्पन,
उद्यम गति अनुसार थोक सम्मलि फल थप्पन।
जागर बिथारि गद अरि जनन कहि कहि गुन आगर कथन।
चहुवान इंद्र नागर चढिय मनु बुंदिय सागर मथन।।४२।।

(यहाँ ग्रंथकार समुद्र-मंथन के रूपक से कह रहा है कि) राजा उम्मेदसिंह का अपना राज्य वापस लेने का हठ तो कच्छप रूप है। इसके हाथ हैं वे वासुकि सर्प की शोभा पा रहे हैं। यह जो अपनी वज्र रूपी तलवार रखता है इसे मंदराचल पर्वत समझें (जो कि मंथन दंड की तरह समुद्र मंथन में प्रयोग हुआ था) और वह इसे घुमाता है यह मंथनदंड का फिराना है। कोटा का राजा शत्रुसाल और उसकी सेना दैत्य और दैत्यदल रूप है (यहाँ कोटा के राजा को दितिज (दिति के पुत्र) दैत्य इसलिए लिखा है क्योंकि आगे यह शत्रुसाल उम्मेदसिंह से बूंदी छीनेगा- संपादक।) अदिति के पुत्र और सामने उम्मेदसिंह की सेना है अर्थात् देवगण हैं। यह चढ़ाई समुद्र के मथने का उपक्रम है और सेना का सम्मिलन स्थल ही मंथन का स्थल होगा। शत्रुओ में जागरण रूपी अनिद्रा का रोग फैला कर अपनी सेना का गुण कथन करते हुए चहुवानों का इन्द्र राजा उम्मेदसिंह रूपी परमेश्वर बूंदी रूपी समुद्र को मथने चला।

प्रलय पोंन परमान दिपत हंकिय दल दुद्धर,
मिलिय आनि मग मध्य कतिक पर भट निवेदि कर।
सक इक नभ बसु सोम मास आसाढ पक्ख सित,
तिथि द्वादसि दल तुंग हलिय रन मत्त लरन हित।
छिति अप्प लैन रस बीर छकि द्रुत मुकाम इक बीच दिय।
बड अंतरीप जलजाल बिधि नृपबर बुंदिय बिंटि लिय।।४३।।

प्रलयकाल के पवन की तरह कठिनाई से घर्षणा की जाए ऐसी दुर्द्धर्ष

सेना चली। भारी सेना का आगमन सुनकर सेना के मार्ग में शत्रु (दलेलसिंह) के कई सामन्त चला कर आए और राज को खिराज अदा किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ एक के आषाढ माह के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन उम्मेदसिंह की बड़ी सेना युद्ध करने को रणभूमि की ओर बढी। अपनी ही भूमि को वापस अपने अधिकार में करने वीर रस के उद्वेग से भरे राजा उम्मेदसिंह की सेना ने यहाँ पहुँचने तक बीच में एक पड़ाव किया। किसी बड़े अंतरीप टापू के जिस तरह चारों ओर पानी होता है उसी तरह राजा उम्मेदसिह की सेना ने आ कर अपना प्रसार बूंदी नगर के चारों ओर फैला लिया अर्थात् नगर को घेर लिया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ कोटेश सहित हड्डेन्द्रावराड्डुम्मेदसिंहसज्जीभवन सेनासौभाग्यविजयाभिर्निर्याणगजहयनालीयन्त्रसुभटादिवर्णनचर्मण्वतीलंघनमार्गेक प्रपातकरणदिगन्तरातङ्कप्रसरणबुन्दीवेष्टननालीयन्त्ररणप्रारम्भणंनवमो मयूखः॥ आदितः॥२९०॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अ़ष्टम राशि में कोटा के पति सहित हाडों के इन्द्र रावराजा उम्मेदसिंह का सज्जित होना, विजय करने वाली सौभाग्यवती सेना का निकलना, हाथी, घोड़े, तोपें, सुभट आदि का वर्णन, चामल नदी लांघकर बीच में एक मुकाम करना, दिगन्तों तक भय फैला कर बूंदी को घेरना, तोपों के युद्ध का प्रारंभ होने का नवमा मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ नब्बे मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात

धकि पावक धमचक्क जाल तोपन जंजीरित,
जपि जपि क्रंदन जाप पुर सु तपि तपि हुव पीरित।
परत बप्र प्राकार गिरत कपिसिर उडि गोलन,
बरत द्वार बाजार झार मारुत झक झोलन।
बिखरत गवाक्ष जालिय बहुल झरत सौंध मंडप झपट।
मानहुं बिनास भावक मचिग लंकापुर पावक लपट॥१॥

हे राजा रामसिंह! तब राजा उम्मेदसिंह की सेना ने बूंदी को घेर कर जंजीरों से जकड़ी हुई तोपों के समूह से आग उगलते गोलों के प्रहार से युद्ध आरंभ किया। इन गोलों के प्रहारों से नगर में 'हाय-हाय' के क्रंदन का कुहराम मच गया। लोग अग्नि की ज्वालाओं के उत्ताप से पीड़ित हो उठे। गोलों के प्रहारों से धूल कोट (कच्ची दीवारों) सहित पक्की प्राकार की दीवारें ढहने लगीं और कंगूरे उड़-उड़ कर गिरने लगे। पवन के झकोलों से अग्नि बाजार के मार्ग में फैलने लगी जिससे बहुत सारे झरोखे और जालियां टूट कर बिखरने लगे, वहीं महलों के मंडप गिरने लगे। भविष्य में होने वाले भारी विनाश से बूंदी की ऐसी हालत हो गई जैसी हनुमान द्वारा आग लगाए जाने पर लंका नगरी की हुई थी।

डिगि पब्बय कटि कूट तपिग उन्नत तारागढ़,
बढिग झाल बिकराल रचिग संगर रावन रढ।
नैर परिग हटनारि सकल पुरजन अति त्रासित,
जरत गेह बढि ज्वाल प्रबल बारूद प्रकासित।
छिज्जत निवान पानिय छिनकि हुव धूमित दस मित हरित।
रुंकि जीह दंत संकट रहत इम बुंदिय दल आवरित॥२॥

पर्वत के शिखर कट कर डिगायमान हुए और ऊँचा तारागढ दुर्ग तपने लगा। रावण के हठ जैसे हठ से शुरू हुए इस युद्ध की ज्वालाएँ विकराल रूप लेने लगीं। नगर के सारे निवासी अत्यंत भयभीत हो गए और नगर में जैसे सर्वत्र हड़ताल का माहोल हो गया। बारूद की प्रबल अग्नि पुरवासियों के घर जलने लगे। जलती ज्वालाएँ धधकती हुई आगे से आगे बढने लगीं। जलते घरों पर पानी छिड़कने से उठने वाले धुएँ से दशों दिशाएँ धूम्रयुक्त हो गई और पानी के स्रोत छीज गए। जैसे मुँह में दाँतों के घेरे में जीभ सिमटती है उसी प्रकार उम्मेदसिंह की सेना के घेरे में बूंदी सिमट गई।

कटि गोलन परि कूट गिरत जिति तित पुनि गोपुर,
गृह चत्वर शृंगाट प्रचुर प्रासाद तप्यो पुर।
सिंहद्वार संजवन जरत कुट्टिम घन ज्वालन,
बीथी बिपणि बजार दहत अंगार दवालन।

अपवरक कोस अवसधि अटज जगत चंद्रसालन ज्वलन।
होत्रय काय मान्न दहत छबि अलात रचि उच्छलन॥३॥

दहकते गोलों के प्रहारों से दरवाजों के शिखर जलने से शहर के द्वार गिरने लगे। घरों के चौक, चौराहे तपे वहीं बहुत सारे महलों के तपने के साथ पूरा नगर तपने लगा। नगर में प्रवेश के सिंहद्वार, और उनके सम्मुख बनी चार द्वार वाली चोपड़ें जलने लगीं वहीं छोटे-छोटे कच्चे घर तेजी के साथ जल कर भस्म होने लगे। गलियों, व्यापार की पेढियां और बाजार दहकते अंगारों की भेंट चढ़ने लगे। नीचे वाले घर, भण्डार, औषधशालाएं आदि में आश्चर्यजनक अग्नि प्रज्वलित हो उठी इससे मकानों के ऊपर बनी चन्द्रशालाएँ भी भभक उठीं। पूरी बूंदी जैसे यज्ञशाला में बदल गई जहाँ से अग्निकण उड़ने लगे।

आथरबन आताप मचत फुल्लिंग महानस,
तपि कटाह जिम तेल मनुज कुक्कत दुख मानस।
आवेसन बपनी अनेक सिलगंत प्रतिश्रय,
पाकपुटिन झलपट्ट लगत जिम अग्गि महालय।
गर्त्तिका बहुल गोसालगृह गंजा पक्कवण घोखगन।
मंदुरा चतुर सिलगत अमित जगत द्वार बेदिन ज्वलन॥४॥

अथर्ववेद में वर्णित मारण मोहन जैसे संताप देने वाले स्फुलिंग जो सामान्यत:रसोईघर से उड़ते हैं वे अब शान्तिग्रहों से उड़ने लगे (यहाँ आथरवन शब्द से अथर्ववेद संबंधी संताप से एक अर्थ ग्रहण किया, वहीं दूसरे अर्थ में शान्तिग्रह का भाव लिया है-संपादक) कड़ाह में उबलते तेल की तरह मनुष्य दु:खी हो कर कूकने लगे। नगर में कहीं पर सभास्थल जल उठे। कुम्हार के आँवे में जैसी ज्वालाएँ धधकती हैं वैसी ज्वालाएँ बड़े-बड़े आवासों को जलाने लगीं। जुलाहों की तंतुशालाएँ, गोशालाएँ, मदिरागृह (कलालों के घर) भीलों के आवास और अहीरों के घर धधक उठे। नगर में अवस्थित हयशालाएँ, गजशालाएँ जलने लगीं वहीं लोगों के घरों के प्रवेशद्वारों के साथ बाहर बने चबूतरे भी जल उठे।

गृह अरिष्ट यंत्र गृह बेस मंडप अंगन बट,
लगि बासोक अलाव चवत एडूक चटच्चट।

उत्तरंग पुनि अरर थंभ छत्रिन थहरावत,
परिघ बिंटक प्रघाण लगत पावक लहरावत।
नासा रु पटल बलभिन निकर इन्द्रकोस दंतक अतुल।
प्रग्रीव बहुरि जालक प्रथित प्रजरत इम गेहन बिपुल।।५ ।।

तोपों के गोलों से बरसती अग्नि में कहीं प्रसूतिग्रह जलने लगे तो कहीं तेलघर। कहीं उत्तम मंडप धधकने लगे तो कहीं आंगन का रास्ता सुलग उठा। कहीं शयनागार में घुस कर ज्वालाएँ 'चट-चट' की ध्वनि के साथ दीवारों को तड़काने लगीं। द्वार के बाहर लगी काष्ठ की घोड़ियां जलने लगीं तो कहीं कपाट धधकने लगे। छत्रियों के थंभे थहराने लगे। कपाट रोकने को लगी अर्गलाएँ सुलग उठीं तो कहीं घरों में पक्षियों के काठ के बने पिंजरे दाझने लगे। कहीं घर के बाहर के द्वारों (प्रघाणों) में लगी अग्नि की ज्वालाएं लहराने लगीं। कहीं चोखटें सुलगीं तो कहीं छज्जे (पटल) जल उठे। खपरेलों में लगी आधार रूप काठ की मियालों (बल्लभिन) के समूह ने आग पकड़ी तो कहीं चारपाइयाँ 'धू-धू' कर जल उठीं। घरों में लगी काठ की खूटियों को भी आग ने अछूता नहीं छोड़ा। झरोखे, जालियाँ, खिड़कियाँ आदि घरों में ज्वलनशील सारी चीजें जलने लगीं।

कति सह अन्न कुसूल निकर सोपान निसैनिन,
जरत सालभंजीन उडत बनि छार सु नैनिन।
पेटा पुनि संपुटक कतिक बर सिल्प करंडक,
कंडन मुसल कलिंज भंति बाहुल चय भंडक।
इत्यादि सकल गृह उपकरन दगि अलाव पावक दहत।
द्रंग जन त्रसित यह लखि दुरन तहखानन कानन चहत।।६ ।।

नगर के कई घरो में बने धान से भरे कोठे जलने लगे तो कहीं सीढियों ने आग पकड़ी। नीसरनियाँ भभकीं तो शालभंजिकाएं जलने लगी। कहीं काठ की बनी पुतलियां जल कर महीन राख हो इधर-उधर उड़ने लगी। कहीं पेटियां (सन्दूकें) जलीं तो कहीं डिब्बे। कहीं श्रेष्ठ कारीगरी के नमूने रूप करंड (टोकरे) जलने लगे। कहीं ओखलियां जलने लगीं तो कहीं मुसल जले। कहीं चटाईयाँ जल कर राख हुई तो कहीं अग्नि के उत्ताप से

भांड (मिटटी के पात्र) तड़कने लगे। तोपों के गोलो से फैली आग में नगर के गृहस्थियों के सारे उपकरण यों जलने लगे जैसे लोगों ने अलाव जलाएं हों। पुरवासी यह देख कर भयभीत हो गए। कोई तहखाने में दुबकने दौड़ा तो कोई घर छोड़ कर जंगल की ओर भागा।

तरु देवल पुर ताल काल कचमाल कदंबित,
जरत बिपंचिन जाल नागदंतन अवलंबित।

मंच बहुरि प्रतिमंच सुघट बिष्टर सिंहासन,
बिखरत बीथिन बीच परत आलय चहुं पासन।

त्रपु नाग द्रवत अतिसय तपित पारद उड़त अकास पथ।
जुत तूल राल गंधक जरत करत तोप कल कल अकथ॥७॥

नगर में फैली आग की भेंट कई पेड़ चढ गए। कहीं मन्दिर जले तो कहीं ताल सूखे। कहीं कासमर्द (वृक्ष विशेष, कालाहर) के वृक्ष जलने लगे तो कहीं केशों के समूह। कहीं खूंटियों पर टंगी हुई वीणाएं (वाद्य यंत्र) सुलगने लगीं। कहीं खाट और कहीं बड़े पलंग जले तो कहीं सुन्दर घड़े हुए बाजोट और सिंहासन (पीढे) जलने लगे। आग गलियों में पसरी तो आस-पास के घर भी उसकी चपेट में आ कर जलने लगे। अग्नि चारों ओर पसर गई। कहीं-कहीं तो आग से पिघल कर सीसा और कथीर भारी मात्रा में बह निकले वहीं पारा आँच पा कर आकाश मार्ग में उड़ने लगा। कपास-रूई, लाख, गंधक आदि इधर-उधर धधक-धधक कर जलने लगे वहीं उम्मेदसिंह की तोपें अकथनीय कोलाहल के साथ निरन्तर चलती रहीं।

दोहा

इम तोपन आताप अति, बुंदिय नगर बिहाल।
सठ दलेल अति भय सहित, कलि वह मन्यों काल॥८॥

तारागढ चढि गय त्वरित, अंतहपुर जुत एह।
इम उमेद भूपति अतुल, मंड्यो गोलन मेह॥९॥

साहिपुरप जुत सेनपति, इततैं वह द्विज आय।
जंग कठिन लखि तिहिं जवन, लिय गुजरात [illegible]लाय॥१०॥

इस प्रकार तोपों की अग्नि से पूरा बूंदी नगर बेहाल हो उठा तब दुष्ट दलेलसिंह ने भी इस युद्ध को साक्षात काल (मृत्यु) रूप माना। वह अपने

जनाना सहित तुरन्त ही महलों का त्याग कर तारागढ पर जा चढा। बूंदी को घेर कर राजा उम्मेदसिंह के तोपखाने ने नगर पर जैसे तपते गोलों की वर्षा कर डाली। शाहपुरा के राजा एवं ब्राह्मण सेनापति गोविन्दराम दोनों दल सहित उधर से आ मिले। तभी इस जंग (संग्राम) को लड़ना कठिन समझ कर गुजरात के यवन सूबेदार ने गुजरात की ओर पलायन किया।

सचरणगद्यम्

या रीति रावराज उम्मेदसिंह बैरिन के बिडारिबे कों बुंदी बिंटि लीनी।

अरु ताकदार तोपन कों लगाय महाप्रलय के माफिक मार दीनी।

अच्छे बारूद के उडान बज्रपात से गोले गिरन लगे।

अरु तारागढ़ के प्राकार कंगुरेन के कलाप किरन लगे ॥११॥

जिन तोपन के कलाप कुलटा नायिका के समान सोभित भये।

अरु गोलंदाजन कों जार जानि पूर्बानुराग के प्रभाव समीप लये।

जिनकै अद्भुत अनंग की आगि अैसी कि उदर मैं न मावैं यातैं आनन की ओर उफनाय कढैं।

सो समीप के सबन कों बचाय दूर के दुर्ग दाहिबे कों बढ़ैं ॥१२॥

राव राजा उम्मेदसिंह ने इस तरह अपने शत्रु को मार भगाने के लिए बूंदी नगर को आ घेरा और अच्छी निशानेदार अपनी तोपों को दागे जाने का आदेश दे बूंदी पर मार लगाई। उम्दा बारूद के विस्फोटों से वज्रपात की तरह नगर पर गोले बरसने लगे जिससे बूंदी के दुर्ग तारागढ का प्राकार और कंगुरों के समूह धराशायी होने लगे। तोपों की पक्तियां कुलटा नायिकाओं की तरह शोभित होने लगीं जो गोलंदाजों को अपना जार समझ पूर्व की प्रीति निभाने हेतु अपने समीप लेने लगीं। इन कुलटा नायिकाओं (तोपों) के भीतर कामदेव की अग्नि ऐसी अद्भुत कि उदर में नहीं समाने पर वह उफनती हुई इनके मुखों से निकलने लगी, अद्भुत अग्नि इस अर्थ में कि वह अपने समीप वालों को तो बचाती थी पर दूर के दुर्ग ढहाने हेतु उधर लपकती बढ़ती थी।

जिनकों आहार पचे तैं अपनें स्वामी कों आनंद नाहिं आवै।

अरु बमन किये तैं बिट बिदूसकन सहित नायक मोद पावै।

जे खिन खिन मैं गर्भाधान धारि कैं प्रसूतिकाल को बिलंब नांहिं करैं।

परन्तु जिनके बालक कुपुत्र यातैं होत ही जनक जननी कों छोरि बैरिन के वृंद मैं बसिबे कों कूदि परैं॥१३॥

जिनकों बत्तीस बत्तीस जार भोगैं तथापि अल्प साधन जानि रति जंग के बिजय की पताका उडावैं।

अरु तृप्ति के अभाव बडे बैलन के जोट जीति बैंडे हत्थीन के टल्ले खावैं।

आगि देबेवारो ही जनाइबे वारी दाई ताकों जलदी सूं जनाइबे मैं बधिरता की बखसीस करैं।

ऐसी उनमत्त जानि कितनेक दरित दाईन के संदोह जनायबे की होंस न धरैं॥१४॥

इन नायिकाओं (तोपों) को यदि आहार पच जाए अर्थात् यदि ये आहार (बारूद) को पचा लें तो यह बात इनके स्वामियों को आनन्द नहीं देती। हाँ, जब ये वमन करती हैं तो कामुक पुरुषों के सखा (बिट) विदूषकों सहित नायक भी मोद मनाते हैं। ये कुलटा नायिकाएँ क्षण-क्षण में गर्भधारण करती हैं और प्रसव करने में भी देरी नही लगातीं अर्थात् लंबे प्रसवकाल की प्रतीक्षा नहीं करतीं। इनके साथ यह बात अवश्य है कि इनके पुत्र कुपुत्र होते है जो जन्म लेते ही अपने माँ-बाप को छोड़ कर शत्रुओं के समूह में जा बसने को कूद पड़ते हैं। इन्हें बत्तीस-बत्तीस जार भोगते हैं फिर भी तृप्ति का अल्प साधन मानते हुए रति-संग्राम में अपनी विजय पताका फहराती रहती हैं और तृप्ति के अभाव में बड़े बैलो के झटकों को सहन कर जंगी हाथियों की टक्करें खाती रहतीं हैं। इन्हें आग देने वाला ही इनकी दाई की भूमिका निभाता है और दाई को शीघ्र प्रसव कराने की बख्सीस में ये उसे बहरापन प्रदान करती हैं। इन्हें इतना उन्मत्त जानकर डरने वाला दाई-समूह इनका प्रसव कराने की हिम्मत नहीं करता।

जिनके आनन आरक्त मानों बन्हि के बमन हीं सों यह रंग धरै।

अरु आलस ऐसे कि अपनी सज्जा पर सूतीही आहार बिहारादिक

कर्म करैं।

जे बलिष्ठ ऐसी कि जंगी कारतूस बिनां सद्गर्भा होय जावै।

अरु जंगी कारतूस करि जरायुथेली सों जुदे ही पुत्र उपावैं॥१५॥

जिनकी तीखी नजरिके कटाक्ष लागैं गढ पर्बत आदि जंगम हू लोटी परैं।

अरु चंडबेग चिरबेग ऐसी कि संप्रयोग सूरिन तैं कामकलह कों जीति जीति गर्ज्जना करैं।

ऐसी तोपनके फैर पर फैर जारी भये।

अरु पत्तन के प्रकार कों दु बाजू छेकि छेकि गोले आडअद्रिके अंतर बिहार करन गये॥१६॥

इनके मुँह आरक्त (लाल) इसलिए रहते हैं क्योंकि ये हरदम अपने मुँह से अग्नि वमन करती रहती हैं। आलसी ऐसीं कि अपनी शय्या पर सोते-सोते ही आहार-विहार का कर्म संपादित करती हैं पर बलिष्ठ ऐसी कि जंगी कारतूस के बिना ही सद्गर्भा हो जातीं हैं। वे जंगी कारतूस की सहायता से जरायु (उल्व) रूपी थेली से जुदा ही पुत्र उत्पन्न करती हैं। इनकी नजर के तीखे कटाक्ष लगने पर गढ़, पर्वत जैसे जड़ भी लुटने लग जाते हैं और प्रचंड वेग वाली ये बहुत समय तक ठहरने वाली ऐसीं कि रति करने वाले शूरवीरों से काम युद्ध में जीत कर विजयघोष करती हैं। ऐसी तोपों के धमाके पर धमाके होने शुरू हुए। नगर की शहरपनाह को दोनों ओर से चीरते हुए इनके गोले आगे अरावली पर्वत पर विहार करने लगे।

तारागढ़ के प्राकार कपिसिर बप्रन समेत थहराय तूटन लगे।

कैधों आखंडल के असिनि सों उत्तुंग अद्रिन के कूट फूटन लगे।

या रीति तोपन बुन्दी के परण कों बेधि घनैं घंटापथन के समान पंथ कीनें।

अरु रावराजा उम्मेदसिंह महाराव दुर्जनसाल हल्ले को हुकम दै बारिबाह बीजुरी से खेटक खग्ग लीनें॥१७॥

दक्खिन की तरफ सों सज्जीभूत सेना समेत दोऊ नरेस पत्तन मैं पैठि चन्द्रहास चलाये।

अरु पच्छिमकी तरफ सों साहिपुरा के अधिराज उम्मेदसिंह कोटा के कटकेस गोबिंदराम तोरन कों तोरि हमगीर हरोलन के झुंड हलाये।

दोऊ तरफ सों बरूथिनी बढि भीतरके भटनपैं महाकाल रूप मंडलाग्रन की मार दीनी।

तिनकों दबते देखि दलेलसिंह तारागढ़ सों एक हजार सच्चे सूरबीर भेजि सहर के स्वकीय सिपाहन की भीर कीनी॥१८॥

जिनसे तारागढ़ दुर्ग के प्राकार और कंगुरे कोट सहित थरथरा कर टूटने लगे मानों इन्द्र के वज्र से उँचे पर्वतों के शिखर चूर-चूर होने लगे हों। इस प्रकार तोपों के प्रहारों से बूंदी की शहरपनाह जगह-जगह से टूट गई और उसमें चौड़े-चौड़े मार्ग बन गए। तभी रावराजा उम्मेदसिंह और महाराव दुर्जनसाल ने अपनी-अपनी सेना को आक्रमण का आदेश दे कर स्वयं ने मेघ और बिजली के सामान ढाल और तलवार हाथ में लीं। दक्षिण दिशा की तरफ से सज्जित सेना के साथ दोनों राजाओं ने नगर में प्रवेश लेकर अपनी तलवारें चलाईं। वहीं पश्चिम दिशा की ओर से शाहपुरा के स्वामी सिसोदिया उम्मेदसिंह और कोटा के सेनापति गोविन्दराम ने नगर-द्वार को ढहा कर अपनी सेना के वीरों के अग्रिम दस्तों सहित नगर में प्रवेश लिया। दोनों तरफ से सेनाओं ने नगर में बढ कर भीतर उपस्थित वीरों पर महाकाल की तरह अपनी तलवारों के प्रहार आंरभ किये। वहीं अपने बहादुर सिपाहियों को यों दोनों ओर से घिर जाने पर दबते निरख दलेलसिंह ने तारागढ़ से एक हजार सिपाही और सहायता करने भेजे।

तिन मांहिं सों कितेक बंदूकन के चलाक गृहस्थन के गेहन के ऊंचे अट्टन कों अरोहि पैलेन को पहिचानि गोलीन तैं गजब करन लगे।

अरु सेस जे असेस धारधर हीसों थापिबे को संकल्प सच्चे करि पैलेन की पृतना मैं पैठि अश्वमेध अध्वर के फल के उपमान आपुनें अडोल अंघ्रिन कों अंगद की रीति धरन लगे।

चिरकाल सों बिछुरे मित्रन के माफिक कितनेक अछूती अनीके

लाडा छाती सों छाती भिराय मिलन लगे।
अरु परस्पर के प्रहरन प्रपात असित अंबुद से अज्झलन पैं झिलन लगे ॥१९॥

इन नये भेजे गए सिपाहियों में से कुछ सिपाही जो बंदूक चलाने में सिद्धहस्त थे नगर के निवासियों के घरों की अट्टालिकाओं पर चढ़ गए और वहाँ से मोर्चे ले कर अपने शत्रुओं को पहचान-पहचान कर कहर ढाने लगे। शेष बचे योद्धा तलवारों से अघाने का सच्चा संकल्प ले कर अपनी शत्रु सेना में घुस गए और अश्वमेध यज्ञ का फल पाने को अपने पाँव अंगद की तरह रोपने लगे। दोनों ओर के योद्धा चिरकाल के बिछुड़े मित्रों की तरह सीने से सीना मिला कर मिलने लगे और परस्पर तलवारों के प्रहार अपनी काले मेघ सी ढालों पर झेलने लगे।

दोहा

ससि अंबर बसु इक समा, बिक्रम सक गत बेर।
बुंदिय पुर बाजार बिच, झरिग बाढ असि झेर॥२०॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ एक की समाप्ति के अवसर पर बूंदी के बाजार में तलवारों के प्रहारों की जैसे बाढ़ आ गई।

मुक्तादाम

अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम बुंदिय खग्गन मेह।
छई नभ गिद्धनि चिल्हनि छत्ति, घुमंडत गूदन चंचुव घत्ति॥२१॥
लगी लुभि घुम्मन अच्छरि लैन, गुथ्यो रस भाव बिभावन गैन।
रच्यो इत तंडव नारद रारि, झुक्यो ऋषि व्हां महती झनकारि॥२२॥
उडे सिर झेलत उद्धहि ईस, बहैं इत चंडिय के भुज बीस।
चटट्ठहिं रत्त खिलैं चउसट्ठि, बबक्कहिं बावन गावन गट्ठि॥२३॥
चुरैलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मरताल।
बजैं लगि खग्गन खग्गन बाढ, गिरैं भट भीरु भजैं तजि गाढ॥२४॥

श्रावण माह की अमावस्या तिथि के दिन बूंदी में इस प्रकार परस्पर तलवारों के प्रहारों की झड़ी सी लग गई। आकाश में मांसभक्षी गिद्ध और चील्ह पक्षियों की छतरी सी तन गई। ये पक्षी अपनी चोंच के द्वारा मृत वीरों

की मज्जा खाने को यहाँ आ उमड़े। अप्सराएं वीरों के वरण के लोभ में मंडराने लगीं और आकाश में श्रृंगार रस के भाव-अनुभाव गूंथने लगीं। इस युद्ध को देख कर नारद मुनि ने नृत्य करना आरंभ किया और अपनी वीणा बजा कर झूमने लगे। रणभूमि से वीरों के सिर कट कर भूमि पर गिरने से पूर्व ही महादेव उन्हें लपकने लगे। वहीं रणचंडी कालिका के बीसों हाथ चलने लगे। चौंसठ योगिनियाँ वीरों का रक्त पी कर प्रफुल्लित होने लगीं और बावन ही भैरव बीर एकत्र होकर मस्ती में गाने लगे। चुड़ेलों ने कूद-फांद मचाई और डायनें ताल देकर घूमर लेने लगीं। तलवारों से तलवारें टकरा कर बजने लगीं। वीर रणभूमि में कट कर गिरने लगे और कायर दृढता छोड़ कर भागने लगे।

उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, दुर्‌यो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल।
फबैं असि खुप्परि टोपन फारि, बहैं जनु सब्बुव तंति बिदारि॥२५॥

किरैं कृट्टि ह्ड्डुन खंड करक्कि, झरैं उडि धारन बूर झरक्कि।
कटैं सह सत्थिन जानुव जंघ, सु ज्यों गज सुंडिन खंडन संघ॥२६।

फदक्कहिं कड्ढहिं कालिक फिप्फ, भचक्कहिं टोप कपालन भिप्फ।
उडे सिर फुट्टत भेजन ओघ, मनों नवनीत मटक्किय मोघ॥२७॥

मचक्कहिं रीढक बंक अमाप, चटक्कहिं ज्यों मिथिलापुर चाप।
धसैं कढि लोचन सोंनित धार, चढैं सिसु मच्छ बिलोम कि बार॥२८॥

उम्मेदसिंह रूपी सूर्य ने रणभूमि में ऐसा खेल रचा जिसे देख कर वह उल्लू दलेलसिंह गढ़ में जा दुबका। वीरों की तलवारें अपने शत्रुओं की टोपों को चीरती हुई उनकी खोपड़ी में यों उतरने लगीं मानो साबुन में ताँत उतर रही हो। रणभूमि में कहीं योद्धाओं की हड्डियों के टुकड़े उछल कर गिरने लगे तो कहीं तलवारों के टकराने पर अग्निकण झरने लगे। कहीं वीरों की जंघाएं घुटने सहित कट कर गिरने लगीं जैसे रणभूमि में हाथियों की सूंडों के टुकड़े गिरे। कहीं पर वीरों के निकले हुए कलेजे और फैफड़े फुद-फुद करने लगे और कहीं शिरस्त्राणों को पिचकाते हुए वीरों के कपाल फूटने लगे। खोपड़ी खुलने पर रणभूमि में भेजे यों बिखरे पड़े है मानो मक्खन की मटकियां फूटीं हों। कहीं वीरों की रीढ की हडडी झटके के साथ यों टूटने

लगीं जैसे जनकपुरी में शिव का धनुष टूटा था। कहीं किसी वीर की आँखें निकल कर रक्त धार में यों पड़ी है जैसे छोटी-छोटी मछलियाँ पानी की धारा में उल्टी चढ़ रही हों।

कटैं गल स्वास बजैं बिकरार, धमैं धमनी जनु लग्गि लुहार।
कढैं हिय छत्तिय फट्टि किंवार, सु ज्यों ह्रद लोहित कंज सुढार ॥२९ ॥

परैं कढि अंत अपुब्ब प्रकारि, फनी गन जानि टिपारन फारि।
परैं छुटि संधित प्रान अपान, मनों पय पानिय लोन मिलान ॥३० ॥

बनें फटि डाच कढे रद बड्डु, किधों घृत डब्बिय रंक कवड्डु।
गिटैं रसना कढि झग्गन ग्राम, चढैं नचि नागिनि ज्यों पय आम ॥३१ ॥

लगैं दृग मुच्छ फरक्कत लीन, मनों उरझी बनसी मुख मीन।
छलैं छत रत्त छछक्कन छुट्टि, फबैं जनु गग्गरि जावक फुट्टि ॥३२ ॥

रणभूमि में कहीं पर वीरों के कटे हुए गले में साँस यों बज रही है मानों किसी लुहार ने अपनी धमनी धोंकी हो। कहीं पर वीरों की छाती के कपाट चिर जाने पर दिल बाहर छिटकते यों नजर आ रहे है जैसे किसी जलाशय में छोटे-छोटे सुन्दर लाल रंग के कमल खिले हों। अपूर्व रीति से कहीं-कहीं वीरों के कटे पेट से आँतें यों बाहर झाँक रही हैं जैसे किसी पिटारें से सर्प के बच्चे अपनी ठुड्डी निकाल रहे हों। कहीं पर श्वास और निःश्वास की संधियाँ यों छुट रही हैं जैसे नमक डाल देने से दूध और पानी अलग हो जाते हैं। कहीं पर वीरों के कटे पर फटे हुए मुँह से दाँत यों नजर आ रहे हैं मानों किसी रंग की डिबिया से कौड़िया झांक रही हों। कहीं पर मुँह को आए झागों के समूह को जीभ यों निगल रही है मानों सर्पिणी कच्चा दूध पी रही हो। कहीं किसी वीर के कटे हुए मुंड की तनी हुई मुंछें आँख में धँसी हुई यों लग रही है जैसे मछली के मुँह में उसके पकड़ने का काँटा उलझा हुआ हो। कहीं पर वीरों के लगे घावों से रक्त की धार यों छूट रही है जैसे अलता से भरे घड़े में छेद हो गया हो।

झुकैं असि मत्त दुहत्थन झारि, मनों रजकालि सिला पट मारि।
छुटैं फटि पेटिय लेटिय लंब, तनैं पट जानि कुबिंद कदंब ॥३३ ॥

मचैं रव टोप उडैं फटि मत्थ, अलाबुव जानि अतीतन हत्थ।
कढैं दृग लग्गि कनीनिय काल, मनों कुब लोहित भौंरन माल॥३४॥

चलैं फटि ढाल बकत्तर चीर, सु ज्यों तरु ताड़न पत्त समीर।
धसैं हिय गोलिय गावत गित्त, मनों पटवा बटवा बिच बित्त॥३५॥

रटैं फटि कोच करी रननंकि, झरैं घन बादन ज्यों झननंकि।
घटैं दम मत्त बकै छकि घाय, मनों मद पामर जीह जडाय॥३६॥

रणभूमि में वीर अपने शत्रु पर झुकते हुए यों तलवार का प्रहार कर रहे हैं मानो धोबी झुक कर कपड़े पछींट रहे हों। कहीं पर किसी वीर की कमरपेटी कट कर यों लंबी हो रही है मानों जुलाहे अपना वस्त्र बुनने का ताना फैला रहे हों। कहीं पर टोप सहित कटा मस्तक भूमि पर आवाज करता यों गुड़क रहा है। मानो किसी जोगी के हाथ से छूटा तूंबा गुड़क रहा हो। कहीं शत्रु की छिटक पड़ी आँख की काली पुतली यों लग रही है मानो लाल रंग के कमल पर भ्रमर बैठा हो। कहीं पर ढाल को चीरती हुई कवच फाड़ती तलवार शत्रु शरीर को चीरती यों निकल गई है जैसे पवन के झकोरों से ताड़ वृक्ष का पत्ता फटा हो। कहीं शत्रु के शरीर में गुनगुनाती आवाज करती गोली यों आ धँसती है मानो किसी पटवे ने अपने बटवे में शीघ्रता से पैसा ठूंसा हो। कहीं पर कवच की लड़ी कटती हुई ऐसी ध्वनि करती है मानो घन वाद्य थाप लगने पर झनझना उठा हो। कहीं पर घायल अन्तिम सांसें गिनते हुए यों बड़बड़ा रहे हैं जैसे कोई ग्रामीण व्यक्ति शराब में छका अपनी भारी हुई जीभ से बक-बक कर रहा हो।

कढैं बपु छक्कि बरच्छिन ब्रात, तृणध्वज अग्ग कि गज्ज प्रपात।
लगैं निकसैं छकि पट्टिस लाल, मनों परतीयन के कर जाल॥३७॥

सुहैं फटि हड्ड चटच्चट संधि, चटक्कत प्रात गुलाब कि गंधि।
उठैं बिनु मत्थ किते तनु तुंग, थेई त्थेइ नच्चत थुंगत थुंग॥३८॥

बबक्कत डाच किते कन बैन, मनौ बड बक्कर टक्कर मैन।
गिरैं बररक्कत पंसुलि गात, मनों कठछप्पर पत्थर पात॥३९॥

छुटैं पल जानु कढैं नल हड्ड, मनों रद बारन बगर बड्ड।
लटक्कत पाय रकाबन रुक्कि, मनों तप सिद्ध अधोमुख झुक्कि॥४०॥

रणभूमि में कहीं पर शत्रु शरीर को बेधते हुए बरछियों का समूह यों पार हो रहा है जैसे बाँस की कोंपल मेघ की गर्जना के साथ आवाज करती भूमि से फूटती है। कहीं किसी शत्रु की काया चीर कर निकली रक्तिम कटारी ऐसी लग रही है मानो परकीया नायिका अपने जार को मेहँदी रचा हाथ दिखा रही हो यह बताने को कि आज वह रजस्वला है। कहीं पर वीरों के संधिस्थल तलवार के प्रहारो से यों चटक रहे हैं जैसे प्रातःकाल में गुलाब का पुष्प चटक कर गंध पसारता है। रणभूमि में कहीं पर मस्तक कटे कंबध खड़े हो कर 'थई-थई' नाच रहे हैं। कई घायल वीरों के मुँह से तुतलाते (अवाच्य) शब्द यों निकल रहे हैं मानो वे कामुक बकरे की 'बें-बें' से होड़ ले रहे हों। कहीं पर वीर अपनी पंसुलि (पसली) के बरक (टूटने) जाने से गिरते हुए धप्प की ऐसी आवाज कर रहे हैं मानो किसी खपरैल के छप्पर पर पत्थर गिरा हो। कहीं पर वीरो का मांस फट कर घुटने सहित पाँव की नली हड्डी उघड़ी हुई यों लगती है जैसे बंगड़ पहना हुआ हाथी का दाँत हो। कहीं किसी सवार योद्धा का पाँव रकाब में उलझने से वह यों ओंधा लटक रहा है मानें कोई योगी शीर्षासन की मुद्रा में हो।

मलंगत छत्तिनके क्रम मप्पि, मनों नट पट्टरि पाय मलप्पि।
छुटैं घन घायक सायक सोक, उड़ैं सरघा गन ज्यों तजि ओक॥४१॥

छके कति वृत्त फिरे सुधि छोरि, बनैं जनु बालक भंभह भोरि।
गिरैं सर बिद्ध घनें सिर तत्त, मनों सरघान तजे मधुछत्त॥४२॥

सरैं घन संगिन भिन्न सरीर, कुमारिन के जनु उज्ज करीर।
बकैं बहु प्रेत मिले गल बत्थ, किधों रन मल्ल अपूरब कत्थ॥४३॥

जगावत हाक रचावत जंग, लगावत भैरव नट्ट मलंग।
घसैं चढि डाकिनि के मृत छत्ति, मनों कि बिदूसक कों तिय मत्ति॥४४॥

उछलते हुए कई सवार छाती के बल यों भूमि पर गिर रहे हैं मानो कोई नट अपने मलखंभ की पटरी पर उछाल ले रहा हो। रणभूमि में कहीं पर घाव देने वाले धनुष से छूटे बाणों के समूह यों छा रहे हैं मानें अपना छत्ता छोड़ कर मधुमक्खियों का समूह उड़ा आ रहा हो। कहीं पर घावों से छके घायल अपनी सुध-बुध बिसरा कर वृत्ताकार यों घूम रहे हैं मानो बालकों का

कोई समूह भँभाभोरी (यह खेल गोल-गोल घूमते हुए हाथ बांधे बच्चे खेलते हैं) नामक खेल खेलने में निमग्न हों। रणभूमि में तीरों से बिंधे हुए वीरों के मस्तक यों पड़े है जैसे मधुमक्खियों के छोड़े हुए छेददार छत्ते हों। बरछियों से छिदे घायल शरीर ले कर वीर यों रणभूमि में फिर रहे हैं जैसे कार्तिक माह में लड़कियां बहुत सारे छेदों वाले घड़े सिर पर उठाए घूम रही हों। रणभूमि में कहीं पर प्रेत आपस में गले मिल कर यों बक रहे हैं मानो वे रणभूमि में अपूर्व मल्लयुद्ध करने वाले योद्धाओं की कथा सुना रहें हों। हाक लगाते हुए आपस में झगड़ते हुए बावन वीर (भैरव) यों उछल कूद कर रहे हैं मानो कोई नट तनी हुई भरत (बरत) पर उछालें ले रहा हो। मृत वीरों की छातियों पर चढी हुई डाकिनियां उन्हें यों घिस रही हैं जैसे किसी कामुक पुरुष को मस्त स्त्री घिस रही हो।

अटैं पय इक्क किते छक ओप, किते इक नैन लखैं भरि कोप।
करैं कटि जीह किते अअ कूक, मनों कि परागिर प्रेरित मूक।।४५।।

क्रमैं इक ओठ किते इक कान, घनें मुख अद्ध रचैं घमसान।
किते इक हत्थ किते गत केस, बनें बहुरूप मनों नव बेस।।४६।।

मिलैं रसना कढि नक्कुट मूल, फबैं भुजगी कि लगी तिलफूल।
किते कर टेकि उठै रन रत्त, मनों मदछाकन पामर मत्त।।४७।।

रहैं कति गिद्धन कों गल लाय, कहैं कति हू रव अैंचत हाय।
बकैं कति मात पिता तिय बैन, गिरैं कति मोहित उच्छलि गैन।।४८।।

रणभूमि में कई घायल अपना एक पाँव कट जाने पर शोभा दे रहे हैं तो कई अपनी एक आँख फूट जाने पर एक आँख से कुपित हो देख रहे हैं। कई अपनी जीभ कट जाने पर मात्र 'अ अ' करते कूक रहे हैं मानो वे किसी दूसरे की वाणी से प्रेरित मूक हों। रणभूमि में कई घायल वीर अपने एक होंठ के साथ घूम रहे हैं तो कई अपना एक कान लिये फिर रहे हैं। कई अपने आधे मुँह से भी घमासान रच रहे हैं। कई एक हाथ वाले घायल घूमते है तो कई बिना केश वाले मानों बहुरूपिये कोई नया स्वांग रचाए घूम रहे हों। कई योद्धा अपने नाक का मूल कट जाने पर उघड़ी हुई जीभ के साथ एसे लग रहे हैं जैसे तिल के फूल से लगी कोई सर्पिणी शोभा दे रही हो। कई युद्ध में

प्रीति रखने वाले घायल अपना एक हाथ टिका कर खड़े होने का यों प्रयत्न कर रहे हैं मानो कोई शराब में धुत्त व्यक्ति उठने का प्रयास कर रहा हो। कई घायल योद्धा गिद्ध को अपने गले लगा कर 'हाय-हाय' का शब्द उचार रहे हैं। कई घायल शत्रुओं को माँ-बाप और बहिन की गालियाँ बक रहे हैं और कई मूर्च्छित हो आकाश की ओर उछलते भूमि पर गिर रहे हैं।

श्रव घन सावन को इत तुट्ठि, बरूथ घटा इत आयुध बुट्ठि।
बहैं पुर बुंदिय सोन बजार, थपी जनु जोहि सरस्वति धार।।४९।।

गिरैं जल बह्ल गंग सु गाथ, पुर स्त्रिय अंसुव जामुन पाथ।
बही इम बेनिय पत्तन बीच, मिलैं बहु मुक्ति जहां लहि मीच।।५०।।

बन्यों रन बुंदिय सावन अद्ध, दु घां असि ज्वाल भयो पुर दद्ध।
चुहट्टन लग्गिय लुत्थन लुत्थि, बिथारिग हट्टन बट्टन बुत्थि।।५१।।

समाकुल रुंड परे खिलि खंड, ढरे बनिजारन के जनु टंड।
डडक्कत डाहल के डमरूक, घुरावत घाय घने जनु घूक।।५२।।

इधर श्रावण मास के मेघ तुष्टमान हो बरसने लगे और उधर सेना रूपी घटा शस्त्र बरसाने लगीं। बूंदी के बाजार में रक्त ऐसे बहने लगा मानो सरस्वती की लाल रंग की धारा बह रही हो। बादलों से जो जल गिर रहा है वही मानो श्रेष्ठ यश वाली गंगा हो और नगर की स्त्रियों के काजल युक्त नेत्रों से जो आँसू बहते हैं वही श्याम वर्ण वाली यमुना नदी का जल हो। इस तरह बूंदी नगर में त्रिबेणी बही, जिसमें मरने वाले सभी लोगों को मुक्ति मिली। श्रावण मास के अर्द्ध भाग में यह युद्ध हुआ पर दोनों ओर की तलवारों की ज्वाला से सारा नगर दग्ध हो गया। नगर के चौराहों पर लोथों पर लोथों (शवों)का ढेर लग गया और लोगों ने हाट बाजार के मार्गों पर भी शवों का ढेर पाया। पूरे भूखण्ड पर कबंधों का ढेर ऐसे लग गया मानों वहाँ बालध (बनजारों का टांडा) पड़ी हो। डायनियों के वाद्य डाहल और डमरू बजने लगे और घावों के साथ घायल उलूकों की तरह बोलने लगे।

रटैं सिर मार अठैं कति रुंड, मिटे कति जोर फटै कति मुंड।
बरैं सिर मंगि भरैं हर बैल, छकैं कति छोह हकैं रन छैल।।५३।।

लगैं कति कंठ लरत्थर पाय, जगैं कति प्रेत ठगैं भट जाय।
लखैं कति हूर चखैं मिलि लाह, नखैं नभ फूल रखैं गिनि नाह।।५४।।

किरैं कहुं कोच खिरैं लगि खग्ग, फिरैं कति मत्त भिरैं जनु फग्ग।
चिरैं सिर बाढ गिरैं अति चोट, घिरैं नद सोन तिरैं कहुं घोट ॥५५ ॥

जरैं उडि अग्गि झरैं असि जोर, ढरैं भट केक टरैं जिम ढोर।
दरैं कति कुप्पि थरैं थक दाव, भरैं कति भूरि करैं मृत भाव ॥५६ ॥

कहीं पर कटे हुए मस्तक 'मार-मार' बड़बड़ा रहे हैं तो कहीं रुंडों के झुण्ड के झुंड नजर आ रहे हैं। कहीं फटे हुए मुंड पड़े हैं। उधर महादेव कटे हुए मस्तकों को एकत्रित कर अपने बैल की झूल भर रहे हैं वहीं कुछ रणरसिक क्रोध से भरे आगे ही बढ़ते जा रहे हैं। कुछ लड़खड़ाते घायल चलते हुए अपने शत्रु के शव पर जा गिरते हैं मानों अब उसे अपने गले लगा रहे हों। कई जगह प्रेत जा-जा कर वीरों को ठगते हैं अर्थात् उनसे झूठ-मूठ कहते है कि वह शत्रु बड़ी वीरता से लड़ा। आकाश से अप्सराएं वीर योद्धाओं को लालच भरी नजरों से ताकती हैं और ऊपर से ही उन्हें अपना पति मान कर पुष्प बरसाती हैं। कहीं पर तलवारों के प्रहारों से कट कर कवच गिर रहे हैं तो रणभूमि में कहीं पर मस्त वीर घूम रहे है मानों फाग के खेल मे संलग्न रहे हों। कहीं पर जोरदार प्रहारों से कट कर सिर गिर रहे हैं तो कहीं पर रुधिर की नदी में घिरे हुए घोड़े तैरते हैं। कहीं तलवारों के बलपूर्वक प्रहारों से अग्निकण उछलते हैं। इन प्रहारों की चपेट में आ कर कई वीर रणआंगन में कट कर गिरते हैं वहीं कुछ वीर पशुओं के झुण्ड की तरह वहाँ से टल कर दूसरी ओर जाने लगते हैं। कुछ वीर क्रोध से भरे जुनून में वार करते हैं और शत्रुओं का विदारण करते हैं।

मरैं थकि स्वास परैं कहुं मूढ, अरैं कहुं हूर बरैं नवऊढ।
ररैं हरि केक लरैं थकि रोस, हरैं जिय केक सरैं तजि होस ॥५७ ॥

फटै धर प्रेत बटैं सिर फांक, लटैं मन केक कटैं उर लांक।
खुलैं कहुं नैंन डुलें कहुं खग्ग, झुलैं कहुं उद्ध फुलैं मुख झग्ग ॥५८ ॥

छुलक्कत घायन रत्त छछक्क, उरज्झत केस बनें अकबक्क।
त्रहक्कत तंतिन सिंधुव तार, दहक्कत भूतल देत दरार ॥५९ ॥

झनंकत पक्खर बेधित बंट, धमंकत घुग्घर घंटन घंट।
बढी कुणपावलि उग्र बखान, मनों बड पत्तन दिग्घ मसान ॥६० ॥

बूंदी नगर की इस रणभूमि में कहीं पर श्वास थकने से कुछ वीर मूर्च्छित हो कर गिरने लगे वहीं कुछ वीरों का हठपूर्वक नवौढ़ा अप्सराएं वरण करने लगीं। कुछ योद्धा अंतिम समय आया देख कर श्री विष्णु के नाम का जाप करने लगे वहीं कुछ और अधिक रोस से भरे जूझने लगे और अपने शत्रु का प्राण हर लेने को स्वयं की सुध-बुध खोने लगे। कहीं कोई बीच से चिरे धड़ को देखकर अपने हिस्से की फाँक को पाने के लिए प्रेत आपस में लड़ने लगे। वहीं कुछ प्रेत कमर से कटे वीर का ऊपरी हिस्सा पाने को झपटने लगे। कुछ घायल जरा सी आंख खुलने पर अपनी तलवार को फिर से हिलाने लगे वहीं कुछ जिनके मुख झार्गों से भरे हुए थे घोड़े पर ही झूलने लगे। कहीं पर घायल वीरों के घावों से रक्त उबकने लगाा तो कहीं रक्त लगने से घायलों के सिर के बाल आपस में उलझने लगे। तंत्री वाद्य सिंधु राग में बजने लगे। कहीं पर अग्नि प्रज्वलित हो जाने से गर्म हो कर भूमि में दरारें आने लगीं। कहीं पर घोड़ों के पाखर चोट पड़ने पर यों बजने लगे जैसे नूपुर और घड़ियाल साथ बजने लगे हों। रणभूमि में मृतकों की पंक्तियां बढ़ने लगीं इनका बखान करते हुए यही कहा जा सकता है जैसे यह दृश्य किसी महानगर के दीर्घ श्मशान का हो।

गवाक्षन जालिन के पट डारि, रही रन बुंदिय नारि निहारि।
बढी घन मार मची हथबाह; रुक्यो रवि जंपत वाह सिराह ।।६१ ।।

अरयो नृप छोनिय लैन उमेद, खिज्यो इम देत दलेलहिं खेद।
बढे गढ सम्मुह छेकि बजार, मिली तह सत्रु हजारन मार।।६२ ।।

चले सर चंड चटठ्ठत चाप, मचावत पंखन सोक अमाप।
बहैं बरछी असि तोमर तोम, बनैं नर कातर लोमबिलोम।।६३ ।।

उरज्झत अंत्र कटारन तारि, गही जनु नागिनि अंकुस डारि।
लगै खर खंजर पंजर लीन, मनों प्रतिलोम धसैं जल मीन।।६४ ।।

इस युद्ध की विभीषिका की छवि निरखने के लिए बूंदी की स्त्रियों ने अपने घरों के झरोखों और जालियों पर कपड़े डाले और इस पर्दे के पीछे से युद्ध का नजारा देखने लगीं। नीचे अब गलियों में लड़े जा रहे युद्ध में प्रहार पर प्रहार होने लगे। शस्त्रों के वार करने को वीरों के हाथ तेज गति से चल रहे थे।

इस दृश्य को देखने के लिए सूर्य भी थोड़ी देर के लिए ठहर गया। घमासान को देख कर बरबस उसके मुँह से भी सराहना के बोल वाह-वाह फूट पड़े। राजा उम्मेदसिंह अपनी भूमि वापस लेने को अड़ा था पर साथ ही दलेलसिंह के लिए यह कृत्य खेदजनक था इसलिए वह और कुपित हो लड़ने लगा। दोनों ओर के योद्धा अब लड़ते-लड़ते बाजार को पार कर गढ़ के सम्मुख पहुँचने को उतावले हो उठे। यहाँ पर हजारों की संख्या वाले शत्रुओं पर प्रहारों की मार पड़ने लगी। भंयकर तीर धनुषों से छोड़ जाने लगे जो अपने पँखों से मानों शोक की ध्वनि छोड़ते हुए सनसनाने लगे। कहीं बरछी चली तो कहीं भालों के समूह प्रहार करने लगे जिन्हें देख कर कायर लोग विलोम गति करने लगे। कहीं पर प्रहार के बाद आंतों में उलझी हुई कटारी अपने साथ आँतें बाहर यों खींचने लगी मानों किसी सर्पिणी को अंकुश डाल कर खींचा जा रहा हो। भरपूर प्रहार के बल से खंजर शत्रु काया में यों घुसने लगे मानो उल्टी धारा में कोई मछली धंस रही हो।

चलैं फटि पात गदा सिर चीर, मनों तरबूज हनें कर कीर।
चलैं तजि म्यांन छुरी पल चाह, मनों पिचकारिन बारि प्रवाह ।।६५ ।।

झरप्फर चिल्हनि गिद्धनि झुंड, मरोरत चंचुन अँचत मुंड।
किलोलत स्यार सिवागन कंक, नचैं बहु डाकिनि प्रेत निसंक ।।६६ ।।

घनैं हननंकत घोटक घुम्मि, भिरैं कति भिन्न गिरैं छकि भुम्मि।
कुसा गल छुट्टत तुट्टत तंग, भभक्कत मारुत प्रोथन भंग ।।६७ ।।

परैं प्रजरैं जर जीन पलान, किते कबिका बिनु लेत उडान।
बहे पुर तद्दिन रत्त रु बार, धपी बढि बीथिन बीथिन धार ।।६८ ।।

कहीं पर गदा के प्रहारों से शत्रु सिर यों फूटने लगे मानों कीर (खरबूज, तरबूज, ककड़ी की खेती नदी के पेटे में करने वाली जाति का सदस्य) अपनी मुट्ठी के प्रहार से तरबूज फोड़ रहा हो। वीरों की छुरियां अपनी म्यांनें छोड़ कर मांस का स्वाद चखने को शत्रु शरीरों की ओर लपकने लगीं। उनके प्रहार से बने घाव से रक्त यों उबकने लगा। मानो लाल रंग की पिचकारी चल रही हो। रणभूमि में मृत पड़े वीरों के शवों पर गिद्ध और चील पक्षियों के झुण्ड झपटने लगे और अपनी चोंचों से पकड़-पकड़ कर कटे मुंड खीचने

लगे। सियार, लोमड़ियां और ढींच पक्षी ढेर सारे भोजन की संभावना में किलकारी देने लगे, वहीं रणभूमि में उन्मत्त हो डाकिनियां और प्रेत नाच उठे। कई घोड़े रणभूमि में हिनहिनाते हुए घूमने लगे और इस तरह घूमते हुए किसी से भिड़ कर घायल हो भूमि पर गिरने लगे। कहीं घोड़ों के तंग टूटने लगे तो कहीं घोड़ों की लगामें और कहीं उनके नासाछिद्र भंग होने से सांसें भभकने लगीं। आज के दिन बूंदी की गलियों में रक्त पानी की तरह बहने लगा और गलियों की मिट्टी को अघा कर धारा बन बह निकला।

मनों यह दुग्ग छुधातुर पाय, दये बलि मानव संभर राय।
समाकुल लुत्थिन बुत्थिन बट्ट, चढैं पल चिक्कन हट्ट चुहट्ट ॥६९॥

सह्यो घन चोरन को दुख जीय, लगैं अब बुंदिय भूपति हीय।
घनें दिन भुग्गि बियोगज भार, कियो जनु सोनित रंग सिंगार ॥७०॥

दलेल लखी तपकी तरवारि, धुज्यो छत दुग्ग पलायन धारि।
सुन्यों यह जैपुर जामिप भार, कियो निज मंत्रिय ब्रात तयार ॥७१॥

ऐसा लगने लगा मानो हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी के तारागढ को क्षुधातुर पा कर इतने सारे मानव योद्धाओं की बलि देने का प्रयत्न किया हो। नगर के रास्तों पर जगह-जगह शवों के ढेर लग गए और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो बूंदी की ये रक्त रंजित गलियां मानो बाजार बन गई हों जहाँ मांस और चर्बी की हाटें सजी हों। इस भिड़ंत को देख कर चोर मन ही मन यह सोच कर भयभीत हुए कि लगता है अब बूंदी राज को सही राजा मिलने वाला है। ऐसा लगने लगा मानो बूंदी ने अपने स्वामी का लंबा वियोग झेलने के बाद आज अपने स्वामी से मिलने की उत्कंठा में रक्त के रंग से श्रृंगार किया हो। दलेलसिंह ने जब बूंदी नगर में इस तरह तलवारों को लपलपाते-लहराते देखा तो बावजूद सुरक्षित होते हुए भी भय से थर-थर काँप उठा और उसने मन ही मन पलायन करने की सोची। बूंदी पर राजा उम्मेदसिंह द्वारा की गई इस चढाई की खबर जब जयपुर पहुँची तो राजा के बहनोई कछवाहा राजा ने अपने सामन्तों और मंत्रियों से मंत्रणा की।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ पूर्वनाली-यन्त्रयुद्धकरणतदनुगोपुराऽररबिदारण बुन्दी प्रवेशन तुमुलरणरचन

दलेलसिंह तारादुर्गारोहणतदुदन्तजैपुरश्रवणं दशमो मयूख॥ आदितः ॥२९१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की सप्तम राशि में, प्रथम तोपों से युद्ध करने के बाद शहर के द्वार के किंवाड़ तोड़ना और बूंदी में घुसकर भयंकर युद्ध करना, दलेलसिंह का तारागढ़ पर चढ़ना, जयपुर में इस वृत्तान्त के सुनने का दसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ इक्यानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

जैपुर नृप ईस्वर जबहि, सुनि यह बुंदिय सोर।
सजि दल दुद्धर मुक्कल्यो, दैन सहाय सजोर॥१॥
राजामल को इक अनुज, भ्रात नाम सिवदास।
सेनापति खत्री सु करि, पठयो समर प्रयास॥२॥
राजामल निज अनुज सन, किय तब मंत्र इकत्त।
कहिय अग्ग जयसिंह नृप, मोसन भयउ बिरत्त॥३॥
यह लखि मंद दलेल इहिं, मन्नें हमहिं निकम्म।
अब्द लार देतो अयुत, दिन्नें ते नहिं दम्म॥४॥
तीन बरस पाई तबहि, अप्पन बिपति अछेह।
मंगेहू दम्म न मिले, अपटु नट्यो सठ एह॥५॥
यातैं अबहि दलेल कों, दैन सहाय न अच्छ।
पहिलैं तुम बरवाड़ पुर, प्रबिसहु मारि बिपच्छ॥६॥

हे राजा रामसिंह! उधर जयपुर में जब कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने सुना कि बूंदी पर आक्रमण हो गया तो उसने दलेलसिंह की सहायता के लिए अपने दुर्द्धर्ष दल को सज्जित कर भेजा। जयपुर के प्रधान सचिव राजामल का एक छोटा भाई था जिसका नाम शिवदास था। इस खत्री शिवदास को कछवाहा राजा ने सेनापति बना कर बूंदी लड़ने के लिए दल-बल सहित भेजा। तभी राजामल खत्री ने अपने छोटे भाई शिवदास को मंत्रणा करने के लिए बुलाया। उसके आने पर राजामल ने कहा कि जयपुर का पूर्व राजा जयसिंह एक दफा

किसी बात पर मुझसे खफा हो गया था बस, वही देख कर यह मूर्ख दलेलसिंह मुझे निकम्मा समझने लग गया। पहले यह दलेलसिंह मुझे प्रतिवर्ष दस हजार रुपये देता था अब उसने वह रकम देनी बन्द कर दी है। पिछले तीन वर्ष से वह रुपये देना बंद कर चुका है तब से हम पर कई आफतें आई और ऐसे कठिन समय में मैने पैसे मांगे पर वह मूर्ख देने से मुकर गया। यही कारण है कि आज जयपुर की ओर से दी जा रही यह सहायता मुझे अच्छी नहीं लग रही। भाई तुम एक काम करो पहले सेना सहित बरवाड़ा नगर पर जा कर वहाँ के विरोधियों का नाश करो।

सौरठा

सुनि खत्रिय सिवदास, अग्रज हिंतु निदेस यह।
आनि प्रथम जय आस, लरन लैन बरवाड़ लगि॥७॥

अपने बड़े भाई राजामल खत्री से ऐसे निर्देश मिल जाने पर खत्री शिवदास भी विजय प्राप्त करने की आशा से पहले बरवाड़ा पर अधिकार करने को लड़ने गया।

षट्पात

अग्गैं पुर बरवाड़ बीर इक भयउ महाबल,
रामसिंह रट्ठोर जाहि अक्खत जग रुट्टल।[१]
ताके कुल सिवसिंह भयो रन दान धुरंधर।
हड्डुन मुहुकमहरन सजिय तासन बहु संगर।
इन हनि अनेक रट्ठोर भट ग्राम च्यारि तस दब्बिअ लिय।
यह लखि कबंध सिंवसिंह इहिं कलह घोर प्रारंभ किय॥८॥

पूर्व में इस बरवाड़ा नगर का स्वामी एक महाबली हुआ। राठौड़ रामसिंह नामक इस वदान्य को पूरा संसार 'रामसिंह रोटला' के नाम से पहचानता था। रामसिंह के नियम था कि वह अपने भोजन के समय नगारा

टिप्पणी : रामसिंह के इस कार्य की प्रशंसा का एक दोहा प्रसिद्ध है जो निम्न प्रकार है:-
रामें भुंजाई रची, मारुधर मेवाड़।
रोट झटक्के तेण रज, पहो धूंधला पहाड़ा॥
(इसमें कवि उत्प्रेक्षा करता है कि राठौड़ रामसिंह ने मेवाड़ की भूमि में रसोई की रचना ऐसी की जिससे रोटियों के झटकने से रंजी उड़ी उसीसे मानो प्रभात के समय में पर्वत धुंधले नजर आते हैं - संपादक।)

बजवाता था जिसे सुन कर दीन हीन भूखे एकत्रित हो जाते। उन्हें भोजन कराने के बाद वह स्वंय भोजन करता सब को रोटी देने के कारण से उसका नाम रामसिंह रोटला हो गया। यह रामसिंह महाराणा जगतसिंह के समय में मेवाड़ उदयपुर का सेनापति था। इस रामसिंह के कुल में क्रम से शिवसिंह हुआ। युद्ध और दान दोनों क्षेत्रों में वह भी धुरंधर था। मुहकमसिंह हाड़ा के वंशजों ने उससे कई बार लड़ाइयां लड़ीं। इन हाड़ाओं ने उसके कई योद्धाओं को मार कर उसकी जागीर के चार गाँवों पर अपना अधिकार कर लिया। अपने गए हुए गांवों को वापस प्राप्त करने के लिए वह शिवसिंह राठौड़ इनसे युद्ध करने लगा।

दोहा

जो मुहुकमसिंहोत को, ग्राम परैं दृग तास।
ताहि प्रजारत लुट्टितो, बहुतन बिरचि बिनास॥९॥

हड्डुन तब मुहुकमहरन, अति साहस इहिं जानि।
बेटी अप्पहिं बैर में, मंत्र सबन यह मानि॥१०॥

जाई जुग्गियराम की, जड़ सालमं की जामि।
सिवसिंहहिं व्याही सबन, दोऊ दिस हित थामि॥११॥

नृप कूरम जयसिंह पुनि, अतुल कपट रचि आड़।
दियउ कढ्ढि सिवसिंह यह, लियउ छिन्नि बरवाड़॥१२॥

शिवसिंह की नजर के आगे जो भी मुहकमसिंह हाड़ा के वंशजों का गाँव पड़ जाता वह उसे तुरन्त लूट लेता और फिर उसमें आग लगा देता। इस तरह उसने कई गाँवों का विनाश किया। मुहकमसिंहोत हाड़ाओं ने जब शिवसिंह राठौड़ का ऐसा हठ और साहस देखा तब उन्होंने मिल कर मंत्रणा की कि इस बैर को धो देने के लिए उचित यह रहेगा कि हम अपनी बेटी दे दें। इस मंत्रणा के फलस्वरूप जोगीराम की पुत्री और जड़मति सालमसिंह हाड़ा की बहिन का विवाह शिवसिंह के साथ सम्पन्न करवाया गया। इस विवाह में दोनो पक्षों के हित निहित थे। हाड़ाओं के साथ का झगड़ा निबटा तो जयपुर के कछवाहा राजा जयसिंह ने छल-कपट का सहारा लेकर बरवाड़ा से शिवसिंह को निकाल बाहर किया और बरवाड़ा छीन लिया।

जयसिंहहिं अब जानि मृत, इहिं सिवसिंह कबंध।
लिन्नों पुर बरवाड़ लरि, बसि करि कुम्म प्रबंध॥१३॥

राजामल यातैं अनुज, रोक्यो बुंदिय जात।
पठयो इत सिवसिंह पर, बुल्ल्यो तंहं यह बात॥१४॥

तुम सिवदास तयार हुव, बुंदिय दैन सहाय।
मगहि मध्य बरवाड़ पुर, जावहु ताहि छुराय॥१५॥

इहिं कारन सिवदास अब, सजिदल प्रबल सिपाह।
गो पहिलैं बरवाड़ गढ़, दिन्नों तोपन दाह॥१६॥

राजा जयसिंह की मृत्यु हो जाने के बाद शिवसिंह राठौड़ ने सोचा कि अब उपयुक्त अवसर आ गया। यह सोच कर उसने झगड़ा किया और कछवाहों का शासन हटा कर बरवाड़ा को वापस अपने अधिकार में ले लिया। इसी समय में बूंदी की सहायता करने जा रहे सेनापति और अपने छोटे भाई को रोक कर राजामल खत्री ने कहा कि तुम पहले शिवसिंह पर चढाई करने जाना। हे भाई! तुम अपनी सज्जित सेना के साथ बूंदी के लिए प्रयाण कर रहे हो तो यह ध्यान रखना कि तुम्हारे बीच रास्ते में बरवाड़ा नगर पड़ता है उसे शिवसिंह से मुक्त कराने के बाद आगे जाना। अपने बड़े भाई से ऐसा निर्देश पा कर शिवदास खत्री ने अपने प्रबल सिपाहियों के साथ पहले बरवाड़ा जा कर उसे घेर लिया और तोपों से गोले बरसाने का आदेश किया।

इत बुंदिय संगर अतुल, सज्ज्यो संभरवार।
नगर जित्ति लिन्ने निकट, प्रासादन प्राकार॥१७॥

दक्खिन दिस महलन निकट, भैरव नामक द्वार।
तासों कछु पच्छिम तरफ, कोटा दल रखवार॥१८॥

द्विज नागर गोबिंद वह, लरत हुतों हठ लग्गि।
कमपट्टिय गोलि लगिय, पर्‌यो स्वामि हित पग्गि॥१९॥

मरत बिप्र खिजि नृप उभय, लंभ निसैनिन लाय।
घटिय इक्क जावत रजनि, लिन्नें महल छुराय॥२०॥

उधर बूंदी नगर में चहुवान राजा उम्मेदसिंह ने घमासान युद्ध मचाया और उसने नगर पर अपना अधिकार कर अपनी सेना महलों के निकट

लगाई। बूंदी के प्रासादों से दक्षिण दिशा की ओर भैरव नामक द्वार है उससे थोड़ा पश्चिम की ओर कोटा की सज्जित सेना तैनात थी। वहाँ पर कोटा का सेनापति नागर ब्राह्मण गोविन्दराम हठ पूर्वक लड़ रहा था कि तभी अचानक उसकी कनपटी पर एक गोली आ लगी और वह अपने स्वामी का हित साधन करते हुए मारा गया। ब्राह्मण सेनापति के मरते ही दोनों राजाओं दुर्जनसाल और उम्मेदसिंह ने कुपित हो बड़ी-बड़ी नीसरनियां मँगवाई और उनकी सहायता से एक घड़ी रात ढले महलों पर भी अधिकार कर लिया।

अब कि तारागढ़ बच्यो, जंहं दलेल भय जानि।
तिहिं सिर पुनि हल्ल त्वरित, पृथुल रच्यो असि पानि ॥२१॥

बूंदी नगर और महलों पर अधिकार हो जाने के बाद उम्मेदसिंह के समक्ष अब एक तारागढ दुर्ग बचा जहाँ भयभीत हो कर दलेलसिंह छुपा हुआ था। उम्मेदसिंह ने तुरन्त अपने बहादुर योद्धाओं के साथ वहाँ जा कर तुरन्त धावा बोलते हुए तलवारों से घमासान युद्ध करना आरंभ किया।

षट्पात

लैले खेटक खग्ग कटक पब्बय पर हंकिय,
नृप उमेद रहि मध्य समुख हनुमत जिम डंकिय।
अधिरोहिनि दिय जाय भये कंगुर कंगुर भट,
सु लखि दलेल शृंगाल भज्यो नारिन जुत लंपट।
नैनवा मग्ग आतुर लगिय खुल्लि द्वार पच्छिम अरर।
अंधार मास सावन अमा झुकि पुनि लग्गिय मेघझर ॥२२॥

राजा उम्मेदसिंह ने ढाल-तलवारों से सज्जित अपने दल को तब पहाड़ पर चढाई करने भेजा। स्वयं राजा उनके मध्य उपस्थित रहा और हनुमान की तरह उसने अपने योद्धओं को दुर्ग में कुदाया। उम्मेदसिंह के वीर योद्धाओं ने नीसरनियों के सहारे दुर्ग पर चढ कर कंगुरे-कंगुरे पर मोर्चा सँभाल लिया। यह देख कर वह लंपट दलेलसिंह अपनी स्त्रियों सहित गीदड़ की तरह भाग छूटा। उसने गढ़ का पिछला द्वार खुलवाया और नैनवा नगर की राह पर भागने लगा। श्रावण मास का कृष्ण पक्ष और वह भी अमावस्या की तिथि का निविड़ अधंकार, उस पर वर्षा की झड़ी, दलेलसिंह के समक्ष कठिन घड़ी थी।

जिन नारिन सतखनन अक्क पिक्खन अकुलावत,
जिन नारिन अब जोर पवन परसन नहिं पावत।
इक्क महल सन अन्य जात जिनकों श्रम लग्गहिं,
कुचन ओट लचकात भार मानहुं कटि भग्गहिं।
जिन पय प्रसून पंखुरि गडत रस बिलाल मृदुपन रजिग।
ते तिय दलेल नायक सहित झारन बिच फट्टत भजिग॥२३॥

दलेलसिंह के अन्तहपुर की स्त्रियों को सतखंडे महलों के भीतर सूर्य भी नहीं देख पाता था। तेज गति से चलने वाला पवन भी जिन्हें परस नहीं पाता था। ऐसी सुकोमल स्त्रियां जिन्हें एक महल से दूसरे महल में जाने में पसीना छूटता था और जो थक जाती थीं। यहाँ तक कि उन्हें अपनी काया के अंग यथा कुचों का भार लगता था। इस भार से उनकी कमर लचकने लगती थीं। राह में पड़ी पुष्प-पंखुरी जिनके पाँवों में चुभन जगाती थीं। ऐसी दलेलसिंह के जनाना की स्त्रियां अपने नायक दलेलसिंह सहित झाड़ियों भरे कांटेदार रास्ते पर रात के अंधेरे में भागी जा रही थीं।

दोहा

मेझ सरित दुबलानपुर, जिम तिम लंघि दलेल।
प्रात होत लहि नैनवा, मन्यो बपु जिय मेल॥२४॥

पतनी इक्क दलेल की, दासी जन दस मान।
बन बिच भज्जत थकि रहिय, गय दूजे दिन थान॥२५॥

दुज्जनसल्ल उमेद इत, बुंदिय अमल बिथारि।
झंडे अप्पन गड्डि दिय, बिजय पताका धारि॥२६॥

कोटापति अब लोभ करि, अनुचित जोकिय अत्थ।
सो पिक्खहु नृप राम सब, अधरम अनय अनत्थ॥२७॥

पहिलैं इहिं कोटापुरहिं, भूपति सों छल भिन्न।
मुल्ल दम्म दुवलक्ख के, कटक किलंगिय लिन्न॥२८॥

तैसीही अब तक्किकैं, अंगमि बुंदिय अैन।
नृप उमेद प्रति यह कहिय, तुमतैं राज दबैं न॥२९॥

दलेलसिंह के इस कारवां ने रात्रि में ही दुबलाना के पास मेझा नदी को पार किया और सूर्य की किरणों के प्रसार से पूर्व उन्होंने जब नेनवा नगर को समीप लिया तब उनकी जान में जान आई। इस कारवां में से दलेलसिंह की एक पत्नी और दस दासियों का झुण्ड बिछुड़ कर पीछे छूट गया क्योंकि वे वन प्रातंर में दौड़ती थक गई थी। ये सभी स्त्रियाँ फिर दूसरे दिन नेनवा पहुँची। इधर पीछे हाड़ा राजा दुर्जनसाल और राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी पर अपना अधिकार जमाया। विजय पताकाएं फहराते हुए इस विजित नगर पर उन्होंने अपनी सफलता के झण्डे गाड़े। इस समय कोटा के राजा दुर्जनसाल ने एक अनुचित लोभ किया। हे राजा रामसिंह! अब आप उस समय कोटा के राजा द्वारा किये गए अनर्थ, अन्याय और अनीति को देखें। सर्वप्रथम इसी राजा ने राजा उम्मेदसिंह से फौजखर्च के दो लाख रूपयों की एवज में छलपूर्वक उसके हाथों में पहनने के दो कड़े (रत्नजड़ित) और सिर पर धारण करने वाला आभूषण कलंगी हथियाया। अब इस विजय के उपरान्त यह कह कर बूंदी का राज दबाया कि उम्मेदसिंह तुमसे यह राज्य संभाला नहीं जाएगा।

पुर लोहित को परगनां, इम कहि भूपहिं अप्पि।
अवर देस लिन्नों अखिल, थानां अप्पन थप्पि॥३०॥

केसव पुर पट्टनि परम, बहुरि बरूंधनि नाम।
ए दुव पुर ब्रजनाथ हित, करिय भेट छल काम॥३१॥

बुद्ध नृपति किय पुण्य ते, ग्रामादिक दिय नांहिं।
इम बिसासघातक भयउ, कोटापति छल मांहिं॥३२॥

लरन अंत लुट्टिय सहर, इक्क पहर धनवंत।
साहिपुरप उम्मेद लिय, दुव गज द्रव्य अनंत॥३३॥

देव सुवन सिवसिंह वह, बैरिसल्ल कुल जात।
लरि जिहिं पंच दलेल के, गज लुट्टे बडगात॥३४॥

ऐसा कह कर कोटा के राजा दुर्जनसाल ने राजा उम्मेदसिंह को मात्र 'लोहितपुर का परगना दिया और शेष सारे क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया। उसने जगह-जगह पर अपने थाने स्थापित कर दिये वहीं केशवपुर (केशोराय पाटण) और बंरूधनी जैसे दो परगने ब्रजनाथ को मन में कपट

साध कर प्रदान किये। पूर्व राजा बुधसिंह ने जो गाँव पुण्य के अर्थ जागीर में दिये थे उन्हें भी नहीं छोड़ा। विश्वासघातक कोटा के राजा ने ऐसा छल किया। इस युद्ध के अन्तिम प्रहर में शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह ने शहर में लूटपाट की और बहुत सारे द्रव्य के साथ उसने दो हाथी दलेलसिंह के छीने। इसी तरह बैरीसालोत हाड़ा कुल के देवीसिंह के पुत्र शिवसिंह ने भी इस युद्ध में दलेलसिंह के पक्ष से बड़ी बहादुरी के साथ लड़ते हुए पाँच विशालकाय हाथी छीने थे।

कोटापति सिवसिंह सों, छिन्ने ते गज पंच।
आदर बिनु सठ सिक्ख दिय, रक्खी कानि न रंच॥३५॥

साहिपुरप कोटेससों, इक दिन अक्खिय एह।
तुम निलज्ज अनुचित तकत, नीति धरम तजि नेह॥३६॥

हम जानी बुंदीस सिर, करहिं छत्र कोटेस।
इम बिचारि आये इहां, यह जस सुनन असेस॥३७॥

पर कोटा के राजा हाड़ा दुर्जनसाल ने शिवसिंह से वे पाँचों हाथी ले लिये और तनिक भी कुल की मर्यादा का आदर नहीं करते हुए शिवसिंह को खाली हाथ वहाँ से विदा किया। राजा दुर्जनसाल के इस कृत्य को देख कर एक दिन शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह ने उलाहना देते हुए कहा कि हे राजा! आप एकदम निर्लज्ज हो कर धर्म और नीति का त्याग करने वाले हैं। हमने तो यहाँ इस युद्ध में मरने से पूर्व यह समझा था कि कोटा का राजा बूंदी के स्वामी के सिर पर छत्र धरवाएगा अर्थात् उसे बूंदी का राजपद दिलवाएगा पर आज यहाँ जो देखा उससे मेरा मोहभंग हो गया। आपकी ऐसी कीर्ति सुनने को तो मैं यहाँ नहीं आया था।

शुद्ध ब्रजदेशीय भाषा

मनोहरम्

दोस निज तात को उतारिबेकी बेर तुम,
लीनें मंगि कटक किलंगी यातैं बाल हो।
तिनहिं बिकाय फोज राखी सो तुमारी नांहिं,
जातैं जंग जीति मन मानत निहाल हो।

प्रति उपकारक उमेद नृप जानों नैर,
कोटा निज खोवहु कहावत नृपाल हो।
जो तुम कहेंहु स्वामि धर्म न धरोगे तो ब,
दुर्ज्जन के साल नांहिं सज्जन के साल हो॥३८॥

शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह ने कहा कि हे राजा दुर्जनसाल! जब आपके अपने पिता के कृत्य (राजा भीमसिंह ने बूंदी छीन ली थी के दोष) को मिटाने का समय आया तब आपने बूंदी के राजा उम्मेदसिंह से सेना खड़ी करने के नाम पर खर्च बता कर उस बालक के हाथ से कड़े और कंलगी उतरवाली। उन आभूषणों को बेच कर प्राप्त राशि से ही आपने फौज खड़ी की और वह सेना किसी भी रूप में आपकी सेना नहीं थी तब भी आप आज की इस विजय को अपना मान कर निहाल होने की सोच रहे हैं। अपने इस बांधव राजा उम्मेदसिंह को कृतघ्न मत जानो। यह आपका मददगार है। हो सकता है जिसके बल पर राजा कहलाते हो उस कोटा को आप खो दें, ऐसा उपक्रम मत करो। मेरे इतना और ऐसा कहने पर भी आप यदि अब भी स्वामिधर्म के पालन को आमादा नहीं तो सुन लें! आप दुर्जनों के साल (कांटे) नहीं आप तो सज्जनों को चुभने वाले कांटे हो अर्थात् आपका नाम दुर्जनसाल नहीं हो कर सज्जनसाल होना चाहिए था।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सुनि यह कोटापति सचिव, चारन भूपतिराम।
बुल्ल्यो साहिपुरेस सों, कैसे करहु कुनाम॥३९॥
सेनानी गोबिंद से, लग्गे बुंदिय अत्थ।
खरच दम्म लक्खन पर्‌यो, क्यों तुम बदत अकत्थ॥४०॥
यह सुनि साहिपुरेस तब, गो निज नगर रिसाय।
कोटापति बुंदिय बिभव, लुट्ट्यो अखिल अघाय॥४१॥
भट मोहनसिंहोत निज, नगर पल्हायत नाह।
तारागढ़ रक्ख्यो तबहि, रूपसिंह हित राह॥४२॥

शाहपुरा के स्वामी के ऐसा कहने पर कोटा के राजा के सचिव चारण भूपतिराम से रहा न गया वह राजा उम्मेदसिंह शाहपुरा से कहने लगा कि आप मेरे स्वामी को इस तरह बदनाम क्यों कर रहे हैं? जब कि इन्होंने अपने सेनापति व्यास गोविन्दराम को बूंदी पाने के सबब युद्ध में खोया है। इस युद्ध पर इन्होंने लाखों रूपये का खर्च सहन किया है फिर आप अकथनीय बातें क्यों कह रहे हैं? चारण भूपतिराम के ऐसा कहने पर शाहपुरा का राजा उम्मेदसिह नाराज हो कर अपने नगर को चला गया। इसके बाद कोटा के राजा दुर्जनसाल ने बूंदी के वैभव को बेखौफ लूटा। राजा ने मोहनसिंहोत हाड़ा वंश के अपने सामंत और बांधव पल्हायथा (पलायता) के जागीरदार रूपसिंह को अपना हित सोच कर बूंदी के विजित दुर्ग तारागढ़ का किलेदार नियुक्त किया।

पुनि किसोरसिंहोत भट, अनतापुर प अजीत।
ए दुव किल्लादार किय, पटु रन धरम प्रतीत॥४३॥

अवरहु निज रक्खे सचिव, निबहन राज्य असेस।
अप्पुन लै बुंदिय बिभव, कोटा गय कोटेस॥४४॥

इत खत्रिय सिवदास लिय, पुर बरवाड़ छुराय।
दियउ कड्ढि रट्ठोर वह, जैपुर अमल बिधाय॥४५॥

इसी तरह कोटा के स्वामी ने किशोरसिंहोत हाड़ा वंश के अजीतसिंह हाड़ा को अन्ता नामक नगर और परगने का हाकिम अथवा किलेदार नियुक्त किया। इन दो किलेदारों के अतिरिक्त हाड़ा राजा दुर्जनसाल ने शेष बूंदी राज्य के परगनों को भोगने के लिए अपने कई सचिव नियुक्त किये और स्वयं बूंदी का वैभव ले कर कोटा का राजा कोटा गया। उधर खत्री शिवदास ने बरवाड़ा नामक नगर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया और वहाँ के शासक राठौड़ को निकाल बाहर किया। उसने वहाँ फिर से जयपुर के राजा का अमल जमाया।

पज्झटिका

बरवाड़ समर सिवदास ठानि, जैपुर नरेस यह उचित जानि।
धूलापुर पति कूरम दलेल, बुल्ल्यो राजाउत मंत्र मेल॥४६॥

कहि उचित ताहि बुंदिय सहाय, पठयो दलेल ढिग समय पाय।
वह तबहि नैनवा नगर पत्त, भिंट्यो दलेल हित बिबिध बत्त ॥४७॥

अक्खी पुनि ईस्वरिसिंह राज, दिल्लीपुर जावत कछुक काज।
जवनेस हिंतु काम सु सुधारि, बुंदीपर ऐहैं दल बिथारि ॥४८॥

व्है हैं तब अप्पन अमल तत्थ, हड्डु सु उमेद गहि करहिं हत्थ।
पै जोलों आवैं न कछवाह, तोलों न उचित अब समर चाह ॥४९॥

खत्री शिवदास ने बूंदी जाने से पहले बरवाड़ा नगर पर चढाई कर युद्ध किया। उधर कछवाहा राजा ने बूंदी के राजा की सहायता करने को जो अपना दल भेजा उसमें धोलापुर के स्वामी राजावत कछवाहा दलेलसिंह को बुला कर साथ भेजा। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने दलेलसिंह कछवाहा को बूंदी के हाड़ा दलेलसिंह की सहायता करने को रवाना किया। वह दलेलसिंह राजावत तब नैनवा जाकर वहाँ हाड़ा दलेलसिंह से मिला और उसके साथ मंत्रणा की। उसने हाड़ा दलेलसिंह से कहा कि अभी हमारे स्वामी कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह एक आवश्यक कार्य से दिल्ली जा रहे हैं। वे वहाँ बादशाह का कार्य सम्पन्न कर शीघ्र ही बूंदी पर भारी सेना ले कर लौटेंगे। तब बूंदी पर फिर से हमारा अधिकार हो जाएगा तब हम हाड़ा उम्मेदसिंह को कैद कर लेंगे पर जब तक कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह सेना सहित बूंदी पर चढ़ कर नहीं आता तब तक हमें फिर से युद्ध करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

पूगैं न अबहि हम बीर होय, दुस्सह उमेद कोटेस दोय।
दोऊ दलेल यह मंत्र चाहि, बहु मास रहे पुर नैनवाहि ॥५०॥

इत जैपुर पति दिल्लिय प्रपत्त, सेयो सुरतान जु बिबिध बत्त।
बुंदिय पुर बिग्रह बहुरि अक्खि, लिय साह हुक्कम करि सबन सक्खि ॥५१॥

इम रहत कुम्म दिल्लिय अभंग, सेवंत साह अवनिय उमंग।
इत अभयसिंह मरु देस राय, किय चिर निवास अजमेर आय ॥५२॥

मम जनक पुब्ब यह नगर लिन्न, यह चिंति मरूप तंहं बास किन्न।
कूरम इत दिल्लिय कपट धारि, इक मंत्र साह छन्नें बिचारि ॥५३॥

अभी हम दोनों मिल कर भी उन दो राजाओं दुर्जनसाल और हाड़ा उम्मेदसिंह का मुकाबला करने में असमर्थ हैं इसलिए हमें चुप रह कर

कछवाहा राजा के आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दोनों दलेलसिंह ने आपस में ऐसी मंत्रणा की और दोनों बहुत दिनों तक नैनवा में रहे। उधर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह दिल्ली गया और उसने वहाँ जा कर तरह-तरह से बादशाह की सेवा की। उसने बादशाह से बूंदी के लिए हो रही लड़ाइयों का जिक्र किया और सभी की साक्षी में शाही हुक्म पाने की चेष्टा की। इसी उधेड़बुन में लगा हुआ कछवाहा राजा दिल्ली की शाही सेवा में ठहरा रहा। इधर मारवाड़ का राठौड़ राजा अभयसिंह अजमेर आया और यहाँ कई दिन तक ठहरा रहा। उसने सोचा कि मेरे पिता ने अजमेर को पूर्व में विजित कर अपने अधिकार में किया था और मैं भी अब अजमेर पर अपना अमल कर सकता हूँ। उधर दिल्ली में कछवाहा राजा ने कपटपूर्वक बादशाह के साथ गुप्त रूप से एक योजना बनाई।

राजामल मंत्रिय निज सिखाय, दक्खिन दल लावन दिय पठाय।
यहतव हि पत्त दक्खिन अनीक, किय सामबिरचि हितकथ कितीक॥५४॥

लिय रामचंद पंडित मिलाय संध्या राणंजिय पुनि सुभाय।
मरहट्ठ उभय इम लियउ फोरि, करि नेह दैन किय दम्म कोरि॥५५॥

इत नृप उमेद बुंदिय बिचारि, कोटेस लुब्ध अनुचित अकारि।
हमरेहि द्रव्य सन रचिय जुद्ध, लिय बहुरि भुम्मि रचि कपट लुद्ध॥५६॥

तसमात उचित नहिं पर सहाय, लैहैं ब हमहिं भुजबल दिखाय।
उम्मेदनृपति यह मंत्र लाय, अजमेर गयउ बुंदिय बिहाय॥५७॥

मरुधर नरेस सन किय मिलाप, महिपाल उभय रहि हित अमाप।
इत उदयनैर जगतेस रान, बुंदी छुटी सु निरख्यो निदान॥५८॥

इस योजना के अन्तर्गत कछवाहा राजा ने अपने प्रधान सचिव राजाराम खत्री को निर्देश दे कर दक्षिण में भेजा और उसे वहाँ से दक्षिण के मराठों की सेना लाने का काम सोंपा। राजाराम राजा के आदेशानुसार दक्षिण में गया और उसने वहाँ से चढाई करने को मराठा सेना लाने के लिए संधि की। उसने पंडित रामचन्द्र को अपने पक्ष में कर लिया और उसके साथ ही सिंधिया रणंजय को भी सहायता करने को तैयार कर लिया। इन दोनों मराठा योद्धाओं ने इस कार्य के लिए रुपये माँगे तब राजाराम खत्री ने दोनों को एक करोड़

रूपये देने का इकरार किया। इधर बूंदी में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने सोचा कि कोटा के स्वामी दुर्जनसाल ने अनुचित लोभ किया है। उसने हमारे ही धन से खड़ी की गई सेना की सहायता से युद्ध जीता पर हमारी भूमि को लालच से दबा लिया है इसलिए अब से मुझे बूंदी वापस प्राप्त करने के लिए किसी दूसरे की सहायता का मुँह नहीं ताकना चाहिए। मुझे अपनी ही ताकत से अपनी जागीर लेने के उपाय करने चाहिए। इस तरह की योजना अपने मानस में बिठा कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह बूंदी छोड़ कर अजमेर गया। उसने वहाँ जा कर मारवाड़ के राठौड़ राजा अभयसिंह के साथ मंत्रणा की और दोनों राजा योजना बनाने के लिए साथ-साथ अजमेर रहे। इधर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने देखा कि बूंदी कैसे छूट गई है इसके कारण को अच्छी तरह सोचा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ दलेलसिंहसहायार्थजैपुरपतिसचिव खत्र्युपटङ्कराजामल्लाऽनुजशिवदास-सज्जीकरणतदग्रजसम्मतिबरवाड़पुरयोधनतन्निदानकथनहड्डेन्द्रबुन्दीबिजयकरणकोटेशसेनापतिमरणतारादुर्गाऽधिरोहंण्यारोपणपलायमान-दलेलसिंहनयनपुरगमनकोटेशबुन्दीवैभवलुण्टनसर्वाधिकार स्वीकरण-नृपार्थलोहितप्रान्तसमर्प्पणतत्प्रतिसाहिपुरेश्वररुशत्युपालम्भदानमहारावकोटा-गमनशिवदासबरवाड़विजयनकूर्मराजधूलाधिपतिदलेलसिंहनयनपुर-प्रेषणसालम्याश्वासनजायसिंहिदिल्लीगमनम रूपत्यजमेराऽऽगमनेश्वरीसिंह-राजामलदक्षिणप्रेषणरजतमुद्राकोटि निवेदनप्रतिज्ञानश्रीमन्तसचिवराणाऽऽ रामचन्द्र मेलनहड्डेन्द्र कोटासहायलज्जाप्रापणतद्बुन्दीत्यजनाजमेर-गमनधन्वेशसमागमनमेकादशो मयूखः। आदितः ॥२९२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में दलेलसिंह की सहायता के अर्थ जयपुर के पति ईश्वरीसिंह का अपने सचिव, खत्री उपटंकवाले राजामल के छोटे भाई शिवदास को तैयार करना। उसके बड़े भाई की सलाह से बरबाड़ा युद्ध करने का कारण कहना, हाड़ाओं के राजा का बूंदी विजय करना और कोटा के पति के सेनापति का काम आना। तारागढ़ आदि पर नीसरनियां लगाना और दलेलसिंह का भागकर नैणवा जाना। कोटा के पति का बूंदी का वैभव लूटकर सब पर अपना अधिकार

करना, उम्मेदसिंह के अर्थ लोहितपुर का परगना देना जिस के प्रति शाहपुरा के पति उम्मेदसिंह का खीजकर उपालंभ (ओलंभा) देना। महाराव का कोटे जाना शिवदास का बरवाड़ा को जीतना कछवाहों के राजा ईश्वरीसिंह का धूला के पति दलेलसिंह को नैणवा भेजना, सालमसिंह के पुत्र (दलेलसिंह) को आश्वासन देना (विसासना) जयसिंह के पुत्र (ईश्वरीसिंह) का दिल्ली जाना, मारवाड़ के पति का अजमेर आना और ईश्वरीसिंह का राजामल को दक्षिण में भेजना, करोड़ रूपये देने की प्रतिज्ञा का बोध कराना। श्रीमन्त के सचिव राणंजी (रणंजय) और रामचन्द्र को मिलाना। हाडों के इन्द्र (उम्मेद सिंह) का कोटा की सहायता से लज्जा पाकर उसका बूंदी छोड़कर अजमेर जाकर मारवाड़ के पति से मिलने का ग्यारहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ बानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

उदयनैर जगतेस इत, जान्यों समय नवीन।
बुंदिय हड्डुन छिन्नि लिय, है जैपुर बल हीन॥१॥

यातैं भुव उद्यम करन, उचित काल अब आय।
भागिनेय हित दीजिये, ढुंढाहर बटवाय॥२॥

यह बिच्चारि कोटेस प्रति, पुनि पठये लिखि पत्त।
जीतैं जैपुर जंग जुरि, अब हम तुम अनुरत्त॥३॥

सोधी दुर्जनसल्ल तब, उनकै गाढ न रंच।
पहिलैं ही फीके परे, परि परि रान प्रपंच॥४॥

यह बिचारि पच्छी लिखिय, रचहु कुंच तम रान।
पीछैं ही हम आत हैं, जुरि जित्तहिं घमसान॥५॥

हे राजा रामसिंह! अब इन बदली हुई परिस्थितियों में उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने सोचा कि अभी (जयपुर) तो बलहीन सा हो रखा है अतः बूंदी को हाड़ाओं से छीनने का उपयुक्त समय है। यही वह अनुकूल समय है जब मुझे अपने भानजे माधवसिंह को ढूंढाड़ जयपुर में से हिस्सा दिलाना चाहिए। भूमि प्राप्त करने का उचित अवसर देख कर महाराणा ने

कोटा के राजा दुर्जनसाल के पास पत्र भिजवाए। उनमें लिखा कि हम लोग आपस में ही हैं अतः अब हमें मिल कर जयपुर पर चढाई करनी चाहिए। हम युद्ध लड़ कर जयपुर को जीत लेंगे पर हाड़ा राजा दुर्जनसाल ने पत्र पा कर सोचा कि महाराणा में रंचमात्र भी टिकाव नहीं है। पहले भी एक बार भरोसा कर साथ किया और महाराणा के रचे प्रपंच में पड़े पर फायदा क्या हुआ? राजा दुर्जनसाल ने इस तरह सारी आगे पीछे की बातें सोच कर प्रत्युत्तर भिजवाया कि हे महाराणा! आप उदयपुर से कूच करें। आपके पीछे-पीछे हम पहुँच रहे है। वहाँ साथ मिल कर घमासान मचाएंगे।

यह दल बंचि बिचारि तब, निज भट रान बुलाय।
मरहट्ठन ढिग मुक्कलन, दुव तयार किय दाय॥६॥

इक्क सलूमरि पुर अधिप, केसरि सुवन कुबेर।
बखतसिंह काका बहुरि, किय तयार हितकेर॥७॥

कोटा के राजा का इस आशय का पत्र पा कर महाराणा ने अपने सारे सामन्त योद्धाओं को एकत्रित किया और उनके साथ इस युद्ध हेतु मंत्रणा की। इस सभा में यह तय किया गया कि दक्षिण के मराठों की सहायता लेना अच्छा रहेगा और इस निमित महाराणा ने अपने दो धिश्वास पात्र व्यक्तियों को यह जिम्मा सोंपा कि वे जा कर मराठों से बात करें। इनमें एक तो सलूंबर के रावत केसरीसिंह का पुत्र कुबेरसिंह था और दुसरा उसी का चाचा बखतसिंह। महाराणा ने अपने इन दोनों हितेषियों को अपना हित साधने हेतु रवाना किया।

पादाकुलकम्

हुलकर हित कग्गर लिखवाये, कोटि दम्म तिहिं दैन कहाये।
लिखिय मलार भरोस तिहारैं, अब हम जैपुर बिजय निहारैं॥८॥

रामचन्द पंडित इम फोरहु, राणंजी सन पुनि हित जोरहु।
कूरम तुमहिं दैन जो करिहैं, तासों द्विगुन द्रव्य हम भरिहैं॥९॥

कग्गर इम लिखवाय दये कर, बखत कुबेर दोहु पठये बर।
दोऊ तब दक्खिन दल पत्ते, अवसर पाय मिले अनुरत्ते॥१०॥

राणंजी संध्या सुत तत्थह, जया नाम सब दैति समत्थह।
बदलि पग्घ तासों बखतेसह, मित्र भयो जिम धनद महेसह॥११॥

महाराणा ने होल्कर के नाम पत्र लिख कर सोंपा जिसमें कहा गया था कि उदयपुर उन्हें सैन्य सहायता उपलब्ध कराने के लिए एक करोड़ का फौज-खर्च देने को तैयार है। आगे लिखा कि हे मल्हारराव होल्कर! हम तुम्हारे ही आसरे से जयपुर को जीतने की बात सोचते हैं। पत्र पाते ही पंडित रामचन्द्र और रणंजय सिंधिया को भी अपनी ओर मिलाने का यत्न करें। इस सबब जो भी जयपुर का राजा उन्हें देगा उससे दुगुनी राशि हम उन्हें देने को तैयार हैं। इस आशय का पत्र लिखकर महाराणा जगतसिंह ने अपने विशेष दूत कुबेरसिंह और बखतसिंह को सोंपा और उन्हें भेजा। दोनों जब दक्षिण की सेना के मध्य पहुँचे तो उन्होंने अवसर देखकर मराठा सामन्तों से मुलाकातें की। रणंजय सिंधिया का समर्थ पुत्र जयाजी सिंधिया भी वहाँ था उससे बखतसिंह मिला और दोनों ने आपस में पगड़ी बदली (एक दूसरे को अपनी पगड़ी देना बंधुत्व की निशानी मानी जाती है) और दोनों ने आपस में ऐसी मित्रता की जैसी कुबेर ने महादेव से की थी।

यह सुनि रान सेन सजि दुद्धर, माधव जुत हंकिय जैपुर पर।
नागोर प बखतेस कबंधह, अप्पन पुत्रिय स्वसुर हुतो वह ॥१२॥
बिजयसिंह वाकों सुत व्याह्यो, स्वीय सुता तातै हित चाह्यो॥
इहिं कारन जगतेस रान अब, सत्थ लैन नागोर कटक सब ॥१३॥
कनक मुल्ल रुप्पय दुव लक्खन, पठयो बखतसिंह पंहं हितपन।
अक्खिय खरच एह अवधारहु, पृतना निज मम भीर प्रचारहु ॥१४॥
दुमति लुब्ध बखतेस बंचि दल, पुरट लयो रु नांहिं पठयो बल।
रान पचीस सहंस दल रज्जिय, सेन सहंस दस माधव सज्जिय ॥१५॥

इधर महाराणा को जब यह पता चला कि बखतसिंह और रणंजय सिंधिया आपस में मित्र बन गए हैं तो उन्होंनें अपनी दुर्द्धर्ष सेना को सज्जित किया और अपने भानजे माधवसिंह के साथ जयपुर पर चढ़ाई करने को रवाना हुए। इस समय नागौर का स्वामी बखतसिंह राठौड़ था जो महाराणा की पुत्री का श्वसुर था। उसका पुत्र कुमार विजयसिंह महाराणा जगतसिंह की पुत्री ब्याहा था। यही सोच कर महाराणा ने नागौर की सेना को भी अपने साथ लेने को दो लाख रूपये मूल्य का सोना बखतसिंह राठौड़ के पास भिजवाया

और कहलाया कि इसे फौजखर्च की राशि मान कर आप अपनी सेना मेरी सहायता के लिए भेजें पर उस दुर्मति और लोभी बखतसिंह ने पत्र पढ़ कर भेजा हुआ सोना तो रख लिया पर सेना नहीं भेजी। इस अभियान में पच्चीस हजार की संख्या वाली सेना तो महाराणा जगतसिंह की थी वहीं दस हजार सज्जित सैनिक माधवसिंह कछवाहा के थे।

इम हजार पैंतीस अनीकन, रान बहुरि माधव इच्छत रन।
किय दरकुंच उदयपत्तन तजि, सब कूरम सीमा पहुंचे सजि॥१६॥

टोडा नगर परग्गन अंतर, माधव रान मिलान दये बर।
हो दिल्लिय तबतैं कूरम पति, यातैं अवर सेन पठयो अति॥१७॥

हेमराज बखसी दलकंत सु, अरु झलायपति सुत जसवंत सु।
नागरचाल ईस पुनि नारव, सुभट नाम सिरदार जोर जव॥१८॥

इत्यादिक जैपुर भट आये, रान समुख सजि कपट रचाये।
जान्यों कछु दिन अंतर पारैं, तो नृप ईस्वरिसिंह पधारैं॥१९॥

इस तरह कुल पैंतीस हजार सैनिकों की भारी फौज के साथ महाराणा जगतसिंह और उसके भानजे माधवसिंह ने जयपुर की ओर कूच किया। सारी सेना ने जयपुर राज्य के सीमावर्ती नगर टोडा में पड़ाव डाला। इस वक्त कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह दिल्ली बादशाह की सेवा में गया हुआ था और उसकी थोड़ी सेना भी अन्यत्र गई हुई थी। इसलिए शेष कछवाहा सेना के साथ हेमराज बक्षी और झलाय के स्वामी का पुत्र जसवंतसिह टोडा की ओर रवाना हुए। इनका साथ देने को उणियारा का जागीरदार और जग्गपुर का सामन्त सरदारसिंह भी शीघ्र सेना सज्जित कर चला। ये सभी जब टोडा पहुँचे तो इन्होंने महाराणा की सेना के साथ एक छल किया। वे किसी तरह थोड़े दिन इस आक्रांता सेना को उलझाये रखना चाहते थे ताकि तब तक राजा ईश्वरीसिंह यहाँ पहुँच जाए।

दोहा

कग्गर पठयो कूरमन, रान निकट छल रक्खि।
महिपति तुम माधव अरथ, अवनि विवाहु अक्खि॥२०॥

अपनी छल से भरी योजना के अनुरूप उन्होंने एक पत्र लिखकर भेजा जिसमें लिखा कि हे महाराणा! आप यह जो अपने भानजे माधवसिंह के अर्थ भूमि देने का कहते हैं, यह आपकी जायज माँग है।

षट्पात्

अग्गैं नृप जयसिंह राज माधवहित अप्पिय,
अब नृप ईश्वरिसिंह ताहि मेटन मति थप्पिय।
यातैं नहिं अनुकूल सुभट हम सब कूरम सन,
अप्पहु आयस अप्प सोहि करिहैं प्रतीति पन।
बिनु खरज नांहिं कारज बनैं देहु खरच सब स्वीय करि।
हम अब अधीन तुमरे हुकम गहि हैं ईस्वरिसिंह लरि॥२१॥

पूर्व में कछवाहा राजा जयसिंह ने जो राज्य का हिस्सा माधवसिंह को दिया था उसे अब राजा ईश्वरीसिंह ने नहीं देने का मानस बनाया है। हम अधिकांश सामन्त अपने स्वामी से इस बात के लिए सहमत नहीं है। अब हे महाराणा! आप जैसी आज्ञा दें हम वही सब कु छ करने को तैयार हैं। हमें अब से आप अपने हुक्म के आधीन जानें। यदि आपकी आज्ञा हुई तो हम राजा ईश्वरीसिंह को युद्ध लड़ कर बंदी बना लेंगे।

छल प्रपंच यह मंडि पत्र पठयो कछवाहन,
बंचि रान मतिमंद मन्नि लिय सत्य मुदित मन।
दम्म अयुत प्रतिदीह कुम्म सेनहिं करि दिन्नैं,
कपटी कूरम कटक लुब्भि दस दिन तक लिन्नैं।
दिय पत्र बहुरि दिल्लियनगर बुल्लिय ईस्वरसिंह द्रुत।
आमैर पट्ट जावत अबहि रानां आयउ अनुज जुत॥२२॥

छल-प्रपंच से इस तरह के झूठे आश्वासन से भरा पत्र कछवाहों ने भिजवाया जिसे पढ कर मतिमंद महाराणा ने विश्वास कर लिया और वह इसे पा कर मन ही मन प्रसन्न हुआ। यही नहीं मूर्ख महाराणा जगतसिंह ने प्रतिदिन के हिसाब से दस हजार रूपयों का खर्च देना भी तय कर दिया। इस प्रदत्त फौजखर्च को लोभी कछवाहों ने भी दस दिन तक बराबर प्राप्त किया। इस अवधि के मध्य उन्होंनें दिल्ली पत्र लिखकर अपने स्वामी ईश्वरीसिंह

को द्रुत गति से आने को कहा। पत्र में लिखा कि उदयपुर का महाराणा जगतसिंह और तुम्हारा छोटा भाई माधवसिंह दोनों जयपुर लेने को उद्यत हैं। यदि विलम्ब किया तो आमेर का राज गया समझें

यह सुनि ईस्वरिसिंह साह सन सजव सिक्ख लहि,
करि आयउ दरकुंच गुमर अति बल बिसेस गहि।
निज दल सम्मलि होय पत्र पठयो रानां प्रति,
अग्गैं भो वह बचन क्यों सु चुक्कत अब दुम्मति।
मंत्रिय इतैं सु मरहठ्ठ दल राजामल सब फोरि लिय।
इक्क न मलार फुट्टिय अतुल हुलकर राय उपाय हिय ॥२३॥

ऐसा पत्र पाते ही कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बादशाह से जयपुर आने की इजाजत मांगी और विदाज्ञा ले कर शीघ्र ही जयपुर आया। यहाँ आते ही उसने अपनी सेना को सज्जित किया और कूच कर टोडा पहुँचा। यहाँ अपनी शेष सेना से मिलने के बाद महाराणा के पास एक पत्र लिख कर भेजा जिसमें लिखा कि पूर्व में हमारे मध्य जो करार हुआ था उसे आप एक दुर्मति की तरह भूल क्यों रहे हैं ? इस बीच कछवाहा राजा के बुद्धिमान प्रधान सचिव राजामल खत्री ने मराठों से मिलकर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। बस, एक मल्हारराव होल्कर राजामल के सारे प्रयत्नों के बावजूद उसकी बातो में नहीं आया। अर्थात् वह महाराणा के पक्ष में आया था इसलिए इसी पक्ष में बना रहा।

पादाकुलकम्

रान सुभट हुलकर मिलवाये, बलि संध्या सुत मित्र बनाये।
रान सहाय करन तिन धारी, सो राजामल सबहि बिगारी ॥२४॥
रान सुभट दोहू निकसाये, मुँह बिगारि निरखत भुव आये।
पुनि खत्रिय लै सब मरहठ्ठन, चलिय रान सिर कुंच कटठ्ठन ॥२५॥
कोटा मुलक लुट्टतहि आये, दुजनसल्ल नहिं हत्थ दिखाये।
इम द्रुत आय रान दल घेर्यो, फनपति मानहु कुंडल्ल फेर्यो ॥२६॥

महाराणा जगतसिंह के सामन्तों ने तब होल्कर की महाराणा से मुलाकात

करवाई। दोनों प्रीतिपूर्वक मिले। महाराणा ने इसके बाद होल्कर के साथ सिंधिया को भी अपने मित्र बनाने का प्रयत्न किया पर दुर्भाग्य कि तब तक राजामल खत्री का दाँव लग गया और उसने महाराणा का बनता काम बिगाड़ दिया। इससे कुपित हो महाराणा ने अपने दोनों सामन्तों (बखतसिंह और कुबेरसिंह) को वहाँ से निकाल दिया और वे अपना सा मुँह ले कर लज्जित से निकल गए। अथवा दूसरे अर्थ में होल्कर और सिंधिया को अपने शिविर से जाने का कहा और वे शर्म के मारे चले गए। इसके बाद राजामल खत्री ने मराठों की सहायता से महाराणा पर कूच किया। वे यहाँ आते समय कोटा को लूटते हुए आए थे और प्रत्युत्तर में हाड़ा राजा दुर्जनसाल ने अपने हाथ नहीं दिखाए थे। अर्थात् मुकाबला नहीं किया। राजामल और मराठों ने तुरन्त ही आ कर महाराणा की सेना को घेर लिया मानो शेषनाग ने अपनी कुंडली मारी हो।

षट्पात्

सक इक नभ बसु सोम माघ मेचक पख अंतर,
मरहट्ठन दिय मार रान बिंटिय रचि संगर।
धमि तोपन धमचक्क भुम्मि भोगन डगमग्गिय,
झंडे अरुन प्रजारि झुंड गोलन झगमग्गिय।
गज ह्रय सिपाह उड्डिय गरद प्रबल अचानक भय परिग।
झंपत सिचान खरकोन गति मेवारन मद उत्तरिग।।२७।।

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ एक के माघ माह के कृष्ण पक्ष में मराठों ने महाराणा की सेना को घेर कर मार लगाई। उनकी तोपें आग उगलने लगीं। शेष नाग के फण लचके और पृथ्वी डगमगाने लगी। उन्होंने लाल रंग के ध्वजों (महाराणा की सेना के ध्वज लाल रंग के थे। को जलाते हुए तोपों से गोलों के झुण्ड दागे। इन प्रहारों से सामने वाली महाराणा की सेना के हाथी, घोड़े उड़ने लगे और सेना में अचानक भय व्याप्त हो गया। जिस तरह तीतर पक्षियों पर बाज झपटता है उसी तरह मराठों के झपटने से मेवाड़ के योद्धाओं का रण उन्माद काफुर हो गया।

दोहा

आय अचानक अरथ निस, मरहट्ठन दिय मार।
बीत रान व्याकुल भयउ, बलि किय साम बिचार ॥२८॥

यह उदंत मरहट्ठ सुनि, रुचि बस छंडिग रीस।
साम बिरचि किय रान सिर, दम्म लक्ख बाईस ॥२९॥

नृप कूरम अरु रान पुनि, मरहट्ठन मिलवाय।
कियउ साम दोऊन कै, रस हित कछुक रचाय ॥३०॥

माधव हू के मिलन की रामचंद्र किय बत्त।
सो हुलकर मन्नी नहीं, रक्ख्यो पृथक बिरत्त ॥३१॥

आधी रात के समय मराठों ने आ कर अचानक धावा बोला इससे महाराणा अपनी सेना सहित व्याकुल हो गया और उन्होंने संधि का विचार किया। इसकी भनक़ जब मराठों को लगी तो उन्होंने महाराणा की सेना पर क्रोध करना छोड़ दिया और वे तुरन्त संधि करने की महाराणा की बात पर सहमत हो गए। उन्होंने तुरन्त महाराणा से फौजखर्च के बाईस लाख रूपये मांगे। यही नहीं मराठों ने अपने दबाव का प्रयोग करते हुये कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह और महाराणा जगतसिंह को भी मिला दिया। दोनों पक्षो में उन्होंने संधि करवा दी। इसी समय पंडित रामचन्द्र ने कुमार माधवसिंह से मिलना चाहा पर होल्कर ने इस प्रस्ताव को नहीं माना और दोनों को अलग-अलग ही रखा।

माधवहू यह सुनि कहिय, मैं ढुंढाहर राज।
कैसैं ईश्वरिसिंह सों, सद्धै मिलन समाज ॥३२॥

माधव रान बिगारि मुँह, तदनु उदैपुर पत्त।
मरहट्ठन जुत कुम्म नृप, घल्ली बुंदिय घत्त ॥३३॥

सहर देस लै किय सकल, अमल दलेल अधीन।
तारागढ़ भो नहिं तबहि, बिंट्यो जाय बलीन ॥३४॥

यह सुन कर तब माधवसिंह ने कहा कि वास्तव में ढूंढाड़ (जयपुर) का राजा मैं हूँ फिर आप लोग कैसे ईश्वरीसिंह से संधि कर रहे है ? और मै भी उसकी सभा में क्यों मिलने जाऊँ ? पर इन गीदड़ भभकियों से कुछ बात नहीं बनी और महाराणा जगतसिंह और उनका भानजा कछवाहा माधवसिंह

अपना सामुँह ले कर वापस मेवाड़ की ओर प्रस्थान कर गए। इधर मराठों को अपने साथ मिला कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बूंदी को जा घेरा। उन्होंने घात लगा कर बूंदी नगर और देश को जीता और दलेलसिंह हाड़ा का फिर से बूंदी पर अमल करा दिया। मात्र एक तारागढ़ दुर्ग अधिकार में नहीं आ पाया था तब उन बलवान योद्धाओं ने दुर्ग को जा घेरा।

षट्पात्

धमि तोपन धमचक्क कोट तारागढ़ कंपिग,
दुव कोटा भट देखि जानि परबल यह जंपिग।
हम हड्डे बड बीर कढहिं फहरात फतूहन,
भग्गे जिम निकसैं न प्रबल लग्गत कलंक पन।
जो जान देहु संजुत रखत तो कवि कीरति पढ्ढिहैं।
नांतरि कढैं न हड्डे मरद अड्डे पंजर कढ्ढिहैं॥३५॥

तोपों के धमाकों से तारागढ दुर्ग की दीवारे काँप उठी। यह देख कर कोटा के राजा दुर्जनसाल और उम्मेदसिंह ने अपने शत्रुओं से कहा कि हम हाड़ा बड़े वीर है और रणभूमि से अपने ध्वज फहराते हुए ही जाते हैं। पर वे दोनों इस तरह वहाँ से निकल भागे जिस तरह कोई भी प्रबल वीर निकलते हुए सोचेगा कि इससे उसके कुल को कलंक लगेगा। उन्होंने कहा कि यदि आप हमें हमारी सामग्री सहित यहाँ से जाने देंगे तो कवि लोग हमारे यश का गान करेंगे। यदि नहीं तो हाड़ा वीर यहाँ से चल कर नहीं रणभूमि में आड़े शरीर से निकलेंगे अर्थात् लेटकर घायल अथवा मरी हुई अवस्था में जाएंगे।

सुनि हुलकर दिय बचन रखत संजुत तुम जावहु,
कछु दिन कूरम जोर नांहिं बुंदिय तुम पावहु।
अजितसिंह अरु रूप तबहि कोटेस सुभट दुव,
सजि बल खुल्लि निसान निकसि कोटा अध्वग हुव।
लुट्टिय दलेल बुंदिय सकल बुद्धसुतहिं चाहत निरखि।
कूरम समेत दक्खिन कटक दिन दुव रक्खिय लुद्ध लखि॥३६॥

यह शर्त सुनकर होल्कर ने कहा कि मै वचन देता हूँ कि आप लोग अपनी सामग्री ले कर यहाँ से जाएँगे पर यह बात तय है कि कछवाहा राजा

के बल के समक्ष आप लोग बूंदी को नहीं पा सकेंगे। इसी समय अजीतसिंह और रूपसिंह इन दोनों कोटा के सामन्तों ने निशान फहराते हुए अपने दल को सज्जित किया और कोटा का मार्ग लिया पर जाने से पहले उन्होंने दलेलसिंह की बूंदी को इसलिए लूटा क्योंकि वे वहाँ हाड़ा राजा बुधसिंह की संतान (उम्मेदसिंह) को देखना चाहते थे। यही कारण रहा कि मराठी सेना के साथ कछवाहा राजा अपना लोभ देख कर दो दिन तक वहीं रहा।

जुत दलेल कछवाह तदनु लै दल मरहट्टन।
कोटा बिंटिय जाय रुट्ठि लुट्टत मग रट्ठन।
ग्राम सगतपुर जाय अप्प उत्तरि चम्मलि तट।
लिय पत्तन गरदाय सेन संकुलि बट उब्बट।
बज्जिय निसान त्रबंक बिखम दुसह फैर तोपन दगिय।
अंदर अलाव मच्चिय मनहुं लंकापुर बंदर लगिय॥३७॥

कछवाहा राजा ने तब दलेलसिंह के साथ मराठा सेना को अपने साथ ले जा कर कोटा को जा घेरा और बूंदी से कोटा आने वाले मार्ग पर लूटपाट मचाई। राजा ईश्वरीसिंह ने चंबल नदी को गाँव सगतपुर के पास से पार किया और आगे जा कर कोटा नगर को अपनी सेना से घेर लिया। फिर अपने निशान वाद्यों को बजाना आंरभ किया। तासे बजवाए और अन्ततः तोपों के धमाके शुरू किये। इन तोपों के दागने से नगर में ऐसी ज्वाला लगी जैसी हनुमान ने लंका नगरी में लगाई थी।

हीरकम्

दक्खिन दल लै दुरूह कूरम हठ हेरयो।
कोटापुर जाय घोर घत्तन घन घेरयो।
द्वै बट दल बंटि अप्प चम्मलि दिस तंडयो।
अद्ध सु दल पुव्व ओर जाय जोर मंडयो॥३८॥
तोपन थमचक्क कोट लोपन पुर लग्गयो।
गोलन गजबीन मोर संकुलि दव दग्गयो।
कच्छप फटि पिट्ठी नाग रीढक बररक्कयो।
दंतुलि तुटि कोल झोल झंझट झुकि झक्कयो॥३९॥

मराठों की सेना का साथ पा कर कछवाहा राजा ने दुर्द्धर्ष सेना के साथ कोटा नगर को जा घेरा। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया और स्वयं कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने चंबल नदी की ओर जा कर गर्जना की। उसने अपनी आधी सेना के साथ पूर्व दिशा में जा कर दबाव बनाया। उसकी तोपों के प्रहारों से कोटा नगर का लोप होने लगा। गजब ढाने वाले तोपों के गोलों ने बारूद के सहारे आग की कयामत बरपा की। इससे कच्छप अवतार की पीठ फट गई और शेष नाग की रीढ़ की हड्डी दरक गई। बाराह अवतार की दंतुरी में दरार आ गई और वह इस युद्ध के भार से झुक कर गिरा।

अतल रु बितलादि लोक ओदकि भय भग्गये।
दिग्गज डगमग्गि सोच मोचन मद लग्गये।
फोजन घन फेर भुम्मि जोजन दुव ढंकई।
ओजन भट भीर जंग मोजन हठि हंकई॥४०॥
टोलन पबि पात डोल गोलन गढ बिग्गरैं।
गज्जन पुर सोध गोख छज्जन छटके परैं।
मंडब फटि के लदाव खंभन गन उच्छटैं।
थंभन थहराय ओक ओकन अति उप्पटैं॥४१॥

अतल और वितल आदि लोक भय से भाग कर और गहरे चले गए। घनघोर युद्ध करने वाली सेना ने दो योजन की भूमि ढांपी अर्थात् इतने क्षेत्रफल को आछन्न कर दिया और वीरों की भीड़ पराक्रम के साथ युद्ध की लहरों सी हठपूर्वक आगे चली। दिग्गज सभी डोल उठे और शौच (विष्ठा, लाद) एवं मद छोड़ने लगे। पर्वतों पर वज्र गिरे उस तरह तोप के गोले गढ के पड़खच्चे उड़ाने लगे। तोपों के धमाकों से नगर के महल, झरोखे और छज्जे टूट कर गिरने लगे। कितने ही मडंप फूट कर बिखर गए। कई अपने लदाव सहित उखड़ गए और थंभे शेष छोड़ गए। वहीं कई घरों के थंभे भी थरहराते हुए गिरने लगे।

उड्डुत गढ खंड फेर गोलन लगि बिक्खरैं।
बज्रन कटि पच्छजानि पब्बय फटि के परैं।
कोट रु कपिसीस ओट उड्डुत छबि गैन मैं।
चोटन पर चोट लोट लग्गत पुर लैन मैं॥४२॥

गोपुर परिकूट अट्ट पट्टन परि बट्ट के।
कापथ अतिपंथ होत चम्मलि तट घट्ट के।
द्विपथ रु त्रिक ओ चतुष्क रीति सु सब लुप्पई।
कुट्टिम ढिग छत्ति आनि छत्तिन मिलि उप्पई ॥४३॥

तोपों के गोलों के प्रहारों से दुर्ग टुकड़े-टुकड़े हो बिखरने लगा। जैसे वज्रपात से कटे पंखों वाले पर्वत फट कर बिखर रहे हों। कोट (शहरपनाह) और कंगुरों की ओट टूट कर आकाश की ओर उछलने लगी। यही नहीं नगर में सभी ओर गोलों के प्रहार पर प्रहार होने लगे। नगर द्वार के सामने वाली दीवार, परकोटा, बुर्जे आदि बिखर कर रास्ता देने लगे। चम्बल नदी के तट पर बने घाटों पर जो छोटी-छोटी पगडंडियां थी वे सभी बड़े मार्ग में तब्दील होने लगीं। नगर में बने दोराहे, तिराहे, चौराहे सभी टूट कर लुप्त हो गए। मकानों के उपर की छत नीचे वाली छत से आ मिली और फिर दोनों नींव से मिल कर शोभित होने लगी अर्थात् मंजिलों वाले घर खंडहर में बदल गए।

अंगन घर अग्गि सोर संगर अति उच्छरैं।
जंगन अतिजोर दोर दंगन गढ बिग्गरैं।
अंदर अकबक्कि लोक बंदर भय ज्यों दुरे।
मंदिर पुर तूटि आनि चम्मलि जल के घुरे॥४४॥

तोपों द्वारा रचे गए इस संग्राम में घर-आंगन में ठौर-ठौर बारूद की अग्नि नाचने लगी और विनाश के प्रसार में आश्चर्यजनक ढंग से गढ़ बिखरने लगा। शहर के (भीतर के) वासी घबराकर भयातुर हो इस तरह सुरक्षित जगह पर दुबकने लगे जैसे लंकावासी हनुमान के भय से इधर-उधर दुबके थे। नगर के कई घर तो उखड़ कर उछलते हुए चम्बल के पानी में जा घुले। अर्थात् उनका मलबा नदी में जा गिरा ।

डंबर उडि खेह अक्क अंबर सब लुक्कये।
ध्यान सु सिव छुट्टि तान अच्छरि गन चुक्कये।
चम्मलि जल छिज्जि मीन सम्मलि घन आवटे।
डुंगर डगमग्गि पक्क डंबर गति के फटे॥४५॥

सागर जल सेतु छोरि लोपन भुव लग्गये।
कोपन इम कुम्म सेन तोपन दव दग्गये।
संगर दुव मास मंडि कूरम इम अंकुरयो।
सत्थहि मरहट्ट पिक्खि दुज्जनसल संकुरयो ॥४६ ॥

तोपों के इस विनाशकारी युद्ध के चलते धूल उड़ कर ऊपर उठी और आकाश में छा गई जिससे सूर्य भी आच्छादित हो गया। घमासान युद्ध के कोलाहल से महादेव की समाधि टूट गई। अप्सराएं अपने गायन की तालबद्धता को भूल गई। चम्बल का पानी भाप बन कर उड़ जाने से छीज कर थोड़ा रह गया जिसमें सारे जल-जन्तु, मछलियां आदि सीझने लगे। पर्वत डगमगा कर पके हुए ऊमर के फल की तरह फट पड़े। समुद्र का पानी अपनी सीमा (मर्यादा) लाँघ कर लोक को जलप्लावन से भयभीत करने लगा। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की कुपित सेना ने अपनी तोपों से अग्नि बरसा कर ऐसा कोप किया। दो माह की अवधि तक चले इस युद्ध में कछवाहा अडिग रहा। उसके साथ बलवान मराठे आए जान कर कोटा का राजा दुर्जनसाल सिकुड़ कर रह गया।

दोहा

राणंजी संध्या सुवन, जया नाम अति जोर।
ताकै इक गुटिका लगिय, घन रन मंडत घोर ॥४७ ॥

यह लखि कुम्म दलेल सों, चवि दक्खिन हित चाहि।
पंच ग्राम जुत कापरनि, द्रंग दिवायउ ताहि ॥४८ ॥

दक्खिन जोर दलेल लखि, दियउ कापरनिं द्रग।
पुर पट्टनि पुनि सोंक मैं, अप्पिय राज्य उमंग ॥४९ ॥

तब पट्टनि लिय दक्खिननिन, किय त्रिभाग बनि कंत।
इक इक हुलकर संधिया, इक बिभाग श्रियमंत ॥५० ॥

संवत दुव नभ धृति समय, मेचक माधव मास।
पट्टनि यम कोटा प्रधन, गिल्यो गिनी मन ग्रास ॥५१ ॥

ग्वाल सुरभि गजपाल गज, चक्कि रजक पर चेल।
जमीं देत कर्षुक जिमहि, दिय यह द्रंग दलेल ॥५२ ॥

रणंजय सिंधिया के बलवान वीर पुत्र जया सिंधिया के शरीर में एक गोली आ लगी अन्यथा वह घनघोर युद्ध में संलग्न रहता। जया सिंधिया को घायल हुआ जानकर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बूंदी के दलेलसिंह हाड़ा से कहा कि हमें भी मराठों का हित देखना चहिए। ऐसा कह कर कछवाहा राजा ने दलेलसिंह से पाँच गावों सहित कापरनी गाँव की जागीर जया सिंधिया को दिलवाई। मराठों का बल देख कर ही दलेलसिंह ने कापरनी नगर दिया वहीं उन्हें प्रसन्न रखने की फिक्र में पाटण की जागीर भी दी क्योंकि इनकी प्रसन्नता के सहारे ही उसका राज्य टिका हुआ था। पाटण की जागीर का बँटवारा करने के लिए उसके तीन हिस्से किये। इनमें से एक हिस्सा होल्कर ने और एक सिंधिया ने रखा। वहीं तीसरा भाग श्रीमंत पेशवा को दिया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ दो के वैशाख माह के कृष्ण पक्ष में कोटा के युद्ध के समय में मराठों ने पाटण को मन ही मन एक ग्रास समझ कर निगला और चट्ट कर गए। जिस तरह गायों का ग्वाला भूलवश किसी अन्य की गाय दूसरे को दे दे। जिस तरह महावत भूल से किसी का हाथी अन्य को दे और धोबी भ्रमवश अन्य के समझ उसके कपड़े दूसरे को दे दे। भूल वश जिस तरह कोई किसान जमीन की पैदावार उसके स्वामी की जगह अन्य किसी को सोंप दे उसी तरह दलेलसिंह हाड़ा ने यह पाटण नगर मराठों का सोंप दिया।

मरिग याहि रन के समय, चुंडाउति नृप मात।
कोटा मध्यहिं दाह किय, पर भय जानि प्रपात॥५३॥

मृतक कर्म निज मात को, किन्नों लघु सुत दीप।
हो पुष्कर मरुभूप सह, मिलि उम्मेद महीप॥५४॥

दीपकुमरि अरु दीप दुव, सोदर भगिनी भ्रात।
सह झालिय रानी सह्यो, पुर कोटा दुख पात॥५५॥

कोटा इम कूरम दई, मरहट्ठन जुत मार।
महाराव सठ भीत मन, सम्मुह भो नहिं स्यार॥५६॥

रुप्पय सोलह लक्ख लिय, मरहट्ठ रु कछवाह।
च्यारि लक्ख पुनि बरस प्रति, लैनैं किय दम राह॥५७॥

इम कोटा करि राज को, मद दिय कुम्म उतारि।
कियउ कुच्च निजनिज घरन, दुव दलबिजय बिचारि॥५८॥

इस युद्ध के समय ही राजा उम्मेदसिंह की माँ चूंडावत जी का स्वर्गवास हो गया। इनकी दाहक्रिया कोटा में ही सम्पन्न की गई क्योंकि बाहर शत्रुओं का घेरा था। इसी भय से राजा की माता की अन्त्येष्टि शहर कोटा के मध्य की गई। यही नहीं मृतक के सारे संस्कार भी राजा उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह ने सम्पन्न किये क्योंकि इस समय उम्मेदसिंह तो मारवाड़ के राजा से मिलने को पुष्कर गया हुआ था। पीछे राजा उम्मेदसिंह की बहिन दीपाकुमारी और छोटा भाई दीपसिंह थे। इनके साथ कोटा में झाली रानी भी थी इन सभी ने कोटा में राजा की माता के देहावसान का दुःख सहा। इस तरह कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने मराठों के साथ मिल कर कोटा पर मार लगाई अर्थात् चढाई कर तोपों से विनाश मचाया जब कि कोटा का मूर्ख महाराव दुर्जनसाल गीदड़ बना दुबका बैठा रहा। वह अपने पर चढ आई सेना का सामना करने भी नहीं गया। नतीजन कछवाहा राजा और मराठों ने कोटा के महाराव से सोलह लाख रूपयों का फौजखर्च माँगा। इस दंड राशि को प्रतिवर्ष चार लाख रूपयों की किश्त से लेना तय किया। इस प्रकार कोटा के महाराव रूपी बड़े हाथी का मद कछवाहा राजा ने (झाड़ा) उतारा। इसके बाद मराठे अपने घर गए और दर्प से भरा कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह अपने घर अर्थात् जयपुर गया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ समाधवसिंहराणाजगत्सिंहजयपुरविजयार्थनिस्सरणदिल्लीत ईस्वरीसिंहाऽऽगमनसराजाल्लदक्षिणसैन्यराणावेष्टनदण्डद्रव्यनयनकूर्मराजबुन्दीविजयकरणकोटेश्वरसुभटनिष्कासनाऽनन्तरकोटायुद्धकरणराणंजिपुत्रजयाऽभिधानगुटिकाक्षतप्रापणतच्छुल्कीभूतपट्टनिपुरप्रभृतिनिवसथनिवेदनहड्डेन्द्रमातृमरणकोटातोदमद्रव्यग्रहणतच्चतुर्थांशहायनिकरस्थापनं द्वादशो मयूखः ॥ आदितः ॥२१३॥

श्रीवंश भास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में माधवसिंह सहित राणा जगतसिंह का जयपुर को विजय करने के अर्थ निकलना। दिल्ली से ईश्वरीसिंह का आना, राजामल सहित दक्षिण की सेना का राणा को घेरकर दंड के रूपये लेना। ईश्वरीसिंह का बूंदी विजय कर कोटा के पति के उमरावों को निकालने के बाद कोटा में युद्ध करना। जया नामक राणंजी के

पुत्र के गोली लगना और उसके सूंक (रिश्वत) में पाटणपुर आदि ग्राम देना। उम्मेदसिंह की माता का मरना। कोटा से दंड के रूपये लिये उसके चतुर्थांश का वार्षिक कर (खिराज) स्थापन करने का बारहवाँ मयूख सम्पूर्ण हुआ और आदि से दो सौ तिरानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इत पुक्खर उम्मेद नृप, माता मरन उदंत।
सुनि सब सद्धिय बेदबिधि, मन्त्रि धरम दृढ मंत॥१॥

खरच भीर नृप कैं बहुत, बिपति सकैं न निबाहि।
प्रभु संभर तउ धरम पटु, करैं सु अनुचित काहि॥२॥

मिलै जबहि सब सत्थ कों, अप्प असन तब लेत।
दुव दूक दिन लंघन बनैं, डुल्लैं तदपि न चेत॥३॥

हे राजा रामसिंह! उधर पुष्कर प्रवास के दौरान राजा उम्मेदसिंह को अपनी माँ के देहान्त का समाचार मिला। मन को धर्म में दृढ़ रख कर उसी समय वेदोक्त रीति से सारे कर्म सम्पन्न किये। खर्च के कारण राजा के पास पैसों की बहुत तंगी थी। ऐसी विपत्तियों से भरे समय में राजा का निर्वाह भी कठिन था पर ऐसे समय में भी उस धर्मभीरू राजा उम्मेदसिंह ने कोई अनुचित कर्म करने की नहीं सोची। जब अपने साथ वाले सभी साथियों को भोजन मिल जाता तभी वह स्वयं भोजन करता। ऐसे में कभी-कभी दो-दो दिन तक भूखा रहना पड़ता पर वह राजा अपने चित्त को विचलित नहीं होने देता।

षट्पात्

असन बेर सह सत्थ पंति चोसर परिजावत,
जो व्यंजन सब अत्थ सोहि निज अत्थ लगावत।

मोहत सुभटन चित्त बित्त अप्पत हित जोरत,
स्मेर सुमहिं जिम भृंग सुभट इम नृपहिं न छोरत।

सब रतन फुट्टि घन घात जिम सूचीमुख कछु उब्बरिय।
ते भट उमेद भूपहिं अतुल रहत बिंटि सट्टि हि घरिय॥४॥

भोजन के समय जब उसके साथ वाले सभी पंक्तिबद्ध हो कर बैठ जाते तब वह भी उनके साथ उसी पँक्ति में बैठता। जो खाने के व्यंजन सभी को उपलब्ध होते राजा भी उन्हीं को अपने लिए माँगता। वह स्वयं के लिए अर्जित थोड़े बहुत धन को भी अपने साथ वाले सामन्तों में बाँट देता और यही कारण था कि वह अपने साथियों का मन जीत लेता। सुगंध के कारण पुष्प को जिस तरह भ्रमर नहीं छोड़ते उसी तरह इसके साथी अपने स्वामी का साथ नहीं छोड़ते थे। बड़े हथौड़े (घन) के प्रहार से जैसे अन्य सारे रत्न चूर-चूर हो जाते है वहीं हीरा नहीं टूटता उसी तरह राजा उम्मेदसिंह के साथ वाले सामन्त उससे नहीं टूटे अर्थात् उन्होंने स्वामी को नहीं छोड़ा। वे उसे दिन-रात घेरे रहते, एक घड़ी के लिए भी उससे विलग नहीं होते थे।

भट प्रयाग अरु तोक बहुरि कल्यान भ्रात त्रय,
बीर भवानीसिंह तिमहिं मजबूत धरम मय।
सूर धीर सिवसिंह बैरिसल्लोत महाबल,
इत्यादिक बड बीर नृपहिं सेवत मन उज्जल।
सब धन निवेदि सद्धत हुक्कम बातजात जिम राम तट।
पिक्खैं न हानि अप्पन प्रथित रक्खैं हिय पतिकाम रट।।५।।

ऐसा अटूट साथ देने वालों में प्रयागसिंह था। ये तीनों भाई स्वामिधर्म का पालन करने वाले थे। इनमें कल्याणसिंह और वीर योद्धा भवानीसिंह भी मन वचन से राजा के साथ थे। इनके अलावा वीर और धीर बैरिसालोत हाड़ा वंश का शिवसिंह था। ये सारे योद्धा शुद्ध मन से अपने स्वामी की सेवा में रहते। तन मन और धन से साथ निभाने वाले इन साथियों ने अपने स्वामी को अपना सारा धन अर्पित कर दिया। वे सदा अपने राजा के साथ इस तरह लगे रहते जैसे हनुमान रामचन्द्र के साथ बने रहते थे। वे अपने हानि-लाभ की परवाह नहीं करते हुए स्वयं को सर्वदा स्वामी के कार्य में लगाये रहते।

दोहा

अैसे भट नृप ढिग रहिय, अवर न बिपति प्रपात।
तदपि भूप धीरज अतुल, सूर धरम सरसात।।६।।
पर सहाय अनुचित परखि, तजि बुंदिय चहुवान।
सूर निकसि अैसे समय, बंधत लैन बिधान।।७।।

राजा पर आई आपदा के समय अन्य सामन्त योद्धा उसके साथ न रहे पर जो रहे वे बराबर बने रहे। तब भी वह अतुलनीय धैर्यवान राजा एक शूरवीर का धर्म पालता रहा। दूसरों द्वारा दी जा रही आर्थिक सहायता को अनुचित समझ कर यह चहुवान राजा बूंदी को छोड़ चला। ऐसे कठिन समय में यह शूरवीर राजा अपने ध्येय को प्राप्त करने निकला।

षट्पात्

मरूपतिहू अजमेर भिंटि भूपहिं करि अद्दर,
समुख जाय सनमान बिरचि आन्यो डेरन बर।
सह भोजन सह बास बिहित रचि हेत बढायउ,
उभय मिलन आनंद पुण्य जस जगत पढायउ।
बय अप्प जदपि सोलह बरस अक्खि तदपि छोरन अलस।
सिख्यो चहुबान खुरली सु घर रट्ठोरहिं मृगयादिरस॥८॥

वह मारवाड़ के राजा से मिलने अजमेर आया जहाँ राठौड़ राजा ने भी यथोचित सम्मान किया। उसने राजा उम्मेदसिंह की अगवानी की और प्रीतिपूर्वक उसे अपने साथ शिविर में लाया। राठौड़ राजा ने अभ्यागत इस राजा के साथ भोजन किया और अपने ही कक्ष में उसे रखा। इस तरह परस्पर प्रीति का प्रदर्शन करते हुए दोनों राजा मिले और उनका यह मिलन यशस्वी रहा। यद्यपि इस समय राजा उम्मेदसिंह की उम्र मात्र सोलह वर्ष की थी पर उसका व्यवहार बचकाना नहीं था। अपने घर में जो इस सुघड़ राजा ने शस्त्रविद्या सीखी थी उसका प्रदर्शन उसने राठौड़ राजा के समक्ष शिकार के खेल में किया।

दोहा

मरूपति कैं उमराव इक, ऊदाउत रट्ठोर।
बखतसिंह रन पटु बिदित, रासि नगर सिर मोर॥९॥

अक्खी तिहिं मरुईस सों, कन्या सुभ मम गेह।
बुंदीसहिं व्याहन उचित अप्प करहु हित एह॥१०॥

अभयसिंह अक्खिय सुनत, तनया बुल्लहु अत्थ।
बुंदीसहिं हम व्याहि हैं, सुभ मुहूर्त्त हित सत्थ॥११॥

बखतसिंह सुनि बुल्लई, तनया अप्पन तत्थ।
परिनाई कहि धन्वपति, संभर नृपहिं समत्थ॥१२॥

संबत दृग नभ धृति समा, राध तीज अवदात।
इम रानिय कुंदनकुमरि, व्याह्यो नृप बिख्यात॥१३॥

मारवाड़ के राजा का एक उदावत वंशीय राठौड़ सामन्त बखतसिंह था जो रणपटु और प्रसिद्ध वीर था। रास नामक नगर के इस जागीरदार ने एक सुबह अपने स्वामी जोधपुर नरेश से निवेदन किया कि मेरी लड़की बड़ी हो गई है यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उसका विवाह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह से करना चाहता हूँ। यह सुनते ही राजा अभयसिंह ने कहा कि तुम शीघ्र ही अपनी बेटी को यहाँ लाओ। हम अच्छा मुहूर्त और लग्न देख कर बूंदी के राजा से उसका विवाह कराएँगे। बखतसिंह ने भी अपने राजा का यह कथन सुन कर रास से अपनी बेटी को बुलवाया। जिसे मारवाड़ के राजा ने बूंदी के राजा उम्मेदसिंह से ब्याहा और कहा कि उम्मेदसिंह एक समर्थ राजा है। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ दो के वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के दिन राजा उम्मेदसिंह ने विवाह रचा कर रास की राठौड़ वंशीय कुंदन कुमारी को अपनी रानी बनाया।

इत दलेल कूरम ऊभय, दै मरहट्ठन सिक्ख।
गुमर जोर जैपुर गये, तोर बिजय रन तिक्ख॥१४॥

सुत खत्रिय सिवदास को, नंदराम अभिधान।
बीरन जुत मेटन बिघन, रक्ख्यो बुंदिय थान॥१५॥

इत संभर यह व्याह करि, आयो नगर भनाय।
माता सन हित जुत मिल्यो, करन जोरि नत काय॥१६॥

सस्सू यह जयसिंह की, नृप बुधसिंह कलत्र।
पलटी जो नय तजि प्रथम, तिहिं मंझ्यो हित तत्र॥१७॥

दुलहनि दुल्लह अग्घ अति, लिन्नैं निलय बधाय।
कछु दिन रक्खे मोद करि, मेटन वह अघ माय॥१८॥

इधर बूंदी से दलेलसिंह और कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने मराठों को अपने घर जाने को विदा किया फिर दोनों विजय के दर्प से भरे जयपुर गए।

उन्होंने शिवदास खत्री के नंदराम नामक वीर पुत्र को बूंदी की रक्षा का कार्यभार सौंपा। उसका साथ देने को कुछ अन्य योद्धा भी छोड़ गए ताकि समय पर बूंदी पर आते विघ्नों का सामना कर सके। उधर चहुवान राजा उम्मेदसिंह भी अजमेर में अपना विवाह रचा कर सीधा भिनाय नगर में आया। यहाँ आ कर उसने अपनी माता को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। पूर्व राजा बुधसिंह की यह रानी जयपुर के राजा जयसिंह की सास थी। नीति का परित्याग कर वह पूर्व में अपने पति से रूठ कर यहाँ पीहर में आ गई थी पर अब उसने फिर से अपने स्नेह का प्रदर्शन किया। इस रानी माँ ने अपने पुत्र की नवविवाहिता वधू को ससम्मान बधाकर घर में लिया। यही नहीं उसने अपने बेटे-बहू को प्रेमपूर्वक कुछ दिन तक यहीं अपने पास रखा। संभव है यह व्यवहार उसने अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए किया हो।

तदनु मात सन सिक्ख किय, बुंदिय सिर नृप सज्झि।
दुलहनि रक्खिय तत्थही, रस उज्जल हित रज्जि॥१९॥
कोटाधीस सहाय सन, पहिलैं बुंदिय पाय।
यातैं नृप बिक्रम अतुल, सज्ज्यो पृथक रिसाय॥२०॥
हिंडोली दरकुंच करि, दिन्नैं आनि मिलान।
मैंना बारह खेटके, आनि मिले छक आन॥२१॥
दुव जीवा धनु ही करन, दुव दुव पिट्ठि निखंग।
कटि कटार बलि बंसुरिय, सिर धवपत्त किलंग॥२२॥
बायुहिं बा अरु किमहिं का, अक्कहिं बुल्लत आंक।
भजत लरत लरि पुनि भजत, लफि उडि चित्रक लांक॥२३॥

इसके बाद राजा उम्मेदसिंह अपनी माँ से आज्ञा ले कर बूंदी पर चढाई करने को चला। उसने अपनी श्रृंगार रस से शोभायमान दुल्हन को यहाँ माँ के पास भिनाय में छोड़ा। पूर्व में कोटा के राजा की सहायता से बूंदी पाई थी पर उसका नतीजा भी देख लिया इसलिए इस बार वह अलग से बूंदी पर चढाई करने को सज्जित हुआ। राजा उम्मेदसिंह ने भिनाय से चल कर हिंडोली में आ कर अपने दल सहित पड़ाव डाला। यहाँ राजा से बारह अलग-अलग खेड़ों (गाँवों) के मीणा सरदार आ कर मिले। अपने मजबूत हाथों में दो-दो

प्रत्यंचाओं वाले ये धनुर्धारी अपनी पीठ पर दो-दो निखंग (भाथे) धारे हुए थे। कमर पर कटार और बांसुरी बांधे ये मीणा वीर सिर पर धोकड़ा (वृक्ष विशेष) के पत्तों की कलंगी लगाये हुए थे। वायु को 'वा' और किमहिं को 'का' बोलने वाले ये मीणा वीर अक्क को 'आँक' कहते थे। भाग कर लड़ने वाले और लड़ कर भाग जाने वाले ये चीते की तरह कमर वाले मीणा भूमि की ओर झुक कर छलांग लगा कर चीते की फुर्ती से बढने वाले थे।

संगा के अरु सल्ल्ह के, गुंगा के बल गात।
दामाँ के अरु देव के, जग्गू के कुल जात॥२४॥
मैंना कुल इत्यादि मिलि, इम हुव हाजरि आनि।
पहुमी सिर सज्ज्यो नृपति, मन रन उच्छव मानि॥२५॥
हिंडोली पुर की प्रजा, जुगल स्वामि सिर जोय।
सनय दम्म सोलह सहंस, नजरि किन्न नत होय॥२६॥
नयपटु सबन बिसासि नृप, किय बुंदिय सिर कुच्च।
बजि सिंधुव डाहल बिसम, इम हंकिय मन उच्च॥२७॥
नंदराम इततैं निकसि, सहंस पंच सिख संग।
पहुमी दब्बत पक्खरन, अब्भ घसत उतमंग॥२८॥
बिय दल आवत बीचड़ी, मिलिग आनि तजि मोह।
गज्जूर के घरियार गति, लग्ग्यो बज्जन लोह॥२९॥

इन मीणा योद्धाओं में कुछ सांगा के वंशज थे तो कुछ साल्ह के। कुछ गुगां के कुनबे वाले थे तो कुछ दामाँ के। कुछ देवा के वंशज थे तो कुछ जग्गा के जाये थे। इस प्रकार अलग-अलग वंश वाले सारे मीणा वीर राजा उम्मेदसिंह के पास हिंडोली में आ उपस्थित हुए। इन मीणा योद्धाओं की सहायता से राजा उम्मेदसिंह मन में युद्ध को उत्सव मानते हुए अपनी भूमि वापस लेने को सज्जित हुआ। हिंडोली के प्रजाजन ने देखा कि अब उनके सिर पर दो-दो राजा हो गए हैं (एक दलेलसिंह और दूसरा उम्मेदसिंह) तब भी उन्होंने मिल कर सोलह हजार रूपयों की राशि का नजराना अपने स्वामी उम्मेदसिंह को किया। नीति में चतुर राजा ने सभी प्रजाजनों को भरोसा दिलाया और आगे

बूंदी पर चढ़ाई करने को बढ़ा। इस समय युद्ध के विषम वाद्य (डाहल) सिंधु राग के साथ बज उठे और इस ऊँचे मनोबल वाले राजा ने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। राजा के इस दल का सामना करने को बूंदी से नंदराम खत्री अपने पाँच सौ सिक्ख योद्धाओं के साथ निकला। अपने पाखर पहने घोड़ों के पाँवों से पृथ्वी को दबाता हुआ वह नन्दराम अपने मस्तक से मानों आकाश घिसता हुआ आगे आया। एक दूसरे की ओर बढ़ते हुए दोनों दलों का आमना-सामना बीचड़ी नामक गाँव के समीप हुआ। जीवन का मोह त्यागे हुए दोनों दल मिले और मिलते ही घड़ियाल के गज्जर (घंटे) की तरह लोहा बज उठा अर्थात् दोनों ओर के वीरों की तलवारें चलने लगी।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ भूभृदुम्मेद-सिंहश्रीपुष्करद्वितीयो द्वाहकरणदलेलसिंहसहितकूर्मराजजयपुरगमन-खत्रिशिवदाससुतनन्दरामबुंदीस्थापनहड्डेन्द्रभणायनगराऽऽगमनसपत्न-जनन्यभिवादनतत्रैवराज्ञीनिवासनस्वयंबुन्दीविजयार्थसज्जीभवनहिंडोली-नगरसेनाप्रपतनद्वादश खेटमैणासार्थ स्वामिचरणपतनविजयार्थप्रस्थान-बीचड़ीग्रामसीमाशत्रुसैन्यमिलनंत्रयोदशो मयूखः। आदितः॥ २९४॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में भूपति उम्मेदसिंह का पुष्कर में दूसरा विवाह करना, दलेलसिंह सहित ईश्वरीसिंह का जयपुर जाना, शिवदास खत्री के पुत्र नन्दराम को बूंदी में रखना, उम्मेदसिंह का भणाय (भिनाय) नगर में आकर अपनी सोतेली माता को नमस्कार करना। वहाँ रानी को रख कर अपनी बूंदी को विजय करने का सज्जित होना। हिंडोली में सेना का पड़ाव पर बारह खेड़ों के मीणों का अपने स्वामी के चरणों में गिरना, विजय के अर्थ गमन करके बीचड़ी नामक ग्राम में शत्रु सेना से मिलने का तेरहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ चौरानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

चटकप्लुत

दुव सेन बग्ग लीनी, कलि कोप अंख कीनी।
फन सेसनाग फुट्टे, दिगदंति दंत तुट्टे॥१॥

बरकी बराह दड्ढा, गिलि अंग कुम्म ठड्ढा।
दिगपाल कंप लग्गे, पुट इन्द्र भीति भग्गे ॥२॥

सब सिंधु सेतु लुप्पे, कलि जानि बीर कुप्पे।
सिव की समाधि जग्गी, नवमाल आस लग्गी ॥३॥

कइलास छोरि काली, चढि सिंह संग चाली।
चउसट्ठि चोंकि आई, घन मंडि नच्च घाई ॥४॥

हे राजा रामसिंह! बीचड़ी गाँव के पास बनी रणभूमि में दोनों सेनाओं के सवार योद्धाओं ने अपने-अपने घोड़े की लगाम खींची और कुपित हो युद्ध में कोप किया। युद्ध की इस धमचक से शेषनाग के फण लचक उठे और दिग्गजों के दाँत टूटने लगे। वाराह की दंतुली में दरार आई और कच्छप की पीठ में छेद बन गया। सभी दिशाओं के दिक्पाल काँपने लगे। सभी चौदह लोकों में भय व्याप्त हो गया। सारे समुद्रों ने अपनी मर्यादा छोड़ों युद्ध जान कर वीर क्रोधित हुए। महादेव की समाधि टूटी और उनके मन में नई मुंडमाला मिलने की आशा जागी। कैलाश पर्वत छोड़ कर रणचंडी कालिका सिंह पर सवार हो महादेव के साथ रवाना हुई। यह देखकर चौंसठ योगिनियां दौड़ी आई और उन्होंने रणभूमि में नृत्य रचाया।

दुवपंच बीर दोरे, जव डाकिनीन जोरे।
कलिकार मोद पग्गे, महती बजान लग्गे ॥५॥

गुन अच्छरीन गाये, अति मोद झुंड आये।
नभ गिद्धनीन छायो, रवि रेनु मैं लुकायो ॥६॥

चहुवान बाजि नक्खे, लखि आखु जानि तक्खे।
किलकार बीर बज्जी, समसेर मार सज्जी ॥७॥

कटि टोप जात झीके, जिम पत्र जोगनीके।
तरवारि धार थप्पैं, अरि केन स्वर्ग अप्पैं ॥८॥

युद्ध की खबर पाते ही बावन वीर (भैरव) दौड़े आये। वहीं डाकिनियों के भी जौड़े दौड़े आये। कलह करा देने वाले नारद प्रसन्न हुए और अपनी वीणा बजाने लगे। युद्ध में वीर योद्धाओं के गुण गाती अप्सराओं के झुण्ड आये। आकाश गिद्ध पक्षियों से छा गया और उठी हुई धूल से सूर्य ढंक गया।

चहुवान वीरों ने अपने घोड़े बढाए मानों चूहों को देख कर साँप बढा हो। रण भूमि वीरों की किलकारियों से भर गई और तलवारें चलने लगीं। तलवारों के निरन्तर प्रहारों से शत्रुओं के सिर के टोप कटने लगे मानों लाल रंग की लाख का कोई पत्तरा चीरा गया हो। शत्रु संहार से तलवारें अघाने लगीं और शत्रुओं को स्वर्ग का उपहार देने लगीं।

कर थूप भूप धायो, इत नंदराम आयो।
बिथुरी कजाक बानी, मिलि बीर धीर मानी.॥९॥
बिबि ओर तीर बज्जे, लखि भीरु नीर लज्जे।
बरछीन बेध लग्गैं, परि सूर मुत्ति पग्गैं॥१०॥
घट के कटार कढ्ढैं, मुख सूर नूर बढ्ढैं।
फबि सेल पार फुट्टैं, छक लोह प्रान छुट्टैं॥११॥
फटि घाय छिंछि हल्लैं, जलजंत्र जानि चल्लैं।
सिख नंदराम के जे, लखि ओदकैं कलेजे॥१२॥

राजा उम्मेदसिंह अपनी विशेष तलवार उठाए इधर से आया तो नन्द राज खत्री सामना करने उधर से आया। रणभूमि वीरों की त्रीरहाक से भर गई। ऐसे धीर-वीर और दर्पवान योद्धाओं की वाणी सर्वत्र गूंजने लगी। दोनों ओर से तीर चलने लगे जिन्हें देख कर कायरों का पानी उतरने लगा। बरछियों के प्रहारों से बेधन होने लगा और उनके प्रहार पा कर वीर योद्धा मुक्ति पाने लगे। ज्यों-ज्यों वीरों की कटारें शत्रु शरीर में धँस कर बाहर आने लगी त्यों-त्यों वीरों के मुख की कांति बढ़ने लगीं। भाले शरीर भेद कर शोभा पाने लगे और कहीं घावों से छके (भरे) योद्धाओं के प्राण छूटने लगे। कहीं क्षत शरीर के घावों से रक्त यों उबकने लगा मानों फव्वारे चल पड़े हों। इसे देख कर नन्दराम खत्री के साथ आए सिक्ख योद्धाओं के कलेजे भय से दहलने लगे।

फटि कोच गात फट्टैं, जिम केलि गब्भ कट्टैं।
गहि कुंत नाभि गेरैं, धमनीन मूल हेरैं॥१३॥
उलटंत सादि आली, हय होत केक खाली।
मग ओर खेह डुल्ले जम स्वर्ग बट्ट खुल्ले॥१४॥

गजमत्थ फेट फुट्टैं, जिम गोत्र कूट तुट्टैं।
परि भीरू सोक कूईं, परभोग ज्यों असूईं ॥१५॥

गति हीन केक फीके, मन जानि संजमी के।
तजि प्रानजात सच्छी, तरु ठुंड जानि पच्छी ॥१६॥

रणभूमि में कहीं कवच फट कर योद्धाओं के गात यों फटने लगे जैसे केले के गाछ का गर्भ कटता है। कई वीर हाथ के भाले को शत्रु की नाभि में यों घुसेड़ने लगे मानो वे उसके शरीर में धमनियों का उत्स ढूंढ रहे हों। कहीं पर सवारों की पंक्तियां घोड़ों से उलटने लगीं और इससे कई घोड़े सवारविहीन होने लगे। रास्तों में उड़ती धूल भर गई क्योंकि यमराज ने स्वर्ग के दरवाजे खोल दिये। तलवारों के प्रहारों से हाथियों के कुंभस्थल फूटने लगे जैसे पर्वतों के शिखर टूटते है। कायर शोक के कुएँ में गिरने लगे जैसे दूसरे के एश्वर्य भोगने पर असूया करने वाला गिरता है। कई योद्धा गतिहीन हो कर फीके पड़ गए जैसे इन्द्रियों को रोकने वाले संयमी का मन पड़ता है। वे अपनी देह से घृणा करते प्राण यों छोड़ने लगे जैसे बिना पत्ते के ठूंठ को पक्षी छोड़ते हैं।

सुधि भुल्लि केक बक्कैं, जड़ जानि सीधु छक्कैं।
कटि जात अंत ही सों, जिम पाप जान्हवी सों ॥१७॥

तरवारि भा चलक्कैं, जिम संपिका सलक्कैं।
हुव रत्त रत्त अंगे, रजतत्व जानि रंगे ॥१८॥

दबिजात केक श्रेनी, नर अस्व ती कि एनी।
मिलि प्रेत डाकिनी सों, हिय मींडि गाढ हीसों ॥१९॥

कुच तिक्ख तास गड्डैं, जिम बिद्धकैं सु बड्डैं।
कति जोगिनीन छीकैं, बढि जीत लोभ हीकैं ॥२०॥

रणभूमि में कई अपनी सुध बुध खोये हुए घायल बक-बक करने लगे जैसे कोई मदछका गँवार शराबी बड़बड़ाता है। कहीं पर वीर पूरे दिल से कटने लगे जैसे गंगा नदी से पाप कटता है। रणभूमि में तलवारों की धारें यों चमकने लगीं जैसे पावस की ऋतु में बिजली कोंधती है। कई वीर घाव खाए अपने शरीर को रक्तिभ किये हुए हैं मानो उनके गात का किसी रंगरेज ने ऐसा रंग दिया हो। कहीं पर योद्धाओं के समूह यों दबे हुए हैं जैसे अश्व

जाति के पुरुष के आगे मृगी जाति की स्त्री दब जाती है। युद्ध से प्रसन्न प्रेत रणभूमि में डाकिनियों को उत्साह से बाँहों में भर कर भींचने लगे जिससे उनके कुचों के तीखे अग्र भाग प्रेतों के सीने में यों चुभने लगे मानो वे उन्हें बेधने को प्रयत्नरत हों। दूसरे अर्थ में मानो वे प्रेतों के सीनो में बड़ा बेधन करने बढ़े हों। कई योगिनियां जीत के लोभ में छीकनें लगी।

सुहि पुब्ब भिंटने मैं, जनु देत पुष्टि प्रेमै।
कति लै रु संड लेटैं, प्रतिसेझ जानि भेटैं ॥२१॥

उदघृष्ट केक सज्जैं, कति पीड़िते न रज्जैं।
इम मत्त प्रेत सोहैं, मिलि च्यारि भांति मो हैं ॥२२॥

भुव गाम बीचड़ी की, हुव रत्त रत्त हीकी।
भिरि नंदराम भज्ज्यो, लखि खत्रि नीर लज्ज्यो ॥२३॥

सिख तास सम्मुहाये, सलभा कि दीप थाये।
तिन्ह ताक्कि भूप नीरे, परि बीच खग्ग पीरे ॥२४॥

कहीं पर रणभूमि में उत्साहित प्रेत डाकिनियों से प्रथम मिलन की तरह प्रगाढ प्रेमालिंगन में बंधे हैं। कहीं पर डाकिनियां अपने नपुंसक प्रेत प्रेमियों को पा कर अपनी शय्या पर पड़ी हैं। कहीं प्रेत घषर्ण किया में संलग्न हैं तो कई पीड़ा देते हुए भी तृप्त नहीं हो रहे है। इस तरह रणभूमि में प्रेत प्रेम में मत्त हो चारों प्रकार से डाकिनियों से रति क्रीड़ा में संलग्न होने लगे। बीचड़ी गाँव की रणभूमि बनी हुई भूमि रक्त के रंग से रक्तिम हो उठी। इस भिड़ंत में संलग्न होते ही नन्दराम खत्री भाग छूटा यह देखकर खत्रियों का पानी (वीरता) लज्जित हुआ। उसके साथ वाले सिक्ख योद्धा तब सामना करने को राजा उम्मेदसिंह की सेना के समक्ष यों बढे जैसे दीपक की लो पर जलने को पंतगे बढे हों। यह देख कर राजा उनके समीप गया और उसने शत्रुपक्ष को तलवार के प्रहारों से पीड़ित किया।

हठ लग्गि हड्डु मारैं, दुव हत्थ खग्ग झारैं।
कटि बग्ग बाजि फेरैं, हठि नंदराम हेरैं ॥२५॥

भजिकैं छिप्यो सु खत्री, जिम सेन [illegible]व पत्री।
सिख हड्डु दोहु सज्जे, बिकराल बाढ़ बज्जे ॥२६॥

अति जंग संकुल्यो व्हां, अवमर्द दोन क्यो व्हां।
तरवारि केक तुट्टैं, घरियारि जानि फुट्टैं ॥२७॥
निकसंत नैंन गोटे, फदकैं कि भेक छोटे।
कति चाप ऐंचि झारैं, जिम काल डाच फारैं ॥२८॥

इस युद्ध में हठपूर्वक हाड़ाओं ने शत्रुसंहार किया। इन योद्धाओं में से कई वीरों ने दोनों हाथों से तलवारें चलाई। राजा उम्मेदसिंह के साथियों ने शत्रुओं के कई घोड़ों की लगामें काट कर उन्हें वापस मोड़ा फिर वे हठीले वीर नन्दराम को रणभूमि में ढूंढने लगे पर वह तो भाग कर छिप गया जैसे बाज पक्षी का आक्रमण देख कर लावा पक्षी दुबकता है। सेनापति के नहीं मिलने पर शेष रहे सिक्ख योद्धाओं और हाड़ाओं में घमासान हुआ। दोनों ओर से तलवारों के विकराल प्रहार होने लगे। दोनों ने अविराम पीड़ाकारी शस्त्र प्रहार मचाया। कहीं तलवारें टूट कर बिखरने लगीं और कई शत्रु तलवारों से यों कट पड़े मानो उनकी काया कच्ची मिट्टी का घड़ा हो। रणभूमि में कहीं पर वीरों के नेत्र तलवार के प्रहार से बाहर पड़ कर यों फुदकने लगे मानो छोटे-छोटे मेंढ़क कूद रहे हों। कहीं धनुर्धारी वीर अपने धनुष पर बाण चढा कर प्रत्यंचा इस तरह खींचने लगे मानो यमराज ने किसी को निगलने हेतु अपना मुँह फाड़ा हो।

बिच तास भाल ठड्ढा, सुहि जानि तिक्ख दड्ढा।
फटि पेट अंत दीसी, पलटी कि पन्नगीसी ॥२९॥
चउ फार हीय मन्ने, जिम कंज च्यारि पन्ने।
फटि कालखंज खुल्ले, फबि ज्यो पलास फुल्ले ॥३०॥
सर लीन तुंद कूपी, बिल जानि नाग रूपी।
इम भूप जंग मंड्यो, सिख ब्रात खग्ग खंड्यो ॥३१॥
अवसिट्ठ केक लज्जे, मुख अग्ग भीत भज्जे।
तिन पिट्ठि हड्ड धाये, त्रय कोस लों भजाये ॥३२॥

उस धनुष के मध्य जो तीर चढा है वह मानों यमराज की तीखी दाढ हो। कहीं पर किसी वीर के कटे हुए पेट से आँते यों बाहर आ लंबी हो है मानो कोई क्रोधित सर्पिणी पलट कर बिल से बाहर आ रही हो। कहीं

किसी वीर का चार भागों में विभक्त दिल यों लग रहा है जैसे चार पंखुरी वाला कमल खिला हो। कहीं पर किसी वीर का फटा हुआ कलेजा पड़ा ऐसा लग रहा है जैसे पलास फूला हो। किसी की नाभि में घुसा हुआ तीर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कोई नाग अपने बिल में आधा घुस कर ठहरा हुआ हो। राजा उम्मेदसिंह ने अपने साथियों सहित युद्ध रचा और शत्रु के सिक्ख सिपाहियों के समूहों को अपनी तलवारों से काट कर खंडित कर दिया। शेष बचे कुछ शत्रु योद्धा लज्जित हुए जबकि आगे रहने वाले इनके मुख्य नायक भाग छूटे। भागती हुई शेष शत्रु सेना का भी हाड़ा वीरों ने पीछा किया और तीन कोस की दूरी तक भगाया।

दोहा

राजामल सोदर सुवन, नंदराम गय भज्जि।
सिख कितेक सम्मुह मरे, नट्ठे कति जल लज्जि ॥३३॥

सानुकूल नृप की नियति, लग्गे लोह न अंग।
अरि आहव भज्जे भरकि, जिम लखि बाज कुलंग ॥३४॥

नागर द्विज नृप भृत्य इक, नंदराय अभिधान।
सोहु सूर सम्मुह भयो, किन्नों हद घमसान ॥३५॥

मारे सिख बिक्रम अमित, जुरयो बिबिध जयकार।
लग्गे बंभन बीर कै, सत्त कृपान समार ॥३६॥

जयपुर के प्रधान सचिव राजामल खत्री के छोटे भाई का पुत्र नन्दराम रणभूमि से भाग गया। हाँ, उसके सिक्ख सिपाहियों ने मुकाबला किया और लड़ते हुए मारे गए, वहीं उनमें से भी कुछ अपने पराक्रम को लज्जित कर भाग छूटे। राजा का भाग्य सानुकूल था इसलिए उसके कोई घाव नहीं लगे। राजा के सामने पड़े शत्रु तो यों भागे जैसे बाज को देख कर कुलंग पक्षी भागते हैं। राजा उम्मेदसिंह का एक भृत्य नागर ब्राह्मण जो नंदराय नामक था वह वीर अगली पंक्ति में आ कर लड़ा। उसने युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार पर प्रहार कर रणभूमि में खलबली मचाई। विजयकारी नंदराय शत्रु समूह पर टूट पड़ा और उसने अपने पराक्रम से बहुत सारे शत्रुओं का संहार किया। जोरदार भिड़ंत में इस ब्राह्मण वीर के कृपानों के सात गहरे घाव लगे।

सोधि खेत नृप घायलन, लये नृजानन डारि।
बुंदिय आय रु भटन जुत, प्रबिस्यो अररन फारि॥३७॥

उदयराम पकर्‌यो बनिक, लये अयुत दम दम्म।
बैठो नृप बुंदिय तखत, करि निज हत्थन कम्म॥३८॥

संबत दुव नभ धृति समय, सावन तीज बलच्छ।
असिबर बल किन्नों अमल, अधिपति बुंदियअच्छ॥३९॥

सुनि कछवाह दलेल सों, अक्खी मम दल संग।
मारहु जाय उमेद कों, जुरहु बडे बल जंग॥४०॥

युद्ध के समाप्त होते ही राजा उम्मेदसिंह ने रणभूमि में अपने घायलों को ढूंढा और उन्हें पालकियों में सवार कर अपने योद्धाओं सहित बूंदी आया। यहाँ आते ही उसने नगर द्वार के कपाटों को तोड़ कर नगर में प्रवेश लिया। राजा ने बूंदी में आते ही उदयराम नामक बनिये को पकड़ा और उससे दस हजार रुपयों की दंड राशि वसूल की। इसके बाद स्वयं द्वारा अर्जित अपने राज्य बूंदी के सिंहासन पर आरूढ हुआ। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ दो के श्रावण माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के दिन इस तलवार चलाने में श्रेष्ठ राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी राज पर अपना अमल जमाया। यह समाचार जब जयपुर पहुँचा तो कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने दलेलसिंह हाड़ा से कहा कि तुम मेरी सेना ले कर बूंदी पर चढाई करो और उस उम्मेदसिंह को मार गिराओ।

सटि दलेल सुनतहि नट्यो, किन्न अरज कर जोरि।
मंडहु तुम अप्पन अमल, मैं बुंदिय दिय छोरि॥४१॥

ताके कर लिखवाय तब, कग्गर कूरम लीन।
नैनवा रु कर उरनगर, रक्खे तास अधीन॥४२॥

अवर देस अप्पन करन, गिलन अजीरन ग्रास।
बुंदियपर पिल्लिय बिकट, पृतना सहंस पचास॥४३॥

नाम नरायनदास इक, खत्री रन हम गीर।
राजामल सिवदास को, भ्रात सज्यो बरबीर॥४४॥

तिहिं करि कूरम सेनपति, पठयो बुंदिय लैन।
संग दये उमराव सब, उद्दत जे रन ऐन॥४५॥

इस प्रस्ताव को सुनते ही अपने हाथ जोड़ कर लज्जित होते हुए दलेलसिंह ने कहा कि हे राजा! मेरा निवेदन है कि अब आप बूंदी पर अपना अधिकार चाहें तो कर लें। मैंने तो बूंदी की उम्मीद छोड़ दी । कछवाहा राजा ने तब दलेलसिंह के हाथ से इस आशय का पत्र लिखवा कर लिया और बदले में नैनवा और करउर दो नगर उसकी जागीर में रखे। इसके बाद अजीर्ण के रोग से ग्रस्त व्यक्ति की तरह और निवाला खाने की गरज से दूसरे की भूमि को अपना बनाने हेतु कछवाहा राजा ने बूंदी पर अपनी पचास हजार की संख्या वाली बड़ी फौज रवाना की । इस सेना के साथ जाने को राजामल और शिवदास खत्री का पराक्रमी भाई नारायणदास खत्री सज्जित हुआ। इसे कछवाहा राजा ने सेनापति बना कर बूंदी पर चढाई कर विजित करने भेजा। राजा ने अपने रणभूमि में अग्र रहने वाले सारे सामन्तों को भी इस खत्री के साथ भेजा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ हड्डेन्द्रसपत्नसैन्यबीचड़ीयुद्धकरणखत्रिनन्दरामपलायनविजयिरावराट्स्वपुरप्रवेशनदलेलसिंहबुन्दीत्यजनपुनःकूर्मराजपृतनाप्रेषणं चतुर्दशो मयूखः॥ आदितः ॥२९५॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में हाड़ा क्षत्रियों के इन्द्र का शत्रु सेना से बीचड़ी नामक ग्राम में युद्ध करना, नंदराम का भागना, जय पाये हुए रावराजा का अपने नगर में प्रवेश करना। दलेलसिंह का बूंदी छोड़ना फिर कछवाहों के राजा का सेना भेजने का चौदहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ पचानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजेदशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

मुक्तादाम

सज्यो अब कूरम भूपति सैन, लगे भट घुम्मन बुंदिय लैन।
बन्यो समयो यह दुस्सह आय, जहाँ फटि बाल तजैं निज माय॥१॥

पिता सुत कों पति कों निज नारि, तजैं वह बत्त बनी भयकारि।
जनैं जननी जु गिनैं सब ठीक, वहै नगर आहि न मध्य अनीक॥२॥

वहै नर आतम संबिद धन्य, वहै नर जो न ततो मृग बन्य।
वहै नरही गुन तीनन ईस, वहै अवनीसन को अवनीस॥३॥

वहै जिम कूंट तथा इक सार, वहै सब ओरन सुद्ध अपार।
वहै नर तीन अवस्थन एक, वहै सबधां सित धारन तेक॥४॥

हे राजा रामसिंह! दलेलसिंह के मना करने के बाद जयपुर के कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बूंदी लेने की गरज से सेना सज्जित की जिसमें उसके सामन्त योद्धा बूंदी लेने को उतावले हो उत्साह से भरे इधर-उधर घूमने लगे ग्रंथकार कहता है कि हे राजा! यह कैसा असह्य समय आया कि जहाँ पुत्र अपनी माँ से मन फटने के कारण जुदा होने लगे। पिता अपने पुत्र को और पति अपनी पत्नी को छोड़ने पर आमादा हो गए, ऐसा भयकारी समय आया। कलियुग की ऐसी हवा बही कि जननी जन्म दे उसे तो ठीक समझा जाने लगा पर वही नर अपने कर्तव्य को भूलने लगा। कछवाहा राजा की इस सेना में जाने को प्रत्येक माँ का जाया तो नहीं आया अर्थात् पृथ्वी पर उपस्थित सभी मर्द तो इस सेना में सम्मिलित नहीं हुए क्योंकि कुछ आत्मज्ञानी नर तो ऐसे बचने चाहिए ही थे। ऐसा आत्मज्ञानी पुरुष धन्य है, यही नहीं वह पुरुष, पुरुष ही नहीं माना जा सकता जो आत्मज्ञानी नही है अर्थात् वह पुरुषवत वन्य प्राणी है। पुरुष वही जो सत, तम, रज तीनों गुणों का स्वामी हो और ऐसा पुरुष ही राजाओं का राजा है। इस कूट माया की रचना में सार रूप (तत्व, स्थिर, अंश) वही गिना जाता है जो सभी ओर व्याप्त है। वही तत्व पुरुष है जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों अवस्थाओं में एक रूप है। ऐसा पुरुष ही सभी दिशाओं में श्वेत धार वाला खड़्ग धारण किये रहता है।

वहै नरही सब कृत्रिम सक्खि, वहै यह मोघ रह्यो बिच रक्खि।
वहैहि वहै गुनको नहिं जोग, वहै बिखई यह अन्य सु भोग॥५॥

वहै अज इष्ट अनादि अनंत, गुनत्रय नारिय को वह कंत।
वहै नहिंतो भव नाहक पाय, बिगारत बालिस जुब्बन माय॥६॥

वहै इक रुंधत नाहक नारि, वहै सठ अन्नहिको खयकारि।
वहै पय मात बिगारनहार, वहै रहि व्यर्थ करैं भुव भार॥७॥

भयो नर नारि न लच्छन एह, नहीं कुच मुच्छन सुंदर देह।
हुते नहिं याबिधि के भट हाय, बड़े मरनीक तथापि बलाय॥८॥

वही पुरुष इस जगत का साक्षी रूप है अन्य सभी कृत्रिम नाशवान झूठे संसार को बनाए हुए हैं। ऐसा ब्रह्मज्ञानी ही स्वयं ज्योति है अर्थात् ब्रह्मरूप है जिसमें किसी गुण का योग नहीं। वही भोगने वाला है और अन्य जगत उसका भोग्य है। वही अक्षर पुरुष जो अजन्मा है न जिसका आदि है न अंत और जो तीन गुणों रूपी स्त्रियों का स्वामी है। यदि कोई ऐसा नहीं है तो फिर व्यर्थ ही इस संसार में है अर्थात् पुरुष यदि ऐसा नहीं सोचता और जो ब्रह्मज्ञानी नहीं है वह मूर्ख तो जन्म पा कर व्यर्थ ही अपनी माँ के योवन को बिगाड़ने वाला है। ऐसा नर तो फिर नाहक ही एक स्त्री को रोकता है (रूंधता है) ऐसा मूर्ख प्राणी तो सिर्फ अन्न का नाश करने को जीवित है। ऐसा मूर्ख पुरुष अपनी माँ के दूध को बिगाड़ने वाला है। वह इस संसार में रह कर पृथ्वी पर बोझ बढ़ाने वाला है। वह ऐसा नर हो गया है जिसके शरीर पर बस स्त्री के चिह्न नहीं हैं अर्थात् ऐसा पुरुष कुचविहीन स्त्री है। मूंछों की शोभा से देह भले ही सुन्दर लग रही हो पर वह पुरुष नहीं है। (ग्रंथकार कहता है कि) कितने खेद की बात है कि कछवाहा राजा की सेना में ऐसा आत्मज्ञानी एक भी वीर नहीं। यद्यपि जो हैं वे मरने-मारने वाली एक बला की तरह हैं अर्थात् राजा की सेना में वन्य जीवों की तरह के अत्यन्त क्रोधी लड़ाके तो है पर आत्मज्ञानी नहीं।

कह्यो हम ह्यां कछु बोध बिचार, सुयों वह बीर गिनैं सब सार।
कहा मरनों अरु जीवन तास, कहा सुख दुक्ख सबै इक भास॥९॥

वहै हि गिनैं निजही सब बत्त, यहै रन तो भल होवहु अत्त।
परंतु न हे इम कूरम बीर, गिने सुख अच्छरि स्वर्ग सरीर॥१०॥

रु एहहिं केवल सूरन धर्म, सुही तिन्ह रक्खि कसे दृढ बर्म।
सजे भट कूरम मानज सूर, खंगारज नाथज पानिप पूर॥११॥

कल्यानज पूरनमल्ल कुलीन, द्वितीय हु कुंभज आजि अदीन।
जथा बनबीर चतुर्भुज जात, घनें सिव ब्रह्मज इष्ट प्रघात॥१२॥

ग्रंथकार (सूर्यमल्ल मीसण) कहता है कि यहाँ मैने कुछ बोध ज्ञान को विचार कर ही ऐसा कहा है। सब में सार रूप वीरता होना ही काफी नहीं है वीर वही है जो सारे ज्ञान को सार रूप गिनें क्योंकि क्या मरना और क्या

जीना ? अर्थात् आत्मज्ञानी के लिए जीना-मरना एक जैसा होता है। उसके क्या सुख और क्या दुःख ? उसके लिए सुख-दुःख एक जैसे हैं। वह तो सभी बातों को अपनी ही जानता है। यहाँ यह युद्ध तो भले ही हो पर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह के वीर इस तरह के अर्थात् आत्मज्ञानी नहीं थे वे तो मात्र स्वर्ग में अप्सराओं के साथ के भोग को अर्थात् मात्र शरीर का सुख भोगने वाले थे और वीरों का केवल यही धर्म है। अपने इस धर्म का पालन करने को वीरों ने कवच पहने। युद्ध के लिए इस तरह सज्जित होने वाले कछवाहा वीरों में मानसिंहोत (राजावत) थे तो पूर्ण पराक्रम वाले खंगारोत और नाथावत भी थे। कल्याणोत, पूर्णमलोत जैसे कुलीन कछवाहा थे वहीं दूसरे कुंभावत कछवाहे थें जो युद्ध में दीनतारहित कहलाते थे। इसी तरह वीर चतुर्भुजोत और शिवब्रह्मपोते जिनका इष्ट ही युद्ध था, ऐसे कछवाहे वीर युद्ध के लिए सज्जित हुए।

सजे बलिभद्रज सेखज सत्थ, घनें सुरतानज संघ समत्थ।
नरूज रु कुंभज अच्छरि नाह, कढे इन्ह आदि बडे कछवाह ॥१३॥

सज्यो दलईस नरायनदास, लये सब संग जग्यो बल जास।
चल्यो दल जैपुरकों तजि तत्त, बढ़ी रन जित्तहिं जित्तहिं बत्त ॥१४॥

खुली गजपिट्ठि धुजा पचरंग, चले हय मप्पत छोनि मलंग।
भई सह आलिय कालिय गैल, बडे हित उग्र चढे चलि बैल ॥१५॥

चल्यो महती गहि नारद लार, चले गन बावन त्यों पल प्यार।
चली चउसट्ठि मलंगत चाल, चल्यो गहि खप्पर खित्तरपाल ॥१६॥

इन वीरों के अतिरिक्त सज्जित होने वालों में बलिभद्र के वंशज बलिभद्रोत शेखावत थे। इनके साथ सुरताणोत कछवाहों का समूह भी था। वहीं अप्सराओं के पति होने में रुचि रखने वाले नरूका और कुभांवत जैसे बड़े कछवाहा वीर भी सज्जित हुए। अपनी सेना के साथ सेनापति नारायण दास खत्री भी सज्जित हुआ और अपनी एकत्रित सेना को ले कर जयपुर को तुरन्त त्यागता हुआ युद्ध में विजय प्राप्त करने की इच्छा से आगे बढा। सेना के साथ वाले हाथियों की पीठ पर पचरंगी ध्वजाएं (कछवाहों के ध्वज) फहरने लगी और घोड़े छलांगे भरते भूमि को अपने पाँवों से नापते बढे। मार्ग में इस सेना के साथ ही रणचंडी कालिका अपनी सखियों सहित हो चली

और अपना बड़ा हित समझते हुए महादेव भी बैल पर सवार हो चले। इन्हें देख कर अपनी महती नामक वीणा लिये नारद भी सेना के साथ हो लिये। मांसाहारी बावन भैरव वीर भी रणभूमि की ओर चले। इनके साथ चौंसठ योगिनियाँ उत्साह से उछलती रवाना हुई, वहीं क्षेत्रपाल (भैरव) भी अपना खप्पर लिये रणभूमि की ओर चले।

चले गन डाकिनि जच्छ चुरेल, पिसाच रु रक्खस गुह्यक गैल।
चले कति डंकत इक्कहिं पाय, चले कति दोउन भू धमकाय॥१७॥

चले कति मंडत नट्ट कुलट्ट, चले कति चौंकि हसे अटअट्ट।
चले गन गिद्धनि चिल्हनि घोर, शृगाल रु कंक महा रन सोर॥१८॥

गहक्किय सेन सिवा किय गोन, चल्यो दल कुम्म प्ररुद्धत पोन।
अटैं कति मंडि बरच्छिन वार, करैं कति लच्छ्यन बेध कटार॥१९॥

किते खुरलीपटु सद्धत खग्ग, मिलैं रचि केक तुपक्कन मग्ग।
बनैं कमनैतन पच्छिन बेध, सजैं कति कुंतन केलि सुमेध॥२०॥

डाकिनियां, यक्ष और चुड़ेलने भी भला पीछे क्यों रहती वे भी रक्त पिशाचों, राक्षसों और गुह्यकों के साथ रणभूमि की ओर रवाना हुई। इनमें से कई एक पाँव के सहारे कूदते-फांदते लंगड़ी चाल से चल रहे थे तो शेष अपने दोनों पाँवों से पृथ्वी को कँपाते चले। इनमें से कुछ नटों की तरह कुलांचे भरते बढ रहे थे तो कई जोरदार अट्ठहास करते। सभी को रणभूमि की ओर जाते देख गिद्धनियों और चील्हों के झुण्ड चले वहीं गीदड़ और कंक पक्षी (ढींच) भी कहाँ पीछे रहने वाले थे। प्रसन्नता की बोली में गहकते सियार बढे। इस तरह कछवाहा राजा की सेना सामने बहते पवन को अवरुद्ध करती चली। इस बढती सेना के मध्य कई वीर बरछियाँ चलाने के अभ्यास में रत थे तो कई अपनी कटार से लक्ष्य वेध रहे थे। शस्त्रविद्या में निष्णात कई वीर अपनी तलवारें साध रहे थे तो कई अपनी बन्दूकों को। धनुर्धारी उड़ते पक्षियों को तीर का निशाना बना रहे थे तो कई श्रेष्ठ बुद्धि वाले वीर अपने भालों से खेल रहे थे।

दिपैं रसबीर गिनैं तृन देह, छुहे निज साहस देत न छेह।
छलैं छक हूर चहै कति छैल, चलैं द्रुत मंडित कुंकुम चैल॥२१॥

मलप्पत बाजिन के मचकाय, धरातल दब्बत बेग धुजाय।
चल्यो दल दुद्धर यों दरकुच्च, उठावत दुग्गन को छग उच्च ॥२२॥

लग्यो भर भोग पलट्टन सेस, भयो गिलिअंग दरी कमठेस।
तुटी लखि दड्ढ दयो किरि तुंड, झरैं रद कंपिग दिग्गज झुंड ॥२३॥

उडे खुलि केतन कुंभिन कंध, डिगे डर डक्कन भीरुन बंध।
छिप्यो निस चंद रु बासर अक्क, चहैं निस घूक तथा दिन चक्क ॥२४॥

सेना में प्रयाण करने वाले वीर अपनी देह को तृणवत मानने वाले थे जो अपने केसरिया बाने के साथ द्रुत गति से बढ रहे थे। कई सवार अपने घोड़ों को दौड़ा कर धरातल को कंपायमान कर रहे थे। ऐसी दुर्द्धष सेना दर कूच-दर मंजिल बढी जो रास्ते में पड़ने वाले सभी दुर्गो का ओज हरने वाली थी। इस सेना के भार से शेषनाग अपने लचकते फण बदलने लगा। कच्छपराज अपने अंगो को समेटने हेतु कंदरा रूप हो गया। अपनी दंतुली पर दरार आने से वाराह ने अपनी थुथनी टिकाई अर्थात् पृथ्वी का भार थुथनी पर लिया। दिग्गजों के दाँत खंडित होने लगे। हाथियों की पीठ पर लगी ध्वजाएं खुलीं जिन्हें देख कर भय से कायरों के बंध खुले। आकाश में चन्द्रमा और सूर्य दोनों छिप गए जिससे उल्लू ने रात्रि की और चक्रवाक पक्षियों के जोड़े ने दिन की आंकाक्षा की।

सुपैं सुधि नां निस बासर संधि, बन्यों तम तोम प्रभा घन बंधि।
चले इत सद्दल मद्दल चास, मिले इत बद्दल भद्दल मास ॥२५॥

छल्यो इत पानिप ओ उत नीर, सहायक त्यों रसबर समीर।
घुरैं इत नोबति ओ उत गज्ज, इतैं भुव पाय उतैं नभ सज्ज ॥२६॥

इन्हैं न चहैं रु उन्हें जग आस, बनैं इत शस्त्र उतैं जलबास।
इतैं बहुरंग उतैं सित स्याम, लसैं इत ओ उत बेग ललाम ॥२७॥

लसैं इत अग्र उतैं लहरुन, दिपैं मुद सूर मयूरन दून।
इतैं गजदंत उतैं बक ब्रात, इतैं उत दोरत अग्र दिखात ॥२८॥

पर न यह सच में रात थी न दिन यह तो दोनों का संधिकाल भी था या नहीं? हाँ, अंधेरे का समूह अवश्य मेघ की तरह छा गया था। इधर से मर्दल (वाद्य विशेष) शब्दायमान हो कर युद्ध की खबर देने बढे और उधर जैसे

भाद्रपद माह के काले बादल छा गए। सेना रूपी घटा में पराक्रम और मेघ की घटा में पानी बढा। इन दोनों के सहायक रूप में, सेना में तो वीर रस बढा और मेघ में पवन का समावेश हुआ। इधर सेना की नोबतें गर्जने लगी और उधर से मेघ गरजे। इधर की गर्जना में भूमि पाने का एलान था वहीं दूसरी गर्जना नभ को सुसज्जित कर रही थी। सेना की गर्जना को कौन चाहता है ? अर्थात कोई नहीं वहीं मेघ की गर्जना पर तो दुनिया की आशा टिकी रहती है क्योंकि इधर शस्त्रों का और उधर (मेघ में)जल का निवास जो है। इधर सेना बहुरंगी है तो उधर मेघ श्वेत और श्याम रंग के। पर हाँ, इधर सेना का और उधर मेघों का सुन्दर वेग अवश्य शोभायमान है। इधर सेना का अग्रभाग शोभित है तो उधर सुन्दर लहरें। सेना में वीरों को और मेघो में मयूरों को हर्ष करना शोभा देने लगा। इधर सेना में गजदंत और उधर मेघ में बगुला पक्षियों के समूह, ये दोनों आगे दौड़ते हुए नजर आने लगे।

इतैं उत पक्खर दद्दुर बुल्लि, इतैं उत गिद्ध रु चातक फुल्लि।
इतैं उत खग्ग रु बिज्जुन ओघ, इतैं उत होत धरा नभ मोघ॥२९॥

इतैं उत ओज इरम्मद भास, रजोगुन बूढनि ब्रात बिलास।
झरैं सर यों उत ऊसर जुत्त, इतैं उत भूपन भंभन पुत्त॥३०॥

कहैं इत लैन मही कछवाह, कहैं उत पिक्खि हमैं वह चाह॥
कहैं यह नीति बिथारन कत्थ, कहैं व अन्न प्रचारन अत्थ॥३१॥

कहैं इत है सब अप्पन भुम्मि, कहैं उत अप्पन है घन घुम्मि।
कहैं इतहैं रवि ढंकन हार, कहैं उत बद्दल ज्यों न बिथार॥३२॥

इधर सेना में घोड़ों के पाखर बजते हैं तो उधर दादुर बोलते हैं। यह देख कर इधर गिद्ध और उधर चातक दोनों फूले नहीं समा रहे हैं। इधर सेना में तलवारों का समूह चमकता है तो उधर मेघ में बिजलियाँ। सेना के समूह से इधर ढंकी हुई पृथ्वी नजर नहीं आती तो उधर मेघों से आछन्न आकाश नहीं नजर आता। इधर सेना में पराक्रम का प्रकाश है तो उधर मेघज्योति (इरम्मद) की कांति। इधर सेना पक्ष में रजोगुण का लाल रंग है तो उधर वीर बहूटी के समूहों का विलास है। इधर सेना बाणों की वर्षा करने वाली है तो उधर मेघ वर्षा ओसरने वाले हैं अर्थात् जलधारा बरसाने वाले हैं। इधर सेना

में राजपुत्र (राजाओं के पुत्र) हैं तो उधर ब्रह्मा का पुत्र इन्द्र है। इधर कछवाहा भूमि (पृथ्वी) लेने को कहता है तो उधर इन्द्र पृथ्वी को देखने की चाह पाले है। इधर यह कछवाहा नीति फैलाने की बात कहता है और उधर वह मेघ अन्न का प्रसार करने की बात कहता है। इधर ये सेना भूमि को अपना कहती है और उधर बड़े गर्व के साथ घुमड़ कर मेघ पृथ्वी को अपनी कहता है। इधर सेना कहती है कि मैं अपने पाँवों से उड़ी धूल से सूर्य तक को ढांपने वाली हूँ उधर मेघ कहता है पर तुम्हारा विस्तार मेरे बादलों जितना नहीं है।

कहैं इत चाप चढावन बत्त, कहैं उत सज्जित आयत अत्त।
इतैं रज अद्रि उडावन बाद, कहैं उत रक्खिहिं संबर साद॥३३॥

कहैं इत मंडहिं गोलिन गान, कहैं उत मूक करैं करकान।
कहैं इत बानन छावन देस, कहैं उत बुंदनतैं न बिसेस॥३४॥

कहैं इत आयुध बुट्ठि अनल्प, कहैं उत बुट्ठि करैं हम कल्प।
इतैं प्रभु कुम्म उतैं सुरईस, इतैं उत सज्जित छोनिय सीस॥३५॥

बढे दल बद्दल यों रचि बाद, सु सोनित संबर मंडन साद।
दिपे प्रविसे इत बुंदिय देस, अरे बिथुरे उत भुम्मि असेस॥३६॥

इधर सेना धनुष पर प्रत्यंचा चढाने की बात कहती है तो उधर मेघ कहता है तुम्हारे धनुष क्या हैं? जरा मेरे विशाल इन्द्रधनुष को देखो इधर सेना पर्वतों को रजकण बना कर उड़ाने की बात करती है तो मेघ रजकणों को गीला कर अर्थात् उसका कीचड़ बना कर पर्वतों की रक्षा की बात करता है। इधर सेना कहती है देखना हम धमाकों का गान करेंगी उधर मेघ कहता है मैं ओले बरसा कर सभी को बधिर कर दूंगा। इधर सेना कहती है मैं बाणों से आकाश आच्छादित कर दूंगी उधर मेघ कहता है पर तुम्हारे बाण मेरी बूंदों से संख्या में अधिक न होंगे। इधर सेना कहने लगी कि मैं बहुत सारे शस्त्र बरसाऊंगी उधर मेघ बोला मैं अपनी वृष्टि से जल प्रलय कर देने वाला हूँ। इधर के पक्ष सेना का स्वामी कछवाहा राजा है तो उधर का स्वामी इन्द्र। इधर और उधर दोनों पक्ष पृथ्वी के लिए सज्जित हुए। ऐसा वाद-विवाद कर दोनों अर्थात् सेना रक्त का और मेघ पानी का कीचड़ मचाने बढे। इस तरह कछवाहा राजा की सेना तो बूंदी राज की सीमा में प्रवेश कर शोभित हुई और इधर वह मेघ हठपूर्वक सम्पूर्ण भूमि पर फैल गया।

बन्यों इम कूरम सेन प्रयान, सुन्यों नृप बुंदिय धर्म सयान।
उयो रनपैं जिम ब्याह उछाह, सजे मनवंछित जानि सनाह॥३७॥

कछवाहा राजा की सेना ने ऐसा प्रयाण रचाया तो उधर बूंदी में धर्म-सयाने राजा ने शत्रु सेना के आगमन की खबर सुनी। सुनते ही बूंदी का राजा उम्मेदसिंह विवाह करने जितने उत्साह से भर उठा और उसके साथ जाने वाले बराती अर्थात् उसके सामन्त योद्धा भी कवच ठसा कर युद्ध रूपी विवाह में जाने को उद्यत हुए।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौन्दी-विजयार्थकूर्मराजकटकनिस्सरणस्तनयित्नुसहाऽऽधिक्याभीऽमननतद्-बुंदीशश्रवणोत्साहवर्द्धनं पञ्चदशो मयूखः॥ आदितः ॥२९६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में बूंदी विजय करने के अर्थ कछवाहों के राजा की सेना का निकलना,उसका मेघ के साथ अधिकता का अभिमान और उस को बूंदी में सुनने से उत्साह बढ़ने का पन्द्रहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ छियानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

लै बुंदिय नृप प्रसभ लगि, खमग पताकन खुल्लि।
अबलाजुत अनुजा अनुज, कोटा सन लिय बुल्लि॥१॥

दीपकुमरि अरु दीपहरि, तब बुल्ले छक तोर।
रानी झल्लिय सह रुचिर, जय रन जुब्बन जोर॥२॥

कोटापति नृप बित्त लै, दूनों गरब दिखाय।
मन अरि उप्पर मित्र बनि, लिय बुंदिय छक लाय॥३॥

सो लिख नृप कृतघन समुझि, उदासीन रहि अत्थ।
भुजदंडन लिय अप्प भुव, सजि असु त्याग समत्थ॥४॥

गजब कार कोटेस गनि, भयकारक अब भूप।
सिर उठाय मूढ न सकत, रद तोरे अहि रूप॥५॥

हे राजा रामसिंह! शत्रु सेना के आने का समाचार पाते ही बूंदी का राजा उम्मेदसिंह हठपूर्वक अपनी सेना के साथ आकाश मार्ग में ध्वजाएं

फहराता चला। इससे पूर्व उसने कोटा से अपनी छोटी बहिन, अपनी पत्नी और छोटे भाई को बुला भेजा। राजा की बहिन दीपा कुमारी और भाई दीपसिंह को राजा ने तब बुलाया जब वह क्रोधित हो शत्रु का सामना करने जाने को तत्पर हुआ। ये दोनों युद्ध का सुन कर उत्साह से भरे झाला वंशीय रानी के साथ आए यह सोचते हुए कि यौवनवस्था में रण विजय के लिए जोर की आजमाइश आवश्यक होती है। कोटा के राजा दुर्जनसाल ने फौजखर्च का पैसा भी लिया और दुगुना गर्व भी दिखाया था। उसने बूंदी के राजा उम्मेदसिंह से मन में शत्रु पर बाहर से मित्रता के रिश्ते का प्रदर्शन करते हुए पूर्व में बूंदी ले ली थी। यही सोच कर राजा उम्मेदसिंह ने उस कृतघ्न कोटा के राजा के प्रति अब उदासीन व्यवहार करते हुए मन में ठानी कि अपनी भूमि को वापस अपनी भुजाओं के बल पर ही प्राप्त करना है और इसके लिए वह समर्थ अपने प्राणों की बाजी भी लगा सकता है। कोटा के राजा को गजब करने वाला राजा नहीं गिन कर भयकारक उम्मेदसिंह ने सोचा कि उसकी हालत तो अब दाँत टूटे हुए सर्प की तरह है अर्थात् अब उससे कुछ न हो सकेगा। यही कारण रहा कि राजा उम्मेदसिंह ने इस बार कोटा के राजा से सहायता नहीं माँगी।

अंतहपुर संजुत अनुज, बुल्ले नृप इहिं बेर।
कोटापति कछुहु न कह्यो, संकित मन गिनि सेर॥६॥

तिनहु आय भिंट्यो त्वरित, निज प्रभु भ्रात निसंक।
रुचि उपेत भूपति रह्यो, आतपत्र धरि अंक॥७॥

अह सोलह भुग्यो अधिप, रहि सूरन गति राज।
सबल सज्यो दिन सत्रहम, सत्रुन बिसम समाज॥८॥

असित भद्द पंचमि दिवस, चल्ल्यो अरि चतुरंग।
सत्तमि दिन भूपति सुन्यों, जामिनि सुत्तैं जंग॥९॥

रहसि निवेदिय नाजरन, दासिन जुत द्रुत दाय।
जगि पहिलें रानिय जप्यो, जग्गे अद्रिन लाय॥१०॥

अपने जनाना सहित छोटे भाई को राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी बुलवा लिया। स्वयं को नही बुलाए जाने और अपने परिजनों का बुलाना देख कर भी

कोटा का राजा चुप रहा क्योंकि वह अपने लज्जित मन से यह तो जानता ही था कि अगला (राजा उम्मेदसिंह) अब सिंह रूप है। समाचार पाते ही जनाना सहित छोटा भाई निडर दीपसिंह अपने स्वामी और बड़े भाई से आ कर मिला। पूरी रुचि (प्रसन्नता) सहित छत्रधारी राजा अपने छोटे भाई से मिला और प्रेमपूर्वक उसे अपनी गोद में बिठाया। राजा उम्मेदसिह ने वीरों की तरह रहते हुए अपने राजकाज के मात्र सोलह दिन व्यतीत किये ही थे कि यहाँ स्थिति आ बनी। अत: राजा बनने के सत्रह दिन पश्चात् ही अपने शत्रु समूह का विनाश करने युद्ध के लिए सज्जित हुआ। भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि के दिन जो शत्रु सेना रवाना हुई उसकी खबर सप्तमी तिथि की रात्रि में सोते समय राजा ने सुनी। यह रहस्य की बात दूतों ने दासियों के साथ रनिवास में कहलाई, जिसे रानी ने जाग कर सबसे पहले सुना इसलिए उसने अपने स्वामी को नींद से जगाते हुए कहा कि हे नाथ! अब निद्रा निवारो कि पर्वतो में आग लगी है।

सिंहनि अक्खिय सिंहसों, कित सोवहु अब कंत।
जिन हत्थिन कुंभन जलज, तें आवत घुमडंत॥११॥

जिन हित लंघन लंघिकें, खद्धो ओर न मंस।
सहजैं ते आवत सुनें, बारन भद्रन बंस॥१२॥

लंबी हत्थल लंक तनु, उछट परक्खहु आज।
भूख न कढ्ढहु भावते, रोसिल्ले मृगराज॥१३॥

जिन कुंभन नख नाह के, बनैं घटा जिम बीज।
हम कोतुक वह पिक्खिहैं, खुल्लहु रंचक खीज॥१४॥

इतर मृगन अपराध पैं, नयन उघारत नांहिं।
त्योंही जो यह तक्किहो, योंही तौ नह आंहिं॥१५॥

उस सिंहनी रूपी रानी ने अपने सिंह रूप पति राजा से कहा कि यह भी कोई सोने की बेला है ? हे नाथ! देखों कि जिन हाथियों के कुंभस्थलों में मोती हैं वे घुमड़ कर इधर अपनी ओर ही बढे चले आ रहे हैं। यह सुन कर सिंह रूप राजा ने कहा कि मैने जिन भद्र जाति के हाथियों के कारण उपवास रखा हुआ है और अन्य वन्य जीवों का मांस नहीं खाया है अब यदि वे भद्र

जाति के हाथी आ रहे हैं तो आने दे, मेरे लिए तो खुशी की बात है। इस पर सिंहनी ने कहा मैं अपनी आंखों से आज आपकी मारक हत्थल और पतली कमर की फुर्ती देखूँगी हे प्यारे क्रोधवाले सिंह! अब और भूखे रहना ठीक भी नहीं, उसने आगे कहा कि मैं उन हाथियों के कुभंस्थलों पर अपने पति सिंह के नाखून जो घटा में विद्युत की तरह बनते हैं का खेल प्रत्यक्ष नजरों से देखूंगी। हे नाथ! अपनी तनिक खीज प्रकट करो। हे स्वामी! आप जो अन्य मृगों के अपराध पर अपने नेत्र भी नहीं उघाड़ते हो उसी प्रकार इनको भी ताकोगे तो यह अच्छा नहीं क्योंकि ये हाथी वैसे निरपराध मृग नहीं हैं।

भूख निकासहु भोन तैं, गंजि गजन बल गड्ढ।
कुंभ सांन तिक्खी करहु दड्ढारे घसि दड्ढ ॥१६॥
वृक तरच्छु चित्रक बहुल, इत सिव स्वान अधप्प।
सरभ भरोसैं जियत सब, अब दृग खुल्लहु अप्प॥१७॥
रमनी के सुनि बच रुचिर, अैंड गुमर अलसात।
सिंह कह्यो जगि सिंहनी, होवन देहु प्रभात॥१८॥
होत होत यह बत्त हुव, कृकवाकुन ध्वनि कान।
उठ्ठ्यो तजि गलबांह अब, चंड सरभ चहुवान॥१९॥
इत रानिय बज्जत सुनें, गरुत गिद्धनिन गैन।
बुल्ली अब देर न बहिनि, चित तुम रक्खहु चैन॥२०॥
दैनहार गज कालिकन, गूद पलन अब गाह।
तिहिं मम कंतहिं नैंक तुम, सज्जन देहु सनाह॥२१॥

इसलिए हे नाथ! अपने बल के सहारे इन हाथियों को मार कर भूख को घर से ही निकाल देना और उनके कुंभस्थल रूपी सान पर अपनी दाढों को घिस कर और तीखी कर लेना। देखो, बहुत सारे भेड़िये, बघेरे, चीते, गीदड़ और कुत्ते भी भूखे हैं और ये सभी सिंह के आसरे ही जीवित हैं अर्थात् उसी के शिकार की प्रतीक्षा में रहते हैं इसलिए अब आप आँखे खोलें और जागें! अपनी प्यारी स्त्री के ऐसे रुचिकारक वचन सुन कर ऐंठ और घमण्ड से अलसाते हुए सिंह ने कहा कि थोड़ा सवेरा तो होने दे। दोनों पति-पत्नी में ऐसे संवाद चल ही रहे थे कि मुर्गों के बोलने की ध्वनि सुनाई दी तब

अपनी प्रियतमा की गलबाँहे छुडा कर वह प्रंचड चहुवान सिंह (उम्मेदसिंह) शय्या से उठ खड़ा हुआ। इधर रानी ने आकाश में गिद्धनियों के पँखों की फड़फड़ाहट सुनी तो वह उनसे मुखातिब हो कर कहने लगी री बहिनो! तनिक धैर्य रखो तुम्हें अब और अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी है क्योकि मेरा पति जो रणचंडी (कालिका) को हाथी देने वाला है, तुम्हें भी शीघ्र ही मांस और चर्बी नसीब होगी। बस, तनिक उसे अपना कवच पहनने दो।

बीरन के बहुबिधि बपा, लाभ जथारुचि लेहु।
असिमुट्ठि रु हयपिट्ठि अब, पति कों पावन देहु॥२२॥

इम रानिय इत गिद्धनिन, अक्ख्यो बिहित बिसास।
इत कर अैंची मुच्छ नृप, पगि रसबीर प्रकास॥२३॥

ओ गिद्धनियो! उसके बाद तो तुम अलग-अलग वीरों की तरह-तरह की चर्बी खाने का लाभ प्राप्त करोगी। मेरे पति को घोड़े की पीठ पर आने दो और उसकी मुट्ठी तलवार पर कस जाने दो। बस इतनी ही देर समझो! इधर इस तरह रानी और उसके कहे पर गिद्धनियों ने उचित विश्वास प्रकट किया और उधर राजा उम्मेदसिंह अपनी काया में वीर रस का संचार कर अपनी मूंछों पर ताव देने लगा।

षट्पात्

गहत मुच्छ चहुवान फांक दारिम भुव फट्टहिं।
भुव फट्टत अति भार अतल बितलादि उलट्टहिं।
अतल आदि उलटंत पान कच्छप अहि छोरहिं।
पान तजत पाताल बारि उच्छलि जग बोरहिं।
जल तल उफान बुड्डत जगत भग्गहिं लोक प्रपंच भुव।
प्रकटहिं कटाह भग्गत प्रलय मग्गहि मुच्छ बुधसिंह सुव॥२४॥

यहाँ ग्रंथकार (सूर्यमल्ल) कहता है कि राजा उम्मेदसिंह हाड़ा के मूंछ पर ताव देने कें ओज से यह भूमि अनार की तरह फट जाएगी। पृथ्वी के इस तरह फटने पर जो अतिरिक्त भार पड़ेगा उससे अतल और वितल जैसे पाताल लोक उलट जाएंगे। अतलादि लोकों के उलटने पर कच्छप राज और शेषनाग अपना पराक्रम छोड़ देंगे। उनके पराक्रम छोड़ते ही पाताल का पानी

उछलेगा जो जगत को डुबा देगा। नीचे से जल के उबकने पर भूमि की लोक रचना मिट जाएगी। फिर अंडकटाह के टूटने से अर्थात् ब्रह्माण्ड के खंडित होते ही प्रलय हो जाएगा इसलिए हे बुधसिंह के पुत्र! तुम अपनी मूंछों को मत पकड़ो अथवा अपनी मूंछों पर ताव दे कर प्रलय का कहर मत ढाओ। (ग्रंथकार ने यहां उत्प्रेक्षा अलंकार का क्या सुन्दर प्रयोग किया है - संपादक।)

निश्शाणी

कान भनक तबतैं परी चढि कुम्म चलाया।
तबतैं संभर तंडि कैं सिर अब्भ लगाया।
लाह जरूरी लग्गिकैं संध्या क्रम लाया।
सावित्री जप इक सहंस रस भक्ति रचाया ॥२५॥

नित्य निवेर्‍यो प्रात को थन बिप्र धपाया।
सेना सों रन सज्ज कों आदेस लगाया।
सोर नकीबों संकुलें चहुओर चलाया।
फट्टे कग्गर देसमैं फिरि दूत फिराया ॥२६॥

जब चहुवान राजा उम्मेदसिंह के कानों में यह भनक पड़ी कि कछवाहा राजा ने बूंदी पर चढाई करने सेना रवाना की है तभी उसने सिंह गर्जना कर अपने मस्तक से आकाश को छुआ। जरूरी लाभ लेने के लिए उसने विधि-विधान पूर्वक अपनी संध्यां-अर्चना की। उसने गायत्री मंत्र का एक हजार बार जाप कर अपने भक्ति रस को प्रकट किया। उसने नित्य प्रति की तरह आज भी प्रातःकाल के कर्म पूरे किये और ब्राह्मणों को दान दिया फिर अपनी सेना को सज्जित होने का आदेश दिया। नकीबों ने चारों ओर आवाज दे कर सभी को सावधान हो एकत्रित होने का कहा। राजा की ओर से लिखे पत्र ले कर उसके दूत पूरे राज में गए।

झंडे बाहिर गड्डिकैं धुजदंड झुकाया।
फूल झराया सान पैं असि बाढ चिराया।
सिल्लहखानां खुल्लिकैं बर हेति बढाया।
टोप बकत्तर ओप के दसतान दिपाया ॥२७॥

केतों छादन कुंकुमी रन मोद रंगाया।
केतों अच्छरि चाहिकैं सिर मोर बनाया।
त्रंब त्रहक्के कल्लरे बर बंब बजाया।
सहनाइन लग्गी ललक सिंधू सुनवाया॥२८॥

राजा ने सेना के बड़े-बड़े ध्वजों को ध्वजदंडों पर कसने का हुक्म दिया। सान पर तलवारों को धार दिलाने के बहाने अग्निकण (फूल) झरने लगे। शस्त्रागार खोल कर श्रेष्ठ हथियार निकाले गए। सेना के वीर शीघ्र ही शिरस्त्राण, कवच, बाहुल (दस्ताने) आदि धारण करने लगे। कई वीरों ने रणोत्साह में अपने कपड़े केसरिया रंगवाए। अप्सराओं के द्वारा वरण किये जाने की इच्छा से अपने सिर पर मोड़ बांधे। युद्ध के तासे बजे। श्रेष्ठ नाद करने वाले नगाड़े बज उठे। शहनाइयाँ बज उठी और वीरों को जोश दिलाने हेतु सिंधु राग सुनाया गया।

हड्डोती हाजरि भई कटिबंध कसाया।
हूरों सूरों सत्थही बर साच बनाया।
यों जावक लग्गे चरन यों लंगर लाया।
यों नेउर पग अंकुरे यों मक्कुन आया॥२९॥
यों अद्धोरुक उल्लसे यों दंस दिपाया।
यों आहूत बिमान के यों बाजि मंगाया।
यों रागन पाया प्रमुद यों सिंधुन छाया।
यों कोनन लाया करन यों मुट्ठि मिलाया॥३०॥

हाड़ोती के वीर हाजिर हुए और उन्होंने युद्ध के लिए कमर कसने को कमर-बंधे बांधे। इधर वीरों ने और उधर स्वर्ग में अप्सराओं ने श्रृंगार किया। उधर अप्सराओं ने अपने पाँवों पर अलता लगाया और इधर वीरों ने युद्ध से नहीं भागने की प्रतिज्ञा के लंगर अपने पाँवो में पहने। उधर अप्सराओं के पाँवो में नेवर बजने लगे तो इधर वीरों ने झनझनाहट करते मक्कुन (जंघा त्राण) धारण किये। उधर अप्सराओं ने लहँगे पहने तो इधर वीरों ने कवच ठसाये। अप्सराओं ने पृथ्वीलोक पर आने को विमान मँगवाये तो इधर वीरों ने रणभूमि की ओर प्रयाण करने को घोड़े मँगवाये। उधर स्वर्ग में अप्सराओं की रागों से

हर्ष छाया तो नीचे इधर सिंधु राग वातावरण पर छाया। स्वर्ग में अप्सराओं ने वीणा बजाने को मिजराफ पहने तो इधर वीरों ने तलवारों पर अपनी मुट्ठियाँ कसीं।

यों बीणा गन अग्गहे यों तेग तुलाया।
यों रसना आरोप यों कटिबंथ कसाया।
यों कुंकुम कुच लग्गि यों दृढ छत्तिन छाया।
यों कंचुक मंडे कुचन यों बच्छ बनाया॥३१॥
यों वलयावलि हत्थ यों दसतान दिपाया।
यों मद्दल भुजबंध सों सय सज्ज सुहाया।
हार दवाली दोउ घां उर अंतर आया।
यों मुख बीरी आप यों गंगोद अचाया॥३२॥

उधर स्वर्ग में अप्सराओं ने अपने-अपने हाथ में वीणा उठाई तो इधर वीरों ने तलवारें उठाई। उधर अप्सराओं ने अपनी कटिमेखला (करघनी) बांधी तो इधर वीरों ने कमरबंधे कसे। उधर अप्सराओं ने अपने कुचों पर केसर लगाई और इधर वीरों की छातियों पर कवच छाये। उधर अप्सराओं ने कुचों पर कंचुकी कसी इधर वीरों ने अपने वक्ष को सजाया। उधर अप्सराओं ने हाथो में चूड़ियों की पंक्तियाँ सजाईं तो इधर योद्धाओं ने अपने हाथों पर बाहुल बांधे। उधर अप्सराओं ने मादलिये (आभूषण विशेष) बांधे तो इधर वीरों ने भुजबंध (भुजाओं के कवच) बांधे हाँ, पर दोनों ओर की छातियों पर हार पड़तले शोभा देने लगे। उधर अप्सराओं ने मुँह में पान बीड़ा रखा तो इधर वीरों ने मुंह में गंगाजल डाला।

यों मंडे नथ नक्क यों धकि कोप धमाया।
यों दृग रेखा अंजनी रजगुन यों छाया।
पिंजूसन ताटंक यों यों कुंडल पाया।
सोभा सिर सीमंत यों यों टोप लगाया॥३३॥
यों कबरीन प्रसून यों तुररेन झुकाया।
यों लग्गे मन मोह यों मन मोह बिहाया।

नेउर पक्खर नाद त्यों बिबि ओर बढाया।
तिक्ख कडच्छा सज्ज यों सित भल्ल सजाया ॥३४॥

उधर अप्सराओं के नाक नथ से सुशोभित हुए तो इधर वीरों के क्रोधित होने से श्वास-प्रश्वास तेज चलने पर नाक फूले। उधर अप्सराओं ने आंखो में अंजन लगाया तो इधर वीर रजोगुण से आरक्त हो उठे। उधर अप्सराओं ने टोटी बींदी (आभूषण विशेष) पहने तो इधर वीरों ने सिर पर टोप धरे। उधर अप्सराओं ने कानों में कर्णफूल पहने तो इधर वीरों के कानों में कुण्डल शोभित हुए। उधर अप्सराओं ने माथा गुंथा कर अपनी माँग सजाई तो उधर वीरों ने अपनी पगड़ी में तुर्रे बांधे। इधर अप्सराओं ने वीरों के वरण हेतु अपना मन में मोह जगाया ने इधर वीरों ने अपने सांसरिक मोह छोड़ा पर दोनों ओर नेवर और घोड़ों के पाखर झनझना उठे। उधर अप्सराएं तीखे कटाक्षों से सज्जित हुई तो इधर वीर तीखे भाले उठा कर शोभित हुए।

यों षोड़स श्रृंगार यों उपचार बिधाया।
यों मन छाया मैंन यों रन पैं उफनाया।
यों छक पाया उरबसी यों नृप उमगाया।
यों रंभा हुलसी इतैं बल पित्थल पाया ॥३५॥
यों मन फुल्ली मैंनका यों अमर उम्हाया।
यों सु घृताची यों प्रयाग सुराग रचाया।
एत्थ सुकेसी सज्ज यों मरजाद मुदाया।
यों बरघोसा नच्चि यों खग तोक तुकाया ॥३६॥

उधर अप्सराओं ने सोलह श्रृंगार किये तो वीरों ने सोलह प्रकार से देव पूजन किया। अप्सराओं के मन में कामदेव छाया और इधर वीर रणोत्साह से भरे रणभूमि की ओर बढे। उधर उर्वशी खुशी से उमगी तो इधर राजा उम्मेदसिंह रणोत्साह से भर उठा। उधर रंभा हुलसी तो इधर पृथ्वीसिंह को रण में जाने का जोश आया। उधर मैनका मन में फूली न समाई तो इधर अमरसिंह उत्साह से भर उठा। यही हाल उधर घृताची का था तो इधर प्रयागसिंह ने श्रेष्ठ रणप्रीति का प्रदर्शन किया। उधर सुकेशी ने श्रृंगार किया तो इधर मरजादसिंह ने रण का मोद किया। उधर बरघोषा अप्सरा हर्ष में नाच उठी तो इधर तोकसिंह ने तलवार उठाई।

यों हरखादत अच्छरिन बल भूप बनाया।
गज बैंडे इभपाल गन बिरुदार मिलाया।
अंग गरद्दी मंजिकैं रंग लगाया।
थप्पे कुंभ सुबोल दै कुरुबिंद चढाया॥३७॥
मंडि कलम जंगाल की हरिताल मिलाया।
जंग हवद्दे डारिकैं गुड साज सजाया।
बंधि बरत्तों सिर सिरी धरि धूप धुमाया।
मोदक गंज मिलाय कैं जल देगन पाया॥३८॥

इधर सारी अप्सराएं युद्ध का सुनकर हर्षित हुई उधर राजा उम्मेदसिंह ने सेना को सज्जित किया। जिसमें महावतों के समूह ने हाथियों को बिरुदाया और उनके शरीर से धूल झाड़ कर रण का रंग लगाया। फिर उन्होंने कुंभस्थलों पर थपकियाँ दे, श्रेष्ठ वचन कहते हुए हिंगलू लगाया। फिर जंगाल (तांबेई) रंग की कलम से चित्रकारी कर हाथियों के मस्तक पर हरिताल का लेप किया। इसके बाद उनकी पीठ पर जंगी होदे डाल कर उन्हें पाखर पहनाया। रस्सियों से उनके मस्तक पर आभूषण बांधा और फिर उनके आगे धूप देकर उन्हे धूम्रयुक्त किया। लड्डुओं से भरे थाल खिला कर बड़ी-बड़ी देगों से उन्हें पानी पिलाया।

इभ चाकर माकर उछट उडि आसन आया।
बारी बाहिर लैन कों आलान छुराया।
करि अग्गैं करिणीन कों रचि डाक डगाया।
यों बुंदीस अनीक मैं गजराज चलाया॥३९॥
मिलि हयपालक मंदुरन तिम हयन तुकाया।
खेह गरद्दी कढ्ढिकैं दुति देह दिपाया।
कबिका देत कुरंग गति छबि का छक छाया।
रवि का मन रिझवाय कै पबि का जव पाया॥४०॥

फिर हाथियों के चाकर बंदरों की तरह कूद कर उस जगह पर आए जहाँ हाथी बंधते हैं। यहाँ ठाँण से हाथियों को बाहर निकालने के लिए उन्होंने

थंभों से रस्सियां खोलीं फिर हथिनियों को उनके ठांण के सम्मुख लाया गया। फिर महावत अंकुश की हल्की चोटें करते हुए गजशाला से उन्हें बाहर लाये। इस प्रकार बूंदी की सेना में हाथियों को सम्मिलित किया गया। इसके बाद घोड़ों के चाकरों (चरवादारों)ने हयशालाओं में आ कर घोड़ों को तैयार किया। उन्होंने घोड़ों के शरीर पर पहले खुर्रा करके गर्द हटाई फिर उन्हें लगाम लगाई। इसके बाद तो घोड़े मृगों की गति से पायगों से बाहर आए। ये घोड़े वज्र की गति से चल कर सूर्य का मन रिझाने वाले थे।

मीनन पलट मिटाय कै जर जीनन भाया।
खीन न गति पीन न पसम जव हीन न जाया।
पक्खर अंग प्रसारिकैं क्रम तंग कसाया।
राह परों के लाह कों गजगाह झुकाया॥४१॥
वाह चहूं घां उच्चरी गति थाह न गाया।
दीप कनोती चाप दुति खंधों बल खाया।
काल व्याल गति जाल के लटियाल लगाया।
कट्टोरे खुर तार के खुरतार सुहाया॥४२॥

मछलियों की त्वरा से पलट जाने वाले ऐसे घोड़ों पर जेवर और जीन कसे गए। इन घोड़ों की गति क्षीण नहीं और रोमावली मोटी नहीं थी। पहले पाखर पहनाए गए उसके बाद तंग कसे गए, फिर पंखो का लाभ लेने हेतु गजगाव (गजगाह) लगाए गए। अपनी गति की थाह न देने वाले इन घोड़ो की सभी ने 'वाह-वाह' कह कर तारीफ की। जिनके कानों का आकार दीपक की लौ की तरह था और कंधे धनुष की शोभा पाते थे। इनकी आयाल काले सर्पो के समान थी अर्थात् इनकी गूंथी हुई अयाल की लटें ऐसी लग रही थी जैसे गले से काले सर्प चिपके हों। इनके कटोरों के आकार वाले खुरों पर चाँदी की खुरतालें लगी थीं।

दसमी के द्विजराज तैं जिम राहु जुराया।
हाटक के गल हल्लरे झल्लरि झननाया।
छोरि दुबग्गों मोरि कैं कर डोरि झिलाया।
नक्खी पायन नेउरी मग सोर मचाया॥४३॥

बाजी ए नृप बंटिकैं सब बीर सजाया।
अप्प चढे हय हंज पैं करकंज तुकाया।
नाथाउत पित्थल अरथ मृगडान मिलाया।
अमरसिंह रट्ठोर कों नटराज चढाया॥४४॥

काले रंग के खुरों पर श्वेत चाँदी की खुरतालें ऐसी लग रही थीं मानो दशमी तिथि के चन्द्रमा को राहु ने आ दबोचा हो। इन घोड़ों के गले में पहनी हुई स्वर्ण निर्मित जालरियां झनझनाहट करने लगी। चरवादारों ने दुबग्गे खोल कर इन घोड़ों की बागें (लगामें) इनके सवार स्वामियों को सोंपी। इसके बाद चाकरों ने इन घोड़ों के पाँवो में नेवर बांधे जिनसे राहें झनझना उठी। राजा ने ऐसे घोड़े तब अपने सज्जित योद्धाओं में बांटे। राजा स्वयं हंजला (हंस नामक) घोड़े पर आरूढ हुआ और अपने कमल जैसे हाथ में बाग पकड़ी। राजा ने नाथावत पृथ्वीसिंह को मृगडाण (मृग की तरह कुलांचे भरने वाला) नामक घोड़ा दिया वहीं राठौड़ अमरसिंह को नटराज नामक घोड़ा चढ़ने को सोंपा।

सूर भवानीसिंह कों दिलयार दिवाया।
प्रहरन काज प्रयाग कों खगराज खुलाया।
तोक महासिंहोत कों झपटैत झिलाया।
मुहुकमहर मरजाद कों जयनाद दिखाया॥४५॥

इत्यादिक हय बंटिकैं नृप बीर बढाया।
सोदरजुत सुद्धांतकों कोटा पहुंचाया।
ढुंढारे दल ढाहिबे बल अप्प बनाया।
बे बे तुग्गस बंधिकैं कमनैत कसाया॥४६॥

इसी तरह वीर भवानीसिंह को 'दिलयार' नामक घोड़ा सोंपा। प्रयागसिंह को शत्रुओं पर खुल कर प्रहार करने को 'खगराज' नामक घोड़ा दिया। वहीं 'झपटैत' नामक घोड़ा महासिंह के वंशज को सौंपा। मुहुकमसिंह के पुत्र मरजादसिंह को 'जयनाद' नामक घोड़ा प्रदान किया। इस तरह राजा ने घोड़े बाँट कर वीरों को आगे बढने का कहा। उधर अपने जनाना सहित छोटे भाई को वापस कोटा के लिए रवाना किया और इधर राजा ने जयपुर की सेना के संहार हेतु अपनी सेना खड़ी की। अपने धनुर्धारी वीरों की पीठ पर दो-दो तरकश बंधवा कर उन्हें सज्जित करवाया।

बे बे खग्ग बलग्ग कसि कर थूप धुनाया।
बे बे चाप बजाय कैं सिर अब्भ लगाया।
केक तुपक्कों धारिकैं अणु मारि उडाया।
सेल बरच्छी सज्जिकैं अच्छी गति आया॥४७॥

अच्चे बाजि उडाय कै मन आजि मिलाया।
बैंडाराग अलापिया अैंडा छक छाया।
बंदीजन रसबीर में भट छाक छकाया।
ज्यों गिरिनारी गान पैं सिर नाग उठाया॥४८॥

अपने योद्धाओं की कमर पर दो-दो खड्ग कसवाए और एक तलवार हाथ में दी। राजा के धनुर्धारी वीरों ने भी दो-दो प्रत्यंचा वाले धनुष धारण किये और दर्प से अपने मस्तक आकाश से छुआते चले। कई बहादुर सिपाहियों ने बन्दूकें लीं जो छोटे से छोटा लक्ष बेधने में पांरगत थे। कुछ वीरों ने भाले और बरछियाँ धारण कीं और तेज गति से रणभूमि की ओर बढ़ने को उतावले हो उठे। सवारों ने अपने अच्छे घोड़े बढा कर अपने मन को युद्ध मय बनाया। सिंधवी राग अलापा गया जिसे सुन कर योद्धओं की देह में वीर रस का संचार हुआ। वहीं बंदीजनों ने बिरुदावली सुना कर वीरों को गर्वोक्त बनाया और वीर भी अपने बिरुद सुन कर यों हर्षित हुए जैसे सपेरे की बीन को सुन कर हर्ष से नाग अपना फण उठाता है।

कै जुब्बन बय व्याह पैं नायक हरखाया।
जानि मितपंच रंक को नव ही निधि पाया।
अक्क उदैगिरि आत कै बारिज बिकसाया।
पिक्खि मतंगज थूल कै सद्दूल चलाया॥४९॥

उत्तर के पवमान तैं घन जानि घुराया।
जानि दिवाकर जेठमें ओज बढाया।
इक्खत जिम हिमकर उदै अंबुधि उफनाया।
सोलह बेर कि सुक्रमैं तपनीय तपाया॥५०॥

अपनी यौवनावस्था में जिस तरह युवक अपने विवाह के लिए खुश होता है उसी तरह वीर रणभूमि में जाते हुए प्रसन्न हुए मानो किसी कृपण

दरिद्र को सारी नव-निधियां मिल गई हों। उदयगिरि पर्वत से सूर्य के उदय होते ही जैसे कमल विकसित होते हैं उसी तरह विकसित मन से राजा के वीर योद्धा रण करने बढे मानो हाथियों के झुण्ड को देख कर सार्दुल सिंह बढ रहा हो या फिर उत्तर दिशा के पवन से मेघ बढ़ रहे हों। अथवा ज्येष्ठ माह की दुपहरी में सूर्य ने अपना तेज बढाया हो या फिर चन्द्रमा को देख कर समुद्र में ज्वार चढा हो या फिर स्वर्ण सोलह बार तप कर कुंदन बना हो।

पावक मारुत पायकैं हेतिन हुलसाया।
कामंदक मग लग्गिकैं बल भूप बढाया।
ज्यों करिणी के जाल पैं सुंडाल सुहाया।
अंधक अग्गैं आनिकैं सिव जानि सजाया॥५१॥

गोबद्धन कर लैन कों जिम कन्ह कसाया।
जानि जटासुर जंग पैं भुज भीम बजाया।
कै गजकेतन कदन कों कपिकेतु कुपाया।
ज्यों लंघन जलरासि कों हणुमा हुलसाया॥५२॥

राजा उम्मेदसिंह की सेना रणभूमि की ओर बढ़ती हुई यों हर्षित हुई जैसे अग्नि पवन को पा कर ज्वालाओं के रूप में प्रसन्न होती है। कामंदक मुनि की बनाई हुई नीति के मार्ग पर चलते हुए राजा उम्मेदसिंह अपनी सेना को बढा कर सुशोभित हुआ जैसे हथनियों के समूह में पहुँचने वाला हाथी शोभित होता है। वह यों शोभित हुआ जैसे असुर अंधक को अपने आगे लेकर महादेव शोभित हुए थे। राजा ने इस युद्ध के लिए सज्जित हो इस तरह अपनी कमर कसी जिस तरह गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठा लेने को कृष्ण ने कमर कसी थी या जटासुर संग्राम में भीम ने अपने भुज ठोके थे या कर्ण का नाश करने को अर्जुन ने क्रोधित हो कमर कसी थी या फिर जैसे समुद्र लांघने को हनुमान उत्साहित हुआ था।

कै रावन बध काज पैं रघुराज रिसाया।
कै बाहर प्रहलाद की नरनाहर आया।
जिम एका इक बिंदु तैं दस गुन दरसाया।
बढि ऐसैं रसबीर मैं चढि भूप चलाया॥५३॥

राजा उम्मेदसिंह हाड़ा अपनी शत्रु सेना पर यों कुपित हो रणभूमि की

ओर बढा जैसे रावण का वध करने रामचन्द्र कुपित हो बढ़े थे। या फिर भक्त प्रहलाद की गुहार पर नृसिंह कुपित हो थंभे से प्रकट हुए थे। जिस प्रकार एक के अंक पर बिंदी लगाने से वह दस गुना हो जाता है उसी तरह राजा उम्मेदसिंह ने अपने क्रोध को कई गुना बढा कर सेना सहित रण भूमि की ओर प्रयाण किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ संभर नरेश सज्जीभवनवाहिनीवीरवाजिवारणवर्णनं षोडशो मयूखः॥ आदितः ॥२९७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में चहुवानों के राजा का सज्जित होना, सेना के वीर, घोड़े और हाथियों के वर्णन का सौलहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ सतानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

कुम्म कटक जबही सुन्यों, हठि हंकत हमगीर।
अर तबही पित्थल अमर, भट आये नृप भीर॥१॥

हे राजा रामसिंह! जब यह सुना कि जयपुर से कछवाहा राजा ने बूंदी पर चढाई करने हेतु सेना रवाना की है तो शीघ्र ही पृथ्वीसिंह और अमरसिंह दोनों योद्धा सुनते ही राजा उम्मेदसिंह की सहायता करने पहुंचे।

षट्पात्

जब कूरम जयसिंह दई बुंदिय दलेल कंहं,
तबहि नगर निम्मान छोरि पित्थल रानां पंहं।
उदयनैर अति धर्म गयो निज बल नाथाउत,
सुपहु रान संग्राम जाहि रक्ख्यो सनेह जुत।
उमराव स्वीय पंद्रह अथर पालसोलि उप्पर प्रथित।
बैठारि उच्च आदर बिरचि हरख्यो नृप चालुक्य हित॥२॥

पूर्व में कछवाहा राजा जयसिंह ने अपने प्रभाव से राजा बुधसिंह को हटा कर बूंदी जब दलेलसिंह को सोंप दी तब निम्माणा नगर को छोड़ कर

पृथ्वीसिंह उदयपुर के महाराणा के पास चला गया। वह नाथावत वीर पृथ्वीसिंह धर्म की मर्यादा को अत्यन्त मानने वाला था। ऐसे स्वामिधर्म वाले नाथावत को महाराणा संग्रामसिंह ने स्नेहपूर्वक अपने यहाँ रख लिया। महाराणा ने अपने सोलह उमरावों में से पंद्रह उमरावों के नीचे के स्थान पर पारसोली से ऊपर स्थान दिया। इस तरह महाराणा ने अपना एक सांमत बना कर उस नाथावत चालुक्य के हितों की रक्षा की।

इक्क समय चालुक्य निडर पित्थल नाथाउत,
रहत सभाबिच रान जप्यो बुद्धहिं अधर्म जुत।
स्व प्रभु निंदा सुन भीम उट्ठयो पित्थल भट,
पटा सहंस पंचास छोरि हंक्यो बंछित बट।
द्रुत रान पहुंचि नति जुत कहिय माफ करहु अपराध मम।
मन्नी न तदपि पित्थल सुमति अक्खी तुम अकुसल अधम ।।३ ।।

वह निडर चालुक्य पृथ्वीसिंह एक दिन महाराणा की राजसभा में बैठा था तभी महाराणा ने पूर्व राजा बुधसिंह को अधर्मी कह कर उपहास किया। अपने पूर्व स्वामी के लिए महाराणा द्वारा प्रयुक्त निंदा के वचन सुन कर निडर पृथ्वीसिंह अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। वह महाराणा द्वारा प्रदत्त पचास हजार की जागीर का पट्टा ठुकरा कर अपने मनवांछित मार्ग पर चलने को सभा से निकल आया। तुरन्त महाराणा उसके पास गए और नीतिपूर्वक उसे रुकने का कहा। महाराणा ने अपने शब्दों के लिए खेद प्रकट करते हुए पृथ्वीसिंह को रोकना चाहा पर उस वीर ने एक न सुनी उल्टे यह कहा कि महाराणा आप अच्छे स्वामी नहीं बल्कि अकुशल और अधर्मी हैं।

दुजनसल्ल कोटेस सुनत यह सचिव पठायो,
लिखि कग्गर अति ललित बहुत सतकार बढायो।
लिखी नगर निम्मान नाह इतही तुमरो घर,
आवहु मिलहिं सु अन्न बंटि खैहैं बीरनबर।
पित्थल सु बंचि उत्तर लिख्यो क्यों तुम हठ मंडत घनैं।
मम जनक हन्यों आटोनि रन बलि बुंदिय बैरिय बनैं।।४।।

नाथावत चालुक्य पृथ्वीसिंह के उदयपुर से चले आने की बात सुन कर कोटा के राजा दुर्जनसाल ने अपने सचिव को भेजा। राजा ने सुन्दर पत्र में आदरयुक्त संबोधन लिख कर पृथ्वीसिंह का सम्मान बढाया। राजा ने लिखा कि हे निम्माण नगर के नाथ! कोटा को भी अपना घर जानों और यहाँ चले आओ। हम यहाँ मिल बाँट कर खाएँगे। नाथावत पृथ्वीसिंह ने पत्र पढ कर उत्तर लिखा कि हे राजा! आप नाहक ही हठ करते हैं मुझे याद है आपने आटोण नगर वाले युद्ध में मेरे पिता को मारा था। यही नहीं आपने बूंदी के साथ भी शत्रुवत व्यवहार किया था।

अग्ग नगर आटोनि भीभ सालम जब जुट्टिय,
चालुक देवीसिंह तबहि असि धारन तुट्टिय।
कोटापति पुनि कितव बैर बुंदिय पर लायउ,
दुव कारन दल बीच मंडि पित्थल पहुंचायउ।
सुनि दुजनसल्ल उत्तर लिखिय जानहु नहिं मम दोख जिय।
मम जनक हन्यों तुमरो जनक बुंदियसन पुनि बैर किय।।५।।

पूर्व में आटोंण नगर की रणभूमि में कोटा का महाराव भीमसिंह और सालमसिंह आमने-सामने हुए। इस युद्ध में चालुक्य देवीसिंह ने तलवार उठाई और रणभूमि में कट कर मारा गया। यही नहीं उस कोटा के छली राजा ने बूंदी के साथ भी शत्रुता निभाई थी। पृथ्वीसिंह ने यही दो कारण प्रत्युत्तर वाले अपने पत्र में लिखे कि इन दोनों कारणों से मैं आपका मातहत नहीं बनना चाहता। पत्र मिलते ही राजा दुर्जनसाल ने अपनी ओर से सफाई देते हुए पुनः लिखा कि हे पृथ्वीसिंह! इसमें मेरा क्या कसूर है ? क्योंकि तुम्हारे पिता देवीसिंह को मेरे पिता ने मारा था मैंने नहीं और बूंदी के साथ शत्रुता भी मेरे पिता ने की थी। मेरा दोष था नहीं, इसलिए उन कारणों से अपने मन में मुझे दोषी मत मानो।

दोहा

नहिं रुचि तो आवहु नहिन, परिखद बिच मम पास।
रहिये घर लहिये रुचिर, पटा सहंस पंचास।।६।।

इत्यातिक उत्तर लिखि रु, दुजनसल्ल हित दिट्ठि।
सचिव भेजि निज साम करि, बुल्ल्यो पित्थल निट्ठि।।७।।

अमरसिंह रट्ठोर इत, रुट्टल राम कुलीन।
कछवाहन बरवाड़ लिय, निकस्यो तब छिति छीन॥८॥

निज सुत पंचक जुत निडर, स्त्रीजन अनुग समेत।
सहि बिपत्ति कोटा सहर, आयो नीति उपेत॥९॥

यदि तुम्हारी कोटा आने में रुचि नहीं है तो न सही। तुम मेरे दरबार में भी मत आओ, अपने घर रहो पर मैं जो तुम्हें पचास हजार की जागीर देता हूँ उसे स्वीकार कर लो। अपनी सफाई देते हुए राजा दुर्जनसाल ने स्नेह का प्रदर्शन कर ऐसा पत्र लिखा और साम का प्रदर्शन करते हुए अपने सचिव को भेज कर पृथ्वीसिंह को कोटा बुलवाया। राजा उम्मेदसिंह की सेवा में ऐसे कठिन समय जो दूसरा योद्धा उपस्थित हुआ वह अमरसिंह राठौड़ रामसिंह रोटला का वंशज था। जब कछवाहों ने बरवाड़ा को विजित कर अपने अधिकार में किया था तब उसकी अपनी भूमि भी छिन गई थी। तब वह निडर अमरसिंह अपने जनाना, पाँच पुत्रों और अपने सेवकों सहित नीतिपूर्वक विचार कर कोटा शहर में विपत्ति से भरे दिन काटने को राजा की सेवा में आया।

पटा सहंस पैंतीस मित, करि हित दिय कोटेस।
इम रक्खे पित्थल अमर, दुव छल तिमिर दिनेस॥१०॥

ते भट दुव बुंदीस पर, कुरम दल सुनि आत।
तजि कोटापति के पटा, आये रन उमडात॥११॥

जोधपुर प गजसिंह सुव, कुमर अमर रट्ठोर।
मरन ागरा मंडयो, तोरि साह को तोर॥१२॥

अमर भीर आये तबहि, बलू रु भाऊ बीर।
पातसाह के तजि पटा, हठि जुज्झन हमगीर॥१३॥

कोटा के राजा ने उसका हित सोच कर पैंतीस हजार की जागीर का पट्टा दिया। इस तरह अमरसिंह राठौड़ और पृथ्वीसिंह नाथावत चालुक्य दोनों को जो छल रूपी अंधेरे के सूर्य थे को अपने यहाँ रखा। इन दोनों योद्धाओं ने जब सुना कि बूंदी के राजा पर चढ़ाई करने कछवाहों की सेना आ रही है तो उन्होंने कोटा के राजा की जागीर को छोड़ दिया और रणोत्साह से भरे बूंदी आए। जिस तरह जोधपुर के राजा गजसिंह का पुत्र अमरसिंह राठौड़

मरने को ही आगरा गया जहाँ उसने बादशाह के प्रताप का उल्लंघन किया था और इस अमरसिंह की सहायता को तब बलू चांपावत और भाऊ जैसे वीर बादशाह द्वारा प्रदत्त जागीर को छोड़ कर जूझने गए थे।

तिमहि सन अमरेस सुत, करन अनुज भट भीम।
रक्खि खुरुम सरनैं रच्यो, संगर कासी सीम॥१४॥

सगताउत मान सु सुनत, छिप्र उदैपुर छोरि।
पहुंच्यो कासी भीम पंहं, मर्यो साह दल मोरि॥१५॥

इमहिं बीर पित्थल अमर, कोटा सन करि कुच्च।
समर बेर बुंदीस सों, आनि मिले छक उच्च॥१६॥

अमरसिंह रट्ठोर की, पतनी कै गद पूर।
दुक्ख हुतो बहु दिनन तैं, संक्यो तदपि न सूर॥१७॥

इसी तरह महाराणा अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह और भीमसिंह ने जानबूझ कर खुर्रम को शरण दी और इसके लिए काशी की सीमा पर जा कर युद्ध किया। इस युद्ध में शक्तावत भानसिंह भी शीघ्र उदयपुर छोड़ कर अपने स्वामी भीमसिंह की सहायता को पहुँचा जहाँ वह शाही फौज को मोड़ कर मारा गया। उपरोक्त वीरों की तरह अमरसिंह और पृथ्वीसिंह दोनों कोटा से कूच कर साहस से भरे बूंदी के राजा से युद्ध के समय आ मिले। इस समय अमरसिंह राठौड़ की पत्नी बहुत बीमार थी। वह लंबे समय से पीड़ा झेल रही थी पर वह अमरसिंह अपनी घरवाली की रुग्णता के कारण भी नहीं ठहरा। उसने कर्तव्य को प्राथमिकता प्रदान की।

उतरत चम्मलि आपगा, प्रिया भई गतप्रान।
सोहु अमर रट्ठोर सुनि, न मुर्यो जंग निदान॥१८॥

अभयसिंह जेठो तनय, पच्छो गेह पठाय।
अप्प च्यारि सुत जुत अडर, अमर स बुंदिय आय॥१९॥

मुहुकमहर त्योंही मरन, मेटन अघ मरजाद।
सूर तुपक सजि पंचसत आयो नद्दत नाद॥२०॥

सब भट हिय लाये सुपहु, बहु अद्दरि बुंदीस।
सहित प्रीत बंटी सिलह, सज्ज्यो जैपुर सीस॥२१॥

अमरसिंह राठौड़ जब बूंदी आने को चम्बल नदी पार कर रहा था उसी समय पीछे उसकी पत्नी ने प्राण त्याग दिये। जब यह समाचार वीर राठौड़ को मिला तब भी वह वापस अपने घर नहीं गया वह तो युद्ध के लिए आगे चला। उसने अपने बड़े पुत्र अभयसिंह जो उसके साथ था को यहीं से वापस घर भेजा और स्वयं अपने शेष चार पुत्रों के साथ बूंदी आया। मुहुकमसिंह का वंशज भी वैसी ही मृत्यु सोच कर और पाप की मर्यादा को मिटाने के लिए बन्दूकों से लैस अपने पाँच सौ साथियों के साथ गर्जना करता हुआ बूंदी पहुँचा। बूंदी के राजा ने भी अपनी सहायता को आए सभी योद्धाओं का आदर सहित सम्मान किया फिर उसने प्रेमपूर्वक सभी को हथियार बांटे और जयपुर की फौज का सामना करने हेतु उन्हें सज्जित किया।

नाथाउत पित्थल निडर, सज्यो न बपु सन्नाह।
अक्खी इच्छहु जो जियन, लेहु वहै यह लाह॥२२॥

सत बारह इम सेन सजि, सादी पदग समेत।
उडहनि के तट अमरपुर, खिजि चिंत्यो रन खेत॥२३॥

सजि बुंदिय उत्तर तरफ, हंक्यो नृप हुसियार।
पहुमी छाई पक्खरन, सेलन गगन प्रसार॥२४॥

कोस तीन उप्पर कटक, मिले उभय रन मोद।
उत्तर दक्खिन के अरे, पाउस जानि पयोद॥२५॥

इस अवसर पर उस निंडर वीर नाथावत पृथ्वीसिंह ने कवच पहनने से मना कर दिया और कहा कि कवच वे ही वीर पहनें जो जीवन जीने की इच्छा में जीवित रहना चाहते हैं। यह लाभ की वस्तु उन्हीं को लेना चाहिए। इस तरह कुल बारह सौ की संख्या वाली सेना जिसमें सवार और पैदल सैनिक भी थे बूंदी की तरफ से लड़ने को तत्पर हुई और उडहनि नदी के तट पर अमरपुर नामक गाँव के निकट की भूमि को क्रोधित हो रणभूमि बनाया। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह सज्जित हो अपने दल के साथ बूंदी से उत्तर दिशा की ओर बढा। उस चतुर राजा की सेना के पाखरों से पृथ्वी आच्छादित हो गई और भालों का प्रसार आकाश तक हो गया। यहाँ से तीन कोस ऊपर जाने के बाद रणोत्साह से भरी दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुई। तब ऐसा लग रहा था जैसे पावस ऋतु के समय में उत्तर और दक्षिण के मेघ आपस में आ भिड़े हों।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ बुन्दीन्द्र-सहायार्थचालुक्यपृथ्वीसिंहकबंधाऽमरसिंहहड्डुमर्य्यादसिंहाऽऽगमनसेना-ऽभिनिर्याणं सप्तदशो मयूखः ॥ आदितः ॥२९८॥

श्रीवंश भास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में बूंदी के इन्द्र की सहाय के अर्थ सोलंकी पृथ्वीसिंह, राठौड़ अमरसिंह और हाड़ा मरजादसिंह का आना और सेना के सम्मुख जाने का सत्रहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ अठानवे मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

मुक्तादाम

उयो रसबीर छयो नृप अंग, चल्यो अब सम्मुह लै चतुरंग।
चल्यो भट पित्थल संकित सेस, चल्यो सुत च्यारिन तैं अमरेस ॥१॥

चल्यो मरजाद नमावत नाग, चले भट सोदर तोग प्रयाग।
भवान्यिसिंह चल्यो भट भूप, खुमान चल्यो रन रावन रूप ॥२॥

चल्यो हरदाउत देविमृगेस, चल्यो सगताउत त्यों अचलेस।
चले भट भारत अर्जुन चंड, उदैहरि चालुक ओज अखंड ॥३॥

चल्यो नर नाहर नाहर बीर, चल्यो नवलेस हठी हमगीर।
चल्यो भट कर्ण महारन चाहि, अजीत चल्यो कछवाह उमाहि ॥४॥

हे राजा रामसिंह! अपने अंगों पर छाये वीर रस के साथ राजा उम्मेदसिंह कछवाहा राजा की सेना का सामना करने अपने दल के साथ रवाना हुआ। राजा के साथ नाथावत पृथ्वीसिंह जैसा योद्धा शेष नाग को शंकित करता चला वहीं राठौड़ अमरसिंह अपने चार पुत्रों के साथ चला। इसी तरह मरजादसिंह अपने प्रयाण की ठसक से अनम्य पर्वतों को भी झुकाते हुए बढा वहीं तोगसिंह और प्रयागसिंह दोनो भाई भी रणभूमि की ओर बढे। वीर भवानीसिंह चला तो हठ में रावण का दूसरा रूप खुमाणसिंह भी चला। हरदावत वंशीय हाड़ा देवीसिंह सज्जित हो बढा तो अचलसिंह शक्तावत भी पीछे नहीं रहा। भारतसिंह, अर्जुनसिंह जैसे वीर रणभूमि को चले वहीं अखण्ड ओज रखने वाला उदयसिंह भी चला। मनुष्यों में सिंह रूप नाहरसिंह बढा तो हठी नवलसिंह भी पीछे नहीं रहा। भीषण युद्ध की इच्छा कर कर्णसिंह रवाना हुआ तो अजीतसिंह भी कछवाहा सेना के सम्मुख जाने को बढा।

चले इन्ह आदि बडे बर बीर, धपावन सत्रुन खग्गन धीर।
चल्यो इम बुंदिय भूपति चक्क, बितंडन पिट्ठि खुली बहरक्क॥५॥

अडंबर भो रज अंबर ओघ, मच्यो बडि ध्वांत बन्यों रवि मोघ।
भयो निसचारन आनंद भुल्लि, डरे डिगि चक्किय चक्कहु डुल्लि॥६॥

चले इत बारहसैं रन रीस, पिले उत गज्जि हजार पचीस।
तज्यो भव मोह भज्यो कर तेग, उठे भट राजिय बाजिय बेग॥७॥

धमंधमि भुम्मि धुजी हय धार, घमंघमि घुग्घर पक्खर भार।
डमंडमि डाहल डिंडिम डक्क, ठमंठमि सिंधुर घंट ठमक्क॥८॥

राजा उम्मेदसिंह के साथ ऐसे वीर योद्धा रणभूमि की ओर अपने शत्रुओं को तलवार की धारों से अघाने को चले। हाथियों की पीठ पर पताकाएं फहराती बूंदी के राजा की सेना चली। सेना के प्रयाण से उड़ी धूल ने आकाश को ढांप लिया इससे सूर्य का प्रकाश रुक गया और सर्वत्र अंधेरा छा गया। इससे निशाचरों में आनन्द छा गया। चक्रवाक पक्षी की जोड़ी बिछड़ गई। इधर से बारह सौ वीर राजा उम्मेदसिह के साथ चले वहीं कछवाहा राजा ईश्वरीसिह ने पचीस हजार की संख्या वाली सेना भेजी। योद्धाओं ने सांसारिक मोह छोड़ा और हाथों में तलवारें उठाई। सवारों ने अपने-अपने घोड़े वेग सहित उठाए (हांके) घोड़ों की गति से भूमि काँपने लगी। घोड़ों के घुंघरु और पाखर बजने लगे। बेताल और योगिनियों के वाद्य (डाहल) झनझना उठे, वहीं हाथियों के गले में बंधे घंटे घनघना उठे।

नरायन पिक्खिय बुंदिय नाह, कह्यो जुरि याहि गहो कछवाह।
इती कहतैं दुहुंघां उमराव, भिले ति मिले पय सक्कर भाव॥९॥

बज्यो असि हड्डुन अड्डुन बाढ, गज्यो भय भीरुन बीरन गाढ।
दपट्टत लक्खन भक्खन दाय, झपट्टत तक्खन कों झमकाय॥१०॥

लकल्लकि छुट्टिय बान बिथार, धकद्धकि घायन सोनित धार।
झगज्झगि आयुध भा झगमग्गि, धगद्धगि उट्ठिय खग्गन अग्गि॥११॥

कटक्कटि कंकट बंकट बाढ, खटक्खटि खावन डाकिनि डाढ।
चटच्चटि उच्छटि हड्डुन संधि, गटग्गटि गिद्ध बपा चय बंधि॥१२॥

दोनों सेनाओं के आमने-सामने होते ही कछवाहा सेना के सेनापति नारायणदास खत्री ने बूंदी के राजा उम्मेदसिंह को देखते ही अपने योद्धाओं से कहा कि इसे पकड़ लो! उसके ऐसा कहते ही पकड़ने वाले और बचाने वाले अर्थात दोनों ओर के वीर एक दूसरे की ओर बढ़े और दोनों दल आपस में यों मिल गए जैसे दूध में शक्कर मिलती है। दोनों ओर से अपने शत्रुओं की हड्डियों पर तिरछे प्रहार करती तलवारों की धारें बज उठी इससे कायरों में भय और गर्जना करते वीरों में दर्प छा गया। एक दूसरे के प्राणों के प्यासे हो वीर एक दूजे पर झपट पड़े। सवारों ने अपने घोड़ों को प्रहार करने हेतु शत्रु सेना की ओर बढ़ाया। लहराते हुए बाणों का विस्तार बढ़ा और वीरों के लगे घावों से रक्त की फुहारें छूटने लगीं। शस्त्रों की कांति जगमगाने लगी और तलवारें कहर की अग्नि बरसाने लगी। शस्त्र प्रहारों से वीरों के कवच 'कट-कट' की ध्वनि करने लगे और डाकिनियों के दाँत 'खट खट' की ध्वनि करने लगे। वीरों के शरीर के संधि स्थल 'चट-चट' की आवाज के साथ खुलने लगे और गिद्धनियां 'गटागट' वीरों की चरबी निगलने लगीं।

खनक्खनि टोपन पैं खुरतार, भनब्भनि गोलिन ध्वान भयार।
झपज्झपि सेनन पच्छति झुंड, लपज्झपि लुट्टत सिंधुर मुंड ॥१३॥

झमंझमि मार दुधारन झाट, घमंघमि सेलन ठेलन घाट।
लसैं असि कुंभन फांक चलाव, बढै रद सब्बुव तंति बनाव ॥१४॥

भुजांतर होत कटारन भिन्न, खिचैं परि पंजर खंजर खिन्न।
कढैं खर तोमर दंसन दारि, फबै पृथुरोम कि जालिय फारि ॥१५॥

चलैं चमकैं असि ओज अपार, छपाकर बाल कला छबिदार।
लटक्कहिं लुत्थिन पैं लगि लुत्थि, उछट्टहिं कट्टहिं बुत्थिन बुत्थि ॥१६॥

रणभूमि में घायल अथवा मृत वीर के टोप (शिरस्त्राण) पर घोड़े का पाँव लगने से खुरताल से टोप खनखनाने लगी। 'भनन-भनन' की ध्वनि करती गोलियां चलने लगी। बाज पक्षियों के झुण्डों के झपटने से उनके पंख झप-झप की ध्वनि करने लगे। कटी हुई हाथियों की सूंडें भूमि पर पडी लपझप करने लगी अर्थात ताजा कटी हुई हिलने-डुलने लगी। दुधारी तलवारों ने झमाझम प्रहार मचाए और भालों के ठेले (घोंपे) जाने पर घाव होने लगे।

कहीं पर हाथियों के कुंभस्थलों को चीरती तलवारें शोभा देने लगीं और कहीं तांत से कटते साबुन की तरह हाथी दांत कटने लगे। कहीं पर कटारें वीरों की छातियां फाड़ने लगीं और कहीं गुपे हुए खंजर शत्रु शरीर से पिंजर तोड़ते निकलने लगे। कहीं तीखे भाले वीरों के कवच फाड़ कर यों निकलने लगे जैसे अपना जाल फाड़ कर मछली निकलती है। प्रहार मचाती हुई चमकती तलवारें ऐसी शोभा देने लगी जैसे द्वितीया तिथि का चन्द्रमा शोभा देता है। कहीं पर कटी हुई लोथ पर लोथ लटक रही है तो कहीं पर कट कर मांस के टुकड़ों पर टुकड़े उड़ रहे हैं।

उलट्टहिं घोरन तैं भट आय, खमैं ग्रह जानि कबूतर खाय।
छुलक्कहिं छिंछि हवक्कहिं घाय, छुटैं जलजंत्र कि जावक छाय॥१७॥

चलैं टिकि जानुन के पयभिन्न, स्तनंधय केलि किं अंगन किन्न।
किते भुव लुट्टत जात अचेत, खिचैं जनु कोटिस डैलन खेत॥१८॥

परे कति ऊरध हत्थ प्रसारि, किंधों हरि मंदिर बंदन कारि।
बबक्कत के गिरि बक्कर बेस, मनों नमि गात रिझात महेस॥१९॥

अटक्कत पाय रकाबन इद्ध, लटक्कत जानि अधोमुख सिद्ध।
कटैं सिर अब्भ फिरैं भ्रमकारि, कुलाल कि चक्कहिं भंड उतारि॥२०॥

रणभूमि में कहीं पर घोड़ों से कटे हुए सवार उल्टे हो कर गिरने लगे जैसे आकाश में कबूतर कुलाँट खा रहे हों। कहीं पर घायलों के घावों से रक्त धाराए यों फूटने लगीं जैसे फव्वारों से पानी की धार उछल रही हो। कहीं पर वीर अपने पांव कट जाने पर रणभूमि में घुटनों के बल यों घिसट कर चलने लगे जैसे दूध मुँहे बच्चे आंगन में बालक्रीड़ा करते हों। कहीं पर अचेत वीर रणभूमि में यों लुटने लगे हो जैसे हांके हुए खेत के ढेलों पर चावर (लोष्ट भेदन) फिराई जा रही हो। कहीं पर मृत वीर अपने हाथ ऊँचे किये हुए यों पड़े थे मानो कोई विष्णु भगवान के मन्दिर में वंदना कर रहा हों। कहीं भूमि पर गिरे हुए वीर अवाच्य शब्द बकरे की तरह यों उचार रहे थे मानो नमस्कार में झुक कर शिव को प्रसन्न कर रहे हों (सिर कट जाने पर महादेव ने जब दक्ष प्रजापति के धड़ पर बकरे का मुंड लगा कर उसे पुनः जीवित किया था और दक्ष ने तब बकरे के मुँह से महादेव की स्तुति की थी-संपादक)। कहीं

पर रकाब में पाँव के उलझ जाने पर कटे हुए वीर यों औंधे मुँह लटकने लगे जैसे कोई शीर्षासन लगा कर सिद्ध साधना कर रहा हो। रणभूमि में कहीं पर कटे हुए मस्तक हवा में उछलते चक्कर खाकर यों गिरने लगे जैसे कुम्हार ने चलते चाक से बर्तन उतारा हो।

थरत्थर कातर कंप कुठार, बिना तिय ज्यों नर पास तुसार।
उडैं फटि पेट फदक्कत अंत, करंडन तैं कि भुजंग कढंत॥२१॥

बनैं बटके भट के रन बाद, सु ज्यों मटके जगदीस प्रसाद।
रचैं दुव हत्थनके असि वार, किधो कर खत्तिय कट्ठ कुठार॥२२॥

सरैं क्षतजात छिदे उर सैंकि, नमात रजोगुन की लहरैं कि।
गुटी दृग ओर कढैं दृग लै रु, किधौं अलि कामल कोरक लै रु॥२३॥

धसैं कढि के दृग सोनित धार, बनैं पृथुरोमन वारि बिहार।
सिचानक अंतहि लै नभ जात, अचानक गोत गुढी सम खात॥२४॥

शस्त्रों के प्रहारों से मचे घमासान में कायर योद्धा बुरी तरह से यों काँपने लगे जैसे पोष माह की शरद रात्रि में स्त्री विहीन पुरुष ठंड से काँपता है। कहीं पर चिरे हुए पेट से निकली आंते यों फुदकने लगीं जैसे सपेरे के टोकरे से निकला हुआ साँप हिल-डुल कर गति कर रहा हो। कहीं पर वीर हठपूर्वक युद्ध में यों टुकड़े-टुकड़े हो कर गिरने लगे जैसे भगवान जगदीश के प्रसाद का कलश फटा हो। कहीं पर दुबाह योद्धा अपने दोनों हाथों से यों तलवार के प्रहार करने लगे जैसे सुथार काठ पर दोनों हाथों से कुठार चला रहा हो। कहीं पर बरछी से छिदे वीर के शरीर से रुधिर यों उबकने लगा मानो उसकी देह में रजोगुण के नहीं समाने पर उसकी लहरें बाहर आ रही हों। कहीं पर किसी वीर की आँख पर लग कर गोली उसके नेत्र लिये यों निकली जैसे भ्रमर अपने साथ कमल की कली अथवा परागकण लिये निकला हो। और निकली हुई आँख रक्तधारा में यों धँसती हुई गिरी जैसे मछली ने जल में गोता लगाया हो। बाज पक्षी किसी वीर की कटी अंत्रावली को लेकर उड़ते हुए यों उपर नीचे हो रहा है जैसे आकाश में कोई कटी पंतग गोते लगा रही हो।

दिसा बिदिसान निसानन नद्द, भनैं जनु घोर बलाहक भद्द।
तुटी लगि टोप बजैं तरवारि, मनों हरि मंदिर झल्लरि झारि॥२५॥

भई हलमल्ल चलच्चल भुम्मि, घट्यो बल नाग निसासन घुम्मि।
रचैं धनु सिंजिनि बेग बिसाल, किधों रन थंभत जंभत काल॥२६॥

मचैं घन लोहित फुट्टत मत्थ, हसैं लखि जुग्गिनि खप्पर हत्थ।
समप्पत हेरि सबै गन सीस, अपूरब हार बनावत ईस॥२७॥

थेइत्थेइ घुम्मत डाकिनि मत्त, तमासन प्रेत मलंगत तत्त।
किते रस पान पिसाच करंत, रमैं कति लोहित तुंद भरंत॥२८॥

रणभूमि में बजते हुए नगाड़े अपनी आवाज सभी दिशाओं में यों गुंजायमान कर रहे हैं जैसे भाद्रपद माह के मेघ गर्जना कर रहे हों। रणभूमि में कहीं टोप पर लग कर टूटी हुई तलवार 'झन्न' की ध्वनि यों कर रही है जैसे श्री हरि के मन्दिर में झालर बज उठी हो। दोनों ओर की सेनाओं के मिलने पर मचे इस घमासान से पृथ्वी चलायमान होने लगी और अपने फणों से निश्वास छोड़ते शेषनाग का बल घट गया। रणभूमि में धनुर्धरों के धनुषों की प्रत्यंचाएँ अपनी टंकारों से ऐसी ध्वनि निकालने लगीं मानों रणभूमि में खडा यमराज उबासियां (जम्हाई) ले रहा हो। शस्त्र प्रहारों से कई शत्रु वीरों के मस्तक फटने से रक्त बहने लगा जिसे देख कर अपने हाथ में खप्पर थामें योगिनियां हँसने लगी। रणभूमि में कट कर गिरे अच्छे मस्तकों को महादेव के गण ढूंढ-ढूंढ कर अपने स्वामी को सोंपने लगे और उनसे महादेव अपनी अपूर्व मुंडमाला बनाने लगे। थई-थई की ताल के साथ हर्ष विभोर डाकिनियां रणभूमि में घूमर लेने लगीं और इस तमाशे को प्रेत मिल कर निहारने लगे। कही पर पिशाच स्वाद ले ले कर रुधिरपान करने लगे तो कई रक्त पीने से पेट भर जाने पर खेलने लगे।

करैं कति आमिख तैं अनुराग, बनावत के मुख मेद बिभाग।
करैं मृदु कीकस जिम्मन केक, अहारत कोशिक ग्रास अनेक॥२९॥

खरे कति घस्मर शुक्रहिं खातु, भये रन दुर्ल्लभ सत्त हि धातु।[१]
रचैं सिव हास नचैं भयकार, जचैं जिय बुंदिय को जयकार॥३०॥

त्रहत्रह तंतिन सिंधुव सद्द, मच्यो रन अंगन यों अवमद्द।
गहक्कहिं चक्खहिं गिद्धनि गोद, बपा लहि मंडत कंक बिनोद।३॥।

निकासत चिल्हनि चंचुन नैन, गहैं हिय सेन गहक्कत गैन।
किलोलहिं स्यार सिवा किलकारि, चखैं पल मंडल मंडल चारि॥३२॥

रणभूमि में कई मांसाहारी प्रेत अपने आहार के प्रति अनुराग दिखाने लगे तो कई इकट्ठी की हुई चर्बी के हिस्से कर आपस में बांटने लगे। युद्ध में मारे गए वीरों की कोमल हड्डियों को अपना आहार बना कर छोटे-छोटे निवालों से उल्लू खाने लगे। कई पेटू खड़े-खड़े मृत वीरों का वीर्य खाने लगे। उन्हें इस युद्ध के मैदान में सातों ही धातु खाने में उपलब्ध होने लगे। महादेव अट्टहास करते हुए भयकारी नृत्य करने लगे और मन ही मन बूंदी की विजय चाहने लगे। तंतु वाद्य यंत्रों पर सिंधु राग बजने लगी और रण भूमि में इस तरह का बड़ा पीड़ाकारी युद्ध मचा। गिद्धनियां मृत वीरों का गूद चखती हुई चहकने लगीं और कंक पक्षी मृतकों की वसा पा कर विनोदरत हुए। कहीं पर चील्ह मृत वीर की आंखें अपनी चोंच से निकालने लगी वहीं मृतक का हृदय ले कर बाज पंक्षी आकाश में उड़ता हुआ प्रसन्नता व्यक्त करने लगा। गीदड़ और सियार हर्षपूर्वक किलोलें करने लगे वहीं मृतक के चारों ओर चक्कर लगाते हुए कुत्ते मांस चखने लगे।

उठी रन अंगन खग्गन अग्नि, लसी अटवी नव ज्यों दव लग्गि।
जरैं गजढालन तालन जूह, जरैं गजसुंडि तमालन जूह॥३३॥

कटे पय कुंभिन तिंदुव तत्त, जरैं गज उन्नत पब्बय जत्त।
बरैं हय बालधि तेजन तंब, लगैं लटियाल कि दर्भ कदंब॥३४॥

सिखा बलि सूरन की तृन गुच्छ मलीमस कास सुडढ्ढिय मुच्छ।
जरैं छगणावलि खेटक जाल, बरैं असिकोस पृथग्विध व्याल॥३५॥

दहैं द्रु मृदुच्छद छल्लि दुकूल, किरैं चिनगी सुहि पीन कुकूल।
जरैं तंहं तोमर ते त्वचिसार, तचैं गवलावलि रूप तुखार॥३६॥

रणभूमि में दोनों सेनाओं की तलवारों के टकराने से झरे अग्निकणों से ऐसी आग लगी मानो वन में दावानल का प्रकोप हुआ हो। इस पसरती अग्नि में हाथियों की पीठ पर लगे झंडे यों जलने लगे जैसे पर्वत पर ताल वृक्ष जल

---

१. घस्मरों (बहुत खाने वालों) को युद्ध में सातों ही दुर्लभ धातुएं उपलब्ध हुई। वैद्यक के मत से ये सातों धातुएं हैं। 'स्तन्यं रजस्व जारीणा काले भवति गच्छति। स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथौवोजश्च सप्तमाम्॥ शुद्ध मांस भवः स्नेहो यः सा संकीर्व्यते वसा॥' -सम्पादक

रहे हों। कहीं पर कटी हुई हाथियों की सूंडें जलती है मानो तमाल वृक्षों का झुण्ड जलने लगा हो। कहीं पर हाथियों के कटे हुए पाँव यों जलने लगे जैसे तेंदू के वृक्ष 'तड़-तड़' की ध्वनि के साथ जलने लगे हों। कहीं पर ऊंचे हाथी यों जलने लगे जैसे पर्वत पर आग लगी हो। कहीं पर घोड़ों की पूंछें यों जलने लगी जैसे बाँसों का गुच्छा जल रहा हो। कहीं पर घोड़ों की अयालें यों जल उठीं जैसे डाभ नामक घास का कूंचा (गुच्छ) जल रहा हो। कहीं पर मृत वीरों के सिर की शिखायें यों सुलग उठीं मानो घास के छोटे गट्ठर सुलग रहे हों। मृत वीरों की दाढी-मूंछें यों जलने लगीं जैसे कांस (घास विशेष) का कचरा जल रहा हो। रणभूमि में लगी इस आग की चपेट में आ कर ढालों की पंक्तियाँ यों धूं-धूं जलने लगी जैसे कंडों का ढेर जलने लगा हो। वहीं तलवार की म्यानें यों जलने लगी मानो तरह-तरह के सर्प जल रहे हों। कहीं पर वीरों के वस्त्रों ने आग यों पकड़ी जैसे भोजपत्र वृक्ष की छाल ने आग पकड़ी हो और पवन से दूर-दूर तक अग्निकण गिरने से आग यों लगने लगी जैसे कुकनू पंछी के गान पर लगती है (एक कल्पित पक्षी जिसके लिए प्रसिद्ध है कि वह जब गाता है तो आग उसके गले से निकलती है और वह उसी में भस्म हो जाता है-संपादक)। रणभूमि में लगी इस अग्नि की जद में आ कर भाले यों सुलग उठे जैसे बाँस जल रहे हों और जंगल में लगी आग में जैसे (नीलगायें) रोझ जलते हैं उस तरह रणभूमि में घोड़े जलने लगे।

प्रजारिय भूपति यागति अग्गि, झिली रनरंग मिली झगमग्गि।
अपूरब फैलिय ज्वाल अलात, बचैं तृन के जल के जरि जात ॥३७॥

अनुरुहिं आतुर अक्खिय अक्क, चढे रन बुंदिय जैपुर चक्क।
तुरंगम रुक्कहु खंचि खलीन, कुतूहल पिक्खहु बीर बलीन ॥३८॥

दिसा बिदिसान कृसानु दिखांहिं, मच्यों दव ग्रीखम भद्दव मांहिं।
निहारहु होत अनीकन नास, तपैं भुव तक्कहु चक्क तमास ॥३९॥

राजा उम्मेदसिंह ने रणभूमि में अपनी तलवारों से ऐसी आग बरसाई कि वह रणरंग में भिलकर झगमगा उठी। ऐसी अपूर्व अग्नि की ज्वालाएं और अंगारे फैले कि इसमें वे लोग बचे जिन्होने अपने मुँह में तृण उठाया और जल वाले अर्थात पराक्रम वाले जल मरे। यह देख कर आतुर सूर्य ने अपने सारथी अनुरु से कहा कि बूंदी के योद्धा कछवाहों की सेना पर टूट कर पड़े हैं अच्छा

दृश्य है, इसलिए तू अपने रथ के घोड़ों की लगाम खींच कर उन्हें रोक, ऐसे बलवान वीरों का तमाशा देखने को और कहाँ मिलेगा? देख, सभी दिशाओं में अग्नि नजर आ रही है। अदभुत यहां यह है कि भाद्रपद माह में ग्रीष्म ऋतु जैसी आग पसरती लग रही हैं तू भी तनिक देख! सेनाओं का नाश हो रहा है पर इस आग से तपी रणभूमि पर युद्ध का तमाशा खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा।

प्रतिलोमाऽनुलोमार्द्धम्

(प्रतिलोम अनुलोमार्द्धम छन्द में विशिष्ट बात यह है कि इसमें आधे छन्द को सीधा पढ कर उसी को उल्टा पढने से पूर्ण छन्द हो जाता है और साथ ही उसका अर्थ बदल जाता है।)

तुदे नर रीस रवीसम लाल, तुले हय जेम हले सु कराल।
लराक सु लेह मजे यह लेतु, ललाम स वीर सरीरन देतु॥४०॥

शत्रु का पीछा करने को सन्नद्ध हो कर वे क्रोध में सूर्य की तरह लाल हुए अर्थात तमतमाये और वे योद्धा जिस कराल ढंग से अपने घोड़े रणभूमि में बढाने पर तुले थे उनके घोड़े भी उसी विकराल ढंग से आगे बढे। अब छंद की पंक्ति को उल्टा पढने पर अर्थ हुआ वह यह है-सम्पादक वे लड़ाके स्वाद ले कर इसका आनंद लेने पर तुले हैं और इसके लिए (एवजाने में) वे अपने सुन्दर शरीर अर्पित करते हैं।

अस्मत्सजातीयेष्वेव प्रसिद्धं गीतनामकं मरुदेशीयं छंदोनाम्ना त्रिकूटबद्धम्

ग्रंथकर्ता सूर्यमल्ल का कथन है कि हमारी (चारण) जाति में त्रिकूटबंध नामक गीत जो कि मारवाड़ी डिंगल का विशिष्ट गीत है, बहुत लोकप्रिय है वह इस प्रकार का होता है-

उम्मेद भूपति अंग मैं, रसबीर संकुलि रंग मैं,
बरबीर बारह सै प्रबीरन चक्क लै चहुवान।

जयनैर सम्मुह जोर सों, भिलि खग्ग झारीय भोर सों,
बर गुमर असिबर समर,
लगि झर कुनर छरतर हुनर
हत कर जबर खर सर
गजर जय थर अडर भर

भिलि कचरघन कर अमरपुर
मचि दवर दरबर उदर भर
मिलि मुखर पलचर खचर
चय अर खपर खरभर पहर
इक बजि टकर धरपर घोर इम घमसान॥

बूंदी का चहुवान राजा उम्मेदसिंह अपनी काया में वीर रस का संचार कर युद्ध में बारह सौ योद्धाओं की सेना लेकर चला।

जयपुर से आई कछवाहों की सेना का मुकाबला करने जा भिड़ा और प्रात:काल से जोरदार तलवार बजाई। बूंदी के वीरों ने अपनी तलवार चलाने की श्रेष्ठता के अभिमान से युद्ध में प्रहारों की झड़ी लगा कर दुष्ट मनुष्यों (शत्रुओं) के अत्यन्त छल को अपने इल्म से मिटाया। तीखे तीरों के निरंतर प्रहारों से मन में विजय का दर्प धारण करते हुए निर्भय योद्धा भिड़े। उन्होंने अमरपुरा के युद्ध में शत्रुओं का कचरघांण (कचर कूट) करते हुए शत्रुपक्ष में दड़बड़ (शीघ्र दौड़) मचाई जिससे आकाशचारी मांसाहारी पक्षियों (गिद्धनियों) ने मुखर हो उदर भर आहार पाया और देवी के खप्परों की खड़भड़ (आवाज) मची। एक प्रहर तक शत्रु से टक्कर लेते हुए हुई इस भिड़ंत में रणभूमि में घोरतम घमासान युद्ध मचाया।

कर बाम तोक प्रयाग व्है, अमरेस दक्खिन भाग व्है
मरजाद पित्थल अग्ग मंडिय बीच अप्प बाजि।

बिरुदावलि बंदिन बित्थरे, अतिबेग सम्मुह उप्परे,
बजि कटक दमनक रचक धमचक
अटक दक तक मुलक अकबक अछक
छक्क भट ललक अतिधक तुपक
चलि हक सलक इकटक गरक
रंग झक फरक बहरक चमक
खुर सुचि झमक चकमक किलक
डक लगि अजक चउ चक पुलक
सक कर घमक पसरक अरक रज ढक आजि॥

राजा उम्मेदसिंह की बाईं ओर तोकसिंह और प्रयागसिंह ने मोर्चा

संभाला और दाईं ओर अमरसिंह राठौड़ ने युद्ध को कमर कसी। वहीं मरजादसिंह और पृथ्वीसिंह जैसे मारक योद्धाओं ने हरावल संभाली।

इन सभी के मध्य राजा ने स्वयं का घोड़ा रखा अर्थात स्वंय मध्यस्थान पर रह कर लड़ा। भाटों ने बिरुदावली प्रसारित की और ये योद्धा पूरे वेग के साथ शत्रु के सम्मुख बढ़े। शत्रु सेना का दमन करने वाले युद्ध की इस टक्कर का आंतक अटक नदी के जल पर्यंत फैला अर्थात् बादशाही सीमा वाले पूरे मुल्क में घबराहट फैल गई। जिनके घाव नहीं लगे वे सामने वाले को ललकारते हुए घाव देने लगे। घाव खाने लगे। वीरों ने क्रोधित हो रणभूमि में एक साथ बन्दूकें चलाई और गोलियों के निरन्तर प्रहार किये। गहरे रंग की ध्वजाएं फहरने लगीं। चकमक पत्थर से अग्नि निकले उस तरह घोड़ों के खुरों के प्रहारों से अग्निकण चमकने लगे। रणभूमि में विद्यमान डाकिनियों के हर्ष के कारण उनके वाद्य अथक रूप से लगातार बज उठे। साकिनियों में भी चारों ओर पुलक भर गई। घोड़ों के पाखर बज उठे। उनके पाँवो से उड़ी रणभूमि की धूल से सूर्य ढक गया।

अतिमोद जुग्गिनि उल्लसैं, हर देवि नारद त्यों हसैं
डर देत लेत डकार डाकिनि प्रेत हेत प्रसार।

कमनैत तीरन तानिकैं, पखरैत बेधत पानिकैं,
बुधतनय हित जय प्रणय
नय बय छपय रनसुम अभय
अतिसय विषय चय भुव बलय
विसमय प्रलय मय भय समय
निरदय उदय रवि नय निलय
अतिरय अजय खयकर अखय
जय अप अभय सय पय हृदय
अपचय कटय स्मय निचय हय गय मार हीन सुमार॥

अत्यन्त मोदपूर्वक योगिनियां हुलसने लगीं महादेव, रणचंडी कालिका और नारद अट्टहास करने लगे। डाकिनियाँ भयकारी डकारें लेती हुई प्रेतों से स्नेह का व्यवहार बढाने लगीं।

धनुर्धारी योद्धाओं ने बाणों का संधान किया और शीघ्र ही वे पाखर

पहने घोड़ों को अपने पराक्रम से बेधने लगे। राजा बुधसिंह के पुत्र उम्मेदसिह को उसके साथी वीर विजय दिलवाने के नीतियुक्त वचन कह कर दिलाशा देने लगे। वे युद्ध रूपी पुष्प के भ्रमर एकदम निडर हो सामने वाले कई देशों से समूह बना कर आए शत्रुओं को भूमंडल पर प्रलयंकारी निर्दय समय का संदेह करवाते हुए सूर्य की तरह उदय हुए। वे नीति के घर बड़े बेगवान वीर जो पराजय का नाश करने वाले थे। ऐसे वीरों ने अक्षय विजय के शुभ भाग्य से उत्साहित हो शत्रु समूह के हाथ, पाँव, हृदय आदि अंगों को काटना शुरू कर रणभूमि में मृतकों, घायलों का ढेर लगा दिया। इन शत्रुओं के साथ राजा उम्मेदसिंह के वीर योद्धाओं ने हाथी-घोड़ों के समूह तो बेशूमार संख्या में मार गिराये।

तुरगी रचैं कति तेहरी, किमु अद्रि लंघित केहरी,
फटि मत्थ भेजन जुत्थ नूतन कि नवनीत।

छिकि टोप बाहुल उच्छटैं, कटिकालि कंकट की कटैं,
भट गरट मिलि थट पुरट
छट पट कुघट घट परि अवट
कट-कट कपट तट अति झपट
रन अट उबट बट रट बिकट
रहचट पलट नट गति उलट
झटपट उछट खगझट निपट
अघ दट दपट दिय भिलि निकट
प्रतिभट रपट मचि रन प्रकट रजवट जुरत चाहत जीत॥४१॥

उनके घोड़े एक साथ तीन-तीन छंलागें भरते आगे बढने लगे मानो कोई केसरीसिंह पर्वत को लांघता छंलागें भर रहा हो। इतनी त्वरा से बढते वीरों की तलवारों के प्रहारों से शत्रुओं के मस्तक फट कर सफेद रंग का भेजा यों फैलने लगा मानो ताजा मक्खन पसरा हुआ हो।

रणभूमि में जगह-जगह शिरस्त्राण कटने लगे। शत्रओं के बाहुल टूट कर उछलने लगे। कवच की कड़ियों की पंक्तियाँ कट कर गिरने लगीं। सुनहरी कांति वाले (केसरिया) वस्त्र ढेरों कटे-पिटे मृतकों के शरीर पर अस्त-व्यस्त से पड़े नजर आने लगे। हाथियों के कटे कुंभस्थलों के गिरने से

रणभूमि के गड्ढे भर गए। कई शत्रु कपट से दूर भागने हेतु रणभूमि में मार्ग और बिना मार्ग के जिधर जगह मिली उधर बढ़ने लगे। प्राण बचाने की इस विकट दौड़ में वे कभी नट की तरह कलाबाजियाँ खाते हुए तो कभी कूदते-फांदते वहाँ से झटपट जाने लगे। उधर राजा उम्मेदसिंह के वीर योद्धा अपनी तलवार से पाप को दबाने वाली दपट (अर्थात प्रहार) करते आगे बढे। उन्होंने शीघ्र ही शत्रुओं को निकट लिया और झपट कर युद्ध में रजवट (वीरता) का प्रदर्शन करते हुए उनसे विजय पाने को जा भिड़े।

अन्त्यानुप्रासिनी रोला

बुंदी जैपुर उलटि बीर आये ति अखारैं।
कायक सिंधू तार ग्राम[१] आलाप उचारैं।
भुम्मि मचक्कैं कटक भार फन नाग पसारैं।
ऐरावत तैं सुप्रतीक लग चीह चिकारैं ॥४२ ॥

दहकि दहकि दौलेय राज किरिराज पुकारैं।
लवणोदक सों सुद्धनीर लग बढन बिथारैं।
बल सूदन सों बामदेव लग अजक उसारैं।
बड़वामुख सों ब्रह्मलोक लग सोक सम्हारैं ॥४३ ॥

बूंदी पर चढ़ाई करने की इच्छा से जयपुर वाली सेना के वीर लड़ने आए। रण गायकों ने सिंधु रागिनी के ग्राम (स्वरों का समूह) में ऊंचे सुरों में आलाप लिए। इस सेना के भार से पृथ्वी लचकने लगी और आगे शेषनाग के फणों पर जोर पड़ा। ऐरावत हाथी (पूर्व दिशा के दिग्गज) से लगा कर सुप्रतीक हाथी तक आठों दिग्गज (ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक) चिंघाड़ उठे। भार की पीड़ा से संतप्त हो कर कमठ (कच्छप) और वाराह चीख पुकार करने लगे। लवणोद से लगाकर शुद्ध जल के समुद्र शुद्धोद तक सातों समुद्र (लवणोद, क्षीरोद, दधिमंडोद, घृतोद, इक्षुरसोद, स्वादुओद, (शुद्धोद),) मर्यादा छोड़ कर उफन पड़े। पूर्व

टिंप्पणी : संगीत के स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं ये तीन प्रकार के हैं यथा-
षड्जग्रामों भवेदादो मध्यमग्राम एव च।
गान्धारग्राम इत्येतत् ग्राम त्रय मुदाहतम्॥ -सम्पादक

दिशा के स्वामी (इन्द्र) से लगा कर ईशान दिशा के स्वामी (शिव) तक आठों दिशाओं के स्वामी (इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, कुबेर और शिव) निरंतर निसांस डालने लगे। पाताल लोक से लगा कर ब्रह्मलोक तक सर्वत्र दुःख फैल गया।

इम हड्डे कूरम अभंग बल जंग बिथारैं।
बज्जैं आयुध निसित बाढ अरि गाढ उतारैं।
फूटैं सिर तरबूज फांक कटि लांक कुढारैं।
हत्थिन मत्थै चन्द्रहास दुव हत्थन झारैं॥४४॥
सुंडादंडन खंड खेरि अहि रूप उतारैं।
के उद्धत संग्रहि कलाप हठि दंत निकारैं।
सेकिम मालाकार सोभ अति जोर उपारैं।
आधोरन घुम्मैं अचेत कपि ज्यों द्रुम कारैं॥४५॥

इस तरह हाड़ा और कछवाहों के अभंग वीरों वाली सेनाओं ने बलपूर्वक युद्ध रचाया। तीखी धार वाले शस्त्रों के प्रहार हुए। शत्रुओं का दर्प पानी-पानी हुआ। तरबूज की फँाकों की तरह वीरों के सिर फटे। हाथियों के कुंभस्थलों पर दोनों हाथों के बल से तलवारें चलीं। इन प्रहारों से हाथियों की सूंडें कट कर खंड-खंड बिखरी मानो साँप पड़े हों। कई उद्धत वीरों ने उछल कर हाथियों के कलावे पकड़े और हठपूर्वक खींच कर उनके दाँत निकाले मानो कोई माली ख़ेत से सफेद-सफेद रंग की मूलियां उखाड़ रहा हो। महावत चक्कर खा कर अचेत हो भूमि पर यों गिरे जैसे किसी काले रंग के जंगी पेड़ से बंदर गिर रहे हों।

कुंभन तैं गजभद्र केक मुत्ताहल ढारैं।
मानों मेचक बारिबाह डिगि सीकर डारैं।
चुसट्ठी मारैं मलंग बावन बबकारैं।
हाक हकारैं केक जानि गज मार गलारैं॥४६॥
फुट्टैं बकतर सिंगिफेट बपु बेधि बिहारैं।
टकरन तैं नागोद टोप बल खगन बिदारैं।

रुक्के पाय रकाब जोर सादी सिसकारैं।
सच्चे कच्चे लखन सूर अति परख उघारैं॥४७॥

रणभूमि में कहीं वीर भद्र जाति के हाथियों के कुंभस्थल काट कर मोती गिरा रहे हैं। यह ऐसा लगता है जैसे काले मेघ जलकण गिरा रहे हो। रणभूमि में कहीं पर मृतक वीरों के शव देखकर चोंसठ योगिनियां उछल-कूद करने लगी हैं तो कहीं बावन भैरव वीर अपने मुँह से 'बबकार' की ध्वनि निकाल रहे हैं। कहीं पर वीर अपने को गज मारने वाले गिनते हुए गर्जना कर रहे हैं। कहीं पर तलवार की टक्कर (प्रहार) से नागोद (पेट के कवच) टूटने लगे तो कहीं टोप (शिरस्त्राण) विदीर्ण होने लगे। कहीं किसी के पाँव रकाब में अटके हैं और वह सवार सिसक रहा है। सच्चे और कच्चे वीरों की परख युद्ध में ऐसे लक्षणों से होती है।

कर तुट्टैं जैसै पृदाकु फन पंच उफारैं।
अंत्रावलि उरझैं कटार जनु बड़िस बिसारैं।
छुरिका छत्तिन छेदि छेदि मस्कर छबि मारैं।
..॥४८॥

रणभूमि में कहीं किसी वीर का अंगुलियों सहित हाथ कटा हुआ यों खड़ा है जैसे अपने पाँच फणों वाले साँप ने फण उठा रखा हो। कहीं पर कटार से उलझी हुई आँत यों बाहर आ रही है जैसे किसी काँटे में फँसी मछली आ रही हो। कहीं पर छुरियां किसी वीर की छाती को यों छेद रही हैं जैसे बाँसुरी बनाने को बाँस में छेद किये गए हों।

बुंदी जैपुर लाज बाद परि उभय प्रहारैं।
अमरपुरे की सीम अंत नर कुणप निहारैं।
लोहित लंबी छछक छूटि प्रेतन जक पारैं।
सायक भय दायक दुसार घायक घट सारैं॥४९॥

सरिता भो वह संपराय जल सोंनित धारैं।
बुंदी जैपुर तट बिलंद घट बिकट किनारैं।
फुल्लि कुसेसय हृदय फांक छबि अतुल अपारैं।
उतपल गन लोचन अनूप हुव बिकच हजारैं॥५०॥

रणभूमि में बूंदी और जयपुर वालों ने अर्थात् दोनों पक्षों ने लज्जित होने के विवाद से उबरने को आपस में प्रहार किये इससे अमरपुरा गाँव की पूरी सीमा में मनुष्यों के शव नजर आने लगे। रणभूमि में वीरों के लगे घावों से रक्त की फुहारें फूट पड़ी जिन्हें देख कर प्रेतों को चैन आया। भय देने वाले तीर दुधारे घाव देने वाले हो कर वीरों के शरीर बेधने लगे। यह युद्ध नदी रूप हो गया (यहाँ ग्रंथकार नदी के रूपक में वर्णन करते हुए बता रहा है कि) जिसमें रुधिर रूपी जल धारा बह रही हो। इस नदी के दोनों विंकट तटों पर बूंदी और जयपुर नामक घाट बने हों। रणभूमि में कहीं पड़ी वीरों के कटे हुए हृदय की फाँके शतपत्र कमल की छवि देने लगीं। कहीं पर वीरों के निकल कर पड़े हुए नेत्र अनुपम फूले हुए नदी के नीलकमलों की तरह नजर आने लगे।

इंदिदिर उप्पर अनेक गुटिका गुंजारै।
गजन दंत कटि कटि गिरैं सु करहाट कितारैं।
तंबेरम कुंभीर तुल्ल्य बलवान बिहारैं।
बाजी गन अवहार बेस मिलि तास मझारैं।।५१।।
सुंडि पतित अंकुस समेत बनि बड़िस बिसारैं।
जिरह गिरी आनाय जानि पल कर्द्दम पारैं।
कटि कटि उड्डुत कालखंज सुहि कमठ सिधारैं।
बुक्का चय दद्दुर बिड़ंबि बहु फदक बिथारैं।।५२।।

रणभूमि में ऊपर से शब्द करती हुई गोलियां यों निकलने लगीं जैसे ये गोलियां न हो कर कमल पुष्पों पर गुँजायमान भ्रमरों की पंक्तियां हों। रणभूमि में हाथियों के जो दाँत कट-कट कर गिरने लगे वे मानो इन कमल पुष्पों की सफेदजड़ें हों। रणभूमि में जितने हाथी हैं वे मानो इस नदी के बलवान मगरमच्छ हों और जो घोड़े हैं वे मानो इस नदी में विहार करनेवाले घडियाल हों। यहाँ कटी हुई हाथी की जो सूंडें पड़ी हैं वे मानो अग्रभाग से मुड़े हुए मछली पकड़ने के कांटों को भूलाने वाली है (अर्थात उनके जैसी है)। युद्ध क्षेत्र में पड़े हुए कवच (जिरह) मानों मछली पकड़ने के जाल हो और बिखरा हुआ मांस पड़ा है वह इस नदी का कीचड़ हो। टुकड़े-टुकड़े हो उछल कर वीरों के जो कलेजे उछल रहे है वे मानो इस नदी के जल में तैरने वाले कछुए हों। रणभूमि में पड़ा गुर्दो का समूह है वह मानो मेंढकों का झुण्ड हो जो फुदकने का भ्रम पैदा कर रहा हो।

अंत्रावलि अलगई रूप संचय संचारैं।
जलनीली निभ सिचय जाल इत तिरत्त अपारैं।
जत्थ जलोका जूहकी सु धमनी छबि धारैं।
गंडक संचय अंगुलीन बनि चपल बिहारैं॥५३॥
हत्थ निहाका निकर होय करि चलत कितारैं।
कटे तिलक बिचरैं कुलीर श्रुति सीप सुढारैं।
संख नख रु संबूक संख कीकस अनुकारैं।
अत्थि चूर सिकता अनूप नर सूर निहारैं॥५४॥

रणभूमि में बिखरी हुई वीरों की अंत्रावलियाँ ऐसी लगती हैं मानो वे इस युद्ध रूपी नदी के जलसर्प हों जो रेंग रहे हों। जगह-जगह जो वस्त्र बिखरे पड़े है वह मानो इस नदी की तैरती हुई शेवाल हो। मरे पड़े वीरों की तनी हुई धमनियां इस युद्ध रूपी नदी की जोंकें हों। कटी हुई अंगुलियां जो बिखरी पड़ी है वे मानों तैरती हुई छोटी-छोटी मछलियां हों। कटे हुए हाथ रणभूमि में जो पड़े हैं वे इस युद्ध रूपी नदी की गोहें हों। कटी-फटी वीरों की तिल्लियां यों फुदक रही है मानो नदी के केंकड़े चल रहे हों। वीरों के कटे हुए कान जो बिखरे पड़े हैं वे मानो इस नदी के तट पर पड़ी सीपियाँ हों। रणभूमि में बिखरी पड़ी हड्डियां और नाखून हैं वे इस नदी तट के बड़े और छोटे शंख हों। हड्डियों का जो चूरा रणभूमि पर फैला है उसे वीर योद्धा यहां की अनुपम रेत समझते हैं (अर्थात् वो इस युद्ध रूपी नदी के तट की बेकलू (रेत) है)।

आवरणक आबर्त्त रूप अटि चक्र उघारैं।
धूम लहरि उठ्ठैं अनेक अति बात इसारैं।
कुंभ करी के चक्रवाक ध्रुव पीतन धारैं।
छेदी गिरत हयच्छटा सु सारस संचारैं॥५५॥
चामर बनि चक्रांग रूप बक टोप बिहारैं।
घन कारंडव गजन घंट गिरि गिरि गुंजारै।
उच्चूल सु आटी कपाल मग्गू किलकारैं।
गज अंगुलि कटि कटि गिरी सु सिखरी बसुढारैं॥५६॥

रणभूमि में जो पड़ी गोल-गोल ढालें हैं वे इस युद्ध रूपी नदी के रुधिर रूपी जल में गोलाकार पड़ने वाले भंवर हैं। यहाँ जो धुएँ की पर्तें उठ रही हैं वे मानो इस नदी में पवन के जोर से उठने वाली लहरें हैं। हड़ताल से रंगे हाथियों के कटे हुए कुंभस्थल जो हैं वे मानो पीले रंग के चक्रवाक हों। इस रणभूमि में जो कटी हुई घोड़ों की गर्दनें हैं वे हिलती हुई ऐसी लग रही हैं मानो वे इस युद्ध रूपी नदी के सारस पक्षी हों। घोड़ों के पूंछ इस नदी के हंस और गिरे हुए शिरस्त्राण बुगलों की पंक्तियाँ लगती हैं। रणभूमि में होने वाली हाथियों के गले में बंधे घंटों के गिरने की जो आवाज है वह मानो इस नदी की बतखों के बोल हों। ऊंची-ऊंची फहरने वाली ध्वजाओं की फड़फड़ाहट मानो इस नदी के आटी (आड़) पक्षियों की आवाज हो और कटे हुए कपालों का कूजना ऐसा है मानो इस युद्ध रूपी नदी के जलमुर्गे बोल रहे हों। हाथियों के पाँवों की अंगुलियाँ जो कट कर बिखरी हैं वे मानो केंकड़े के डंक हैं।

कातर बीरण तंब केक कढि लग्गि किनारैं।
शृंगाटक करसूक संघ बिच देत बिहारैं।
ऊरु पतित सिसुमार आभ गल उद्र अपारैं।
घुंटक घन सालूक सोभ धर पातित धारैं॥५७॥

निडर पराक्रम पृथुल नाव नय मंग निहारैं।
लंबे केतन बरदवान पवमान प्रसारैं।
प्यारे दुल्लभ प्रान रूप आतर कर डारैं।
बीर नियामक रस बिसेस सुहि पार उतारैं॥५८॥

रणभूमि में भिड़ंत से बच कर किनारे हुए कायर हैं मानो इस युद्ध रूपी नदी के किनारे उगे हुए काँस (घास विशेष) के तृण पड़े हुए हों। कटे हुए नखों का समूह है वह जल में उगे हुए सिंघाड़ों की शोभा दे रहा है। रणभूमि में कटी हुई वीरों की जंघाएं है वे मानो इस नदी के सूंस (मगर विशेष) हैं और कटे हुए गले जैसे जलमानस (जलजंतु विशेष) हों। रणभूमि में वीरों के कटे पड़े घुटने हैं वे मानो इसके पानी में उगे कमलों के मूल हों। रणभूमि में प्रदर्शित निर्भय पराक्रम इस युद्ध रूपी नदी के तैरने

की बड़ी नाव है और रणनीति है वही इस नाव का सिर है। रणभूमि में लड़ती सेनाओं की ऊंची ध्वजाओं के जो ध्वजदंड हैं वे इस नाव के मस्तूल हैं जिन्हें पवन फैलाता है। वीर जो अपने अत्यन्त प्यारे प्राण यहाँ दे रहे हैं वे मानो इस नदी को पार करने का महसूल (किराया) अदा कर रहे हों। रणभूमि में प्रदर्शित वीर रस ही इस नाव का केवट है जो पार लगाता है।

उठ्ठैं घायल लपन झग्ग बुदबुद अनुकारैं।[१]
मज्जा मेद अनेक ओघ डिंडीर दिकारैं।
ऐसी दुस्तर आपगा सु हुव स्रोत हजारैं।
बुंदी जैपुर उभय बीर तिहिं तिरन बिचारैं।।५९।।

रणभूमि में पड़े घायलों के मुख पर जो झाग आ रहे हैं वे मानो इस नदी में उठने वाले बुदबुदे हों जो झागों का अनुसरण कर रहे हों। रणभूमि में पसरी मज्जा, मींजी, (चरबी का समूह) है वह मानो इस नदी के फेन (झाग) हों। ऐसी युद्ध रूपी दुस्तर नदी की हजारों धाराएं हैं जिन्हें तैर कर पार करने का बूंदी और जयपुर के वीरों ने विचार किया।

दोहा

ऐसी दुस्तर आपगा, बढे तिरन बर बीर।
इत उतके आहव अडर, धाराधर कर धीर।।६०।।

रणभूमि में ऐसे युद्ध की भिड़ंत रूपी दुस्तर नदी को तैर कर पार करने को वीर बढ़े। दोनों ओर के निर्भय वीरों ने इसके लिए धैर्य के साथ तलवार रूपी पतवारें हाथ में उठाईं।

षट्पात्

इत पित्थल चालुक्य असह कूरम प्रताप उत,
इत कबंध अमरेस उत सु जद्दव दलेल द्रुत।
इत प्रयाग चहुवान सुरत उत कुम्म सुमंतह,
इत मरजाद असंक उत सु कूरम जसवंतह।
इत तोक बिजय कछवाह उत इत कुम्म अजीत दुव।
इत देव हड्ड हम्मीर उत हरखि कुम्म हमगीर हुव।।६१।।

टिप्पणी : १. क्रिया के बाद विशेषण दिया जाए तो उसको 'समाप्रपुनरात' दोष कहते हैं परन्तु क्रिया के बाद यदि अनेक विशेषण व कई उपमाएँ दी जाएँ तो यह दोष मिट जाता है। यहाँ भी वही जाना जाए-सम्पादक

राजा उम्मेदसिंह की ओर से चालुक्य पृथ्वीसिंह जैसा वीर था तो सामने जयपुर की सेना का असह्य योद्धा कछवाहा प्रतापसिंह था। इधर से राठौड़ अमरसिंह तैनात था तो सामने यादव दलेलसिंह अड़ा था। इधर यदि प्रयागसिंह चहुवान युद्ध को सन्नद्ध था तो उधर श्रेष्ठ बुद्धिवाला कछवाहा सूरतसिंह मुकाबले में खड़ा था। इधर से यदि निडर मरजादसिंह तैनात था तो उसके सम्मुख कछवाहा जसवंतसिंह मौजूद था। इधर बूंदी के पक्ष वाला वीर तोकसिंह विद्यमान था तो वहीं उसके सामने कछवाहा विजयसिंह और अजीत सिंह दोनों सन्नद्ध थे। इधर से हाड़ा देवसिंह हर्ष के साथ युद्ध में संलग्न था तो उसका साथ देने को कछवाहा हम्मीरसिंह तत्पर था।

दोहा

हड्डु भवानीसिंह इत, उत माधव कछवाह।
इत सगताउत अचल उत, संकर कुम्म सिपाह॥६२॥
च्यारि अमर रठ्ठोर सुत, अब तिनके अभिधान।
इत भैरव अंगद अचल, उत कछवाह अमान॥६३॥
इत कबंध नवलेस उत, भट कूरम भूपाल।
इत सन मान कबंध उत, अर्ज्जुन कुम्म अचाल॥६४॥
अडर सिवाईसिंह इत, रनपंडित रठ्ठोर।
अभयसिंह कछवाह उत, मिले उभय भट मोर॥६५॥
इत सु भट्ट बुंदीस को, जुद्ध निपुन जमराम।
उदयसिंह परमार उत, कुपित भिर्‌यो जय काम॥६६॥
उभय उभय इत्यादि जुरि, अनी भ्रमर उमराव।
किन्नों रन रविमल्ल कवि, बरनैं बिरूद बढाव॥६७॥

इधर हाड़ा वीर भवानीसिंह था तो सामने वाले पक्ष का कछवाहा माधवसिंह! इधर शक्तावत अचलसिंह तैनात था तो मुकाबले में कछवाहा शंकरसिंह जो जयपुर की सेना का वीर सिपाही था। इधर राठौड़ अमरसिंह के चारों पुत्र जिनके नाम इस प्रकार थे वे तैनात थे। इनमें भैरवसिंह राठौड़ जो युद्ध में अंगद की तरह अटल रहने वाला था इधर था तो उसका सामना करने को अमानसिंह कछवाहा तत्पर था। इधर अमरसिंह का दूसरा पुत्र

नवलसिंह राठौड़ था तो उसके सामने कछवाहा भूपालसिंह था। इधर से राठौड़ मानसिंह बढ़ा तो सामना करने को अचल कछवाहा अर्जुनसिंह मौजूद था। अमरसिंह का चौथा पुत्र निर्भय राठौड़ वीर सवाईसिंह इधर का प्रतिभागी था जो रणविद्या में चतुर था तो उधर से कछवाहा अभयसिंह उसका मुकाबले को सन्नद्ध था जो सवाईसिंह के टक्कर का योद्धा था। इनके अतिरिक्त इधर बूंदी के राजा का युद्धविद्या में निपुण वीर जगराम तैनात था तो उससे कुपित हो कर भिड़ने को उद्यत उधर परमार उदयसिंह था। इस तरह सेना रूपी पुष्प के भ्रमर दोनों ओर के सामन्त दो-दो का जोड़ा सा बनाते हुए युद्ध को तत्पर रणभूमि में आ डटे और ऐसे वीरों ने अपनी स्तुति से बढ़ कर युद्ध किया। मैं (कवि सूर्यमल्ल) अब ऐसे वीरों के युद्ध कौशल का वर्णन करता हूँ।

पज्झटिका

चालुक बर पित्थल जंग चाह, नाथाउत पुर निम्मान नाह।
पैंसठि पदाति सादी पचीस, सचि चलिय कुम्म परताप सीस ॥६८॥

उततैं प्रताप हय सत उपेत, खिजि आयो सम्मुह बीर खेत।
पित्थल उर मारिय बान पंच, रन बीर यहहु संक्यो न रंच ॥६९॥

मारक सिर झारिय मंडलग्ग, कटि टोप कछुक सिर खगिय खग्ग।
तस सुभट इहां इक वार किन्न, कर सव्य सांगद सु करिय भिन्न ॥७०॥

दै जात चलिय पित्थल कृपान, सिर भिन्न होय अरि भुव सयान।
पुनि हनि प्रताप के सुभट सत्त, आयो उडाय हय इत उमत्त ॥७१॥

निम्माण नगर का स्वामी नाथावत चालुक्य पृथ्वीसिंह रणोत्साह से भरा रणभूमि में बढ़ा। इस समय उसके साथ पैंसठ पैदल सैनिक और पच्चीस घुड़सवार थे। वह अपने अमले सहित कछवाहा प्रतापसिंह पर धावा बोलने चला। उधर से इसका सामना करने को अपने सौ घुड़सवार यौद्धाओं के साथ कुपित होकर वीर कछवाहा प्रतापसिंह रणभूमि में आ डटा। भिड़ंत के आरम्भ होते ही पाँच तीर पृथ्वीसिंह चालुक्य की छाती पर मारे पर वह इससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। चालुक्य वीर ने अपना घोड़ा बढ़ा कर अपने पर वार करने वाले शत्रु योद्धा के सिर पर अपनी

तलवार के अग्रभाग का भरपूर वार किया जिससे सामने वाले का शिरस्त्राण कट कर तलवार उसके सिर में जा धँसी। सामने वाले यौद्धा ने प्रति प्रहार किया। सांग के इस वार से पृथ्वीसिंह का बायाँ हाथ कट गया। अपने हाथ को गंवा कर चालुक्य की कृपान चली जो सामने वाले का सिर काट गई और वह शत्रु रणभूमि में सो गया। इसके बाद पृथ्वीसिंह अपने घोड़े को बढ़ाता हुआ आगे आया और उसने कछवाहा प्रतापसिंह के सात यौद्धाओं को काट गिराया।

हयखंध तेग झारिय प्रताप, हय गिरत भयो पयचार आप।
हय हीन तिमहि कर सव्य हीन, पुनि हनिय कुम्म भट नव प्रबीन ॥७२ ॥

इहिं बिच प्रताप झारिय कृपान, पित्थल कट्यो सु तिल तिल प्रमान।
सन्नाह लयो नहि प्रथम सूर, पानिप दिखाय तैसोहि पूर ॥७३ ॥

सत्रह अरि तेरह स्वभट सत्थ, सजि इष्टलोक पहुंच्यो समत्थ।
रट्ठोर अमर जद्दव दलेल, खिजि खिजि इत मंड्यो बीर खेल ॥७४ ॥

तेतीस पदग इत कृति तुरंग, उत सत रु सट्ठि अनुक्रम अभंग।
लखि कहिय परस्पर वाह वाह, बाहहु तुम बाहहु नव सिपाह ॥७५ ॥

इसी समय प्रतापसिंह ने चालुक्य के घोड़े के कंधे पर अपनी तलवार मारी। घोड़ा तत्काल रणभूमि में कट कर गिर पड़ा और पृथ्वीसिंह स्वयं पैदल हो गया। ऐसी स्थिति में भी कि जब वह घोड़ाविहीन और एक हाथ खोया हुआ योद्धा था पर तब भी उसने कछवाहा प्रतापसिंह के नौ यौद्धाओं को मार गिराया। इसी बीच प्रतापसिंह ने अपनी कृपान का भरपूर प्रहार किया जिससे पृथ्वीसिंह टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा। उस वीर चालुक्य ने कवच पहनना नहीं स्वीकार किया फिर भी पराक्रम के प्रदर्शन में उन्नीस नहीं रहा। वह समर्थ वीर पृथ्वीसिंह स्वर्ग जाते समय अपने साथ सत्रह शत्रुओं और तेरह अपने योद्धाओं को ले गया। पृथ्वीसिंह के मरने के बाद उधर के पक्ष से राठौड़ अमरसिंह ने यादव दलेलसिंह से मोर्चा लिया। दोनों योद्धा क्रोध से भरे वीरता की बाजी खेलने लगे। इस समय राठौड़ वीर के साथ तैंतीस पैदल और बीस घुड़सवार योद्धा थे। आमना सामना होते ही दोनों दलों ने एक दूजे से तलवार चलाने की मनुहारें की और अच्छे प्रहारों पर वाहवाही भी दी।

भिरि प्रथम रचिय सेलन भजक्क, रमि दाव धाव कावन रचक्क।
इम फिरत बाजि दोउन उडानि, दुव भंड दंडभृत चक्र जानि ॥७६ ॥

ननु कै दिनेस अरु जामिनीस, गरदाय फिरत हाटक गिरीस।
आवर्त्त उदधि जिम दुव जिहाज, बलि किमु कपोत पर उभय बाज ॥७७ ॥

दुव पत्र बातचक्र कि धिरंत कन्या कि उभय फुंदिय फिरंत।
दुव लट्टुव जानि नट सिर दिखाय, इम फिरिय बीर बाजिन उडाय ॥७८ ॥

दोनों दलों ने अपने-अपने घोड़ों को दाँव लगाने हेतु गोल-गोल बढ़ाया और भिड़ंत की शुरूआत भालों के प्रहारों से की। इस तरह दोनों ओर के यौद्धाओं ने गोलाकार चलते अपने-अपने घोड़े बढ़ाये मानो कुम्हार के एक ही चाक पर दो मटके घूम रहे हों अथवा निश्चय ही मानो सूर्य और चन्द्रमा दोनों सुमेरु पर्वत को घेर कर फिर रहे हों। या फिर समुद्र के आवर्त में फंसे दो जहाज चक्राकार घूम रहे हों। या फिर एक ही कबूतर को पकड़ने को दो बाज मंडरा रहे हों। या फिर किसी छोटे चक्रवात में फंसे दो सूखे पत्ते गोल-गोल उड़ रहे हों। या फिर दो कन्याएं अपने हाथ बांधे गोल-गोल फुंदी (नृत्य विशेष) नाच रही हों। या कि थंभे की पटड़ी पर चक्कर लगाते नट के सिर दो गैंदों की तरह घूमते नजर आ रहे हों। दोनों दलों के वीर प्रहार की ताक में अपने घोड़ों को कावे (गोल-गोल) में चलाने लगे। तभी निडर अमरसिंह राठौड़ ने अपना भाला उठाया और पूरे जोर के साथ यादव दलेलसिंह के घोड़े पर दे मारा। घोड़ा बिंध कर गिर पड़ा। तभी दलेलसिंह दूसरे घोड़े पर आरूढ़ हुआ और घोड़े को बढ़ा कर उस सुभट ने राठौड़ अमरसिंह की छाती पर अपने भाले का प्रहार किया।

अमरेस मुक्कि तोमर अभंग, जद्दव हय बेध्यो निडर जंग।
हय गिरत अपर आरुहि दलेल, मारयो कबंध उर सुभर सेल ॥७९।

सहि सेल अमर हनि सत्रु सत्त, मारयो दलेल असिबर उमत्त।
चहवाँहि मारि अग्गैं अगाम, भिंट्यो भटेस सीसोद स्याम ॥८० ॥

दोउन कृपान झारिय दु हत्थ, मुंडमाल मध्य गय उभय मत्थ।
अरि नव पचीस निज भट उपेत, रट्ठोर गयो निर्ज्जर निकेत ॥८१ ॥

इत भट प्रयाग इक्क हि अभंग, सुरतेस उत सु हय सट्ठि संग।
मिलि उभय जंग मंडिय अमान, बदि वाह वाह सिव किय बखान ॥८२ ॥

पटु प्रथम तुपक झारिय प्रयाग, अरि दोय हनिय तिम आखु नाग।
डकराय बाजि पुनि तुपक डारि, कटि हिंतु कालनागिनि निकारि॥८३॥

राठौड़ अमरसिंह अपनी छाती पर भाले का प्रहार झेल कर आगे बढ़ा और शत्रुदल के सात यौद्धाओं को मारते हुए उसने उन्मत्त होकर अपनी तलवार के एक वार से दलेलसिंह को मारा। यादव दलेलसिंह को मार कर राठौड़ वीर आगे बढ़ा और वीर श्रेष्ठ सिसोदिया श्यामसिंह से जा भिड़ा। दोनों वीरों ने एक दूसरे पर अपनी अपनी कृपानें दोनों हाथों से पकड़ कर मारी। परिणामस्वरूप दोनों के मस्तक महादेव की मुंडमाला में जा पहुंचे। वह राठौड़ अमरसिंह जब स्वर्ग गया तब अपने साथ नौ शत्रुओं और पच्चीस अपने योद्धाओं के साथ गया। अब आगे की कमान प्रयागसिंह ने संभाली। वह तो इस ओर से अकेला था पर मुकाबले में सूरतसिंह साठ घुड़सवारों के साथ था। दोनों याद्धाओं ने आपस में भिड़ कर अतुलनीय युद्ध रचा जिसे देखकर महादेव के मुंह से भी "वाह वाह" के शब्द निकले। इस बीच सर्व-प्रथम प्रयागसिंह ने अपनी बन्दूक चलाई जो दो शत्रुओं को ढेर कर गई जिस तरह चूहे को सर्प करता है। घोड़े को लपकाते हुए उसने बंदूक पटकी और खींच कर अपनी कमर से बंधी तलवार निकाली।

सुरतेस निकट पहुंच्यो प्रयाग, फिरि मंडल खेल्यो हेति फाग।
जेजे भट पिल्ले सुरत जत्थ, तेते प्रयाग सब हनिय तत्थ॥८४॥

इम फिरत हड्डु हैवर उताल, जिम अनिल अग्गि तृन बिपिन जाल।
तिय मृगिय सुरत जिम नर तुरंग, इम सुरत हड्डु दब्ब्यो अभंग॥८५॥

आघात खग्ग दैदै अनूप, किय बहुत कुम्म आलक्त कूप।
खट सुभट सूरत पिल्ले खिसाय, पत्ते प्रयाग पर रन रिसाय॥८६॥

अभिमन्यु लख्यो खट रथिन आजि, बिफुख्यो प्रयाग इम दपटि बाजि।
दुव मारि च्यारि घायल गिराय, खट असि प्रहार तिनकेहु खाय॥८७॥

प्रयागसिंह तब तलवार हाथ में ले घोड़े को बढ़ाते हुए सूरतसिंह के समीप गया। वहाँ जाते ही दोनों योद्धा फिर से भिड़ पड़े। प्रयागसिंह ने अपने घोड़े को उसके चारों तरफ चक्कर लगाते हुए प्रहार किये। ऐसा लग

रहा था मानो वह शस्त्रों से फाग खेल रहे हों। इस बीच सूरतसिंह ने अपने जिन जिन योद्धाओं को धावा बोलने भेजा उन सभी को एक-एक कर प्रयागसिंह ने मार गिराया। वह अपने घोड़े को उतावली में (तेज गति से) घूमाता रहा मानो तृणों के वन में अग्नि फिर रही हो। जिस तरह अश्व जाति का पुरुष मृगी जाति की स्त्री को दबा देता है उसी तरह अभंग वीर हाड़ा प्रयागसिंह ने सूरतसिंह को जा दबोचा। अपनी तलवार के अनुपम आघातों से उस कछवाहा को अलता का कुण्ड बना दिया अर्थात घाव देकर उसे रुधिर के रंग से आरक्त कर डाला। इससे लजा कर सूरतसिंह ने अपने छह योद्धा एक साथ उस पर झोंके और वे भी कुपित हो रणभूमि में प्रयागसिंह पर लपके। महाभारत में जिस तरह अकेला अभिमन्यु छः छः महारथियों से भिड़ा था उसी तरह क्रोध में बिफरा हुआ प्रयागसिंह अपने घोड़े को भगाता उनके मध्य गया। जाते ही अपनी तलवार के अचूक प्रहारों से उसने दो शत्रुओं को मार गिराया और चार को घायल कर डाला। इस झड़प में उसके शरीर पर भी शत्रुओं की तलवारों के छह घाव लगे।

सुरतेस सीस हंकिय सजोर, मानहु लखि जिह्मग मत्त मोर।
इक जवन आनि इहिं बिच उमाहि, बेध्यो प्रयाग सित संगि बाहि ॥८८।

इहिं संगि सहित घोटक उडाय, कट्ट्यो सु मिच्छ पुनि पिहुल काय।
यंहं सुरतसिंह किय खग्ग वार, मारयो प्रयाग मृड जानि मार ॥८९ ॥

ढुंढत जिहिं हारे कंक ढेंक, नहिं मिलिय बुत्थि पलचरन नैंक।
अवसिठ्ठ रहिय नहिं लैन अग्गि, लुत्थि सु प्रयाग गय असिन लग्गि ॥९० ॥

हनि पंच च्यारि घायल बिधाय, पत्तो प्रयाग निज्जर निकाय।
मरजाद सु मुहुकम अन्ववाय, सतपंच पदग सादी सजाय ॥९१ ॥

अब वह घायल शेर की तरह सूरतसिंह की ओर घोड़ा बढ़ा कर झपटा मानो किसी सर्प को देखकर मयूर झपटा हो। इसी बीच एक यवन ने आ पूरे जोश में उफन कर अपनी तीखी बरछी प्रयागसिंह पर चलाई और उसे बेध डाला पर वह वीर प्रयागसिंह बरछी सहित घोड़ा बढ़ा कर उस ओर गया और अपने एक ही प्रहार से उस पृथुलकाय म्लेच्छ को काट गिराया। तभी अवसर पाकर सुरतसिंह ने अपनी तलवार का वार कर

प्रयागसिंह को ढेर कर दिया जिस प्रकार शिव ने कामदेव को ढेर किया था। जिस वीर के मृत शरीर को ढूंढते हुए कंक और ढेंक जैसे पक्षी थक गए पर इन मांसाहारी पक्षियों को प्रयागसिंह के मांस का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं हुआ। न उसकी देह का कोई अवशेष ही बचा जिसे अग्नि अन्तिम संस्कार में जलाती। उस वीर हाड़ा प्रयागसिंह की पूरी लोथ ही तलवारों की धारों पर लग कर नि:शेष हो गई। वह प्रयागसिंह तो सीधा स्वर्ग गया पर अपने साथ पाँच शत्रुओं को ले गया और चार को घायल कर रणभूमि में पटक गया। इसके बाद मुहुकमसिंह हाड़ा का वंशज मरजादसिंह अपने साथ पांच सौ सवार और पैदल सज्जित कर रणभूमि में बढ़ा।

इत चलिय पिक्खि जसवंत बीर, धुर धर झलायपति कुमर धीर।
वहहू सजि खट सय अश्ववार, हमगीर पदिक त्योंही हजार॥९२॥

मरजाद सीस धारत मरोर, आयो राजाउत रचत रोर।
मरजाद मत्थ तकि तीर तीन, दपटाय बाजि कछवाह दीन॥९३॥

मरजाद सुभट इक नाम मान, कूरम हय मारयो दै कृपान।
जसवंत अपर हय चढि जरूर, समसेर हन्यौं वह मान सूर॥९४॥

कूरम निज जद्दव सुभट दोय, हड्डा सिर हूले कुपित होय।
दै चक्क दुहुंन मरजाद बिंटि, भालन प्रहार किय भिंटि भिंटि॥९५॥

मरजादसिंह को रणक्षेत्र में आते निरख झलाय नगर के स्वामी के पुत्र वीर जसवंतसिंह ने मुकाबला करने की सोची। वह अपनी छह सौ घुड़सवार और एक हजार पैदल सैनिकों की बड़ी टुकड़ी के साथ सम्मुख गया। मरजादसिंह के ऊपर, दर्प को अपने सिर पर सवार रखने वाला वह राजावत जसवंतसिंह घोड़ा भगाता हुआ बढ़ा। उसने अपने घोड़े को बढ़ा कर तीन तीर मरजादसिंह के सिर का संधान कर चलाये तभी मरजादसिंह के मानसिंह नामक एक योद्धा ने अपनी कृपान का प्रहार कछवाहा के घोड़े पर किया और उसे काट गिराया। इसी समय जसवंतसिंह ने अपना घोड़ा बदला। दूसरे घोड़े पर चढ़ते ही उसने अपनी तलवार के एक प्रहार से मानसिंह को काट गिराया। इसके बाद कछवाहा जसंवतसिंह ने अपने दो यादव योद्धाओं को हाड़ा मरजादसिंह पर धावा बोलने भेजा। कुपित िव

दोनों ने मरजादसिंह को घेरे में लिया और उसके चारों ओर घुमते हुए वे उस पर भालों के प्रहार करने लगे।

हुत हड्डु दुहुंन तोमर बिदारि, जदुबन गयो मरजाद जारि।
रट्ठोर बहुरि पिल्ल्यो रिसाय, खग झारि हड्डु लिय सोहु खाय ॥९६ ॥

पठये इम कूरम दस सिपाह, तिन्ने ति मारि लगि बिजय लाह।
हड्डा सुमेरु पठयो बहोरि, दिन्नों कृपान तिहिं खंध द्वोरि ॥९७ ॥

उपबीत उतरि मरजाद अंस बैठो तनुत्र भिदि पृष्ठिबंस।
इहिं घाय भयो संभर अचेत, खिन धरिय मोह ढरि परिय खेत ॥९८ ॥

तजि मोह बहुरि बिनुही तुरंग, जसवंत हित्तु किय उट्ठि जंग।
पुनि मारि अट्ठ कूरम प्रबीर, सुत्तो सतल्प संगर सधीर ॥९९ ॥

हाड़ा वीर मरजादसिंह ने संभल कर अपने दोनों हमलावरों को भाले से बींध डाला और वह दोनों यादव योद्धाओं को हजम कर गया अर्थात् उन्हें मार डाला। इसी बीच जसवंतसिंह ने क्रोध में आकर एक राठौड़ योद्धा को मरजादसिंह पर हमला करने भेजा। हाड़ा वीर ने तुरन्त अपनी तलवार के प्रहार से उसे मार गिराया। इस तरह कछवाहा जसवंतसिंह ने अपने दस सिपाही मरजादसिंह के सिर पर भेजे पर विजय का लाभ पाने की राह पर बढ़ते मरजादसिंह ने उन सभी को मार गिराया। तब जसवंतसिंह ने अपने योद्धा हाड़ा सुमेरसिंह को धावा बोलने भेजा उसने बढ़ कर अपना कृपान मरजादसिंह के कंधे पर मारा। उसका कृपान मरजादसिंह के कंधे पर पड़ा और उपवीत (जनेऊ) उतार काटता हुआ निकला। वह कृपान हाड़ा मरजादसिंह का कवच काट कर उसकी पीठ की हड्डी में जा ठहरा। इस अचानक पाये आघात से चहुवान वीर अचेत होकर मूर्च्छितावस्था में रणभूमि पर लुढक पड़ा। पर तभी तुरन्त ही मूर्च्छा छोड़ कर वह वीर उठ खड़ा हुआ और बिना ही घोड़े के वह जसवंतसिंह से जा भिड़ा। इसके बाद ऐसी घायलावस्था में भी हाड़ा वीर कछवाहा सेना के आठ यौद्धाओं को मार कर युद्ध में सदा गंभीर रहने वाला वह रणशय्या पर जा सोया।

इम खाय सत्रु एकोनबीस, बलि करिय चेत घायल बतीस।
बिंटिय तब अच्छरि डारि बांहि, मरजाद पत्त इम नाक मांहि ॥१०० ॥

चोरासी निजभट रहिय खेत, सतदोव भये घायल सु चेत।
इत तोकसिंह मिलि छोह अंग, उत बिजयसिंह कूरम अभंग ॥१०१ ॥

दुव दपटि बीति रीतिन दिखाय, दुव करत वार असि घाय दाय।
रन चत्वर दुव जयखंभ रूप, दुव स्वामि धर्मधर भटन भूप ॥१०२ ॥

दुव द्विरद इक्क धेनुक दिखात, दुव सिंह जानि इक बस्त आत।
यंहं तोक चंड असिबर चलाय, गति वज्र बिजय दिन्नों गिराय ॥१०३ ॥

इस तरह अपने उन्नीस शत्रुओं का संहार कर और बत्तीस शत्रुओं को घायल करने के बाद हाड़ा वीर मरजादसिंह को अप्सराओं ने गलबाहें डाल कर घेर लिया। कुछ इस तरह मरजादसिंह युद्ध लड़ कर स्वर्ग में गया। इस भिड़ंत में उसके अपने चौरासी यौद्धा मारे गए और लगभग दो सौ योद्धा घायल हो गए। यह देख कर आग बबूला हो तोकसिंह रणभूमि में आगे बढ़ा जिसका मुकाबला करने उधर से निडर कछवाहा विजयसिंह आया। दोनों ने एक दूसरे की ओर अपने घोड़े बढ़ा कर तलवारों के प्रहार करने आरंभ किये। रणआंगन के चौक में दोनों विजयस्तंभ की तरह आ खड़े हुए। ये दोनों स्वामिधर्म को धारण करने वाले योद्धा वीरों के सरताज थे ये दोनों एक दूसरे की ओर भिड़ने को यों बढ़े मानो एक ही हथिनी पर दो हाथी लपके हों अथवा कि दो सिंह एक ही बकरे पर झपटे हों। इसी समय तोकसिंह ने अपनी तलवार का प्रचंड प्रहार किया। वज्र की गति वाले इस वार ने विजयसिंह को भूमि पर ला पटका।

इत अजित अजित कछवाह दोय, हथियार मार मिलि मत्त होय।
गोलिनि लगि दोउन हय गिरंत, व्है पदिक जुरे बलवंत हंत ॥१०४ ॥

आतापि उभय जिम जुरत जुद्ध, कैथों चरनायुध उरझि क्रुद्ध।
जिम त्रोटि नखर खरकोन जंग, दक्षाय्य कंक जनु अतुल दंग ॥१०५ ॥

भिरि इम प्रबीर बनि छिन्न भिन्न, करि कित्ति दुहुंन दिव बास किन्न।
इत देवसिंह हड्डा उदार, हरदाउत सत्रुन गिलनहार ॥१०६ ॥

हम्मीर कुम्भ सिर बिरचि हाक, जग कतल करत आयो कजाक।
मिलि उभय भाद्रपद मुदिर मान, आसार हेति बरखत अमान ॥१०७ ॥

इसके बाद उधर से अजीतसिंह और सामने से भी समान नाम वाला

(अजीतसिंह) कछवाहा दोनों शस्त्र प्रहार करते आ भिड़े। इसी बीच बन्दूक की गोलियां लगने से दोनों के घोड़े मारे गए तब वे दोनों बलवंत पैदल ही आपस में लड़ने लगे। वे ऐसे भिड़े जैसे दो चील्ह पक्षी आपस में लड़ रहे हों या कि क्रोध से भरे दो मुर्गे आपस में उलझ पड़े हों। वे ऐसे भिड़े जैसे अपनी चोंच और नाखूनों के हथियारों से दो तीतर पक्षी लड़ते हैं या कि गीद्ध और कंक के मध्य अतुलनीय दंगल मचा हो। वे दोनों अजीतसिंह आपस में भिड़ते-पड़ते छिन्न-भिन्न हो गए। वीरता के साथ भिड़ंत का यश ले वे दोनों स्वर्गवासी हो गए। तब इधर के पक्ष से हरदाउत वंशीय हाड़ा देवसिंह जो शत्रुसंहारक था ने सामने के पक्ष वाले कछवाहा हम्मीरसिंह पर गर्जना करते हुए धावा बोला। वह अपने सामने पड़े शत्रु को मारता युद्ध करने आया। भाद्रपद माह के काले घने मेघों की तरह ये दोनों योद्धा एक दूजे पर शस्त्र रूपी पानी बरसाते बढ़े।

हम्मीर इहां करि असि प्रहार, वह देव न राख्यो अश्ववार।
तब पदिक होय रचि नट मलंग, सारसन झटकि अँच्यो सु संग ॥१०८॥

पयचार उभय इम बनि प्रबीर, हठ पुब्ब जुरिग देव रु हमीर।
हलकारि खग्ग झारत दु हत्थ, ललकारि होत पुनि लुत्थि बत्थ ॥१०९॥

तुट्टिय लगि दोउन असि तनंकि, कट्टार तबहि झारिय झनंकि।
छम मल्ल जुद्ध पुनि रचि अछेह, दुव बीर गिरे इम छोरि देह ॥११०॥

थोड़ी ही देर में कछवाहा हम्मीरसिंह ने अपनी तलवार के प्रहार से देवसिंह हाड़ा के घोड़े को काट कर उसे सवारी विहीन बना दिया। देवसिंह ने अपने को यों पैदल बना देखऽ नट की तरह एक उछाल भरी और सामने वाले शत्रु को भी तलवार सहित एक झटके से अपने साथ खींच कर घोड़े से नीचे गिरा दिया। इस तरह अब वे दोनों पैदल योद्धा हो गए तब हठपूर्वक हम्मीरसिंह और देवसिंह दोनों पैदल ही लड़ने लगे। वे एक दूसरे पर वीर हाक कर दोनों हाथों से अपनी तलवारों के प्रहार करते फिर अलग होते और फिर से भिड़ पड़ते। थोड़ी ही देर में दोनों वीरों की तलवारें आपस में टकरा कर टूट गईं। तब दोनों एक दूजे पर अपनी कटारों के प्रहार करने लगे। अन्त में घायलावस्था में भी वे दोनों समर्थ मल्लयुद्ध

करने से भी बाज नहीं आए और इसी तरह लड़ते-लड़ते अपनी काया छोड़ते हुए मर कर भूमि पर गिरे।

षट्पात्

सुभट भवानीसिंह महासिंहोत उमंड़ि इत,
उत माधव कछवाह हलिय, निज स्वामि विजय हित।
खुरन अग्ग भुव खुंदि मुंदि पन्नग सहस्र मुख,
तुमुल झारि तरवारि रारि मंडिय रावन रुख।
मिटि गुमर पिट्ठि कच्छप मुरकि डुरकि निट्ठि सूकर डखिग।
भीरुन भटेस धिक्कारि भिरत दिक्करि गन चिक्करि दखिग॥१११॥

इसके बाद महासिंहोत वंशज हाड़ा वीर भवानीसिंह ने लड़ने को कमर कसी तो उसका सामना करने और अपने स्वामी के हित साधन को कछवाहा माधवसिंह तैयार हुआ। दोनों के दल आमने-सामने हुए तब घोड़ों ने खुरों से भूमि रोंद डाली और शेषनाग ने अपने हजार मुख बंद कर लिए। दोनों पक्षों की ओर से तलवारों के तुमुल प्रहार मचे और दोनों दल रावण जैसी हठधर्मिता के साथ युद्ध में संलग्न हुए। कच्छप का दर्प मिटा और उसकी पीठ पृथ्वी पर की इस हलचल से लचक गई और लड़खड़ाते हुए वाराह ने अपने को बमुश्किल तमाम संभाला। कायरों को धिक्कारते हुए वीर जब भिड़ने लगे तो सभी दिशाओं के हाथियों के समूह चित्कार कर उठे।

जिम आखंडल जंभ स्वयसाची राधासुत,
स्वामी तारक सूर भीम कीचक बल अद्भुत।
पुनि हलहेति प्रलंब सूनसायर अरु संबर,
अंजनिनंदन अक्ष बज्जतुंड रु काकोदर।
मैनाकस्वसा जित सुरमहिष आजगवी अंधक अरन।
इहिं रीति झपटि आहव अजिर बीति दपटि लग्गे लरन॥११२॥

जैसे इन्द्र और जंभासुर भिड़े। अर्जुन और कर्ण लड़े। जिस तरह स्वामी कार्तिक और तारकासुर में संग्राम मचा। जैसे भीम और कीचक अपने बल का प्रदर्शन करते हुए अद्भुत रूप से जूझे। जिस तरह बलदेव

और प्रलंबासुर ने आपस में लोहा लिया। जैसे समुद्र के पुत्र कामदेव और शंबरासुर में संग्राम मचा। जिस तरह हनुमान और अक्षयकुमार ने आपस में लोहा लिया। जैसे गरुड़ और सर्प झगड़े। जैसे देवी पार्वती और महिषासुर में मारक युद्ध हुआ। जैसे महादेव और अंधकासुर आपस में लड़े। उसी तरह दोनों योद्धा अपने घोड़े बढ़ा कर आपस में जूझने को झपटे।

कूरम को करवाल हड्ड झिल्ल्यो तोमर पर,
कटत कुंत असि कढ्ढि अनखि झारिय इहिं अवसर।
कूरम को सिर कढ्ढि निडर किय रुद्र निवेदन,
इम अक्षत रहि अप्प अरिन मंडिय उच्छेदन।
बर बाजि नाव खेयक बलिय कुच्छेयक दिय बलि करट।
जय धारि फिरिग जानिय जगत भिरिग भवानिसिंह भट॥११३॥

कछवाहा माधवसिंह की तलवार के प्रहार को हाड़ा भवानीसिंह ने अपने भाले पर झेल लिया। अपने भाले को कटा देखकर भवानीसिंह ने कुपित हो अपनी तलवार निकाल कर इस समय एक भरपूर वार किया परिणामस्वरूप कछवाहा माधवसिंह का मस्तक कट पड़ा जैसे निडर भवानीसिंह ने उसे महादेव को भेंट किया हो। इस तरह स्वयं अक्षत रहा भवानीसिंह हाड़ा अपने शत्रुओं का शिरोच्छेदन करने लगा। इस वीर हाड़ा ने अपने कौक्षेयक (खड.ग) से शत्रुवीरों की बली चढ़ा कर काक पक्षियों (कौओं) का भक्ष्य बनाया। इस बाजी रूपी सरोवर को उस श्रेष्ठ केवट हाड़ा ने अपनी नाव से पार किया। हाड़ा योद्धा भवानीसिंह ने भिड़ कर जो विजय हांसिल की उसकी साक्षी पूरे जगत ने भरी।

इत सगताउत अचलसिंह कूरम उत संकर,
इत प्रबीर लवअंस उतसु कुस बंस भयंकर।
इत बुंदिय धर अरर उत सु ढुंढाहर तालक,
उदयनैर इत ओप उत सु जैपुर उज्जालक।
इत इक उत सु दस हय अधिप इत सिव रक्षक बिष्णु उत।
कलिकार फुले हिय सुम बिकसि निकसि जुरे कलिकार नुत॥११४॥

रणभूमि में अपने करतब दिखाने तब इधर से शक्तावत अचलसिंह आगे बढ़ा वहीं सामना करने को कछवाहा शंकरसिंह आ डटा। इधर वह वीर शक्तावत यदि लव का वंशज था तो सामने वाला कछवाहा योद्धा कुश का अंशज था। इधर के पक्ष वाला योद्धा शक्तावत यदि बूंदी का किंवाड़ था तो सामने वाला ढूंढाड़ (जयपुर) का ताला था। दोनों अपने अपने राज्य की अटक थे। इधर यह उदयपुर को अपनी कीर्ति से उज्जवल बनाने वाला था तो सामने वाला जयपुर के यश का उद्धारक। इधर से यदि एक सवार बढ़ा तो मुकाबले में उधर से दस घोड़े सवारों सहित झपटे। इधर के पक्ष की रक्षा महादेव कर रहे थे तो उधर उनके इष्टदेव विष्णु की कृपा थी। दोनों वीरों के हृदय फूल कर कलि के आकार से विकसित हो पुष्प हुए। ऐसे स्तुति योग्य दोनों योद्धा (कलहकार) अपने-अपने शिविर से बढ़ कर यहाँ रणभूमि में आ भिड़े।

दोहा

दस दस झेलि प्रहार दुव, रहे ति घायल रंग।
आयु भयो बलवान यंहं, मेटी त्रिदिव उमंग॥११५॥

इत भैरव अमरेस सुत, रनिकोबिद रट्ठोर।
अर अमान कछवाह उत, जवी जुरिग अतिजोर॥११६॥

कूरम खग्ग कबंध कैं, दिन्नों तमकि मदंध।
कटि बाहुल कर अद्ध कटि, बैठो लगि मणिबंध॥११७॥

अैसैं ही इक अंस पर, खाय उभय तस खग्ग।
मार्‌यो कुम्म अमान कों, इम रट्ठोर उदग्ग॥११८॥

पुनि कूरम भगवंत प्रति, जुर्‌यो मलंगत मत्त।
दोउन असबर छाक छकि, तजे कलेवर तत्त॥११९॥

दोनों योद्धा अपने-अपने शरीर पर दस-दस प्रहार झेलते हुए वहाँ घायल हुए पर भाग्य के बल से आयुष शेष थी इसलिए दोनों के स्वर्ग जाने की इच्छा अधूरी रही अथवा भाग्य ने उनकी स्वर्ग जाने की उमंग मिटा दी। तब इधर से राठौड़ अमरसिंह का पुत्र भैरवसिंह जो रणविद्या में चतुर था वह बढ़ा तो सामने से कछबाहा अमानसिंह मुकाबला करने को तत्पर

हुआ। दोनों योद्धा आमने-सामने होते ही भिड़े। क्रोध में मंदाध कछवाहा अमानसिंह ने अपने खड्ग का भरपूर वार राठौड़ वीर पर किया। इससे उसका बाहुल (कवच) कटकर आधा हाथ कट गया और खड्ग आगे मणिबंध पर जा ठहरा। इसी तरह का एक और मारक प्रहार राठौड़ भैरवसिंह ने अपने कंधे पर खाया। पर दो-दो तलवारों के घाव खा कर भी उस उदग्र वीर राठौड़ ने अपने एक ही वार से कछवाहा अमानसिंह को मार गिराया। इसके बाद वह दूसरी ओर मुड़ कर कछवाहा भगवतसिंह पर लपका। जहाँ दोनों योद्धा एक दूजे पर प्रहार करते घायल होकर तत्काल अपनी देहों का त्याग कर गए।

इत कबंध नवलेस उत, भट कूरम भूपाल।
अर इच्छन जोरे उभय, कर तिच्छन करवाल॥१२०॥

मानों भद्दव मेघ मैं, चपला जुग चमकाय।
झटके इम झमकाय दुव, हुव बटके घन घाय॥१२१॥

इमहि बीर सनमान इत, उत अर्ज्जुन कछवाह।
तिल तिल कटि पहुंचे तबिष, लै दुव अच्छरि लाह॥१२२॥

अडर सिवाईसिंह इत, सूर अभय उत सज्जि।
परे खेत घायल उभय, रुहिर छछक्कत रज्जि॥१२३॥

इत भट्ट सु बुन्दीस को, जयगाहक जगराम।
उदयसिंह परमार सिर, थप्यो प्रसारत धाम॥१२४॥

तब इधर से राठौड़ नवलसिंह बढ़ा तो सामने कछवाहा भूपालसिंह आ डटा। आमने सामने होते ही दोनों की नजरें मिली और इसके तुरन्त बाद दोनों की तीखी तलवारें मिली। भाद्रपद माह के काले मेघों के टकराने पर जैसे बिजली चमकती है उतनी ही त्वरा से दोनों वीरों ने अपनी चमकती तलवारों से एक दूजे पर दो भाग करने वाले प्रहार (झटका) किये और दोनों टुकड़े-टुकड़े हो कर रणभूमि में बिखर गये। इसके बाद इधर से सम्मानसिंह और सामने से कछवाहा अर्जुनसिंह भिड़े। तुरन्त ही दोनों वीर तिल-तिल हो अप्सराओं का लाभ प्राप्त करने को स्वर्ग लोक जा पहुँचे। तब बारी आई इधर के सवाईसिंह और उधर से रण को सज्जित वीर

अभयसिंह के भिड़ने की। थोड़ी ही देर में दोनों एक दूसरे पर प्रहार करते हुए घायल हो अपने घावों से रक्त-धाराएँ छोड़ते हुए रणक्षेत्र में गिर पड़े। इसके बाद बूंदी के राजा का योद्धा जगराम जो जय को पकड़ने वाला था (अर्थात् सदा विजयी रहने वाला था) ने सामने वाले शत्रु पक्ष के परमार उदयसिंह (के सिर) पर आक्रमण किया।

कुंत इक्क परमार को, खाय प्रहारिय खग्ग।
किन्नों प्रबल करोढिया, अरि सिर खंध अलग्ग॥१२५॥

उदयसिंह कों मारि इम, बिंट्यो जद्दव बग्घ।
देह छोरि दिय पत्त दुव, अच्छरि मंडिय अग्घ॥१२६॥

ज्यों संगर कनउज्ज के, चंद लर्यो असि चंड।
इम जुट्ट्यो जगराम यंहं, खंडन करि बपु खंड॥१२७॥

इत्यादिक इत उत लरत, बुंदी सुभट बिसेस।
बिच असि झारत बुद्ध सुव, दुपहर चंड दिनेस॥१२८॥

फिर जगराम ने परमार उदयसिंह के भाले का एक प्रहार झेल कर तुरन्त अपनी तलवार मारी और इस तरह उस प्रबल करोढिया जाति के भाट वीर ने परमार का सिर कंधे से काट कर अलग कर डाला। परमार उदयसिंह का काम तमाम कर उस जगराम ने यादव बाघसिंह को जा घेरा। यहाँ एक दूजे पर प्रहार करते हुए दोनों ने अपने शरीर त्यागे और अप्सराओं के प्रगाढ़ आमंत्रण को स्वीकार कर स्वर्गवासी हुए। पूर्व में जिस तरह कन्नोज के संग्राम में भाट चंद वरदाई अपने प्रचंड खड़ग के साथ लड़ा था उसी तरह के जलवे रणभूमि में दिखाते हुए जगराम भी अपने शत्रु के टुकड़े कर युद्ध में कटा। इस तरह रणभूमि में और भी बूंदी के यौद्धा इधर-उधर लड़ने लगे पर उनके मध्य दुपहर के प्रचंड तपते सूर्य की तरह राजा बुधसिंह का पुत्र (उम्मेदसिंह) अपनी तलवार से अपनी तरह के प्रहार कर रहा था।

मुक्तादाम

चल्यो इत भुपति झारत खग्ग, झरैं अरि घायल डारत झग्ग।
इतैं उत घोर मचैं अवमद्द, इतैं उत आवहिं आवहिं मद्द॥१२९॥

इतैं उत मुंडन छादित भुम्मि, इतै उत डोलत घायल घुम्मि।
इतैं उत संकुलि लुत्थिन लुत्थि, इतैं उत बाढ बिखेरत बुत्थि ॥१३०॥

इतैं उत खंजर होत दुसार, इतैं उत फुट्टत पट्टिस पार।
इतैं उत होत तुपक्कन मग्ग, इतैं उत बेधत सेलन अग्ग ॥१३१॥

इतैं उत तीरन ढंकत गैन, इतैं उत उद्धत संगितसैन।
इतैं उत उग्र रचै रन रौर, इतैं उत पात गदा अति और ॥१३२॥

इतैं उत चाप चटक्कन चक्क, इतैं उत धूपन की धमचक्क।
इतैं उत या गति आयुध वुट्ठि, इतैं उत मुट्ठिन मारत मुट्ठि ॥१३३॥

राजा उम्मेदसिंह अपनी तलवार से ऐसे प्रहार करता, शत्रु संहारता और घायलों के मुख को झागों से भरता रणभूमि में बढ़ा। इधर और उधर के पक्षों में पीड़ाकारी युद्ध होने लगा। दोनों पक्षों के नगाड़ों का नाद गूंजने लगा। इधर और उधर वीरों के कटे मस्तकों से रणभूमि आच्छादित होने लगी और घायल इधर-उधर घूमने लगे। इधर और उधर के वीर अवकाश रहित युद्ध में संलग्न हुए। लोथ पर लोथ गिरने लगी और तलवारें मांस के टुकड़े बिखेरने लगी। इधर और उधर से खंजरों के दोहरे घाव लगने लगे। इधर और उधर के वीर कटारियों से बेधे जाने लगे। दोनों ओर बन्दूकें मार्ग बनाने लगी। दोनों ओर भालों के अग्रभाग से वीर बेधे जाने लगे। दोनों पक्षों से चले तीरों ने आकाश ढक लिया। दोनों पक्षों की उद्धत सेना बरछियों से घायल होने लगी। दोनों पक्षों में युद्ध करते उग्र वीरों ने भय फैलाया। इधर और उधर के वीर गदा प्रहारों से गिरने लगे। दोनों पक्षों की ओर से धनुष की प्रत्यंचाएँ आवाज कर उठीं और इधर-उधर तलवारों की खनक पसरने लगी। दोनों पक्षों से गतिवान शस्त्रों की बरसात होने लगी। दोनों पक्षों के वीरों की मुट्ठियाँ खड्ग की मूठों पर कसने लगीं।

इतैं उत भौंहन चुंबत मुच्छ, इतैं उत उड्डत गोदन गुच्छ।
इतैं उत अब्बन लग्गत लीह, इतैं उत कातर कल्लरि जीह ॥१३४॥

इतैं उत तुट्टत संकुलि सीस, इतैं उत सूर रिझावत ईस।
इतैं उत डाकिनि खोजत खेत, इतैं उत पानि प्रसारत प्रेत ॥१३५॥

इतैं उत डोलत अंत्रन व्याल, इतैं उत फुट्टत कंठ कपाल।
इतैं उत धावत सोनित धार, इतैं उत कीकस वृंद अपार ॥१३६॥

इतैं उत नैन उछट्टत कड्ढि, इतैं उत बाहु फदक्कत बड्ढि।
इतैं उत टोप बकत्तर टूक, इतैं उत हूरव हूरव हूक ॥१३७॥

इतैं उत बावन गावनहार, इतैं उत जच्छ जपैं जयकार।
इतैं उत नारद अक्खत वाह, इतैं उत साकिनि देत सिराह ॥१३८॥

दोनों तरफ के वीरों की मूँछें भोहों से मिलने लगी। दोनों तरफ भेजों के समूह उड़ने लगे। दोनों पक्षों के घोड़ों की पंक्तियां बढ़ी जिन्हें देख कर कायरों की जीभ कलराने लगी। दोनों ओर के वीर महादेव को रिझाने की गरज से अपने अथक प्रहारों द्वारा शत्रु सीस काटने लगे। रणभूमि में डाकिनियां अपना खज खोजने लगी वहीं प्रेत हाथ पसारने लगे। दोनों ओर रणभूमि में अंत्रावलियों के सर्प नजर आने लगे और वीरों के कपाल एवं कंठ टूटने लगे। दोनों ओर से रुधिर धार बह निकली और हड्डियों के ढेर लग गए। दोनों तरफ वीरों के नेत्र तलवार के प्रहार से निकल कर गिरने लगे और हाथ कटकर फुदकने लगे। दोनों ओर के वीरों के कवच और टोप टूट कर टुकड़े-टुकड़े होने लगे। वहीं 'हू-हू' की ध्वनि होने लगी। दोनों ओर गान करने वाले बावन भैरव और यक्ष जय-जयकार करने लगे। दोनों पक्षों की लड़ाई देख कर नारद 'वाह-वाह' कर उठा और साकिनियाँ वीरों की सराहना करने लगीं।

इतैं उत चोंकि फिरैं चउसट्ठि, इतैं उत सूरन सज्ज समट्ठि।
इतैं उत तंडव मंडत रुंड, इतैं उत झुक्कत झुंडन झुंड ॥१३९॥

इतैं उत बाहहु बाहहु बुल्लि, इतैं उत तेगन झारत तुल्लि।
इतैं उत बाजिन बग्ग तमाम, इतैं उत कुद्दत गैवर ग्राम ॥१४०॥

इतैं उत पक्खर घंटन घोर, इतैं उत अग्गि सिलग्गत सोर।
इतैं उत बद्दलके अनुकार, इतैं उत लोहित बुट्ठत बार ॥१४१॥

इतैं उत चाप सु बासव चाप, इतैं उत गज्ज सु गज्ज अमाप।
इतैं उत सीकर गोलिन गोट, इतैं उत दंतिन दंत बकोट ॥१४२॥

इतैं उत ओज इरम्मद धारि, इतैं उत त्यों तड़िता तरवारि।
इतैं उत व्है लहरु हरवल्ल, इतैं उत घुग्घर दद्दुर गल्ल ॥१४३॥

दोनों ओर वीरों के समूह सज्जित होने लगे वहीं चौंसठ योगिनियाँ

चकित सी इधर-उधर डोलने लगीं। दोनों ओर कबंध (रुंड) नाचने लगे और कहीं कहीं पर तो झुण्ड के झुण्ड आ गिरने लगे। दोनों ओर से वीर 'प्रहार कर-प्रहार कर' बोलने लगे और वीर कहे अनुसार रकाब के सहारे अपने शरीर को आगे कर तलवार चलाने लगे। दोनों पक्षों के घोड़े लगाम खींचे जाने पर रणभूमि में बढ़ने लगे वहीं हाथियों के समूह भी गति करने लगे। दोनों पक्षों के घोड़ों के पाखर बज उठे और दोनों तरफ बारूद की अग्नि भड़कने लगी। दोनों ओर से बादलों का अनुसरण करती हुई रुधिर की धाराएं बरसने लगीं। (यही पानी है) दोनों ओर के धनुष हैं वे ही इन्द्रधनुष हैं और दोनों ओर के योद्धाओं की गर्जना ही जैसे मेघ-गर्जन हो। दोनों पक्षों से जो गोले और गोलियां बरसने लगीं वे ही जलकण हैं। दोनों पक्षों में हाथियों के दांत है वे ही बगुले हैं। दोनों पक्षों का जो प्रदर्शित पराक्रम है वही मेघज्योति है। और चलती हुई तलवारें ही मानो बिजलियाँ हैं। दोनों पक्षों की बढ़ती हरावलें (अग्रिम पंक्तियाँ) ही लहरें हैं और घोड़ों के जो घुंघरु बज रहे हैं वे मानो टर्राते मेंढ़क हैं।

इतैं उत बीर सु उत्तर बात, इतैं उत सूर मयूर सुहात।
इतैं उत चातक घंटन आलि, इतैं उत अत्थि किरै करकालि ॥१४४॥

इतैं उत कातर भोलि उदास, इतैं उत हूर कृषिबल आस।
इतैं उत जीगन व्है चिनगीन, इतैं उत स्याम घटा करटीन ॥१४५॥

रच्यो नृप यों रन पाउसरूप, धपावत सत्रुनतैं निज धूप।
लयो ढिग जाय नरायनदास, प्रहारन मार रची चहुंपास ॥१४६॥

मरे भट भूपतिके सत तीन, भये सत पंचक घायनखीन।
भज्यो गज खत्रिय को लखि भार, भयो तब कुद्दि रु है असवार ॥१४७॥

इते बिच कूरम बिक्रम आय, दई तरवारि घनें करि दाय।
भयो तिहिं हंजक है पय भिन्न, तऊ झपटाय हनें अरि तिन्न ॥१४८॥

भिरयो वह बिक्रम आनि बहोरि, लयो नृप कूरम को सिर तोरि।

दोनों ओर के वीरों का इधर-उधर बढ़ना ही जैसे उत्तर दिशा के पवन का चलना है और वीर जो उपस्थित है वे मानो मयूर हैं। हाथियों के गलों में बंधी घंटियां ही चातकों की पंक्तियाँ हैं और जो हड्डियाँ बिखर रही

हैं वही मानो ओले हों। दोनों ओर जो कायर हैं वे मानो (थके) उदास ऊँट हैं और वीर रूपी किसानों को अप्सराओं रूपी खेती की आशा है। दोनों पक्षों से उठते अग्निकण ही मानो जुगनू हों और दोनों ओर के हाथी मानो श्यामल घटाएं हैं। राजा उम्मेदसिंह ने रणभूमि में अपना ऐसा पावस रूप बनाया अर्थात पावस रूपी युद्ध रचा और अपने शत्रुओं को अपनी तलवार की धार से अघाने लगा। उसने आगे जाकर नारायणदास को अपने समीप लिया और चारों ओर से प्रहारों की मार रची। इस झड़प में राजा के तीन सौ योद्धा मारे गए और पांच सौ योद्धा घायल हुए। इसी बीच खत्री की मार पाकर राजा का हाथी भागने लगा तब वह हाथी से नीचे कूद कर घोड़े पर सवार हुआ। इतने में ही कछवाहा विक्रमसिंह आगे आया और उसने अपनी तलवार का एक दाँव खेला। इस तलवार के प्रहार से राजा के 'हँज' नामक घोड़े का एक पाँव कट पड़ा। ऐसी स्थिति में भी राजा ने घोड़े को बढ़ा कर तीन शत्रुओं को मार गिराया। इसी बीच वह कछवाहा विक्रमसिंह फिर से राजा पर झपटा। इस पर राजा उम्मेदसिंह ने उस कछवाहा का सिर काट डाला।

यहै लखि कूरम भैरव आनि, जुर्यो नृप तैं दल मारत जानि ॥१४९॥

महीपति उप्पर खग्ग मुमोच, खग्यो कछु पंसुलि पैं कटि कोच।
करी पुनि हंज हयच्छट चोट, कर्यो कछु पै न रुक्यो नृप बोट ॥१५०॥

चली नृप की तपकी तरवारि, लयो वह भैरव मारत मारि।
इते बिच कुम्म मिल्यो महताप, दये सर च्यारि चटक्कुत चाप ॥१५१॥

लगे नृप कैं दुव दारित दंस, लगे हय कैं दुव दाहिन अंस।
रुक्यो नहि रंच तऊ नृप ओज, चल्यौ अरि मारत फारत फौज ॥१५२॥

तहां पुरपीलपती चहुवान, भिरे दुव थान तथा सुरतान।
नरूहर त्यों हरनाथ तृतीय, इन्हैं नृप रुक्किय गाढ गरीय ॥१५३॥

उभै चहुवानन झारिय खग्ग, करे तिनके सिर भूप अलग्ग।

अपने साथी को यों कटते देख कछवाहा भैरवसिंह बढ़ा और राजा उम्मेदसिंह को सेना का संहारक मानकर आ भिड़ा। उसने तुरन्त अपना खड़ग राजा पर फेंक मारा जो राजा के कवच को चीरता हुआ उसकी

पंसुलियों के बीच गड़ गया। उसने फिर दूसरा वार हँज नामक घोड़े के कंधे को काटने के लिये किया। यह प्रहार थोड़ा लगा भी पर राजा का घोड़ा रुका नहीं। तभी राजा की तीखी तलवार चली और उसने प्रहार करते भैरवसिंह को मार गिराया। यह देखकर कछवाहा महताबसिंह ने अपनी प्रत्यंचा पर तान कर राजा के सिर पर चार तीर चलाये। इनमें से दो बाण राजा के कवच को फोड़ कर आ घुसे और शेष दो तीर घोड़े के कंधे के दाहिनी ओर लगे। इस पर भी ओज से भरा राजा रुका नहीं वह तो शत्रु सेना को चीरता काटता बढ़ता गया। आगे उसके मुकाबले को सन्नद्ध पीलवा (पीलपुर) के चहुवान स्वामी थानसिंह और सुरतानसिंह थे उनके साथ नरूका हरनाथसिंह भी था। इन तीनों के समक्ष पूरी दृढ़ता का प्रदर्शन करते हुए राजा ठहरा। तभी दोनों चहुवानों ने राजा पर प्रहार किये पर राजा ने उनके प्रहार बचा कर स्वयं ने वार किया और उन्हें मार गिराया।

तथा सहि नारव की तरवारि, लयो हरनाथहु को हय मारि॥१५४॥

घनी इम जैपुर बीरन नारि, करी नृप जोगिनि कंकन झारि।
जहां हरदाउत हू नगराज, लर्‌यो नृप को भट बुंदिय लाज॥१५५॥

कहार हठी हु रह्यो नृप पास, लर्‌यो सह दोलतराम खवास।
तथा सठ भीरु भजे सतच्यारि, रची इम जैपुर तैं नृप रारि॥१५६॥

तथा सतच्यारि मरे अरितत्त, परे पुनि घायल ह्वै सतसत्त।
नरायन खेत खरो अघ धोय, घनों दल क्यों न तहां जय होय॥१५७॥

कह्यो नृप बुंदिय पैं धक धारि, मरैं तब कोन करैं पुनि रारि।
इतैं कछवाहन खोजिय खेत, लख्यो रन अंगन चित्र उपेत॥१५८॥

इसके बाद राजा उम्मेदसिंह ने नरूका शेखावत की तलवार के प्रहार को झेल कर अपना भरपूर हाथ चलाया जिससे हरनाथसिंह का घोड़ा मारा गया। इस तरह राजा ने जयपुर के कई कछवाहे वीरों की पत्नियों को अपने कंगन तोड़ कर विधवा बनने पर मजबूर किया। यहाँ एक हरदाउत वंशीय हाड़ा नगराज आगे जूझ रहा था। राजा के इस सामन्त ने बूंदी की लाज रखने को जोरदार युद्ध किया। एक स्वामिभक्त की तरह हठी कहार जो राजा के साथ बराबर बना रहा उसने राजा के खवास दौलतराम के साथ

मिल कर रणभूमि में जोरदार तलवार चलाई जब कि राजा के चार सौ मूर्ख कायर रणभूमि से भाग छूटे। जयपुर से आई सेना के साथ राजा उम्मेदसिंह ने ऐसा युद्ध रचाया। राजा के चार सौ शत्रु मारे गए वहीं सात सौ शत्रु घायल होकर रणखेत में गिरे पर नारायणदास खत्री जो कछवाहा राजा की सेना का सेनापति था रणभूमि में अपने पाप धोकर खड़ा था। खड़ा भी क्यों न रहे क्योंकि जिसकी बड़ी (भारी) सेना होती है सामान्यत: जीत उसी की होती है। क्रोधित हो बूंदी का राजा उम्मेदसिंह वहाँ से निकला यह सोच कर कि यदि यहाँ मारे गए तो भविष्य में फिर युद्ध कौन करेगा। इतने में शेष कछवाहों ने आकर रणभूमि का जायजा लिया तो वह इस चित्र-विचित्र रणखेत को देखते रह गए।

कहों तरफैं भट तुट्टत स्वास, लरैं कहुं लुत्थि करै कहुं हास।
बकैं कहुं घायल व्है सुधि हीन, जकैं कहुं जानुन झुक्कत झीन ॥१५९॥

डरे कहुं अंत्रन डारत ग्रीव, फिरैं कहुं नैन चलैं कढि जीव।
करैं कहुं सुंडिन के उपधान, रटैं हरि कों रन तल्प सयान ॥१६०॥

लरैं कहुं मत्त परासुन ओट, ढुरैं कहुं लेत कबूतर लोट।
भरैं कहुं बायु करैं उनमत्त, धरैं कहुं सीस कलेजन छत्त ॥१६१॥

गिरैं कहुं पाय पटक्कन भुम्मि, रहे कहुं रुठ्ठि रकाबन झुम्मि।
लरैं कहुं भूतनतैं भरि बत्थ, झरैं कहुं जावक जंत्रव मत्थ ॥१६२॥

परे कहुं बीर अधोमुख मूरि, ढुरे कहुं गाफिल चट्टत धूरि।
दबे कहुं कुक्कत हत्थिन हेठ, जरे कहुं पब्बय ज्यों दव जेठ ॥१६३॥

उन्होंने देखा कि वहाँ (रणभूमि में) अपने टूटते श्वास के साथ कई वीर पड़े थे। कहीं पर झुण्ड के झुण्ड घायल लोथें लड़ती हुई हँस रही थी। कहीं पर सुधिविहीन घायल बक-बक कर रहे थे तो कहीं घुटनों के बल झुक कर गिर रहे थे। कई मरणासन्न घायल योद्धा अपनी आंते डालने के बाद गर्दन डाल रहे थे (मर रहे थे)। कहीं पर प्राण त्यागने वाले वीर अपनी आँखें फिराये थे। कहीं पर घायल हाथियों की कटी सूंडों का तकिया बनाये हुए रणशय्या पर लेटे हुए श्रीहरि का नाम जप रहे थे।

अभी भी मरे हुए वीरों के शवों की ओट से लड़ने की सोच रहे थे। कहीं पर घायल मरने से पहले कबूतर लोट ले रहे थे। कहीं पर उन्मत्त वीर अपने फेफड़ों में श्वास खींच कर भर रहे थे और कहीं पर अपना कलेजा और मस्तक अपनी छाती पर धरे लेटे थे। कई घायल जमीन पर पाँव पटक रहे थे और कई जमीन पर पाँव नहीं धरने के सबब रूठे हुए घोड़ों की रकाब में पाँव रखे हवा में उल्टे झूल रहे थे। कई भूतों को बाँहों में भर कर उनसे लड़ रहे थे और कहीं पर कुछ घायल अलता के फव्वारे की तरह रक्त की धाराएँ फेंक रहे थे। कहीं पर कुछ घायल अधोमुख होकर गिरे हुए थे और कहीं पर कुछ गाफिल हो धूल चाट रहे थे। कहीं पर कुछ घायल ढहे हुए हाथियों के नीचे आ कर कूक रहे थे और कहीं पर कुछ घायल ज्येष्ठ माह में जलते पर्वतों की तरह जल रहे थे।

रहे कहुं कुंजर कुंभन लग्गि, मनों जुवतीन अनन्यज जग्गि।
तिरैं कहुं सोनित व्याकुल व्रात, भिरैं कहुं भेदत गिद्धन गात॥१६४॥

करैं कहुं दंतन तैं कटकट्ट, जरैं कहुं जुग्गिनि पै रहपट्ट।
पढैं कहुं कृष्ण कह्यो वह ज्ञान, भनैं कहुं सांख्य बनैं भगवान॥१६५॥

चखैं कहुं लोहित ओठन चब्बि, दुरैं कहुं कंकन पंखन दब्बि।
अटैं कहुं आतुर इक्कहि पाय, हटैं कहुं पीड़ित जंपत हाय॥१६६॥

कहैं कहुं बैद्य बुलावन बत्त, चहैं कहुं अच्छरि कों रसरत्त।
झुलैं कहुं घोरनपैं मृत झुंड, रुलै कहुं तंडव मंडत रुंड॥१६७॥

खिजैं कहुं चिल्हनि पै पल खात, लसै कहुं फेरुन मारत लात।
गहैं कहुं स्वानन तोरत गूद, बनैं कहुं साकिनि के हित सूद॥१६८॥

कहीं पर कई घायल वीर हाथियों के कुंभस्थलों से यों सटे हुए थे जैसे कामदेव के जगने पर मर्द स्त्रियों से चिपकते हैं। कहीं पर कुछ घायल रक्त की धारा में तैर रहे थे और कहीं पर गिद्धों के चोंच मारने पर उनसे भिड़ रहे थे। कहीं पर घायल दाँत किटकिटा रहे थे तो कुछ योगिनियों के झापड़ मार रहे थे। कहीं पर कुछ घायल कृष्ण ने जो ज्ञान दिया उसे (गीता) रट रहे थे और कुछ सांख्य दर्शन को मानने वाले स्वयं को ब्रह्म समझ रहे थे। कई घायल अपने होठ चबा कर रक्त का स्वाद ले रहे थे

और कई कंक पक्षियों के पंखों के नीचे दुबक रहे थे। कहीं पर कोई घायल एक पाँव से फुदक रहा था और कुछ पीड़ित 'हाय-हाय' कर रहे थे। कहीं पर कुछ घायल वैद्यों को बुलाने की गुहार कर रहे थे वहीं कुछ अप्सराओं के रस में रत्त थे। कहीं पर कुछ मृत वीर घोड़ों से लटक रहे थे और कहीं पर कबंध (रुंड) नृत्य कर रहे थे। कहीं पर कुछ घायल चील्ह पक्षियों के अपना मांस खाने पर खीझ रहे थे वहीं पर कुछ घायल मांस खाने आये गीदड़ों को लात मार कर शोभा पा रहे थे। कुछ वीर कहीं पर कुत्तों को पकड़ रहे थे जो उनकी मज्जा खाने को उतावले थे तो कहीं कुछ घायल साकिनियों के बावर्ची बने हुए थे।

नटैं कहुं अंतक दूतन भीत, गिनैं कहुं रीझत डाकिनि गीत।
मिलैं कहुं प्रान अपानन मेल, सिटैं कहुं प्रोत निहारत सेल॥१६९॥

लखैं कहुं नाक जुरावन बिक्ख, कढैं कहुं कायन तोमर तिक्ख।
नये कहुं दुल्लह चिंतत नारि, कहैं कहुं पुत्रहि पुत्र पुकारि॥१७०॥

डिगैं कहुं निट्ठि गहैं हय पुच्छ, मिलैं कहुं उट्ठि मरोरत मुच्छ।
जकैं कहुं बाजि रक्कत जीन, हलैं कहुं हत्थिय सुंडि बिहीन॥१७१॥

ढुरैं कहुं आनक दुंदुभि फट्टि, डरैं कहुं केतन तेगन तुट्टि।
गिरे कहुं पट्टिस खग्ग कमान, गिरे कहुं खेटक तोमर बान॥१७२॥

गिरे कहुं बाहुल कंकट टोप, गिरे कहुं कोस उरंगम ओप।
गिरे कहुं गंज क्रमेलक खंड, ढरे बनिजारन के जनु टंड॥१७३॥

कहीं पर घायल यमदूतों को देख कर मना कर रहे थे कि हमें मत ले जाओ! और कहीं कुछ घायल डाकिनियों के गीतों पर रीझ रहे थे। कहीं पर कुछ घायलों की प्रान और अपान वायु मिल रही थी और कहीं पर कुछ घायल शरीरों में घुसे हुए भाले देखकर लज्जित हो रहे थे। कहीं पर कुछ घायल अपने कटे नाक की फिक्र में उलझे थे वहीं कुछ अपनी काया से धंसे हुए भाले निकाल रहे थे। कुछ घायल जो अभी तक नये-नये दूल्हे थे वे अपनी पत्नी की चिंता में निमग्न थे और कुछ अंतिम समय में अपने पुत्रों को पुकार रहे थे। कुछ घायल घोड़ों की पूंछ पकड़ कर अपने स्थान से हिलने का प्रयत्न कर रहे थे और कुछ घायल अपनी मूंछों पर ताव

देकर उठ खड़े होने का जतन कर रहे थे। कहीं पर खिसकती हुई काठी के साथ घोड़े बैठ रहे थे और कहीं पर सूंड विहीन हाथी विचरण कर रहे थे। कहीं पर फूटे हुए नगारे और 'दुंदुभियां' पड़ी थीं और कहीं पर ध्वजाएं तलवारों से कट कर पड़ी थीं। कहीं पर कटारें, खड़ग और धनुष पड़े थे और कहीं पर ढालें और टूटे हुए भाले बाण आदि पड़े थे। कहीं पर रणभूमि में बाहुल, कवच और टोप पड़े थे और कहीं पर तलवारों से खाली म्यानें सांपों का रूप धरे पड़ी थी। कहीं पर ऊँटों के कटे टुकड़े पड़े थे जैसे मानो किसी बनजारे का टांडा (बालद) पड़ा हो।

गिरे कहुं पक्खर बग्ग खलीन, गिरे कहुं तुंग खरे खग खीन।
गिरे कहुं गुच्छ बनें गजगाह, गिरे कहुं प्रोथ बजावत बाह ॥१७४॥

गिरे कहुं गैवर मोहि अमाप, गिरे कहुं अंकुस घंट कलाप।
गिरे कहुं पुष्कर आसन कान, गिरे कहुं पेचक ओप्रतिमान ॥१७५॥

गिरे कहुं कुंतल मुच्छ कुघाट, गिरे कहुं मुंड रु तुंड ललाट।
गिरे कहुं नेत्र रदच्छद लल्ल, गिरे कहुं नक्र ध्वनिग्रह गल्ल॥१७६॥

गिरे कहुं काकुद जिब्भन जूह, गिरे कहुं मल्लक दड्ढ समूह।
गिरे कहुं बीतन त्यों कृक फाटि, गिरे कहुं काकल कंठ कृकाटि॥१७७॥

गिरे कहुं कूर्प्पर खंडिक कंध, गिरे कहुं जत्रु भुजा मणिबंध।
गिरे कहुं अंगुल अंगुलि टूक, गिरे कहुं ज्यों करत्यों करसूक॥१७८॥

रणभूमि में कहीं पर घोड़ों के पाखर, बाग और लगामों का झुण्ड पड़ा था और कहीं पर पुष्ट घोड़े अपने कसे तंग के साथ खड़े थे। कहीं पर हाथियों के कवच (गजगाह) गुच्छा हुआ पड़े थे और कहीं पर अपने नासाछिद्र में श्वास बजाते घोड़े पड़े थे। कहीं पर मूर्च्छित हाथी पड़े थे और कहीं पर खाली अंकुश, घंटे और हाथियों के कलाप पड़े हुए थे। कहीं पर हाथियों के पोगर, आसन और कान पड़े हुए थे और कहीं पर हाथियों के पृष्ठ भाग और कहीं पर अग्रभाग गिरे हुए थे। कहीं पर वीरों की मूंछों के केश गिरे हुए थे और कहीं पर मस्तक, मुख और ललाट कटे पड़े थे। कहीं पर वीरों के कढ़े हुए नेत्र पड़े थे तो कहीं पर वीरों के लाल होंट और कहीं पर नाक, कान और कटे हुए गले पड़े थे। कहीं पर वीरों के कटे हुए

तालुए थे तो कहीं पर कटी हुई जीभों का समूह और कहीं पर दाँतों और दाढ़ों का समूह गिरा हुआ था। कहीं पर गले की दो फांके पड़ी थी और कहीं पर कंठमणि और गर्दन का उच्च भाग कटा पड़ा था। कहीं पर किसी घायल की कुहनी टूटी पड़ी थी तो किसी का कंधा खंडित था और कुछ अपने हँसली की हड्डी टूटने पर रणभूमि में गिरे थे। वीरों की कहीं पर अंगुली कटी पड़ी है तो कहीं उसका कोई टुकड़ा और कहीं पर वीरों के नाखून पड़े थे।

गिरे कहुं पंसुलि रीढक तोम, गिरे कहुं पुप्फस कालिक क्लोम।
गिरे कहुं नाभि पुरीतति गंज, गिरे कहुं फुल्लि फबे हिय कंज ॥१७९॥

गिरे कहुं त्यों त्रिक सत्थिन संघ, गिरे कहुं जानु जुदे जुग जंघ।
गिरे कहुं पिंडिय गोहिर फुट्टि, गिरे कहुं एडिय घुंटक तुट्टि ॥१८०॥

लख्यो कछवाहन यों रन थान, धरे सब घायल खोजि नृजान।
निकारिय सल्ल जथा सुखकार, चिकित्सक बुल्लि रच्यो उपचार ॥१८१॥

मरे तिनके बिधि सों किय दाह, बनैं तिम प्रेतक्रिया निरबाह॥
दिवावत यों जय दुंदुभि डक्क, चल्यो अब बुंदिय जैपुर चक्क ॥१८२॥

बिथारत बट्टन अप्पन आन, उठावत सत्रुन सीम अमान।
जयो नृपकूरम अक्खत जौंध, कथंचित भोजु समावत क्रोध ॥१८३॥

रणभूमि में उन्होंने देखा कि कहीं पंसुली तो कहीं रीढ़ की हड्डियों का समूह गिरा पड़ा है तो कहीं पर वीरों के फेफड़े कलेजे और तिल्लियां पड़ी थीं। कहीं पर आंतों का समूह कटा पड़ा था और कहीं पर फूले हुए कमल की तरह फूला हुआ हृदय कटा पड़ा था। कहीं पर साथलें, (जानु) और कहीं पर जंघाएं कटी पड़ी थी। कहीं पर वीरों की कटी हुई पिण्डलियां, कहीं घुटने तो कहीं एड़ियां कटी पड़ी थी। जब कछवाहों ने रणभूमि का यह हाल देखा तो वे अपने घायलों को पालकी में बिठा कर ले चले। उन्होंने युद्ध में घायलों के शरीर से भाले निकाले और वैद्यों ने उपचार किया। जो मृतक थे उनका दाह संस्कार किया गया और उनकी प्रेत क्रिया की गई। अब अपने नगारे गूंजा कर वह जयपुर की सेना बूंदी की दूरी नापती हुई चली। रास्ते में अपनी विजयाज्ञा को फैलाते हुए और शत्रुओं की

हार का ऐलान करते हुए वह कहती चली की जयपुर के राजा की जीत हुई है और बूंदी के राज की सीमा को मिटा दी गई। ऐसा कहकर वह अपने अत्यन्त क्रोध को मिटाने में लगी।

महाबल जो जय के छक मत्त, प्रसारत ओदक बुंदिय पत्त।
पुरी पुनि झंड रूपे पचरंग, दिसा बिदिसान सुन्यों यह दंग॥१८४॥

भयो मन मोदित कूरम नाह, स्वसेनहिं अप्पिय वाह सिराह।
करे गज बाजि पटा बखसीस, गिन्यों जयसिंहज अप्पहिं ईस॥१८५॥

दये सब भूपन कों जयपत्र, लिखी वह हड्डु भज्यो तजि छत्र।
सु आवहिं जो तुमरी भुव मांहिं, ततो द्रुत कछुहु रक्खहु नाहिं॥१८६॥

लई इम बुंदिय कुम्म बहोरि, जिला गढ कोट सजे बल जोरि।
फिर्यो सब देस नरायनदास, लग्यो कर लैन ससैन हुलास॥१८७॥

इतैं अब जो ध्रुव भूप चरित्र, सुनों नृप राम रच्चों वह चित्र।
पचास सहस्त्र नमैं असि झारि, कढ्यो नृप पूरब फोजनि फारि॥१८८॥

कछवाहों की बड़ी सेना जो विजय के दर्प से भरी थी वह अपना दबदबा और भय का प्रसार करती बूंदी पहुँची। नगरी में फिर से पचरंगी ध्वजाएँ फहरने लगी। चारों दिशाओं में इस भारी युद्ध की खबर पसरने लगी। जिसे सुन कर कछवाहों के स्वामी (राजा ईश्वरीसिंह) का मन मुदित हुआ। इस विजय के लिए उसने अपनी सेना की सराहना की और 'वाहवाही' दी। विजय की खुशी के इस अवसर पर राजा ने अपने सामन्त योद्धाओं को हाथी, घोड़े और जागीर के पट्टों की बख्शीश की और स्वयं को जयसिंह का उत्तम पुत्र गिनते हुए अपने आप को बूंदी का स्वामी भी समझा। कछवाहा ईश्वरीसिंह ने तब दूसरे अन्य राजाओं को अपनी इस विजय के समाचार वाले पत्र भिजवाए। पत्र में उसने लिखवाया कि बूंदी का वह हाड़ा राजा अपना छत्र छोडकर भाग छूटा है यदि वह कभी तुम्हारी भूमि (राज्य) में आए (अथवा कि वह अवश्य सहायता चाहने को तुम्हारे यहां आएगा) तो उसे शीघ्र ही अपने राज्य से बाहर निकाल देना। उसे शरण मत देना। इस तरह कछवाहा राजा ने एक बार फिर से बूंदी को अपने अधिकार में किया। वहां के दुर्ग, महल सभी कुछ अपनी सेना के बल पर अपने बनाये

नारायणदास खत्री तब पूरे राज्य में गया और उसने अपनी सेना के सहारे सभी से हासिल (कर) वसूल किया। हे राजा रामसिंह! अब मैं राजा उम्मेदसिंह के जीवन का आगे का वृत्तांत सुनाता हूं। इस राजा ने पचास हजार की संख्या वाली सेना पर अपनी तलवार के प्रहार किये और तलवार के जलवे से ही फौज को फाड़ता (चीरता) वह पूर्व दिशा की ओर गया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ बुन्दीन्द्र-कूर्मकटककलहकरणकूर्म्मप्रतापसिंहीयसप्तदश स्वकीयत्रयोदश सुभट-सहित चालुक्यपृथ्वीसिंह शूरसप्तक सहितयादवदलेलसिंह मारकस्वसुत-त्रय सुभटपञ्चविंश त्युपेतकबन्धाऽमरसिंह सयवनशत्रुपञ्चक सहित-हड्डप्रयागसिंह स्वचतुरशीति झलायपुरीयैकोनविंशति सुभटयुतहड्डमर्याद सिंह तोकसिंहप्रहतकूर्म्मविजयसिंह स्वनामसजातीय संयुतकूर्म्मा-ऽजितसिंह सकूर्महम्मीरहड्डदेवसिंहसम्भरभवानीसिंहाऽऽक्रान्तकूर्म-माथवसिंह काबन्थत्रिकाक्रान्तकूर्म्माऽमानसिंह भगवत्सिंह भूपालसिंहा ऽर्जुनसिंह प्रमारोदयसिंह यादवव्याघ्रसिंह सहितभट्टजगराम बुन्दीद्रा-क्रान्तकूर्म्म विक्रम भैरव चाहुवाणस्थान सुरतानाऽऽदिसप्तशत सुभट-मरणद्वादशशत सुभटक्षतप्रापणहञ्जहयचरणकर्त्तनाऽनन्तररावराणिनस्स-रणकूर्म्मकटकविजयीभवनबुन्दीप्रविशनमष्टादशो मयूखः॥ आदितः ॥२९१॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में बूंदी के राजा का कछवाहे की सेना से युद्ध करना कछवाहे प्रतापसिंह के सत्रह और अपने तेरह सहित सोलंकी पृथ्वीसिंह का और सात वीरों सहित यादव दलेलसिंह को मारने वाले अपने तीन पुत्र और पच्चीस वीरों सहित राठौड़ अमरसिंह का, यवन सहित पांच शत्रुओं के साथ हाड़ा प्रयागसिंह का अपने चौरासी और झलाय नगर के उन्नीस वीरों सहित हाड़ा मर्यादासिंह का कछवाहे विजयसिंह को मारकर, तोकसिंह का अपने ही नाम वाले और अपनी जातिवाले अजितसिंह का कछवाहे हम्मीरसिंह सहित हाड़ा देवसिंह का कछवाहा माधवसिंह को मारने वाले चहुवान भवानीसिंह का, कछवाहा अमानसिंह, भगवंतसिंह, अर्जुनसिंह का मारने वाले राठौड़ अमरसिंह के तीन पुत्रों का पंवार उदयसिंह और यादव बाघसिंह को मारने वाले भाट जगराम

का तथा बूंदीश के मारे हुए कछवाहे विक्रमसिंह, भैरवसिंह चहुवान थानसिंह और सुरतानसिंह आदि सात सौ वीरों का मरना, और बारह सौ सुभटों का घायल होना, हंज नामक घोड़े का पैर कटे बाद रावराजा (उम्मेदसिंह) का निकलना, कछवाहा सेना का विजयी होकर बूंदी में प्रवेश करने का अठारहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से दो सौ निन्यानवे मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

नर समुद्र तरि नृप कढिय, अलप सत्थ रहि संग।
कोस तीन पहुंचत क्रमिय, तजि असु हंज तुरंग॥१॥

असि तुपकन बपु भिन्न अति, बलि इक चरन बिहीन।
नृप त्रय कोस निबाहयो, कठिन हंज हय कीन॥२॥

भूपहु अंग बिसल्य करि, सहिय अग्गि उपचार।
सस पलभोजी रत्ति रहि, बिरचिय प्रात बिहार॥३॥

गिरिन संधि अंतर कियउ, पूरब ओर प्रयान।
ढबिय इंद्रगढ नगर ढिग, चित्त निडर चहुवान॥४॥

हे राजा रामसिंह! रणक्षेत्र से मनुष्यों के समुद्र को (अर्थात् भारी सेना की भीड़ को) तैर कर पार करते हुए राजा उम्मेदसिंह निकला। इस समय राजा के साथ बहुत थोड़े लोग थे। वहाँ से चल कर राजा ने तीन कोस की दूरी ही पार की थी कि उसके हंज नामक घोड़े ने प्राण त्याग दिये। इस घोड़े के शरीर पर तलवार और बन्दूक की गोली से बने घाव थे और यह मात्र तीन टांगों वाला रह गया था तब भी वह अपने सवार स्वामी राजा उम्मेदसिंह को तीन कोस की दूरी तक लेकर आया। यहाँ पर राजा ने अपने शरीर को विसल्य (तीर आदि निकलवाकर) कर गर्म सेक (अग्नि उपचार) की सहायता से अपना उपचार किया। यहाँ राजा खरगोश के मांस का सेवन कर रात्रि विश्राम हेतु ठहरा और प्रातःकाल वह आगे चला। राजा ने पर्वतों की संधि में से होकर पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया और आगे वह इन्द्रगढ के समीप जाकर ठहरा। निडर चहुवान राजा ने अगला पड़ाव यहीं किया।

इंद्रगढाधिप देव प्रति, कहि पठई नरनाह।
हय हमरो गतप्रान हुव, हो जिहिं लरन उछाह॥ ५॥
तातैं पठवहु देव तुम, खासा हय इक खुल्लि।
अवर न चाहैं हमहु इन, भुजन कुमाई भुल्लि॥ ६॥
सुनि यह देव सिटाय सठ, त्रसित चुरायउ चेत।
यहै न जानी हम अनुग, तउ इक अश्वहि लेत॥ ७॥
इम अधर्म अहरि अधम, जैपुर गिनि बरजोर।
पच्छी यौं कहि मुक्कलिय, मूढ तजहु भुव मोर॥ ८॥

यहाँ ठहर कर राजा उम्मेदसिंह ने इन्द्रगढ़ के स्वामी देवसिंह के पास कहला भेजा कि हमारा घोड़ा रास्ते में ही मर गया जिसे रणभूमि में जाने का हमेशा उत्साह रहता था। इस स्थिति में हे देव सिंह तुम तुरन्त एक अच्छा घोड़ा हमारी सेवा में भेजो। हम तुमसे और अधिक कुछ नहीं चाहते। यद्यपि हम तुम्हारे स्वामी हैं हम चाहे तो और भी बहुत कुछ ले सकते हैं पर नहीं, उम्मेदसिंह को अपनी भुजाओं के भरोसे होती कमाई का विश्वास है। पर ऐसा सुनकर उस दुष्ट देवसिंह ने डरते हुए अपना ध्यान इस मांग पर नहीं लगाया। उस पापी ने अधर्म का आदर करते हुए जयपुर के राजा को अधिक शक्तिशाली माना और मातहत सेवक होते हुए भी उसने यह नहीं सोचा कि मेरा स्वामी मुझसे एक घोड़ा ही तो मांग रहा है उल्टा उसने यह कहलवाया कि मेरी जागीर की सीमा छोड़कर अन्यत्र चले जायें।

जिम तुम खोई निज पहुमि, बिनु मति दर्प बढाय।
तिम हमरी खोवन तकत, अश्व लैन यहँ आय॥ ९॥
निठुर बैन सुनि सहि नृपति, लिखी अब न कछु लैंहि।
जो तुम यह खायो जहर, दै हैं लहर कबैंहिं॥१०॥
इम कहाय नृप बर करिय, कोटा सीम प्रयान।
चम्मलि लंघि मुकाम किय, ग्राम रानपुर थान॥११॥

राजा उम्मेदसिंह! तुमने अबुद्धि होकर अपना दर्प बढ़ाया नतीजन अपना राज ही खो बैठे। अब क्या घोड़ा लेने को मेरे यहाँ आकर मेरी भी

जागीर खुसवाना चाहते हो? जब राजा ने अपने निष्ठुर मातहत के ऐसे वचन सुने तब प्रत्युतर में कहलाया कि मुझे कुछ नहीं चाहिए पर मेरे साथ ऐसा जहरीला (नशीला) व्यवहार जो तुमने किया है इसकी लहर (फल) भी तुम्हें मिलेगी (लेनी पड़ेगी)। ऐसा उत्तर कहला कर राजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सीमा में प्रयाण किया और राह में चम्बल नदी को पार कर राणपुर नामक गाँव में आ पड़ाव डाला।

पज्झटिका

रन सिंधु तरिग चहुवानराय, कछवाह भटन असिबर चखाय।
गिरि परियात्र द्रोनिन विहारि, उपनद्धि घाय बपु सल्ल्य टारि ॥१२॥

इमं होय इंद्रगढ पुर समीप, देवहिँ नटाय नृप बंसदीप।
उल्लंघि सरित चम्मलि अमान, कोटाग रानपुर दिय मिलान ॥१३॥

अरु सुभट अल्प नृप संग आय, रन दुसह कोन असु तजि रहाय।
अब मिलिय आनि सब अनुग अत्थ, अवरहु अनेक सुनि रन समत्थ ॥१४॥

उत कुम्म भटन लहि बिजय जंग, बुंदिय प्रवेस किय अति उमंग।
जिन रचिय अग्घ थिर नृपहिँ थप्पि, आयत्त बिरचि तिन दमन अप्पि ॥१५॥

कछवाहों की शत्रु सेना को अपनी श्रेष्ठ तलवार के घाव चखा कर और युद्ध रूपी समुद्र को तैर कर पार करता हुआ राजा उम्मेदसिंह पर्वत की परिक्रमा करता अर्थात उनकी खोहों को पार कर अपने घावों की मरहम पट्टी करवाने के बाद इन्द्रगढ़ के समीप राणपुर गाँव में पहुँचा। वह हाड़ा वंश का दीपक राजा अपने एक मातहत देवसिंह से एक घोड़े के लिए ना लेकर चम्बल नदी को पार करता हुआ कोटा की पहाड़ियों में बसे इस गाँव में आया और यहाँ पड़ाव डाला। इस समय राजा के साथ नगण्य संख्या में योद्धा थे। ऐसी स्थिति में दुस्सह युद्ध की वह क्या सोचता क्योंकि उसके साथ युद्ध में प्राण न्योछावर करने वाले नहीं थे। हाँ, अब यहाँ अवश्य राजा के कुछ सेवक आ मिलेंगे और कुछ रण में समर्थ योद्धा भी आ मिलेंगे। उधर कछवाहे योद्धाओं ने अमरपुरा के युद्ध में विजय हासिल की और अब उस उत्साह-उमंग से भरे योद्धाओं ने बूंदी में प्रवेश लिया। उन्होंने ऐसे लोगों को चुन-चुन कर जिन्होंने पूर्व में राजा उम्मेदसिंह को राजा के रूप में मान सहित स्थापित करने हेतु सहायता दी थी उन्हें अपने अधीन बना कर दण्डित किया।

कोटेस हिंतु पुनि यह कहाय, तुम चतुर नीति अहरि हिताय।
बुधसिंह सूनु हित करुन लैहिं, सत दोय दम्म हम नित्य दैहिं ॥१६॥

मध्यस्थ होय तुम साम लाय, तिहिं देहु कुम्म नृप पय लगाय।
कोटेस लुब्ध सुनि पाप प्रीत, मंजार पाय पय होत सीत॥ १७॥

स्वीकारि यहैहु जड़ छन्न साम, दिनप्रति लिय मासन द्विसत दाम।
नृप अंतिक पठये तेहु नाँहिं, उलटी खिल वंचन बुद्धि आँहिं॥ १८॥

कोटेस बहुरि किय यह कुकर्म, इम कोन कोन अक्खहिं अधर्म।
इत सुनिय रान जगतेस बत्त, बुंदीस सूर रन रचिय रत्त॥ १९॥

राजा उम्मेदसिंह ने ऐसी परिस्थिति में कोटा के राजा से कहलाया कि आप चतुर हैं इसलिए मेरी सहायता करें। नीति पूर्वक मुझ बुधसिंह के पुत्र पर करुणा कर दो सौ रूपये प्रतिदिन के मेरे खर्च की व्यवस्था करें। इसके लिए चूंकि आप सक्षम हैं इसलिए मध्यस्थता कर मेरे और कछवाहा राजा के बीच संधि करवा दें। मैं कछवाहा राजा के आगे अपने अहं का समर्पण करने को तैयार हूं। कोटा के लोभी राजा ने यह सुना तो प्रसन्न हो उसने पाप भरी प्रीत का प्रदर्शन किया। उसे तो यह अचिंता अवसर ऐसा मिला जैसे बिल्ली को अपने समक्ष ठंडा होता हुआ दूध उपलब्ध हुआ हो। उसने राजा उम्मेदसिंह की बात मान ली और कृत्रिम संधि का माहौल बना कर दो सौ रूपये प्रतिदिन के हिसाब से खर्च की रकम महिनों तक कछवाहा राजा से लेता रहा। उसने राजा उम्मेदसिंह को कछवाहा राजा के पास भेजकर नहीं मिलवाया उल्टे यह कहा कि उसके पास ठगने की बुद्धि है। कोटा के राजा ने इस प्रकार का कुकर्म किया पर सवाल यह है कि इस समय उसके अधर्म को अधर्म कहता कौन? अर्थात ऐसा कहने वाला कोई था नहीं। इसी समय उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने जब यह सुना कि बूंदी के राजा ने पूरी वीरता का प्रदर्शन करते हुए युद्ध किया।

दुव बेर कूरमन फोज फारि, बरछी गति प्रविस्यो बहु बिदारि।
करवाल झारि हद सरि कीन, बलि कढिय जानि हय पय बिहीन ॥२०॥

अब ग्राम रानपुर धाम आहिं, छत छाम तदपि नति नाम नाँहिं।
हय हंज जो कि पय भिन्न व्है न, छोरैं न हनत तो सत्रु सैन॥ २१॥

मन मित्र बाजि बिनु अब नरेस, बांछत कछु दुर्म्मन हय बिसेस।
यह सुनत रान हिय मोद आय, भूपहिं सिराहिं बीरत्व भाय॥ २२॥

हय खास नाम जिहिं होनहार, साखत्ति चामीकर सजि सुढार।
सिरूपाव उच्च इक रुचिर रंग, तरवारि खास इक तास संग॥२३॥

उम्मेद नृपति हित दिय पठाय, स्वीकरिय नृपहु गिनि हित सुनाय।
इम होत सरद रितु मज्झ आय, दक गगन उभय निर्मल दिखाय॥ २४॥

महाराणा ने सुना कि हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दो बार कछवाहों की सेना की घेराबंदी को फाड़ता हुआ रणभूमि में निकला और यह भी कि वह बरछी की मानिन्द सामने वाले शत्रु को चीरता हुआ उनके व्यूह में जा घुसा था। उसने युद्ध क्षेत्र में जोरदार तलवार चलाई। घमासान भिड़ंत दी और अपने एक पैरविहीन घोड़े पर बैठ कर वहाँ से सुरक्षित निकल आया। इन दिनों वह राणपुर नामक गाँव में रह रहा है। घावों से भरा है पर मन में कायरतापूर्ण नम्रता नहीं अर्थात् स्वाभिमानी वीर है और याद करता रहता है अपने हंज नामक घोड़े को जो तीन टांग का होकर भी उसे रणभूमि से बाहर निकाल लाया अन्यथा शुत्र सेना उसे मार ही डालती। इन दिनों वह राजा उम्मेदसिंह अपने प्रिय घोड़े से वंचित है और उस उदास राजा को एक अच्छे घोड़े की नितान्त आवश्यकता है। बूंदी के राजा का ऐसा ओजपूर्ण वृत्तान्त सुन कर महाराणा ने मन ही मन उसके वीरत्व भाव पर मोद प्रकट किया और तुरन्त ही अपनी सवारी का एक खास होनहार घोड़ा (जो आगे जा कर अपना नाम करेगा) भेजा। स्वर्ण के गहनों से सजा धजा घोड़ा ही नहीं उसके साथ एक सुरंगे रंग का सिरोपाव और एक खास तलवार भी महाराणा जगतसिंह ने राजा उम्मेदसिंह के पास भिजवाये। राजा ने भी इसे अपने हित में मान कर स्वीकार किये। उस समय शरद ऋतु का आगमन हुआ। पानी और आकाश दोनों स्वच्छ होने लगे अर्थात् निर्मल नजर आने लगे।

षट्पात्

गरजि मेघ उग्घरिय भरिय नव नीर निवाननं,
पितरन कव्य पजोय बिरचि नृप निगम बिधाननं।

सुनि कुलदेविय पूजि सद्धि कत्तिय ब्रत संजम,
अब आगम हेमंत किन्न अगहन मृगया क्रम।
आखेट थान कोटेस के कति मृगराज बिहीन किप॥
सद्धिय परक्खि आयुध सकल रानपुर सु इम नृपरहिय॥ २५॥

अपने नये पानी से सारे कुएँ, बावड़ी और तालाबों को गरजते हुए मेघ भर कर विदा हुए। वहीं राजा भी अपने पूर्वजों को श्राद्ध के निमित्त श्राद्ध का अन्न (कागोल) पूरे विधि विधान से अर्पण कर चुका। इसके बाद अपनी कुलदेवी का आराधन पूजन कर कार्तिक माह के सारे व्रतों का संयमपूर्वक पालन कर चुका (यहाँ ग्रंथकार ने परोक्ष रूप से समय बीतने का वर्णन किया है। पावस के बाद आश्विन माह के श्राद्ध पक्ष और नवरात्रि भी व्यतीत हो चुकी, दीवाली (कार्तिक) भी निकल गई है) अब हेमन्त ऋतु का आगमन हुआ। अगहन माह में शिकार खेलने का समय आया। तब राजा उम्मेदसिंह ने कोटा के राजा की सभी शिकारगाहों को सिंहविहीन बना दिया। उस तरह बूंदी का राजा अपना शस्त्राभ्यास करता हुआ राणपुर नामक गाँव में रहने लगा।

दोहा

ईडरिया उपटंक इत, रामसिंह रट्ठोर।
हो जो तब पुर बनहड़ा, सुनि नृप बिक्रम सोर॥ २६॥
ताकै ही इक पुत्रिका, बखतकुमरि अभिधान।
ताको रचि सगपन त्वरित, संभर हिंतु सयान॥ २७॥
पठयो डोला रानपुर, सचिव सुभट दै संग।
उपयन करन उमेद सौं, जानि बीर बर जंग॥ २८॥
सचिव भटन तब प्रीति सह, अरहि रानपुर आय।
कन्या वह बुंदीस कँहँ, प्रथित दई परिनाय॥ २९॥

इधर बनेड़ा का स्वामी जो ईडरिया खाँप का राठौड़ रामसिंह था उसने जब बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के पराक्रम की कीर्ति सुनी तो उसने अपनी पुत्री जिसका नाम बखतकुमारी था की सगाई बुद्धिमान वीर चहुवान राजा से कर दी और तुरन्त ही अपने सचिव और योद्धाओं के साथ राणपुर

में डोला (लड़की को लड़के के घर ले जाकर विवाहने को डोला भेजना कहते हैं) भिजवाया ताकि उसका विवाह राजा उम्मेदसिंह से सम्पन्न करवाया जा सके। बनेड़ा के सचिव और भले सरदार तब प्रीतिपूर्वक राणपुर पहुँचे और यहाँ आकर रामसिंह की कन्या का विवाह राजा उम्मेदसिंह के साथ रचाया।

कन्या के काका हु की, बि सुत्ता रूप बिसाल।
रान रु माधव एहु दुव, व्याहे पूरब काल॥ ३०॥

सगे उचित यातैं समुझि, परनि नृपहु मुद पात।
सक गुन नभ धृति लगन सुभ, दोजि सहा अवदात॥३१॥

रंग्यो नहिँ शृंगार रस, अबहि बीर अनुसारि।
बहुरि बढ्यो मन बप्प की, धरनी पर धक धारि॥ ३२॥

दुलहनि कोटा मुक्कलिय, जत्थ अनुज तिय जामि।
अप्पन मन रन उम्महृयो, इच्छत जय आगामि॥ ३३॥

इस कन्या बखतकुमारी के काका की दो पुत्रियां जो अत्यधिक सुन्दर थीं उनका विवाह पूर्व में ही उदयपुर के महाराणा और कोटा के माधवसिंह से करवाया जा चुका था। राजा उम्मेदसिंह ने तब राठौड़ रामसिंह के कुल को समधी बनाने योग्य समझा और विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीन के मृगशिर माह के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि के उत्तम लग्न समय में विवाह रचाया। इस नवौढ़ा पत्नी के आने के बाद भी राजा उम्मेदसिंह श्रृंगार रस के रंग से नहीं रंगा वह तो प्राकृत वीर की तरह अपने पिता की जागीर को किसी भी प्रकार से वापस लेने का हठ पकड़ कर वांछित प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी नई दुल्हन को भी कोटा भेज दिया जहाँ राजा की बहिन, छोटा भाई ओर पूर्व पत्नी थी और अपने मन को दृढ़तापूर्वक युद्ध रच कर उसमें विजय पाने हेतु लगाया।

षट्पात

बुंदियपुर बुधसिंह सुतहिँ सुनि बहुरि चलावत,
कोटापति लगि लोभ कहिय इम भुम्मि न आवत।
हम उद्यम यह करत हेत मरहट्ठन सम्मलि,
बिनु बल जैहों लाल निट्ठि लैहो यह चम्मलि।

दै इष्ट सौंह इम अक्खि द्रुत बुंदीसहिं रक्ख्यो बरजि।
सतदोय दम्म कछवाह सन भेट होत यह लोभ भजि॥३४॥

इधर जब कोटा के राजा ने सुना कि बूंदी के राजा बुधसिंह का पुत्र (उम्मेदसिंह) फिर से बूंदी लेने के प्रयास में लगा है और इसके लिए सेना लेकर चढ़ाई करने की ताक में है तो उसने उम्मेदसिंह से कहलाया कि इतनी आसानी से तुम्हारी भूमि तुम्हारे अधिकार में नहीं आ सकती। इसलिए हमें इस उद्यम के लिए मराठों की मदद लेनी चाहिए। मैं इसके प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके बाद कोटा के राजा ने उम्मेदसिंह को अपने इष्टदेव की शपथ दिला कर उसे चढ़ाई करने से रोका क्योंकि उसे अपने लोभ की परवाह थी जिसके चलते वह कछवाहा राजा से दो सौ रूपये प्रतिमाह बूंदी के राजा को देने के नाम पर प्राप्त जो कर रहा था।

दोहा

बंधु बर्ग उमराव निज, अजबसिंह अभिधान।
कोइलपुर पति भेजि करि, अटक्यो नृप प्रस्थान॥३५॥

कोटा के राजा ने तुरन्त अपने बांधव सामंत अजबसिंह जो कोइला का स्वामी था को राणपुर भेजा और उम्मेदसिंह को चढ़ाई करने से रोका।

षट्पात्

माधानी अजबेंस आय भूपहिं इम अक्खिय,
गिनत अप्प रन सुगम चंड असि बर नहिं चक्खिय।
अप्पन परिकर अलप दुसह जैपुर वह दाहत,
सिंहन आगस ससहिं चिन्ह अनुचित असु चाहत।
यातैं न तुमहिं जावन उचित कोटापति यह हित धरत।
दृढ मंत्र बुल्लि दक्खिन दलन जतन लैन बुंदिय करत॥३६॥

माधानी वंश के हाड़ा अजबसिंह ने तब यहाँ आकर राजा उम्मेदसिंह से कहा कि आप युद्ध को आसान चीज मान रहे हो क्योंकि आपने अभी तक प्रचण्ड तलवारों के गहरे घाव नहीं चखे हैं। अपने परिकर तो अल्प संख्या में है जबकि जयपुर राजा के पास हमें जला कर खाक कर देने वाली दुस्सह सेना है। आपका यह प्रयास शेर को छेड़ कर खरगोश की

तरह जीवित रहने की आशा करने जैसा है जो अनुचित है। इसलिए कोटा के राजा ने कहलाया है कि आपका बूंदी पर चढ़ाई करने जाना इस समय कतई मुनासिब नहीं। हम मंत्रणा में संलग्न हैं और शीघ्र ही मराठों की सहायता प्राप्त कर आपके लिए बूंदी लेने का प्रयत्न करेंगे।

सुनत एह गिनि सत्य भूप कोटेस भरोसैं,
जान्यों काका करत महत उद्यम यह मोसैं।
तो इनकी अब देखि बहुरि बनिहै सु बिचार हिं,
सुमिरी यह न सयान कुहक निज काम निकारहिं।
नृप रहिय होत उद्योग लखि मास सत्तबिनु भुव जतन।
मृगया प्रसक्त कोटा मुलक गंजत सिंह बराह गन॥३७॥

राजा उम्मेदसिंह ने कोटा के राजा के इस सन्देश को सुन कर इसे सत्य समझ लिया और वह कोटा के राजा के भरोसे निश्चिंत हो गया। उसने सोचा कि मेरे काका मेरे लिए यह बड़ा उद्यम करने जा रहे हैं तो अभी इसकी प्रतीक्षा करना उचित है। आगे की आगे देखी जाएगी। उसने तनिक भी यह नहीं सोचा कि उसका कपटी काका (कोटा का राजा) अपना मतलब निकालने के लिए इस उपक्रम को लम्बित करवा रहा है। इस तरह राजा उम्मेदसिंह ने उन यत्नों की प्रतीक्षा में सात माह का समय व्यतीत कर दिया जिनसे उसकी जागीर वापस मिलने की उम्मीद थी और वह मृगया में आशक्त पराक्रमी राजा उम्मेदसिंह कोटा राज की सीमा में सिंह और सूअरों के शिकार करता रहा।

दोहा

मधुकरदुग्ग मुकाम किय, ग्रीखम अंत नरेस।
महडू चारन दान तँहैं, बरनी कित्ति बिसेस॥ ३८॥

अमरपुरा के जंग को, काव्य जथामति ठानि।
गीत छंद मरुबानि गत, नृपहिं सुनायो आनि॥ ३९॥

सुनत भूप बखसीस किय, रीझि तरल हयराय।
खास जरिय पोसाक पुनि, कुंडल कटक सुभाय॥ ४०॥

सनमान्यौं कविराव कहिँ, डेरा तास पधारि।
भयो बहुरि हत्थिय हुकम, नूतन काव्य निहारि॥ ४१॥
सो गज बुंदिय तखत जब, अप्प बिराजे आनि।
तब दिन्नो यह अत्थ हम, भावी लिखिय बखानि॥ ४२॥

राजा उम्मेदसिंह ने ग्रीष्म ऋतु के अंत में मधुकरगढ़ नामक पुर में अपना मुकाम किया। यहाँ पर महड़ू शाखा के एक चारण कवि दाना ने राजा उम्मेदसहि की कीर्ति का बखान किया। दाना मेहड़ू ने अमरापुर के युद्ध में राजा द्वारा प्रदर्शित पराक्रम को अपनी मति अनुसार मारवाड़ी भाषा के गीत, छंद जैसी काव्य विधाओं में पिरोया और इस वीरता पूर्ण काव्य को राजा को सुनाया। साहस का संचार करने वाले वीर रस से ओतप्रोत इस काव्य को सुन कर रीझ में राजा उम्मेदसिंह ने कवि को एक चपल घोड़ा इनायत किया। इस घोड़े के साथ राजा ने एक जरी की पौशाक, कानों में पहनने के मोतियों वाले कुण्डल और हाथों में पहनने के स्वर्ण कंगन भी प्रदान किये। राजा उम्मेदसिंह अपने इस कवि को आदर प्रदान करने की नीयत से पैदल चल कर उसके शिविर तक गया। वहाँ राजा ने इस कवि दाना मेहड़ू से नवीन काव्य सुना और उसके पुरस्कार में एक हाथी और देने का वादा किया। यह हाथी राजा उम्मेदसिंह ने बाद में बूंदी के राजसिंहासन पर आसीन होने के अवसर पर कवि को प्रदान किया था। हे राजा रामसिंह! यहाँ मैंने भविष्य में घटित घटना को व्यक्त किया है।

षट्पात

सक बेद ख बसु सोम मास सावन तदनंतर,
भैंसरोरगढ सीम रमिग आखेट भूप बर।
पुनि भद्दव सित पच्छ आय बेघम एकादसि,
भयो जानि दुरभिच्छ बिपति चिंतत दिन दुव बसि।
दरियाव नाम गजराज निज उदयनैर बिक्रय करन।
मुक्कल्यो पुरोहित स्वीय तब दयाराम द्विज धर्मधन॥ ४३॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चार के श्रावण माह के बाद राजा

उम्मेदसिंह भैंसरोड़गढ़ की सीमा पर शिकार खेल कर भाद्रपद माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि के दिन वहाँ से बेगूं आया। यहाँ उसने दो दिन बिताये पर उसने देखा कि यह क्षेत्र भयंकर दुर्भिक्ष की चपेट में है। इस बात की चिंता करते हुए राजा ने अपने दरियाव नामक हाथी को बेचने का मानस बनाया और इसके लिए राजा ने अपने पुरोहित दयाराम नामक धार्मिक ब्राह्मण के साथ हाथी को विक्रयार्थ उदयपुर भिजवाया।

दोहा

जाय पुरोहित उदयपुर, गज बिक्रय तँहँ ठानि।
दम्म सहँस दुव मुल्ल के, पठये समय प्रमानि॥ ४४॥
बिनु भुव सोलह बरस तैं, भुकतैं आपति भार।
अब अबुट्ठि कति दिन टिकहिँ, दम्म ति दोय हजार॥४५॥

दयाराम पुरोहित ने तब उदयपुर नगर में पहुँच कर हाथी को बेचने का प्रयत्न किया और अन्ततः दो हजार के मूल्य में बेच कर यह राशि राजा के पास भेजी। बिना जागीर के पिछले सोलह वर्षों से आर्थिक तंगी और कई आपत्तियों का भार राजा झेल रहा था। अब इस अनावृष्टि (अकाल) में ये दो हजार रूपये कितने दिन टिकने वाले थे? अर्थात् नहीं टिकने वाले थे।

षट्पात

सावन सूको गयउ बेर दुव अलप बुट्ठि घन,
ज्यौंही भद्धव जात घोर हाकार उट्ठि घन।
हड्डोतिय मेवार तंग ओदन दुव देसन,
बनिय आनि इहिँ बेर निट्ठि निरवाह नरेसन।
नृप तबहि चिंति आपति धरम स्वीय भटन संजुत सजिय।
मन जोर पैठि बुंदिय मुलक गैनोलीपुर लुट्टि लिय॥ ४६॥

इस वर्ष दो बार बहुत हल्की वर्षा हुई और श्रावण मास तो सूखा ही चला गया। अब जब भाद्रपद माह भी बिना बरसात के गुजरने लगा तो सभी ओर हाहाकार मच उठा। हाड़ोती और मेवाड़ दोनों देश अन्न की कमी से परेशान हो उठे। इस समय जैसे-तैसे साहुकारों ने आकर राजाओं के

निर्वाह की व्यवस्थाएं की। राजा उम्मेदसिंह ने भी इस कठिन समय को देखते हुए अपने दल को सज्जित किया और आपदधर्म का निर्वाह करते हुए मन में बूंदी लेने की सोच कर गेनोली नामक पुर को जा कर लूट लिया।

दोहा

गैनोली बसु लुट्टि इम, अति बिपत्ति चहुवान।
तदनु दुग्ग रनथंभ की, सीमा करिय प्रयान॥ ४७॥

नगर नाम खंडारि ढिग, कछुदिन बिरचि मुकाम।
कोटापति को लोभ सुनि, ठग मन्यौं अघ ठाँम॥ ४८॥

उत सु पुरोहित उदयपुर, दयाराम अभिधान।
पुब्बहि रान अधीन ह्वो, लै निदेस चहुवान॥ ४९॥

आत जात नृप ढिग रह्यो, स्वामि धरम भनि भाव।
तातैं बेचन संग तस, दयो हुतो दरियाव॥ ५०॥

उस चहुवान राजा उम्मेदसिंह ने इस बड़ी विपत्ति के कारण गेनोली नगर से धन लूट कर वहाँ से रणथंभोर दुर्ग की सीमा में जाने हेतु प्रयाण किया। वहाँ पहुँचने के बाद राजा ने खंडारी नामक नगर के समीप अपना मुकाम किया। यहाँ राजा को पता चला कि कोटा के राजा ने अपने लालच के चलते कपट भरा कृत्य किया है और उस पापी ने अपने कार्य को (राजा उम्मेदसिंह से) छिपाये रखा है। उधर राजा ने पूर्व में जिस दयाराम नामक पुरोहित को उदयपुर भेजा था वह पहले से महाराणा के अधीन रह रहा था और अपने स्वामी राजा उम्मेदसिंह के पास निर्देश लेने हेतु आता जाता रहता था। यही कारण था कि राजा ने इस स्वामिभक्त सेवक को दरियाव नामक हाथी बेचने के बहाने उदयपुर भेजा था।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे सप्तम रासौ बुन्दीन्द्र-हयमरणमृदुचरण विचरण कृदिन्द्रिगढाऽऽगमनाऽब्बयाचनदेव सिंहनेति-कथनहड्डेन्द्रराणपुर निवसनतदनुकूल बुन्दीजन कूर्म्मकर्तृक नियमन बुन्दीन्द्रनिमित्त मुद्राशतद्वय महारावप्रापणरावराजाऽर्थराणाहय पट खड्ग प्रेषणघनाऽत्यय हेमंतर्त्वागमनभूभृत्तृतीयो द्वहन कोटेशनृपोद्यमवार-सम्भरमधुकरदुर्ग कालक्षेपणसम्प्रदान कविदान चारणदान प्रभु भैंसरोड़

दुर्गप्रान्ताऽऽखेट क्रीड़न ततेघेद्ध मपुराऽऽगमनदुर्भिक्षपतन विक्रया-ऽर्थदरियावगजोदयपुरप्रेषण विपद्धर्म्मधरधरेशगैणोली पुरलुण्टनरणस्तम्भ दुर्गप्रान्त खण्डरिपुरकिञ्चि न्निबसन कौटेश कोहक्यविबोधन मेकोनविंशो मयूखः ॥ आदितः ॥ ३०० ॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की सप्तम राशि में बुन्दी के पति का घोड़ा मरने से कोमल चरणों से चलकर इन्द्रगढ आना, घोड़ा मांगना और देवसिंह का मना करना, हाड़ाओं के राजा का राणपुर में निवास करना, उम्मेदसिंह के अनुकूल बूंदी के लोकों का कछवाहों का कैद करना, उम्मेदसिंह के कारण दो सौ रूपये रोज कोटा के महाराज का पाना रावराजा के अर्थ महाराणा का घोड़ा, वस्त्र और खड्ग भेजना, मेघों के मिटने पर हेमंत ऋतु के आगम में भूपति का तीसरा विवाह करना, कोटेश के उद्यम के समय में चहुवाण (उम्मेदसिंह) का मधुगढ़ में समय बिताना, दाना नामक चारण को दान देकर राजा का भैंसरगेड़गढ़ के प्रान्त में शिकार खेलकर वहाँ से बेघमपुर आना, दुर्भिक्ष पड़ने से दरियाव नामक हाथी को बेचने के अर्थ उदयपुर भेजना, आपद्धर्म को धारण करके भूपति का गैणोलीपुर को लूटना, रणस्थंभगढ़ के प्रान्त में खंडारपुर में कुछ दिन ठहरना, कोटा के पति का ठगपन जानने का उन्नीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

दयाराम द्विज सहित रान इकदिन रहस्य किय,
साहिपुर प सीसोद बीर उम्मेदहु बुल्लिय।
स्वीय सुभट पुनि च्यारि प्रथम भारत सेनापति,
दुरग अग्ग देवलिय हठन जिहिँ किय सालम हति।
देवगढ अधिप जसवंत पुनि संगाउत चौंडा जनन।
पतिदेलवाड़ झल्ल प्रथित राघवदेव निसंक रन ॥१ ॥

हे राजा रामसिंह! उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने एक दिन इस पुरोहित दयाराम के साथ एकान्त में सलाह मंत्रणा की और शाहपुरा के स्वामी वीर उम्मेदसिंह को बुलवाया। महाराणा ने अपने चार सामन्त योद्धाओं

को मंत्रणा के लिए याद किया। पूर्व में शाहपुरा का राजा भारतसिंह सिसोदिया जिसने सेनापति बन कर देवली के दुर्ग के समक्ष हठपूर्वक युद्ध करते हुए शत्रु सालमसिंह हाड़ा का सफाया किया था। यह राजा उम्मेदसिंह सिसोदिया उसी वीर का पुत्र था। महाराणा ने उसके अतिरिक्त देवगढ़ के स्वामी और चूंडा के वंश के सांगावत वंशीय जसवन्तसिंह को आमंत्रित किया। वहीं रणभूमि में निडर रहने वाले देलवाड़ा के स्वामी झाला राघवदेव को भी बुला भेजा।

दोहा

रायसिंह झल्ला बहुरि, नगर सादड़ी नाह।
इन जुत रान रहस्य किय, चित्त जैपुर जय चाह॥ २॥

उपरोक्त सामंतों के अलावा महाराणा जगतसिंह ने दूसरे झाला सादड़ी के जागीरदार रायसिंह को इस मंत्रणा के लिए बुलाया कि हमारे मन में जयपुर को विजित करने की चाह है, उसके लिए क्या किया जाए?

षट्पात्

कहिन रान कोटेस कितव दुव बेर बदलि गय,
अब पुनि इक्कत होन चवहि पठवाय दूत चय।
बंचक को बिसवास करन काको चित चाहत,
दयाराम सुनि करिय अरज करजोरि उमाहत।
प्रतिअब्द आत श्रियद्वार वह अन्नकूट सद्धन समय।
तब चलन तत्थ अप्पन उचित माधव सहित निहारि नय॥ ३॥

महाराणा जगतसिंह ने अपने चारों सामन्तों से मंत्रणा करते हुए कहा कि देखो, वह कोटा का ठग राजा पहले भी दो बार अपनी बात से बदल चुका है पर अब फिर से हमारे साथ एका (एक्य) करना चाहता है और इसके लिए अपने दूतों के समूह हमारे पास भेज रहा है। यह सुन कर दयाराम पुरोहित ने करबद्ध निवेदन किया कि हे महाराणा! ऐसे बंचक (कपटी) का विश्वास करने को किसका मन साथ देगा? उसने महाराणा से कहा कि वह कोटा का राजा प्रत्येक अन्नकूट के अवसर पर पूजा करने नाथद्वारा आता है और इस बार भी आ रहा है। अतः उस अवसर पर आप

लोगों का वहाँ जाना ठीक रहेगा ताकि आप माधवसिंह की नीति का परीक्षण कर सकें।

हरि प्रतिमा के अग्ग तबहिं कोटेसहिं अक्खहिं,
तुम बंचक चलबुद्धि मित्र भावहि हम रक्खहिं।
जो अब इक्कत होत ततो हरि इष्ट सपथ करि,
सदा साम लिखि देहु अब न डरपहु कूरम अरि।
छद हम लिखाय कोटेस को पुनि प्रसन्न मरहट्ठ बरि।
खंडुव मलार हुलकर तनय बुल्लहु समर सहाय बरि॥ ४॥

प्रभु की प्रतिमा के समक्ष कोटा के राजा के आगे हम यह कहेंगे कि तुम (चंचल) चलायमान बुद्धि के हो कर एक वंचक हो फिर भी हम तुम्हारे साथ मित्रता का भाव निभाते आ रहे हैं। यदि अब तुम हमारी एकता चाहते हो तो तुम्हें भगवान श्रीनाथ जी की मूर्ति के सामने हाथ कर शपथ उठानी पड़ेगी और हमसे लिखित में यह इकरार करना होगा कि अब आगे कछवाहा शत्रु से नहीं डरोगे। आप इस तरह का पत्र कोटा के राजा से लिखवा कर लेंगे फिर हम मराठों को हमारी सहायता करने के लिए राजी करेंगे और मल्हारराव होल्कर के पुत्र खांडेराव होल्कर को अपना बना कर युद्ध में उसका सहयोग लेंगे।

दोहा

दयाराम इम अरज करि, थप्यो यह दृढ मंत्र।
सुपहु रान सुनि स्वीकरिय, सुभटन सहित स्वतंत्र॥ ५॥

दयाराम पुरोहित ने इस तरह पूरी योजना का खुलासा करते हुए महाराणा के समक्ष निवेदन किया। महाराणा ने भी इस दृढ़ प्रस्ताव की मंत्रणा को सुन कर अपने सामन्तों सहित इस योजना के अनुरूप आगे बढ़ने की स्वीकृति प्रदान की।

सोरठा

तदनंतर नृप राँन, देवकरन कँहँ दूर करि।
पंचोली सु प्रधान, नाम भवानीदास किय॥ ६॥

इसके बाद महाराणा जगतसिंह ने अपने देवकर्ण नामक प्रधान को अपने पद से हटा कर भवानीदास नामक पंचोली को उसके स्थान पर अपना प्रधान सचिव नियुक्त किया।

षट्पात्

इत जैपुर पहिलैंहि मरिग खत्रिय राजामल,
कोबिद केसवदास हुतो सुत तास मंत्र बल।
तब नृप ईश्वरिसिंह किन्न वह सचिव सिरोमनि,
पिसुन मरन तिहिं पिठ्ठि भूप प्रति इम चुगली भनि।
हेनृप अमात्य केसव कितव मंत्रैं तुमहिं न मंत्र मद।
याके उमेद माधव अरथ छन्नैं आवत जात छद॥ ७॥

उधर जयपुर में वहाँ के प्रधान खत्री राजामल का देहांत हो चुका था और उसकी जगह उसके पुत्र चतुर केशवदास ने अपनी मंत्रणा के बल पर ले ली थी। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने उसे अपना प्रधान सचिव नियुक्त किया पर उसके विरोधी लोगों ने पीठ पीछे उसकी शिकायत राजा से की कि हे राजा! आपका यह नया अमात्य केशवदास खत्री कपटी है और अपने मद में यह आपकी राय को अहमियत नहीं देता। इसके पास बूंदी के राजा उम्मेदसिंह और कोटा के स्वामी माधवसिंह के गुप्त पत्र आते रहते हैं अर्थात् यह उनसे भीतर ही भीतर मिला हुआ है।

सुनि यह ईस्वरिसिंह मूढ तत्व न पहिचानिय,
काकन कथित बिधाय हंस मारन मत मानिय।
खत झूटे लिखि खलन नृपहिं दिन इक्क बताये,
मूरख सच्चे मन्नि गडे ओगुन बहु गाये।
केसव सु मंत्रि बुलवाय कै कुनृप तास अपहास करि।
अक्खी कुमंत्रि ए दल लखहु सुनि केसव लिय नैंन भरि॥ ८॥

ऐसी शिकायतें सुन कर भी मूर्ख कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने असली स्थिति को नहीं पहचाना। उसने काक पक्षियों के कहने पर हँस पक्षियों को मारने की मति का अनुसरण किया। एक दिन चुगलखोरों ने उसके लिखे कृत्रिम पत्र राजा को दिखलाए पर मूर्ख राजा ईश्वरीसिंह ने उन्हें सच्चा मान

कर प्रधान के अवगुणों पर विचार किया। उसने अपने नये मंत्री केशवदास खत्री को बुला कर उसका उपहास किया और कहा ओ कुमंत्री! इन पत्रों को देख! यह सुनकर केशवदास की आंखों में आंसू आ गए।

दोहा

अक्खी केसव अबहि नृप, निश्चय करहु निदान।
जो ए दल मेरे लिखे, लेहु ततो मम प्रान॥ ९॥
कूरम तब निश्चय करिय, निकसे पत्र असत्य।
बिनु आगस जो मारतो, होतो ससचिव हत्य॥ १०॥
तदपि कुम्म लिय सचिवपन, केसव करिय वकील।
पठयो दक्खिन नन्ह पँहँ, सिखई मन्नि कुसील॥ ११॥
नट्टानी उपटंक इक, हरगोबिंद स नाम।
कियउ मुसाहब बनिक बह, कूरम नृप हित काम॥ १२॥

अश्रुभरी आंखों से खत्री केशवदास ने राजा से निवेदन करते हुए कहा तहकीकात करवा लें यदि ये मेरे लिखे साबित हो जाएं तो आप निश्चय ही मेरे प्राण लें। मुझे कोई एतराज नहीं होगा। यह सुनकर कछवाहा राजा ने तहकीकात की और वे पत्र कृत्रिम निकले। यदि साबित होने से पहले मरवा देता तो राजा निश्चय ही सचिव सहित मारा जाता। इतना होने पर भी राजा ईश्वरीसिंह ने केशवदास से प्रधान पद ले लिया और उसे राज का वकील बना कर दक्षिण में भेज दिया। खोटे स्वभाव वाले कुशील राजा ने तब भी सिखलाई हुई बात का अनुसरण किया और नाटाणी उपटंक वाला एक हरगोविन्द नामक बनिया था उसे राजा ने अपना हितवर्द्धक मान कर मुसाहिब बनाया।

षट्पात

पुत्ती इक तिहिँ गेह रूप जुब्बन गुन मत्ती,
बत्ती बय छबि तास पास कूरम नृप पत्ती।
कत्ती सम सुनि कढिग छेकि पंच हि सग छत्ती,
दुत्ती दासिय भेजि प्रेमपासिय गर धत्ती।

लंपटहिं काम जुत्ती लगत रतउत्ती चिर चंड रय।
सुत्ती समीप चाही सुनक कुत्ती जिम कत्ती समय॥१३॥

इस नाटाणी के घर में एक अल्हड़ युवा, अनन्य रूपवती और गुणवान कन्या थी। जो इस नाटाणी की पुत्री थी उसके रूप-योवन के समाचार जब राजा ईश्वरीसिंह के पास पहुँचे। इस रूप चर्चा की वार्ता सुनते ही राजा की छाती को कामदेव के पाँचों ही बाण बेधते हुए निकल गए। राजा ने अपनी दासी को दूती बना कर उस कन्या के गले में प्रेम का फंदा डलवाया। इस लंपट के कामदेव की जूती (मार) लगते ही उस चिर और भंयकर कामवेग वाले राजा ने कार्तिक माह में कुत्ता जैसे कुत्ती को चाहता है उसी तरह उस नाटाणी कन्या को अपने समीप (साथ) सुलाना चाहा।

दोहा

मगन पुब्ब अनुराग मैं, लगन मिलन द्रुत लग्गि।
कुम्म पुरंदर कै किरी, अंदर बम्मह अग्गि॥१४॥
दूतीजन पठवाय द्रुत, साम उपाय प्रसारि।
आनी नृप ढिग अंगना, बानी बिनय बिथारि॥१५॥
राजकाज भुल्ल्यो रसिक, छई मदन सिर छाँह।
कूरम डारी कंठ अब, बनिक सुता कै बाँहँ॥१६॥
रत्ति जु तिय नृपढिग रहत, प्रात जात निज गेह।
दिन बिच तिहिं देखैं बिनाँ, दुमन रहैं थकि देह॥१७॥

पूर्वानुराग (मिलन से पूर्व की प्रीति) में मस्त होकर कछवाहों के इन्द्र (राजा) की लगन मात्र इस कन्या से मिलने में लग गई। जैसी मिलन की आग अहिल्या से मिलने में इन्द्र को लगी थी वैसी ही कछवाहा राजा के भीतर प्रकट हुई। उसने तुरन्त अपनी दासियों को दूतियाँ बना कर नाटाणी के घर भेजा जिससे मिलन की सूरत निकाली जा सके। वे दासियाँ मृदु और विनम्र वाणी बोल कर फुसलाते हुए उस नाटाणी कन्या को राजा के पास ले आई। उससे मिलने के बाद राजा ईश्वरीसिंह पर कामदेव की ऐसी छाया पड़ी कि वह रसिक राजा राज-काज का अहम् दायित्व भूल

गया। कछवाहा राजा ने उस बनिक कन्या के गले में अपनी गलबाँहें क्या डाली उसे इसके बाद दीन-दुनिया की कोई खबर न रही। वह नाटाणी कन्या रात्रि को राजा के पास महल में रहती और प्रात:काल अपने घर जाती पर इस बीच वाले समय अर्थात् दिन के समय वह राजा को नजर नहीं आती इसके सबब राजा उदास रहने लगा और इससे दिन-दिन उसका स्वास्थ्य कमजोर होने लगा।

प्यारी कौं दिन बिच प्रकट, जो बुल्लै निज पास।
जनक तास तो जानिकैं, बिरचैं राज्य बिनास॥१८॥

बिनु देखैं निमिख न बनैं, देखन दुल्लभ दीह।
यातैं बिरचि उपाय इक, लोपी लज्जा लीह॥१९॥

जैपुर पिक्खन व्याज करि, प्यारी पिक्खन काज।
बनवाई महलन बुरज, तुंगन की सिरताज॥२०॥

जातैं सब जैपुर नगर, दिठ्ठि परत अघ आय।
तक्कै प्यारिय जाय तँहैं, छत्र मदन इम छाय॥२१॥

राजा दिन के समय किसी बहाने से भी अपनी प्रिया को अपने पास इस भय ने नहीं बुलाता था कि कहीं इसकी भनक उस (कन्या) के पिता को लग गई तो वह (हरगोविन्द नाटाणी) राज्य का विनाश कर डालेगा। बिना देखे राजा निभिष मात्र भी नहीं रह सकता था और दिन में अपनी प्रिया की झलक मिलना दुर्लभ हो गया था। ऐसी स्थिति में राजा ने लज्जा की सीमा रेखा को लांघ कर एक उपाय सोचा। उसने अपनी प्राण प्यारी को देखने के लिए जयपुर शहर को देखने का बहाना बनाया और इसके लिए राजा ने एक बहुत ऊँची मीनार बनवाई। इस ऊँची महलनुमा बुर्ज (ईसरलाट) के ऊपर खड़े होने पर पूरा जयपुर नगर नजर आता था। राजा इस पर बैठ कर अपनी प्रिया (उस नाटाणी कन्या) को इधर-उधर जाते हुए देखता रहता। राजा पर काम-वासना का ऐसा नशा तारी हो गया।

षट्पात्

सक कृत नभ बसु सोम बिसद बाहुल पड़िवा पर,
दरसन हित कोटेस गयउ श्रियद्वार उमँग अर।

करन रान अनुकूल पत्त लिखि भेजि उदैपुर,
बुल्लिय माधव सहित धरा संगर थंभन धुर।
सुनि पत्त रान माधव सहित मुदित होय आयहु मिलन।
गुन कोस एह सम्मुह गयउ मिलिय प्रीति अनुकूल मन॥२२॥

उधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चार के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की प्रथमा तिथि के दिन कोटा का राजा उमंग से भरा अपने इष्टदेव के दर्शन करने नाथद्वारा आया। यहाँ से उसने उदयपुर के महाराणा को अनुकूल बनाने का समय देखकर एक पत्र लिख भेजा। इस तरह उस कोटा के राजा माधवसिंह ने महाराणा के साथ अपनी भूमि के लिए रणआंगन में वीरता प्रदर्शित करने वाले (माधवसिंह कछवाहा) को बुलवाया। महाराणा का पत्र सुन कर राणा, माधवसिंह मुदित मन से मिलने आये। महाराव ने उसके स्वागत में तीन कोस की पेसवाई की और मिलने पर स्नेह का प्रदर्शन किया।

दोहा

तीन हि नृप नयरीति तकि, रचि मिलाप पटु प्यार।
हरिमंदिर एकत्त हुव, करन मंत्र श्रीद्वार॥ २३॥
कहिय रान कोटेस प्रति, बचन तुमारो मोघ।
बदले पुब्बहि इक बनि, अहृरिकैं अघ ओघ॥ २४॥
यातैं अब लग रावंरो, बनैं न मन बिस्वास।
कोटापंति यह सुनि कहिय, हुव पलटैं अपहास॥ २५॥
अब गोवर्द्धननाथ यह, इष्ट साखि धर आहि।
कबहु न बदलैं सपथ करि, अैसैं कहिय उमाहि॥ २६॥

तीनों राजाओं ने नीति की रीति का अनुसरण करते हुए चतुराई के साथ प्रीतिपूर्वक मिलाप रचा। वे तीनों नाथद्वारा के श्रीनाथ मंदिर में इकट्ठे बैठ कर मंत्रणा करने लगे। सबसे पहले महाराणा ने उलाहना देते हुए कोटा के राजा को कहा कि तुम झूठे वादे करते हो! तुम्हारा वचन सत्य नहीं होता। पूर्व में भी तुम-हम एक बने पर तुमने पाप का प्रदर्शन करते हुए अपने वचन को तोड़ डाला। यही कारण है कि अब तक हमारा मन

आपकी बातों का भरोसा करने को तत्पर नहीं होता। यह सुन कर कोटा के राजा माधवसिंह ने कहा कि हाँ, एक बार तय करने के बाद पलटना उपहासास्पद होता है। पर अब मैं अपने इष्टदेव भगवान गोवर्द्धननाथ की साक्षी में कह रहा हूँ कि अब मैं भविष्य में कभी अपनी बात से नहीं बदलूँगा। राजा ने इष्टदेव की शपथ उठाते हुए उत्साह के अतिरेक में कहा।

सपथ अक्खि इम रान कर, बचन दैन लगि हड्डु।
अटकि रान तब हड्डु कँहँ, अक्खिय दै असि अड्डु ॥२७॥

तुमरी बुंदिय आत कै, कै इनको जयनैर।
तातैं लेहु रु देहु तुम, बचन दोहु तजि बैर ॥२८॥

मैं परमारथ तक्कि मन, करत दुहुँन उपकार।
यातैं लैन न उचित अरु, दैनहिं वचन उदार ॥२९॥

यह कहि दोउन हत्थ गहि, दयो बचन निजं रान।
सुनि माधव कोटेस मिथ, दिय लिय बचन निदान ॥३०॥

इस तरह सौगंध खा कर जब राजा माधवसिंह ने वचन देते हुए महाराणा की ओर हाथ बढ़ाया (ताली मिलाने को) कि तभी महाराणा कर्णसिंह ने राजा को रोकते हुए दोनों के मध्य तलवार आगे कर दी फिर कहा कि तुम्हें तो इससे अपनी बूंदी फिर से प्राप्त हो जाएगी और माधवसिंह को जयपुर हाथ आएगा। इसलिए बेहतर यह रहेगा कि तुम दोनों राजा आपस में एक दूजे को वचन देते हुए अपनी प्रतिद्वंद्विता समाप्त कर दो। मैं तो उपकार करने की मंशा से तुम दोनों की सहायता करने को तत्पर हूँ इसलिए मुझे वचन देने और मुझसे लेने से क्या होगा? इतना कह कर महाराणा ने दोनों राजाओं का हाथ पकड़ा और अपनी सहायता का वचन दिया। यह सुन कर कोटा के राजा माधवसिंह और कछवाहा माधवसिंह ने परस्पर एक दूसरे को वचन दिया।

रान बचन तिनको न लिय, तिनकौं दिय गहि तेग।
तिम भट सचिवन कोहु तँहँ, बचन दिवायउ बेग ॥ ३१ ॥

किय रहस्य श्रियद्वार इम, अधिपन मन धन अप्पि।
मरहट्ठन चिंतिय मिलन, जैपुर सन रन थप्पि ॥ ३२ ॥

रान वकील खुमान तब, रानाउत किय त्यार।
मरहट्टन ढिग मुक्कलन, उभय भुम्मि उपकार॥३३॥
माधवहू तस संग दिय, निज वकील नरनाह।
गोगाउत हम्मीर कुल, प्रेमसिंह कछवाह॥३४॥
माधव दम्म द्विलक्ख दिय, हुलकर हित तस संग।
उभय वकीलन भेजि इम, आये निज निज द्रंग॥३५॥

महाराणा तो यह सब परमार्थ में सहायता कर रहे थे इसलिए उन्होंने कोई वचन नहीं लिया और वचन दिया भी तो इस तरह कि उन्होंने तलवार पकड़ी। इसके बाद दोनों राजाओं ने वहाँ उपस्थित अपने सामन्त योद्धाओं को शीघ्र ही वचन (शपथ) दिलवाए। इस तरह राजाओं ने नाथद्वारा में मन और धन देकर गुप्त मंत्रणा की और जयपुर के साथ युद्ध ठानने का तय कर मराठों की सहायता लेने की सोची। इसके लिए महाराणा ने मराठों के पास भेजने के लिए अपने सामन्त खुमाणसिंह रानावत को तैयार किया कि जाओ- 'इन दोनों के लिए भूमि का सवाल है'। कोटा के राजा माधवसिंह ने तब अपने वकील रूप में गोगावत हमीरसिंह के कुलोत्पन्न कछवाहा प्रेमसिंह को खुमाणसिंह के साथ किया। इस समय माधवसिंह ने दो लाख रूपये दिये कि यह राशि होल्कर को देने के लिए है। आप लोग जाओ और होल्कर से शीघ्र ही सैन्य सहायता पाने का इन्तजाम करो। दोनों वकीलों को भेजकर सभी राजा अपने-अपने नगर लौटे।

षट्पात्

रान वकील खुमान प्रेम माधव वकील दुव,
नगर कालपी जाय सेन दक्खिन सम्मलि हुव।
दुवहि लक्ख दै दम्म तुष्ट हुलकर मलार किय,
जैपुर समय सहाय तनय खंडुव तस मंगिय।
सुनि यह मलार सुत सज्ज करि रन सहाय लगि मुक्कलन।
राणंजि रामचंद्र सु तबहि अक्खिय उचित सहाय नन॥३६॥

महाराणा का वकील राणावत खुमाणसिंह और राजा माधव सिंह का वकील प्रेमसिंह कछवाहा दोनों नाथद्वारा से रवाना होकर कालपी नामक

नगर में पहुँचे। उन्होंने वहाँ पहुँच कर दक्षिणी सेना (मराठा) से सम्पर्क साधा। उन्होंने दो लाख रुपयों की राशि दे कर मल्हारराव होल्कर को सन्तुष्ट किया और कहा कि जयपुर के विरुद्ध हम लोगों द्वारा लड़े जाने वाले युद्ध के लिए दल सहित आप अपने पुत्र खांडेराव होल्कर को भेजें। यह सुन कर मल्हारराव ने अपने पुत्र को इनकी सहायता के लिए सज्जित होने का कहा। यह सुनकर वहाँ उपस्थित रणंजय सिंधिया और पंडित रामचन्द्र दोनों ने प्रतिकार करते हुए कहा कि सरदार! सैन्य सहायता देने का यह कार्य उचित नहीं है।

रामचन्द्र इम कहिय धरहु श्रुति कथ मलार ध्रुव,
अप्पन पति श्रीमंत अग्ग जयसिंह मित्र हुव।
जैपुर सन हित करन बचन तिन दिय कूरम कर,
वह तुम मेटत अज्ज धनिय कृत भुल्लि लोभ धर।
ईस्वरीसिंह सम्मलि सबहि हैं पति किंकर तुम रु हम।
समुझाय रान माधव सबन दब्बहु अरिन प्रचंड दम।।३७।।

रामचन्द्र ने कहा कि हे मल्हार राव! आप मेरी बात को ध्यान दे कर सुनें कि हमारे स्वामी श्रीमंत और कछवाहा राजा जयसिंह में प्रगाढ मित्रता थी। इसी मित्रता के चलते श्रीमंत राव ने जयपुर के हित में वांछित सहायता करने का वचन भी कछवाहा राजा को दिया था। अपने स्वामी के दिये हुए वचन को लोभ में आकर तोड़ने का कृत्य कर रहे हो। इस नाते कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह भी हमारे स्वामी के समतुल्य हैं अच्छा यह रहेगा कि हम-तुम उनसे मिलकर कोई समाधान निकाले। हम उस माधवसिंह और महाराणा उदयपुर को समझाएं, यदि नहीं माने, तो शत्रुओं को दण्डित करें।

थकि हुलकर यह सुनत मुट्ठि असिबर कर मंडिग,
अधर कंप अंकुरिग तानि मुच्छन घन तंडिग।
कहिय अग्ग जयसिंह लिखित हत्थन करि अप्पिय,
रानाउति भव पुत थिर सु जैपुर पति थप्पिय।
जयसिंह बचन यह रक्खि हम माधव सिर छत्रहिं धरत।
लग्गत यहै न अच्छी तुमहिं कुटिल लुब्धि अनुचित करत।।३८।।

यह सुनते ही मल्हारराव होल्कर ने क्रोधित होकर अपनी तलवार की मूंठ पर अपना हाथ डाला। गुस्से में थरथराते होठों से गर्जना करते हुए उसने अपनी मूंछों पर ताव दिया और कहने लगा कि पूर्व में कछवाहा राजा ने अपने हाथ से लिख कर यह करार सौंपा था कि राणावत रानी के गर्भ से उत्पन्न राजकुमार ही जयपुर का राजा और मेरा उत्तराधिकारी बनेगा। होना तो यह चाहिए और हम भी वही कर रहे हैं कि राजा जयसिंह के दिये वचन को रखते हुए माधवसिंह के सिर जयपुर का छत्र धरें पर पता नहीं किस लोभ अथवा कुटिलता के कारण तुम्हें यह सब अच्छा नहीं लग रहा है। इसमें हम क्या अनुचित कर रहे हैं?

राजामल्ल कर कवल बहुत चक्खिय तुम स्वानन,
जातैं अटकत जंग बिरचि नय हीन विधानन।
तुम जावहु तिन संग हम सु माधव सहाय हुव,
कहि इम अक्खिय कुच्च धमकि आनक निसान धुव।
दल सुभट पंच मरहट्ठ मिलि दुहुँ दिस रिस मोचन करिय।
परगनाँ पंच माधव अरथ दैन अक्खि हित अनुसरिय॥३९॥

मैं जानता हूँ जयपुर के प्रधान सचिव राजामल खत्री के हाथों तुम कुत्तों ने कई स्वादिष्ट निवाले चखे हैं। यही कारण है कि आज युद्ध रचने के लिए मना करने का नहीं करने योग्य कार्य संपादित कर रहे हो। अच्छा है तुम उनकी (ईश्वरीसिंह) सहायता को जाना। हम तो माधवसिंह कछवाहा की मदद करेंगे। इतना कह कर होल्कर ने कुपित हो कूच का हुक्म दिया जिससे कूच के नगारे घनघना उठे। इसी समय मराठा पंचों ने मिल कर बीच-बचाव किया और दोनों पक्षों के क्रोध को शान्त करवाया। उन्होंने कहा कि इसके लिए उपयुक्त यह रहेगा कि पाँच परगने माधवसिंह को और दिलवा दिये जाएँ। उसके हित का अनुसरण इसी बात में है।

रामचंद्र प्रति कहिय बहुरि हुलकर मल्लारहु,
बंटि दिवावत अवनि कछुक माधव हितकारहु।
तिम बुंदिय रहि है न लग्गि संभर हित लैहैं,
अब बरजहु जो एस देस तिलमत्त न दैहैं।

यह मन्नि सबन पठ्ये तबहि निज वकील जैपुर संजव।
साहस मिटाय सामहिँ करन समुझावन कूरम कितव॥ ४०॥

मल्हारराव होल्कर ने तब पंडित रामचन्द्र को संबोधित करते हुए कहा कि हम माधवसिंह कछवाहा के हित को देखकर जयपुर की जागीर में से हिस्सा दिलवा कर रहेंगे और इसी तरह बूंदी के मामले में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पक्ष में खड़े होंगे। यदि इस पर तुम्हें एतराज हो और ऐसा करने पर भी तुम मना करोगे तो सुन लो! बूंदी का देश तो अलग बात हम कछवाहा राजा को तिलभर भूमि नहीं लेने देंगे। होल्कर के ऐसी चेतावनी देने पर सभी मराठे मान गए और उन्होंने सहमत होकर अपने वकील शीघ्र ही जयपुर के लिए रवाना किये उन्होंने वकीलों को हिदायत दी कि वे जाकर उस ठग राजा ईश्वरीसिंह को समझायें और हठ छुड़वा कर दोनों भाईयों में मेल-मिलाप करायें।

दोहा

रामराय मुनसी निज सु, रामचंद्र पठवाय।
निम्मराज कटक्या यह सु, पठयो हुलकर राय॥४१॥
तिन जाय रु कूरम नृपहिँ, बुंदिय छोरन अक्खि।
पंच परगनाँ अनुज हित, बंटिदैन रस रक्खि॥४२॥
इत हुलकर अप्पन तनय, खंडू नामक बीर।
पठयो माधव रान प्रति, हित सहाय हमगीर॥४३॥

मराठों के दोनों पक्षों ने सहमति दिखाई। पंडित रामचन्द्र ने अपने मुंसी रामराय को और होल्कर राजा ने निम्मराज कटक्या को वकील बना कर जयपुर भेजा। इन वकीलों ने जाकर कछवाहा राजा से बूंदी पर से अपना अधिकार छोड़ देने का कहा और यह भी कहा कि यदि रस रखना चाहते हो तो अपनी जागीर में से हिस्सा स्वरूप पाँच परगने अपने भाई माधवसिंह को सौंप दो। उधर मल्हारराव होल्कर ने अपने पुत्र खांडेराव होल्कर को हितपूर्वक महाराणा उदयपुर और माधवसिंह कछवाहा की सहायता करने भेजा।

षट्पात्

सजि अनीक दरकुंच चलिय खंडुव मलार सुव,
बजि आनक बंबील भचकि बिखरिय दरार भुव।
काकोदर फन फटिय कोल दंतुलि बररक्किय,
मुररक्किय बपु कमठ चोट रीढक चररक्किय।
गढगढन बत्त फुल्लिय सहज बढि बिचार भूपन बिदित।
मल्लार सुवन जावत लरन माधव रान सहाय हित॥४४॥

पिता की आज्ञा पाकर अपने दल को सज्जित कर खांडेराव होल्कर ने दर कूच दर मंजिल अपना प्रयाण रचा। सेना के नगारे बज उठे और सेना के प्रयाण से भूमि में दरारें आने लगी। शेषनाग के फण सैन्य भार से व्यथित हुए और वाराह की दंतुलि में दरार आ गई। कच्छप की काया दब गई और उसकी पीठ चरमरा उठी। रास्ते में पड़ने वाले सारे गढ़ों, दुर्गों में भयदायक यह खबर फैल गई कि होल्कर की सेना आ रही है। वहाँ के स्वामियों में भी इस बात से विस्मयपूर्ण भय का संचार हुआ कि मल्हाराव होल्कर का पुत्र वीर खांडेराव अपने दल सहित महाराणा और माधवसिंह के पक्ष में लड़ने आ रहा है।

इम खंडुव दरकुच्च आय कोटा मिलान दिय,
महाराव लखि समय जाय सम्मुह बधाय लिय।
चारन भूपतिराम मुख्य निज सचिव संग करि,
दिय अनीक तिन सत्थ धीर सुभटन हरोल धरि।
पुनि मिलिय आय नृप रान पँहँ बुंदीसहु तँहँ बुल्लि लिय।
सजि सेन लरन माधव सहित तजि मेवार प्रयान किय॥ ४५॥

पड़ाव दर पड़ाव बढ़ती हुई इस सेना ने कोटा में आ कर पड़ाव डाला। महाराव माधवसिंह ने भी अपनी खैरियत इसमें समझी और समय को देखते हुए सेना की अगवानी की। इस समय हाड़ा राजा माधवसिंह ने अपने प्रधान सचिव भूपतिराम चारण के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी जिसकी अग्रिम पंक्ति में कोटा के सामन्त योद्धा थे। यहीं पर इसके बाद महाराणा आ कर राजा माधवसिंह से मिला और तब उन्होंने बूंदी के राजा

को भी बुला लिया। इस तरह से सारी सेनाएं यहाँ आ मिली। यहाँ से सज्जित सम्मिलित सेना ने माधवसिंह कछवाहा सहित लड़ने के लिए आगे कूच किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ बुन्दीशपुरोहित दयारामसहितराणाचतुर्मन्त्रिमन्त्रण सचिवदेवकर्ण भवानीदास परिवर्त्तन जयपुर सचिव मरण पैशून्य प्रेरित प्रभुप्रज्ञा केशवदासगौणाऽधिकारप्रापणनट्टाण्युपटङ्किवणिग्घरगोविंदमुख्य सचिवीभवन तत्पुत्रीश्वरसिंहमतङ्गमिथुनपरस्त्री पुरुषसङ्गदोषगर्त्तपत नथर्मनिगडत्रोटनराणा माधवसिंह कोटेश श्रीद्वारसमागमननारायणनिलयशपथशंसन महाराष्ट्र साधन साधक जगत्सिंह माधवसिंहाऽधिकारिगमनतन्महाराष्ट्रसम्मिलनराणञ्जि रामचन्द्र मल्लार वाक्यविसरीकरणपुनस्सम्मिलनपक्षद्वय दूतजयपुर प्रेषणहुलकरपुत्र-खण्डूराणासहायगमन कोटा सैन्य सहित बुंन्दीन्द्रतस्सम्मिलनं विंशो मयूखः॥ आदितः॥ ३०१॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में, बुंदी के राजा के पुरोहित दयाराम सहित महाराणा का चार मंत्रियों से सलाह करना और देवकरण को दूर करके भवानीदास को प्रधान बनाना, जयपुर के सचिव (राजामल) का मरना और चुगली करने वालों की प्रेरणा की बुद्धि से स्वामी का केशवदास को छोटा अधिकार देना और नाटानी पदवी वाले बनिये हरगोविन्द का सचिव होना, उस हरगोविन्द की पुत्री और हाथी रूपी ईश्वरीसिंह इन दोनों का, परस्त्री से पुरुष के और पर पुरुष से स्त्री के संग के दोष से, धर्म रूपी जंजीर को तोड़कर खड्डे में गिरना, राणा जगत्सिंह, कछवाहा माधवसिंह और कोटा के पति का नाथद्वारा में मिलना और ईश्वर के मंदिर में सौगंध करना, मरहठों के साधन के अर्थ राणा, जगत्सिंह और माधवसिंह के अधिकारियों का जाना और उनका मरहठों से मिलना, रणंजी, रामचन्द्र और मल्लार के वाक्यों का परस्पर भेद करना और फिर शामिल होकर मरहठों के दोनों पक्षों का अपने वकीलों को जयपुर भेजना, हुलकर के पुत्र खंडू का राणा की सहायता पर जाना और कोटा की सेना सहित बुन्दी के पति के शामिल होने का बीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ एक मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

सक कृत नभ बसु सोम मास फग्गुन पख उज्जल,
नृप माधव उम्मेद सहित खंडुव चढि सब्बल।
रान कटक सब संग लहि रु दरकुच्च चलायउ,
अति गरूर जनु गरुर अहिन उप्पर उफनायउ।
उततैंहु सुनत कछवाह को चंड कटक सम्मुह चलिय।
दिस दिसन बत्त फुट्टिय दुसह खंड चउद्दह खलभलिय॥१॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत के वर्ष अठारह सौ चार के फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष में राजा माधवसिंह, राजा उम्मेदसिंह और खांडेराव होल्कर की सम्मिलित सेना ने प्रयाण किया। इस सेना के साथ उदयपुर महाराणा की सेना ने भी कूच किया। दर कूच दर मंज़िल चलती यह गरूर वाली सेना रणभूमि की ओर यों लपकी जा रही थी जैसे गरुड़ सर्प पर लपकता है। इस मित्र सेना (सम्मिलित सेना) के कूच की खबर सुनकर मुकाबला करने को जयपुर से कछवाहा राजा की प्रचंड फौज रवाना हुई। सभी दिशाओं में यह दुस्सह बात फैली और चौदह लोकों में खलबली मच गई।

दोहा

नट्टानी उपपद बनिक, हरगोबिंद चमूप।
चउ अवयव दल लै चल्यो, भिरन उदैपुर भूप॥ २॥

नाटाणी उपटंक वाला वह हरगोविन्द, कछवाहा सेना का सेनापति बना। वह अपनी चार अंगों वाली अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों वाली सेना को उदयपुर महाराणा की सेना से भिंड़त करने हेतु लेकर चला।

षट्पात्

दगि तोपन लगि लाय मचिग दुव दल मिलि संगर,
इत मेवारन मुकुट इत सु ढंकन ढुंढाहर।

राजमहल पुर सीम भीम प्रतिभट भट भिंटन,
हय उठाय हरवल्ल बढ़िग दुव दिस अरि बिंटन।
जिम बिप्र निमंत्रन सुनि चलत इमहि अग्गि जाठर जगिय।
साकिनी प्रेत खेचर सकति लाभ असन आवन लगिय॥३॥

दोनों सेनाओं के मिलते ही युद्ध आरंभ हो कर तोपें दागी जाने लगी। इधर से मेवाड़ के मुकुट महाराणा की सेना और सामने ढूंढाड़ क्षेत्र के ढक्कन (रक्षक) कछवाहा राजा की सेना। राजमहल नामक नगर के निकट शत्रुवीरों से मिलने वीर बढ़े। दोनों सेनाओं के अग्रभाग में स्थित हरावली दस्तों ने एक दूसरे की ओर अपने घोड़े हांके। दोनों ओर के योद्धा इस तरह उतावले होकर बढ़े। जैसे कोई पेटू ब्राह्मण भोजन का आमंत्रण पाकर बढ़ता है। यह देखकर अपनी बढ़ी हुई जठराग्नि के साथ रण भूमि की और साकिनियां, प्रेत, रणचंडी देवी और भैरव सभी भोजन पाने के लोभ में बढ़ने लगे।

खेत्रपाल खिलखिलिय मिलिय नारद महती रव,
काली गन किलकिलिय भिलिय बनि सदस आनिभव।
पिलिय अग्र दुव दलन झिलिय असि बाढ बाढ झरि,
गिलिय गोद गिद्धिनिन खिलिय खूबिय हिय अच्छरि।
बढि अंधकार छादित बियत व्यवहित बिरचि पतंग बहु।
लुट्टिय हरोल हुलकर भटन कूरम कटक वहीर बहु॥४॥

युद्ध का सुन कर क्षेत्रपाल (भैरव) खिलखिला उठे। नारद ने अपनी महत्ती नामक वीणा के तार छेड़े। रणचंडी कालिका के गण हर्षातिरक से भर उठे। इसी तरह महादेव भी रणभूमि की ओर अपनी मूंडमाल पूरी करने की इच्छा से बढ़े। दोनों सेनाओं के हरावली दस्ते एक दूसरे पर पिल पड़े और तलवारों की धारों पर तलवारों के प्रहारों की झड़ी लग गई। गिद्धनियों को वसा निगलने को मिलने लगी और अप्सराएँ मन ही मन प्रफुल्लित हुई। रणभूमि में अंधकार सा छा गया और आकाश में सूर्य दिखाई नहीं पड़ने लगा। कछवाहा योद्धाओं ने धावा बोल कर होल्कर की सेना के अग्रभाग को तहश-नहश कर डाला।

हय उठाय हुलकर समेत हड्डुनपति हंकिय,
अतिबल तेग उताल झरत टोपन झननंकिय।
कतिक मारि भुव छाय ढारि ढड्डुर ढुंढारन,
पोखे नृप पलचरन बहुल पल मेद बिथारन।
असि बाढ चक्खि इक बेर अरि लग्गे प्रतिमग नीर लजि।
मिलि मिलि सिचान आवत मनहु पारावत गन भरकि भजि ॥५॥

तभी होल्कर खांडेराव सहित हाड़ा राजा ने अपने घोड़ों को बढ़ाया और पूरे बल के साथ अपनी तलवारों के प्रहार आरंभ किये। इन प्रहारों से शत्रु योद्धाओं के मस्तक टोप सहित कट कर गिरते भूमि पर झनझनाने लगे। इन वीरों ने कछवाहा सेना के कई वीरों को काट कर शवों के ढेर लगा दिये और मांसाहारी पक्षियों के पोषण हेतु मांस और चर्बी की कमी नहीं आने दी। शत्रु वीर एक-एक प्रहार का मजा चखते हुए उल्टे मार्ग पर भागते हुए अपना शौर्य (पानी) लज्जित करने लगे। ऐसा लगने लगा जैसे उड़ कर आगे जाता कबूतरों का समूह आगे किसी बाज को देख कर लौट-लौट आ रहा हो। अर्थात् शत्रु वीरों का समूह आगे बढ़ते ही डरकर वापस पीछे लौटने लगा हो।

जिम पारद मिलि अग्गि पिक्खि निज कटक होतइम,
सेनापति गज सहित वनिक मंड्यो अंगद तिम।
बुल्ल्यो रे निरलज्ज भजत मुच्छन मुंह धारत,
बनिक बैन यह सुनत फिरे कूरम अति आरत।
लिय सवन बिंटि पुनि बनिक गज पै न लगत अग्गैं चरन।
जोगिंद चित्त सबिकल्प जिम रहिय रक्कि पिक्खत मरन ॥६॥

अग्नि का पांसग पा कर जो स्थिति पारे की होती है वही हालात अपनी सेना के होते देख कर सेनापति हरगोविन्द नाटाणी अपने हाथी सहित आगे आया और अंगद के पाँव रोपकर टिकने की तरह रणभूमि में आ टिका। वह अपने भागते योद्धाओं को ललकारते हुए कहने लगा कि अपने चेहरे पर मूंछे धारण कर मर्द बनते हो और मर्दानगी (वीरता) के प्रदर्शन के समय कायरों की तरह भागे जा रहे हो? बनिक (सेनापति) के

ऐसे चुभते वचन सुनकर भागने को तत्पर कछवाहे वीर वापस मुड़े और युद्ध में आ जुटे। इतने में सामने वाले पक्ष के वीरों ने नाटाणी हरगोविन्द के हाथी को चारों ओर से घेर लिया जिससे उसका हाथी था वहीं रहने को मजबूर हो गया। योगीराज की सविकल्प समाधि वाले चित्र की तरह वहीं पर रुका नाटाणी मृत्यु को साक्षात देखने लगा।

तिमिर घोर तत मध्य पार अप्पन भट भान न,
माधव के दलमाँहिं पिक्खि पचरंग निसानन।
जैपुरके तिन्ह जानि रान दल भजिग भीत अति,
कोटा दल पुनि भजिग सहित चारन सेनापति।
तहँ भयउ सोर कोटा भजिग सुनि पित्थल बुल्ल्यो सु चहि।
हम भुजन आहि कोटा अखिल तिन ठहँ भग्गो न कहि।।७।।

इसी समय सांझ घिर आई और रणभूमि में छाते अंधेरे के कारण योद्धा अपने और पराये की परख भूलने लगे। यहाँ माधवसिंह कछवाहा की सेना के पचरंगी ध्वजों को जयपुर से आई शत्रु सेना के ध्वज समझ कर महाराणा की सेना भय से भागने लगी। मेवाड़ी दल को भागते निरख कोटा के राजा की सेना भी चारण सेनापति भूपतिराम सहित रणभूमि से भाग खड़ी हुई। तभी सब तरफ यह बात फैल गई कि कोटा की सेना भाग खड़ी हुई। यह सुन कर पृथ्वीसिंह क्रोध में आग बबूला हो कर बोला कि यह देखो कोटा तो मेरी भुजाओं से बंधा है और मैं यहाँ मुकाबले को खड़ा हूँ, भागा कहाँ? मेरे यहाँ रहते यह कहने की जरूरत नहीं कि कोटा के योद्धा भाग गए।

कोकिलपुर पति कुमर भटन पित्थल चूड़ामनि,
महाराव उमराव बिदित बुल्ल्यो अंगद बनि।
चारन मग्गनहार भज्यो कारज अचिज्ज नहिं,
पै हम हड्डुन पयन आडडुंगर अवलंबहिं।
यह अक्खि सेन भज्जत मुर्यो कुंब्भहर सिर धारि धक।
झपटाय बाजि पबि जिम पर्यो कुंब्भहर सिर धारि धक।।८।।

कोईला नगर के स्वामी का पुत्र वह कुमार पृथ्वीसिंह जो वीरों में

चूड़ामणि था अंगद की तरह रणआंगन में अपने पाँव रोपे खड़ा कोटा के सामन्त योद्धाओं को सुना कर कहने लगा-अरे! वह चारण (सेनापति) भाग गया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात? किसी याचक से और क्या उम्मीद की जा सकती है। रहा सवाल हम हाड़ा योद्धाओं का तो उनके पाँवों से तो अरावली जैसा पर्वत बंधा है वे कहाँ भागेंगे अर्थात् नहीं भागेंगे। हाड़ा कुमार पृथ्वीसिंह के ऐसे उतेजना से भरे वचन सुनकर कोटा के भागते योद्धा वापस मुड़े, जिस तरह बिना पलकों वाली मछली पानी की धारा के उलट चढ़ती है। यह देखकर पृथ्वीसिंह अपने घोड़े को तेज गति से बढ़ाता हुआ ढूंढाड़ी सेना पर वज्र की तरह टूट पड़ा।

भजत सेन लखि सजव पिट्ठि लग्गिय जैपुर दल,
मुरि पित्थल तिम मध्य खग्ग झारिय रचि मंडल।
जिम बिरेक औषधिय उदर इम मथिय सत्रु सब,
कतिक कंपि लकतकत कतिक छक्कत बक्कत बब।
सव्यापसव्य करि श्राद्ध बिच जजमानहिं जिम करत द्विज।
तिम किय अनेक परबस कुमर समर बिथारिय नाम निज॥९॥

पूर्व में जब जयपुर की कछवाहा राजा की सेना ने अपने शत्रुदल को रणभूमि से भागते देखा तो उसने पीछा किया पर तभी भागते दल के बीच से वापस मुड़ कर हाड़ा कुमार पृथ्वीसिंह लड़ने को उद्यत हुआ। उसने चक्राकार (गोलकुंडा) वृत सा बना कर अपनी तलवार से प्रहारों की झड़ी लगाई और शत्रु सेना को इस तरह मथना शुरू किया जैसे विरेचक (जुलाब) औषधि लेने पर आदमी का पेट मथा जाता है। उसके प्रहारों से कई शत्रु वीर थर्राते हुए नजर आये और कई शत्रु योद्धा घायल हो अनर्गल बक-बक करने लगे। वह अपने प्रहार शत्रुओं को यों तकसीम करते हुए उन्हें उधर-उधर पलटने लगा जैसे श्राद्ध में पंडित अपने यजमान को कभी बाएँ तो कभी दाएँ करता है। उस कुमार ने अपने कई शत्रुओं को परबस करते हुए रणभूमि में अपनी कीर्ति का प्रसार किया।

जिम नर तिम सैंलोट गिरत हैवर तिम गैवर,
जिम तोमर तिम खग्ग बिहसि झारत कुमार बर।

लटकत उरझि रकाब कतिक भटकत प्रमत्त गति,
खटकत हड्डुन बाढ मनहुँ चटकत गुलाब तति।
घुम्मत अचेत घायन कतिक कतिक आय पायन परिय।
कछवाह कटक सब अजब सुव गजबसिंह गड्डुरि करिय॥ १० ॥

रणभूमि में क्या घोड़े, क्या हाथी और क्या सैनिक सभी धराशायी होने लगे। वह वीर कुमार कभी भाले से तो कभी अपनी तलवार से हँसते-हँसते प्रहार पर प्रहार करने लगा। जिससे कई घायल रकाब में पाँव फँसने से उल्टे लटके डोलने लगे तो कई प्रमत्त हो बड़बड़ाते इधर-उधर घूमने लगे। उसकी तरवार का प्रहार शत्रु योद्धा की हड्डी पर यों 'कट्ट' सा बजता मानो गुलाब की पंक्तियाँ चटक रही हों। रणभूमि में कई अर्द्धमूर्छित घायल फिरने लगे तो कई दूसरों के पाँवों में गिरने लगे। उस अजबसिंह के पुत्र ने कछवाहा सेना पर गजब ढाया और सिंह सी दिखने वाली शत्रु सेना को भेड़ बना दिया।

तुट्टि तुट्टि सिर उडत कढत सर फुट्टि बकत्तर,
रुहिर छिंछि नभ चढत बढत कलकल धर अंबर।
काली खप्पर भरत फिरत सिव नच्च बिसारद,
महती तुंबा सिर लगाय घुम्मत इत नारद।
पित्थल अनीक फारत बढिग मरद उतारत गजन म।
डाकिनि डरात फारत बदन किलकारत भैरव भयद॥ ११ ॥

रणभूमि में कहीं पर कट-कट कर मस्तक गिरने लगे तो कहीं बाणों से बख्तर छेदे जाने लगे। कहीं पर रुधिर की धारें फूट कर आकाश की दिशा में ऊपर उठने लगीं। युद्ध के कोलाहल से जमीं आसमान एक हो गया। रणचंडी कालिका रक्त से अपना खप्पर भर-भर कर पीने लगीं और नृत्य विशारद महादेव अच्छे मस्तकों की टोह में फिरने लगे। वह जवांमर्द वीर कुमार पृथ्वीसिंह हाड़ा शत्रु सेना को चीरते हुए आगे ही आगे बढ़ता गया और हाथियों का मद उतारने लगा। उसके पीछे-पीछे डाकिनियां अपना बड़ा सा मुँह फाड़-फाड़ कर डराने लगीं तो भैरवगण अपनी भयंकर किलकारियों से योद्धाओं को भयभीत करने लगे।

घनैं रिपुन रमनीन झारि कंकन कुबेस किय,
घनैं रिपुन रमनीन बिंब बंटन पखान दिय।
घनैं हयन घन घाय कियउ मँहँगे सोदागर,
घनैं गजन सिर फारि रंग मुत्तिन किय आगर।
भुजदंड भीरि बासुकि उरग मंदर असि गहि उच्च मन।
पित्थल कुमार नागर कियउ ढुंढाहर सागर मथन॥ १२॥

हाड़ा कुमार पृथ्वीसिंह ने अपने बहुत सारे शत्रुओं को मार कर उनकी स्त्रियों का सुरंगा पहनावा और चूड़ियां छीनीं अर्थात् उन्हें विधवा बनाया। कई शत्रुओं की स्त्रियों के हाथों में पत्थर (लोडी) पकड़ाए ताकि वे नीम की छाल को पीसकर अपने पतियों के घावों पर लगा सके। कुमार ने बहुत सारे घोड़ों को घायल कर घोड़ों के सोदागरों का फायदा करवाया क्योंकि घोड़े अब ऊँची कीमत पर विक्रय किये जाएँगे। उसने रणभूमि में अपनी तलवार के प्रहारों से हाथियों के कुंभस्थल चीर मोतियों के ढेर लगा दिये। उसने अपने लंबे हाथों को वासुकी रूप बना कर मंदराचल रूपी तलवार से रणभूमि में ढूंढाड़ के सागर रूपी शत्रुओं को यों मथ डाला मानो देवताओं ने सागर मंथन किया हो।

पहर इक्क इम कुमर लरिग धारन धपाय धक,
फट्टिग सिर चोफार बदन चोफार लोह छक।
सनहुँ बीर बिधि परखि हरखि अद्वैत छाप दिय,
इस सोभित छकि कुमर परयो पलचार दान प्रिय।
आयुहि समत्थ असु थिर रहिय बीरनिंद बपु बिप्फुरिय।
अच्छरि उमाहि आइन बरन चउमुख लखि लज्जित मुरिय॥१३॥

एक प्रहर तक घमासान करते हुए कुमार पृथ्वीसिंह ने अपनी तलवार के प्रहारों से शत्रुओं को घाव दे देकर तृप्त किया और इसी बीच शत्रुओं के प्रहारों से उसका सिर चौफाड़ हो गया (अर्थात् चार हिस्सों में फट गया)। इससे उसका एक मुख चार मुखों वाला हो गया मानो इस वीर की विधाता (ब्रह्मा) ने परख कर (कि ऐसा अद्वितीय वीर कोई और नहीं) प्रसन्न होकर अपने चतुर्मुख स्वरूप की छाप दी हो। ऐसे चार मुखों की शोभा से

शोभायमान वह वीर कुमार क्षत-विक्षत हो रणभूमि में मांसाहारी पक्षियों को भक्षण हेतु अपनी देह का दान करने को ढह पड़ा। कम उम्र अर्थात युवा पुष्ट शरीर होने के कारण तुरन्त उसके प्राण नहीं छूटे। उस पर वीर निद्रा (मूर्च्छा) तारी हो गई। जोश से विस्फारित उसकी देह को देख कर उमंग से भरी अप्सरा उसका वरण करने को लपकी पर आगे उसे चतुर्मुख देख कर सकुचाती हुई निराश वापस लौट गई क्योंकि चतुर्मुख ब्रह्मा तो सब का पिता है और किसी पिता समान का वरण कैसे संभव है ?

इम हुलकर बुंदीस उभय कूरम दल अंतर,
झारत खग्गन झपटि दपटि बिथुरात दिगंतर।
इत पहिलैं दल भजिग ताहि सुनिकैं जैपुरपति,
करि आयउ दरकुंच गजब डारत सबेग गति।
इत बहुरि हड्ड हुलकर असिन दल सत्रुन पुनि ठिल्लि दिय।
तँहँ परिय रत्ति बिसतारि तम दुव दिस मुररि मिलान दिय ॥१४॥

खांडेराव होल्कर और बूंदी का राजा उम्मेदसिंह दोनों वीर शत्रु दल पर अपनी तलवारें (रीठ) बजा रहे थे। वे झपट कर अपने शत्रुओं पर प्रहार करते रहे और शीघ्रता से लपकते हुए यहाँ-वहाँ शत्रु नाश में तत्पर रहे। उधर जयपुर में कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह के पास जब यह खबर पहुँची कि आंरभ में उसकी सेना पलायन करने लगी थी। उसने अपनी सेना को अल्पसंख्यक और कमजोर जान कर अपने साथ और सेना ली और गर्जना करता हुआ स्वयं दर-कूच-दर मंजिल बढ़ता राजमहल नगर की रणभूमि की ओर चला। वह गजब ढाने वाला राजा सवेग वहाँ पहुँचा। इधर हाड़ा राजा और होल्कर ने तब तक अपनी तलवारों से शत्रु दल को पीछे ठेल दिया। तभी सूर्यास्त के बाद अंधेरा गहराने लगा तो दोनों दलों ने युद्ध विराम कर अपने-अपने शिविरों की शरण ली।

दोहा

खेत खोजि बुंदीस नृप, हेरिय पित्थल जाय।
सिविका धरि आनिय सिविर, वैद्यन कथित बिधाय ॥१५॥
हुलकर हड्ड दुहूँन पुनि, कियउ मंत्र मिलि रत्ति।
अप्पन जीत भजंत अरि, प्रभु अनुक्रोस प्रपत्ति ॥१६॥

अब आवत जैपुर नृपति, सजि पुनि कटक प्रसार।
यातैं नहिँ रहनों उचित, मुरि चल्लहु मेवार॥१७॥

कहि यह प्रातहि कुंच करि, चलि हुलकर चहुवान।
सब भोजन जुत साहिपुर, दिन्नैं आनि मिलान॥१८॥

युद्ध थमने के बाद बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने रणभूमि में जाकर अपने घायलों को संभाला। उसने कुमार पृथ्वीसिंह को ढूंढ निकाला और तुरन्त पालकी में सुला कर अपने शिविर में लाया। यहाँ वैद्यों के कहे अनुसार उसका पूरा उपचार करवाया। रात्रि के समय खांडेराव होल्कर और हाड़ा उम्मेदसिंह दोनों ने मंत्रणा की। रणनीति पर विचार करते हुए उन्होंने कहा कि अब तक तो ईश्वर की अनुकम्पा से जीत अपनी लगती है पर सुना है कि जयपुर का राजा स्वयं अलग एक सेना ले कर आ रहा है अत: उसके समक्ष अपना टिकाव दुभर है। अत: अब हमारा यहाँ रहना उचित नहीं। हमें अब वापस मुड़ कर मेवाड़ में चले जाना चाहिए। ऐसी राय बना कर प्रात:काल ही वे वहाँ से कूच कर गए। खांडेराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दोनों भोजन समय पर शाहपुरा पहुँचे और उन्होंने अपना यहाँ पड़ाव डाला।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ हड्डु उम्मेदसिंह कूर्म्म माधवसिंह हुलकरखण्डू कोटोदयपुर कटक डुण्ढाहड़गमन कूर्म्म सैन्य सहित सचिव हरगोविन्दाऽभिमुख्यप्रपतन वाशिष्ठी सरिदुपकण्ठ राजमहलपुरसीमासंगरभवन बुंदीन्द्र हुलकर प्रहरण पर पलायनाऽनन्तर गोनर्द्दीयोक्तचित्तद्वितीय वृत्ति प्रथम वृत्तिनिष्ठ कोटोदयपुर पृतनाकान्दिशीकीभवन महारावबन्धुकुमार प्रत्यटन प्रचुर शस्त्र पुद्गल पूती करणाऽनन्तरकूर्म्म राजाऽऽगमन तत्समस्त परपक्ष मेंदपाटसाहिपुरा गमन मेकविंशो मयूखः॥ आदितः॥ ३०२॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में हाड़ा उम्मेदसिंह, कछवाहा माधवसिंह, खांडेराव होल्कर और कोटा तथा उदयपुर की सेना का ढूंढाड़ में जाना, सचिव हरगोविंद नाटाणी का कछवाही सेना सहित सम्मुख आना, बनास नदी के समीप राजमहल नामक गांव की सीमा में युद्ध होना। बूंदी के राजा और होल्कर के शस्त्रों के प्रहारों से शत्रुओं के भाग जाने के बाद

पातंजल योगसूत्र में वर्णित द्वितीय चित्त वृत्ति के समान उदयपुर की सेना का और प्रथम वृत्ति के समान कोटा की सेना का भागना (पतंजलि मुनि ने योगसूत्र में चित्त की पांच वृत्तियाँ कही हैं जिनमें से द्वितीय वृत्ति का नाम विपर्यय है इसका अभिप्राय मिथ्या ज्ञान होना है और प्रथम वृत्ति का नाम प्राण है जिसका अभिप्राय प्रत्यक्ष ज्ञान होना है) अर्थात् उदयपुर की सेना तो माधवसिंह कछवाहा के पांच रंग की ध्वजा (निशान) को जयपुर की पचरंगी ध्वजा मान कर भ्रांति से भागी और उदयपुर की सेना को भागती हुई देखकर कोटा की सेना प्रत्यक्ष ज्ञान होने से भागी। महाराव के भाई के कुमार का मुड़ कर युद्ध करना और शस्त्रों के घावों से अपने शरीर को पवित्र करना, इसके बाद कछवाहों के स्वामी (ईश्वरीसिंह) का आना और उसके सभी सम्मिलित शत्रुओं का सेना सहित मेवाड़ के शाहपुरा नगर में जाने का इक्कीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आरंभ से तीन सौ दो मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

यह उदंत श्रियद्वार सब, सुनिय रान जगतेस।
पठयो कटक सहाय पुनि, बल निज निकट बिसेस॥१॥

तखत रान जयसिंह सुव, बाबा निज पटु बीर।
पुनि कुसाल भिंडरपुरप, सगताउत धुर धीर॥२॥

रायसिंह झल्ला बहुरि, नगर सादड़ी नाह।
पुनि बुंदीस पुरोहित सु, दयाराम चित चाह॥३॥

हे राजा रामसिंह! राजमहल के पास हुए इस युद्ध का पूरा वृत्तान्त जब उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने नाथद्वारा में सुना तो उन्होंने अपने साथ की सेना को राजमहल की ओर भेजा ताकि अपने दल की सहायता हो सके। इस दल के साथ महाराणा ने अपने वीर बाबा तखतसिंह जो महाराणा जयसिंह के पुत्र थे, उन्हें और भींडर नगर के स्वामी कुशालसिंह शक्तावत को रवाना किया। इसके अतिरिक्त महाराणा जगतसिंह ने अपने सामन्त और सादड़ी के जागीरदार झाला रायसिंह को और अपने चित में युद्ध लड़ने की इच्छा पाले हुए बूंदी के पुरोहित दयाराम को भी भेजा।

षट्पात्

इम च्यारिन करि मुख्य रान पृतना पुनि पिल्लिय,
सजव साहिपुर आय मुदित निज दल सह मिल्लिय।
उततैं ईस्वरिसिंह पिट्ठि दब्बत द्रुत आयउ,
भिल्लहड़ा पुर लुट्टि कहर मेवार मचायउ।
धनवंत बनिक कारा पटकि कुप्पि नगर श्रीहत करिय।
वाटिका मनहुँ अहिबल्लरिन चपल आनि बस्तन चरिय।।४।।

इन चारों योद्धाओं को अपने सहायक दल का प्रमुख बनाकर महाराणा ने रवाना किया। ये सभी तेज गति से चल कर शीघ्र ही शाहपुरा आ पहुँचे और यहाँ अपने दल से आ मिले। उधर जयपुर से कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह जो अपने दल के साथ आया था चल कर भीलवाड़ा नगर पहुँचा। यहाँ आते ही कछवाहा सेना ने लूटपाट कर मेवाड़ पर कहर ढाया। राजा ने भीलवाड़ा के धनिक व्यवसाईयों को पकड़ कर कारागार में डाल दिया और कुपित हो पूरे नगर को लूटकर इस तरह लक्ष्मीविहीन कर डाला जिस तरह किसी वाटिका में लगी नागरबेल को बकरियों का समूह घुसकर जल्दी ही पत्रविहीन कर डालता है और चट्ट कर जाता है।

मेवारन किय मंत्र सुनत यह बत्त नीति सह,
कटक प्रचुर कछवाह अलप अप्पन अनीक यह।
हुलकर कोटा एहु उभय बिस्तर बिनु आये,
बित्त रहित बुंदीस अवनि हित प्रसभ अमाग्गे।
यातैं न संपराय हि उचित रहिहै अवनि लरैं न तिल।
सकुटुंब सकल नृप जुत करहिं कुंभिलमेरु निवास किल।।५।।

इस लूट की और शत्रु सेना के आगमन खबर पा कर मेवाड़ के सामन्त योद्धाओं ने नीतिगत मंत्रणा की कि वह कछवाहा राजा तो जंगी सेना ले कर आया है जबकि हम लोग थोड़ी संख्या में हैं। खांडेराव होल्कर और कोटा के राजा तो बिना विस्तार के आए हुए हैं अर्थात् दोनों पूरी सेना साथ नहीं लाये। रही बात बूंदी के राजा उम्मेदसिंह की तो वह तो वित्तविहीन हो कर भी अपनी भूमि प्राप्त करने का व्यर्थ ही हठ पकड़े हुए हैं। ऐसी स्थिति

में हम लोग डटकर मुकाबला करने में असमर्थ हैं इसलिए युद्ध संभव नहीं। कहीं ऐसा न हो कि हम छोटा-मोटा युद्ध कर अपनी है वह भूमि भी खो बैठें क्योंकि हार जाने की दशा में तिलभर भी जमीन हमारे अधिकार में नहीं रह जाएगी। उचित यह होगा कि अब हमें महाराणा सहित निश्चय ही कुभंलगढ़ के गहन प्रदेश में शीघ्र ही जा बसना चाहिए।

तखतसिंह यह सोधि जान लग्गो कूरम प्रति,
सुनि यह खंडुव साम अनखि कुप्प्यो हुलकर अति।
बुल्ल्यो पुनि भुज ठोकि सजव आये संगर भ्रम,
अब जो साम उपाय ततो तुम माँहिं नाँहिं हम।
सुनि तखतसिंह हुलकर कथित दयाराम तँहँ मुक्कलिय।
अक्खिय वहै न नय समयपटु समुझावहु कहि प्रचुर प्रिय॥६॥

बाबा तख़्तसिंह यह सोच कर कि हमें कछवाहा राजा से सीधी बात करनी चाहिए वह वहाँ से रवाना होकर जाने लगा तब इस तरह की संधि के विचार को देख क्रोध से भरा खांडेराव होल्कर भड़क उठा और अपनी भुजाओं को ठोकते हुए बोला कि क्या शीघ्र गति से तुम यहाँ युद्ध का भ्रम पाल कर आये थे? यदि तुम्हारे पास एक संधि का उपाय ही शेष रह गया है तो सुनो! हम तुम्हारा साथ नहीं देने वाले। होल्कर से यह सुन कर तखतसिंह ने अपना जाना मुल्तवी (स्थगित) किया। उसने तब पुरोहित दयाराम को खांडेराव के पास भेजा। उसे यह कह कर रवाना किया कि हे नयचतुर! चूंकि हमारे लिए स्थितियाँ अनुकूल नहीं होने से यह युद्ध नीति सम्मत नहीं इसलिए जाकर उस होल्कर को अच्छी तरह समझाना जिससे युद्ध टाला जा सके।

तबहि जाय भूदेव कहिय बुंदीस पुरोहित,
तुम दिल्लिय तिय जार कुमर खंडुव चिंतहु चित।
अवसर कोप इहाँ न स्वामि साहुव कुल रानाँ,
तुरकन तैं तिन बेर खुट्टि सब गयउ खजाना।
सज्जहिं जु अज्ज रन कुम्म सह तो तुम ढिगहु अनीक मित।
कछुदिन विहाय दल इक्क करि बहुरि सत्रु जित्तहि बिदित॥ ७॥

तब उस ब्राह्मण अर्थात् बूंदी के चतुर पुरोहित दयाराम ने होल्कर के पास जाकर सविनय निवेदन किया कि हे खांडेराव! तनिक मन में इस पर विचार करो कि आप तो दिल्ली रूपी नायिका के जार (उपपति) हो ! यहाँ इन छोटी-छोटी बातों पर क्या कोप कर रहे हो! आपके स्वामी साहु तो राणा कुल के हैं जिन्होंने तुर्कों से वैर लेने में अपने सारे खजाने खाली कर दिये। अपनी इस उच्च कुल परम्परा को सोच कर आज आपको युद्ध के लिए सज्जित नहीं होना चाहिए। आज आपने कच्छवाहा राजा की विशाल सेना से टकराने का मानस बनाया तो यह भी देख लेना चाहिए कि आपकी सेना कितनी अल्पसंख्यक है। इसलिए आपसे यह मेरा विनम्र अनुरोध है कि पहले थोड़ा समय ले कर अपनी सेना की संख्या बढ़ायें। पर्याप्त संख्या में योद्धा मिल जाने पर अवश्य युद्ध करें फिर विजय तो आपकी निश्चित है।

दोहा

बिरुदावत इम फुल्लि सठ, सुनि दिल्लिय तिय नाम।
बुल्ल्यो हमहिं तटस्थ करि, करहु बिप्र सब काम॥ ८॥

पुरोहित दयाराम के इस तरह बिरुदाने से वह मूर्ख खांडेराव होल्कर (यह सुन कर ही) फूल कर कुप्पा हो गया कि दिल्ली रूपी नायिका का वह उपपति है। उसने तपाक से कहा कि ठीक है। हे पुरोहित! मुझे तटस्थ समझो और अपना काम करो।

षट्पात्

सुनि सत्वर यह बिप्र आनि अक्खिय तखतेसहिं,
हुलकर सम्मत आहि मिलहु तुम कुम्म नरेसहिं।
तबहि जाय तखतेस अरज कूरम प्रति अक्खिय,
मरहट्ठन आदेस कहहुँ इहिं दिन किहिं नक्खिय।
तसमात धारि खंडुव कथित तुम भुव हम पत्ते लरन।
तिहिं हेतु आहि यह दोस तस नृप लुट्टहु मेवार नन॥९॥

खांडेराव होल्कर से ऐसा सुनते ही शीघ्र पुरोहित दयाराम वहाँ से बाबा तखतसिंह के पास आया और बोला कि अब होल्कर मान गया है। उसने सम्मति दे दी है अब आप कछवाहा राजा से मिलने जा सकते हैं।

तब तखतसिंह ने जाकर राजा ईश्वरीसिंह से निवेदन किया कि हे राजा! आप ही बताएँ कि मराठों के हुक्म को मानने की परम्परा किसने डाली? अर्थात् इनकी सहायता लेना आप ही की ओर से आरंभ हुआ था। यही कारण रहा कि हम भी खांडेराव का कहना मान कर आपकी भूमि पर लड़ने पहुँचे। आप भी उसके इस दोष को लेकर यह जो मेवाड़ को लूटने का उपक्रम कर रहे हैं उसे बंद कर दें!

नति पूरब यह सुनत कुम्म अनुकंप बिहसि किय,
भिल्लहड़ापुर बनिक धनिक पकरे ति छोरि दिय।
उपालंभ लिखवाय पत्र पठयो रानाँ प्रति,
किय पच्छो दरकुंच गरद रवि ढंकि मुदिर गति।
सुचि पक्ख चैत बिक्रम सकग पंच गगन बसु चंद्र मित।
नृप किय प्रवेस जैपुरनगर मेवारन आक्रमि मुदित॥१०॥

बाबा तखतसिंह की बात सुन कर नम्रतापूर्वक कछवाहा राजा ने मुस्कराहट बिखेरते हुए अनुकंपा की और भीलवाड़ा के जिन सेठों को पकड़ा गया था उन्हें वापस छोड़ दिया। इसके बाद उलाहनों से भरा एक पत्र राजा ईश्वरीसिंह ने उदयपुर के महाराणा को भिजवा कर अपनी सेना सहित वापस जयपुर के लिए कूच किया। अपनी सेना की हलचल से उठी धूल से आकाश में सूर्य को ढाँपते हुए विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पाँच के चैत्र माह के शुक्ल पक्ष में राजा ईश्वरीसिंह ने मेवाड़ पर आक्रमण कर वापस लौटते हुए जयपुर में प्रवेश लिया।

रोला

जगतसिंह इत रान खास इक रूपमल्ल हय।
साखति पुरट समेत रुचिर कुल जात मनोरय॥
इक खासा तरवारि भूप संभर हित भेजिय।
रान सचिव भट लै रु पहुँचि बुंदिय अनीक प्रिय॥ ११॥
भिंडरपुर प खुसाल तखत जयसिंहरान सुत।
नगर सादड़ीनाह रायसिंह हु बिचार जुत॥

दयाराम पुनि द्विजनि हड्डुबुन्दीस पुरोहित।
आये ए नृप अग्ग सचिव च्यांरि हु नय सोहित॥ १२॥

उधर महाराणा जगतसिंह ने अपनी सवारी का "रूपमल" नामक एक घोड़ा जो स्वर्ण आभूषणों से सजाधजा था और चलने में मन की गति जितना चपल था के साथ (महाराणा ने) एक अच्छी तलवार चहुवान राजा उम्मेदसिंह के लिए भेजी। महाराणा के सचिव योद्धा ये उपहार लेकर युद्ध प्रिय राजा के नगर बूंदी पहुँचे। भींडर पुर का जागीरदार कुशालसिंह और बाबा तखतसिंह जो (राणा जयसिंह का पुत्र था) के अतिरिक्त सादड़ी का स्वामी झाला रायसिंह और ब्राह्मण दयाराम जो हाड़ा राजा का पुरोहित था उपरोक्त चारों नीति से शोभित जन बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के समक्ष पहुँचे।

इन हय असि करि नजरि बीरपन बिरुद बिथारिय।
प्रीति सहित सुनि बचन लैन भूपति अवधारिय॥
स्वीकरि पुनि निज सुभट बीर बुंदिय दिस पिल्लिय।
तिन आय रु निज बिखय ठोकि कूरम चर ठिल्लिय॥१३॥
हो हाकिम यँहँ बनिक सचिव जैपुर कुल बंधव।
थानसिंह थू उचित लैन पटु दैन पटु न लव॥
सो निकस्यो कर लैन नियति बल नृपदल पिक्ख्यो।
लिन्नौं पकरि निलज्ज सपथ बंदन तब सिक्ख्यो॥ १४॥

चारों सहृदयों ने राजा को "रूपमल" नामक घोड़ा और एक श्रेष्ठ तलवार भेंट कर, राजा की वीरता का बखान किया। इनके अनुरोध को सुन कर प्रीति सहित राजा ने उन्हें स्वीकृत करने का विचार किया। उदयपुर से आई भेंट को स्वीकार कर राजा ने तब अपने वीर योद्धाओं को बूंदी की दिशा में भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर अपने राज्य की सीमा से कछवाहा राजा के सेवकों को निकाल बाहर किया। इन जयपुर के अधिकारियों में एक हाकिम बनिया जो जयपुर के सचिव का कुलोत्पन्न बांधव था, थानसिंह उसे धिक्कार भेजनी चाहिए क्योंकि वह सब कुछ लेने में चतुर था और कुछ भी नहीं देने में भी चतुर था। वह कर की वसूली पर निकला था। यह थानसिंह बूंदी के राजा द्वारा भेजे गए योद्धाओं की नजर आ गया। राजा उम्मेदसिंह के भरोसे योग्य इन योद्धाओं ने तुरन्त ही उस

निर्लज्ज को जा दबोचा। यही वह अवसर था जब थानसिंह शपथ खाना और नमस्कार करने जैसी बातें सीखा और उसने इन बातों का प्रदर्शन भी किया।

कारा सहि कति काल दम्म पुनि तीस सहँस दिय।
तब छोर्‌यो वह त्रसित जानि दुल्लभ मन्नत जिय॥
बिन बुंदिय सब बिषय अमल बसु मास आरोह्यो।
नृप भट बहुरि निकासि मुलक कूरम दल मोह्यो॥ १५॥

राजा के योद्धाओं ने इस थानसिंह को कैद कर कारागार में डाल दिया और उस बनिये से तीस हजार रुपयों का हर्जाना लेकर छोड़ा। थानसिंह ने भी डरते हुए 'जान है तो जहान है' यह सोचा। इसके बाद तो राजा उम्मेदसिंह हाड़ा के योद्धाओं ने एक बूंदी का परगना छोड़ कर शेष आठों परगनों को अपने अधिकार में किया और आठ माह तक अपना अमल बरकरार रखा। राजा के योद्धाओं ने इस तरह कछवाहा दल को खदेड़ कर अपने मुल्क का मन मोह लिया।

सोरठा

इत पुनि रान बिचारि, गोवरधन गोस्वामि प्रति।
मुदित मंडि मनुहारि, पठये दल श्रियद्वार पहु॥ १६॥
तुम बल्लभ कुल दीप, बुल्लहु यँहँ कोटेस अब।
मिलि हम उभय महीप, स्वमत धर्म मग संचरहिँ॥ १७॥
गोस्वामिय लिखि पत्त, बुल्ल्यो तब कोटेस द्रुत।
आयो निट्टिन अत्त, जानि रान सम्मत बिफल॥ १८॥

इधर उदयपुर के महाराणा ने अच्छी तरह विचार कर नाथद्वारा के गोस्वामी गोवर्द्धन को मुदित मन से मनुहार करते हुए एक पत्र लिख कर भिजवाया। उसमें लिखा कि तुम वल्लभ कुल (संप्रदाय) के दीपक हो, इस नाते अपने भक्त कोटा के राजा माधवसिंह को अपने यहाँ नाथद्वारा बुलवाओ ताकि हम दोनों राजागण मिल बैठकर आपके धर्म के मार्ग का अनुसरण करेंगे। महाराणा का ऐसा पत्र पाकर गोस्वामी ने तुरन्त कोटा पत्र लिख कर राजा को शीघ्र नाथद्वारा बुलवाया। राजा भी मन ही मन महाराणा की सम्मति को विफल मानते हुए बेमन से बमुश्किल तमाम नाथद्वारा आया।

दोहा

रान कहाई मिलन की, नट्यो तबहि कोटेस।
कहिय बदलि तुम साम किय, सद्धिय कुम्म नरेस ॥१९ ॥
मिलन मैं हु रस नहिं तुमहु, करत अल्प सतकार।
अरथी बिनु आदर रहित, मिलत कोन मतिदार ॥२० ॥

पहले महाराणा ने मिलने की इच्छा दरसाई थी पर कोटा के राजा ने इन्कार कर दिया और कहलाया कि आपने हमारे मध्य हुई संधि की शर्तों की अनुपालना नहीं की और कछवाहा राजा से मिल गए। इसलिए इस सम्मिलिन में मुझे कोई रस नहीं प्रतीत होता फिर कुछ भी याचना करने वाले याचक से आदर रहित अवस्था के कौन बुद्धिमान मिलना पसन्द करता है।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ शीर्षोद तखतसिंह कुसालसिंह भल्लारायसिंह द्विजदयाराम सचिवचतुष्टय सहित-राणासैन्यसहाया ऽ र्थसाहिपुरा ऽऽ गमनकूर्मराजमेदपाटप्रविशन भिल्लहड़ा-पुर लुण्टन तद्बलविद्रुतोदयपुरसचिवसामविचारणकुपित्तहुल कर खण-ड्डबनुनयन आयसिंहिकुच्छामनतत्स्वपुरप्रतिप्रविषनहड्डेन्द्रोपायनीभूता-र्व्वरूपमल्ल कान्तकृपाण पुरस्सरराणचतुस्सचिवबुन्दीशशिविरा ऽऽ गमनगृहीत निवेदितो पापनसम्भरस्वभट बुन्दीविषयप्रेषणनष्टाणि स्थान सिंह निग्रहणातद्दण्डद्रव्यग्रहण बुन्दीमात्ररहित देशस्वीकरणराणा ऽ नुनीत श्रीद्वार गोस्वामिगोवर्द्धनमहारावा ऽऽ ह्वयन कोटेशतन्मिलनाऽल्पसत्कार सूचनं द्वाविंशो मयूख॥ आदितः ॥ ३०३ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में, सिसोदिया तखतसिंह, कुशालसिंह, झाला रायसिंह, ब्राह्मण दयाराम, इन चारों सचिवों सहित राणा की सेना की सहायता के अर्थ शाहपुरा में आना, कछवाहों के राजा का मेवाड़ में प्रवेश करके भीलहड़ा पुर (भीलवाड़ा) को लूटना, उसके सेना से डर कर उदयपुर के सचिव का साम उपाय करने से कोपे हुए खंडू की प्रार्थना करना और जयसिंह के पुत्र के क्रोध को मिटाना और उसका कूच करके अपने पुर में प्रवेश करना। हाड़ा को भेंट करने को रूपमल्ल नामक घोड़ा, सुन्दर तलवार, आदि सहित राणा के चार सचिवों का बून्दीश के डेरे

पर आना और नजर किये हुए नजराने को लेकर उम्मेदसिंह का अपने वीरों को बूंदी के देश में भेजना। नाटाणी थानसिंह को पकड़कर उससे दंड के रुपये लेना और एक बूंदी को छोड़ कर देश को अपना करना, राणा की प्रार्थना से नाथद्वारे में गुसांई गोवर्धनलाल का कोटा के महाराव को बुलाना और राणा के मिलने में अल्प सत्कार होने की कोटा के पति की सूचना करने का बाईसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तीन मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

हरिगीतम्

तसमात अब तुम रान बुंदिय तुल्य अद्दर जो करो।
तबही मिलै रु बहोरि जो नहि साम कूरम सों धरो॥
पहिलैंहि दै हरि अग्ग वचन रु फुट्टि जैपुर मैं मिले।
तसमात नाँहिं बिसासहै तुम इष्टसौंह सबै गिले॥ १॥
सुनि रान तब कछु घट्टि बुंदिय तुल्ल्य अद्दर स्वीकरयो।
अब अप्प सम्मुह इक्क गद्दिय बैठिहौ यह उच्चरयो॥
हम मत्थ हत्थ लगायहैं लघु खास कग्गर मंडिहैं।
अबतैं सनेह बढ़ैं जु अपन सो कदापि न खंडिहैं॥ २॥

हे राजा रामसिंह! कोटा के राजा ने महाराणा से मिलने हेतु शर्तें रखी कि वे (महाराणा) मेरा बूंदी के राजा के बराबर का सम्मान करें। में आपसे तभी मिल सकता हूँ बशर्तें कि अब आप भविष्य में कभी भी जयपुर के कछवाहा राजा से संधि नहीं करोगे। पूर्व में भी आपने भगवान की साक्षी में मुझे वचन दिया था पर आप मुझसे फट कर (विलग होकर) जयपुर के राजा से जा मिले। यही कारण है कि मुझे अब आप पर विश्वास नहीं रहा क्योंकि आपने ईश्वर की सौगंध भी तोड़ दी। कोटा के राजा की ऐसी शर्तें सुनकर महाराणा इस बात के लिए रजामंद हो गए कि वे बूंदी के राजा से थोड़ा ही कम सम्मान उन्हें देने को तैयार हैं। महाराणा ने कहलाया कि हे कोटा के राजा! अब से आप मेरे समक्ष एक गद्दी पर बैठ सकोगे और मैं आपसे अब अपने मस्तक को छूकर मुजरा (अभिवादन) करूँगा। हम अपने रुक्के में अपने आप को आप से छोटा लिखेंगे। अब जो हम में स्नेह बढ़ेगा उसे मैं कभी खंड़ित नहीं होने दूंगा, इसका विश्वास करें।

कोटेस तब सुनि एह रानहिं मेल स्वीकरि बुल्लये।
तब रान पुनि श्रियद्वार आय मिले रु मंत्रहु खुल्लये॥
रु सदैव सम्मलि होन के पुनि पत्र दोउन मंडये।
चढि गाम ढिंकोला दुहून रकाब जाय रु छंडये॥ ३॥
तब ही जु साहिपुरा चमू सु समस्त जाय मिली तहाँ।
बुंदीस डेरन रान खंडुव भीमनंद गये जहाँ॥
तब इंद्रगढ खत्तोलि बलवनि आदि तीन मिलायकैं।
पुनि रानसौं मिलि भूप बैठिय इक्क गद्दिय आयकैं॥ ४॥

महाराणा की ऐसी स्वीकृतियों के बाद कोटा के राजा ने मिलना स्वीकार कर उन्हें मिलने बुलाया तब महाराणा मंत्रणा करने हेतु नाथद्वारा आए। यहाँ दोनों राजाओं ने मिलते ही एकता रखने के इकरार के पत्र लिखे फिर दोनों घोड़ों पर सवार हो ढिंकोला नामक गाँव तक आए और यहाँ आकर उन्होंने घोड़ों की रकाबें छोड़ी अर्थात् दोनों ने वहाँ आकर पड़ाव किया। यहीं पर मेवाड़ की सेना शाहपुरा से आकर मिली। यहाँ पहुँच कर महाराणा खांडेराव होल्कर और भीमसिंह के पुत्र दुर्जनशाल के साथ बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के शिविर में गए। यहाँ राजा ने अपने इन्द्रगढ़, खातोली और बलवनी के जागीरदार सामन्तों से सभी को मिलवाया। यहाँ महाराणा से मिलकर सभी राजा एक गद्दी पर बैठे।

घटिका उभै हि सभा रही मनुहारि मोदमई भई।
पुनि पान गंध निवेदि सर्बन सिक्ख डेरन कौं दई॥
खंडू रु माधव तत्थही पलटाय पग्घ सखाभये।
पुनि तत्थनैं चढि सर्वही गुलगाम पारहलौं गये॥ ५॥
खारी नदी तट दैं मिलान सबैं घने दिन क्वौं रहे।
तब कुम्म वीरहु सज्जव्है दरकुंच सम्मुह उम्महे॥
त्रय कोस अंतर दै मिलान यहै कहाइय रान पैं।
क्यौं बैन चुक्की करार के पुनि सज्ज हुव घमसान पैं॥ ६॥

यह सभा दो घड़ी तक चली जहाँ आपस में एक दूजे की मुदित मन से मनुहारें हुई। अन्त में पान और इत्र पेश करते हुए महाराणा ने सभी

को अपने-अपने शिविर में जाने की इजाजत प्रदान की। यहीं पर बूंदी का राजा उम्मेदसिंह और खांडेराव होल्कर एक दूसरे के पगड़ी बदल भाई बने। इसके बाद सभी घोड़ों पर सवार हो (गुलगाम) पारा नामक गाँव तक गए। यहाँ पहुँच कर खारी नदी के तट पर सभी ने पड़ाव किया और काफी दिनों तक यहाँ रहे। इसी समय उधर से कछवाहा सेना ने महाराणा के पड़ाव से तीन कोस की दूरी पर आ कर अपना डेरा किया और महाराणा से कहलाया कि आप क्यों संधि के अपने वचन से हट कर फिर से युद्ध करने को उद्यत हुए हैं?

तुम भ्रात नाथ पटा जु पावत सोहि माधव कौं मिलैं।
घर रीति चूकि रु अप्प क्यों अब कोल बैन कहे गिलै॥
तब रान अक्खिय अप्प जानत रीति घर घर भिन्न है।
तुमरे पिता जयसिंह राज्य सबैहि याकैंहैं दिन्न है॥ ७॥
हम किद्ध नाथ प्रसन्न ज्यों तुम त्योंहिं माधव कौं करो।
निज तात मंडित पत्र अक्खर लुप्पि लोभ न अहरो॥
इहिं रीति होत जवाब जानि रु कुप्पि खंडुव उच्चरी।
रन काज मोहि बुलायकैं अब साम की तुम जो धरी॥ ८॥

कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की ओर से महाराणा को आगे कहलवाया गया कि हे महाराणा! आपने अपने भाई नाथसिंह को जितनी जागीर का पट्टा दे रखा है उसी के अनुसार यहाँ जयपुर में माधवसिंह को मिलना चाहिए। आप अपने घर की रीति को त्याग कर अपने भानजे माधवसिंह को अधिक जागीर दिलवाने के लिए अपने संधि के वचनों से हट रहे हैं। यह सुन कर महाराणा ने प्रत्युत्तर में कहलाया कि हे कछवाहा राजा! आप तो जानते हैं कि प्रत्येक घर की रीति अलग-अलग होती है। फिर आपके पिता राजा जयसिंह ने यह सारा राज्य माधव सिंह को दिया था। अब रहा सवाल मेरे भाई नाथसिंह का तो उसे मैंने जैसे राजी कर रखा है वैसे ही आप भी अपने भाई माधवसिंह को प्रसन्न करो और अपने पिता के हाथ से लिखे इकरार को लोपने का लौभ मत करो। दोनों पक्षों के इस तरह के सवाल जवाब होते देख कर खांडेराव होल्कर कुपित हो कर बोला कि हे

महाराणा! आपने मुझे यहाँ युद्ध करने को बुलवाया है और अब आप स्वयं शुत्रु से संधि की भाषा बोलने लगे हैं, ऐसा क्यों ?

तुमतैहिं संगर सज्जि तो हम प्रीति रीति बिगारिहैं।
कछवाह हिंतु न तो लरो हरवल्ल हम असि झारिहैं॥
तँहँ रान बत्त कुबेर ओ तखतेसर तैं यह अक्खई।
अब अप्प साम करो न ह्याँ रन बुद्धि खंडुव की भई॥ ९॥

तब रान आदि समस्त फोजन सज्ज जुज्झन की करी।
रनपंकि तंतिन सिंघवी झननंकि पक्खर घुग्घुरी॥
सुनि कुम्म सत्रुन सज्ज होत बिचारि खंडुव भीर कों।
जय जानि संसय मुक्कल्यो हरनाथ नारव बीर कों॥ १०॥

हे महाराणा! यदि आपने युद्ध नहीं किया तो हम आपसे अपने प्रीत भरे रिश्ते तोड़ लेंगे। यही नहीं हम सज्जित होकर आपसे युद्ध करेंगे और मैं खांडेराव अपने दल की हरावल पंक्ति में रह कर तलवार के प्रहार करूंगा। खांडेराव होल्कर से यह सुन कर महाराणा ने बाबा तखतसिंह और कुबेरसिंह को बुलाया और उनसे कहा कि अब आप लोग यहां संधि की बात ही मत करना क्योंकि खांडेराव की इच्छा युद्ध ही करने की है। फिर महाराणा सहित सारे मित्र राजाओं की सेना को सज्जित कर जूझने को कहा गया। सारंगियों और तंत्र वाद्यों पर सिंधु-रागिनी गूंज उठी। घोड़ों के पाखरों की कड़ियाँ झनझना उठीं। जब कछवाहा राजा ने सुना कि शत्रु तो युद्ध के लिए सज्जित हो रहे हैं और खांडेराव होल्कर उनका सहायक बना हुआ है तो राजा ने यह ताड़ लिया कि विजय में संशय है। तब उसने नरूका शेखावत हरनाथ को महाराणा के पास भेजा।

कहि मास कत्तिय मग्ग वा हमहू उदैपुर आय हैं।
अरु अप्प माधव ओ उमेद दुहून लाय मिलायहैं॥
तँहँ नम्रताजुत पिक्खि बुंदिय हड्ड भूपहिं अप्पिहैं।
दस लक्ख रुप्पय देस माधव अत्थ दै थिर थप्पिहैं॥ ११॥

यह बत्त नारव आयकैं नृप रान आदिन तैं कही।
कोटेस आदि सिराहि बुंदिय स्वीय हाकिम की चही॥

सुनि एह दुज्जनसल्ल कौं तब बीर खंडुव निंद्यो।
इहिं रीति दोउन के विरोध बिसेस बैनन व्है भयो॥ १२॥

कछवाहा राजा ने महाराणा से हरनाथ के साथ कहलाया कि मैं अगले कार्तिक या मार्गशीर्ष माह में उदयपुर आ रहा हूँ। आप उस समय हाड़ा उम्मेदसिंह और कछवाहा माधवसिंह को वहाँ मुझसे मिलवाना। यदि मैंने राजा उम्मेदसिंह को उदण्ड नहीं पाया तो मैं उस विनम्र को बूंदी की भूमि सोंप दूंगा। रही बात माधवसिंह की तो मैं उसे दस लाख रूपये प्रति वर्ष की आमदनी वाले परगने दे कर उसकी आर्थिक अस्थिरता मिटा दूंगा। कछवाहा राजा के ये प्रस्ताव नरूका हरनाथ ने महाराणा आदि के समक्ष रखे। कोटा के राजा ने यह सुन कर राजा ईश्वरीसिंह की सराहना की ताकि उसे बूंदी का हाकिम बना रहने का अवसर मिल जाए। दुर्जनशाल ने भी समर्थन में जोरदार उत्साह दिखाया और खांडेराव होल्कर के युद्ध के प्रस्ताव की निंदा की, इससे होल्कर और उसके बीच तनातनी बढ़ गई। दोनों ने एक दूजे के विरोध में वचन कहे।

दुरभिच्छ कारन सेन मैं मन घास रुप्यय को बिकैं।
अरु अन्नकीहु महर्घता करि लोक निठ्ठिन कैं टिकैं॥
बलि नित्य दम्म हजार बारह रान कै व्यय मैं लगैं।
पुनि होत साम जवाब जो निमटैंहि जावन की थगैं॥ १३॥
कोटेस कैं दल केन तत्थ अनीति मंडि मरोर तैं।
तृन सकट जाय रु रानके दल मौंहिं लुट्टिय जोर तैं॥
तब कुम्म बैन कहे जु मन्त्रि रु रान अक्खिय है भलैं।
तब देहु पैं अबतैंहि हाकिम तत्थ मामक मुझलैं॥ १४॥

इस वर्ष मेवाड़ की भूमि पर दुर्भिक्ष पड़ा इसलिए घास की भी कमी हो गई थी और घास एक रूपये मण के भाव से बिकने लगा। फिर अन्न की मँहगाई का तो पूछना ही क्या। धान मँहगा होने से आम लोगों का गुजर-बसर कठिन हो गया। वे मुश्किल से अपना गुजारा कर रहे थे। इस समय महाराणा की और सम्मिलित सेना पर प्रतिदिन बारह हजार रुपयों का खर्च आ रहा था इसलिए महाराणा ने अपने सामन्तों सहित सोचा कि शीघ्र

ही संधि हो जाए तो सभी अपने-अपने घर जाएं। इसी समय कोटा राजा का दर्प से भरा दल अनीति पर उतर आया। उसने महाराणा की सेना के शिविर में जाकर घास से भरी गाड़ियां लूट लीं। ऐसी स्थिति में कछवाहा राजा के भेजे प्रस्ताव को महाराणा ने मानते हुए कहा कि ठीक है हमें मंजूर है पर एक शर्त यह कि आप तो आगामी कार्तिक माह में जागीर देंगे तब तक हम चाहते हैं कि हमारे हाकिम वहाँ तैनात कर दिये जाएँ।

यह बत्त कूरम स्वीकरी तब रान आयस त्यौं दयो।
नगरी बसी पति चौंडबंसिय मेघ बुंदिय भेजयो॥
टोडा महाजन टेकचंद पठाय रान खुसीभयो।
यह जानि माधव मित्र खंडुव कुंच दोउन को ठयो॥१५॥
करि कुम्म दुम्मन रानतैं निज धाम रामपुरा लयो।
कति दीह खंडुब तत्थ रहि पुनि बप्पके ढिग पुग्गयो॥
इत कुंच ईस्वरिसिंह हू निज धाम जैपुर त्यौं किये।
कोटेस भेजि वकील अक्खिय मोहि बुंदिय दीजिये॥१६॥

महाराणा की इस शर्त को कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने मान लिया तब महाराणा ने निर्देश दे कर बस्सी नगर के चूंडावत जागीरदार मेघसिंह को बतौर हाकिम बूंदी भेजा। टोडा परगने पर टेकचंद महाजन को भेजते हुए महाराणा ने खुशी जाहिर की। यह देख कर माधवसिंह ने अपने मित्र खांडेराव होल्कर के साथ वहाँ से विदा ली और कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने भी तब महाराणा के अधिकार से अपना रामपुरा का परगना वापस लिया। कई दिन यहाँ व्यतीत कर खांडेराव होल्कर अपने पिता मल्हारराव के पास पहुँचा। इसके बाद राजा ईश्वरसिंह ने भी जयपुर को कूच किया तभी कोटा के राजा ने अपना वकील कछवाहा राजा के पास भेज कर कहलाया कि बूंदी आप मुझे दीजिये।

तब लै वकीलहिँ संग कूरम स्वीय पत्तन संचरयो।
रु तही तजो अब रान संगत तो करैं तुम उच्चरयो॥
नहितो ब कत्तिय मास मैं तुमतैंहु संगर जोरिहैं।
पहिलैं करी जिम थूमि तोपन नैर चम्मलि बोरिहैं॥ १७॥

कोटेस रान रु भूप ए इत उप्परे गुलगाम तैं।
पुर धुंधरी तट दै मिलान रहै निसा सुख साम तैं॥
तँहँ जो पुरोहित रानके ढिग हो सु संभर मंगयो।
तब दयाराम जु बिप्र रानहु भूपकौं हिततैं दयो॥ १८॥

कछवाहा राजा तब कोटा के वकील को अपने साथ ले कर अपने नगर जयपुर गया। वहाँ जा कर कछवाहा राजा ने कोटा के वकील से कहा कि मैं तुम्हारा कहा तभी कर सकता हूँ जब आप लोग अपने संबंध महाराणा से तोड़ लें। तुम्हें यदि हमारी यह शर्त मंजूर नहीं तो सुन लेना! मैं अगले कार्तिक माह में कोटा के विरुद्ध युद्ध छेड़ूंगा। सोच लेना, मैं पूर्व की तरह इस बार भी तोपों से कोटा नगर को बिखेर कर चम्बल नदी में डूबो दूंगा। उधर कोटा का राजा, महाराणा और राजा उम्मेदसिंह भी गुलगाम से रवाना हुए। वहाँ से धुंधरी नामक नगर के पास आ रात्रि का पड़ाव किया। यहाँ पर राजा उम्मेदसिंह ने अपने पुरोहित को महाराणा से वापस माँगा जो उदयपुर रह रहा था। महाराणा ने भी तब हाड़ा राजा का हित सोचते हुए दयाराम पुरोहित को दे दिया।

निज बिप्र लै दुव हड्डु भूपति नंदगाम गये तबै।
बुंदीस चम्मलि वारही रहि सगतपुर गढ मैं जवैं॥
तँहँ सचिव हरजन हड्डु कौं सिविका समप्पिय संभरी।
अरु देसमैं तहसील कारन सिक्ख ताहि दई खरी॥ १९॥

अचलेस माधानी सहित तब देस हरजन संचर्यो।
सीलोरपुर ढिग कुम्म सुभटन जाय रन तिनसौं कर्यो॥
अचलेस के गुटिका लगी पर दोहु सत्रुन नाँ जये।
पुनि फोज जैपुरतैं चली तब छोरि भूपतिपैं गये॥ २०॥

कोटा और बूंदी के दोनों हाड़ा राजा तब यहाँ से दयाराम पुरोहित को साथ लेकर नंदगाँव गए। बूंदी का राजा उम्मेदसिंह तो चम्बल नदी के इस पार सगतपुर दुर्ग में ठहर गया। यहाँ चहुवान राजा ने अपने सचिव हरजनसिंह हाड़ा को पालकी प्रदान की और अपने राज्य में कर वसूल करने जाने की आज्ञा दी। तब माधवसिंहोत हाड़ा अचलसिंह को साथ लेकर हरजनसिंह

बूंदी के परगनों में जाने को रवाना हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने सिलोरपुर नामक गाँव में जाकर वहाँ तैनात कछवाहा सेवकों से टक्कर ली। इस भिड़त में अचलसिंह को एक गोली लगी पर दोनों वीर शत्रुओं से हारे नहीं। इसी बीच कछवाहा राजा की सेना के लोग जो राजा को जयपुर तक छोड़ने गए थे वे जयपुर से वापस लौटे।

सक बेद नभ बसु सोम भद्दव कृष्णअष्टमि जंग भो।
पुनि भूप आन उठाय जैपुर सैन बुंदिय संग भो।
रन काज भूप बहोरि बीर दलेल नाहर मुक्कले।
रन आय बुंदिय किन्न पै बपु घाय दोउन कैं छले॥ २१॥

तबही सगतपुर बुल्लिकैं उपनाह दोउन कै कियो।
आसोज मैं सुत ईडरेचिय के भयो सु नही जियो।
इत ज्येष्ट सालमनंद दिल्लिय छोरि जैपुर पुग्गयो।
भट ताहि कूरम रक्खि बुंदिय सीम मोंहिं पटा दयो॥ २२॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चार के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि अर्थात् कृष्ण जन्माष्टमी के दिन यह भिड़ंत हुई। जयपुर की सेना ने आकर राजा उम्मेदसिंह की आन-दुहाई को उठा दी। तब राजा उम्मेदसिंह ने युद्ध करने को अपने दो वीरों दलेलसिंह और नाहरसिंह को भेजे। इन दोनों ने आकर झंड़प की पर दोनों घायल होकर गिर पड़े। राजा उम्मेदसिंह ने दोनों घायलों को सगतपुर मँगवाया और उनका उपचार कराया। इसी वर्ष के आश्विन माह में राजा उम्मेदसिंह की राठौड़ रानी के एक पुत्र जन्मा पर वह जिया नहीं। उधर सालमसिंह हाड़ा का ज्येष्ठ पुत्र दिल्ली छोड़ कर जयपुर आया तब कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने इस योद्धा को अपने यहाँ रखा और उसे बूंदी की सीमा में जागीर का पट्टा दिया।

पुनि मग्ग मैं नृप कुम्म बुंदिय आय दीह घने रह्यो।
कोटेस केर वकील तैं यह बैन परिखद मैं कह्यो॥
हम संग दुरजनसल्ल होय रु भ्रात माधव पैं चलो।
यह नाँहिं तो रन सज्ज होय रु लैन हम कैंहैं मुक्कलो॥२३॥

कोटेस यह सुनि इक्कठो निज सेन पत्तन मैं करयो।
लगवाय बाहिर मोरचे गढ जाल तोपन को जरयो।
उत एह माधवहू सुनी तब छोरि रामपुरा सरयो।
दल संग लै निज भीत व्है कढि नैर कररावन परयो ॥२४॥

इसके बाद मार्गशीर्ष माह में कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह बूंदी आया और यहाँ बहुत दिनों तक रहा। यहाँ कोटा के वकील से राजसभा में राजा ईश्वरीसिंह ने कहा कि हम दुर्जनसाल के पक्ष में हैं और यह अवसर है कि आप लोग भी अपने हाड़ा भाई माधवसिंह पर चढ़ाई करने चलें। यदि आप लोग ऐसा नहीं कर सको तो यह करो कि युद्ध के लिए सज्जित हो कर मुझे किसी बहाने कोटा से बुलाने भेजो अर्थात् नहीं कहने पर हम युद्ध करने कोटा आएँगे। इस बात की भनक कोटा में जब राजा को पड़ी तो उसने अपनी सेना को सज्जित किया। कोटा के राजा ने तब दुर्ग के बाहर मोर्चे बनवाए और गढ़ के चारों ओर तोपों का जाल रच कर उसे सुरक्षित किया। यह बात जब रामपुरा में माधवसिंह ने सुनी तो वह रामपुरा छोड़ कर बाहर चला और डरते हुए अपने दल को साथ ले कर उसने बाहर के नगर कररावन में अपना पड़ाव डाला।

इत कुम्म बुंदिय दोहु भ्रातन माँहिं हित बिसतारयो।
परताप कौं रु दलेल कौं इक थाल भोजन कारयो ॥
सु दलेल ठीक गिनी न छोरिय अन्न आमय व्याज तैं।
पुनि कुंच दुंदुभि बज्जयो नृप कुम्म को रन साज तैं ॥२५॥
सुनि ताहि फोज बहीरसो सब नंदगाम दिसा चली।
अरु कुम्महू किय बिष्णु पूजन अप्पि पुप्फन अंजली ॥
तिहिं बेर दिल्लिय साह के फरमान लग्गिय बेगही।
तुम कुम्म आवहु छिप्र ह्यौं लरनो इराननतैं सही ॥२६॥

इधर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बूंदी में दोनों भाईयों के मध्य प्रीति बढ़ाने के लिए प्रतापसिंह और दलेलसिंह हाड़ा को एक ही थाल मँगवा कर साथ-साथ भोजन करने का कहा। इस बात को दलेलसिंह ने उचित नहीं समझा और पेट दर्द का बहाना बना कर भोजन में सम्मिलित

नहीं हुआ। तभी कछवाहा राजा की सेना पुनः युद्ध के लिए सज्जित हुई और कूच का नगारा घनघना उठा। कूच के नगारे को सुन कर कछवाहा राजा की सेना नंदगाँव की ओर रवाना हुई। इधर कछवाहा राजा ने अपने इष्टदेव भगवान विष्णु की पूजा की और भगवान को पुष्पहार चढ़ाया। इसी समय दिल्ली से शाही फरमान आ गया कि हे कछवाहा राजा! तुम शीघ्र ही दिल्ली पहुँचो क्योंकि यहाँ ईरानी सेना से शीघ्र मुकाबला करना है।

इक साह अहमद है पठान जु साहनादर मारिकैं।
ईरानपति बनि लंघि अटक रु आत इत धक धारिकैं॥
तसमात आवहु आतही रनथंभ दुग्गहि पाय हों।
अरु जित्ति अहमदसाह कों दिल्लीस तोर बढाय हों॥ २७॥
तजि नंदगामहिं बंचि जो द्रुत कुम्म दिल्लिय त्यों चढ्यो।
परताप ओर दलेल सोदर दोहु संगहि लै बढ्यो॥
मथुरा गये तब रोग को मिस कैं दलेल तहाँ रह्यो।
पहिलैंहि अन्न तज्यो हुतो अब प्रान छोरन ही चह्यो॥ २८॥

हे राजा ईश्वरीसिंह! वहाँ ईरान के देश में एक पठान शाह अहमद (अहमदशाह) नामक था उसने नादिरशाह को मार डाला और स्वयं ईरान का बादशाह बन बैठा। वह अब अटक (सिंधु) नदी को पार कर इधर बढ़ा चला रहा है अर्थात् दिल्ली पर चढ़ाई करने आ रहा है इसलिए तुम तुरन्त सहायता करने चले आओ! तुम्हें आने पर मैं रणथंभोर का दुर्ग जागीर में दूँगा। यहाँ आकर तुमने यदि अहमदशाह को जीत लिया तो इससे दिल्ली का रुतबा बढ़ेगा। नंदगाँव में शाही फरमान को पढ़ते ही कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह दिल्ली की ओर रवाना हुआ। इस समय उसने अपने साथ दोनों हाड़ा भाइयों प्रतापसिंह और दलेलसिंह को लिया। जब कछवाहा राजा का दल दिल्ली के रास्ते में मथुरा पहुँचा तो दलेलसिंह रोग का बहाना बना कर यहीं ठहर गया। पूर्व में उसने पेट दर्द के बहाने भोजन छोड़ा था अब यह नया बहाना बना कर उसने प्राण छोड़ने की तैयारी की।

गंगोद मिट्टिय पान कैं रु बिभूति बिप्रन दै दई।
भल रीति देह दलेल नैं तजि तत्थही गति सो लई॥

परताप अग्रज तास जुत कछवाह दिल्लिय पुग्गयो।
अरजी निवेदि रु तत्थ हठ रनथंभ आवन को लयो॥ २९॥

तब साह दैंहिँ नदैंहिँ यों कछुहू न कुम्महिँ उच्चरयो।
तैंहँ कुम्म अक्खि वजीरसौं हठ सोहि पावन को धरयो।

सुनि कुम्महिंतु वजीर अक्खिय नाँहिँ अप्प भरोस हैं।
चलिहो न जो तुम तो कहा यह साह के सिर दोस हैं॥३०॥

यहाँ ब्राह्मणों ने उसे गंगाजल विभूति (भभूत) और मिट्टी पीने को दी उसे लेकर उसने बदले में ब्राह्मणों को ऐश्वर्य दिया। इसके बाद शुद्ध मन से दलेलसिंह ने अपनी देह त्याग दी और इस पवित्र स्थान पर देह त्याग कर गति पाई। वहीं उसका बड़ा भाई प्रतापसिंह हाड़ा कछवाहा राजा के दल के साथ दिल्ली पहुँचा। कछवाहा राजा ने बादशाह के दरबार में जा कर अर्जी लगाई और रणथंभोर का दुर्ग माँगा पर बादशाह ने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी कछवाहा राजा से नहीं कहा। तब राजा ईश्वरीसिंह ने शाही वजीर को कहा कि मुझे कहा गया है इसलिए लेकर रहूँगा। यह सुन कर वजीर ने कछवाहा राजा से कहा कि युद्ध केवल आपके भरोसे पर ही नहीं टिका है! फिर भी यदि तुम रणभूमि में नहीं चले तो समझना यह एक शाही कसूर होगा।

यह अक्खि अहमदसाह साहतनूज संग वजीर व्है।
किय कुच्च कुम्महि छोरि जोरि अनीज जुज्झन बीर व्है॥

तब कुम्म स्वीय अमात्य सौं कथ गेह चालन की कही।
सुनि मंत्रि अक्खिय संग चल्लहु गेह की न अबै रही॥ ३१॥

तब कुम्म संगहि कुच्च कैं दल पिट्ठि जावन अद्दरयो।
दरकुंच हंकि मुकाम यों सतलंज के तट पैं परयो॥

तैंहँ कुम्म हिंतु वजीर चिंतिय आदि तैं मम बैर है।
गहि याहि दंडहिँ बेगही अब नाँहिँ यैंहँ जयनैर है॥ ३२॥

इतना कह कर वजीर तो बादशाह के पुत्र अहमदशाह के साथ रवाना हुआ। उसने अपने दल को सज्जित किया और कछवाहा राजा को वहीं छोड़ कर बहादुरी के साथ शत्रु से लोहा लेने चल दिया। तब राजा

ईश्वरीसिंह ने अपने सचिव से कहा कि चलो हम अपने घर चलते हैं। यह सुन कर सचिव ने निवेदन किया कि ऐसी परिस्थिति में शाही सेना के संग चलना ही उचित है वापस जयपुर जाने की बात अब नहीं रह गई। सचिव से यह सुन कर डरते हुए राजा ईश्वरीसिंह ने भी तब शाही सेना के पीछे जाने का मानस बनाया। दर कूच दर मंजिल कछवाहा राजा की सेना ने प्रयाण कर शतलज नदी के तट पर जा मुकाम किया। यहाँ पहुँचने पर राजा ईश्वरीसिंह ने सोचा की वजीर मुझ पर शुरू से ही खफा है कहीं उसने मुझे यहीं पर बंदी बना कर दंडित कर दिया तो क्या करेंगें? यहाँ अपना जयपुर तो है नहीं। हम अभी परदेश में हैं। दूसरे अर्थ में वजीर ने विचार किया कि यह राजा आरंभ से ही मुझसे विरोध में है अतः इसको यहीं पकड़ कर दंडित करूँगा। इसका यहाँ क्या वश चलेगा? यहाँ उसका जयपुर तो है नहीं।

सुहि कुम्भ भीरु निसीथमैं सुनि छोरि डेरन कौं भज्यो।
दरकुंच रत्ति रु दीह कैं जयनैर लै रु दुरयो लज्यो॥
परताप सालमनंद संगहि आय जैपुर मैं मरयो।
अरु जो नरायनदास खत्रिय लै हलाहल सो मरयो॥ ३३॥
यह बीर खत्रिय अग्गही दुवबीस संगर जित्तुयो।
संथा न भाजन की हुती पर स्वामि संग भज्यो गयो॥
तस लाज लै बिख आतही तिहिँ बीर बिग्रह छोरयो।
सुनि कुम्भ सोच घनौं लयो पर काकतैं बल नाँ ठयो॥३४॥

वजीर की मंशा की भनक पाते ही कछवाहा राजा रात के समय अपने शिविर छोड़ कर भागा। उसने वहाँ से रात और दिन दर कूच दर मंजिल कर किसी तरह जयपुर समीप लिया और वह लज्जित सा अपने घर में आ दुबका। सालमसिंह हाड़ा का ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह भी राजा के साथ जयपुर में आकर मरा और जो सेनापति नारायणदास खत्री था उसने जयपुर आकर जहर खा लिया। उस खत्री वीर ने इससे पूर्व बा स युद्धों में विजय पाई थी। इस वीर योद्धा के रणभूमि से नहीं भागने की प्रतिज्ञा थी पर जब स्वामी भागा तो उसे भी भागना पड़ा। रणभूमि से भाग आने की लज्जा के कारण वीर नारायणदास को आत्मग्लानी हुई और उसने विष का

सेवन कर शरीर त्याग दिया। अपने सेनापति के मरने की चिंता तो कछवाहा राजा ने बहुत की पर समय पर इस कायर से बल प्रदर्शन न हो सका।

सुतसाह अहमदसाह साह इरान तैं इत संजुर्‌यो।
यह जानि दिल्लिय ईसनैं निज हत्थ कग्गर अंकुर्‌यो॥
सुनि पत्र दक्खिन देस मैं श्रियमंत अंतिक मुक्कल्यो।
तुम भीर आवहु ह्याँ इरानिन देस दिल्लिय को दल्यो॥ ३५॥
श्रियमंत नन्ह जु बंचिकैं इक लक्ख बाहिनि लै चढ्यो।
बजि बंब आनक त्यौं अचानक घोस कोसन लौं बढ्यो॥
हय के चलाचल लै तरारन व्योम धारन कौं धरैं।
घुमड़ी घटा अनुकार बारन गज्ज डारन बित्थरैं॥ ३६॥

शाहजादा अहमदशाह वहाँ सम्मुख जाकर ईरान के बादशाह से जा भिड़ा। कछवाहा राजा के भाग जाने की खबर पाकर दिल्ली से बादशाह ने अपन हाथों पत्र लिखा और श्रीमंत पेशवा जो अभी दक्षिण में था के पास भिजवाया। बादशाह ने लिखा कि यहाँ ईरान का बादशाह दिल्ली का दलन करने को तत्पर है इसलिए हमारी सहायता करने, तुरन्त दिल्ली आओ। श्रीमंतनन्ह को जब पत्र मिला तो वह तुरन्त अपनी एक लाख की संख्या वाली जंगी फौज को सज्जित कर रवाना हुआ। इस विशाल सेना की कूच के नगारे बजे जिसकी आवाज कोसों तक फैल गई। घोड़ों के विचरण से जमीन में दरारें आई। यहाँ आकाश के सदृश पृथ्वी पर उछलते-कूदते घोड़ों की घटा उमड़ी। हाथी भी गजब ढाने को गर्जना करते बढ़े।

उडि धूलि धोरनि अक्क धूंधरि चक्कचक्किय बिच्छुरे।
लगि अद्रि घुम्मन घुम्मिके गज जानि मैगल अंकुरे॥
चढि संग गायकवाल ओ परमार सज्जित संधिया।
हठदार हुलकर घुंसल्या मतिवार कन्नल की क्रिया॥ ३७॥
तजि नैर पुण्णिम सज्जि यों श्रियमंत उत्तर हंकयो।
भुव भीर पक्खर छाय सेलन ओघ अंबर ढंकयो॥
दरकुंच उत्तरि नर्म्मदा तिमही अबंतिय लंघये।
अरु हे जु रामपुराहि माधव बुल्लि संगहि ते लये॥ ३८॥

सेना के पथ संचलन से उड़ी धूल ने आकाश को आच्छादित कर दिया। सूर्य ढंक कर अंधेरा हो गया परिणाम स्वरूप चक्रवाक पक्षी के जोड़े बिछड़ने लगे। दिशाओं के हाथी (दिग्गज) जैसे हाथी इस तरह बढे मानो पर्वत स्वयं चलने लगे हों। श्रीमंत की सेना के साथ राजा गायकवाड़ भी दल सहित चढ़ा, वहीं परमार राजा और सिंधिया भी सज्जित हो साथ हुए। हठीले होल्कर और घोंसले जैसे युद्ध की प्रक्रिया में चतुर योद्धा भी चले। अपने नगर पुणे (पुण्णिम) से सज्जित हो श्रीमंत उत्तर दिशा की ओर बढ़ा उसकी सेना के घोड़ों के पाखरों की छाया से पृथ्वी ढंक गई और भालों के समूह से आकाश ढंक गया। दर कूच दर मंजिल बढ़ती हुए इस सेना ने नर्बदा नदी को पार किया और उज्जैन से आगे बढ़ी। यहाँ से आगे बढ़ते हुए श्रीमंत ने रामपुरा में माधवसिंह कछवाहा था उसे भी बुला कर अपने साथ ले लिया।

असवार पंच हजार सों तब कुम्म सम्मलि यों भयो।
तंहं कुम्म डेरन पै मलार प्रधान नन्हहिं लै गयो॥
जयसिंह मंडित पत्र की समुझाय बत्त निवेदई।
पुनि नैर बुंदिय लैन की तिहिं बुद्धि दुद्धर के दई॥३९॥
गज बाजि माधवं भेट किन्न सु लै रु संगर पैं छल्यो।
इन कुम्म केसवदास खत्रिय नन्ह सम्मुह मुक्कल्यो॥
तिहिं साम ईश्वरिसिंहसों श्रियमंत स्वीकृत कारयो।
दरकुंच कै पुनि लंघि चम्मलि सेन अग्ग प्रचारयो॥४०॥

कछवाहा माधवसिंह भी अपनी पाँच हजार की संख्या वाली सेना ले कर इस दक्षिणी सेना से आ मिला। यहाँ कछवाहा माधवसिंह के शिविर पर मल्हारराव होल्कर मराठा प्रधान श्रीमंत नन्ह को ले कर गया। वहाँ श्रीमंत को होल्कर ने पूर्व कछवाहा राजा जयसिंह के हाथ के लिखे इकरार की पूरी बात समझाई कि कैसे उसने लिखित में माधवसिंह को परगने दिये थे जो अब तक उसे नहीं मिले। साथ ही होल्कर ने बूंदी को कछवाहा राजा द्वारा अपने अधिकार में कर लेने का वृत्तान्त भी सुनाया। इस अवसर पर कछवाहा माधवसिंह ने श्रीमंत को जो हाथी और घोड़ा भेंट किया उन्हें स्वीकार कर वह आगे युद्ध के लिए बढ़ा। दक्षिणी सेना के आगे बढ़ने पर

जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह ने अपने सचिव केशवदास खत्री को श्रीमंत की आगवानी करने भेजा। उसने जा कर श्रीमंत से जयपुर की संधि को अंजाम दिया। यहाँ से फिर आगे दर कूच दर मंजिल मराठा सेना चम्बल नदी को पार कर आगे बढ़ी।

इम जाय जैपुर सीम मैं नगरी निवाइय उत्तरे।
रु वकील बुंदिय भूप के ढिग हे तिन्हैं चलते करे॥
लिखि पत्र संग दये रु भूपहिं बेग आनहु यों कह्यो।
तब छिप्र चारन दान आय प्रयान भूपति को चह्यो॥४१॥
दल नन्ह के रु मलार के सब पुब्ब प्रीति निवेदये।
तब चाहि भूप सिराहि चारन कों रु चालन कों भये॥
सक पंच अंबर अट्ठ इक्क रु चैत उज्जल द्वादसी।
रविबार नाड़िय पिंगला जलतत्व पैं जब उल्लसी॥४२॥

इस दक्षिणी सेना ने आगे जा कर जयपुर राज की सीमा में निवाई नामक नगर में पड़ाव डाला। यहाँ तक बूंदी के राजा के वकील साथ थे उन्हें रुखसत किया। उनके साथ श्रीमंत ने एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि हे बूंदी के राजा उम्मेदसिंह! तुम शीघ्र ही चल कर यहाँ पहुँचो। इस पत्र की भनक लगते ही दाना मेहडू नामक चारण ने राजा उम्मेदसिंह के पास आ कर प्रयाण हेतु राजा का मानस बनाया। दाना मेहडू ने श्रीमंत और होल्कर के प्रीतिपूर्वक भेजे गए पत्र पढ़कर सुनाये तब राजा उम्मेदसिंह ने इस चारण की सराहना की और स्वयं जाने को तैयार हुआ। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पाँच के चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की द्वादसी तिथि को रविवार के दिन राजा की पिंगला नाड़ी जलतत्व में जागृत हुई अर्थात् राजा मराठा सेना के बुलावे पर जाने को वीरतापूर्वक उल्लसित हुआ तब उसकी आँख फड़की।

क्रम पंच दक्खिन अंघ्रिके तब दै रु भूपति है चढ्यो।
तजि नैर मधुकरदुग्ग कों धक धारि बुंदिय पैं बढ्यो॥
तहं पोदकी तजि बाम दक्खिन ओर सुद्धहि उत्तरी।
करि उद्ध सुंडि रु कन्न पैं धरि गज्जि सम्मुह भो करी॥४३॥

दिस सांत बुल्लिय फिक्करी अनुकूल पिंगलिका भई।
इम सोंन बुंदिय लैनके बनि प्रीति भूपति कों दई॥
तब लंघि चम्मलि संभरी दरकुंच उत्तर हंकये।
सुनि आत तात मलार खंडुव पुत सम्मुह द्वै गये॥४४॥

पर इस शकुन को दुरुस्त करने के लिए राजा ने अपना दाहिना चरण आगे धरते हुए जमीन पर पाँच कदम बढ़ाए और उसके बाद घोड़े पर सवार हुआ। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह तब मधुकरगढ़ से कुपित हो बूंदी की ओर बढ़ा। इस समय एक शकुन चिड़ी राजा की बाईं ओर से उड़कर दांईं ओर को गई और राजा को अच्छा शकुन दे गई। इसी समय अपनी सूंड को उठा कर हाथी ने अपने कान पर रखा और गर्जना करता हुआ राजा को सामने मिला यह भी शुभ शकुन था। इसी समय शांत दिशा में सियार (लोमड़ी) ने राग अलापा और कोचर पक्षी ने भी अनुकूल शकुन दिये। इस तरह बूंदी की ओर बढ़ते हुए राजा उम्मेदसिंह को एक से बढ़ कर एक उम्दा शकुन हुए। इससे राजा के मन में बूंदी प्राप्त होने की आशा बढ़ी। राजा ने पूरे उत्साह से तब चम्बल नदी को पार कर आगे उत्तर दिशा की ओर प्रयाण किया। राजा उम्मेदसिंह के आगमन के समाचार पाकर दोनों पिता-पुत्र अर्थात् मल्हारराव होल्कर और खांडेराव होल्कर आगवानी करने गए।

त्रय कोस पैं मिलि जाय प्रीति बढ़ाय सम्मलि लै मुरे।
श्रियमंतहू मिलिकैं प्रबोधिय बंब जित्तन के घुर॥
सुत साह अहमदसाहनैं इत जंग सत्रुन तैं रच्यो।
हरिमंथ भ्राष्ट्रक राव त्यों तरकाव तोपन को मच्यो॥४५॥
अतलादि भू पुट धुज्जिकैं फनमाल पन्नग चंपयो।
अति चंड गोलन तापतैं ब्रह्मंड झोलन कंपयो॥
रु बजीर संगर होत मांहिं निमाज कारन उत्तरयो।
मनसूर तोप्पन स्वामि नैं इंहं स्वामिद्रोह रजू करयो॥४६॥

दोनों होल्कर पिता-पुत्र तीन कोस की दूरी तक सामने जा कर प्रीतिपूर्वक राजा उम्मेदसिंह को अपने साथ लिवा लाए। तीनों ने शिविर में

आकर श्रीमंत से मुलाकात की और विजय के बाजे बजवाए। उधर शाहजादे अहमदशाह ने आक्रांता ईरान के बादशाह के विरुद्ध युद्ध छेड़ा और चने भूनने की भाड़ की तरह तोपें 'तड़ातड़' की ध्वनि के साथ गरज उठीं। इससे पृथ्वी की पाताल तक की पर्तें काँप उठी और शेषनाग के फणों पर भार पड़ा और वे दब गए। प्रचंड तोपों के धमाकों से ब्रह्माण्ड हिल उठा। इसी समय शाहजादे का वजीर, नमाज का समय होने के सबब नमाज पढ़ने को हाथी से उतरा। अवसर का फायदा उठाते हुए तोपों के महकमें के दारोगा मन्सूर अली ने स्वामिद्रोह करना अंगिकार किया।

बल तोप स्वीय बजीर कों हनि अप्प तत्थ बजीर भो।
सुतसाह अहमदसाह यह लखि काल चिंत रु धीरभो॥
कहि माफ आगस है परंतु अबैं इरानिन कों हनों।
सुनि यों सहादत पुत्तहू मनसूर जंग रच्यो घनों॥४७॥
बहु बार तोपन मार दै रु इरान को दल जित्तयो।
द्रुतही महानद लंघि अहमदसाह भीरु भज्यो गयो॥
सुतसाह अहमदसाह तब जयपाय दिल्लिय संचर्यो।
मनसूरकोंहिं बजीर दिल्लिय ईसहु तबही कर्यो॥४८॥

तोपखाने के दारोगा मंसूरअली ने तोप के गोले से अपने ही वजीर को मार गिराया और स्वयं उसकी जगह पर वजीर सा बन गया। शाहजादा अहमदशाह ने जब यह सब देखा तो वह कठिन समय की परिस्थितियां देखकर, धैर्यवान बन चुप रहा। उसने कहा मैं तुम्हारा अपराध माफ करता हूँ पर पहले इन ईरानियों का मुकाबला तो कर, उन्हें मार। यह सुनते ही सहादतअली के पुत्र मन्सूरअली ने रणभूमि में घमासान रच डाला। उसने अपनी तोपों के प्रहार पर प्रहार कर ईरानी दल को जीत लिया। नतीजन तुरन्त ही ईरान का कायर बादशाह अहमदशाह महानदी सिंधु (अटक) को वापस पार कर अपने देश की ओर भागा। तब शाहजादा अहमदशाह फतह पाकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। दिल्ली पहुँचने पर युद्ध की कामयाबी को देखते हुए बादशाह ने भी मन्सूरअली को अपना नया वजीर स्वीकार कर लिया।

पुनि साह चिंतिय जै भयो मरहट्ठ क्यों अब बुल्लनैं।
पठबाय कग्गर मंडि अक्खिय नां ब आवहु ह्यां घनैं॥
मिलनोंहि होय हजूर तो दल तुच्छ लै यंहं आवनों।
नहितो लगे तुमरे ति दम्मलि लै रु दक्खिन जावनों ॥४९ ॥
श्रियमंत कग्गर बंचि जो दल तुच्छकी नहिं स्वीकरी।
व्यय सेन दम्म लगे ति लै करि देस जावन अद्दरी॥
तब साह नैं दुवबीस लक्ख लगे ति रुप्पय मुक्कले।
दल मांहिं नन्हे निदेसहू तब देस चालन के चले ॥५० ॥

इसके बाद बादशाह ने सोचा कि जब फतह पा ही ली (काम हो गया) तब उस मराठा सेना को यहाँ बुलाने की क्या आवश्यकता है? बादशाह ने तुरन्त पत्र भेज कर मराठा सेना को कहलाया कि नहीं, अब दिल्ली आने की जरूरत नहीं । इस पर भी यदि तुम बादशाह से मिलने आना चाहते हो तो अपने छोटे से दल के साथ यहाँ आ सकते हो। यदि नहीं, तो जो तुम्हारा फौजकसी का खर्च लगा हो उसे प्राप्त कर वापस दक्षिण में लौट जाओ। श्रीमंत बादशाह का पत्र पाकर इस बात को नहीं पचा पाया कि छोटे दल के साथ मिलने आ सकते हो उसने तो सेना खर्च लेकर वापस अपने देश लौट जाने की बादशाह की शर्त को स्वीकार किया। तब बादशाह ने फौजकसी के बाईस लाख रूपये भेजे। इन्हें प्राप्त कर श्रीमंत ने अपनी सेना को वापस देश लौट जाने का आदेश दिया।

तंहं नन्ह हिंतु मलार अक्खिय बत्त बुंदिय भुल्लई।
अरु भुल्लि माधव कों कहा तुम सोंक जैपुर तैं लई॥
सुनतैंहि ईस्वरिसिंह पै तब नन्ह कग्गर मुक्कल्यो।
तुमनैं कहा सिसु जानि पुब्ब कुंमार खंड्डुव कों छल्यो ॥५१ ॥
सुनि पत्त ईश्वरिसिंह धुज्जि रु पुब्ब बत्त सु स्वीकरी।
रु लिखी भई पहिलै सुही तबतैंहिं है मम अद्दरी॥
जु उमेद माधव सों कही सुमही भलैं तुम लीजिये।
हरि सोंह है मुहि अप्प मन्नि रु कुंच दक्खिन कीजिये ॥५२ ॥

मराठा सेना के वापस लौटते समय मल्हारराव होल्कर ने श्रीमंत से कहा कि क्या आप बूंदी वापस लेने की बात भूल गए? आपने माधवसिंह कछवाहा की जरूरतों को भी भुला दिया क्या? इस निमित्त आपने जयपुर के राजा से कोई रिश्वत ली है? ऐसी बात सुनते ही श्रीमंत ने राजा ईश्वरीसिंह के नाम एक पत्र लिख भेजा जिसमें लिखा कि पूर्व में तुमने खांडेराव होल्कर को मात्र बालक समझ कर ठग लिया। यह पत्र मिलते ही राजा ईश्वरीसिंह भय से सिहर उठा और उसने पूर्व राजा जयसिंह के लिखे करार को मानना स्वीकार कर लिया और प्रत्युत्तर में लिखा कि पूर्व राजा का लिखा मुझे मंजूर है। जो जागीर माधवसिंह कछवाहा और उम्मेदसिंह को देना मैंने स्वीकार किया है उसे आप लेने को स्वतंत्र हैं। मुझे अपने इष्टदेव विष्णु की सौगंध लगे, मैं यह सहर्ष दूँगा पर आप दक्षिण की ओर कूच कीजिये।

सुनतैंहि यह तब नन्ह आयस कुंच दुंदुभि को दयो।
रु कही नरेसहिं हंकि मंडहु आन देस मिल्यो गयो॥
सु कही मलारहु भूप संभर भुम्मि चालत ही लहो।
यह व्है न तो हम संग है जयनैर जित्तन उम्महो॥५३॥

सुही मन्त्रि मंत्र उमैद माधव नन्ह सम्मलि ही चढे।
दर भार झोकन ओक ओकन लोक सोकनमैं बढे॥
कुसलेस नाम झलाय के पति खास है पठयो तबै
पति जानि माधव कों रु अक्खिय अप्पकै बसहैं सबै॥५४॥

कछवाहा राजा से ऐसा सुन कर श्रीमंत ने आज्ञा दी कि सेना वापस कूच करे। कूच का नगारा बज उठा। उसने राजा उम्मेदसिंह से भी कहा कि आप भी चलें क्योंकि अब आपको अपना (चाहा) देश मिल जाएगा। तभी राजा से मल्हारराव होल्कर ने कहा कि अब जाते ही अपनी भूमि पर कब्जा करो यदि कोई बाधा आए तो हम साथ हैं तुम्हारे। जयपुर को जीतकर ही दम लेंगे। दोनों की मंत्रणा को राजा उम्मेदसिंह ने मान लिया और राजा उम्मेदसिंह भी माधवसिंह और श्रीमंत के साथ ही रवाना हुआ। इसी समय झलाय नगर के जागीरदार ने अपना एक खास घोड़ा माधवसिंह को अपना स्वामी मान कर भेंट में भेजा और कहलाया कि यहाँ सभी आपकी प्रजा है। हम सभी आपकी आज्ञा के वश में हैं।

सु लयो रु सत्थहि सर्ब हंकिय लंघि जैपुर गाम के।
लखि लक्ख दक्खिन सेन कों अरि ओदके छिक धाम के॥
दलके प्रयान अमान हत्थिन दान पद्धति सिंचई।
बढि फैन गैलन भीति सैलन रीति कंदुक की लई॥५५॥
दल भेट मारुत फेटलै प्रतिमग्ग हारुत भग्गयो।
बन जंतु घोरन ओर ओरन प्रान छोरन लग्गयो॥
करि यों प्रयान मिलान आनि बनास के तट पैं कर्‌यो।
तह भूप डेरन आय हुलकर नेह नूतन बिस्तर्‌यो॥५६॥

माधवसिंह कछवाहा ने वह घोड़ा ले लिया और सेना का काफिला जयपुर के गाँवों को लांघ कर आगे बढ़ा। एक लाख की संख्या वाली यह दक्षिणी सेना जिस गाँव के पास से गुजरती उसे देख कर वहाँ के शत्रु भयग्रस्त हो जाते। दल के प्रयाण में इतने अधिक हाथी थे कि उनके झरते मद से सारे मार्ग गीले हो गए। हाथियों के फैले हुए विस्तार को देख कर भय से पर्वत गैंद की तरह हो गए। इस सेना की फेट से बहता पवन हाहाकार करता भागा अर्थात् पवन भी उसे पार न कर सका। वन के जीव-जंतु, घोड़ों के प्रयाण से डर कर जीव बचाने को वन छोड़ कर भाग खड़े हुए। ऐसा प्रयाण रचती जंगी फौज ने बनास के तट पर पहुँच कर पड़ाव डाला। यहाँ पर होल्कर नवीन स्नेह का प्रदर्शन करता हुआ राजा उम्मेदसिंह के शिविर में आया।

सिरूपाव दोय महर्घ ओ हय खास दोय निवेदये।
पुनि भूप परिकर सर्ब कों सिरूपाव उच्च दये नये॥
रु कही चलो हम सत्य संध स्वदेस आनि बिथारि हैं।
न बनैं जु तोहु समर्थ हैं ततकाल जैपुर मारि हैं॥५७॥
पुनि कुंच कैं कढि नैर बाबिय सीम बुंदिय संचरे।
मरहट्ठ लुट्टन इंद्रगढ लखि श्रील पूरब त्यों टरे॥
दरसाल दम्म हजार सोलह बज्रधरगढ पै करे।
ति चढे हि हायन पंच तैं नहिं देव दक्खिनके भरे॥५८॥

होल्कर ने दो बहुमूल्य सिरोपाव और एक खास (अच्छी नस्ल का) घोड़ा इस अवसर पर राजा को भेंट किया। यही नहीं होल्कर ने राजा के परिकरों में सभी को सिरोपाव दे कर नवाजा और कहा कि हम सत्य प्रतिज्ञा वाले हैं। इसलिए चिंता न कर आप अपना देश वापस लेने को प्रयत्नरत रहिये। यदि किन्हीं कारणों से आप से ऐसा संभव न हो तो हमें बतायें। हम समर्थ हैं तत्काल चल कर जयपुर को फतह करेंगे। इसके बाद सेना यहाँ से कूच कर जब बूंदी की सीमा में बाबी नामक पुर के पास पहुँची। यहाँ पहुँचते ही मराठा सेना ने इन्द्रगढ़ को सबक सिखाने की सोची। इस दक्षिणी सेना को अपने नगर की ओर आते देख धनाढ्य लोग, (सेठ-साहुकार) नगर छोड़ कर पूर्व दिशा में भाग गए। मराठों ने सोलह हजार रूपये प्रतिवर्ष इन्द्रगढ़ से दण्ड के लेने तय किये थे पर पिछले पाँच वर्षों से देवसिंह ने यह रकम चुकाई नहीं थी।

तसमात बासवदुग्ग कों मरहट्ठ लुट्टन उम्महे।
सु उमेद माधव जानि द्वै तिन्ह अड्ड आनि खरे रहे॥
श्रियमंत आन दई रु अक्खिय कोल दम्म दिवायहैं।
अरु नांहिं स्वीकृत एह तो हनिकैं हमैं दल जायहैं॥५९॥
इम रोकि सर्बन दोहु सत्थहि आनि डेरन पुग्गये।
तंहं दम्म बासवदुग्ग के दस ही हजार चढे दये॥
रु कराय माफ हजार सत्तरि भूप ताहि बचाय कैं।
लक्कैरिका पुर सीम किन्न मुकाम सर्बन आय कैं॥६०॥

यही कारण रहा कि मराठे इन्द्रगढ़ को लूटने पर उतारू हुए यह जान कर राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह हाड़ा दोनों उन्हें रोकने हेतु अवरोधक बन कर बीच में आ खड़े हुए। उन्होंने श्रीमंत की कसम दिला कर कहा कि आप लोग आगे मत बढ़ो। हम प्रयत्न करके आपकी राशि अब समय पर दिलवा देंगें। यदि हमारा यह आश्वासन आपको स्वीकार न हो, तो ठीक है फिर आपकी सेना हमें मारती हुई आगे बढ़े। इस तरह मराठी सेना को इन्द्रगढ़ लूटने से रोक कर दोनों राजा सेना के साथ उनके शिविर पर आए। यहाँ आ कर उन्होंने समझौता कराते हुए चढ़ी हुई रकम

में से दस हजार तुरन्त दिलवाए और शेष सात हजार की राशि छुड़वा दी। इन्द्रगढ़ का मामला शान्त हो जाने पर यह सेना आगे बढ़ी और सभी ने लाखेरी पुर के पास आ अगला पड़ाव किया।

तबही तहां सन बाघ संतुव स्वीय बीर मलारनैं।
पठयो वहै पुर लैन भूपति आन फेरन कारनैं॥
तंहं कुम्म हाकिम हे तिन्हैं जुरि जंग संतुव तैं कर्‌यो।
मुरि बाघ संतुव जो उदंत मलार तैं सब उच्चर्‌यो॥६१॥

सुनतैं हि हुलकर खिज्जि बुंदिय भूप तैं कहि मुक्कली।
नहिं सिक्ख सुभटन देहु तुम हम सैन जैपुर पैं हली॥
यह अक्खिकैं श्रियमंत सों द्रुत सिक्ख संगर कों लई।
सुनि निंदि कुम्महिं नन्हहू खिजि सिक्ख जैपुर पैं दई॥६२॥

यहां पहुँच कर मल्हारराव होल्कर ने संतुव बाघ को बूंदी नगर पर अधिकार करने और वहां हाड़ा राजा की दुहाई फिराने भेजा। जब वह संतुव नगर पर अधिकार करने गया तो वहाँ कछवाहा राजा के हाकिमों ने विरोध करते हुए उससे युद्ध किया। बूंदी से लौट कर जब संतुव ने वहाँ का पूरा वृत्तान्त मल्हारराव को सुनाया। यह सुनते ही कुपित होकर होल्कर ने बूंदी के राजा से कहलवाया कि तुम अपने सामन्त योद्धाओं को अपने-अपने घर जाने की रजा मत देना, हमें सेना लेकर जयपुर पर चढ़ाई करने जाना है। बूंदी के राजा को यह कहलवा कर वह स्वयं श्रीमंत के शिविर में आया और चढ़ाई करने हेतु श्रीमंत से विदाज्ञा मांगी। यह सुनकर श्रीमंत नन्ह ने भी कछवाहा राजा की निंदा करते हुए जयपुर पर चढ़ाई की आज्ञा दी।

अरु दैन सत्य विसास नन्ह उमेद डेरन पैं गयो।
बिसवास भूपहि प्रीति पूरब बैन मंजुल बुल्लयो॥
बल बीर बीस हजार तैं तुम संग एह मलार है।
सुहि लै रु अप्पहिं भुम्मि अप्पहिं कुम्म कट्ठ कुठार है॥६३॥

यह अक्खि दै गज बाजि भूपहिं नन्ह हंकन कों भयो।
रु मलारहू तिय गोतमा जुत पुत्र दक्खिन भेजयो॥
यह गोतमा मरहट्ठ पुंगव भोजराज सुता हुती।
जामात कों सुत हीन जिहिं सब द्रव्य दै रु रची नुती॥६४॥

इसके बाद विश्वास दिलाने को श्रीमंत चला कर राजा उम्मेदसिंह हाड़ा के शिविर में गया और वहाँ जा कर मीठे बोल बोल कर उसने ढाढस बंधाया। उसने कहा कि तुम चिंता मत करो बीस हजार की संख्या वाली हमारी सेना के साथ मल्हारराव स्वयं होंगे। वह मल्हारराव कछवाहा रूपी काठ का कुठार है इसलिए तुम्हें तुम्हारी भूमि मिल जाएगी। ऐसा विश्वास दिला कर नन्ह ने राजा को हाथी-घोड़े दे कर रवाना किया। इसी समय श्रीमंत ने मल्हारराव की पत्नी गोतमा को उसके पुत्र सहित दक्षिण में भेजा। यह गोतमा उत्तम वंशीय मराठा भोजराज की पुत्री थी। उसके पुत्र नहीं था इसलिए पुत्रहीन भोज ने सारा द्रव्य अपने जामाता होल्कर को विनम्रता सहित अर्पित कर दिया था।

तब गोतमा सु मलार व्याहिय जो पतिब्रत मैं रही।
तिहिं तास चूरिय चूनरी बल तैं इती प्रभुता लही॥
सु पतिब्रता अरु पुत्र खंडुव नन्ह संगहि मुक्कले।
पुनि लै हजार असी चमू चढि नन्ह दक्खिन कों चले॥६५॥
तब तीन हड्डु मलार माधव नन्ह के पहुंचान कों।
हुव संग पट्टनि चम्मली तट दिन्न आनि मिलान कों॥
तंहं नन्ह केसवदास खत्रिय बुल्लि कुम्म अमात्य कों।
तस हत्थ हुलकर हत्थ दै कहि याहि ठिल्लि न ब्रात्य कों॥६६॥

इस तरह द्रव्य पाने वाले मल्हारराव होल्कर से गोतमा का विवाह हुआ जो पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली थी। इसी के चूड़े-चूनड़ी का बल था कि मल्हारराव को इतनी प्रभुता प्राप्त हुई। यहाँ से वह पतिव्रता गोतमा और पुत्र खाण्डेराव, श्रीमंत नन्ह के साथ रवाना हुए। इस समय नन्ह अपनी अस्सी हजार की संख्या वाली सेना के साथ दक्षिण की ओर गया। मल्हारराव, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह तीनों श्रीमंत को पहुँचाने के लिए साथ गए। पूरे दल-बल ने चम्बल नदी के तट पर पाटण नामक पुर के पास अपना अगला पड़ाव किया। यहाँ पर नन्ह ने कछवाहा राजा के प्रधान सचिव खत्री केशवदास को बुलवाया और होल्कर के हाथ में उसका हाथ देकर कहा कि इस संस्कारहीन ब्रात्य को अपने से दूर मत ठेलना अर्थात् इसे दूर मत करना।

यह सूद्र पै इहिं बुद्धि बिप्रन बुद्धि दैन समत्थ है।
अरु तूहु पज्ज ततोपि यासन प्रीतिलायक अत्थ है॥
सुनि यों मलारहु अक्खई हम स्वामि उक्त सचेत हैं।
इहिं भूप पैं तिहिं कुम्म दैन कही सु मूढ न देत हैं॥६७॥
तसमात तास अमात्य जो यह कुम्म सम्मति भिन्न है।
अबही ततो पतिके कहैं हम लाय छत्ति लिन्न है॥
पर पत्र यासन लेखि देहु समस्त बुंदिय छोरिबे।
सुनि एह केसवदास लिखि दिय नेह नूतन जोरिबे॥६८॥

यह ओछी जाति का अवश्य है पर यह अपनी बुद्धि ब्राह्मणों को प्रदान करे जैसा है अर्थात् अत्यंत बुद्धिमान है। रही बात तुम्हारी तो तुम भी छोटी जाति के पज्ज हो इसलिए तुम दोनों में प्रीतिपूर्ण संबंध रह सकेंगे। यह सुन कर मल्हारराव होल्कर ने कहा कि हम तो सदा अपने स्वामी के कहे की पालना करते हैं पर इसके राजा ईश्वरीसिंह कछवाहा ने भूमि देने का कहा था पर अब वह मूढ़ दे नहीं रहा है। कछवाहा राजा का यह आमात्य अपने स्वामी की सम्मति से अलग मति रखता है जब ऐसा मेरे स्वामी श्रीमंत ने कहा तो मैंने तुरन्त इस खत्री को अपनी छाती से लगा लिया। परन्तु अब आप इस केशवदास से बूंदी का क्षेत्र छोड़ देने के आशय का एक पत्र तो लिखवा लीजिये। ऐसा सुन कर होल्कर के साथ स्नेह बढ़ाने के सबब केशवदास ने लिख कर दे दिया।

सु मलार भूपहिं दिन्न ओ सब नन्ह कों पहुंचाय कैं।
लक्खैरि पत्तनही बहोरि मुकाम मंडिय आय कैं।
लिखि दल उदैपुर जोधपुर कोटा हु हुलकर प्रेषये।
सब सेन भेजहु अत्थ छिन्नहिं श्रील जैपुर देसये॥६९॥
लक्खैरिका बिच रक्खि निज भट आन भूपति मंडई।
करि यों चढे सब कुंच कै खुरघात छोनिय खंडई।
मग मांहिं बुंदिय ग्राम आयउ तेहु भूपति के करे।
दरकुंच सज्जित सेन कैं जयनैर सम्मुह उप्परे॥७०॥

वांछित पत्र लिख कर केशवदास ने मल्हाराव और राजा के हाथ में दिया। यहाँ से श्रीमंत नन्ह को आगे जाने के लिए विदा कर होल्कर सहित सभी ने लौटते हुए लाखेरी के निकट आ पड़ाव डाला। यहाँ से उदयपुर, जोधपुर और कोटा के राजाओं को होल्कर मल्हारराव ने पत्र लिख भेजे। उसने सभी राजाओं से अपनी-अपनी सेना सज्जित करने का लिखा ताकि हम सभी जाकर कछवाहा राजा से समृद्ध जयपुर को छीन सकें। यहाँ लाखेरी में अपने योद्धा तैनात कर मल्हारराव ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के नाम की दुहाई फिरवाई। यहाँ से शेष सेना सहित होल्कर अपने घोड़ों के खुरों के आघात से भूमि रोंधता हुआ चला। रास्ते में जो भी बूंदी राज की सीमा में पड़ने वाला नगर गाँव आदि आया उस पर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह का अधिकार करवाता हुआ वह होल्कर पूरे दल-बल सहित दर-कूच दर मंजिल बढ़ता जयपुर की ओर चला।

कइलास लों यह बत्त व्है सिवहू जरद्गव आरुहे।
डमरूक डाकिनि लै भजी सुनि प्रेत हंकिय सामुहे॥
कलिकार मोदित व्है हसे किलकारि जुग्गिनि उच्छली।
गहकाय गिद्धनि गोद कों चहकाय चिल्हनि हू चली॥७१॥
डगमग्गि सैलन सानु तैं बनजंतु गैलन बिक्खरैं।
फनमाल पन्नग पट्टरी सन नच्चि भू नट उच्छरैं॥
लहरैं हिंडोरन झोक निंदत नीर सिंधुन सेतु भै।
बिथुरैं मवासन आसपासन बास नासन हेतु भै॥७२॥

मल्हारराव होल्कर की सेना चली जब यह बात उड़ती-उड़ती कैलाश पर्वत तक गई तो इसे सुन कर महादेव तुरन्त अपने बैल पर आरूढ़ हुए। डाकिनियाँ अपने वाद्य यंत्र ले कर भागीं और प्रेत समूह बना कर चले। यह सुन कर कलह करवाने के लिए प्रसिद्ध नारद मुनि मुदित हुए और योगिनियाँ किलकारी मारती उछलने लगीं। प्रसन्नता की बोली में गिद्धनियां मज्जा मिलने के उत्साह में गहकीं तो चील्हें भी चहक उठीं। डगमगाते पर्वत शिखरों पर रहने वाले वनचर इधर-उधर जहाँ मार्ग मिला उस पर भागे। शेषनाग के फणों रूपी पट्टड़ी पर पृथ्वी नटों की तरह

उछलने लगी। हिंडोरों के झोकों की निंदा करती हुई समुद्र की लहरें तटों पर टकरा कर भय उत्पन्न करने लगीं। आस-पास बसने वाले मेवासों (चोर-लुटेरों के घरों) में बसने से चोर-डाकू कतराने लगे।

रु कबंध रक्खस नारि सन्निभ नारि कच्छप की धसी।
कलिका अगत्थिय की फटैं तिम दंतुली किरि की नसी॥

भय बग्ग कंपित छाग ज्यों दिगनाग त्यों मद मोचये।
भटभर्ग भासत आत्मभू झट सर्ग नासत सोचये॥७३॥

खुर धूलि धुंधरि नांहिं प्राचिय त्यों अवाचिय सुज्झई।
तिमही प्रतीचिय ओ उदीचिय भान बीचिय उज्झई॥

पवमान थक्किय अक्क ढक्किय चक्क चक्किय बिच्छुरे।
पहुमी मुरक्किय सत्त खंड फिराव चक्किय त्यों फुरे॥७४॥

जिस तरह रामचन्द्र के युद्ध में कबंध नामक राक्षस की गर्दन शरीर (धड़) में घुस गई थी यही हालत कच्छप की हुई अर्थात् होल्कर की सेना की हलचल से कच्छपावतार की गर्दन उसके खोल में दुबक गई। अगस्त्य पुष्प की कली जिस तरह फटती है उस तरह वाराह की दंतुलि फट (दरक) गई। जिस तरह बाघ के सम्मुख आ जाने पर भय से बकरा कांपता है उसी तरह दसों दिशाओं के दिग्गज कांपते हुए मद झारने लगे। वहीं रणभूमि की ओर बढ़ते वीर योद्धाओं का तेज देखकर ब्रह्मा इस चिंता में निमग्न हो गए कि इस सृष्टि का नाश होने वाला है और मुझे नये सिरे से फिर से परिश्रम करना पड़ेगा। घोड़ों और पैदल सेना के प्रयाण से उड़ी धूल ने आकाश को धुंधला बना दिया कि पूर्व, और दक्षिण दिशा नहीं दिखी। उत्तर और पश्चिम दिशाएं भी नजर नहीं आने लगीं क्योंकि सूर्य ने अपनी किरणें छोड़ दीं अर्थात् सूर्य के नजर नहीं आने पर सारी दिशाओं की पहचान भी धुंधली हो गई। पवन थक गया और सूर्य छिप गया, यह देख कर चक्रवाक पक्षियों के जोड़े बिछड़ने लगे। पृथ्वी के सातों खंड मुड़ कर चाकी की तरह फिरने लगे।

सुरलोक कुक्किय रास रुक्किय तान चुक्किय अच्छरी।
जिय भीरु मुक्किय क्यों बचैं सब नीर सुक्किय मच्छरी॥

इम सेन हंकत सत्रु संकत केस कंकत के भये।
प्रतिभा झमंकत बाजि डंकत भुम्मि ढंकत हल्लये ॥७५ ॥
भट कुंकुमी करि चैल कें प्रभु गैल जित्तन उम्महैं।
कति बाजिराजन झारि ताजन भाजि आजिन कों चहैं।
कति उच्चरैं सिर कुम्म कों धनु खेत्र लोष्ट बिधाय हैं।
कति यों कहे रन भोंरमैं जयनैर नाव भ्रमाय हैं ॥७६ ॥

स्वर्गलोक में भी हाहाकार मच गया। इन्द्र सभा में अप्सराओं का नृत्य थम गया और अप्सराएँ गाना भूल गईं। जिस तरह सरोवर का सारा पानी सूख जाने की दशा में मछली नहीं बच सकती उसी प्रकार कायरों ने भी जीव (प्राण) छोड़े। सेना के प्रयाण का सुनकर भय से शत्रु कंघे में केश की तरह हो गए। होल्कर की सेना के योद्धा अपनी प्रतिभा प्रकाशित करने को अपने घोड़े बढ़ा कर धरती को आच्छादित करते बढ़े। सेना के वीर अपने वस्त्रों को केसिरया रंगा कर अर्थात् केसरिया बाने में अपने स्वामी के साथ विजय पाने के उत्साह में चले। इस सेना के कई वीर अपने घोड़े को चाबुक मार कर उन्हें दौड़ाने लगे जिससे शीघ्र ही रणभूमि में पहुँच कर युद्ध किया जा सके। कई वीर आपस में बातें करने लगे कि हम युद्ध में कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह के मस्तक को अपने धनुष-बाणों के सहारे मिट्टी का ढेला सा बना देंगे। कई कहने लगे कि हम युद्ध के भँवर में जयपुर की नाव को घन चक्करी की तरह घुमा कर डूबो देंगे।

कहुं उच्चरैं मम बैल ईश्वरिसिंह पिठ्ठि अरोहि हैं।
कहुं सिंह को न कहंत ओगुन चित्रकारन को हि हैं ॥
कहुं सिंहनी जयसिंहकीहु भज्यो तरच्छुहि यों बदैं।
कहुं यो पलायन मांसदै बल जंत्र रुक्कहिं दुर्मदैं ॥७७ ॥
इम बीर बुल्लत बीर खुल्लत सेन पिल्लत संचरे।
उनियार नागरचार मैं गलवै नदीतट उत्तरे ॥
दखिनीन तंहं सन जे नरूकन गाम ते सब लुट्टये।
तिन मांहिं फूलहता बच्यों नृप के प्रताप न व्हां गये ॥७८ ॥

कई घोषणा करने लगे कि मैं ईश्वरीसिंह को बैल की पीठ पर सवार

कराऊँगा। वहीं कुछ का कहना था कि चित्र में बना हुआ सिंह कोई पराक्रम नहीं दिखा सकता इसमें दोष सिंह का नहीं उस चितेरे का होता है अर्थात् ईश्वरीसिंह केवल चित्र मंडित सिंह है वह क्या करेगा? कोई कहता था कि कछवाहा राजा जयसिंह की सिंहनी ने सिंह का नहीं बघेरे का सेवन किया लगता है। कुछ का कहना था कि वे मांसभक्षी प्राणियों को रणभूमि में कई शत्रुओं का मांस उपलब्ध करवा कर सेना रूपी यंत्र से उस दुर्मद (ईश्वरीसिंह) को आगे बढ़ने से रोक देंगे। इस तरह बोलते हुए वीर अपनी वीरता को उजागर करते हुए चले। नागरचाल क्षेत्र में पहुँच कर उणियारा के पास नदी तट पर पड़ाव डाला। यहाँ से दक्षिणियों (मराठों) ने आसपास के नरूकाओं के गाँवों में लूटपाट मचाई। एक मात्र फूलहता गाँव लूट के प्रभाव से अछूता रहा क्योंकि राजा के लिहाज के कारण मराठे उस गाँव में लूटमाट करने नहीं गए।

परिन्यों नरेस अमात्य हरजन हड्डु पुत्त दलेल व्हां।
तसमात फूलहता बच्यो नृप कानि रक्खिय मेल व्हां॥
बनहटा जाय मुकाम किय पुनि कुंच करि उनियार तैं।
राजाउतन के ग्राम लुट्टत बीर हंकि बिथारि तैं॥७९॥
कति दंडि छंडत मान खंडत आन मंडत अप्पनी।
टोडा रु मालपुरा रु टोंक छुराय माधव क्यो धनी॥
यह जानि ईश्वरिसिंह अक्खिय जे दये ति दये सबैं।
सुनि यों मलार कहाय पच्छिय नां बिसास रह्यो अबैं॥८०॥

लिहाज का कारण यह रहा कि इस गाँव फूलहता में हाड़ा राजा के अमात्य हरजन के पुत्र दलेलसिंह ने शादी कर रखी थी। इसलिए उम्मेदसिंह के अदब से मराठों ने वहाँ लूट नहीं मचाई। उणियारा से सेना ने आगे कूच कर बनहटा गाँव में पहुँच कर अपना पड़ाव डाला। इस सेना के वीर बीच राह में पड़े राजावतों के गाँव लूटते हुए आगे बढ़ते रहे। किसी गाँव से दण्ड वसूल कर वीर अपनी आन-दुहाई फिरवाते हुए उसका दर्प खंडित करते। सेना के वीरों ने इस तरह टोडा, मालपुरा और टोंक के परगनों को कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह के अधिकार से छीन कर माधवसिंह कछवाहा को वहाँ का स्वामी बना दिया। इस बात के समाचार जब राजा ईश्वरीसिंह

को मिले तो उसने कहलाया कि ये सारे विजित परगने हमने माधवसिंह को दिये। यह सुन कर मल्हारराव होल्कर ने वापस कहलवाया कि नहीं कछवाहा राजा, अब हमें तुम्हारी कही बात पर विश्वास नहीं होता।

तब कुम्म कग्गर मुक्कले चहुवान भूपहिं फोरिबे।
ति उमेद बंचि रु नां मुर्‌यो पटु जंग दुद्धर जोरिबे॥
पुनि कुंच मंडि रु पिप्पलूपुर जाय बाहिनि उत्तरी।
उमराव तीनन आयकैं तंहं भीर माधव की करी॥८१॥

जगतेस लंबपुरेस ज्ञान तथा सिवापुर को धनी।
पुनि त्योंहि जालम डोडरीपति उल्लस्यो बढती अनी॥
खंगार बंसिय कुम्म के उमराव बंधव तीन ये।
असवार प्रंद्रहसै लियैं मिलि तत्थ माधव के भये॥८२॥

यह सुनकर कछवाहा राजा ने पत्र लिख कर हाड़ा राजा के पास भिजवाया कि आप लोग अब वहीं से वापस लौट जायें पर उम्मेदसिंह पत्र पढ़ कर भी मुड़ने को तैयार नहीं हुआ। वह रणचतुर तो युद्ध करने के उत्साह में आगे बढ़ा। बनहटा गाँव के पड़ाव से आगे बढ़ते हुए इस सेना ने पीपलीपुर गाँव के निकट अगला पड़ाव किया। यहाँ पर जयपुर के तीन सामन्त आकर माधवसिंह के पक्ष में हो गए। इनमें लांबा नामक पुर का स्वामी जगतसिंह, शिवापुर का जगीरदार ज्ञानसिंह और डोडरी का स्वामी जालिमसिंह थे जो अपने दलों के साथ उत्साह से भरे आ मिले। खंगारोत वंशीय ये तीनों बांधव कछवाहा राजा के सामन्त थे जो अपने साथ कुल डेढ़ हजार की संख्या वाली सेना लेकर आए और माधवसिंह की सेना के साथ हो गए।

पुन पिप्पलू सन कुच्चकैं बढी सैन जैपुर त्यों सरी।
तंहं बोधिपादप के तरैं इक घात संभर तें टरी।
तस छिन्न कल्प हुती जु साख सु तुट्टि भूपति पैं चली।
लखि ताहि हड्डुन को सिरोमनि बाजि फैंकि कढ्यौ बली॥८३॥

द्विज दान भोजन ता निमित्त अनेक आदरतैं करे।
सब सेन सम्मलि हंकिकैं पुनि जाय फागिय उत्तरे।

चढिकैं तहां सन दूसरे दिन दब्बि जैपुर की मही।
पुर नाम लावनदान जाय मुकाम मंडिय बेगही॥८४॥

यहाँ से सम्मिलित सेना ने कूच किया और आगे जयपुर की ओर बढ़ी। पीपलीपुर से कूच करते समय पीपल के वृक्ष तले हाड़ा राजा की एक घात टली। इस बूढे पीपल की एक बड़ी शाख टूट कर नीचे गिरी पर इसे हाड़ा राजा ने गिरते हुए देख लिया और तत्काल वह अपने घोड़े को ऐड़ लगा कर पेड़ की जद से बाहर हो गया। इस घात से बच जाने के उपलक्ष्य में राजा ने पूरे आदर के साथ ब्राह्मणों को भोजन करवाया। पूरी फौज तब आगे बढ़ती हुई फागी जा कर ठहरी। यहाँ रात्रि विश्राम कर दूसरे दिन सज्जित होकर जयपुर की भूमि दबाने को चढ़ी और आगे लाबनदा नामक गाँव के पास पहुँच कर अगला मुकाम किया।

रहतें घनैं दिन बित्तये तंहं मंत्र जित्तन को भयो।
दल भीर च्यारि हजार तत्थहि रान को द्रुत पुग्गयो॥
तिहिं मांहि सालम रानबंसिय संभु भारत भ्रात हो।
रु भवानिदास प्रधान पुत्र गुलाब कायथ जात हो॥८५॥
पुनि मेघ बेघम नाह भूप उमेद साहिपुरा पती।
जसवंत देवगढेस त्यों बिथुरात आहव उन्नती॥
इम आदि लै दल रान के भट भीर हुलकर की भये।
पुनि द्वैहजार कबंध के भट आनि तत्थहि पुग्गये॥८६॥

यहाँ सेना को रहते हुए कुछ दिन हो गए तब सभी ने मंत्रणा की कि अब फतह करने को बढ़ना चाहिए। तभी उदयपुर के महाराणा द्वारा सहायता हेतु भेजा हुआ दल आ पहुँचा। चार हजार की संख्या वाली सेना में सिसोदिया सालमसिंह का वंशज शंभुसिंह था जो भारतसिंह का भाई था। उसके अलावा कायस्थ जाति के प्रधान भवानीदास का पुत्र गुलाबदास था। इनके अतिरिक्त बेगूं का स्वामी मेघसिह और शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह थे। इसी तरह देवगढ़ का जागीरदार जसवंतसिंह जो युद्ध में कीर्ति प्रसारने वाला वीर था वह भी आया। ये सभी महाराणा उदयपुर के सामन्त योद्धा मल्हारराव होल्कर की सहायता करने को यहाँ आ उपस्थित हुए। इसी

समय जोधपुर के राठौड़ राजा द्वारा भेजी गई दो हजार की संख्या वाली राठौड़ी फौज भी सहायता को आ पहुँची।

तिन मांहिं मालिक दूदहर भर सेर मेरतिया जथा।
मनरूप सचिव रु ऊदहर कल्ल्यान सेर उभै तथा॥
तंहं अप्प अप्प बिथारि आयस ढारि डेरन उत्तरे।
इम पिक्खि सूरन आनि हूरन पुब्बही मन तैं बरे॥८७॥

राठौड़ राजा द्वारा भेजी गई सेना में दूदा राठौड़ का वंशज वीर शेरसिंह मेड़तिया जैसा वीर था, वहीं राजा का प्रधान मनरूप और उदावत राठौड़ द्वय कल्याणसिंह और शेरसिंह जैसे योद्धा थे। इन सेनानायकों ने अपने-अपने योद्धाओं को आज्ञा देकर यहाँ पड़ाव डालने के आदेश दिये। मल्हारराव और उम्मेदसिंह की इस सम्मिलित सेना के वीरों को देख कर चुनने के लिए अप्सराएँ आईं और उन्होंने मन ही मन अपना साथी तय किया अर्थात् युद्ध में किसका वरण करना है इसकी योजना बनाई।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ राणाबुन्दी-सत्कारदेश्यकोटासत्कारोररीकरणपुनःश्रीद्वारमहारावसहितमिलनाऽनन्तर-जगत्सिंह दुर्जनशल्य ढिक्कोलानिवसथशिविरन्यसनखण्डू पेत भूपद्वय रावराट्शिविराऽऽगमन तदनु खण्डू माधव मैत्रीविधानाऽखिलसैन्य-निर्याणखारीनदीतटप्रपतनतद भिमुखकूर्म्मराजागमनश्रुतसामखण्डू-कोपकांक्षणतत्सम्मतिसर्वसन्नद्धीभवनकूर्म्मराजाऽऽगामिकार्तिकसानुज-विभाग बुन्दीत्यजन लिखितहुलकरकरदापननिन्दितमहारावशीर्षोद्द-सेनाऽन्तरातृणशकट लुण्टनराणाचुण्डाउत्तमेघसिंह बणिक्टेकचन्द्र बुन्दी टोडा प्रेषणरुष्टखण्डू माथवसिंह रामपुरप्रतिगमनज्येष्ठजायसिंहिं जयपुरप्रविशनतन्महारावबुन्दीमार्ग्गणराणाभूपत्रय धुंधरीग्रामाऽऽगमन-हड्डेन्द्रपुरोधीदयारामाऽऽनयनग्रामसगतपुर सम्भरेशसचिवहरजनोपयोगिनी-शिविकासमर्प्पणतत्स्वामिदेशरणकरणरावराड्द्वितीय राज्याऽऽत्मजोद्ग-मनसुभटीकृतसालमिप्रतापसिंहकूर्म्मराजबुन्द्यागमनकोटा रामपुर जय-बिचारणप्रताप दलेल सौहार्द्दकरणतदनुजान्नत्यजनप्राप्तयवनेन्द्रपत्रे-श्वरीसिंह दिल्लीगमन दलेलसिंहमथुरादेहत्यजनकूर्म्मेशरणस्तंभदुर्ग-प्रार्थनतदनङ्गीभवनेरानोपमानप्रत्यन्तेन्द्राऽहमदशाहयुयुत्सुसपरिकरदिल्ली-

शकुमाराऽहमदशाहकरतोयाऽभिमुखनिर्याणसरिच्छतद्रुशिविरसंस्था-पनयवनसचिवकूर्मसबन्धनविचारणतद्भयत्यक्तवाहिनीवैभवसहड्डुप्रताप खत्रिनारायणदास प्रद्रुतैश्वरीसिंहस्वपुरसमाविशनप्राप्त दिल्लीशदोर्पत्रसितारेश्वरसचिवराजनन्होत्तरदिगाऽऽगमनमाधवसिंहतत्सङ्गसाधनजयपुरजनपदनिवाईनगरदक्षिणपृतनाप्रपतननन्ह मल्लार वर्णदूत हूतबुंदीन्द्रा-ऽऽगमनयवनद्वय शतद्रुयुद्धभवननालीयंत्राक्षमनसूर स्वसचिवमारणपर-सैन्यपलायनयवनेशमहाराष्ट्रागमवारणव्ययद्रव्यद्रम्मद्वाविंशति लक्षप्रेषण-तिरस्कृतकूर्म्मराजनन्हप्रस्थानतत्परिकरेन्द्रगढलुण्टनविचरणकुपितोम्मेदसिंह माधव दाक्षिणात्यवारणनृपदेशाध्यक्षशत्रुरणकरणतन्ननन्हबुन्दीन्द्रशिविरा-ऽऽगमनतत्सहायमल्लारप्रतिप्रेषणस्वयंदक्षिणगमनोम्मेदसिंह माधवसिंह सहायीभतहुलकरोदयपुर योधपुर कोटा सैन्यसमाऽऽह्वयन कूर्मजपनद-लुण्टनटोडा मालपुर टोङ्क नयनसमाहूतसैन्यत्रय संमिलनं त्रयोविंशो मयूखः॥ आदितः ॥३०४॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में राणा का बूंदी के सत्कार के बराबर कोटा का सत्कार स्वीकार करना, इसके बाद नाथद्वारा में महाराव से मिलने के अनंतर महाराणा जगतसिंह और महाराव दुर्जनशाल का ढींकोला नामक ग्राम में डेरा करना, खंडू सहित दोनों राजाओं का रावराजा के डेरे पर आना और खंडू और माधवसिंह का मित्र होना, सब सेना का वहाँ से निकलकर खारी नदी के किनारे मुकाम करना और उसके सम्मुख कछवाहों के राजा का आना पर मिलाप होना सुनकर कोप की इच्छावाले खंडू की सलाह से सब का सज्जित होना, राजा ईश्वरीसिंह का आगे आनेवाले कार्तिक मास में अपने छोटे भाई का हिस्सा और बूंदी छोड़ने की लिखित तहरीर हुलकर के हाथ में देना, निन्दा युक्त महाराव का उदयपुर की सेना के भीतर घास के गाड़े लूटना, राणा का चूंडावत मेघसिंह और वैश्य टेकचंद को बूंदी और टोडे भेजना, क्रोधित खंडू और माधवसिंह का वापस रामपुरा जाना और जयसिंह के बड़े पुत्र ईश्वरीसिंह का जयपुर में प्रवेश करना, उससे महाराव का बूंदी मांगना और राणा सहित तीनों राजाओं का धुंधरी नामक ग्राम में हाड़ा उम्मेदसिंह के पुरोहित दयाराम को लाना और सगतपुर नामक ग्राम में उम्मेदसिंह का सचिव हरजन का उपयोगी पालकी देना और उसका स्वामी के देश में युद्ध करना, रावराजा की दूसरी राणी के

पुत्र होना, मालमसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को उमराव बनाकर राजा ईश्वरीसिंह का बूंदी आना और कोटा व रामपुरा को जीतने का विचार करना, प्रतापसिंह और दलेलसिंह दोनों भाइयों में मित्रता करना और दलेलसिंह का अन्न छोड़ना इसके बाद दिल्ली के बादशाह का पत्र आने से ईश्वरीसिंह का दिल्ली जाना, दलेलसिंह का मथुरा में शरीर छोड़ना और ईश्वरीसिंह का रणथंभ नामक गढ़ मांगना और उसका अस्वीकार होना, ईरान म्लेच्छ देश के पति अहमदशाह से युद्ध करने की इच्छा वाले उसके उपमान परगह सहित दिल्ली के पति के पुत्र अहमदशाह का निकलकर शतद्रू नदी के पास डेरे करना और दिल्ली के वजीर का कछवाहा ईश्वरीसिंह को कैद करने का विचार करना, उसके भय से सेना को और वैभव को छोड़कर हाड़ा प्रतापसिंह और खत्री नारायणदास सहित भागे हुए ईश्वरीसिंह का जयपुर में घुसना, दिल्ली के बादशाह के हाथ का लिखा हुआ पत्र पाकर सितारा के पति के सचिव नन्ह का उत्तर दिशा में आना उसके साथ माधवसिंह का आना और जयपुर के देश निवाई नाम नगर में दक्षिण की सेना का मुकाम करना और नन्ह और मल्लार के पत्र से बुलाये हुए बूंदी के पति का आना, दोनों यवनों का शतद्रू नदी पर युद्ध होना और तोपों के अफसर मनसूर अली का अपने वजीर को मारना और शत्रु सेना का भागना बादशाह का मराठों की सेना का आना रोककर लगे हुए फौजखर्च के बाईस लाख रूपये भेजना ईश्वरीसिंह का तिरस्कार करके नन्ह का गमन करना और उसके परगने का इन्द्रगढ को लूटने को जाना और क्रोध युक्त उम्मेदसिंह और माधवसिंह का दक्षिणियों को रोकना उम्मेदसिंह के देश के अधिकारियों से शत्रु के युद्ध करने के कारण नन्ह का बून्दी के पति के डेरे पर आना और उसकी सहाय पर हुलकर का उदयपुर, जोधपुर, कोटा की सेना को बुलाना, कछवाहा के देश को लूटना और टोडा, मालपुरा और टोंक को प्राप्त करके बुलाई हुई तीनों सेनाओं के शामिल होने का तेईसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चार मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

नगर लदानां ही सुन्यों, साह मुहुम्मद नास।
सक सर नभ बसु ससि समा, मेचक सावन मास ॥१ ॥

ताको सुत बैठो तखत, अहमदसाह अनूप।
वह मनसूरअली सचिव, रक्ख्यो पुनि अघरूप॥२॥

हे राजा रामसिंह! इस सम्मिलित सेना का पड़ाव जब लदाना नामक पुर में था कि दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मारे जाने की खबर आई। यह बात विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पाँच के श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि के दिन की है जिस दिन बादशाह का अनुपम पुत्र अहमदशाह दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ। इस बादशाह ने भी उसी पापी मन्सूरअली को अपना वजीर रखा।

षट्पात्

तिनहिं मुकामन तैं मलार निज भट गंगाधर,
सहंस अठ्ठ दल संग दै रु पठयो जैपुर पर।
तिहिं जाय रु जयनैर द्वार अररन तोमर हनि,
बुलवाये प्रतिबीर भीरु अब समुख होहु भनि।
कोटके निकट मालिन कुटिय बाटिन सहित प्रजारि दिय।
कूरमहु तुंग प्रासाद चढि यह चरित्र आतुर लखिय॥३॥

इसी पड़ाव से तब मल्हारराव होल्कर ने अपने योद्धा गंगाधर को आठ हजार सैनिक साथ दे कर जयपुर पर चढ़ाई करने भेजा। इस गंगाधर ने जा कर तब जयपुर के प्रवेशद्वार पर भालों की चोट कर अपने प्रति योद्धाओं को ललकारते हुए कहा कि ओ कायरो आओ! आ कर मुकाबला करो! यही नहीं उसने शहरपनाह के पास बने मालियों के झोपड़ों में आग लगवा दी और उनके साथ बगीचियों को भी जला दिया। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने तब ये नजारा अपने ऊँचे महल की छत पर चढ़ कर अपनी नजरों से देखा और मन ही मन पीड़ा से भर उठा।

तब नृप ईश्वरिसिंह कटक पिल्ल्यो तिन उप्पर,
सेखाउत सिवसिंह बिदित निकस्यो बीरनबर।
यह कूरम निज असन बेर दुंदुभि बजवावैं,
लक्खन रंक जिमाय प्रीत ओदन तब पावैं।

तिहिं खुल्लि अरर जयनैर के सजव बाजि सम्मुह कियउ।
मरहट्ठ भटन जयकार मिलि दुसह मार खग्गन दियउ॥४॥

तब नीचे आकर कछवाहा राजा ने मुकाबले हेतु अपनी सेना भेजी। इस फौज का नेतृत्व राजा ने वीरता के लिए प्रसिद्ध अपने सामन्त शेखावत शिवसिंह को सौंपा। इस शेखावत के नियम था कि जब भी वह भोजन करता तब नगारा बजवाता था और इस नगारे की आवाज सुन कर आए लाखों गरीबों को प्रेम से भोजन करवाता फिर स्वयं भोजन करता था। ऐसे वीर और वदान्य शेखावत शिवसिंह ने तुरन्त शहरद्वार को खुलवा कर अपने दल सहित घोड़े बढाये। उसने जाते ही जय-जयकार की गूंज के साथ मराठा दल पर अपनी तलवारों की दुस्सह मार पटकी।

सीकरपति को लोह कटक दक्खिन सिर बज्ज्यो,
घरिय दोय घमसान भुकति गंगाधर भज्ज्यो।
पंच कोस पहुंचाय मुर्‌यो प्रतिमग सेखाउत,
जाय निवेदिय बिजय नृपहिं बंदीन बिरुद नुत।
अरु कहिय जो न आपुन चढहु तो सत्रुन सन हारिहैं।
नृप कहिय जट्ट अप्पन मिल रु संगर बहुरि सुधारिहैं॥५॥

सीकर के स्वामी शिवसिंह की तलवार दक्षिण की सेना के सिर पर चली। दो घड़ी तक घमासान लड़ाई हुई। शेखावत वीर के आक्रमण को झेलता गंगाधर दो घड़ी बाद रणभूमि से भाग खड़ा हुआ। जयपुर के इस दल ने भागती होल्कर की सेना का पाँच कोस तक पीछा किया और शत्रु को भगा कर वापस मुड़ा। यहाँ से आ कर शिव सिंह ने विजित योद्धा की तरह बंदीजनों से अपनी स्तुति सुनते हुए राजमहल में प्रवेश लिया और कछवाहा राजा से जा कर फतह होने का निवेदन किया साथ ही कहा कि अब यदि हमने मिल कर चढ़ाई नहीं की तो शत्रु से हार जाएंगे। यह सुन कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने कहा कि हम भविष्य में भरतपुर के जाटों की सहायता से मिल कर लड़ेंगे और युद्ध में सफलता प्राप्त करेंगे।

दोहा

पठये यह कहि भरतपुर, कग्गर जट्ट समीप।
आयहु सूरजमल्ल इत, मंडत जुद्ध महीप॥६॥

गद्दिय ढिग लै बैठिहैं, तुमहिं बीर अति आघ।
हिम दक्खिन सिर होहु अब, दुपहर जेठ निदाघ॥७॥
इम कग्गर द्रुत बंचिकैं, चढिग जट्ट रविमल्ल।
जयपत्तन दरकुंच जव, आयो कटक उझल्ल॥८॥
नगर लदानां तैं कियउ, इत सब दलन प्रयान।
सावन उज्ज्वल भूत सक, मिलि सर नभ धृति मान॥९॥
हठ पूरब हुलकर रचे, बगरू नगर मुकाम।
तंहं सन लियउ मलार तब, दस हजार दम दाम॥१०॥

ऐसा कह कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने भरतपुर के जाट शासक को तुरन्त पत्र लिखवा कर भेजा जिसमें लिखा कि हे राजा सूरजमल! तुम तुरन्त सहायता करने आओ यहाँ युद्ध मचा है। तुम्हारे आने पर मैं तुम्हें पूरे आदर के साथ अपनी राजगद्दी के समीप (साथ) बिठाऊँगा। बस, तुम्हें इस दक्षिणी सेना रूपी बर्फ (हिम) पर ज्येष्ठ माह की दुपहरी वाले सूर्य की तरह चमकना है अर्थात् शत्रु को पिघाल देना है। ऐसा पत्र पाते ही उसे पढ़ कर वह राजा सूरजमल जाट तुरन्त चलने को तैयार हुआ। वह अपनी सेना सज्जित कर शीघ्र ही दर कूच दर मंजिल जयपुर की ओर चला। इधर लदाना से प्रयाण कर होल्कर की सेना भी बढ़ी। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पाँच के श्रावन माह के शुक्ल पक्ष की चौदहवीं तिथि के दिन मल्हारराव होल्कर ने पूरे सैन्य लवाजमें सहित बगरू नगर में अपना पड़ाव किया। यहाँ होल्कर ने स्थानीय लोगों से दस हजार रुपयों की दंड राशि वसूल की।

रान कटक अंतर गयउ, पुनि दक्खिन दलराय।
भिन्न भिन्न सब भट किये, मोदित डेरन जाय॥११॥
साहिपुरेसहिं आदिदै, सबहि रान उमराव।
इक्क इक्क हय नजरि करि, बुल्ले लरन बढाव॥१२॥
तदनंतर मरुधर कटक, पहुंच्यो हुलकर नाथ।
अभयसिंह भट बर अखिल, संबोधे हित साथ॥१३॥

खासा दुव हय दुव हयी, साखति पुरट समान।
चारु करभ सु बिनीत चउ, पीन रु रजत पलान॥१४॥

त्योंहि क्रमेलक दिग्घ तनु, भारबाह पंचास।
मरूपति एते मुक्कले, प्रिय सख हुलकर पास॥१५॥

दक्षिण की सेना का सेनापति मल्हारराव होल्कर यहाँ महाराणा उदयपुर की सेना के शिविर में गया। उसने अलग-अलग सभी योद्धाओं के डेरों पर जा कर सभी को मुदित किया। उसने शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह आदि सभी राणा के सामन्तों को एक-एक घोड़ा नजर किया और उन्हें वीरता पूर्वक लड़ने का कहा। इसके बाद मल्हारराव होल्कर जोधपुर के सैन्य शिविर में गया। उसने वहाँ पहुँच कर राजा अभयसिंह राठौड़ के सभी सामन्तों का हितपूर्वक संबोधन किया। तब राजा द्वारा उपहार स्वरूप भेजी गई सामग्री उन सामन्तों ने होल्कर को भेंट की। इन उपहारों में दो खास घोड़े, दो घोड़ियाँ जो स्वर्णाभूषणों से शृंगारित थीं अर्थात स्वर्ण काठियों सहित थीं के साथ चार अच्छी तरह सिखाये हुए पुष्ट ऊँट जो चाँदी के पलानों (काठी) सहित थे। इन ऊँट-घोड़ों के अलावा पचास लद्दू ऊँट थे जो भार-वाहक के रूप में प्रयोग होते थे। यह सारी उपहार-सामग्री जोधपुर के सामन्तों ने अपने राजा के प्रिय मित्र मल्हारराव होल्कर को भेंट की।

ते सब अत्थ निवेदये, सेरसिंह मनरूप।
इक इक हय पुनि अप्पनें, अप्पे भेट अनूप॥१६॥

तिनहि मुकामन पंचसत, कोटा के असवार।
आये सम्मलि आहुरन, चिंतत बिजय बिचार॥१७॥

अखयराम कायत्थ अरु, नगर नागदह नाथ।
माधानी मोहन कुलज, जोध मुक्ख दल साथ॥१८॥

तिनहू को सनमान किय, हुलकर डेरन जाय।
इक इक घोटक अप्पये, प्रचुर प्रीति उन पाय॥१९॥

मल्हारराव होल्कर की सेवा में ये ऊँट-घोड़े शेरसिंह मेड़तिया और मनरूप ने निवेदित किये। इस पर होल्कर ने एक-एक घोड़ा प्रति उपहार स्वरूप इन दोनों योद्धाओं को प्रदान किये। इसी मुकाम पर कोटा की ओर

से आए हुए पाँच सौ सवारों का शिविर भी लगा था जो विजय हासिल करने की आशा से युद्ध करने आए हुए थे। इस दल के साथ कायस्थ अखयराम (अखैराम) और नागदा नगर का स्वामी आए थे। माधानी हाड़ा मोहनसिंह का वंशज जोधसिंह इस कोटा के दल का सेनापति था। इस सेनापति का भी सम्मान करने को मल्हारराव होल्कर उसके शिविर पर गया। यहाँ पहुँच कर होल्कर ने एक-एक घोड़ा दोनों योद्धाओं को प्रीतिपूर्वक दिया।

रुचिरा

तंहं माधव इक कपट बिथारिय अग्रज परिकर फोरन कों।
कन्ह वकील बहुरि गोगाउत मिलि कूरम मन मोरन कों॥
प्रतिउत्तर समुझै तिम कग्गर जैपुर सचिवन नाम रचे।
दै चर हत्थ कहिय अग्रज चर इनहिं लखैं तब मोद मचे॥२०॥

यह सुनि चर दल लहि जैपुर गत जानि परायन हत्थ पर्‍यो।
ईश्वरिसिंह हु लखि तिन पत्रन व्है अति आकुल सोक कर्‍यो॥
जिन अभिधान लिखे उन पत्रन तिन प्रति अक्खिय तुमहु पढो।
हरगोविंद प्रमुख सुनि बुल्लिय उन छल किय तुम लरन चढो॥२१॥

यहाँ पर कछवाहा माधवसिंह ने छल-कपट से अपने बड़े भाई राजा ईश्वरीसिंह के परिकरों में फूट डालने का षड़यंत्र रचा। उसने अन्य कछवाहों का मन अपने भाई से फिराने के जतन में वकील कान्हा और गोगावत से मिल कर ऐसे कृत्रिम पत्र लिखे जिनसे यह प्रतीत होता हो कि इनके द्वारा लिखे गए पत्र जयपुर के सचिव आदि के प्रत्युत्तर में हैं। ऐसे पत्र लिख कर अपने हलकारों के हाथ जयपुर भेजे और उन्हें यह हिदायत दी कि ये पत्र उन्हें तब देना जब बड़े भाई ईश्वरीसिंह के गुप्तचर देख रहे हों तभी मजा आएगा। हिदायत सुन कर पत्रवाहक जयपुर की ओर बढ़े और उन्होंने निर्देशानुसार जयपुर में पहुँच कर पत्र सौंपे। जब राजा ईश्वरीसिंह ने उन पत्रों को देखा तो वह शोक से व्याकुल हो उठा। जिन सचिव आदि के नाम पर वे पत्र थे राजा ने उन्हें बुलवाया और कहा कि जरा इन पत्रों को पढ़ो। सबसे पहले सचिव हरगोविन्द नाटाणी ने पत्र पढ़े पर पढ़ते ही उसने

कहा कि ये छल किया गया है हमारे साथ हे राजा! आप तो लड़ने के लिए सेना सज्जित करें।

ईश्वरिसिंह सु मुनि गहि मोन रु जट्ट सहित दल लरन सजे।
हेस हयन बारन गन वृंहित बंबक त्रंबक बहुल बजें॥
इत बगरुव बुधसिंह सुवन नृप समुद कबंधन सिविर गयो।
मारव मुदित मिले नति पूरब घोटक इक इक भेट भयो॥२२॥
इत पंडित पहुंच्यो गंगाधर पुनि पुर अररन सेल हनें।
पुरजन पकरि सहर बहिरागत बिदित बिडारिय मुंडि घनें॥
ईश्वरिसिंह सु सुनि सज्जित करि तीस सहंस निज कटक चढ्यो।
संगहि जट्ट अधिप रविमल्लु बाहिनि गाहिनि हंकि बढ्यो॥२३॥
सक सर नभ बसु ससि सम्मित सम भद्द असित गत दोजि दिनां।
किरि रद तुट्टि छुट्टि सत्व रु नृप बसुमति फुट्टिय समय बिनां॥
हाक प्रचुर दिस दिस प्रतिहारन हयन हजारन जूह जुरे।
असह अचानक अनउपमानक घन रव आनक निकरे घुरे॥२४॥

राजा ईश्वरीसिंह ने यह सुन कर उस समय मौन धारण कर लिया और भरतपुर की जाट सेना के साथ अपनी सेना को सज्जित होने का आदेश दिया। तुरन्त ही घोड़ों का हिनहिनाना और हाथियों के समूह की गर्जना वातावरण में फैल गई। नगारे और तासे बज उठे। इधर बगरू के मुकाम पर बूंदी के हाड़ा राजा बुधसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह हर्ष से भरा जोधपुर के राठौड़ राजा के सैन्य शिविर में गया। वहाँ उससे मारवाड़ के सामन्त मोदपूर्वक मिले। नीति अनुसार दोनों ओर से एक-एक घोड़ा उपहार में लिया-दिया गया। तभी होल्कर का भट्ट योद्धा पंडित गंगाधर वापस अपने दल के साथ जयपुर गया और उसने जाते ही नगर के प्रवेशद्वार पर फिर से भालों की चोट की। उसने शहरपनाह से बाहर वाले पुरवासियों को पकड़ लिया और उनके सिर मुंडवा दिये। यह खबर सुन कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह अपनी तीस हजार की संख्या वाली बड़ी फौज को सज्जित कर मुकाबला करने रवाना हुआ। इस समय उसके साथ भरतपुर के राजा सूरजमल की शत्रुओं का मर्दन करने वाली सेना भी थी। विक्रम संवत् के

वर्ष अठ्ारह सौ पाँच के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि के दिन कछवाहा राजा की भूमि असमय ही फट पड़ी। जंगी सेना के संचरण से पृथ्वी डोली और वाराह की दंतुलि में दरार आई। चारों ओर द्वारपालों की आवाजें गूंजने लगीं और हजारों घोड़ों के समूह प्रयाणरत हुए। जिसकी ओपमा न दी जा सके अचानक ऐसी असह्य मेघ गर्जना की तर्ज पर नगारों के समूह बज उठे।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ लदाणापुरसम्विहितशिविरसमस्तसैन्य दिल्लीशशाहमुहुम्मदमरणशमनशूरसचिवतत्कुमाराऽहमदशाहयवनेन्द्रीभवनमल्लाराष्टसहस्र सैन्यसहितसेनापतिगङ्गाधरजयपुरप्रेषणतत्तारेणाऽररतोमरप्रहारणबाह्याऽरामादिप्रज्वालनजायसिंहितत्सहायाऽर्थस्ववंशीयसेखाउतशिवसिंहनिस्सारणतत्तुमुलरणगङ्गाधरपलायनसेखाउत्तप्रतिगमनस्वयंनिष्कसनौचितनिगदनकूर्म्मराजभरतपुरपत्रप्रेषणतदधीशजट्टेन्द्रसूर्यमल्लाऽऽनयनगद्दिकास्पृक्तदुपवेशनस्वीकरणविदितवर्णदूतसूर्यमल्लजयपुरागमनसचमूमल्लार बुन्दीन्द्र माधवोदयपुर योधपुर कोटा सैन्यबगरूपुरप्रपतनतद्दण्डद्रव्योद्धरणहुलकरसर्व्वसार्थसैन्यमुख्यसम्मननमित्रमरुराजप्रेषितहयकरभादिद्रव्यमल्लाराङ्गीकरणभूतसिद्धभविष्यस्वागतोचितकोटाकटकाऽऽगमनमाधवसिंहप्रतिबचनव्यंजककौहक्यपत्रजयपुटभेदनप्रेषणतत्सद्दूतपरप्रत्यक्षीभवज्जायसिंहवञ्चकविवेचनमोहनहरगोविंदादिपारवाञ्छक्यप्रकटीकरण समानकालाऽधिकरणहट्टेन्द्र गङ्गाधरसंगतमरूपैन्यशिबिर जयपुरा ऽग्राऽगमहयोपायनपुरकवाटध्वंसननागरमुण्डनाक्रन्दन ग्रहण श्रवण जट्टसूर्यमल्लाऽनूनेश्वरीसिंहाऽरात्यनीकाऽभिमुखनिस्सरणंचतुर्विंशो मयूखः ॥२४॥ आदितः ॥३०५॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में लदाना नगर में सब सेना का डेरा करके दिल्ली के बादशाह मुहम्मद का मरना सुनना और शूर व सचिवों का उसके शाहजादे अहमदशाह को बादशाह करना, मल्हार का आठ हजार सेना सहित सेनापति गंगाधर को जयपुर भेजना और उसका नगर के द्वार के कपाटों पर भाला मारना बाहर के बाग आदि को जलाना और जयसिंह के पुत्र का उनकी सहाय के अर्थ अपने वंशवाले शेखावत शिवसिंह

को भेजना उसके भयकंर युद्ध से गंगाधार का भागना और शेखावत का वापस आकर ईश्वरीसिंह के बाहर निकलने की उचित वार्ता कहना ईश्वरीसिंह का भरतपुर पत्र भेजना और वहाँ के पति जाटों के राजा सूर्य मल्ल को बुलाना गादी को छूते हुए बैठने के स्वीकार के पत्र को जानकर सूर्यमल्ल का जयपुर आना सेना सहित मल्हार उम्मेदसिंह माधवसिंह और उदयपुर जोधपुर कोटा की सेना का बगरू पुर में मुकाम करना और वहाँ से दंड के रूपये लेना हुल्कर का सब के साथ सेना के मुख्य सरदारों का सन्मान करना, और मल्हार का अपने मित्र मारवाड़ के पति के भेजे हुए घोड़े, ऊंट आदि द्रव्य को स्वीकार करना और आगे आये हुओं का आदर सिद्ध करके आगे के उचित सत्कार के लिए कोटा की सेना में आना माधवसिंह का, प्रति उत्तर जाना जाए ऐसा छल का पत्र जयपुर भेजना और वो उसके दूत से प्रत्यक्ष होकर जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह का उस ठग के विचार से मोहित होना और हरगोविंद आदि का शत्रु का छल प्रकट करना, एक ही समय में हाड़ाओं के राजा उम्मेदसिंह और गंगाधर के साथ मारवाड़ की सेना के डेरों में और जयपुर के आगे आना, हाड़ा के तो घोड़ा नजर होना और गंगाधर का पुर के किंवाड़ों को तोड़ना नगर के लोगों का मुंडन करना, उनका रोना और पकड़ना सुनकर जाट सूर्यमल्ल के साथ ईश्वरीसिंह का शत्रु सेना के सम्मुख निकलने का चौबीसवाँ मयूख हुआ और आदि से तीन सौ पाँच मयूख हुए।

शुद्ध ब्रजदेशीय प्राकृत भाषा

मनोहरम्

बावन बरन तैं सरस्वती को सरबस्व,
बेदिजा को बस्त्र ज्यों दुसासन के कर तैं।
छंद छप्पई तैं ज्यों प्रपंचित प्रसर पुंज,
बीज बसुधा तैं बेर बुंदै बारिधर तैं।
बारिधि तैं बीचि मारतंड तैं मरीचि मित,
तरल तरंगा स्रोत गंगा गिरिविर तैं।
गोतम तैं न्याय राजराज तैं ज्यों राय अैसैं,
कूरम कटक कढ्यो जैपुर नगर तैं॥१॥

हे राजा रामसिंह! जैसे बावन वर्णों वाली वर्णमाला से सरस्वती का पूरा भंडार निकलता है और जैसे दु:शासन के हाथों से द्रौपदी का वस्त्र निकला। जैसे छप्पय नामक छन्द से प्रस्तार का समूह निकलता है और पृथ्वी से जैसे बीज निकलता है। जैसे मेघों से जलकण निकलते हैं और समुद्र से लहरें निकलती हैं। जैसे हिमालय पर्वत से गंगा निकलती है और गौतम मुनि से न्याय (न्यायशास्त्र) निकला। जैसे कुबेर से धन निकले वैसे ही जयपुर नगर से कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की सेना निकली।

आवत ही पंडित प्रधान तंते गंगाधर,
फोरे से चखाय लोह मुरयो तजि खेतु हैं।
लागो पीठि कूरम बिनाश्रम बिजय जानि,
जट्टन समेतु सज्ज संगर सचेतु हैं।
बड़िस बपा के लोभ लीन महामीन जैसै,
डोरि ऐंचिबे तैं नीर तीर आनि लेतु हैं।
जैपुर नरेस आनि डारयो यों मलार पैं ज्यों,
डाकिनि के डेरा डावरे कों डारि देतु हैं ॥२॥

उस (तांतिया) पंडित गंगाधार ने आते ही मुकाबले को आतुर कछवाही सेना को हल्का-फुल्का लोह चखाया (अर्थात् तलवारों के प्रहार दिये) और शीघ्र ही रंणभूमि को त्यागने को तत्पर हो उठा। यह देख कर कछवाहा राजा ने यह जान कर कि यह तो बिना श्रम की विजय होगी उसने अपनी सेना से मराठा सेना का पीछा करने को कहा और स्वयं जाट सेना के साथ सचेत हो कर युद्ध के मोर्चे पर डटा। जिस प्रकार मछली पकड़ने के बड़े काँटे पर लगी चर्बी के लोभ से बडा मच्छ आ फँसता है और फिर डोरी के खींचने पर सहज ही वह पानी के किनारे आ जाता है उसी तरह गंगाधर रूपी काँटे ने जयपुर के राजा रूपी मच्छ को फँसा कर मल्हारराव होल्कर के समक्ष यों ले जा कर डाला जिस प्रकार डाकिनी के डेरे पर लोग बच्चे को ला डालते हैं।

आवत सुनत ढुंढाहर को कटक इत,
अपर अनीक हिय पंकज खिलतु हैं।

बुंदीपति माधव मलार असवार होत,
सिसकतु सेस अंग कच्छप गिलतु हैं।
सिंधू राग लागैं खैंचि खागैं अनुरागैं आनि,
हाडे तानि बागैं बढि आगैं को भिलतु हैं।
नयन गुलाबी आबी छत्रन नै छाबी भूमि,
एडिन की दाबी नां अंगूठन मिलतु हैं ॥३॥

उधर से ज्योंही ढूंढाड़ (जयपुर) की सेना के आने की सूचना मिली कि इधर के योद्धाओं के हृदय कमल खिल उठे। बूंदी का हाड़ा राजा उम्मेदसिंह, माधवसिंह कछवाहा, और मल्हारराव होल्कर सज्जित हो घोड़ों पर सवार हुए। यह देख कर शेषनाग के फण व्याकुल हो उठे और कच्छपराज ने अपने अंग समेटे। सिंधु राग उच्चरित होने लगी और योद्धाओं ने म्यानों से अपनी तलवारें बाहर खींची। युद्ध से प्रीति करने वाले वीरों ने अपने-अपने घोड़े की लगाम उठाई और शत्रु से मिलने आगे बढे। वीरों की आँखें आरक्त गुलाब की शोभा पाने लगीं इस तरह इन राजाओं की सेना ने आगे बढ़ते हुए भूमि को छा दिया। यह वीरों की सेना ऐसी पराक्रम वाली है जो अपनी ऐड़ी की ठौर अपने अंगूठे नहीं धरती अर्थात् आगे बढ़ाया हुआ कदम वापस पीछे नहीं लेती।

बान नभ अट्ट भू समान सक बिक्रमके,
भद्दव चउत्थी स्याम भालन भिलन कों।
नैर बगरु के खेत पंचों सेन सज्ज करि,
मंड्यो मगरूर हंकि सम्मुह मिलन कों।
आसिक अनी के बींद अच्छरि बनी के फन,
फोरत फनी के धार धारन झिलन कों।
हाड़ा छत्रधार और माधव मलार लागे।
राहु व्हैकैं कूरम कलानिधि गिलन कों ॥४॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठ्ठारह सौ पाँच के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि का दिन जैसे भालों की मार का दिन बन के रह गया। बगरू नगर की इस रणभूमि में चारों राजाओं (अर्थात् उदयपुर, बूंदी,

कोटा, जोधपुर) की सेनाएँ और मल्हारराव होल्कर का दल पाँचों सेनाएं सज्जित हुई और ऐसी सज्जित सेना को साथ ले मगरूर होल्कर सामना करने को उद्यत हुआ। यह सम्मिलित दल शत्रु दल से मिलने को सामने बढ़ा। इसके योद्धा जो सेना के आशिक (प्रिय) थे (अर्थात् रण-रसिक थे) वे अप्सराओं के दूल्हे बन कर शेषनाग के फणों को लचकाते हुए धारा तीर्थ में नहाने को बढे। छत्र धारण करने वाला हाड़ा (राजा) उम्मेदसिंह, माधवसिंह कछवाहा और मल्हारराव होल्कर ये तीनों राहु रूप होकर कछवाहा राजा रूपी चन्द्रमा को ग्रसने बढ़े।

चढत चमूकैं चौंकि चंडी चहकाय गन,
गिद्धि गहकाय खरे खेत्रपाल खिल्ली पैं।
तरल तुखार सार पक्खर अपार नाद,
प्रचुर प्रसार जो न झंतकार झिल्ली पैं।
घुमंडि घटा ले हड्डु हुलकरवाले बीर,
झाले भुज भाले चाले दीठि मन मिल्ली पैं।
कूदत कलावा नागपेच लपटावा देत,
कूरंम पै कावा देत दावा देत दिल्ली पैं।।५।।

सेना के प्रयाण करते ही रणचंडी कालिका चहक उठी उसके गण हर्षित हो उठे। गिद्धनियाँ गहक उठीं और भैरव प्रसन्नता से फूल कर कुप्पा हो गए। चपल गति से बढ़ने वाले घोड़ों की गति से पाखरों की और तलवारें के प्रहारों की आवाज इतनी प्रचुर मात्रा में बढी कि यह झनकार असह्य हो उठी (अर्थात् किसी से झेली न गई)। घुमड़ी हुई घटा की तरह इस सेना के हाड़ा वीरों ने होल्कर वाले वीरों सहित अपने-अपने हाथों में भाले यह सोचते हुए उठाये जैसे आज उन्हें मनजाना कर्म करने का अवकाश मिला हो। वे अपने सम्मुख बढ़ते शत्रुओं के नजर आते ही उस ओर बढ़े। सेना के हाथियों के गले में बंधे कलावे जो नाग के लिपटने जेसे दिखते हैं उनके प्रयाण से गले पर कूदने लगे अर्थात् हिलने उछलने लगे। ये कछवाहा राजा की सेना के गोलाकर घेरा इस तरह देने लगे मानों दिल्ली पर धावा कर रहे हों।

प्रथम मिलाप रचि तोपन को ताप,
कपिलेस कैसो साप बाप काल को बिथार्‌यो त्यों।
करकि कराल सोरझाल बिकराल फैलि।
फालन बिसाल ज्वालमाल जग जार्‌यो त्यों।
गोलन के गोन पीलु मत्ते पोन पत्ते करि,
तीनों भौंन तत्ते करि प्रलय प्रसार्‌यो त्यों।
नालिन को नाद यों निहार्‌यो बगरू के जंग,
मंदर को मार्‌यो ज्यों पयोनिधि पुकार्‌यो त्यों ॥६ ॥

दोनों सेनाओं के प्रथम मिलाप के अवसर पर तोपें घनघना उठीं। तोपों का प्रसारित ताप ऐसा था मानो कपिल मुनि के दिये हुए शाप का भी बाप हो (अर्थात् मृत्यु का प्रसार करने वाला भयंकर शाप हो)। चारों ओर विकराल बारूद की ज्वालाएं फैलीं। ये ज्वालाएं भी लंबी-लंबी छलांगें भर मानो पूरे जगत को जलाने को आतुर हों। तोपों से छूटते गोलों के प्रहारों ने सामने वाले हाथियों की ऐसी हालत बना दी जैसी पवन के समक्ष सूखे पत्तों की होती है। रणभूमि में चलती तोपों का ऐसा माहौल हो गया कि उन्होंने तीनों लोकों को तपा कर सभी ओर प्रलय का प्रसार कर दिया हो। बगरू के इस युद्ध में तोपों के धमाकों ने ऐसा प्रचंड नाद पैदा किया जैसे मंदराचल पर्वत का मारा (समुद्र मंथने से आशय है) समुद्र हाहाकार कर उठा हो।

घनाक्षरी

परत पलीते घोर जाम जुग बीते छूटि,
फैरन पै फैर नर हैवर मरत जात।
सिलगत सोर ओर ओर जातवेद जोरि,
जिलह जलूसी जंबूदीप की जरत जात।
जंग बगरू के घोस कोसन पहुमि रुंधि,
धूम धीरनी की धुंधि धूसर परत जात।
सक्खी करि सूर जसमक्खी तोप लक्खी गज,
मक्खी पर लैलै काल चक्खी सी करतजात ॥७ ॥

तोपों में पलीते लगाते दो प्रहर का समय व्यतीत हो गया इस समयावधि में होते धमाके पर धमाकों से आदमी और घोड़े मरने लगे। प्रज्ज्वलित बारूद की अग्नि के बल से जंबूद्वीप की शोभा की सामग्री स्वाहा होने लगी। बगरू में मचे तोपों के घमासान की ध्वनि पृथ्वी पर कोसों तक फैल गई। धमाकों से उठे धुएँ से पृथ्वी घूसर हो गई और सभी ओर धुंध पसर गई। सूर्य को साक्षी बना कर यशमुखी काली तोपों ने अपनी-अपनी मक्खियों (निशाना ताकने का उपकरण) पर काले रंग के हाथियों (अथवा लाखों रुपयों के मूल्य वाले हाथियों) को लेकर उन्हें काल का स्वाद चखा (भक्ष्य बना) दिया।

गान नव गोले घमसानन उडानन लै,
धानन किसानन त्यों प्रानन लुनत जात।
दाहन दुसह अवगाहन बिजय बेद,
चंड कछवाहन सिपाहन चुनत जात।
दगि दगि दाव ताव अतुल अलाव लगि,
झगि इकतार झार भारसी भुनत जात।
ताकैं तिन तोपन अवाजन सुनत त्योंही,
तोपन के ताके हू अवाजन सुनत जात॥८॥

रणभूमि में मचे इस घमासान में तोपें नवगान के साथ (अलग-अलग धमाकों की आवाज के साथ) गोले दागने लगीं और जिस तरह किसान अपनी फसल पक जाने पर खेत में फसल काटता है उसी तरह शत्रुओं के प्राण लूने (काटे) जाने लगे। दुस्सह अग्नि शीघ्रता से विजय का अवगाहन (थाह) लेती हुई प्रचंड कछवाहों की सेना से शत्रु सिपाहियों को चुनने लगीं। धमाके पर धमाके करती तोपों की अतुलनीय आग ठौर-ठौर सुलगने लगीं। निरंतर प्रज्वलित होने वाली तोपाग्नि ने भाड़ का सा रूप ले लिया जो शत्रु रूपी चने भूनने लगी। धमाका होते ही शत्रु सेना के योद्धा उन तोपों की दिशा में ताकने लगते हैं पर दुर्भाग्य कि वे मात्र ताक-ताक पाते हैं पर उन तोपों की ताक (सिस्त) में आए हुए वे बेचारे कभी स्वयं भी आवाज करते थे यह अतीत की बात बन जाती है।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

मुक्तादाम

रची बगरू इम तोपन रारि, झगे अय गोलक पावक झारि।
भये कचमाल मई सब भोन, गिरैं बहु बारन गोलन गोन॥९॥

ऊडैं बर हैवर त्यों असवार, बहैं जम मग्ग कि नैर बजार।
उडैं दगि सोर झलाझल अब्भ, गिरैं सुनि गज्जत गब्भिनि गब्भ॥१०॥

हलैं भुव पन्नग सीस हजार, मचैं किरि तुंड मचक्कन मार।
नचैं जिम मारुत बारिधि नाव, भयो इम छोनिय तंडव भाव॥११॥

भये जड़ जोगिय छुट्टि समाधि, बढ्यो सब ओर प्रजागर व्याधि।
भन्यों बिधि लोक बनावन भार, करी हरिसों द्रुत जाय पुकार॥१२॥

बगरू में बनी इस रणभूमि में तोपों के युद्ध से लोह निर्मित गोलों की झड़ी ऐसी लगी मानो वर्षा ऋतु की झड़ी लगी हो। इससे पूरी रणभूमि कचनार के रंग (लाल) वाली हो गई दूसरे अर्थ में पूरी रणभूमि केशमाला (कटे मुण्डों के बालों से निहितार्थ है) से मालामाल हो गई। इन गोलों के प्रहारों से कई हाथी भी रणभूमि में धराशायी हुए। इनकी चपेट में आकर श्रेष्ठ घोड़े भी सवारों सहित उड़ने लगे और यमराज के मार्ग में (मृत्यु के मार्ग) ऐसी आवाजाही बढ़ी मानो किसी नगर के बाजार में आवागमन करने वाली ग्राहकों की भीड़ बढ़ती है। तोपों से दागी जाने वाली बारूद की अग्नि प्रज्वलित होकर आकाश की ओर उठने लगी और उनके धमाके इतनी तेज आवाज वाले थे कि जिन्हें सुन कर गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। इस घमसान की हलचल से शेषनाग के हजारों फण कांपने लगे और सारे भार की मार वाराह के तुंड पर पड़ी। पृथ्वी इस युद्ध के ताण्डव से नाचने लगी जैसे पवन की झपट से समुद्र में नाव नाचती है। महादेव की समाधि टूट गई वे इस युद्ध से सन्न रह गए और जड़ हो गए और सभी दिशाओं में जागरण (अनिद्रा) की व्याधि बढ़ी। सृष्टि रचने वाले ब्रह्मा ने सृष्टि रचने के कार्य को भार माना और शीघ्र ही विष्णु से जा कर पुकार की।

लगैं अय गोलक मंडत लोप, उडैं ध्वजदंड मयूरन ओप।
थरत्थर भू जिम पोमिनि नीर, सरैं जिम ग्रीखम तप्त समीर॥१३॥

उडैं हय अब्भ भ्रमैं गति चक्र, मनों इन्ह पच्छन कट्टिय सक्र।
रचैं बहु खेल मलंगत रुंड, बनैं चतुरी परि मुंडन मुंड॥१४॥
छिकैं गज मत्त चिकारिन मारि, दरी गिरि सन्निभ होत दरारि।
उडैं बहु सूर गरूर अथाय, बिनां श्रम हूरन लुंबत जाय॥१५॥
कढैं जित गोलक बेग बिथार, बनैं तित आयत पंथ बजार।
गडैं भुव तोप चरक्खन चक्क, लगैं कढि गोलक देत ललक्क॥१६॥

रणभूमि में लोह निर्मित गोले विनाश पर उतर आए और वे शत्रुओं का लोप करने लगे। सेनाओं के ध्वज दंड नाचते मयूरों की शोभा पाने लगे अर्थात् नृत्यरत मयूर के फहरते पंखों की तरह रणभूमि में ध्वजाएं फहरने लगीं। नाचते मयूरों की शोभा पाने लगे अर्थात् तोपों के धमाकों से पृथ्वी इस तरह सिहर उठी जैसे पानी में कमल कांपते हैं और पवन ऐसा गर्म चलने लगा जैसे ज्येष्ठ माह में लूएँ चलती हैं। तोपों के इन प्रहारों से घोड़े आकाश में उड़ कर इस तरह चक्कर घिन्नी खाने लगे मानो इन्द्र ने इनके पंख काट डाले हों (पुराणों के आख्यानानुसार इन्द्र ने घोड़ों के पंख काटे थे) रणभूमि में योद्धाओं के मस्तक कट जाने पर कबंध कई तरह के खेल रच रहे हैं वहीं दूसरी ओर कटे मस्तक पर मस्तकों के अंबार से मस्तकों के जैसे चबूतरे बनने लगे। तोपों के गोलों के प्रहारों से मस्त हाथी यों चित्कार करते हुए बिंधे चले जाते हैं जैसे पृथ्वी में गुफाओं की तरह दरारें बन रही हों। इन गोलों के प्रहार से अपार घमण्ड वाले वीर योद्धा उड़ने लगे और बिना ही किसी परिश्रम से अप्सराओं से जा लटकते हैं अर्थात् उन्हें गलबहियां देते हैं। जिधर-जिधर से वेगवान तोपों के गोले गुजरते हैं वहीं-वहीं लंबे-चौड़े बाजार की तरह शत्रु सेना में चौड़े मार्ग बनने लगे। इन धमाकों के बल से तोपों की गाड़ियों के चक्र जमीन में धँसने लगे और ललकार करते हुए गोले निकलने लगे।

जगैं कति पुंज पताकन ज्वाल, झगैं जिम मारुत होरिय झाल।
मच्यो बगरूपुर उल्मुक मेह, गिरैं बहु सोध अटालक गेह॥१७॥
इसैं नचि थेइन पन्नगहार, डरावत डाकिनि लेत डकार।
अनंतहिं नागिनि यों उचरंत, कहो किम सेझ घमंकत कंत॥१८॥

नही परिरंभन स्पृष्टक आदि, नही उपगूहन ओर अनादि।
ललाटक आदिक चुंबन नांहिं, नवीन बनैं रसना रन नांहिं ॥१९॥

नक्खखहि लैं नख अप्पत नाह, उठें नहिं क्यों रति केलि उछाह।
न गूढक आदि बनैं रदनोद, मनैं किम नाथ घनी तिय मोद ॥२०॥

तोपों द्वारा बरसाई गई इस अग्नि से रणभूमि में पताकाओं के समूह जलने लगे और उनकी जलती ज्वाला ऐसी थी मानो होलिका-दहन में पवन आ मिला हो। बगरू की भूमि पर जैसे अंगारे बरसने लगे और वे भी कहीं किसी छत पर गिरे तो कहीं घरों के आंगन में। 'थई-थई' की ध्वनि के साथ महादेव नाचने लगे और डाकिनियां डकार लेती हुई सभी को डराने लगीं। यह हाल देखकर शेषनाग से उसकी नागिनियां पूछने लगीं कि हे नाथ! इस तरह शय्या को क्यों हिला रहे हो? परिरंभन, स्पृष्टक आदि आलिंगन क्यों नहीं लेते? न उपगूहन करते हैं न ललाट पर चुबंन ही ले रहे हैं ऐसा क्यों? न लंहगे का नाड़ा खोलने की जोर-जबरदस्ती करते हैं यह कैसी कामयुद्ध की नई तरकीब सोची है? न बगल में दबा कर नखक्षत दे रहे हैं? क्यों आज आप में रतिक्रीड़ा के लिए उत्साह नहीं है? न गूढक आदि दन्तक्षत ही दे रहे हैं? ऐसे में हम आपकी बहुत सारी स्त्रियां मोद कैसे मनाएँ?

नव्है परिरंभन आदिहि च्यारि, न क्यों तव दुक्ख लहैं हम नारि।
कही यह नागिनि सेसहि कत्थ, बद्यो तब नाग प्रिया भरि बत्थ ॥२१॥

इतैं भुव बुंदिय को अधिराज, उतैं दृढ जैपुर भूपति आज।
लरैं दुव सज्ज चमू रचि लाम, धुजैं इहिं कारन अप्पन धाम ॥२२॥

सुन्यों इम नागिनि संगर सोर, रही चुप रुक्किय मोहन रोर।
कहैं रसना जिम दोय हजार, परैं तिम नागिनि कों दुख पार ॥२३॥

बराहहिं सूकरिका इत बुल्लि, डिगे किम दंतुलि टारत डुल्लि।
कह्यो तब तुंड टिकैं नहिं कोल, बद्यो सुहि कुम्म दुली प्रति बोल ॥२४॥

भये अधलोकहु यों भर भीत, बनैं ब्रहमंड मनों विपरीत।
अरे इम द्वै दल खग्गन खेरि, लयो मरहट्ठन कूरम घेरि ॥२५॥

हे नाथ! न आज चारों प्रकार के परिरंभन ही कर रहे हैं? कोई दुःख है क्या आपको? यदि है तो हम भी उसमें हिस्सा बँटाना चाहती हैं। जब नागिनियों ने अपने पति शेषनाग से ऐसा पूछा तो शेषनाग अपनी प्रिया को आलिंगन में लेकर कहने लगा कि देख आज इधर से तो बूंदी का राजा लड़ रहा है और सामने जयपुर का कछवाहा राजा मुकाबले पर है। ये दोनों राजा अपनी सेना को लामबंद कर घमासान कर रहे हैं इसलिए हमारा घर काँप रहा है। जब शेषनाग की प्रिया ने भी संग्राम का कोलाहल सुना तो वह रति की उमंग के होते हुए भी खामोश हो गई पर उसके मन की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए दो हजार जिव्हाएं हों तब पार पड़े। इसी समय वाराह की पत्नी भी अपने पति से पूछने लगी कि हे नाथ! आज आपकी दंतुलि क्यों काँपती हुई हिलडुल रही है? यह सुन कर वाराह ने कहा कि क्या बताऊँ आज तो ठुड्डी (तुंड) का टिकना भी मुहाल हो गया है। ऐसा ही संवाद कमठ और उसकी प्रिया के मध्य हुआ। सारे अधोलोक बगरू में लड़ती सेनाओं के भार से बेहाल हो गए मानो आज तो पूरा ब्रह्माण्ड ही उलट-पलट हो गया हो। दोनों पक्षों के योद्धा अपनी तलवारें निकाल कर (ऐसे) लड़ने लगे कि तभी मराठा योद्धाओं ने आगे बढ़ कर कछवाहा राजा को घेर लिया।

षट्पात्

दगत छई दुहुं ओर तोप पट मदन बितानन,
आतप हुव तपि अक्क चक्क हुव स्वेदित आनन।
इहिं अंतर आसार मुदिर उज्झलि अति मंडिय,
बहि सुख सीतल बात खेद आतप भव खंडिय।
दुव घटिय होय दाता जलद गाढ कृपनपन पुनि गहिय।
पहु राम तदिन बगरू पहुमि बारि रुहिर सम्मलि बहिय॥२६॥

मोमजामों से बने शिविरों में दोनों ओर से तोपें गड़गड़ा उठीं इसी बीच रणभूमि पर सूर्य पूरे आतप के साथ चमका। इस घाम से लड़ती हुई सेनाओं के वीरों के चेहरों पर पसीना छलछला आया पर इसी बीच मेंघों ने आकर वर्षा की धारा बहाई, जिससे शीतल पवन चला और इसके

फलस्वरूप सेना का आतप (ताप) का दुःख मिटा। दो घड़ी तक अपनी वदान्यता का इजहार कर मेघ वापस यकायक कृपण बन गया अर्थात् वर्षा ठहर गई। हे राजा रामसिंह ! उस दिन बगरू की इस रणभूमि में वर्षा का पानी योद्धाओं के लहू से एकमेक हो कर बहा।

दोहा

मरहट्ठे रुक्कत मुदिर, जुरे बहुरि जुज्झार।
इक ऊंचे थल पर चढे, माधव हड्डु मलार॥२७॥

तोप तहां सन त्रिगुन खट, माधव की चलवाय।
कूरमपति के गज निकट, गोले लग्गिय जाय॥२८॥

गो इतनै रवि चरमगिरि, सायं समय बिधाय।
भीमनिसा आगम भयो, दिस दिस तिमिर दिखाय॥२९॥

फिर नक्कीब तब दुव दलन, अक्खिय रोकहु जंग।
मन सूरन सो सुनि मुरे, आयासित लखि अंग॥३०॥

वर्षा के थम जाने पर मराठा वीर फिर से एकत्र होकर जूझने को उद्यत हुए। इस समय माधवसिंह कछवाहा, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और मल्हारराव होल्कर एक ऊँचे टीले पर चढ़ गए। यहाँ पहुँच कर उन्होंने छः गुणा तीन अर्थात् माधवसिंह के पक्ष की अठ्ठारह तोपों को चलाने का हुक्म दिया। हुक्म पाते ही इन तोपों के गोले शत्रु पक्ष अर्थात् कछवाहा राजा की सेना के हाथियों के निकट गिरने लगे। इसी बीच सूर्य अस्ताचल को चला गया और रणभूमि में सांझ गिर आई और थोड़ी ही देर में भीम निशा (भयंकर रात्रि) का आगमन हुआ जिससे सभी ओर अंधकार ही अंधकार नजर आने लगा। तब नकीबों (छड़ीदारों) ने दोनों ओर अपने अपने पक्ष से युद्ध-विराम करने का कहा। यद्यपि शूरवीरों के मन में लड़ने की तमन्ना थी पर भीषण संग्राम से थके होने के कारण उन्होंने युद्ध रोक दिया।

बुट्ठि तिमिर करि सबन नहि, लद्धो डेरन राह।
लरत हुते तत्थहि रहे, तजि तजि तुरग सिपाह॥३१॥

तीन तीन दिन को असन, रक्ख्यो कतिन लगाय।
तिहिं करि भूखे तृप्त हुव, सूर सप्ति समुदाय॥३२॥

बग्गडोरि बाजीन की, गहि गहि करन कराल।
सज्जहि रहि बैठे सबन, कढ्यो जामिनि काल॥३३॥

माधवहू इक ग्राममैं, रहि कर्षुक गृह रत्ति।
बदलि नाम तापंहं बचे, बितई निंद बिपत्ति॥३४॥

वर्षा समय के घटाटोप अंधेरे के कारण सारे योद्धाओं को अपने-अपने डेरे पर जाने का मार्ग नहीं सूझा इसलिए अन्त में लड़ने वाले दोनों पक्षों के वीर रणभूमि में अपने-अपने घोड़े से उतर कर वहीं रहने को मजबूर हुए। इनमें से कई सैनिकों को तीन दिनों से भोजन उपलब्ध नहीं हुआ था इसलिए उन्होंने छक कर खाया अथवा दूसरे अर्थ में उन्होंने तीन दिन का भोजन एक ही बैठक में कर लिया और उन्होंने अपने-अपने घोड़े को चारे से तृप्त किया। सारे योद्धा-सवार अपने-अपने घोड़े की लगाम हाथ में ले कर सज्जित अवस्था में ही वहाँ बैठे रहे और इस तरह उन्होंने रात्रि व्यतीत की। ऐसे समय में माधविंह कछवाहा भी एक किसान के घर पर अपना नाम छिपा कर रहा। अपनी पहचान छिपा कर उसने कष्टपूर्वक रात बिताई।

कवच सेझ उपधान कर, पहुमि पृथुल पल्ल्यंक।
सुत्तो तंहं जयसिंह सुव, असि कामिनि धरि अंक॥३५॥

सोवन न्हावन असन की, कहां केणिका तीन्न।
बुंदीसहु इक खेत बिच, खिनदा कीनी खीन॥३६॥

हुलकर के पंहुंची हठन, इक्क रावटी आनि।
बित्ती कठिन बिभावरी, चटकन हुव चहकानि॥३७॥

नित्य नियम मंड्यो नृपति, उट्ठि सबन सन अग्ग।
एते बिच पिक्ख्यो अडर, माधव आवत मग्ग॥३८॥

अपने हाथ को तकिया बना कर भूमि को ही बड़ा पलंग समझा। अपने कवच को शय्या बना कर कछवाहा राजा जयसिंह के पुत्र (माधवसिंह) ने तलवार रूपी कामिनी को अंक में लेकर रात काटने को सोया। यही हाल बूंदी के राजा उम्मेदसिंह हाड़ा का हुआ। सोने, नहाने और भोजन करने को जहाँ उसके लिए शिविर में भी तीन तंबू होते थे ऐसे हाड़ा राजा ने एक हाँके जोते हुए खेत में सो कर रात्रि व्यतीत की। वहीं होल्कर के

कुछ हठी सैनिकों ने ला कर एक छोटे तंबू का इन्तजाम किया उसके नीचे सोते हुए मल्हारराव ने बमुश्किल तमाम रात काटी। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने सबसे पहले उठ कर नित्य नियम करना आरंभ किया इसी समय उसकी नजर रास्ते की ओर गई जहाँ उसने कछवाहा माधवसिंह को अपनी ओर आते देखा।

षट्पात्

सक गुन नभ धृति समय मित्र माधव खंडुव हुव,
बदली दोउन पग्घ धरि सु रक्खी डब्बन धुव।
इहिंदिन वह उष्णीस कुम्म आयउ धारन करि,
जपि नृप हिंतु जुहार इक्क तरु तर गय उत्तरि।
द्विज दयाराम पठ्यो नृपति पुच्छन कछु कछवाह पंहं।
तिहिं जाय लखिय जयसिंह सुव चब्बत दद्ध मउठ्ठ तंहं।।३९।।

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीन में माधवसिंह कछवाहा और खांडूराव दोनों ने आपस में अपनी पगड़ी बदली थी। इस पगड़ी को निश्चय ही माधवसिंह ने संभाल कर रखा। उस दिन भी कछवाहा इसी पगड़ी को पहने हुए था जब उसने बूंदी के राजा को जुहार की और आगे एक पेड़ के तले जा कर वह हाथी से नीचे उतरा। इस समय बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने अपने (सचिव) ब्राह्मण दयाराम को कुछ पूछने के लिए कछवाहा के पास भेजा। यह ब्राह्मण दयाराम वहाँ जा कर क्या देखता है कि माधवसिंह कछवाहा भूने हुए मोठ चबा रहा था।

दोहा

अैसोहू आवत समय, घोर मचत घमसान।
भूपति हू निज भूख कों, देत मोठ बलिदान।।४०।।

इतहु हड्डु नृप नित्य करि, वैश्वदेव करवाय।
जथालाभ लै अन्नअरु, सज्ज्यो कवच सुभाय।।४१।।

इहिं अंतर जैपुर अधिप, चढ्यो चमूजुत चंड।
अभ्रमुपति पर इंद्र सम, बैठो सजि बेतंड।।४२।।

जब घमासान युद्ध का अवसर हो तब कभी-कभी ऐसा भी समय आता है कि राजा को भी अपनी भूख मिटाने को मोठ चबाने पड़ते हैं। इधर हाड़ा राजा अपने नित्य कर्मों से निवृत होने के बाद विश्वदेव के निमित्त हवन करने बैठा। यज्ञ सम्पन्न कर उसने अपनी भूख के अनुसार जैसा मिला वैसा अन्न ग्रहण किया और उसके बाद कवचादि ठसा कर सज्जित हुआ। उधर इसी समय जयपुर का कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह भी सज्जित हो अपने हाथी पर आरूढ हुआ जैसे ऐरावत पर इन्द्र सवार होता है।

इत उमेद माधव अरहि, हय चढि सम्मलि होय।
हुलकर ढिग आये हुलसि, दलहिं प्रचारत दोय॥४३॥
नृप मलार हरवल्ल व्है, जयपुर सम्मुह जंग।
कुंत भ्रमात अपसव्य कर, फेरत तरल तुरंग॥४४॥
परे पलीते तोप परि, अतुल दगी अरराय।
बासव के थों बज्र लै, घल्लैं अद्रिन घाय॥४५॥

इधर से हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह कछवाहा भी शीघ्र ही अपने-अपने घोड़े पर सवार हो हुलसते हुए अपने-अपने दल के साथ मल्हारराव होल्कर के पास पहुँचे। यहाँ पहुँच कर दोनों राजाओं ने अपनी सेनाओं को होल्कर की सेना के साथ मिलाया फिर दोनों राजा और मल्हारराव होल्कर हरावल की अग्रिम पंक्ति में बढ़ते हुए जयपुर की सेना का सामना करने भाले फिराते हुए अपने वेगवान घोड़ों के साथ बढ़े। इन्हें आते देखते ही रणभूमि में स्थापित तोपों पर पलीते पड़ने लगे और शीघ्र ही कई तोपें गर्जना करती चल पड़ीं। इस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो देवराज इन्द्र ने पर्वतों को बिखेरने हेतु अपना वज्र चलाया हो।

षट्पात्

तोपन लग्गत अग्गि व्याल रीढक बररक्किय,
दरक्किय किरि दड्ढ कमठ खुप्परि कररक्किय।
पृतना बिचकरि पंथ कढत गोले सक सक करि,
मनहुं संघ मायूर धसत कानन के काथरि।
मल्लार पिट्ठि कोटा चमुप हो मोहनसिंहोत भट।
वह जोध नागदहपुर अधिप गोला लगि गय बिहित बट॥४६॥

तोपों के दहकते मुहानों से अग्नि ने पसरना शुरू किया जिसे देख कर शेषनाग की रीढ़ की हड्डी बरक गई। ऐसे घमासान के फलस्वरूप वाराह की दंतुलि में दरार आ गई और कुर्मराज (कच्छप) का आवरण दरक गया। 'सक-सक' की ध्वनि के साथ सामने खड़ी सेना में मार्ग बनाते हुए गोले पार होने लगे मानो मयूर पक्षियों के झुण्ड केका ध्वनि करते हुए कानन में घुसने लगे हों। मल्हारराव के पीछे कोटा का जो सेनापति मोहनसिंहोत हाड़ा था उस नागदा पुर के स्वामी जोधसिंह को एक तोप का गोला आ लगा और वह उचित मार्ग का यात्री बना अर्थात् स्वर्गलोक को गया।

अैसे कठिन अनेह कहिय माधव मलार कंहं,
हम किहिं ठोर रहैं सु त्वरित सुनि दिय उत्तर तंहं।
देखहु वह बुंदीस बीर किहिं ठोर बिहारत,
ललित सेझ नहिं लाल इहां निकसत असु आरत।
मेरेहि कहैं रहनों जु मत आनि रहहु तो मम उदर।
सुनि यह सिटाय माधव सलज हुव प्रदोष पंकज कहर॥४७॥

ऐसे कठिन समय में माधवसिंह कछवाहा ने मल्हारराव होल्कर से कहा कि आप हमें बताएँ कि हम किस ठौर पर रहे। होल्कर ने शीघ्र ही उसकी बात सुन कर उत्तर दिया कि उस बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को देख वह क्या जगह तलाश करता फिर रहा है? हे लाल ! यह कोई सुन्दर सेझ (शय्या) नहीं। यहाँ तो पीड़ित हो कर प्राण छूटते हैं, यह रणभूमि है। मेरे ही कहने पर रहेगा तो आ मेरे उदर में समा जा! ऐसा अप्रत्याशित उत्तर सुनकर माधवसिंह एकदम लज्जित हो गया जैसा सायंकाल के जुल्म से कमल होता है।

दोहा

इत तंते गंगाधर सु, दूजी अनिय बनाय।
पैलीघां सन उडि परिय, जैपुर दल बिच जाय॥४८॥

इसी समय दूसरी ओर से आक्रमण करने की योजना बना कर तांतिया गंगाधर ने अपनी सेना से अलग टुकड़ी अपने साथ ली और तत्काल ही जयपुर की सेना पर आ टूट पड़ा।

षट्पात्

गंगाधर हय गरक करे कूरम दल अंतर,
रिट्ठिन बज्जिग रिट्ठ भीम गज्जिग रज्जिग भर।
फटत टोप चोफार कटत करिकी तरबूजन,
खर खुरतारन खुदत धरनि धारन लगि धूजन।
भयकार मुंड मुंडन भिरत रुंड फिरत बन बन्हि रुख।
भ्रामरी दसा भीरुन भई सिद्धा सूरन समर सुख।।४९।।

गंगाधर ने कछवाहा सेना में अपने घोड़े क्या झोंके कि भयंकर गर्जना के साथ वीरता से भरे दोनों पक्षों की ओर से तलवारों के निरंतर प्रहारों पर प्रहार होने लगे। इन प्रहारों से शत्रु पक्ष के योद्धाओं के शिरस्त्राण चिरने लगे और शत्रु सिर तरबूजों की तरह कटने-फटने लगे। अपने पाँवों में लगी तीखी खुरतालों से घोड़े भूमि खोदने लगे और इन घोड़ों के धावन से भूमि काँपने लगी। योद्धाओं के मस्तक पर मस्तक कटने लगे। सिर कटे भयकारी कबंध रक्त से रगे-पगे रणभूमि में विचरण करने लगे जैसे वनखण्ड में अग्नि की ज्वालाएँ चल रही हों। ज्योतिष शास्त्र में जिस दुखदायी दशा को भ्रामरी कहा जाता है वह दशा तो कायरों की हो गई और इनके विपरीत शूरवीरों के मुख पर युद्ध को देखते ही नूर आ गया अर्थात् उनकी सिद्धा दशा हो गई जो सुखदायी दशा मानी जाती है।

तंते की तरवारि बिखम जैपुर दल बग्गी,
तड़ित जानि अति तेज मुदिर भद्दव झगमग्गी।
घेर्‌यो रचि घमसान तुमुल दुव पहर कहर तप,
नैंक डिगन नन दियउ ईश्वरीसिंह अनेकप।
कूरमन तबहि यह छल करिय दल नकीब मुक्कलि द्रुतहि।
झंडे रूपाय दीरघ दये करहु मुकाम मुकाम कहि।।५०।।

तांतिया वीर गंगाधर के दल के योद्धाओं की तलवारें विषम प्रहार मचाती कछवाहा सेना का विनाश करने लगीं और वे ऐसी नजर आने लगीं जिस तरह भाद्रपद के काले मेघों में बिजुरिया नजर आती है। तांतिया के इस दल ने दो प्रहर तक क्रोधाग्नि में तप कर तुमुल घमासान रचा। इस दल

ने जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के हाथी को तनिक भी इधर-उधर नहीं होने दिया अर्थात् था वहीं रोके रखा। इस परिस्थिति को भाँप कर कछवाहों ने छल का सहारा लेते हुए शीघ्र ही अपने नकीबों का दल भिजवाया और बड़े-बड़े झण्डे गड़वा कर उनके मुँह से कहलाया कि अब यहीं पर विश्राम किया जाए।

दोहा

यह लखि हुलकर कटक अब, जानी कुम्म न जाय।
सउचादित बपु कर्म सब, भट सु निबरेहु भाय॥५१॥
तब तनाय इक रावटी, तजि कटिबंध मलार।
नित्य नियम बपु कर्म निज, बिरचन लगि तिहिं बार॥५२॥
पौरानिक द्विज बुल्लि पुनि, इंद्रदत्त अभिधान।
व्यासासन बैठारि तिहिं, सुनत भागवत गान॥५३॥
अपर भटन उतरन समय, अक्खिय दूतन आय।
उतर्यो नहिं कूरम अधिप, जानैं हम भजिजाय॥५४॥

नकीबों की ऐसी ध्वनि सुन कर मल्हारराव होल्कर ने देखा कि अब जयपुर की सेना जा नहीं रही है और मुकाम कर रही है तो उसने अपनी सेना के योद्धाओं को शौच आदि कर्मों से निवृत्त होने का आदेश किया। उसने तब एक छोटा तम्बू तनवाया और उसमें जाकर कमरबंधा खोला। मल्हारराव भी तब शौचादि कर्म से निवृत्त होने का कार्य सम्पन्न कर अविलंब ही नित्य-नियम में संलग्न हुआ। उसने इन्द्रदत्त नामक पुराण बाँचने वाले ब्राह्मण को बुलवाया। उसके आने पर होल्कर ने उसे व्यासासन पर बिठवाया और स्वयं उससे श्रीमद्‌भागवत का पाठ सुनने बैठा। होल्कर के अन्य योद्धा भी जब रणभूमि में अपनी सवारी छोड़ने को उद्यत हुए तभी होल्कर के दूतों ने आ कर सूचना दी कि अभी जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह ने अपनी सवारी का त्याग नहीं किया है मन ही मन यह सोचते हुए कि हम कहीं भाग न जायें।

हुलकर तब सुभटन कहिय, उतरहु कोउ न अज्ज।
कूरम हम जान्यों कितव, लेस न बुझ्झत लज्ज॥५५॥

तंते कों मुक्कलि तबहि, रोक्यो जैपुर राह।
इतनैं दुंदुभि बज्जि अर, कढि चल्लिय कछवाह॥५६॥

सुनत एह हुलकर सु पहु, द्रुतहि उघारे देह।
तुरग चढ्यो पटगेह तजि, मंडत आयुध मेह॥५७॥

यह सुनते ही होल्कर ने अपने योद्धाओं से कहा कि तुम लोग भी सवारियों को मत छोड़ो। हमें पता है यह कछवाहा राजा कपटी है इसे झूठ बोलते हुए तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं होता। इसी समय मल्हारराव ने तांतिया गंगाधर को भेज कर कहा कि जाओ! तुरन्त ही तुम जाकर जयपुर जाने आने वाले रास्ते की नाकाबंदी कर लो! तभी दुंदुभियों के बजने की आवाज गूंजी और लोगों ने देखा कि कछवाहा राजा रणभूमि छोड़ कर निकलने को चल निकला है। यह सुनते ही बिना सज्जित हुए होल्कर अपना तंबू छोड़ कर तुरन्त बाहर आया और घोड़े पर सवार हुआ जिससे युद्ध आरंभ किया जा सके। आयुधों की वर्षा आरंभ की जा सके।

नराचः

चढ्यो मलार लै तुखार नो हजार नच्चते।
थपे प्रबीर तानि तीर जंग धीर जच्चते॥

बजे निसान स्वान जे दिसा दिसान बित्थरे।
चमंकि पारि चिक्करी डिगे रु दिक्करी डरे॥५८॥

हजार पंच सेन देस क्लेस काज मुक्कली।
रमापुरी समीप लों गये ति लूटते बली॥

हजार अंक है लियें मलार उप्परयो इतैं।
जितैं जितैं चलात खात खग्ग तैं तितैं तितैं॥५९॥

बुलैं नकीब इक्कसै हुलैं हरोल हक्कदै।
तुलैं तुंग तक्खरे धरा धुजात धक्कदै॥

उमेद माधवेस हू सजे दुरुह सत्थ व्है।
करिध्वजाभ कुम्भ पैं पिले प्रचारि पत्थ व्है॥६०॥

इस तरह मल्हारराव होल्कर रणभूमि में चपल नृत्य करने वाले

घोड़ों के साथ नौ हजार घुड़सवारों का दल ले कर चढ़ाई करने चला। धैर्य के साथ युद्ध भूमि में डंटे रहने वाले वीर यकायक वेगवान हो कर बढ़े। सभी ओर नगारों के बजने की ध्वनि व्याप्त हो गई अर्थात् सभी दिशाओं में प्रसर गई जिससे दिशाओं के दिग्गज चीख मार कर डरते हुए अपने स्थान से विचलित हो गए। मल्हारराव होल्कर ने इससे पहले पाँच हजार सवारों की सेना ढूंढाड़, (जयपुर) देश में क्लेश (अशांति) फैलाने को भेज रखी थी। इस दल के वीर योद्धा लूट मचाते हुए सांभर तक अपनी धाक जमाते हुए जा पहुँचे। इधर अलग से नौ हजार सवारों को साथ ले होल्कर चढ़ा। उसका यह दल जिधर-जिधर बढ़ा उधर-उधर के शत्रुओं को इस दल की तलवारें अपना भक्ष्य बना गईं। ललकार के साथ इस सेना के हरावली दस्ते को आगे बढ़ाने का कार्य सौ नकीब कर रहे थे जिनके बोलों को सुन कर चपल गति वाले घोड़े अपनी गति से पृथ्वी को कंपायमान करते बढ़े। इस दल के साथ दोनों दुरूह योद्धा हाड़ा उम्मेदसिंह और कछवाहा माधवसिंह भी सज्जित हो कर बढ़े तब ऐसा लगने लगा मानो ईश्वरीसिंह कछवाहा रूपी कर्ण पर ये पार्थ रूपी वीर ललकार करते बढ़ आए हों।

करीन के कलाप के कलाप केतु के खुले।
चले समग्ग खूब खग्ग सेन अग्ग संकुले॥
खिचैं कमान बीच बान दंडितुंड दंत के।
करैं कटार केक पार देवदार कंत के॥६१॥

झरैं तुरंक फेट भंग पंच रंग झंड के।
खिरैं खलीन खग्ग खीन दुंदुभीन खंड के॥
कटैं कपाल भिन्न भाल अंखि लाल उच्छटैं।
बटैं बिसाल ग्रीव गाल जत्रु जाल त्यों फटैं॥६२॥

कुकैं हुकैं फुकैं कलेज कुम्भ के रुकैं लुकैं।
सुकैं करीन दान तान गान अच्छरी चुकैं॥
छिकैं चिकैं किरीट केक ओट घोटकी टिकैं।
थकैं जकैं हकैं कितेक बाढ बन्हि कैं सिकैं॥६३॥

होल्कर के इस विशाल दल में कितने ही हाथियों के समूहों की पीठ पर ध्वजाओं के समूह फहराने लगे। सुमार्ग से बढ़ती इस सेना के सारे खड़गधारी अतुलनीय योद्धा सेना के अग्रभाग में आ संकुलित हुए जहाँ यमराज के मुँह के दांत बन कर कमानो के मध्य बाण खींचे जाने लगे। कई वीर अपनी कटार को शत्रुदेह के आर-पार कर उन्हें अप्सराओं के वरणयोग्य पति बनाने लगे। बढ़ते हुए घोड़ों की टक्कर से जयपुर की कछवाहा सेना के पचरंगे झंडे टूट कर गिरने लगे। होल्कर के वीरों की तलवारों के प्रहारों से कट कर कई शत्रु सेना के घोड़ों की लगामें उछलने लगीं तो कहीं नगारों के टुकड़े उछलने लगे। कहीं पर शत्रु वीरों के कपाल कटने लगे तो कहीं ललाट से अलग हो कर शत्रुओं के लाल नेत्र उछलने लगे। कहीं लंबी गर्दनों के टुकड़े होने लगे तो कहीं पर हंसुली की हड्डी के साथ शत्रुओं के गाल कटकर गिरने लगे। कई कछवाहा योद्धा कूकने लगे तो कई हूकने लगे। कई प्रहारों से अपने जलते कलेजे फूंकने लगे। कई डर कर छिपने लगे। हाथियों का मद सूख गया और अप्सराएं अपने गायन के विधान में तान चूकने लगीं। प्रतिपक्षियों के मुकुट छिद कर मस्तक से गिरने लगे वहीं कुछ सैनिक घोड़ों की आड़ में टिकने लगे अर्थात् आड़ लेने लगे। कई थक कर तो कई घायल हो गिरने लगे वहीं कुछ सामना करने की हिम्मत कर आगे बढे पर आगे चलती हुई तलवारों की धारों से उत्पन्न अग्नि में सिकने लगे।

जगैं प्रकोप अक्क ओप केक तोप त्यों दगैं।
झगैं बिसाल सोर झाल दीपमाल सी लगैं॥
जचैं सु मल्ल जंग के तुरंग ताप मैं तचैं।
रचैं बकारि रारि के डकारि डाकिनी नचैं॥६४॥

गजैं गरूर पूर सूर कूर नूर के तजैं।
सजैं रजैं भजैं न नीरके अनीर के भजैं।
तनैं प्रहार लुत्थि लार मार मार के भनैं।
घनैं घुमाय घोर घाय बायमत्त से बनैं॥६५॥

थपैं प्रयान प्रान केक ज्ञान कानपैं जपैं।
बिसार ज्यों अपार बेग धार सम्मुहैं धपैं॥

छबैं छलंगि छोनि है, दुसार संगि गै दबैं।
फबैं अगोट चंड चोट ढाल ओट के ढबैं॥६६॥

कुछ वीर अपने में जगे सूर्य के उत्ताप जैसे प्रकोप की अग्नि में स्वयं झुलसने लगे और कुछ वीर दागी हुई तोप की तरह बढ़ने लगे। रणभूमि में जहाँ कहीं तोपें चलती है वहीं सुलगते बारूद की बड़ी ज्वालाएं भभकती हैं जो दीपमाला के प्रकाश की तरह भासमान होती हैं। कहीं पर कुछ पैदल योद्धा मल्लयुद्ध की याचना करते हैं अर्थात् वे मल्लयुद्ध करने को आतुर होते हैं पर वे अन्ततः घोड़ों की टापों की अग्नि में झुलस कर रह जाते हैं अर्थात् टापों से घायल होकर मारे जाते हैं। कई वीर सामने वाले को ललकार कर युद्ध में संलग्न होने लगे वहीं डाकिनियाँ तृप्त हो डकार लेती हुई नृत्य करने लगीं। कई वीर दर्प से भरे गर्जना करने लगे वहीं कई कायर अपने मुख का नूर खोने लगे। कई वीर सज्जित हो शोभा देने लगे। इनमें से भी जो पराक्रमी हैं वे नहीं भागेंगे और जो पराक्रमहीन है वे भाग खड़े होंगे। अपनी तलवार के प्रहारों का प्रसार करने पर सामने वाली लोथों के कटे मुण्ड भी मार-मार बोलने लगे। रणभूमि में कई घायल अपने बहुत सारे घावों के कारण बायमत्त अर्थात् पवन लग कर शीत में आने वाले जैसे हो कर अनर्गल बकने लगे। कई वीर मृत्यु को आसन्न देख कर अपने प्राणों के प्रयाण समय गीता आदि शास्त्रों के श्लोक गुनगुनाने लगे अर्थात् जपने लगे । कई वीर सामने वाले योद्धा की तलवार के प्रहारों के अपार वेग को भूल कर वे उन तलवारों की धाराओं के सम्मुख दौड़ कर जाने लगे। घोड़े छलांग लगा कर भूमि को आच्छादित करने लगे वहीं दोनों बाजुओं में बरछियाँ के प्रहार खा कर हाथी दबने लगे। कहीं पर सामने की भयंकर चोट के मुकाबले में वीर अपने आपको ढाल की आड़ में सुरक्षित करने लगे।

सनंकि चोंकि चिल्हनी भनंकि गिद्धनी भमैं।
खमैं घटाग खाग भोगभाग नाग के नमैं॥
करैं अनेक दाव केक पाव अग्गही परैं।
झरैं प्रसून भूरि भीर बीर अच्छरी बरैं॥६७॥

मिलैं अभीत जंपि जीत पीलु बीत दै पिलैं।
खिलैं सयान खेचरी भयान भूचरी भिलैं॥
स्वसैं नसैं अनेक सूर केक हुल्लसैं हसैं।
घिसैं कितेक नाक केक नाक जाय कैं बसैं॥६८॥

थरत्थरी थिराहु पिक्खि तेग की तरत्तरी।
बरब्बरी लगै न जास फग्ग की चरच्चरी॥
छगच्छगी छछक्क डड्ड कोल की डगड्डगी।
झगज्झगी दवग्गि दग्गि नाक लों टगट्टगी॥६९॥

रणभूमि में मची भीषण मारकाट के बाद शवों को खाने में मशगूल चील्हनियाँ तीर की 'सनंक' की ध्वनि सुन कर चौंक कर उड़ने लगीं वहीं अपने पंखों को फैला कर गिद्धनियां मंडराने लगी। मेघों की घटा की अग्नि अर्थात् बिजली रूपी तलवारें चमकने लगीं जिससे पृथ्वी काँपने लगी और शेषनाग के फणों का एक भाग झुकने लगा। कई वीर अपनी तलवारों के दाँव प्रसारते आगे ही आगे बढ़ते जाने लगे। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और इस तरह बरसते पुष्पों के मध्य अप्सराएँ अच्छे वीरों का वरण करने लगीं। कहीं पर वीर अपनी विजय हुई ऐसा कहते हुए निर्भय हो कर आपस में मिल रहे हैं वहीं दूसरी और हाथियों को हूलें लगा कर आगे बढ़ाया जा रहा है। रणभूमि में कई वीरों की साँस को नष्ट होते देख कर खेचरियां (देवी की मांसभक्षी दासियां) प्रसन्न होने लगीं वहीं भूचरियां (देवी की दासियां विशेष) भयानक ढंग से हर्षित होने लगी। रणभूमि में अनेक वीर सिसकते हुए मरने लगे। ऐसी स्थिति में कई वीर भूमि पर नाक रगड़ने को उद्यत हुए अर्थात् घायल हो मुँह के बल भूमि पर गिरने लगे वहीं कई वीर स्वर्ग में जा बसने लगे। वेग से चलती तलवारों की तड़ातड़ के आगे भूमि थरथराने लगी। वेग से तड़ातड़ मचाती इन तलवारों की बराबरी तो चर्चरी नृत्य में चलते डंडे भी नहीं कर सकते। रुधिर की पिचकारियां सी छूटने लगीं और वाराह की दाढ हिलने लगी। रणभूमि में प्रज्वलित दवाग्नि की झगमगाहट को देखने के लिए स्वर्ग तक अप्सराओं की टकटकी बंध गई अर्थात् वे निर्निमेष निहारने लगीं।

खरी खरी अघाय खाय के परे करी करी।
घरी घरी घुमाय जाय डाकिनी डरी डरी॥
लजे लजे लुकैं लुभाय भीरु के भजे भजे।
सजे सजे सिपाह लेत मार दैं मजे मजे॥७०॥

बटे बटे पिसाच बुक्क फिप्फरे फटे फटे।
कटे कटे गहै कलेज नां गहैं नटे नटे॥
सची सची भिरैं सम्हारि बाहिनी बची बची।
नची नची फिरैं निहारि जुग्गिनी जची जची॥७१॥

थके थके लरात लोह छोह मैं छके छके।
थके थके गिरैं कुथाल ढाल तैं ढके ढके॥
कढे कढे किरंत क्लोम बक्त्र के बढे बढे।
गढे गढे गंडत गिद्ध लुत्थि पैं चढे चढे॥७२।

डाकिनियाँ रणभूमि में कट कर गिरे हाथियों को खड़ी-खड़ी ही खा कर अघाने लगीं वहीं घड़ी-घड़ी घूम कर देखती जाती और डरी-डरी जाने लगीं। कहीं पर जीवन के लोभी कायर लज्जित हो छिपने लगे तो कई भागने लगे ऐसे कायरों को सज्जित सिपाही मार दे कर मजा लेने लगे। रणभूमि में कट कर बिखरे हुए वीरों के फेफड़ों और गुर्दों (बूकों) को पिशाच आपस में बाँटने लगे। ये पिशाच कटे-बिखरे कलेजे तो लेने लगे पर देने से इनकार करने वाले कायरों के कलेजे लेने में संकोच करते हुए उन्हें छोड़ने लगे। बची हुई दोनों ओर की सेनाएं फिर से इकट्ठी हो भिड़ने लगीं और यह देख कर इनके मध्य याचना करती हुई योगिनियां नाचती हुई फिरने लगीं। क्रोध में उफनते हुए और बढ़-चढ़ कर छोह में छके इन वीरों के शस्त्र प्रहारों से थके-थके घायल अपनी-अपनी ढाल ओढ़े बुरी तरह से गिरने लगे। प्रतिपक्षी सैनिकों के पेट चिर कर तिल्लियां बाहर गिरने लगीं वहीं कटे-फटे मुँह कटकर गिरने लगे। रणभूमि में पड़े शवों के ढेरों पर चढ़े हुए गिद्ध अपना पेट भरने को ढेरों में गहरे उतरने लगे।

मिची मिची अनेक अंखि सोन मैं सिची सिची।
भिची भिची भुजा भ्रमंत अंतरी इची इची॥

कुपे कुपे जुरैं कितेक रंग मैं रूपे रूपे।
लुपे लुपे लखात पाप धार तैं धुपे धुपे॥७३॥

अनी अनी अरैं घटा कि घुम्मरी घनी घनी।
जनी जनी लुभात आत अच्छरी बनी बनी॥

भई भई भनैं बिभिन्न के करैं दई दई।
नई नई रंचत रारि जोध जो जई जई॥७४॥

मुरे मुरे मरैं कुमोति देखिबे दुरे दुरे।
बुरे बुरे बंजत बंब ढोल के ढुरे ढुरे॥

हिलेमिले बढैं कितेक खीज मैं खिले खिले।
झिले झिले झुकैं अनेक संगि तैं सिले सिले॥७५॥

रुधिर से सने कई वीरों के मिचे हुए नैत्र रणभूमि में बिखर गए। भींची हुई मृत वीरों की भुजाओं में उलझी हुई चक्करदार (घेरे में आवृत) आंतें खिंचने लगीं। तब भी कई कुपित वीर रणभूमि में अपने पाँव रोप (जमा) कर युद्ध में जुड़ने लगे (संलग्र होने लगे)। थोड़ी देर पहले जो अस्पष्ट से नजर आ रहे थे वे वीर तलवार की धारों में धारास्नान कर पाप धुल जाने से स्पष्ट नजर आने लगे। घुमड़ी हुई घटाएं जिस प्रकार जोर से भिड़ती हैं उसी तरह दोन्नों सेनाओं की अणियां (अग्रभाग) आपस में भिड़ने लगीं। इस घमसान को देख कर ललचाई हुई प्रत्येक अप्सरा दुल्हन का वेष धर कर रणभूमि की ओर आने लगी। इनमें से कुछ अप्सराएं बात बन गई (अर्थात् वरण पक्का हो गया) ऐसा उच्चारने लगीं वहीं कटने वाले वीर 'देव-देव' पुकारने लगे। इसी बीच विजय की आकांक्षा वाले वीर नया-नया मोर्चा खोलने में संलग्र होने लगे। वे नये सिरे से लड़ने लगे। जिन्हें देख कर रण से विमुख होने वाले कई कायर छिप-छिप कर पीछे देखने में बेमौत मरने लगे रणभूमि में लुढकते जाते ढोल और नगारे बुरे-बुरे (बेसुरे) बजने लगे। इसी बीच कई वीर क्रोध में फूल कर कुप्पा हुए अपने साथियों से हिलमिल कर बढ़ने लगे वहीं कई बरछियों से बिंधे हुए कई वीर धीरे-धीरे झुकते हुए गिरने लगे।

त्रसे त्रसे फिरैं मलार राहु के ग्रसे ग्रसे।
लसे लसे लखैं तमास धुज्जटी हसे हसे॥
कहे कहे जुरैं कितेक चंडिका चहे चहे।
बहे बहे फिरैं बपा सु गिद्दनी गहे गहे॥७६॥

झटक्कि इक्क इक्कको पटक्कि वज्रलों परैं।
खटक्कि खग्ग खुप्परी अटक्कि पग्ग उत्तरैं॥
दरक्कि छत्ति देखि यों भरक्कि जैपुरे भजैं।
करक्कि संधि कंकटी बरक्कि बाढ के बजैं॥७७।

लचक्कि सेस संकुली भचक्कि भुम्मि बिक्खरैं।
मचक्कि पिट्ठि कामठी कचक्कि पंक मैं गिरैं॥
सिलग्गि सोरकी सिखा फुलिंग फैलते बमैं।
मलौंझ मुंड मालिका रचैं रु कालिका रमैं॥७८॥

रणभूमि में सामना करने वाले कछवाहा सेना के वीर मल्हारराव होल्कर रूपी राहु के ग्रसे हुए डरे-डरे फिरने लगे। उल्लास से भरे महादेव हँसते हुए उनका यह तमाशा देखने लगे और महादेव के अट्ठहास में अपने कहकहे मिलाती हुई रणचण्डिका के चाहे हुए कई वीर युद्ध में फिर से आ जुटने लगे। गिद्धनियों द्वारा गही हुई वपा (मज्जा) रणभूमि में बही-बही फिरती है अर्थात बहने लगी। कहीं वीर एक दूसरे को खींच कर गिराते हुए उन पर बज्र की तरह गिरने लगे। वहीं तलवारें सामने वाले की खोपड़ी पर प्रहार करते समय उनकी पगड़ी से उलझ कर पगड़ियाँ गिराने लगीं। रणभूमि में ऐसा हृदयविदारक दृश्य देख कर डरते हुए जयपुर वाले कछवाहा सैनिक भागने लगे। उनके कवचों की संधियों पर जब होल्कर के वीरों की तरवारें गिरने लगीं तो वे 'तट्ट' की आवाज के साथ टूटने लगीं। इस घमासान के चलते शेषनाग की पीठ की हड्डी लचक गई और लचक खाने से भूमि में दरारें आने लगीं। कच्छपराज की पीठ भी धक्के से आगे बढ़ती कीचड़ में समा गई। रणभूमि में चारों ओर बारूद की ज्वालाएं ऊपर उठ कर जब फटती तो अग्नि कण बिखेरने लगीं। ऐसे में अपने प्रियतम महादेव के अर्थ (लिए) सुन्दर मुंडमाला रचती हुई रणचंडी कालिका क्रीड़ा करने लगीं।

खरंत दंत कंत के करंत हंत दिग्गजी।
गिरंत शृंग मेरु की भरंत स्वास भाभजी॥
कृपीट खीन के धुनीन कोप के कृसानु व्है।
दुर्‍यो बितान धुंधि भानु दीह सीतभानु व्है॥७९॥

रजोमई तमोमई भटालि भीर भू भई।
बिमान जाल देवतान ताल रीझि कैं दई॥
धसैं छुरी दुसार बीर पार नीर धारसी।
स्वसैं उतंग के परे मतंग[1] बुज्झि सारसी[2]॥८०॥

समुद्र सत्त लै हिलोर ओर ओर उप्फनैं।
भनैं सिराह चंद्रभाल काल कल्प को बनैं॥
अनंत मांहिं अंत लै उडंत चिल्ह चंग व्है।
हनंत हत्थ अंग के भनंत मत्थ भंग व्है॥८१॥

रणभूमि में मची भीषण मारकाट के चलते अपने-अपने हाथी पतियों के दाँत उखड़ जाने पर दिशाओं की हथनियां खेद प्रकट करने लगीं जैसे सुमेरू पर्वत के शिखरों के गिरने पर उनकी कांति सांस भरकर अर्थात् हांफती हुई भाग छूटती है। दूसरे अर्थ में सुमेरू के शिखर गिरने पर सुमेरु की सभा (देवसभा) भागी हो। इस युद्ध में जगी ज्वालाओं की अग्नि के कोप से नदियां पानी से क्षीण हो गई अर्थात् सूख गई। रणभूमि में धूल कणों की धुंध के छा जाने पर सूर्य छिप पर दिन के समय भी चन्द्रमा की तरह हो गया जिसके कारण वीरों की पंक्तियों वाली भीड़ से भरी पृथ्वी (रणभूमि) जो पहले रजोमई थी अब तमोमई हो गई (यहाँ एक अर्थ पस्त हो जाने से हैं वहीं दूसरा धूसर हो जाने से हैं)। इस घमासान को देखकर आकाश में विचरण करते विमानो के समूहों में बैठे देवताओं ने रीझ कर ताली बजाई। वीरों की कटारियां जल की धारा की तरह शत्रुओं के शरीरों के आर पार होने लगी और रणभूमि में कटे पड़े ऊँचे-ऊँचे हाथी ढेर हो

टिप्पणी 1. लीलावती में गणेश को मंतगानन लिखा है और शारदी नाममाला में हाथी का नाम मतंग लिखा है यथा 'मतंग: कुंजर: करी'।
2. डिंगल भाषा में हाथी की प्रसन्नता की बोली के लिए 'सारसी' शब्द है और मतांतर से सूंड के इधर-उधर पलेटा लगाने को भी सारसी कहते हैं - संपादक।

जाने से पहले अपनी प्रसन्नता की बोली (सारसी) भूलने लगे अर्थात् वे सिसकते हुए चिंघाड़ने लगे। सातों समुद्र ऊँची-ऊँची लहरों के साथ सभी दिशाओं में उफनते हुए उछलने लगे जिसे देख कर महादेव युद्ध की सराहना के बोल उच्चारने लगे कि प्रलयकाल आ गया लगता है। आकाश में चील्हें मृत वीरों की आँतें ले कर उड़ती हुई ऐसी नजर आने लगीं मानो पंतगें उड़ रही हों। वीरों के अंग अर्थात् हाथ जब प्रतिपक्षी का अंग अर्थात् मस्तक काटते हैं तब भी वे (मस्तक) कटने पर भी बोलते हैं।

बितंड बाटिकान दंत हस्तिदंत उप्परैं।
किरे सु कुंभ कोहले पलांडु घंट निक्करैं॥
कटंत सुंडि कक्करी प्रवृत्ति पाथ पीन के।
किलासनास ईषिका रु आलु अंखि कीन के॥८२॥

कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
अरिष्टके अपष्ठ वृंद क्लोम कंद उन्नये॥
बनैं अरी पलास कान अंदु नागबल्लरी।
कलेज पीलुपर्णिका कसेर तोरई करी॥८३॥

बनात यों अनेक पेत साक व्यंजनावली।
कृपान या प्रकार मारकी मलारकी चली॥
कहैं कितेक हाय माय गाय काय के गहैं।
लहैं कषाय लाय के घुमाय घाय के सहैं॥८४॥

(यहाँ ग्रंथकार एक वितंड वाटिका अर्थात् हाथियों रूपी बाड़ी का रूपक बना कर प्रेतों द्वारा सब्जियों की प्राप्ति का वर्णन करते हुए कह रहा है कि) प्रेतों ने रणभूमि में पड़े हाथियों के ढेर (वितंड वाटिका)में से हाथियों के दाँत यों उखाड़े मानो उन्होंने इस वितंडवाटिका में से सफेद रंग की मूलियाँ उखाड़ी हों। उन्होंने हाथियों के कुंभस्थल यों तोड़े मानो वे बाड़ी से कद्दू (कुष्मांड) तोड़ रहे हों। उन्होंने हाथियों के गले में बंधे घंटे यों तोड़े मानो वे प्याज उखाड़ रहे हों। उन्होने मृत हाथियों के सूंडादंड यों काटे मानो वे अच्छी सिंचाई के फलस्वरूप पुष्ट कंकड़ियाँ काट रहे हों।

प्रेतों ने हाथियों के नेत्र यों बटोरे जैसे वे मानो ककोड़े (एक सब्जी विशेष) तोड़ रहे हों। उन्होंने हाथियों के आंखों की पुतलियाँ यों चुनीं जैसे वे आलू चुन रहे हों। उनकी सूंडों के अग्रभाग की पंक्तियां यों चुनी मानो वे करेले की बेल से करेले चुन रहे हों। हाथियों के हृदयों को ऐसे निकाला मानो वे बैंगन तोड़ रहे हों। अंकुश के अग्रभाग से उन्होंने हाथियों की तिल्लियां यों उखाड़ी मानो उन्होंने लहसुन की गांठें निकाली हों। उन्होंने हाथियों के कान यों तोड़े मानो वे अरूइ (अरबी) के पत्ते तोड़ रहे हों और कर्ण श्रृंखला यों बटोरी जैसे वे नागर बेल हों। हाथियों के कलेजे यों चुने जैसे वे अंगूर के गूच्छे (अथवा पीलू के गुच्छ) हों और हाथियों की पीठ की रीढ़क प्रेतों ने यों बटोरीं जैसे तुरई हो। प्रेतों ने इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की शाक इकट्ठी की और वे उनसे तरह-तरह के व्यंजन बनाने लगे। इस घमासान युद्ध में मल्हारराव के दल की मारक क्षमता वाली कृपानें ऐसी चलीं कि उनके प्रहारों के आगे कछवाहा सेना के वीर 'हाय माँ-हाय माँ' चिल्लाने लगे अथवा 'हम तुम्हारी गाय हैं' कह कर अपने प्राण बख्शाने की गुहार करने लगे। मल्हारराव की सेना के प्रहारों से बने घाव सहते हुए जयपुर की सेना के वीर अग्नि का दुःख (कषाय) भी सहने लगे।

चहैं ब आय जैपुरेस गैपुरेस सांकरें।
मलार भीमसेन की गलार गंजि को लरैं॥
इतैं प्रबुद्ध रामभूप क्रुद्ध जुद्ध यों मच्यो।
सुनों समस्त प्रीति के उतैं जु रीतिकैं रच्यो॥८५॥

हस्तिनापुर के स्वामी (दुर्योधन) रूपी जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह को जब चारों ओर से घेर लिया तो ऐसे में भीमसेन रूपी मल्हारराव की गर्जना को दबा कर कौन उससे लड़ता अर्थात् कोई लड़ने में समर्थ न था। हे बुद्धिमान राजा रामसिंह! इधर तो क्रुद्ध होकर ऐसा युद्ध मचा और इधर मैं आपसे जैसा युद्ध मचा उसे कहता हूँ अतः आप प्रीतिपूर्वक सुनो!

षट्पात्

उत जैपुर मग रुक्कि त्वरित तंते गंगाधर,
उद्धत बग्गन अैंचि हंकि सम्मुह दिय हैवर।

मंडलग्ग झरि मार लुत्थि पर लुत्थि बिलग्गिय,
मित्र मित्र मनु मिलिय बहुत सहि सहि बिरहग्गिय।
तरवारि तरकि बज्जत तुमुल भरकि मुंड भेजा कढत।
भीरुन अनार कन जिम उदक उतरि उतरि बीरन चढत ।।८६ ।।

हे राजा रामसिंह! उधर जब जयपुर की ओर जाने वाले मार्ग पर तांतिया गंगाधर ने नाकाबंदी कर अपने दल के वीरों से कहा कि सभी अपने घोड़े बढ़ा कर मार्ग में सामना करने के लिए मोर्चाबंदी कर लें। इसके बाद उसके दल के वीरों ने खड़गों के प्रहार कर शत्रुओं की लोथ पर लोथ जमा दी। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो दो बिछड़े हुए मित्र बहुत विरहाग्नि सह कर गले मिल रहे हों। तलवारों के भयंकर प्रहार मचे जिससे शत्रुओं की खेपड़ियां फ़ट कर भेजा बाहर झांकने लगा। इस घमासान में दाड़िम के कणों के समान कायरों का पानी उतर कर पराक्रमी वीरों को चढ़ने लगा अर्थात् उनके चेहरों पर आब आ गई।

पुनि पुनि कंपत पहुमि बाढ पुनि पुनि रन बज्जत,
पुनि पुनि छुट्टत प्रान गिरत पुनि पुनि भट गज्जत।
पुनि पुनि भिरत पटैत किरत पुनि पुनि झरि कंकट,
निज जय पुनि पुनि भनत बनत पुनि पुनि बट उब्बट।
पुनि पुनि कपाल फुट्टत पिहुल भर आलुक पुनि पुनि भयउ।
आमैर नृपति अंधक उपम गंगाधर गंजन गयउ ।।८७ ।।

इस घमासान भिड़ंत के चलते बार-बार पृथ्वी काँपने लगी और युद्ध में बार-बार तलवारें बजने लगी। जिनके प्रहारों से वीर प्राण छोड़-छोड़ कर रणभूमि में गिरने लगे और फिर से नये वीर पराक्रम के साथ गर्जना करने लगे। रणभूमि में वीर योद्धा फिर-फिर कर भिड़ने लगे और उनके कवच फट-फट कर गिरने लगे। रणभूमि में लड़ते और अपनी विजय की रट लगाते इन योद्धाओं के लिए मार्ग-अमार्ग सब एक जैसे हो गए। बहुत सारे कपालों के फूटने का सिलसिला फिर से आरम्भ हुआ और इससे शेषनाग के फणों पर बार-बार भार आया। इसी समय अंधक राक्षस रूपी आमेर के राजा ईश्वरीसिंह कछवाहा को मारने के लिए महादेव रूपी

तांतिया गंगाधर आगे बढ़ा। (ग्रंथकार ने यहाँ तांतिया गंगाधर के लिए गंगाधर (महादेव) की ओपमा सुन्दर दी है-संपादक)

सीकरपति सिवसिंह तमकि आयउ हरोल तब,
मध्य जट्ट रविमल्ल ओट चंदोल कुम्म अब।
सेखाउत सिर प्रथम धार झारिय गंगाधर,
अतुल तुमुल उल्लसिय हसिय नारद हर हरहर।
फुलिंग कुपित अंखिन फुरत जुरत मत्त दुव सिंह जिम।
असि झारि रचिय सेखाउतहु पुरुखारथ पारथ प्रतिम ॥८८॥

इसी समय अपने स्वामी की रक्षार्थ क्रोधित होकर सीकर का स्वामी शिवसिंह सेना के अग्रभाग (हरावल) में आया। ठीक इसी समय सूरजमल जाट ने बीच में आकर चन्द्रावल का भार धारण किया जिसकी ओट में ईश्वरीसिंह हुआ। इसी समय शेखावत शिवसिंह के सिर पर गंगाधर तांतिया ने अपनी तलवार का एक भरपूर प्रहार किया जिसे देखकर नारदमुनि ने अतिशय जोर से अट्टहास किया अर्थात् 'हड़-हड़' कर हँसे। जिस तरह अग्निकण के गिरने से आंखें बंद हो जाती हैं ऐसी ही स्थिति दोनों सिंहों के भिड़ने से हुई। उसी समय शिवसिंह शेखावत ने अपनी तलवार का प्रहार कर अपने आप को अर्जुन की तरह सिद्ध किया।

दोहा

लग्गी सीकर नाह कैं, तीन कठिन तरवारि।
सुभर गिरे घायल त्रिसय, मरे सट्ठि बहु मारि ॥७९।
न लखि सक्यो घन अंतरित, अक्कहु पहुंच्यो अस्त।
तब मुरि मुरि भट उत्तरे, सिविरन निजन समस्त ॥९०॥
कमलपत्र लगि संकुचन, घूकन मंडिय घोर।
सायंकृत्य बिधान सब, रचन लगे दुहुं ओर ॥९१॥
हुलकर माधव हड्डु हू करि कालोचित कर्म।
उट्ठि बहुरि लैलै असन, मिले कहन रन मर्म ॥९२॥

इस भिड़ंत में सीकर के स्वामी शिवसिंह शेखावत के तीन गहरे

घाव तलवार के लगे वहीं तीन सौ अन्य वीर घायल हो रणभूमि में गिरे। यही नहीं साठ योद्धा अपने शत्रुओं को हानि पहुँचा कर स्वर्गलोक को गए। इस भीषण घमासान को सूर्य अच्छी तरह से नहीं देख सका क्योंकि वह बादलों से घिरा था। ऐसी अवस्था में ही सूर्य जब अस्ताचल को गया तब सारे योद्धा अपनी-अपनी सवारी छोड़ कर उतरे और निर्जन शिविरों की ओर लौटे। संध्याकाल के गिर आने पर कमल पुष्प बंद होने लगे और उल्लुओं ने बोलना आरंभ किया। दोनों पक्ष के योद्धाओं ने युद्ध विराम की इस दशा में अपने-अपने संध्याकर्म सम्पन्न किये। ऐसे में मल्हारराव होल्कर, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह कछवाहा ने भी अपने कालोचित कर्म निबटाए फिर तीनों ने भोजन किया। इसके बाद उन्होंने रण के सम्बन्ध में चर्चा की।

कति मरह्ट्ठ प्रसार कों, बिचरे पुब्बहि बीर।
मग जैपुर तिन कों मिली, आवत रसति अधीर॥९३॥
ताकी संग जु हे तिनहिं, आनें गहि दल अंत।
हुलकर सन अक्ख्यो हुलसि, आपन रसति उदंत॥९४॥
जब हुलकर जे रसति जन, आनैं अननि उतारि।
श्रवन नक्क तिनके सरिस, बड्ढि रु दिन्न बिडारि॥९५॥
करन बंध मग रसति क्रम, इत मलार किय एह।
पंच सहंस दल उत पिल्यो, खरन बिथारत खेह॥९६॥

इसी बीच मराठा सेना के कुछ सिपाही तृण काष्ट (घास-लकड़ी) आदि सामग्री लेने को गए हुए थे। ये जब वापस शिविर की ओर लौट रहे थे तब इन्होंने देखा कि जयपुर जाने वाले रास्ते से कछवाहा सेना के लिए रसद से भरी गाड़ियाँ आ रही थीं। इस सामग्री के साथ जो कछवाहा सिपाही थे उन्हें मराठा दल ने पकड़ लिया और उन्होंने शिविर में आते ही होल्कर के आगे शत्रु समूह के रसद आने की पूरी बात कह दी। यह सुनते हीं होल्कर ने जयपुर से आई रसद की गाड़ियाँ चलाने वालों सहित सभी लोगों को उतार कर अपने समक्ष लाने का आदेश दिया। कछवाहा सिपाहियों के इस रसद-दल के सभी सदस्यों के आ जाने पर होल्कर ने सभी के

नाक-कान कटवा दिए और उन्हें वहाँ से निकाल दिया। इसके बाद मल्हारराव ने शत्रु की रसद पंक्ति को रोकने के लिए सारे रास्तों पर नाकाबंदी करने का आदेश दिया और इस कार्य के लिए होल्कर ने अपनी सेना से पाँच हजार सैनिकों का एक दल भेजा। यह दल अपने घोड़ों की खुरतालों से खेह उड़ाता अपनी भूमिका निभाने बढ़ा।

संभरपुर लग तिहिं सजव, ढुंढाहर लिय लुट्टि।
इम जैपुर जनपद असह, फोजन हारव फुट्टि ॥९७॥
इत बगरू निस आगमन, हुलकर पर छल हेरि।
कूरम नहिं कढि जान कों, दियउ छबीनां फेरि॥९८॥
जामिक जन जागत रहे, सेन इतर रहि सोय।
इहिं अतर अभ्रन उफनि, तूटन लग्गे तोय॥९९॥
पानी बुट्ठत उदयपर, आनि चमक्किय अक्क।
कालोदित उठि कृत्य करि, चढे बहुरि हुव चक्क ॥१००॥

इस दल ने सांभर तक शीघ्र ही जा कर ढूंढाड़ (जयपुर) प्रदेश में लूट आरंभ की। मराठा सेना के इस तरह लूटने वाले दल के आने से पूरे प्रदेश में हाहाकार मच गया। इधर बगरू में रात्रि का आगमन होते देख होल्कर ने सोचा कि कहीं अंधेरे का फायदा उठा कर छल से कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह नहीं निकल जाए इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए और उसने तत्काल एक गश्ती दल (छबीना) का गठन किया और उसे चौकसी रखने का आदेश दिया। इस तरह मात्र पहरेदारों का दल जागता रहा जबकि शेष सारी सेना आराम से सो गई। इसी बीच यकायक आकाश में घटाएँ उमड़ आई और जोरदार वर्षा होने लगी। पानी बरसता रहा जब तक कि उदयाचल पर्वत पर सूर्य नहीं आ गया अर्थात् सूर्योदय नहीं हो गया। प्रात:काल होते ही सभी जाग उठे और नित्यकर्म से निवृत हुए। तत्काल ही सेना को सज्जित होने का आदेश दिया गया।

षट्पात्

हुलकर इत हय चढिय व्यूढ कंकट करि निज बल,
उत जैपुर अधिराज चढिग गजराज चलाचल।

ए उत्तर मुख अडर वे सु दक्खिन मुख ओपत,
खुंदि धरनि खर खुरन उरन आयुध आरोपत।
झरि बाढ बाढ दव गाढ झगि छिति उल्मुक लगि उच्छलन।
गांडिव बजाय डारिय गजब जनु पांडव खांडव ज्वलन॥१०१॥

मल्हारराव होल्कर कवच पहन कर सज्जित हो घोड़े पर सवार हुआ और उसने अपनी सज्जित सेना की व्यूह रचना की। उधर जयपुर का राजा ईश्वरीसिंह भी चलते-फिरते पर्वत के समान हाथी पर सवार हुआ। ये उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर बढ़ रहे थे तो वे दक्षिणाभिमुख होकर आगे बढ़े। दोनों पक्ष अपने घोड़ों की तीखी खुरतालों से पृथ्वी को रोंदते हुए और एक दूसरे की छाती पर शस्त्र प्रहार करते एक दूजे के समीप आए। तलवारों के प्रहारों पर प्रहार आरंभ हुए और रणभूमि में दावानल प्रज्वलित हो गया। अग्नि के अंगारे आकाश की ओर उछलने लगे। ऐसा लग रहा था मानो पांडवों द्वारा खांडव वन जलाने के समय गांडीव धनुष की टंकार ने गजब ढाया हो।

दोहा

तंते कों करि मुख्य तंहं, समर भार धरि सीस।
इक्क अनी चंदोल पर, पठई हुलकर ईस॥१०२।
जैपुरपति चंदोल जँहँ, हे नारव कछवाह।
गंगाधर तिन बिच गरजि, प्रबिस्यो प्रचुर सिपाह॥१०३॥

इसी समय मल्हारराव होल्कर ने तांतिया (गंगाधर) को युद्ध का नेतृत्व देकर अपनी सेना के एक दल को शत्रु के चन्द्रावल वाले भाग पर आक्रमण करने हेतु भेजा जहाँ सामने वाली सेना के मध्य में वह नरूका वंशीय कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह था। उसी भाग में गंगाधर तांतिया गर्जना कर अपने साथी सिपाहियों के साथ जा धमका।

षट्पात्

गंगाधर धसि गयउ काटि चंदोल नरुकन,
किन्नैं टूकन टूक कुंत असि सर बंदूकन।

कतिक बचे भजि कढिय उधि कूरम दल अंतर,
मकर अग्ग जिम मीन त्रसित तिम लखत दिगंतर।
कूरंम हरोल केतन द्विरद जिहिं अग्गैं कढि गय सजव।
तंते तुरंग तते तमकि भयो अरिन बिच प्रलय भव॥१०४॥

तांतिया गंगाधर अपने बहादुर वीरों के साथ नरूका कछवाहों की सेना का चन्द्रावल चीरता हुआ शत्रु सेना के व्यूह में धंस गया। उसने इसके लिए कछवाहों की चन्दावल में तैनात सिपाहियों को काट डाला। तलवार, भालों और बन्दूकों के सहारे शत्रुओं के टुकड़े-टुकड़े कर डाले वहीं कुछ जीवित बच गए वे भी कछवाहा सेना के समुद्र से निकल भागे। जिस प्रकार मगरमच्छ (घड़ियाल) से डरती हुई मछलियाँ भागती हैं उसी तरह कछवाहा सिपाही तांतिया को सामने पा कर भागे। वह उनकी सेना के हरावल (अग्रभाग) में तैनात निशान वाले हाथियों को पार करता हुआ शीघ्र ही आगे बढ़ गया। वह तांतियां गंगाधर अपने चपल घोड़ों को बढ़ाता हुआ शत्रुपक्ष का विनाश करता बढ़ा मानो शत्रुओं के लिए वह साक्षात प्रलय बन कर आया हो।

दोहा

सेना अंतर व्यूह बिच, लुट्टे सकट सलील।
मारे तोपन कान मैं, कठिन अयोमय कील॥१०५॥
मथ्यो कटक तंते मरद, मनु गोपी दधि मट्ट।
कूरम लखि बुल्ल्यो चकित, जव हरोल सन जट्ट॥१०६॥

तांतिया गंगाधर ने लीला करते हुए से अर्थात् खेल-खेल में सहज ही शत्रु सेना के व्यूह का भेदन कर वहाँ उपस्थित रसद और आयुधों की गाड़ियों को लूट लिया। यही नहीं उसने कछवाहा सेना की तोपों के कान में (जहाँ से अग्नि लगा कर तोपें चलाई जाती हैं) बड़े-बड़े लोहनिर्मित कीले गड़वा दिये अर्थात् उन्हें नाकारा बना दिया। उस तांतिया मर्द (वीर) ने जयपुर की सेना को मथ डाला। जैसे कृष्ण की गोपियाँ अपने दही के मटके मथती हों। यह सब देखकर चकित से कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने कहा कि शीघ्र ही सहायता के लिए हरावल से उस सूरजमल जाट को बुलाओ, अन्यथा मारे जाएंगे।

षट्पात्

तबहि जट्ट रविमल्ल पलटि आयो सहाय पर,
जिम गज संकट जानि चपल पन आनि चक्रधर।
अडर भरतपुर ईस तिमहि हंक्यो रन तंडत,
मंडत आयुध मेह खूब खंडन अरि खंडत।
अति जोर हरत मरहट्ठ असु रोर करत खगराज रय।
बिहनन प्रहार लघु तूल बिधि गंगाधर सु पलाय गय ॥१०७॥

अपने बुलाये जाने पर वह सूरजमल जाट भी तुरन्त पलट कर वहाँ आया जिस तरह गज उद्धार के समय हाथी को संकट में समझ कर चक्रधर श्री हरि आये थे। वह भरतपुर का स्वामी निर्भय सूरजमल भी गर्जना करता हुआ इधर आया और उसने यहाँ पहुँचते ही शत्रुसंहार के लिए अपने शस्त्रों के प्रहारों की बरसात सी कर दी। वह पूरे जोश में मराठा वीरों के प्राण लेता हुआ अपने भय का प्रसार करता हुआ गरुड़ के वेग से युद्ध में आ डटा। रूई पींजने (धुनने) के यंत्र की तांत के प्रहार से जिस तरह रूई के फाहे उड़ते हैं उसी तरह सूरजमल के प्रहारों के समक्ष वह तांतिया गंगाधर भी उड़ गया अर्थात् पलायन कर गया।

दोहा

सह्यो भलैं ही जट्टनी, जाय अरिष्ट अरिष्ट।
जिहिं जाठर रविमल्ल हुव, आमैरन को इष्ट ॥१०८॥

उसकी माता जाटनी ने सूतिकागृह में जाकर भले ही दुःख सहा कि इससे उसके उदर से सूरजमल जाट जैसा पुत्र जन्मा जो आमेर वालों क इष्ट पुरुष बना।

षट्पात्

सूरजमल्ल सजोर मुररि मारे मरहट्ठे,
मिलत बभ्रु फन मेटि नाग आतुर गति नट्ठे।
परे कुणप पंचास अट्ठ उत्तर सत घायल,
दीनों दक्खिन ठेलि तुमुल कीनों रिस तायल।

भय टारि नरुकन थप्पि थिर पुनि कूरम चंदोल पर।
हरवल्ल अप्प आयउ हुलसि मिहिरमल्ल गहि जय गुमर॥१०९॥

उस वीर योद्धा सूरजमल ने पलट कर मराठा योद्धाओं को मारना आरंभ किया और उनकी ऐसी हालत बना दी जैसी विष्णु भगवान ने कालीय नाग को नाथने के लिए उसके फणों को कुचलते हुए बनाई थी और जिस तरह डर कर वह नाग भागा था उसी तरह मराठे योद्धा भाग छूटे। थोड़ी सी देर हुई इस भिड़ंत में वहाँ रणभूमि में पचास शव गिरे और एक सौ आठ योद्धा घायल हो कर गिरे। क्रोध में तमतमाए उस सूरजमल जाट ने भयंकर युद्ध का आगाज कर दक्षिणी दल अर्थात् मराठा दल को खदेड़ दिया। इस तरह उसने कछवाहा राजा के भय का निवारण कर फिर से उसे कछवाहा सेना के चन्द्रावल भाग में तैनात किया। इसके बाद वह सूरजमल विजय के गर्व में फूला हुआ वापस सेना के हरावल भाग में आकर लड़ने लगा।

दोहा

बहुरि जट्ट मल्लार सन, लरन लग्यो हरवल्ल।
अंगद ह्वै हुलकर अर्‌यो, मिहिरमल्ल प्रतिमल्ल॥११०॥
रदन मध्य रसना रहत, इम संकट कछवाह।
अंतर चाहत साम अब, लेत न रन जय लाह॥१११॥

अब वह वीर सूरजमल फिर से हरावल में रह कर मल्हारराव होल्कर के दल से लड़नें लगा। इधर से मल्हारराव होल्कर अंगद की तरह रणभूमि में अपने पाँव रोप कर अड़ा तो वहीं सूरजमल उसका प्रतियोद्धा बन कर सामना करने आ डटा। इस युद्ध में कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की यह हालत हो गई जैसे बत्तीस दाँतों के मध्य रहते एक जीभ की होती है। वह ऐसी संकट की घड़ी में मन ही मन संधि करने की सोचने लगा क्योंकि उसे अपनी जीत होती लग नहीं रही थी।

षट्पात्

धरनि फेट धसमसत कंपि कसमसत कुलाचल.
दिस बिस लोहित लिपत दिपत जुज्झत दोउ दल।
इहिं अंतर आसार प्रचुर पुनि रचिय पयोदन,
चहल पहल चतुरंग दहल पानिय चहुं कोदन।

बुल्ल्यो मलार तंहं दुव नृपन पर अप्पन नहिं सुधि परत।
तुम अलप सत्थ मम ढिग रहहु भटन भिन्न रक्खहु लरत ॥११२॥

इस घमासान में दोनों दलों की फेट में आ कर धरती काँपने लगी और कुलाचल पर्वत (पुराणों के अनुसार पृथ्वी के चारों ओर इस पर्वत का घेरा है) कसमसा उठा। सारी दिशाएँ रक्त रंजित हो गईं और दोनों दल आपस में भिड़ते हुए शोभा देने लगे। इसी बीच उमड़-घुमड़ कर मेघ घटाएँ आईं और मूसलाधार वर्षा होने लगी। दोनों सेनाएँ पानी से तरबतर हो गईं और चारों ओर बहते पानी का भय छा गया। ऐसी स्थिति देखकर मल्हारराव होल्कर ने अपने दोनों साथी राजाओं से कहा कि अब तो अपने-परायों में भेद करना भी मुहाल हो गया है। इसलिए तुम दोनों अपने संग छोटे दल ले कर मेरे पास बने रहो और शेष सेना को दूर-दूर ही लड़ने दे

दोहा

बुंदियपति यह सुनि बचन सत सादिय लिय संग।
हरजन इतर अनीक लै, रह्यो भिन्न रुपि रंग ॥११३॥

हय सत रक्खे माधव हु, लै इतरन जय लीन।
सिवाई हु सिवब्रह्महर, कुम्म पृथक रन कीन ॥११४॥

लंब सिवा अरु टोडरी, अधिप मिले त्रय आनि।
तिन्ह गोगाउत प्रेम लै, पृथक जुर्‌यो असि पानि ॥११५॥

मल्हारराव होल्कर के ऐसे वचन सुन कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तुरन्त ही अपने साथ सौ सवार रखे और उसकी शेष सेना को लेकर हरजन हाड़ा ने दूसरी जगह मोर्चा लिया। इसी तरह माधवसिंह कछवाह ने भी अपने साथ मात्र सौ सवार रखे। उसकी भी शेष सेना को लेकर शिव ब्रह्म के वंश वाले सवाईसिंह ने पृथक से युद्ध किया। इसी समय लांबा, सिवा और टोरड़ी के स्वामी तीनों यहाँ आ गए। इन्हें साथ लेकर गोगावत कछवाहा प्रेमसिंह ने पृथक से मोर्चा लिया।

एक हड्डु कूरम उभय, अनुक्रम बंटि अनीक।
स्वामिन हुलकर संग करि, मंड्यो पृथक समीक ॥११६॥

ज्योंहिं उदैपुर जोधपुर, कोटा के दल क्रुद्ध।
भिन्न भिन्न रहिकैं भिरे, जैपुरपति सन जुद्ध ॥११७॥

हुलकर ढिग दुव भूप रहि, तुमुल रच्यो गहि तेग।
पानी आयुध पैज करि, बुट्ठन लग्गे बेग॥११८॥

भीजी पग्घ सु दूर करि, दै आबिक पट टोप।
हुक्का पीवत हुलकरहु, कलह खरो अति कोप॥११९॥

इस तरह एक हाड़ा (उम्मेदसिंह) और दो कछवाहा सुभटों ने अपनी सेना बाँट कर छोटे-छोटे दलों के संग, स्वामी होल्कर के साथ रह कर अलग मोर्चे पर युद्ध छेड़ा। इसी तरह उदयपुर, कोटा और जोधपुर के दलों ने भी कुपित होकर अलग-अलग जगह पर जयपुर के स्वामी ईश्वरीसिंह की सेना से टक्कर ली। होल्कर के साथ हाड़ा उम्मेदसिंह और कछवाहा माधवसिंह इन दोनों राजाओं ने अपनी अपनी तलवार उठा कर भयंकर युद्ध रचा और बरसते पानी से होड़ मचाते हुए वेग सहित शस्त्रों के प्रहारों की बरखा करने लगे। इस समय अपनी गीली हुई पगड़ी की ठौर मल्हारराव होल्कर ने ऊनी वस्त्र का बना टोप पहना और हुक्का गुड़गुड़ाते हुए रण भूमि में कलह करने को कुपित हो आ खड़ा हुआ।

मत्तमृगेन्द्र

खेल सतरंज की सारि अनुकार मल्लार निज बीर अग्गैं बढावैं।
हड्डु प्रतिमल्ल हरवल्ल रचि हल्ल हमगीर बरनीर बुंदी चढावैं।
हड्डु सामंतहर नाम हरजन सु नृप सचिव लै सेन इक ओर जुज्झैं।
मेघ आसार भयकार अंधार मिलि अप्पन रु पार नहि नैक सुज्झैं॥१२०॥

सिवाईसिंह कछवाह सिवब्रह्महर माधवामात्य इक ओर जुट्टैं।
तीन कछवाह खंगारह लै रु इत गोगहर प्रेम करवाल कुट्टैं।
रान जगतेस कटकेस इत संभु अरु साहिपुर भूप उम्मेद रुप्पे।
साचिवि गुलाब अरु देवगढ कंत जसवंत पुनि बेघम प मेघ कुप्पे॥१२१॥

शतरंज के खेल की बिसात के सदृश मल्हारराव ने अपने वीर योद्धा आगे बढ़ाये। इनमें हाड़ा उम्मेदसिंह उद्धत मल्ल होकर हरावल में आ डटा और पूरी हिम्मत के साथ शत्रुपक्ष पर धावा बोल कर बूंदी को यश रूपी शुद्ध नीर चढ़ाने लगा। वहीं सामंतसिंह हाड़ा का वंशज हरजन हाड़ा जो राजा उम्मेदसिंह का सचिव था वह अपने दल के साथ नया मोर्चा खोल कर लड़ने

लगा। इस समय रणभूमि में बरसती मेघ धारा और भयंकर अंधेरे ने आपस में मिल कर ऐसा माहोल बनाया कि आगे अपना-पराया कुछ भी नजर नहीं आता था। कछवाहा माधवसिंह का मंत्री और शिवब्रह्म का वंशज सवाईसिंह कछवाहा भी अपने दल सहित एक ओर से लड़ने लगा। तीन खंगारोत कछवाहे योद्धाओं को अपने संग लेकर गोगावत प्रेमसिंह भी अपनी तलवारों के प्रहारों से शत्रु संहार करने में संलग्न हुआ। इसी तरह महाराणा जगतसिंह की सेना का सेनापति शम्भुसिंह और शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह सिसोदिया दोनों एक नये मोर्चे पर आ डटे। महाराणा के सचिव का पुत्र गुलाबसिंह और देवगढ़ के स्वामी जसवंतसिंह, बेगूं के रावत मेघसिंह के साथ कुपित हो शत्रु सेना पर टूट पड़े।

जोधपुर सेनपति सेर अरु सेर मनरूप कल्यान समसेर झारैं।
यों अखैराम कोटेस कटकेस रन मेस मन सेस फन पेसि डारैं।
कुंत असि हत्थ मिलि बत्थ कति सत्थ गतिपत्थ तति मत्थ सिव अत्थ अप्पैं।
भीम अनुकारि गज पारि धक धारि कति मारि तरवारि थिर रारि थप्पै॥
नीर अरु छीर निभ धीर कति बीर हमगीर मिलि तीर करि भीर टारैं।
काल बिकराल कति ज्वाल दृग लाल अरि साल भरि फाल गजढाल ढारैं।
भीरु भय देत गिलि गोद पल लेत अति हेत करि खेत बिच प्रेतनच्चैं।
त्रास तजि आस जिय स्वास हिय लासकरि खास रनरास नरनास मच्चैं॥

जोधपुर के दल में उसका सेनापति शेरसिंह, दूसरा शेरसिंह, मनरूपसिंह और कल्याणसिंह सभी तलवार चलाने में पारंगत अपने हाथ दिखाने लगे। इसी प्रकार कोटा की सेना का सेनापति अखैराम रणभूमि में मैंढे के समान होकर मन ही मन शेषनाग के फणों को पीसने लगा अर्थात् वह भी अपने दल सहित घमासान में संलग्न हुआ। भाले और तलवार हाथों में उठाये कई वीर अपने साथियों के साथ मिल कर अर्जुन की तरह लड़ते हुए अपने शत्रुओं के मस्तक काट कर महादेव को मुंडमाल के लिए अर्पित करने लगे। वहीं अन्य कई वीर भीमसेन की तरह हाथियों को गिराते हुए कुपित हो तलवारों के प्रहार पर प्रहार मचाते युद्ध में अपनी स्थिर कीर्ति स्थापित करने में लगे। कई वीर हमगीर बन कर पानी और दूध के सदृश मिलते हैं

और बाणों के प्रहारों से भीड़ को हटाते हैं। कई वीर भयंकर काल और अग्नि के समान अपने नेत्रों को आरक्त कर शत्रुओं के काल बनने लगे, वहीं कुछ वीर छलांग लगा कर शत्रुपक्ष के हाथियों पर लगी ध्वजाओं को गिराने लगे। कायरों को भयभीत करते हुए कुछ वीर अत्यन्त स्नेह से रणभूमि में उपस्थित प्रेतों को मज्जा और मांस देने लगे। जिन्हें पा कर प्रसन्नता के मारे प्रेत रणभूमि में नाचने लगे। नाश के भय को छोड़कर जीवन की आशा में उसके जीव के हृदय के भीतर श्वास नृत्य करता है पर युद्ध के इस खास नृत्य में तो मनुष्यों का नाश होने लगा।

रोर चहुं ओर अति घोर बरजोर रचि सोर तचि दोर भटमोर सज्जैं।
रोह घलि द्रोह झलि कोह कलि छोह छलि जोह संदोह बहु लोह बज्जैं।

इद्ध कहुंगिद्धबलि सिद्ध लगि लिद्ध बिनु संक पलपंक बिचकंक कुद्दैं।
सैन दुव लैन जय लैन मुरैं न रन अैन कति बैन थकि नैन मुद्दैं ॥१२४॥

एह बिच लेह करि सेह भुव नेह पुनि मेह बिच मेह बिनु छेह बुट्ठ्यो।
बंधि घन पाज गुरु काज खय काज ब्रजराज पर जानि सुरराज रुट्ठ्यो।

लेहु श्रुति धारि नृपराम दुरितारि अति बारि करि रारि तरवारिरुक्की।
प्रोष्टपद मास इम बारिद बिलास पललास नवग्रास मथआस मुक्की ॥१२५॥

बलपूर्वक चारों ओर भयंकर भय रच कर बारूद की तरह भभकते हुये ये वीरों के मुकुट होड़ करने को सज्जित होने लगे। शत्रु पक्ष के घेरा डाल कर उनके द्रोह को झेलते हुए युद्ध में कोलाहल का प्रसार करवाते और क्रोध में उफनते हुए वीरों के समूह जोश में अपने शस्त्र बजाने लगे। सामने तैयार मिली बलि को खाने को कई गिद्ध उतावले हुए। वहीं मांस और रुधिर से मचे कीचड़ में निडर हो कंक पक्षी कूदने लगे। दोनों पक्षों की सेनाएँ विजय अर्जित करने के लोभ में युद्ध से विमुख नहीं हो रही वहीं कुछ वीर युद्ध में विजय दिलाने का वचन हारे हुए, थके और घायल अपनी आँखें बंद करने लगे। इसी बीच रणभूमि में पृथ्वी को नेहपूर्वक शय्या बना कर शस्त्रों की झड़ी का ऐसा अछेह मेह बरसा मानो मेघ की पाज (पंक्ति) बांध कर भयंकर गर्जना से नाश करने को इन्द्र ने ब्रजराज पर कोप किया हो। हे पाप के शत्रु राजा रामसिंह! आप सुनें कि तभी अत्यन्त पानी बरसने

से तलवारों के प्रहार बरसने बन्द हो गए अर्थात् लड़ाई थम गई। इस तरह भाद्रपद माह के मेघों के विलास से रणभूमि में मांसाहारी जीवों ने नये ग्रास मिलने की आशा छोड़ी अर्थात् युद्ध बंद हो जाने के सबब अब नये शव उपलब्ध नहीं होंगे।

दोहा

झर मैं यों तंहं प्रचुर झर, परयो अचानक आय।
सूरन सय अरु हयन पय, भये चलत जड़ भाय॥१२६॥
रोकि रटक तब दुव कटक, पत्ते सिविरन निठ्ठि।
श्रमित भटन छोरि सजव, असि मुट्ठि रु हय पिट्ठि॥१२७॥
छुट्ठी दिवस बिताइ इम, बहुरि बिताई रत्ति।
दक्खिन दल सप्तमि दिवस, सजन लगे पुनि सत्ति॥१२८॥
एह सुनत आमैरपति, व्याकुल किन्न बिचार।
मरहट्ठन रोकी रसति, मंड्यो प्रसभ मलार॥१२९॥
जनक लई संधा करि जु, देय सु बुंदी नांहिं।
गंगाधर कों सुल्क दै, मोरहु अप्पन मांहिं॥१३०॥

दोनों पक्षों में मचे घमासान में शस्त्र प्रहारों की झड़ी लगी हुई थी कि अचानक मेघों ने अपनी झड़ी लगा दी जिससे शूरवीरों के हाथ और घोड़ों के पाँव चलते-चलते जड़वत हो गए अर्थात् रुक गए। दोनों दलों ने भिड़ंत को विराम दिया और वर्षा के मारे बमुश्किल तमाम अपने-अपने शिविरों में पनाह ली। युद्ध से थके वीरों ने तुरन्त घोड़ों की पीठ और तलवार की मूठें छोड़ी। उन्होंने आराम करते हुए छठी की तिथि व्यतीत की और इसी तरह अगली रात बिताई। दक्षिण वाला अर्थात् मराठों के दल ने सप्तमी तिथि के दिन फिर से अपने घोड़ों को सज्जित करना आरंभ किया। शत्रु पक्ष के अपने घोड़े सज्जित करने के समाचार जब जयपुर के कछवाहा राजा के पास पहुँचे तो उसने व्याकुल हो इस पर विचार किया कि मराठों ने हमारी रसद पंक्ति को रोक कर बाधित कर डाला और वह मल्हारराव होल्कर अपने हठ पर अडिग है। ऐसे में क्या किया जाना चाहिए ? बूंदी जिसे मेरे पिता राजा जयसिंह ने अपने अधिकार में ली उसे सुलह कर

वापस कैसे दे दूँ ? तब राजा ने एक उपाय सोचा कि इससे तो बेहतर है तांतिया गंगाधर को रिश्वत (चुपके से धन आदि) देकर अपने पक्ष में कर लेना चाहिए।

कूरमपति यह मंत्र करि, खत्री केसवदास।
दम्म बहुत तस संग दै, पठयो तंते पास॥१३१॥
राजामलसुत जाय तंहं, गंगाधर लिय फोरि।
दई सोंक छन्नैं दुलभ, माया करि मन मोरि॥१३२॥
अरु अक्खी तुमरे लगे, फोज खरच जे दम्म।
दैहैं नृप तिनतैं द्वि गुन, करहु साम हित कम्म॥१३३॥
बुंदी की बत्त न बदहु, भरि धन सकट सुभाय।
कुंच करावहु कटक के, हुलकर पति समुझाय॥१३४॥
गंगाधर यह सुनि गयो, खर जर जूती खाय।
कह्यो मलारहिं कुम्म पति, बहु धन देत सिटाय॥१३५॥

कछवाहा राजा ने ऐसी मंत्रणा अपने सहायकों के साथ कर अपने सचिव केशवदास खत्री को बुलाया और उसे बहुत सारा धन दे कर तांतिया गंगाधर के पास भेजा। राजामल खत्री के इस लायक पुत्र केशवदास ने जाकर गंगाधर को फोड़ लिया अर्थात् चुपके से बहुत सारा धन देकर अपने पक्ष में कर लिया। माया का लोभ दे कर उसका मन मोड़ लिया। केशवदास ने गंगाधर से कहा कि तुम्हारे फौजकशी में जितना खर्च हुआ उतनी फौजखर्च की राशि तुम्हें मिल जाएगी और वह भी तुम्हें हाड़ा राजा उम्मेमदसिंह और कछवाहा माधवसिंह ने जितना देना तय किया है उससे दुगुनी राशि मिलेगी पर इसके लिए तुम्हें सुलह करवाने में मदद देनी होगी। तुम बूंदी देने लेने की बात तो मत करना। बस, गाड़ियां भर कर हम जो धन देंगे उसे देकर मल्हारराव होल्कर को राजी इस बात के लिए करना कि मराठा सेना वापस कूच कर जाए। केशवदास की शर्तें सुन कर वह मूर्ख (गधा) अपने सिर पर धन की जूती खा कर मल्हारराव के पास गया। वहाँ जा कर गंगाधर ने होल्कर से कहा कि जयपुर का कछवाहा राजा अब पछताता हुआ (लज्जित हो) हमें बहुत सारा धन दे रहा है।

अब न सुनहु उम्मेद की, लेहु अतुल बसु लाह।
जग कहिहैं हुलकर जबर, दंड्यो जैपुर नाह॥१३६॥

हुलकर की यह सुनत हुव, बिगरि बुद्धि बिपरीत।
धरन लग्यो गनिका धरम, जानी अप्पन जीत॥१३७॥

सो सुनि द्वैसत सुभट पति, बालकृष्ण द्विज बीर।
हुलकर सयन निकाय को, जामिक जंपैं धीर॥१३८॥

पुण्या के दल बिच प्रकट, करि करि गुमर मलार।
किम कहि आये नन्ह तैं, लोभी कितव मलार॥१३९॥

कैसी संधा करि चलिय, कैसो मंत्र बिधाय।
संधा कों तुमकों सतत, है धिक हुलकर राय॥१४०॥

इसलिए हे स्वामी! अब आप उस हाड़ा उम्मेदसिंह की बातों में न आएं और खूब सारा धन प्राप्त करने का आनन्द लें ! धन लेकर वापस जाने में संसार भी यही कहेगा कि देखो ! उस महाबली होल्कर ने जयपुर के स्वामी को दंडित किया है। हमारा तो रुतबा ही बढ़ेगा। गंगाधर के इस प्रस्ताव को सुन कर होल्कर की बुद्धि विपरीत हो गई अर्थात् उसके मन में भी लोभ ने जगह बनाई। वह अपनी विजय इस बात में समझने लगा कि उसने वैश्या का धर्म अपना लिया है अर्थात् उसने पैसा लेकर ईमान बेचने की सोच ली। इसी समय मल्हारराव होल्कर के शयन घर के प्रहरी (रक्षक) पंडित बालकृष्ण ने जो दो सौ सैनिकों का नायक था धीर-गम्भीर सुर में कहा कि आपने वहाँ नन्ह जी पेशवा से क्या कहा था? आज लोभवश होकर मल्हारराव! आप उनसे छल करने जा रहे हैं और स्वयं कपटी बन रहे हैं। आप क्या प्रतिज्ञा कर घर से चले थे और अब यहाँ कैसी सुलह की बात करते हो। इसलिए हे स्वामी होल्कर! आपको और आपकी प्रतिज्ञा को बार-बार धिक्कार है।

क्यों घन लक्खन करज किय, रचि दल बीस हजार।
क्यों माधव उम्मेद कों, बुझे बिनुहि बिचार॥१४१॥

चलि दक्खिन प्रभु नन्ह सों, नीचै करिहों नैन।
तंते बंभन सठ तुमहिं, लोभ देत कछु लैन॥१४२॥

कातरपन ताको कह्यो, धारहु नन धरि धीर।
वह पूरबिया यह कहत, बलहि सिराह्यो बीर॥१४३॥
मन गो पलटि मलार को, लग्गत बचन प्रतोद।
तंते कों बुल्लि रु त्वरित, बुल्ल्यो लरन बिनोद॥१४४॥
सुनि गंगाधर वह कितव, तजिहैं बुंदिय देस।
च्यारि अनुज हित परगनैं, दैहैं कुम्म नरेस॥१४५॥

यदि यही सब कुछ करना था तो आपने लाखों रूपये खर्च कर यह बीस हजार की संख्या वाली विशाल सेना क्यों खड़ी की? क्या आपने बिना ही सोचे-विचारे हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह कछवाहा को यहाँ लड़ने बुलवाया है? जब आप अपने देश में वापस लौटोगे तो अपने स्वामी नन्हे जी के सामने आप लज्जा से अपने नयन नीचे करोगे। यह दुष्ट ब्राह्मण तांतिया गंगाधर यों ही आपको लोभ नहीं दिखा रहा है उसे आपसे कुछ लेना है इसे समझें। आपको धैर्य से काम लेना चाहिए उस तांतिया के कहने पर मन में कायरपन मत लाइये। वह पूरबिया जैसी बात कह रहा है कि क्या सेना इससे आपकी प्रशंसा करेगी ? अर्थात् कदापि नहीं। बालकृष्ण के ऐसे वचनों के चाबुक झेलते ही होल्कर का मन पलट गया। उसने तत्काल तांतिया गंगाधर को बुलवाया और कहा कि नहीं, हम युद्ध करेंगे। ओ छली गंगाधर! सुनो, सर्वप्रथम वह कछवाहा राजा बूंदी को अपने अधिकार से छोड़ेगा और अपने भाई माधवसिंह कछवाहा को चार परगने भी देगा। उसे देने पड़ेंगे।

बुंदीसहिं बुलवाय पुनि, ताके डेरन जाय।
इक्क तखत दुव बैठिहैं, सम सतकार बिधाय॥१४६॥
टीका उचित निवेदिहैं, कहि कहि नृप उपटंक।
तो अप्पन दल कुंचहैं, नहि तो जंग निसंक॥१४७॥
सच्ची अंखि निहारि तब, तंते त्रसित बिसेस।
अक्खी केसवदास सों, करहु मलार निदेस॥१४८
सुनि खत्री निज स्वामि कों, जबहि सुनाई जाय।
हित माधव उम्मेद को, करनों ही अब न्याय॥१४९॥

कोपत हुलकर बिनु करैं, अंखिन धकत अलाव।
रसति बंध पहिलैं करी, अब प्रानन पर दाव॥१५०॥

यही नहीं कछवाहा राजा को बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के शिविर में जाकर उसे बुलाना होगा फिर एक ही तख्त पर बैठ कर उससे बराबरी का व्यवहार करना पड़ेगा और जैसा विधान में है उसके अनुरूप उसका सत्कार भी करना पड़ेगा। कछवाहा राजा को हाड़ा उम्मेदसिंह को राजा के उपटंक से बुलाना होगा। यदि उस कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह को हमारी ये शर्तें स्वीकार होगी तभी हमारी सेना वापस कूच करेगी नहीं तो जंग अवश्य होगी। जब गंगाधर तांतिया ने मल्हारराव होल्कर की आंखों में देखा तो उसे आभास हुआ कि होल्कर जो कह रहा है सच कह रहा है तब वह मन ही मन भयभीत हुआ। उसने तुरन्त जाकर जयपुर के मंत्री खत्री केशवदास से कहा कि युद्ध रुकवाना चाहते हो तो तुम्हें यह सब कुछ करना पड़ेगा जैसा होल्कर ने कहा हैं। गंगाधर से यह सुनते ही केशवदास ने अपने स्वामी कछवाहा राजा से सारा वृत्तान्त जा कहा और कहा कि हे स्वामी! अब तो हमें बाध्य होकर ही सही हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और माधवसिंह कछवाहा के साथ न्याय करना ही पड़ेगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो होल्कर क्रोध करेगा। आपको पता नहीं उसकी आंखों में क्रोध का अलाव सा जलता मैं देखकर आया हूँ। पहले उसने हमारी सेना की रसद सामग्री को आने से रोका है अब उसके दाँव पर हमारे प्राण होंगे अर्थात् अब वह हमारे प्राण लेकर रहेगा।

ईश्वरिसिंह सिटाय सुनि, भयो अमाससि भाय।
गंधनकुल को ग्रास करि, उरग जानि अकुलाय॥१५१॥

सबहि बत्त स्वीकृत करिय, जैपुरपति भय जानि।
संधि बिधाय मलार सन, मिलन बिचार प्रमानि॥१५२।

अक्खी केसवदास सों, सब उनकी स्वीकार।
अब कछु अक्खी अप्पनी, मानहु बत्त मलार॥१५३॥

हुलकर अरु हम लोभ की, बत्त समक्ष करैंन।
जो कहनी सु वकील जन, बदैं परोक्षहि बैन॥१५४॥

अपने मंत्री केशवदास खत्री से यह सुनकर जयपुर का राजा ईश्वरीसिंह एकदम लज्जित हो लचकाना पड़ गया उसकी हालत एकदम अमावस्या के चन्द्रमा जैसी हो गई। जैसे सर्प किसी छछुंदर को ग्रसने के लिए मुँह में पकड़ता है पर न उससे निगलते बनता है न छोड़ते कुछ ऐसी ही स्थिति कछवाहा राजा की हो गई। तब जयपुर के राजा ने डर कर होल्कर की रखी सारी शर्तें स्वीकृत कर लीं और मन ही मन मल्हारराव से संधि करने का निर्णय लिया। कछवाहा राजा ने तब अपने मंत्री केशवदास खत्री से कहा कि उसकी सभी बातें मुझे मंजूर है पर क्या एक-दो बातें हमारी भी होल्कर मानेगा ? सबसे पहली तो यह कि मैं और होल्कर दोनों अपने अपने लोभ की बातें रूबरू नहीं करेंगे। जो कुछ तय करना है वह दोनों पक्षों के वकील अलग से बैठ कर तय कर लेंगे।

षट्पात्

अपनें डेरन प्रथम हड्डु हुलकर दुव आवैं,
पलटि पग्घ मल्लार हमहिं बड मित्र बनावैं।
कुंच करनके काल बंब पहिलैं तिन्ह बज्जैं,
पिच्छैं हमहि चढाय चढहु इम वेहु न लज्जैं।
सुनि केसवदास मलार सन कहिय आनि कूरम कथित।
हुलकर समस्त स्वीकार करि चाह्यो मिलन प्रसन्न चित ॥१५५॥

हमारी इच्छा है कि पहले होल्कर और हाड़ा उम्मेदसिंह दोनों चलकर हमारे शिविर तक आएं तब हम अपनी पगड़ी मल्हारराव से बदल कर उसे अपना मित्र बनाएंगे। सेनाओं के कूच करने की प्रक्रिया में पहले नगारा उनका बजेगा। इसके बाद हम अपनी सेना के साथ यहाँ से रवाना होंगे। इस बात से वह लज्जित न हो। ये सारी बातें कछवाहा राजा की कही केशवदास खत्री ने तब आकर होल्कर के समक्ष रखी। मल्हारराव ने सभी बातें सुन कर स्वीकार कर ली और कहा कि हम राजी-खुशी तुम्हारे राजा से मिलेंगे।

सप्तमि अष्टमि नवमि दसमि एकादसि बित्ती,
द्वादसि के दिन मिलन थप्प्यो हुलकर करि कित्ती।

दल सन तंबू दूर तबहि इक कुम्म तनायो,
मंत्र केणिका पृथक मंडि अप्पहु तंहं आयो।
दै पिट्ठि इक तकिया दरित पृथुल दिलीचा रुचिर पर।
परिखद बनाय जयसिंह सुव बठो लै ढिग सुभट बर॥१५६॥

इस तरह सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दसमी और एकादशी की तिथियाँ व्यतीत हो गई। पांच दिन बाद द्वादशी तिथि के दिन मल्हारराव ने मिलने का दिन तय किया। उधर जयपुर के कछवाहा राजा ने अपने सैन्य-शिविर से थोड़ी दूरी पर एक नया तंबू लगवाया और इस तरह मंत्रणा करने का डेरा अलग से बना कर आप वहाँ आया। इस मंत्रणा कक्ष में बड़े सुन्दर दलीचे पर गद्दी लगवा कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह एक तकिया अपनी पीठ पीछे दबा कर वहाँ आसीन हुआ। इसके बाद अपनी राजसभा वहाँ जोड़ कर वह राजा जयसिंह का पुत्र अपने साथ सामन्तों को लेकर मिलने को तत्पर हुआ।

दोहा

इत हड्डु रु हुलकर उभय, सुपहु भीरि सन्नाह।
भिंटन जैपुर भूप कों, बिदित चले चढि बाह॥१५७॥
लये उदैपुर जोधपुर, कोटा के भट संग।
उभय हत्थ मैं हत्थ दैं, जीति पधारे जंग॥१५८॥

इधर मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दोनों कवचादि पहन कर तैयार हुए। इसके बाद वे दोनों अपने वाहनों पर आरूढ हो जयपुर के राजा से मिलने जाने को रवाना हुए। दोनों ने अपने साथ उदयपुर, जोधपुर और कोटा के सामन्तों को लिया और हाथ में हाथ देकर वे विजयी योद्धाओं की तरह उस ओर चले जहाँ कछवाहा राजा का मंत्रणा कक्ष था।

सचरणगद्यम्

तंते गंगाधर सेटू खड़राड़ संतू बाउला तीनों ही हुलकर के उमराव हरोल भये।

अरु बिजय के मदमत चोतरफ आतंक डारत तमासगीर लोकन कों हटात गये।

प्रथम तो उदैपुर जोधपुर कोटा की सेना के सिरदार दोय दोय मल्लार नैं मिलबे कों अनुक्रम तैं पठाये।

तब साहिपुराधीस रानाउत उम्मेदसिंह देवगढनाथ चुंडाउत राउत जसवंतसिंह बेघमपति चुंडाउत राउत मेघसिंह सनवाड़ पति सेनानी भारतसिंह को कनिष्ट सोदर रानाउत संभूसिंह प्रधान भवानीदास को पुत्र गुलाबसिंह त्योंही रय्यां पति दूदाउत्त मेरतिया रट्ठोर सेरसिंह उद्दाउत रट्ठोर सेरसिंह कल्याणसिंह भंडारी मनरूप तथा बखसी कायस्थ अखैराम इत्यादिक ईश्वरीसिंह तैं सत्कारसहित मिलि आये॥१५९॥

इस समय तांतिया गंगाधर, सेटू खैराड़ और संतू बावला तीनों होल्कर के मराठा सामन्त मल्हारराव के आगे आगे चले। जो अपनी फतह के आतंक का सभी और प्रसार करते आगे बढे । वे आगे-आगे तमासबीन लोगों को परे हटाते चले। इसके बाद सबसे पहले उदयपुर फिर जोधपुर और कोटा की सेना के दो-दो सरदारों को होल्कर ने क्रम से आगे मिलने हेतु भेजा। तब शाहपुरा का स्वामी राणावत उम्मेदसिंह, देवगढ़ का रावत चूंडावत जसवंतसिंह, बेगू का स्वामी चूंडावत मेघसिंह, सनवाड के स्वामी भारतसिंह का सगा छोटा भाई राणवत शंभसिंह जो मेवाड़ के दल का सेनापति था। ये सभी कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह से सत्कारपूर्वक मिल कर आए। इसी तरह प्रधान भवानीदास का पुत्र गुलाबसिंह, रियां का स्वामी दूदावत मेड़तिया राठौड़ शेरसिंह, उदावत राठौड़ शेरसिंह, कल्याण सिंह मनरूप भंडारी और बक्षी कायस्थ अखेराम जोधपुर वाले दल के सदस्य भी कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह से सम्मान सहित भेंट कर आए ।

दोहा

**तदनंतर नृप हड्डु अरु, हुलकर करि हथजोरि।
प्रबिसे प्रतिसीरा बलज, तरल तुरंगन छोरि॥१६०॥**

**जुरत दिट्ठि जै नृपतिहू, हुलसि उठ्यो करि हेत।
सम्मुह पायंदाज तक, आयो बिनय उपेत॥१६१॥**

**मत्थैं हत्थ लगाय मिलि, मोद परस्पर मानि।
इक्क दिलीचा ऊपरहि, इम बैठे त्रय आनि॥१६२॥**

ईश्वरिसिंह प्रतीचि मुख, प्राची मुख ए दोय।
कछुक काल संलाप करि, उठे द्रोह सब धोय॥१६३॥
मंत्र केणिका मांहि पुनि, प्रविसे त्रय द्वय पास।
हुलकर कूरम हड्ड अरु, तंते केसवदास॥१६४॥

इन सरदारों के मिल आने के बाद हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और होल्कर मल्हारराव दोनों ने अपने चपल गति वाले घोड़ों से उतर कर कनात के बने परकोटे में प्रवेश लिया। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की ज्योंही इन दोनों आगन्तुकों पर नजर पड़ी कि वह स्नेह का प्रदर्शन करते हुए खुश हो कर बिछे हुए पायदान तक विनम्र भाव से अगवानी करने आगे आया। सिर तक हाथ ले जाकर आपस में सलाम करते हुए वे तीनों मोदपूर्वक अन्ततः उस दलीचे पर आ कर बैठे। राजा ईश्वरीसिंह अपना मुँह पश्चिम दिशा की ओर करके बैठा वहीं वे दोनों होल्कर और हाड़ा राजा पूर्वाभिमुख हो सामने बैठे। थोड़ी देर तक परस्पर संवाद हुआ और वे सारी शत्रुता समाप्त कर अपनी जगह से उठ खड़े हुए फिर वे तीनों जन अपने दो पासवानों के साथ मंत्रणा कक्ष में दाखिल हुए। इस समय मंत्रणा कक्ष में जाने वाले मल्हारराव होल्कर, कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह, तांतिया गंगाधर और खत्री केशवदास ये पांचों थे।

बुंदीपति प्रति उच्चरिय, जैपुर भूपति जत्थ।
दूर रहो कछु काल तो, मंत्र रचैं हम अत्थ॥१६५॥
तब नृप बुल्ल्यो करत तुम, मरहट्ठी संलाप।
मैं अबोध अनधीत मैं, निथरक मंत्रहु आप॥१६६॥
अक्खि यहैं रु तत्थहि रह्यो, संभरराज स्वतंत्र।
केसव कुम्म मलार किय, मरहट्ठी बिच मंत्र॥१६७॥
तदनु पग्घ निज कुंकुमी, लैकैं हुलकर ईस।
हीरन के सिरपेच जुत, धरी कुम्म नृप सीस॥१६८॥
हुलकर सिर अपनी धरी, त्योंही कूरम राय।
घरिय रक्खि दोउन दई, डब्बन मांहिं धराय॥१६९॥

यहाँ पहुँचने पर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने बूंदी के राजा को कहा

कि यदि आप थोड़ी देर हमसे अलग चले जाएँ तो हम यहाँ मिल बैठकर मंत्रणा कर लें। यह सुनकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने जवाब दिया कि मैं तो कूटनीति की भाषा (दूसरे अर्थ में मराठी भाषा) से अबोध हूँ। मैं कुछ समझता नहीं, इसलिए आप चाहें तो मेरी उपस्थिति में भी निधड़क मंत्रणा कर सकते हैं। ऐसा कर कह वह चहुवान राजा उम्मेदसिंह वहीं बना रहा। तब कछवाहा राजा होल्कर और केशवदास ने मराठी भाषा में आपस में मंत्रणा की। इसके तत्काल बाद मल्हारराव से केसरिया पगड़ी लेकर जिस पर हीरे जड़ा सिरपेच लगा था कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने अपने सिर पर पहनी। फिर इसी तरह मल्हारराव के सिर पर कछवाहा राजा ने अपनी पगड़ी रखी। घड़ी भर तक दोनों ने इन पगड़ियों को पहने रखा फिर दोनों ने उन्हें डिब्बों में सुरक्षित रखवा दिया।

इतर कुसुभीं कुम्म धरि, बिसद पग्घ मह्लार।
मंतर निलय बिच मित्र हुव, इम दुव मुदित अपार ॥१७०॥

च्यारि परग्गन माधवहिं, बुंदी नृपहिं दिवाय।
हुलकर कूरम हत्थ को, लिन्नों पत्र लिखाय ॥१७१॥

बहुरि चले उठि सिक्ख करि, हुलकर अरु चहुवान
कूरम पायंदाज तक, चल्यो तबहु पहुंचान ॥१७२॥

इम प्रविसे दोऊ अडर, निज निज डेरन आय।
कहि पठई दूजे दिवस, कुम्महिं हुलकर राय ॥१७३॥

अब बुंदीपति के अरथ, भेजहु टीका भूप।
सुनि यह लिय जयसिंह सुव, पुनि अभिमान अनूप ॥१७४॥

इसके बाद कछवाहा ईश्वरीसिंह ने कसूमल रंग की दूसरी पगड़ी पहनी और सफेद रंग की मल्हारराव ने पहनी। इस तरह मंत्रणा-कक्ष में दोनों आपस में मित्र बनकर प्रसन्न हुए। होल्कर ने तब चार परगने माधवसिंह कछवाहा को और बूंदी हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को दिलवाई और इस आशय का एक लिखित करार कछवाहा राजा से लिखवा कर लिया। तत्पश्चात मल्हारराव होल्कर और हाड़ा उम्मेदसिंह दोनों विदा की आज्ञा ले कर वहाँ से रवाना हुए, पूर्व की तरह अब भी कछवाहा राजा उन्हें पहुँचाने

के लिए पायदान तक चल कर आया। यहाँ से चल कर दोनों निडर योद्धा अपने-अपने शिविर में आए। दूसरे दिन कछवाहा राजा से होल्कर ने कहलवाया कि हे राजा! अब आप बूंदी के राजा उम्मेदसिंह के लिए टीका भेजिये पर यह सुनते ही राजा जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह ने फिर से अनुपम अभिमान का आवरण पहन लिया।

पादाकुलकम्

कूरम पच्छी एह कहाई, भिंटन तुम आये यंहं भाई।
तबतो वे आये तुम पिच्छैं, अब उमेद आवन हम इच्छैं॥१७५॥

सुनि हड्डु रु हुलकर हठ साह्यो, बेर इक्क आवन निरबाह्यो।
तुमहिं उचित आवन अब तातैं, दिवस भयो इक राह दिखातैं॥१७६॥

यह साहस दुहुं ओर बढ्यो अति, पृथक तनाय थूल बुन्दीपति।
रह्यो तहाँ कूरम मग हेरत, टरत जात दिन टेरत टेरत॥१७७॥

बीच भयो तंते बिस टाली, घरबिधि बत्त कुम्म श्रुति घाली।
कुम्म कही सुनिये गंगाधर, अब जो तुम आनहु यंहं संभर॥१७८॥

तब भवदीय हितूपन जानैं, मल्लारहु उचितहि जो मानैं।
गंगाधर दुहुं ओर खिसानों, इत उतके संकुच अकुलानों॥१७९॥

कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने प्रत्युत्तर में कहलाया कि हे होल्कर भाई! मुझसे मिलने तो तुम आये थे वह हाड़ा उम्मेदसिंह तो तुम्हारे साथ यों ही चला आया। वह उम्मेदसिंह हाड़ा अब हमने मिलने आए, हम यह चाहते हैं। यह सुनकर होल्कर और उम्मेदसिंह ने हठ कर लिया कि एक बार जाने की भूमिका का निर्वहन हमने कर लिया अब तो कछवाहा राजा तुम्हें यहां आना चाहिए था। हमें तुम्हारी राह देखते पूरा दिन व्यतीत हो गया। इस तरह दोनों ओर हठ का अवरोध बढ़ गया। बूंदी के राजा ने भी इस बीच पृथक डेरा तनवा लिया और वह वहाँ रह कर कछवाहा राजा की बाट जोहता रहा। बुलाते-बुलाते कई दिन व्यतीत हो गये। इस बीच तांतिया गंगाधर दोनों पक्षों का वैषम्य मिटाने हेतु मध्यस्थ बन कर गया और उसने कछवाहा राजा के कान में उसके हित की बात कही। इस पर कछवाहा राजा ने गंगाधार से कहा कि सुनो! अब यदि तुम बूंदी के राजा को यहाँ ले

आओ तो हम तुम्हें सच्चा हितेषी समझेंगे। पर इसके लिए तुम्हें होल्कर को मनाना पड़ेगा। तांतिया गंगाधर की इससे स्थिति बिगड़ गई। दोनों पक्ष उससे नाराज हो जाएं ऐसी हालत हो गई। वह मन ही मन बहुत व्याकुल हुआ।

अंबुज मनहुं तरनि अद्धोंदय, अरध कपाट खुल्यो जिम आलय।
सोवत कछु कछु जगत स्वप्न सम, बानिक बयससंधि बनितोपम ॥१८० ॥

तंते रह्यो पंच दिन अैसैं, कहैं तोरि हित इत उत कैसें।
गंगाधर कर जोरि छठे दिन, अक्खी नृपहिं सुनहु संभर इन ॥१८१ ॥

सेवक अरज मन्नि हित सत्थैं, इक आसान करहु मम मत्थैं।
जैपुरपति केवल हठ जानैं, प्रीति रीति नहिं जड़ पहिचानैं ॥१८२ ॥

बहुरि तुम्हैं निज सिविर बुलावत, उत्तर ताकों मोहि न आवत।
अक्खी नृपति जाय हम आये, लुप्पि ताहि क्यों पुनि हठ लाये ॥१८३ ॥

उचित नांहि पुनि पुनि जावन अब, बरजत हुलकर आदि सुमति सब।
यह सुनि बिप्र नयन जल आयो, घूत ठग्यो सो दीन दिखायो ॥१८४ ॥

उसकी स्थिति ऐसी हो गई जैसी आधे सूर्य के उदय होने पर कमल की होती है, अथवा एक ऐसा घर जिसका आधा किवाड़ बंद हो और आधा खुला हो। बाल्यकाल व्यतीत हो जाने और यौवन के आने की संधि में स्त्री जब सोती है तो स्वप्न में बात और वहीं जागते ही बात कुछ और हो जाती है। तांतिया ने इसीं पसोपेश में पाँच दिन गुजारे। वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि किस पक्ष को प्रसन्न करे और किस पक्ष को नाराज। छठे दिन अन्तत: स्वयं असमंजस से उबरने की सोचकर वह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के शिविर में गया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि आप मेरी एक अर्ज मानकर मुझ पर अहसान करे! वह जयपुर का कछवाहा राजा हठ पकड़े बैठा है, वह उचित और अनुचित कुछ नहीं समझता। वह कहता है कि आप फिर से उनके शिविर पर जाएं। मैं भला इसका निबेड़ा कैसे कर सकता हूँ। यह सुनकर हाड़ा राजा ने कहा कि हम एक बार जा तो आये। इस बात को भूलकर वे ऐसा हठ क्यों कर रहे हैं ? मेरा बार-बार जाना न्यायोचित नहीं क्योंकि मुझे ऐसा करने से होल्कर आदि मेरे सुहृद रोकेंगे। यह सुनते ही तांतिया गंगाधर की आँखें भर आई। वह दाँव हारा हुआ सा हताश हो गया।

निगरनतैं श्रुति स्वपच निकासी, परयो कि हरिन किरातन पासी।
तंते कों इम देखि दुखित तब, अधिपति ह्रदय सदयतर भो अब ॥१८५॥

दयाराम निज बुद्धि पुरोहित, चारन महड़ू दान ज्ञान चित।
भेजे दुव हुलकर ढिग भूपति, अक्खी द्विज तंते सकुचत अति ॥१८६॥

पुनि कूरम ढिग हमहि पठावत, यह द्विज नम्र दुखित अकुलावत।
कूरम हठ लखि हम हठ साहैं, दुक्खित द्विज लखि जावन चाहैं॥१८७॥

कहिय रुचत तुमहीं अब कैसी, तंते तकत दीनता ऐसी।
सुनि हुलकर उत्तर तब दिन्नों, जावहु जो कितवन हठ किन्नों ॥१८८॥

यह सुनि द्विज चारन जुग आयो, नृप कों हुलकर कथित सुनायों।
सुनि चहुवान सेन निज साजी, कसि कटिबंध चल्यो चढि बाजी ॥१८९॥

गंगाधर की स्थिति ऐसी बन गई जैसे चांडाल अपने गले से वेद मंत्रों का उच्चारण करे और पास ही उस किरात के मारा हुआ हरिण पड़ा हो। तांतिया को इस तरह व्यथित देख कर दयावान हाड़ा राजा का मन पिघल गया। राजा ने तुरन्त अपने पुरोहित दयाराम और चारण महड़ू दाना जैसे दो बुद्धिमान और नीति-चतुर सेवकों को बुलवाया। उनके आते ही राजा ने दोनों को होल्कर मल्हारराव के पास भेजा और कहलाया कि वह ब्राह्मण तांतिया अत्यन्त दुःखी है और संकोच में पड़ा है। वह हमें दुबारा कछवाहा राजा के शिविर में भेजना चाहता है और इसके लिए व्याकुल है। अब यदि कछवाहा राजा की तरह हम भी हठ कर लें तो यह दुःखी तांतिया यहाँ से चला जाएगा। आप कहें कि आपको क्या जँचता है? हमें क्या करना चाहिए अब जब कि गंगाधर की दीनता का यह हाल है? पूरी बात सुन कर होल्कर ने उत्तर दिया कि यदि उन छलियों ने ऐसा हठ पकड़ ही लिया है तो आप चले जाएँ। होल्कर का निर्णय सुन कर पुरोहित और चारण मेहड़ू वापस हाड़ा राजा के शिविर में आए और उन्होंने होल्कर का मत कह सुनाया। यह सुनते ही हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने योद्धाओं को सज्जित किया और स्वयं भी कमर कस कर जाने के लिए घोड़े पर सवार हुआ।

संग भये हुलकर भट सारे, बाड़व पर दल सिंधु बिहारे।
ढुंढारे पिक्खन जन आये, धन्न्य धन्न्य कहि बिरुद बढाये ॥१९०॥

इम कूरम डेरन तोरन मय, प्रबिसन लग्गे तत्थ चढ़ें हय।
तबहि द्वारपालन कर जोरे, अक्खी अरज जात नहिं घोरे ॥१९१ ॥

यह तोरन डोढी करि मानहु, अग्ग बहुरि डोढी नहिं जानहु।
पाउस रन कारन दुव पाये, यातैं रखत पुखत नहिं आये ॥१९२ ॥

अग्ग ईश्वरिसिंह बिराजत, जवनी ओट बीच नहि राजत।
जावत तुरग चढ़ें दृग जुरिहै, तो संकोच परस्पर फुरिहैं ॥१९३ ॥

अंतर द्वार गिनहु इहिं यातैं, त्यागहु महाराज हय तातैं।
सुनि नृप रीति निपुन तजि बाजी, प्रबिस्यो द्वार लियें भट राजी ॥१९४ ॥

इस समय हाड़ा राजा के साथ होल्कर के योद्धा भी शत्रु सेना रूपी समुद्र में बड़वानल की तरह बन कर संग चले। ढूंढाड़ के लोग जो देखने आए थे वे सभी अपने मुँह से धन्य-धन्य बोल उठे। पूरे लवाजमे सहित हाड़ा राजा उम्मेदसिंह कछवाहा राजा के शिविर के तोरणद्वार तक पहुँचा। वह घोड़े पर सवार आगे बढ़ रहा था कि तभी वहाँ उपस्थित कछवाहा राजा के द्वारपालों ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि यहाँ से आगे घोड़े नहीं जाते हैं। आप इस तोरणद्वार को ही ड्योढी मानें क्योंकि यहाँ से आगे कोई और ड्योढी नहीं है। एक तो युद्ध और दूसरी मूसलाधार वर्षा, इन दोनों कारणों से शिविर संबंधित अधिक सामग्री नहीं आ पाई है। यहाँ से थोड़ा आगे ही कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह विराजमान है और कनात की आड़ भी मध्य में नहीं है। यहाँ से आगे जाते ही वे आपको घोड़े पर सवार देखेंगे तो इससे दोनों ओर संकोच की स्थिति आ जाएगी। इसलिए इस तोरणद्वार को ही आप अंतर-द्वार (ड्योढ़ी) मान कर घोड़े यहीं त्याग दें। द्वारपालों का ऐसा निवेदन सुन कर राजनीति में निपुण हाड़ा राजा यहीं पर घोड़े से उतर गया और उसने अपने साथ आए वीरों की पंक्ति के साथ तोरणद्वार से शिविर में प्रवेश किया।

जैपुरपति भट अलप सत्थ जंहं, तक्क्यो नृप सम्मुह परिखद तंहं।
इक जसवंत झलायपति कुम्मर, अरु दलेल धूलापुर ईश्वर ॥१९५ ॥

तिम हरनाथ नरुका राउत, अजितसिंह कूरम सेखाउत।
सुभट निकट इत्यादि छसातहि, जैपुरपति उठ्यो नृप जातहि ॥१९६ ॥

पायंदाज अवधि सम्मुह सरि, रीति उचित दुव हत्थ मत्थ धरि।
सभा प्रबिसि अप्रतिहत सासन, बैठे उभय एकही आसन ॥१९७॥

पान रु अतर निवेदि परस्पर, किय संलाप घटी इक हितकर।
उठि करि सिक्ख भूप पुनि आयो, पहिलैं जिम कूरम पहुंचायो ॥१९८॥

तंते तदनु पठायो हुलकर, कूरम प्रति अक्खी तिहिं दरबर।
अब टींका नृप कुम्म पठावहु, पुनि बुंदीपति डेरन आवहु ॥१९९॥

हाड़ा राजा ने भीतर जाते ही देखा कि कछवाहा राजा अपने थोड़े से सामन्तों के साथ ही विराजमान है। उसके समक्ष दरबारी भी कम हैं। यहाँ उपस्थित सामन्तों में एक झलाय पुर के स्वामी का पुत्र जसवंतसिंह तो दूसरा धूलापुर का जागीरदार दलेलसिंह है। तीसरा नरूका रावत हरनाथसिंह और चौथा कछवाहा अजीतसिंह है। इन सामन्तों के अतिरिक्त छः सात और योद्धा राजा के निकट हैं। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को आते देखते ही कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह उठ खड़ा हुआ और पायदान तक पेशवाई करने चल कर आया और उसने दोनों हाथों को मस्तक तक ले जाकर अभिवादन किया। हाड़ा राजा अप्रतिहत गति से सीधा आसन तक गया जहाँ दोनों राजा एक साथ एक ही आसन पर बैठे। दोनों पक्षों की ओर से परस्पर पान और इत्र की मनुहार हुई और एक घड़ी तक दोनों राजाओं के मध्य वार्तालाप चला। इसके बाद विदाज्ञा ले कर हाड़ा राजा वापस रवाना हुआ। पूर्व की तरह पायदान तक कछवाहा राजा पहुँचाने आया। इसके बाद तांतिया गंगाधर ने मल्हारराव होल्कर को भेजा। होल्कर ने जाते ही तुरन्त कछवाहा राजा से कहा कि अब आपको शीघ्र ही टीका भेजना चाहिए और आपको भी बूंदी के राजा के शिविर पर आना चाहिए।

सुनि टींका पठयो तब कूरम, इक्क महामृग इक्क तुरंगम।
इक सिरूपाव इक्क मनि भूखन, पठये दै इम संग सचिव जन ॥२००॥

तिन टींका नृप अत्थ निवेदिय, संभरनाथ बिहसि स्वीकृत किय।
दैन लगे बसु कूरम दासन, सो न लयो रु गये जिम सासन ॥२०१॥

दूजे दिन कूरम भ्रम बाधन, संभर सिविर गयो हित साधन।
अग्गैं रीति मिलन की अक्खी, पद्धति सोहि अत्थ मिलि रक्खी ॥२०२॥

दुव सिरूपाव दोय हय दिन्नें, इक इकही जैपुरपति लिन्नें।
मानिकराम व्यास नृपको तब, कुल्ल्यो हित अर्पित रक्खहु र ।॥२०३॥
तोहु न हत्थ द्वितीयन चल्ल्यो, अतर पान लहि कूरम चल्ल्यो।
हुलकर डेरन जाय मिल्यो पुनि, सुनत मत बुंदीन बिरुद धुनि ॥२०४॥
हितपूरब बैठे इक आसन, सुख सह होन लग्यो संभासन।
कूरम तत्थ करार न राख्यो, लोभ उदंत समक्षहि भाख्यो ॥२०५॥

होल्कर के मुँह से ऐसा सुनकर कछवाहा राजा ने तत्काल टीका भिजवाया जिसमें एक हाथी और घोड़ा, एक शिरोपाव और मणिजटित आभूषण जैसी सामग्री थी। कछवाहा राजा ने अपने सचिव और सामन्तों के साथ यह भिजवाया, उन्होंने हाड़ा राजा को नजर किया जिसे प्रसन्न होकर राजा ने स्वीकार किया। इस अवसर पर हाड़ा राजा ने कछवाहा राजा के इन सेवकों को इनाम देना चाहा पर राजा ईश्वरीसिंह की आज्ञानुसार उन सेवकों ने कुछ नहीं लिया और वापस चले गए। दूसरे दिन भ्रम निवारण करने को कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह भी बूंदी के राजा के शिविर पर आया। पूर्व में जिस रीति से दोनों राजा मिले थे उसी प्रथा का अनुसरण किया गया। इस अवसर पर राजा उम्मेदसिंह ने दो घोड़े और दो शिरोपाव नजर किये पर कछवाहा राजा ने एक घोड़ा और एक शिरोपाव ही स्वीकार किया। इस अवसर पर हाड़ा राजा के पुरोहित मानिकराम व्यास ने कछवाहा राजा से निवेदन किया कि स्नेहपूर्वक जो निवेदित सामग्री है उसे आप रखें पर कछवाहा राजा ने दूसरे शिरोपाव की ओर अपना हाथ ही नहीं बढ़ाया। मात्र इत्र और पान की मनुहार लेकर राजा ईश्वरीसिंह शिविर से रवाना हो गया। यहाँ से कछवाहा राजा सीधा मल्हारराव होल्कर के शिविर पर गया। दोनों वहाँ हितपूर्वक एक ही आसन पर बैठे और सुखपूर्वक संवाद किया। यहाँ कछवाहा राजा ने अपने पूर्व करार को नहीं रखा अर्थात् पहले जो लोभ की वार्ता सम्मुख नहीं करने का जो करार था उसे नहीं रखते हुए अपने लोभ का वृत्तान्त कहा।

दोहा

कूरम नाम मलूक इक, पंचायण कुल जात।
आमेर प अरघ्यो वहै, बखसि गाम बसु ब्रात ॥२०६॥

बुंदीपुर आयत्त पुर, गैनोली अभिधान।
सहित परग्गन सो दयो, थिर कूरम तिहिं थान॥२०७॥

ताकी बत्त मलार सन, कूरम कहिय बहोरि।
रक्खी सोहि मलूक हित, अवनि ओर दिय छोरि॥२०८॥

सुनि मलार अक्खी कुपित, किन्नों तुमहिं करार।
बत्त समक्ष हि लोभ की, क्यों ब करत छलकार॥२०९॥

मलूक नामक एक पंचायण कछवाहा को पूर्व में आमेर के राजा ने प्रसन्न होकर धन और जागीर के गाँव दिये थे। जागीर के इन गाँवों में बूंदी राज्य की सीमा में पड़ने वाला गैनोली नामक गाँव भी था। पूर्व राजा जयसिंह ने गैनोली परगना इस कछवाहा को स्थिर रूप से प्रदान किया था। अब स्थितियाँ बदल गईं तब कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने मल्हारराव होल्कर से कहा कि गैनोली का परगना तो मलूक कछवाहा के अधिकार में ही रखा है। इसके अतिरिक्त बूंदी की भूमि मैंने राजा उम्मेदसिंह के हित में दे दी है। यह सुनते ही मल्हारराव को क्रोध आ गया उसने कुपित होकर कहा कि हे कछवाहा राजा! हमारी सुलह के समय तुमने करार किया था कि हम परस्पर लोभ की बात आमने-सामने नहीं कहेंगे अब आप छल कर ऐसी बातें क्यों कर रहे हो?

बसुमति बुंदिय देसकी, लेसहु तुमहिं मिलैं न।
कोबिद रहत करार मैं, ठेले हड्डु ठिलैं न॥२१०॥

अतर पान यह अक्खि दै, कूरमकों दिय सिक्ख।
सुनहु राम नृप यों रही, प्रपितामहकी तिक्ख॥२११॥

चूंकि यह भूमि बूंदी राज्य की है इसलिए इसमें से लोश मात्र भी आपको नहीं मिलेगी। आप चतुर हैं तो करार से बंधे रहिये। इस प्रकार आपके ठेलने से बूंदी का राजा नहीं ठेला जाएगा। यह कह कर होल्कर ने इत्र और पान की मनुहार दे कर कछवाहा राजा को जाने की आज्ञा दे कर रवाना किया। हे राजा रामसिंह! आपके प्रपितामह राजा उम्मेदसिंह की स्वायत्तता और इज्जत इस तरह सुरक्षित रही।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशौ उम्मेद-सिंहचरित्रे सजट्टसूर्यमल्लकूर्मराजपरसैन्याऽभिमुखनिस्सरणकृतपलायन-व्यासगंगाधरतहुलकरनिकटाऽऽनयनमहारणरचनमेघाऽऽसाराऽन्तरा-ऽपिनालीयन्त्रचलन तद्दिन निर्वाणयथास्थितसर्वकालक्षेपणमाधवा-ऽऽदियथाप्राप्तमकुष्ठाद्यशनद्वितीय दिनयुद्धभवनकोटाभटयोधसिंह मरणगंगाधरयोधनप्रकटीकृतप्रपातमिषकूर्म्मराज निस्सरणविदित-तद्वृत्तमल्लारोम्मेदमाधव सज्जीभवनेश्वरीसिंहाऽवरोधनगंगाधर-जैपुरमार्गाऽवरोधनतद्देशलुट्टनाऽऽर्थपंचसहस्त्र सैन्यप्रेषणभटप्रतिभट-वृहत्समिद्विरचनतन्ते सैखाउतसक्षतीकरणद्वितीय दिनसमापनपुनःषष्ठी दिनयोधननिगृहीत जयपुरप्रसारजननासाऽदिकर्त्तनतदऽनोऽन्नाद्यश-नवस्तुलुण्टनप्रेषितपृतनासम्भरपुरपर्य्यन्तजयपुरजनपदनिर्द्धनीकरणगंगा-धरनारव मारणनालीयन्त्राऽवरुद्धीकरणतत्सहाय जट्टसूर्यमल्लयोधन-तन्तेपलायनतृतीय दिनसमापनत्रस्तकूर्म्मराजहुलकरकथितस्वीकरण-जयसिंहग्रस्तबुन्दीत्यजनमाधवाऽर्थदेशचतुष्टय विसर्ज्जनाऽन्योऽन्य शिविराऽऽगमनहुलकर कर्म्म मैत्रीमण्डनबुंदीस जयपुरेश यथामर्य्या-दोपायनमिथोनिवेदनग्रहमल्लारपुनर्लुब्धजायसिंहिभर्त्सनं पञ्चविंशो मयूखः ॥ आदितः ॥३०६॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह के चरित्र में जाट सूर्यमल्ल और ईश्वरीसिंह का शत्रु की सेना के सम्मुख निकलना। व्यास गंगाधर का भागकर उनको हुलकर के समीप ले जाना, महा युद्ध का रचना और मेघ धारा में भी तोपों का चलाना, उस दिन घोड़ों की डोरें लिये यथास्थित समय बिताना, माधवसिंह आदि का मिल गया जैसा मोठ आदि को भोजन करना, दूसरे दिन युद्ध होकर कोटा के भट जोधसिंह का मरना और गंगाधर के युद्ध प्रकट करने से मुकाम करने के बहाने ईश्वरीसिंह का निकलना, इस के विदित होने पर मल्लार, उम्मेदसिंह, माधवसिंह का सज्जित होकर ईश्वरीसिंह को रोकना, गंगाधर का जयपुर के मार्ग को रोकना और ईश्वरीसिंह के देश लूटने के अर्थ पाँच हजार सेना को भेजना, भट और प्रतिभटों का बड़ा युद्ध कर तंते गंगाधर का सेखावत सीकर के राव राजा को घायल करना और द्वितीय दिन का समाप्त होना, फिर छठी के दिन

युद्ध शुरू होकर जयपुर की रसद लाने वाले लोगों को पकड़ कर नाक आदि काट कर उनके छकड़ों से अन्न आदि भोजन की वस्तुएं को लूटना, भेजी हुई सेना का सांभर नगर तक जयपुर के राज्य को निर्धन करना। गंगाधर का नरूकों को मारकर तोपों में कीले लगाना और उनकी सहायता पर सूर्यमल्ल का युद्ध करके गंगाधर के भागने पर तीसरे दिन का समाप्त होना, डर कर कछवाहों के राजा का हुलकर का कहना स्वीकार करना, जयसिंह की ली हुई बूंदी को छोड़ना, माधवसिंह के अर्थ चार देश देना और ईश्वरीसिंह, मल्हार और उम्मेदसिंह का परस्पर डेरों में आना, हुलकर और ईश्वरीसिंह का मित्र होना और बुंदी के पति व जयपुर के पति दोनों का मर्यादापूर्वक भेंट देना-लेना फिर लोभ करने वाले जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह को मल्हारराव के धमकाने का पच्चीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छह मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

दूजे दिन बजि प्रथम कुंच दुंदुभि हुलकर दल,
बजि जैपुर बल बीच हुव सु बादन कोलाहल।
पहिलैं चढि कछवाह लग्यो निज पत्तन पद्धिति,
मनि जिम उरग गुमाय नम्यो न करैं फन उन्नति।
खट बसु तुरंग ससि सक गिल्यो जयसिंह सु बुंदिय जहर।
ईश्वरीसिंह तस सुत असह लई, घुम्मि ताकी लहर॥१॥

हे राजा रामसिंह! दूसरे दिन प्रात:काल में ही मल्हारराव होल्कर की सेना में कूच का नगारा बजा और यह सुनते ही जयपुर की सेना में भी कूच के वाद्ययंत्रों का कोलाहल हुआ। कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने तो पहले ही सवार हो अपने नगर का मार्ग लिया। जिस तरह अपनी मणि खो देने के बाद सर्प से फण नहीं किया जाता मानो यही हालत कछवाहा राजा की हो गई। विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ छियासी में पूर्व राजा जयसिंह ने जिस बूंदी रूपी जहर के घूंट को निगला था उसकी असह्य तरंग को आज उसी के पुत्र राजा ईश्वरीसिंह को इस तरह झेलना पड़ा।

दोहा

ढुंढारे इम ढुंढि रन, गंजे प्रसभ गलार
सत्य कियो संकल्य निज, माधव हड्डु मलार ॥२॥

ढूंढाड़ वालों (जयपुर वालों) को इस तरह युद्ध में ढूंढ कर हठी मल्हारराव होल्कर ने गर्जना करते हुए दंडित कर परास्त किया। मल्हारराव, माधवसिंह कछवाहा और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह तीनों ने अपने लिये हुए संकल्प को इस तरह पूरा किया।

सचरणगद्यम्

या रीति जनक जयसिंह नैं संधा करि स्वीय करी अचला ईश्वरीसिंह आतंक तैं छोरि आयो।

अर बुंदी के दुर्ग तारागढ़ मैं नरुके कछवाह सिपाह रक्षक रक्के हे तिनकों कढायबे कों तिनके स्वामि नारव लदानां नगर नाथ कुमार तथा हरनाथसिंह इनके उभय कों अग्गैं करि लेजायबे को उदंत हुलकर सों कहायो।

तब जैपुरपति के प्रस्थान के समय ए दोऊ नरूके कछवाह लार लेबे कों मल्लार नैं बुलाये।

अरु वे आदेस अधीन होय न आये तब सत्तसय सादी स्वकीय सेना के संगही प्निप करि प्रेरिबे कों पठाये॥३॥

इस प्रकार सवाई राजा जयसिंह ने जिस भूमि को प्रतिज्ञा कर अपनी बनाया था अर्थात् अपने अधिकार में लिया था उसी भूमि (बूंदी) को आज आतंकित हो राजा ईश्वरीसिंह छोड़ आया और बूंदी के दुर्ग तारागढ़ में जिन नरूका कछवाहा सिपाहियों को रक्षार्थ तैनात किया गया था उनको वहाँ से सुरक्षित निकालने हेतु उनके मालिक लदाना नगर के स्वामी का कुमार और हरनाथसिंह इन दोनों को आगे लेकर जाने का वृत्तान्त होल्कर से निवेदन करवाया। तब जयपुर के कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह के प्रस्थान समय में होल्कर ने इन (उपरोक्त) दोनों कछवाहों को साथ लेने हेतु बुलवाया पर जब होल्कर की आज्ञा से वे दोनों हाजिर नहीं हुए तो होल्कर ने अपनी सेना के सात सौ घुड़सवार योद्धाओं का दल उन्हें जबरन पकड़ लाने को भेजा।

जहां मरहट्ठन कों जोरदार जयी जानि जैपुर को जोध जुग साहसी सूबेदार की संग भयो।

जब जय के मदमत्त महिमंडल मंडन उम्मेदसिंह माधव मल्लार कुंच करि देवगाम बघेरा आनि मुकाम दयो।

तहां तै सेना रखत रसाले कों तो टोडानगर की राह चलायो।

अरु इन तीनन के अभयसिंह धन्वधराधीस तीर्थगुरु पुष्कर राज हो तासों मिलिबे को उत्साह आयो ॥४॥

प्रबल मराठों को विजयी समझ कर जयपुर के दोनों योद्धा (लदाना कुमार और हरनाथसिंह) तब मराठा सेना के साहसी सुबेदार के साथ हो गये। इस जोरदार फतह के मद में मदमत्त महिमंडल (पृथ्वीपति) राजा उम्मेदसिंह, माधवसिंह कछवाहा और मल्हारराव होल्कर तीनों ने बगरू से कूच कर देवगाँव-बघेरा में आ कर अपना पड़ाव डाला। यहाँ से उन्होंने रसद सामग्री वाले रिसाले को तो आगे टोडानगर की ओर जाने का आदेश दे रवाना किया और तीनों ने मारवाड़ के राजा अभयसिंह जो इन दिनों तीर्थराज पुष्कर आया हुआ था से मिलने का मन में उत्साह जगाया अर्थात् मिलने की इच्छा की।

दोहा

हुलकर कूरम हड्डु नृप, सेन अलप लै संग।
धत्त पुक्खर तित्थगुरु, मरूपति मिलन उमंग ॥५॥

अभयसिंह चिरकाल तैं, हो पतनी जुत तत्थ।
मिलि तासों बगरु बिजय, अक्ख्यो सबन समत्थ ॥६॥

सुता नृपति जयसिंह की, नाम बिचित्रकुमारि।
लये परगनां अनुज तस, किय मंगल हित कारि ॥७॥

महिमानी करि मुदित मन, रट्ठोरन अधिराज।
हुलकर सालक हड्डु नृप, बुल्ले जिम्मन काज ॥८॥

तब मल्हारराव होल्कर, कछवाहा माधवसिंह और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह तीनों अपने साथ सेना का एक छोटा दल लेकर मारवाड़ के राजा से मिलने की उमंग से भरे तीर्थराज पुष्कर पहुँचे। राजा अभयसिंह

अपनी रानी सहित कई दिनों से पुष्कर ही था। तीनों जाकर उससे मिले और बगरू में मिली शानदार विजय का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। जयपुर के पूर्व कछवाहा राजा जयसिंह की पुत्री विचित्र कुमारी (जो राजा अभयसिंह की पत्नी थी) ने जब यह सुना कि उसके छोटे भाई माधवसिंह कछवाहा को चार परगने मिले हैं तो उसने इस मंगल समाचार को पाते ही खुशी मनाई। यही सोच कर इस अवसर पर राठौड़ राजा अभयसिंह ने मल्हारराव होल्कर, अपने साले माधवसिंह कछवाहा और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की मेहमानदारी करते हुए भोजन पर आमंत्रित किया।

राजगढेस किसोर निज, भ्रात सहित मरूपाल।
माधव संभर च्यारि मिलि, किय भोजन इक थाल ॥९ ॥

हुलकर मरूपति के हु हो, पग्ग सखापन अग्ग।
सोहु जिमायो रक्खि ढिग, सम्मद पूरि समग्ग ॥१० ॥

बिनस्यो बाजेराज तब, मद्य तजो मल्लार।
अभयसिंह पायो इहां, प्रसभ मंडि अति प्यार ॥११ ॥

इक इक गज दुव दुव अरब, इक इक बर सिरूपाव।
इक इक भूखनं नगजटित, दिय तीनन करि चाव ॥१२ ॥

मारवाड़ के राजा राठौड़ अभयसिंह ने तब अपने छोटे भाई किशोर सिंह जी राजगढ़ (संभवतः रूपनगढ़) का स्वामी था और अपने तीनों मेहमानो सहित चारों जनों के साथ एक ही थाल में भोजन किया। मल्हारराव होल्कर और जोधपुर का राजा दोनों पूर्व से आपस में पगड़ी-बदल भाई बने हुए थे यही कारण था कि राजा अभयसिंह ने पूरे सम्मान और रीति पूर्वक उसे अपने साथ भोजन कराया। पहले जब वाजीराव पैशवा की मृत्यु हुई थी तब मल्हारराव ने शराब पीना छोड़ दिया था पर आज राठौड़ राजा ने अत्यन्त स्नेह से हठपूर्वक उसे शराब पिलाई। फिर राजा अभयसिंह ने अपने तीनों अतिथियों होल्कर, हाड़ा राजा और माधवसिंह कछवाहा को एक-एक हाथी, दो-दो घोड़े, एक-एक बहुमूल्य शिरोपाव और एक-एक आभूषण (नगीनों से जटित) उपहार में दिये।

लै तिन तीन हि मरूप जुत, आये पुनि अजमेर।
अभयसिंह निंदा इहां, किन्नी सोदर केर॥१३॥

बखतसिंह मामक अनुज, पहिलैं दिल्लिय पत्त।
जवनन दल हमसन लरन, आनत सुनियत अत्त॥१४॥

बनैं जंग तो बेगही, हुलकर करहु सहाय।
सुनि मलार स्वीकार किय, बहु सत्तकार बढाय॥१५॥

तदनु तीन अजमेर तजि, लग्गे बुंदिय राह।
बिचतैं पलटि भनायपुर, गो संभर नरनाह॥१६॥

तीनों अतिथि उपहार लेकर राजा अभयसिंह के साथ पुष्कर से अजमेर आए। अजमेर में राठौड़ राजा अभयसिंह ने अपने सगे भाई की निंदा भरी शिकायत की। राठौड़ राजा ने कहा कि मेरा भाई बखतसिंह पहले दिल्ली गया था और अब सुनते हैं कि वह मुझसे लड़ने को अपने साथ मुगल दल लेकर आ रहा है। इसलिए हे मल्हारराव। यदि युद्ध हो तो आपको मेरी सहायता के लिए शीघ्र ही सेना ले कर आना पड़ेगा। इसे सुन कर होल्कर ने राठौड़ राजा की इज्जत और हौंसला बढ़ाने के लिए कहा कि आप निश्चिंत रहें मैं आऊँगा। इसके बाद होल्कर, हाड़ा राजा और माधवसिंह कछवाहा अजमेर से बूंदी के लिए रवाना हुए पर बीच राह में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह इनसे जुदा होकर भिनाय नगर गया।

ही सपत्न जननी तहां, अरु उदाउति नारि।
मिलि तिनसों पच्छो मुरयो, बुंदी बिलसन धारि॥१७॥

मिलि माधव मल्लार सन, पुनि किय सजव प्रयान।
तीनन सरित बनास तट, दिन्नें आनि मिलान॥१८॥

उज्जवल पख इसमास तंहं, बुट्ठे जलद कराल।
चढी सरित की ओट करि, पलटे पच्छे खाल॥१९॥

दल बिच जल गलदघ्न बढि, बिथरयो डेरन बोय।
पानी पवन तुषार करि, मरे मनुज सत दोय॥२०॥

दूजे दिन आवां नगर, पत्ते जल भय पाय।
टोडा त्यों पठयो जु दल, मिल्यो सु तत्थहि आय॥२१॥

सुखतैं रहि नवरत्त सब, तीनन बितये तत्थ।
अष्टमि दिन मल्लार इक, मंगायो महमत्त॥२२॥

जहाँ (भिनाय नगर में) हाड़ा राजा की माता और उदावत वंशीय रानी थी। वह उनसे मिल कर वापस तुरन्त ही बूंदी जाने के लिए रवाना हुआ। वह आ कर रास्ते में होल्कर और माधवसिंह के साथ हो गया। इस तरह तीनों ने बूंदी की ओर प्रयाण करते हुए राह में बनास नदी के तट पर पहुँच कर पड़ाव किया। यह आश्विन माह के शुक्ल पक्ष का समय था पर यहाँ भारी वर्षा हुई। पानी इतना बरसा कि नाले भी नदी में गिर कर उतरने की बजाय बढ़े, नतीजन सेना के पड़ाव स्थल पर गले-गले तक पानी भर गया और इस अचानक आई बाढ़ में शिविर डूब गए। तेज हवा के साथ बरसती वर्षा और ठंड के कारण दो सौ आदमी मर गए। दूसरे दिन ये सभी लोग सेना सहित आवाँ नगर में पहुँचे। पूर्व में टोडा से अपना शेष दल आगे रवाना किया था होल्कर का वह दल भी इस स्थल पर आ मिला। यहाँ सभी लोग पूरी नवरात्रि सुख के साथ ठहरे। आश्विन शुक्ला अष्टमी के अगले दिन मल्हारराव होल्कर ने देवी को चढ़ाने के लिए एक मदमस्त भैंसा मँगवाया।

षट्पात्

दूतन दिस दिस दोरि हठन हेर्‌यो इक कासर,
तीन तीन बल बक्र पटल गति संग पिट्ठि पर।
अरुन अंखि अतिकोप दिपत उल्मुक दमकावत,
स्वास नास सननंकि धरनि तल पयन धुजावत।
नहि सहन महन ओरन नदन गवल जानि उद्धत अरिय।
मानहु बिहाय कालहिं कुपित संजमनी सन उत्तरिय॥२३॥

होल्कर के सेवकों ने सभी ओर जा कर तलाश की और अन्त में उन्होंने एक जंगी भैंसा ढूंढा जिसके बड़े-बड़े तीन जगह से बल खाए हुए सींग थे और जो उसकी पीठ तक फैले हुए थे। जिसकी आँखे जलते हुए अंगारों की तरह थी और जब थोड़ा सा कुपित होकर अपने नथुनों से सांस छोड़ता तो तेज आवाज होती और पृथ्वीतल को वह अपने पाँव पटक कर

कंपायमान कर देता अर्थात् कुपित होने पर वह विकराल हो उठता। वह अपने समक्ष किसी दूसरे बड़े से बड़े भैंसे का ताड़ूकना (बोलना) नहीं सहन कर पाता। इसी बात की निशानी स्वरूप शायद उसके सींग ऐसे उद्धत थे। उसे देख कर ऐसा लगता मानो वह जंगी विकराल भैंसा अपने स्वामी यमराज से कुपित हो सीधा यमपुरी से पृथ्वी पर उतर आया हो।

दोहा

आन्यों अडर लुलाय वह, देवी हित बलि दैन।
झारी असि हुलकर झपटि, लगी जैनमत लैन॥२४॥

होल्कर के सेवक ऐसा निडर और विकराल सा भैंसा देवी को चढ़ाने के लिए ले कर आए। अष्टमी तिथि के दिन देवी के आगे बलि चढ़ाने के लिए जब होल्कर ने तलवार मारी तो ऐसा लगा मानो उसकी तलवार जैन मत की अहिंसा मानने वाली बन गई हो अर्थात् होल्कर की तलवार के प्रहार से भैंसा नहीं कट पाया।

षट्पात्

सिंगन लगि समसेर तरकि तुट्टी हुलकर कर।
तब जरंत गुन तोरि चल्यो दारुन छुटि दुद्धर।
देखत यह हय दपटि झपटि संभर असि झारिय।
सिंगन जुगल समेत बंस सह पिट्ठि बिदारिय।
अरराय मह सुइम खाय असि पाय उलटि कटि खुलि पर्यो।
हुव लखि अचिज्ज मरहट्ठ दल इत देविय बलि अद्दर्यो॥२५॥

मल्हारराव होल्कर की पूरे बल से झोंकी गई तलवार सीधी उस भैंसे के सींगों पर पड़ कर टूट गई और इससे बिदक कर वह दुर्द्धर भैंसा रस्सी तुड़वा कर भाग छूटा। उसको इस तरह भागते देख हाड़ा राजा तुरन्त घोड़े पर सवार हुआ और उसका पीछा करते हुए झपट कर अपनी तलवार से एक भरपूर प्रहार किया जिससे भैंसे के सींगों सहित रीढ़ की हड्डी कट गई और वह अररा कर भूमि पर गिर कर ढेर हो गया। भैंसे का ऐसा वध देख कर मराठा सेना के सभी योद्धाओं ने आश्चर्य किया और देवी ने इस बलिदान को स्वीकार कर लिया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेद-सिंहचरित्रे प्रस्थापितकूर्म्मराजमल्लारोम्मेद माधव पुष्करा ऽऽगमनमरु-राजाऽभयसिंहमिलनाऽनन्तरत्रय प्रत्यागमनदृष्टभणाय पुरबुंदीन्द्र सहितहुलकर कूर्म्म वाशिष्ठीतटप्रपतनाऽकालाऽऽसारवर्षणशिविर-संप्लवप्रमितमानवमरणसर्वसैन्याऽऽवापुरनिवसनाऽऽश्विनोत्तरनवरात्र-पूज्यपूजनविधानबुन्दीन्द्रतिरस्कृतमल्लारमण्डलाग्रमहामहिषनिपातनविश्वे-श्वरीबलिनिवेदनं षड्विंशो मयूखः ॥ आदितः ॥३०७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह के चरित्र में ईश्वरीसिंह का प्रस्थान कराकर मल्लार, उम्मेदसिंह, माधवसिंह का पुष्कर आना, अभयसिंह से मिले बाद तीनों का बाद आकर भणायपुर को देख कर बूंदी के पति सहित हुलकर और कछवाहे माधवसिंह को बनास नदी के किनारे मुकाम करना, बिना समय मेघधारा के बरसने से डेरों में जल भर जाने से थोड़े मनुष्यों का मरना और शेष सेना का आवां नामक नगर में निवास करना, आश्विन के शुक्ल पक्ष में नवरात्रि में पूजन योग्य देवी पूजन के उचित बूंदी के पति का मल्हार के खड्ग का तिरस्कार करने वाले महिष को मारना और देवी के बलि देने का छब्बीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सात मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

किन्नों बुंदिय तजन को, कत्ति बिसद करार।
यों बहु दिन आवां रहे, माधव हड्डु मलार ॥१॥

हे राजा रामसिंह! चूंकि जयपुर के कछवाहा राजा ने बूंदी छोड़ने के अपने लिखित करार में कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष तक का समय चाहा था। इसलिए तब तक की समयावधि व्यतीत करने हेतु मल्हारराव होल्कर, माधवसिंह कछवाहा और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह आवाँ नगर में ही

षट्पात्

कन्या को रवि भुग्गि अंस तुल के लिय पंद्रह,
प्रतिदिन सीत प्रगल्भ होत बालन बिनु दुस्सह।

आवांपुर इहिं काल हड्ड हुलकर अरु माधव,
दीयँ अमा करि दान अन्नकूटक किय उच्छव।
मिलि तत्थ बिप्र गंगाधर सु खत्री केसवदास जुत।
करि मंत्र आनि भूपहिं कहिय सुनहु बत्त बुधसिंह सुत॥२॥

कन्या संक्रांति को भोग कर सूर्य तुला राशि में जाने को आतुर था इसमें मात्र पन्द्रह दिन का समय शेष था। सर्दी की ठिठुरन प्रगल्भ होती जा रही थी ऐसे में पुरुषों को स्त्रियों के बिना यह जाड़ा दुस्सह प्रतीत होने लगा था। आवाँ नगर में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह, मल्हारराव होल्कर और माधवसिंह कछवाहा तीनों ने कार्तिक की अमावस्या को दीवाली का दीपदान कर अन्नकूट का उत्सव मनाया। इस समय तांतिया गंगाधर ने जयपुर के सचिव केशवदास खत्री से विचार-विमर्श किया और आकर हाड़ा राजा बुधसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह से कहने लगा।

पादाकुलकम्

कासी बिच सुरजन नृप संभर, रचिय राजमंदिर निकाय बर।
सो पंडित सूरजनारायन, मंगत रहन काज द्विज नुति मन॥३॥
वह आलय निज काम न आवैं, पुण्य बढै जो वह द्विज पावैं।
सुनि नृप कहिय पुण्य तीरथ थल, है नहिं देय बिचारि लखहु भल॥४॥
सूरजनारायन द्विज उद्वह, अद्वितीय तिन दिनन हुतो यह।
खट नास्तिक प्रतिभट बनि खंडै, मत खट आस्तिक दृढ करि मंडै॥५॥
सौत्रांतिकन समूल उखारैं, वैभाषिकन सजोर बिडारैं।
योगाचारन लखत उडावैं, माध्यमिकन मिलि गरब गुमावैं॥६॥

हे राजा! पूर्व में चहुवान राजा सुर्जन हाड़ा ने काशी में राजमन्दिर नामक श्रेष्ठ महल (मकान) बनवाया था उस मकान की अब पंडित सूरजनारायण अत्यन्त विनम्रता के साथ आपसे याचना करता है। चूंकि यह मकान अभी आपके प्रयोग में नहीं आ रहा है ऐसे में वह यदि उस ब्राह्मण को मिल जाए तो आपको पुण्य मिलेगा। यह सुन कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने कहा कि वह मकान काशी जैसे पुण्य तीर्थस्थल पर बना हुआ है जरा सांचो, वह देने योग्य नहीं है। उन दिनों ब्राह्मण कुल में जन्मा हुआ वह

पंडित सूरजनारायण विद्वान ब्राह्मणों में अद्वितीय था। छहों प्रकार के नास्तिक मतों का वह खण्डन करने वाला था और अपने मत से छहों आस्तिक मतों को स्थापित करने वाला माना जाता था। वह तांत्रिकों को समूल नष्ट करने वाला और वैभाषिकों को पस्त करने वाला था। योगाचारी नास्तिकों को वह देखते ही उड़ा देने वाला और माध्यमिक मत वाले नास्तिक उससे मिलते ही अपना गर्व खो देते थे।

जैनन जाल राहु गति ग्रासैं, लोकापतिकन मुंडि निकासैं।
व्यास अवर वेदांत बिचारन, गोनर्दीय योग अवधारन॥७॥

दूजो कपिल सांख्य बिच सोहै, मीमांसा जैमिनि मति मोहैं।
द्विज पर अपर न्याय बिच गोतम, वैशेषिक वादी कणाद सम॥८॥

कासी बिच पंडित यह अैसो, करैं बाद जासों बुध कैसो।
अग्गे यह तंते गंगाधर, गो न्हावन कासी तीरथ बर॥९॥

जवनन जानि गहन दल प्रेर्यो, पंच कोसि अंतर तिन हेर्यो।
तंते तब सूरजनारायन, रक्ख्यो सरन छिपाय प्रीति पन॥१०॥

पुनि छन्नैं दक्खिन पहुंचायो, यह उपकृत तंते उर आयो।
पुनि राजामल मिंत्र सु पंडित, अग्र रह्यो हित दुहुंन अखंडित॥११॥

वह पंण्डित सूरज़नारायण जैन मत मानने वालों के लिए राहु रूप था और चार्वाक को मानने वाले लोकायतनों को मुंडवा कर निकलवा देने वाला गिना जाता था। वहीं वह वेदान्त पर सोचने वाला दूसरे वेदव्यास के समान था। योग में वह पतंजलि के समान था। सांख्य में वह कपिल मुनि के बराबर था तो मीमांसा में जैमिनि के समान। वह ब्राह्मण न्याय दर्शन में गौतम और वैशेषिक मत में कणाद के बराबर था। छः नास्तिक मतों का खण्डन करने वाला और छः आस्तिक मतों का मण्डन करने वाला वह ऐसा विद्वान ब्राह्मण था जिससे कोई शास्त्रार्थ करे ऐसा बुद्धिमान अन्य कोई नजर नहीं आता था। पूर्व में तांतिया गंगाधर एक बार काशी तीर्थ पर स्नान करने गया था। वहाँ उसे सभी ने यवन समझ लिया और उसे पकड़ने को सेना आ गई। सेना ने पूरी पँचकोसी परिक्रमा में उसे पकड़ने के लिए ढूंढा पर वह तांतिया किसी तरह इस पंडित सूरजनारायण के पास चला गया

और उसने उसे शरण दे कर प्यार से रखा ही नहीं बल्कि चुपके से उसे वहाँ से निकाल कर दक्षिण तक सुरक्षित भेजा। उसका इस बात का अहसान तांतिया गंगाधर पर था। इससे पूर्व में वह पंडित सूरजनारायण जयपुर के मंत्री राजामल खत्री का मित्र था इसलिए उसे वहाँ उसे मकान में रहने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं आई।

जब जयसिंह नगर बुंदिय लिय, सालमसूनु अत्थ पुनि अप्पिय।
तबहिं राजमंदिर तीरथ थल, मित्र द्विजहिं दिन्नें राजामल॥१२॥

तब तैं रही विप्र कै वह भुव, अब उम्मेद लई बुंदिय धुव।
केसव अरु गंगाधर यातैं, बुझ्झे नृपहिं दिवावन वातैं॥१३॥

पक्षपात इनको नृप जान्यों, पुनि वह तीरथ थान प्रमान्यों।
द्विज वह पात्र कह्यो बुंदीपति, पै किम होय अदेय दैन मति॥१४॥

तब दोउन हुलक्कर प्रति अक्खी, रहैं टेक यह प्रभु तव रक्खी।
सुनि मलार बुल्ल्यो जिनकी भुव, तिनके दयें बिनां न मिलैं धुव॥१५॥

तब दोउन छन्नैं छल किन्नों, हुलकर नाम पत्र लिखि लिन्नों।
ताही की मुद्रा मुद्रित करि, पठयो दल पंडित हित अनुसरि॥१६॥

जब कछवाहा राजा जयसिंह ने बूंदी अपने अधिकार में कर सालमसिंह हाड़ा के पुत्र को सौंपी थी। उस समय से ही काशी का यह राजमन्दिर आवास राजामल खत्री ने अपने मित्र पंडित सूरजनारायण को रहने हेतु दे दिया था। तभी से वह आवास पंडित के अधिकार में था पर अब हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के बूंदी वापस लेने से समस्या आ गई। यही कारण था कि तांतिया गंगाधर और खत्री केशवदास दोनों ने हाड़ा राजा से सूरजनारायण के निवास हेतु राजमन्दिर देने की प्रार्थना की। राजा ने एक तो तीर्थस्थल का आवास होने से और दूसरा दोनों मंत्रियों को पंडित सूरजनारायण का पक्षपात करते देख मना करते हुए कहा कि निःसंदेह वह पंडित सूरजनारायण उसमें निवास करने की पात्रता रखता है पर किसी अदेय वस्तु को देय कैसे बनाया जा सकता है ? राजा से मनाही सुन कर दोनों होल्कर के पास गए और प्रार्थना की कि आप मदद करें तो हमारी बात रह सकती है। इस पर मल्हारराव होल्कर ने जवाब दिया कि इसमें मैं क्या कर सकता हूँ।

जिसकी सम्पत्ति है उसे देने का अधिकार भी उसके पास है अर्थात् हाड़ा राजा के इख्तियार की बात है। तब दोनों ने मिल कर एक छल रचा। उन्होंने होल्कर के नाम से एक झूठा पत्र बनाया और उस पर होल्कर की मुहर अंकित कर वह पत्र पंडित सूरजनारायण के पास काशी भेज दिया।

तिहिं बुध लखि हुलकर दल आयो, बहुरि राजमंदिर अपनायो।
नृप यह कथ चिरकाल माँहिं सुनि, जब जानी तब छिन्नि लयो पुनि॥१७॥

भट सेटू खइराड़ सु हुलकर, बुंदियपुर अग्गहि पठयो बर।
तिहिं करार अबसेस न धारयो, कूरम झंडा तोरि बिडारयो॥१८॥

संभर बहरक मंडि सुहाई, फेरी पुर उम्मेद दुहाई।
जैपुर सचिव तत्थ हो जाकैं, धूजत सतत परी उर धाकैं॥१९॥

मल्हारराव होल्कर का यह पत्र पा कर पंडित सूरजनारायण ने राजमन्दिर आवास को फिर से अपना लिया। बहुत समय बाद जब इस बात की जानकारी हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को हुई तो राजा ने आवास उससे छीन लिया। इसी समय होल्कर ने अपने श्रेष्ठ योद्धा सेटू खैराड़ को आगे बूंदी नगर में भेजा। उसने बूंदी पहुँच कर बिना यह जाने की अभी करार की अवधि पूरी व्यतीत नहीं हुई कछवाहा राजा के फहरते झण्डे को तोड़ फेंका। इस ध्वज की जगह उसने हाड़ा राजा का झंडा फहरा दिया और नगर में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के नाम की आन-दुहाई फिरवा दी। यह सब देख कर बूंदी में जो कछवाहा राजा का मंत्री तैनात था वह डर के मारे काँपने लगा।

सचरणगद्यम्

झंडा तूटत ही जैपुर के सूरबीर बुन्दी हे तिननैं अपनी चढी तलब को लैबो बिचारयो।

अरु बनिक जादूदास नाटानी को भानेज आमैर अधीश ईश्वरीसिंह उहां अमात्य रक्ख्यो हो तापैं त्रास डारयो।

तब वह बनिक घरके सूरन तैं घबराय वनिता के वस्त्र धरि छत्रैं कढि आवांनगर गयो।

अरु खत्री केसवदास सों अपनी आपत्ति को उदंत कहत भयो॥२०॥

कही सेटूखइराड़ करार के दिन अट्ठ अवसेस है तथापि आमैर ईस को झंडा तोरि डारयो।

अरु यह जानि अपनें सूरबीरन चह्यो हक लैबे कों मोमैं त्रास पारयो।

यह सुनत ही खत्री केसवदास मलार तैं रुठि चल्यो।

तब नीठिनीठि पच्छो मनाय हुलकर नैं सुतरसवार तत्काल ही बुन्दी मुकल्यो॥२१॥

किले पर फहरते ध्वज के टूटते ही जयपुर के जो योद्धा बूंदी में थे उन्होंने अपना बकाया कर वसूलने की सोची। उन्होंने बनिया जादूदास नाटाणी के भानजे पर जिसे आमेर के राजा ईश्वरीसिंह कछवाहा ने बूंदी में अपना अमात्य बना रखा था पर दबाव डाला और उसे भयभीत किया। ऐसी स्थिति में वह बनिया अपने घर के अर्थात् जयपुर के योद्धाओं से घबरा कर जनाना पौशाक पहन कर चुपके से बूंदी से निकल कर आवाँ नगर पहुँचा। यहाँ आ कर उसने अपने पर आई आपद का वृत्तान्त केशवदास खत्री को जा सुनाया। उसने कहा कि करार के अनुसार बूंदी का अधिकार छोड़ने में अभी आठ दिन की अवधि शेष है और सेटू खैराड़ ने आकर आमेर का झण्डा तोड़ डाला जिसे देखकर अपने जयपुर के यौद्धाओं ने अपना बकाया वसूलने हेतु मुझे डराया। यह सुनते ही केशवदास मल्हारराव होल्कर से रूठ कर वहाँ से रवाना हुआ। जिसे बाद में ज्यों-त्यों कर होल्कर ने मना कर वापस बुलवाया और एक ऊँट-सवार को तुरन्त बूंदी के लिए रवाना किया।

तानैं जाय नगर मैं बहोरि कछवाहन को केतन रूपायो।

यह देखि चोतरफ के लोकन के बुंदी आयबे मैं संदेह आयो।

तदनंतर करार के दिन पूरे होत आवांनगर तैं पृतना को प्रयान भयो।

अरु उज्ज अहर्ग्गनके अवदात अर्द्धकी अष्टमी के अह द्रंग दुबलान मिलान दयो॥२२॥

इस सवार ने बूंदी पहुँच कर तारागढ़ दुर्ग पर फिर से कछवाहा राजा

का झण्डा लगवाया। यह देख कर लोगों ने सोचा कि इसका अर्थ यह हुआ कि अभी बूंदी वापस हाड़ा राजा को मिलने में सन्देह हैं। तभी करार की अवधि पूरी होते ही आवाँ नगर से सेना ने प्रयाण किया और कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष के आधे गुजर जाने पर अर्थात् शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन दुबलाना नगर पहुँच कर (सेना ने) पड़ाव डाला।

दोहा

दूजे दिन दुबलान तैं, किन्नों सबन प्रयान।
संभर कों हुव सकुन सुभ, थिर रक्खन निज थान॥२३॥
बाम दिसा रहि राजसुक, बुल्ल्यो मोदित बानि।
जावक क्रकर चकोर ए, अग्रेसर हुव आनि॥२४॥

दुबलाना नगर से अगले दिन सेना सहित सभी रवाना हुए। इस समय हाड़ा राजा को कई प्रकार के अच्छे शकुन हुए जो यह प्रकट करते थे कि अब बूंदी स्थाई रूप से इन्हीं के रहेगी। राजसुआ नामक पक्षी राजा की बाईं ओर रह कर प्रफुलित वाणी में बोला वहीं लावा, तीतर और चकोर पक्षी चला कर राजा को सामने मिले अर्थात् शुभ शकुन देने वाले बने।

षट्पात्

ताम्रचूड हुव बाम बाम बुल्लिय प्रसन्न खर।
गंधनकुल पुनि खनक बाम हुव भोलि मधुर स्वर।
गहकि बाम गोमायु बाम सारस बलि बुल्लिय।
संवली टिट्टिभ सुखद बाम बुल्लि रु हित खुल्लिय।
गोबत्स पुष्पसूची बहुरि एहु पच्छि दुव बाम हुव।
दिस सव्य भयो पारावत हु दैन भूपहित धाम धुव॥२५॥

राजा की बाईं ओर मुर्गे ने बांग दी और इसी दिशा में गधा रेंका। यही नहीं राजा की बाईं ओर छछुंदर, चूहा और ऊँट ने मधुर स्वर उचारे। यहीं नहीं राजा के बाईं तरफ गीदड़ बोला और सारस पक्षी चहका। चील्ह (सँवली) और टिटहरी ने बाईं ओर से बोल कर राजा को शुभ शकुन दिये।

दोहा

बापस बुल्लिय बाम पुनि, बुल्लिय बाम तुरंग।
बाम बग्घ मृगराज बलि, हुव तरच्छु हित संग॥२६॥

इसी तरह राजा के बाएँ कौआ बोला और घोड़ा भी हिनहिनाया यही नहीं बघेरा, सिंह और चीते ने भी बाएँ आ कर राजा को अपने हित साधन हेतु शुभ शकुन दिए।

षट्पात्

फेट बिहग अपसव्य भयउ अपसव्य कपिंजर,
पिंगलिका अपसव्य भरद्वाज हु बिहंग बर।
दक्खिन हुव पुनि दहिक भास दक्खिन रव भासत,
सलिल पूर अपसव्य कलस अतिलाभ प्रकासत।
दिस बामहिंतु दक्खिन सरल तारा उत्तरि पोदकिय।
सुभ सकुन होत इत्यादि सब चाहुवान भूपति चलिय॥२७॥

फेंट नामक पक्षी दाहिनी ओर आया और यही प्रक्रिया चातक (पपीहे) ने दुहराई। कोचर पक्षी और भरद्वाज जैसे श्रेष्ठ पक्षी राजा के अपसव्य हुए। दक्षिणी ओर अग्नि नजर आई और गिद्ध बोला। दाहिनी ओर से आता जल का भरा घड़ा मिला। यह राजा को अत्यन्त लाभ होने के शकुन थे। वाम दिशा से उड़ कर राजा के दाएँ पक्ष में तारा (कालचिड़ी) और शकुन चिड़ी (पोदकी) आ उतरी। उपरोक्त शुभ शकुनों के होते चहुवान राजा उम्मेदसिंह बूंदी की ओर बढ़ा।

दोहा

हुलकर माधव हड्डु नृप, हंके सत्वर तत्त।
पुर बुंदिय प्राकार के, बाहिर डेरन पत्त॥२८॥

दुबलाना नामक पुर से मल्हारराव होल्कर, कछवाहा माधवसिंह और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने घोड़े चपल गति से बढ़ाते हुए बूंदी नगर के शहरपनाह के (पास) बाहर पहुँचे और यहीं पड़ाव किया।

पादाकुलकम्

नृप तद्दिन भोजन निम्माये, बुंदिय बिप्र सबहि जिम्माये।
हुलकर पुनि नारव हरनाथहिं, कहि कछुहु किल्ला सन साथहिं॥२९॥

राजा ने यहाँ आ कर पकवान आदि बनवाये और बूंदी के सारे ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज दिया। यहाँ मल्हारराव होल्कर ने नरूका कछवाह हरनाथसिंह को बुलवा कर आदेश दिया कि वह अपने साथियों सहित तुरन्त तारागढ़ दुर्ग को खाली कर दे।

दोहा

नारव हिय चाही नहीं, भट कढ्ढन की बत्त।
बाहिर प्रीति दिखाय बलि, पठयो अनुचर तत्त॥३०॥
ताकी संगहि बाउला, संतू दिय मल्लार।
तारागढ़ पर जाय ते, बुझ्झे कढन विचार॥३१॥
किल्ला के सुभटन कहिय, हम निकसन जब व्हैंहिं।
नारव हरनाथहिं लखहिं, बहुरि चढ्यो हक लैंहि॥३२॥
तब संतू पच्छो मुर्यो, कहिय मलारहिं आय।
नारव यह बंचक निपट, भटनन कढ्ढत जाय॥३३॥

अपने योद्धाओं सहित दुर्ग छोड़ देने की बात नरूका हरनाथसिंह के मन में नहीं जँची। उसने मुस्कराते हुए ऊपर से तो प्रीति का प्रदर्शन किया पर साथ ही अपने एक अनुचर को दुर्ग में भेजा। इस अनुचर के साथ ही होल्कर ने अपने योद्धा संतू बावला को रवाना किया कि तारागढ़ दुर्ग पर जा कर वहाँ से जयपुर के सैनिकों को बाहर निकाल दे। बावला के वहाँ पहुँचने पर नई समस्या आ खड़ी हुई। दुर्ग में रहने वाले सैनिकों ने कहा कि हम किला हरनाथसिंह के साथ छोड़ेगे। अर्थात उसकी अनुपस्थिति में नहीं। दूसरा यह कि दुर्ग छोड़ने से पूर्व हम लोग हमारी बकाया तनख्वाह लेंगे। यह सुन कर संतू बावला वहाँ से चलकर वापस होल्कर के पास आया और कहने लगा कि यह हरनाथसिंह बंचक अर्थात् कपटी है यह दुर्ग से अपने सैनिकों (जयपुर वालों) को नहीं निकालना चाहता है।

दिन्नी संतुव संग तब, हुलकर तुपक हजार।
इन जाय रु हरनाथ वह, लिन्नों पकरि लबार॥३४॥
तिनकी संगहि क़ैद तब, नारव किल्ला जाय।
भीतर के कढ्ढे सुभट, खल परतंत्र खिसाय॥३५॥

मांहिं बीर उम्मेद के, रक्खे बिजय बिथारि।
आयो संतुव पुनि अधर, संभर आन प्रसारि॥३६॥
सित कत्तिय द्वादसि दिवस, कढ्यो कूरम सत्थ।
रक्खे हड्ड नरेस के, सब ठां सुभर समत्थ॥३७॥
झंडे संभर के गडे, पर केतन करि पात।
आन फिरी उम्मेद की, दिस दिस बिजय दिखात॥३८॥

यह सुनते ही होल्कर ने आदेश दिया कि इस हरनाथसिंह को बंदी बना लो। फिर संतू तुम एक हजार तोपों के साथ वापस किले पर जाओ। सुनते ही उस झूठ बकने वाले हरनाथसिंह को बंदी बनाकर संतू बावला उसे तारागढ़ दुर्ग तक लेकर गया। यहाँ पहुँचते ही दुष्ट हरनाथ ने यह सोचकर कि अब परतंत्र हो गए हैं उसने किले के भीतर से अपने सारे सैनिकों को बाहर निकाल लिया। संतू बावला ने दुर्ग खाली हो जाने पर वहाँ हाड़ा राजा के अपने सेवकों को तैनात किया और दुर्ग को फतह कर संतू राजा उम्मेदसिंह के नाम की विजयाज्ञा नगर में फिरवा कर किले से वापिस नीचे आया। कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन अन्ततः बूंदी से कछवाहे सैनिकों को खदेड़ कर सभी जगह हाड़ा राजा के अपने आदमी नियुक्त किए गए। दूसरों के अर्थात जयपुर वाले कछवाहों के ध्वज उतरवा कर संतू ने सभी जगह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के ध्वज फहराये और सभी ओर राजा के नाम की दुहाई फिरवाई।

पादाकुलकम्

तेरसि दिन अभिषेक मुहूरत, मन्यो सबन श्रेय गणकन मत।
बेणीराम भट्ट कोटा सन, आयो करन बेद बिधि सासन॥३९॥
सहित अथर्व त्रयी के पाठक, आनैं संग बिप्र बुध आठक।
सम्मुह जाय भूप बंदन किय, उन सिराहि मंगल आसिख दिय॥४०॥

ज्योतिषियों ने एक मत होकर अगले दिन (अर्थात् त्रयोदशी तिथि के दिन) राजा के अभिषेक का मुहूर्त निकाला। इस अवसर पर अभिषेक की मंगल क्रिया को वैदोक्त रीति से सम्पन्न करवाने के लिए कोटा नगर से वेणीराम भट्ट नामक पंडित को बुलवाया गया। वह वेणीराम भट्ट अपने

साथ तीनों वेदों के आठ जानकार पंडित लाया। इस प्रकार एकत्रित इन सारे पंडितों ने तब एक साथ जाकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को आशीष दे कर उसकी सराहना करते हुए वंदना की।

दोहा

लै गुरु डेरन आय नृप, बारसि रत्ति बिताय।
प्रात चढत रवि इक पहर, प्रविस्यो नगर सुभाय॥४१॥

हुलकर माधव संग हुव, जैपुर सचिव समेत।
चहुवानन पति इम चल्यो, निज अभिषेक निकेत॥४२॥

मंड्यो बनिकन नगर मनि, बसन कनक बिसतार।
बिरह टारि धृति बरस को, किय बुंदिय श्रृंगार॥४३॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह तब अपने इन गुरुओं को अपने साथ लेकर अपने शिविर में आया जहाँ उसने द्वादशी तिथि की रात्रि व्यतीत की और अगले दिन प्रातःकाल एक प्रहर बीत जाने पर शुभ वेला में राजा ने बूंदी नगर में प्रवेश लिया। यहाँ से वह मल्हारराव होल्कर, माधवसिंह कछवाहा और जयपुर के मंत्री को अपने साथ लेकर अभिषेक के स्थल पर आया। इस अवसर पर बूंदी नगर के श्रेष्ठीजनों ने वस्त्रों और स्वर्ण से पूरे नगर को सजाया। लगातार अठारह वर्षों तक अपने स्वामी हाड़ा राजा का वियोग भुगतती बूंदी नगरी ने उस दिन पूरा श्रृंगार किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रे आंवापुरसर्वनिवसनकार्त्तिकव्यत्ययनगंगाधर केशवदास शास्त्रि-शिरोमणिसूर्य्यनारायणराजमंदिरदापनकथनतद बुन्दीन्द्राऽनूरीकरणतन्ते खत्रि कौहक्यतदर्प्पणमल्लारसेटूबुंदीप्रेषणतदकालकूर्म्मकेतनत्रोटनबुन्दी-न्द्रध्वजाऽऽरोपणपलाइतनट्टाणिभागिनेयोक्तकुपितकेशवदासनिस्स-रणहुलकरतदनुनयनपुनःपुरजयपुरपताकीकरणसमयान्तसर्वप्रस्थान-दृष्टशुभशकुनबुन्द्याऽऽगमन मल्लारबलात्कारदुर्गनारवनिस्सारणसूच्चू-लसम्भरबिजयकेतुस्थापन संप्रदायगुर्वागमनकार्त्तिकशुक्लत्रयोदशी दिनद्वितीय प्रहर मुखसाहित्यसहितप्रभुपुरप्रविशनं सप्तविंशो मयूखः॥ आदितः ॥३०८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह चरित्र में सबका आवां नगर में ठहर कर कार्तिक माह बिताना और गंगाधर व केशवदास का शास्त्र शिरोमणि सूर्यनारायण के अर्थ राजमंदिर देने को कहना और बूंदीपति के अस्वीकार करने पर तंते गंगाधर और खत्री केशवदास का उसको छल से देना, मल्हार का अपने उमराव सेटू खैराड़ा को बूंदी भेजना और उसका बिना समय कछवाहे की ध्वजा तोड़ कर बूंदी के पति की ध्वजा रोपना, भागे हुए नाटाणी के भानजे के कहने पर क्रोध करके निकले हुए केशवदास को होल्कर का वापस लाना और बूंदी नगर को फिर से जयपुर की ध्वजा युक्त करना, करार के समय के अंत पर सब के गमन समय शुभ शकुनों को देखकर बूंदी आना, मल्हार का बलपूर्वक नरूके को गढ़ से निकाल कर चहुवान की ऊंची ध्वजा को स्थापित करना, संप्रदाय के गुरु के आगमन से कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी के दिन दोपहर के समय में सब सामग्री सहित राजा के पुर में प्रवेश करने का सत्ताईसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ आठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इम उमेद अधिपति लखत, निज पुर रुचिर निकेत।
पहुंच्यो अग्ग प्रजानकों, दिट्ठि प्रसादहिं देत॥१॥
जहां समरखंधी हन्यों, नृप नारायनदास।
वहै थान अभिसेक को, राजमहल आवास॥२॥
तिहिं मंदिर नृप जायकैं, निज कटिबंध निवारि।
किय बिधान बिप्रन कथित, बेद निकेत बिचारि॥३॥

हे राजा रामसिंह। इस तरह राजा उम्मेदसिंह अपने रुचिर नगर के सुन्दर भवनों की ओर निहारता हुआ आगे अपने प्रजाजनों के मध्य पहुँचा। अपनी प्रजा को अपने राजा को देखने का सुख देता हुआ वह सीधा राजमहलों में अभिषेक स्थल पर आया। यह वही स्थल था जहाँ पूर्व में राजा नारायणदास ने समरखंधी (समरकंद के) यवन को मारा था। यहां अभिषेक मन्दिर में जाकर राजा ने अपना कमरबंध खोला और विधि विधान पूर्वक उसे वेद का घर मानते हुए वे शुभ कृत्य किये जिनके लिए वेद पंडितों ने कहा।

तिल सरिसव संभार तैं, पहिलैं नृपहिं न्हवाय।
अधिपति जय उच्चार किय, गणक पुरोहित राय॥४॥

तदनंतर द्विजबर उभय, जवन झिंथुवराम।
इतरासन बैठे नृपहिं, स्वजन दिखाये ताम॥५॥

नृप तिन जनन बिसासि अरु, बंधन सुरभी छोरि।
संभरपति बुल्ल्यो अभय, बिप्रन उचित बहोरि॥६॥

पंडितों ने सर्वप्रथम राजा को तिल और सरसों के दानों से स्नान करवाया और ज्योतिषियों सहित पुरोहितों ने राजा की जय जयकार की। इसके बाद पंडित द्वय जीवनराम और झिंतुराम ने राजा को दूसरे आसन पर बिठाया। राजा उम्मेदसिंह ने सभी को रक्षा का भरोसा देते हुए खूंटे से बंधी एक गाय को खोल कर छोड़ा। गाय को छोड़ते समय राजा ने गाय के साथ ब्राह्मणों को अभय का वरदान दिया।

पुनि तंहं साक्री सांति किय, पुरोहित स उपवास।
बिसद माल उपबीत इहिं, भूखन सोभित भास॥७॥

उचित मंत्र करि बेदि लिखि, बिधिवत होम बिधाय।
पढैं पंच गन नाम तिन्ह, सुनहु राम नरराय॥८॥

शर्मवर्म अरु स्वस्त्ययन, आयुष्य अभय नाम।
स्वापराजित जु पंचम सु, ए पंच हि प्रभु राम॥९॥

इसके बाद पास ही में उपवास किये हुए पुरोहित ने इन्द्र की शांति की और राजा को आभूषणों के साथ मोटा सा उपवीत (जनेऊ) पहनाया। इसके बाद वेदोक्त विधि-विधान पूर्वक हवन की वेदी बनाकर होम करते हुए हे राजा रामसिंह! उन्होंने जिन पाँच गणों के नामों का उच्चारण किया। वे पाँच नाम इस प्रकार थे पहला शर्मवर्म दूसरा स्वस्त्थयन, तीसरा आयुष्य, चौथा अभय और पाँचवाँ स्वापराजित।

पादाकुलकम्

कलस बहुरि संपातवान किय, पुरट मय रु सुंदर दरसन प्रिय।
नृप सितभूखन लेप माल्य लहि, तदनु वन्हि सन दक्खिन दिसरहि॥१०॥

देख्यो बन्हि निमित्त बिचारन, उठ्यो प्रसन्न सिखा करि धारन।
स्नानसाल पुनि नृपहिं आनि द्विज, सौरभ तैल न्हवायो नृप निज॥११॥

तदनन्तर पंडितों ने स्वर्णनिर्मित एक सुन्दर घडे को भर कर उसे धारायुक्त किया अर्थात् छेद कर जालीदार बनाया जिससे जलधाराएँ निकल सकें। इसके बाद राजा ने हीरो से बने आभूषण धारण किये फिर उसे लेप लगाया गया और मालाएँ पहनाई गईं। इसके बाद राजा अपनी अपसव्य दिशा में अग्नि लेकर रहा, अर्थात् दाहिनी ओर अग्नि के पास रहा। यहाँ से सर्वप्रथम उसने अग्नि की ओर देख कर शुभ शकुन मनाये फिर अग्निस्नान कर वहाँ से उठा। पंडितों ने उसे यहाँ से स्नानागार वाले महल में ले जाकर सुगंधित इत्र-फुलैल से स्नान करवाया।

दोहा

सोध्यो पर्बत अग्र की, मिट्टी तैं नृप मत्थ।
नाकु अग्र की मृत्तिका, लाई श्रवनन तत्थ॥१२॥
हरिमिंदिर की मृत्तिका, नृप उमेद मुख लाय।
इंद्रध्वज थल मृत्तिका, ग्रीवा दिन्न लगाय॥१३॥
राजअजिर की मृत्तिका, हिय लाई करि खंड।
गजरद उद्धृति मृत्तिका सोधे दुव भुज दंड॥१४॥
मिट्टी आनि तड़ाग की, सोधी पिट्ठि समस्त।
नदि संगम की मृत्तिका, लाई उदर प्रसस्त॥१५॥
नदी कूल दुव मृत्तिका, पंसुलीन दुहुं ओर।
मिट्टी गनिका द्वार की, लाई कटि नृप मोर॥१६॥
गजसाला की मृत्तिका, ऊरु उभय सुधराय।
गोसाला की मृत्तिका, दुव नलकीलन लाय॥१७॥
आनि मंदुरा मृत्तिका, पंडी जुगल पखारि।
रथ अरिउद्धृत मृत्तिका, लै दुव चरन सुधारि॥१८॥
सर्ब अंग पुनि सर्ब ए, मिश्रित करि लिपटाय।
पंच गव्य घटतैं बहुरि, दीनों स्नान कराय॥१९॥

स्नान की इस प्रक्रिया में राजा को नानाविध जगह से लाई गई मिट्टी के लेप लगाए गए। किसी पर्वत के आगे की मिट्टी का लेप राजा के मस्तक पर लगाया गया। दीमक के थान (बामले) की मिट्टी का लेप राजा के कानों पर लगाया गया। हरि मन्दिर के आगे की मिट्टी का लेप राजा के मुख पर लगाया गया। इसके बाद इन्द्रध्वज के स्थल (वह स्थल जहाँ पर वर्षा के निमित यज्ञ किया जाए) के आगे की मिट्टी का लेप राजा के गले पर लगाया गया। फिर राजमहल के आंगन की मिट्टी का लेप राजा के ह्रदयस्थल पर लगाया गया। इसके बाद हाथी के दाँत द्वारा उठी हुई मिट्टी का लेप राजा के दोनों भुजदंडों पर लगाया। तड़ाग (तालाब) के मध्य की मिट्‌टी का लेप राजा की पीठ पर और नदियों के संगम की मिट्टी का लेप राजा के प्रशस्त पेट पर लगाया। राजा की पसलियों पर नदी के दोनों तटों से लाई मिट्टी का लेप लगाया गया और गणिका के द्वार की मिट्टी का लेप राजा की कमर पर लगाया। गजशाला की मिट्टी का लेप राजा की दोनों जंघाओं पर लगाया। इसी तरह गोशाला की मिट्टी का लेप राजा के पाँवों की नलियों पर लगाया और मदिरालय से लाई गई मिट्टी का लेप राजा के दोनों पाँवों की पिण्डलियों पर लगाया। रथ के पहिये से उठी हुई मिट्टी का लेप राजा के दोनों चरणों पर लगाया। इसके बाद इन चौदह जगहों से लाई अलग-अलग मिट्टियों को एक साथ मिलाकर राजा के पूरे शरीर पर लगाया गया फिर पंचायत (घृत, दूध, दही, शहद और मिश्री) से राजा को स्नान कराया गया।

पादाकुलकम्

भद्रासन बैठो पुनि भूपति, लगे पढन द्विज वेद महामति।
च्यारि बरन भव सचिव च्यारि जंह, करन लगे अभिसिक्त भूप कंह॥२०॥

पूरब दिस रहि दयाराम द्विज, सघृत कनक घट सिंच्यो नृप निज।
हरदाउत नाहर दक्खिन रहि, सिंच्यो राजत दुग्ध कलस गहि॥२१॥

पटु गोबिंद बनिक रहि पच्छिम, सिंच्यो सदधि ताम्र घट लै तिम।
रहि उत्तर हरजन दासी सुत, सिंच्यो लै मिट्टी घट जल जुत॥२२॥

स्नान की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद राजा भद्रासन (सिंहासन)

पर बैठा और पंडित वेद पढ़ने लगे। फिर चार वर्णों में उत्पन्न चार सचिवों ने राजा का अभिषेक किया। इनमें से पूर्व दिशा में दयाराम नामक ब्राह्मण ने खड़े रह कर स्वर्णनिर्मित घड़े से जो घृत से भरा था राजा को स्नान कराया फिर दक्षिण दिशा में खड़े रह कर हरदावत हाड़ा नाहरसिंह (क्षत्रिय) ने चाँदी से बने कलश से, जो दूध से भरा था से राजा को स्नान कराया। इसी तरह वैश्य (बनिया) गोविन्द ने पश्चिम दिशा में रह कर राजा को ताम्र कलश में भरे दही से स्नान कराया और उत्तर दिशा में दासी पुत्र (शूद्र) हरजन ने मिट्टी के घड़े में भरे जल से राजा को स्नान कराया।

रक्खहु बन्हि सदस्यन उच्चरि, पुनि द्विज घट संपातवान करि।
राजसूय अभिसेक मंत्र कहि, सिंच्यो नृपहिं पुरोहित हित चहि ॥२३ ॥

पुनि व्है बेदीमूल पुरोहित, आय नृपति ढिग सुभ मति सोहित।
सत छिद्रक संपातवान घट, लै पुनि सिंचिय नृपहिं बिहित बट ॥२४ ॥

सर्वोषधि जल पुनि सिर सिंचिय, गंध उदक अभिसेक बहुरि किय।
तदनंतर बीजाभिसेक हुव, पुष्पन सिंच फलन सिंच्यो धुव ॥२५ ॥

यज्ञ करने वाले ऋत्वजों ने राजा के लिए उच्चारण किया कि हे अग्नि! राजा की रक्षा करो। ऐसा कह कर पंडितों ने घड़े से निकलती धाराओं से राजा को स्नान कराया। राजसूय अभिषेक का मंत्र उच्चारित कर पुरोहित ने राजा को स्नान कराया। इसके बाद वेदी के मूल पर आ कर पुरोहितों ने राजा का सान्निध्य लिया और सौ छिद्रों वाले कलश से राजा को उचित मार्ग से स्नान कराया। फिर राजा पर सभी प्रकार की औषधियों वाला जल डाला गया और इसके बाद सुगंधित जल से राजा का अभिषेक किया गया। इसके बाद बीजों से राजा का अभिषेक किया गया फिर पुष्पों और फलों से अभिषेक किया गया।

स्तनन पुनि कुसजलन सिंचि द्विज, बहुरि कुसन मार्जित किय नृप निज।
ऋगबेदी पुनि बिप्र मुदित मन, नृप सिर कंठ लगायो रोचन ॥२६ ॥

च्यारि बरन जल बहुरि रीति करि, सरित तड़ाग कूप जल घटभरि।
कल्पित ठानि च्यारि सागर जल, सिंच्यो नृपहिं निगम मारग भल ॥२७ ॥

गंगा अरु जमुना गिरि निर्झर, इत्यादिक जल पूरि कलस बर।
सिंच्यो नृपहिं समोद समस्तन, दास भाव पुनि करन लगे जन ॥२८ ॥

इसके बाद राजा को रत्नों से और फिर कुश (डाभ) के जल से अभिषेक करवाया गया फिर पंडितों ने राजा को कुश जल से नहलाया। इसके बाद ऋग्वेद के ज्ञानी पंडितों ने प्रसन्न होकर राजा के सिर और कंठ पर गोरोचन लगाया फिर चारों वर्णों के लोगों ने चार प्रकार के जल यथा नदी, तालाब, कुएँ और बावड़ी के जल से घड़े भर कर राजा को स्नान करवाया। तदनन्तर चारों समुद्रों के जल की कल्पना कर वेदोक्त रीति से राजा को स्नान कराया। फिर गंगा, यमुना और पर्वत के झरने के पानी से कलश भरे गए। इस जल से फिर मुदित हो राजा को स्नान कराया गया और सारे लोगों ने दास्य भाव से राजा की आराधना की।

काहू सचिव छत्र गहि लिन्नों, काहू चमर मोरछल किन्नों।
बेत्र लकुट कतिकन कर धारे, बंदिन नाना बिरुद् बिथारे॥२९॥

भई संघ नउबत्ति गान ध्वनि, द्विजन सिराह्यो नृपहिं बेद भनि।
कनक कलस पुनि गणक धारि कर, सिंच्यो भूपहिं अक्खि मंत्र बर॥३०॥

इस समय किसी सचिव ने छत्र पकड़ा तो किसी ने चँवर लिये और कुछ मोरछल पकड़े रहे। कुछ लोगों ने बेंत की लकड़ी से बने डंडे धारण किये। इस समय बंदीजनों ने राजा की स्तुति की। शंख ध्वनि और नोबत बाजों के साथ गायन शुरू हुआ और पंडितों ने वेद की साक्षी में राजा की सराहना की। ज्योतिषयों ने तब फिर से स्वर्णनिर्मित कलश लेकर मंत्रोच्चार के साथ राजा का अभिषेक किया।

प्रायः संस्कृत शब्दमात्रा मिश्रित भाषा

ते कछु वृत्तन बिधि बनाये, सुनहु राम नृप नृपन सुहाये।
सिंचहु सब सुर तोहि नरेश्वर, ब्रह्मा बिष्णु तथैव महेश्वर॥३१॥

वासुदेव अरु संकर्षण पहु, प्रद्युम्न रु अनिरुद्ध हु सिंचहु।
इंद्र अग्नि यम निऋति पासी, पवन धनद कैलास बिलासी॥३२॥

ब्रह्मा सेस दस हि दिकपालक, रक्खहु तोहि भूप अरिसालक।
रुद्र धर्म मनु दक्ष रु रुचि सुनि, श्रद्धा भृगु अत्रि रु वशिष्ट मुनि॥३३॥

सनक सनंदन सनतकुमार हु, पुलह पुलस्त्य मरीचि तथा पहु
कश्यप अरु अंगिरा प्रजापति, ए सिंचहु नृप तोहि महामति॥३४॥

हे राजा रामसिंह! इस समय पंडितों ने स्वनिर्मित विविध छन्द सुना कर राजा को प्रसन्न किया और कहा कि राजा! अब आपका अभिषेक ब्रह्मा, विष्णु, और महेश करेंगे। हे प्रभु! अब आपका अभिषेक वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋति, पासी (वरूण), पवन, कुबेर, कैलाशवासी महेश, ब्रह्मा और शेषनाग सहित दसों ही दिक्पाल आपको शत्रुसंहार करने योग्य रखने हेतु आपका अभिषेक करेंगे। अब हे राजा! आपका अभिषेक रूद्र, धर्मराज, मनु, दक्ष, रुचि, श्रृद्धा, भृगु, अत्रि, वशिष्ट, सनक, सनंदन, सनतकुमार, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, कश्यप और अंगिरा ये सभी प्रजापति करेंगे।

अग्निष्वात्त प्रभाकर ज्योंही, पुनि क्रव्याद बर्हिपद त्योंही।
राज्यपा रु उपहूत सु काली, अग्नि पितर सिंचहु मणिमाली ॥३५॥

लक्ष्मी बेदी सची ख्याति पुनि, अनसूया स्मृति संभूति हु सुनि।
क्षमा प्रीति सन्नति स्वाहा तिम, स्वधा एहु मातर सिंचहु इम ॥३६॥

लक्ष्मी क्रिया कीर्ति धृति पुष्टिहु, मेधा बुद्धि सांति बपु तुष्टिहु।
लज्जा सिद्धि तथा बसु यामी, अरुंधती लंबा नृप नामी ॥३७॥

भानु मुहूर्त्ता विश्वा साध्या, मरुत्वती हु बहुरि आराध्या।
संकल्पा इत्यादि धर्मतिय, सिंचहु संभर तोहि सुजसप्रिय ॥३८॥

अब हे राजा! अग्निष्वात्त, प्रभाकर, क्रव्याद, बर्हिपद, राज्यपा, उपहूत और काली जैसे अग्नि-पितर आपका अभिषेक करेंगे। लक्ष्मी, वेदी, सची, ख्याति, अनुसूय्या, स्मृति, संभूति, क्षमता, प्रीति, सन्नति, स्वाहा, स्वधा जैसी मातृकाएँ आपका अभिषेक करेंगी। इसी तरह लक्ष्मी, क्रिया, कीर्ति, धृति, पुष्ठि, मेधा, बुद्धि, शांति, वपु, तुष्टि, लज्जा, सिद्धि, बसु, यामी, अरुंधती, लम्बा, भानु, मुहूर्त्ता, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, संकल्पा आदि आराध्य धर्मराज की पत्नियाँ, हे सुयशप्रिय चहुवान राजा! आपका अभिषेक करेंगी।

दिति दनु अदिति अरिष्टा अरु मुनि, कद्रू क्रोधवशा प्राधा सुनि।
बिनता सुरभि रु कपिला काला, इतिमुख सिंचहु कश्यप बाला ॥३९॥

पुनि बहुपुत्र सुपुत्रा भामा, करहु बिजय तव बहुरि सयामा।
बिजय कृशाश्व बधू बिरचहु उत, सुप्रभा जया प्रदर्शना जुत ॥४०॥

तिनको पुत्र हु बिजय बढावहु, सिंचहु भूप तोहि हित लावहु।
भानुमती रु बिशाला त्यों पुनि, मनोहरमा रु बाहुदाख्या सुनि ॥४१॥

सिंचहु इती अरिष्टनेमि तिय, पार्थिव तोहि बढावहु हित हिय।
बहुला त्योंहि रोहिणी राधा, अनुराधा एंद्री हतबाधा ॥४२॥

मूल रु दुव आषाढा ज्योंही, अभिजित श्रवण धनिष्टा त्यौंही।
बरुण तारका भाद्रपदा दुव, रेवती रु दस्रभ भरणी धुव ॥४३॥

हे राजा! अब आपका अभिषेक कश्यप की दिति, दनु, अदिति, अरिष्टा, मुनि, कद्रू, क्रोधवशा, प्राधा, विनता, सुरभि, कपिला और काला नामक स्त्रियाँ करेंगी। फिर बहुपुत्रा सपुती भामा और श्यामा आपको विजय दिलाएँगी। कृशाश्व की तीनों वधुएं सुप्रभा, जया और प्रदर्शना आपका अभिषेक करेंगी और इनका पुत्र विजय आपकी विजय कराने में सहायक होगा। इनके बाद अब अरिष्टनेमि की स्त्रियाँ भानुमती, विशाला, मनोरमा और बहुदाख्या आपका हित बढ़ाने को अभिषेक करेंगी। अब हे राजा! बहुला, रोहिणी, राधा, अनुराधा, ऐंद्री, मूला और दो अषाढ़ा (अषाढ़ा और पूर्वअषाढ़ा), अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, वरूण तारका, (पूर्व भाद्रपदा और उत्तर भाद्रपदा) दो भाद्रपदा, रेवती, दस्रभ और भरणी नामक चन्द्रमा की स्त्रियाँ प्रभु! आपके विजय विस्तारण हेतु आपका अभिषेक करेंगी।

बिजय बिथारन काज तोहि पहु, सुधा मयूख प्रिया ए सिंचहु।
मृगी हरि रु मृगचर्मा सुरभा, पूता कपिला दंष्ट्रा सुलभा ॥४४॥

स्वेतभद्रचरिका पुलस्त्य तिय, इती सोहि सिंचहु पुहवीपिय।
श्येनी अरु भासी क्रौंची तिम, धृतराष्ट्रीय पंचमी सुकी तिम ॥४५॥

दिनकर सूत अरुन की ए तिय, सिंचहु हड्डु तोहि करि हित हिय।
आयति नियति रात्रि निद्रापहु, सब संस्थान हेतु ए सिंचहु ॥४६॥

हे राजा! अब पुलस्त्य की स्त्रियाँ यथा मृगी, हरि, मृगचर्मा, सुरभा, पूता, कपिला, दंष्ट्रा, सुलभा और श्वेत भद्रचारिका नामक आपका अभिषेक करेंगी। अब हे राजा! सूर्य के सारथी अरुण की स्त्रियाँ यथा श्येनी, भासी, क्रौंची, धृतराष्ट्री और सुकी ये पाँचों आपका हित चाहती हुई आपका अभिषेक करेंगी। हे राजा! अब आयति, नियति, रात्रि और निद्रा आपकी स्थिति के कारण आपका अभिषेक करेंगी।

सेना उमा सची रु बनस्पति, धूमोर्णा गौरी शिवा निरति।
ज्योत्स्ना बुद्धि नंदिनी बलया, आनृक्या हु तेरहौं सदया ॥४७॥

इती काल के अवयव जानहु, ते तव सिर अभिसेचन तानहु।
रवि ससि कुज बुध गुरु कवि सनि तम, सिंचहु ए ग्रह नव आहिक सम ॥४८॥

स्वयंभुव स्वारोचिष औतम, तामस रैवत चाक्षुष छम।
वैवस्वत सावर्णि दक्षसुत, ब्रह्मसुत रु मनु धर्मसुत हु नुत ॥४९॥

रुद्रपुत्र पुनि रौच भौत्य पहु, ए मनु तोहि चतुर्दश सिंचहु।

हे राजा! अब सैना, उमा, सची, वनस्पति, धूमोर्णा, गौरी, शिवा, निरति, ज्योत्सना, बुद्धि, नंदिनी, बलया, आनृक्या आदि दया सहित काल के तेरहों अवयव आपका अभिषेक करेंगे। हे राजा! अब आपका अभिषेक नवग्रह यथा रवि, चन्द्रमा, कुज, बुध, गुरु, कवि, शनि, राहु (तम) और केतु सभी आपका अभिषेक करेंगे। हे राजा! अब धर्मराज के चौदह बेटे यथा स्वार्यभुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसुत, ब्रह्मसुत, मनु (धर्मसुत), रुद्रपुत्र, रौच और भौत्य आदि ये सभी आपकी स्तुति करते हुए अभिषेक करेंगे।

विश्वभुक रु विश्वप चित्रहु सुनि बहुरि सुशांत सुमुख बिभु त्यों पुनि ॥५०॥
मनोजव रु ओजस्वी बलि जुत, एकतम रु आंतिक पुनि वृष नुत।
कृतिधामा रु दिविष्टक सुचि पहु, देवपाल ए चउदह सिंचहु ॥५१॥

अरु रैवत कुमार रु बर्च्चा, वीरभद्र नंदी हु सुवर्च्चा।
पुरोजवाख्य विश्वकर्मा पहु, सुरन मुख्य तोकौं ए सिंचहु ॥५२॥

हे राजा! अब विश्वभुक्त, विश्वप, चित्र, सुशांत, विभु, मनोजव, ओजस्वी, बलि, एकतम, आंतिक, वृष, कृतिधामा, दिविष्टक और सुचि ये चौदह देवपाल (देवों की रक्षा करने वाले) आपका अभिषेक करेंगे। इसके बाद सात मुख्य देवता रैवत, कुमार, बर्च्चा, वीरभद्र, नंदी, पुरोजवा, विश्वकर्मा आदि प्रभु! आपका अभिषेक करेंगे।

आत्मा रु असुमान दक्ष हु जिम, हविष गविष्ट प्राण पटु ऋत तिम।
सत्य रु आह्य नरेस सुद्धजस, सिंचहु देव अंगिरस ए दस ॥५३॥

क्रुत रु दक्ष बसु सत्य काल मुनि, रोजमान धृतिमान मनुज पुनि।
विश्वदेव काम जुत दस मित, हडु नृपति सिंचहु ए करि हित ॥५४॥

मृगव्याध रु सर्प रु निर्ऋति जिम, अजैकपात रु अ [illegible] ध्न्य।
पुष्पकेतु बुध भरत मृत्यु पहु, किंकिणि स्थाणु रुद्र ए सिंचहु ॥५५॥

हे शुद्ध यश वाले राजा! अब आत्मा, असुमान, दक्ष, हविष, गविष्ठ, प्राण, पटु, ऋत, सत्य, और आह्य ये दस अंगिरस देव आपका अभिषेक करेंगे। इनके बाद क्रतु, दक्ष, बसु, सत्य, काल, मुनि, रोचमान, धृतिमान, मनुज, और काम ये दस विश्वेदेव आपका हितपूर्वक अभिषेक करेंगे। आगे हे राजा! मृगव्याध, सर्प, निऋति, अजैकपात, अहिर्बुध्न्य, पुष्पकेतु, बुध, भरत, मृत्यु, किंकिणि और स्थाणु ये ग्यारह रूद्र आपका अभिषेक करेंगे।

भावन...... सुजन्य सुजन जिम, धाजरु व्यसुत सुवर्णबर्ण तिम।
प्रसव दक्ष आवय ऋतु ए पहु, भृगु अभिधान देवता सिंचहु ॥५६॥

मन मरु प्राण अपान हंस हय, नारायण रु जगद्धित रन नय।
दिविश्रष्ट बिभुचिति तोकों पहु, इते साध्य संज्ञक सुर सिंचहु ॥५७॥

धाता मित्र अर्यमा दृगजग, पूषा शक्र अंश वरुण रु भग।
त्वष्टा बिवस्वान सविता पहु, बिष्णउ बहुरि बारह रवि सिंचहु ॥५८॥

हे राजा! अब भृगु नाम वाले ग्यारह देवता यथा भावन, सुजन्य, सुजन, धाजरू, व्यसुत, सुवर्णबर्ण, प्रसव, दक्ष, आवय, ऋतु आपका अभिषेक करेंगे। अब साध्य नाम वाले बारह देवता मन, मरु, प्राण, अपान, हँस, हय, नारायण, जगद्वित, रन, नय, दिविश्रष्ट और विभुचिति आपका अभिषेक करेंगे। हे राजा! इसके बाद बारह सूर्य यथा धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान, सविता और विष्णु नामक (सूर्य) आपका अभिषेक करेंगे।

एकज्योति द्विज्योति जथा, त्रिज्योति चतुर्ज्योति पुनि तथा।
पंचज्योति एकशक्र हु भल, इंद्र द्विशक्र त्रिशक्र महाबल ॥५९॥

प्रतिसकृत रु मित सम्मित अमित हु, ऋतजित सत्यजित रु सुषेण पहु।
श्येनजित रु अतिमित्र मित्र जिम, पुरुजित धाता अपराजित तिम ॥६०॥

ऋत ऋतवान विधृत ध्रुव ज्योंहीं, बरुण बिदारण ईदृश त्योंहीं।
अन्यादृश एतादृश जानहु, क्रीडन मुनि अमिताशन मानहु॥६१॥

शक्ति महातेजा हु सरभ जुत, महायशा क्षिप धातुरूप नुत।
भीम सहद्युति अतिउक्त सुनय, अनाधृष्य बपु वास काम जय॥६२॥

पुनि बिराट ए इंद्र मित्र पहु, नव जलधि मित मरुतगन सिंचहु।
चित्रांगद रु चित्ररथ जैसैं, चित्रसेन वीर्यवान तैसैं॥६३॥

ऊर्णायु अनय उग्रसेन पुनि, सोम सूर्यवर्च्वा तृष्णप सुनि।
दिविश्चित्र धृतराष्ट्र कीर्णि जिम, कलि अंगिरा दुराध हंस तिम॥६४॥

वृषपर्वा नारद पर्ज्जन्य हु, हाहा हूहू विश्वावसु पहु।
ताम्रक सुरुचि हु गंधर्वन गन, ए नृप सिंचहु तोहि मोद मन॥६५॥

हे राजा! अब उनचास पवन (मरुतगन) जो इन्द्र के मित्र हैं यथा एक ज्योति, द्विज्योति, त्रिर्ज्योति, चतुर्ज्योति, पंचज्योति, एकशक्र, इन्द्र, द्विशक्र, त्रिशक्र, प्रतिसकृत, मित, सम्मित, अमित, ऋतजित, सत्यजित, सुषेण, श्येनजित, अतिमित्र, मित्र, पुरुजित, धाता, अपराजित, ऋत, ऋतवान, विधृत, ध्रुव, वरुण, विदारण, ईदृश, अन्यादृश, एतादृश, क्रीड़न, मुनि, अमिताशन, शक्ति, महातेजा, सरभ, महायशा, क्षिप, धातुरूप, भीम, सहद्युति, अतिउक्त, अनाधृष्य, बपु, वास, काम, जय और विराट नामक आपका अभिषेक करें। हे राजा! इसके बाद चौबीस गंधर्वो का समूह यथा चित्रांगद, चित्ररथ, चित्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, उग्रसेन, सोम, सूर्यवर्च्वा, तृष्णप, दिविश्चित्र, धतराष्ट्र, कीर्णि, कलि, अंगिरा, दुराध, हँस, वृषपर्वा, नारद, पर्ज्जन्य, हाहा, हूहू, विश्वावसु, ताम्रक, सुरुचि नामक गंधर्व मुदित हो आपका अभिषेक करेंगे।

आहुती रु शोभयंती जिम, बेगवती अरु आप्नुवती, तिम।
उर्क रु वेकरि वभ्रु अमृतरुचि, भू रुट भीरु शोचयंती सुचि॥६६॥

भिन्न जाति एते अच्छरि गन, सिंचहु तोहि नरेस कित्तिधन।
अनुत्तमा रंभा बिश्वाची, मनोवती मेनका धृताची॥६७॥

सहजन्या रु स्वरूपा जैसैं, सुकेसी रु पर्णाशा तैसैं।
ऋतुस्थला पुंजिकस्थला पुनि, प्रम्लोचा रु पूर्वचित्ती सुनि॥६८॥

सामवती रु पंचचूड़ाख्या, अरु उर्वशी अनुम्लोचाख्या।
चित्रलेखिका विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा रु सुगंधि सुवर्णा ॥६९॥

सुवपु अदृश्यलक्षणा हेमा, मिश्रकेशि अमिता आहेमा।
रुचिका सुवृत्ता सुबाहु जैसें, सरस्वती रु सुबोधा तैसें ॥७०॥

बहुरि पुंजरीका रु मुदारा, सुराधा रु सुरसा हु सुतारा।
कामला रु सुनृतालया ज्यों, वासोली हंसपादी त्यों ॥७१॥

सुमुखा रतीलालसा इति पहु, अच्छी तोहि अच्छरी सिंचहु।

हे राजा! अब भिन्न भिन्न जाति की बारह अप्सराएँ आहूती, शोभयंती, वेगवती, आप्नुवती, ऊर्के, वैंकरि, वभ्रु, अमृतरुचि, भू, रुट, भीरु और शोचयंती आपका अभिषेक करेंगी। अब आगे अनुत्तमा, रंभा, विश्वाची, मनोवती, मेनका, धृताची, सहजन्या, स्वरूपा, सुकेसी, पर्णाशा, ऋतुस्थला, पुंजिकस्थला, प्रम्लोचा, पूर्वचित्ती, सामवती, पंचचूड़ा, उर्वशी, अनुम्लोचा, चित्रलेखा, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, सुगंधि, सुवपु, अदृश्यलक्षणा, हेमा, मिश्रकेशी, अमिता, आहेमा, रुचिका, सुवृता, सुबाहु, सरस्वती, सुबोधा, पुंडरीका, मुदारा, सुराधा, सुरसा, कामला, सुनृतालया, वासोली, हँसपादा, सुमुखा, रतिलालसा जैसी अच्छी अप्सराएँ आपका अभिषेक करेंगी।

दैत्यराज प्रल्हाद बिरोचन, धन्वी बाण तथा कीरतिधन ॥७२॥
इत्यादिक लै दैत्य दिव्य जल, सिंचहु तोहि हड्डुभूपति भल।
विप्रचित्ति आदिक सब दानव, सिंचहु तोहि मंत्रजित मानव ॥७३॥

हे राजा! अब दैत्यराज प्रल्हाद (प्रहलाद), विरोचन, धन्वीबाण और कीर्तिधन ये सभी दिव्यजल लेकर हाड़ा भूपति आपका अभिषेक करेंगे। इनके साथ ही विप्रचिति आदि सभी दानव जो मनुष्यों को सलाह देने में सदा विजित रहते हैं आपका अभिषेक करेंगे।

हत्य प्रहेस व्यास पुरुषादन, पौरुषेय शैलेंद्र वध रसन।
विद्युत सूर्य सुकेशी मखहा, सिंचहु ए आद्यराक्षस तहा ॥७४॥
बलि सुसिद्ध मणिभद्र सुमन जिम, नंदन अरु कंडूति शंख तिम।
मणिमान रु बसुमान मंदरस, पिंगाक्ष रु प्रद्योत महाजस ॥७५॥

चतुर भीम सर्वानुभूति यम, पद्मचंद्र अरु मेघवर्ण सम।
भूतिमान केतुमान त्यों बर, श्वेत बिपुल त्यों भव्य प्रभाकर॥७६॥

मौलिमान प्रद्युम्न जयावह, कुमुद बलाहक यक्ष पक्ष सह।
विजयाकृति बलाहक सु बीर हु, पद्मनाभ शतजिव्ह सुगंध हु॥७७॥

हिरण्याक्ष पहु पौर्णमास सम, सिंचहु राजवृद्ध ए सत्तम।
शंख रु पद्म मकर कच्छप जिम, कुंद मुकुंद रु महापद्म तिम॥७८॥

नील खर्व ए आय महानिधि, सिंचहु नवहिं बिचारि बेदबिधि।
एकवक्त्र सूचीमुख ज्योंही, छगल बिषाद, उलूखल त्योंही॥७९॥

हे राजा! अब बारह आद्यराक्षस हत्य, प्रहेस, व्यास, पुरुषादन, पौरुषेय, शैलेन्द्र, वध, रसन, विद्युत, सूर्य, सुकेशी, मखहा आदि आपका अभिषेक करें। इसके बाद हे राजा! चौंतीस राजवृद्ध राक्षस जो हैं सुसिद्ध, मणिभद्र, सुमन, नंदन, कंडूति, शंख, मणिमान, वसुमान, मंदरस, पिंगाक्ष, प्रद्योत, महाजस, चतुर, भीम, सर्वानुभूति, पद्मचंद्र, मेघवर्ण, भूतिमान, केतुमान, श्वेत, विपुल, भव्य, प्रभाकर, मौलिमान, प्रद्युम्न, कुमुद, बलाहक, यक्ष, विजयाकृति, वीर, पद्मनाभ, शतजिव्ह, सुगंध, हिरण्याक्ष नामक वे आपका अभिषेक करें! हे राजा! अब आपका अभिषेक वेदोक्त रीति से ये सात महानिधियाँ यथा शंख, पद्म, मकर, कच्छप, कुंद, मुकुंद, महापद्म नील और खरब आ कर करेंगी।

दुष्पूरण ज्वलनांगारक पुनि, कुंभमात्र उपबीर पांसु पुनि।
चक्रखंध रु अकर्ण महामन, पात्रपाणि विपलक ओ स्कंदन॥८०॥

बहुरि वितुंड प्रतुंड इती पहु, तोहि पिसाच जातीहू सिंचहु।
पुनि नाना मुख बाहु सिरोधर, दांत बिबुध अट्टाल सून्यघर॥८१॥

तेहु चतुष्पद पर शिव के गन, सिंचहु तोहु हड्ड धरनीधन।
महाकाल नरसिंह अग्ग करि, सब मातर सिंचहु सुभ जल भरि॥८२।

हे राजा! अब ये सत्रह पिशाच जाति वाले एकवक्त्र, सूचीमुख, छगल, विषाद, उलूखल, दुष्पूरण, ज्वलनांगारक, कुंभमात्र, उपवीर, पांसु, चक्रखंध, अकर्ण, महामन, पात्रपाणि, विपुलक, स्कंदन, वितुंड, और प्रतुंड आपका अभिषेक करें। इसके बाद हे राजा! कई तरह के मुख, बाहु, सिर,

दाँत वाले, सूनी अट्टालिकाओं (खंडहरों) में रहने वाले और चार पाँव वाले जो शिव के गण हैं वे सभी आ कर हाड़ा राजा का अभिषेक करेंगे। महाकाल और नृसिंह को आगे कर ये मात्र शुभ जल से आपका अभिषेक करेंगे।

ग्रहस्कंद नामक विशाख सह, नैगमेय ए सिंचहु गुहग्रह।
डाकिनि योगिनि खेचर भूचर, सिंचहु तोहि समस्त नरेश्वर॥८३॥

गंधकुमार विष्णउ अरु अरुड़ हु, अरुणि महाखग बिनत गरुड़ हु।
संपाती जुत ए सुपर्ण सब, सिंचहु नृप उम्मेद तोहि अब॥८४॥

हे राजा! अब गृहस्कंध और विशाख जैसे गुह्य ग्रह आ कर निगमानुसार आपका अभिषेक करें। हे राजा! इसके बाद डाकिनियाँ, योगिनियाँ, खेचरी, भूचरी सभी आ कर आपका अभिषेक करें। इसी प्रकार आपका अभिषेक करने महाखग यथा गंधकुमार, विष्णु, अरूड़, अरुणि, विनत, गरुड़ और संपाती आयें और वे सुपर्ण राजा उम्मेदसिंह का सिंचन करें।

शेष अनंत बासुकि रु बामन, कुंभ अंजनोत्तम तक्षक गन।
सुपर्णारि एरावत अहिबर, महापद्म कंबल रु अश्वतर॥८५॥

महानील धृतराष्ट्र बलाहक, एलापत्र खड्ग कर्कोटक।
महाकर्ण गंधर्व सनस्विक, पुष्पदंत नहुष रु पद्म कुलिक॥८६॥

खररोमा रु कुमार.धनंजय, शंखपाल अरु पाणि गरलमय।
इत्यादिक सब आय नाग बर, सिंचहु तोहि महीप धर्मधर॥८७॥

ऐरावत अरु कुमुद पद्म जिम, पुष्पदंत बामन अंजन तिम॥८८॥

हे राजा! अब शेष, अनंत, वासुकि, बामन, कुंभ, अंजनोत्तम, तक्षक, सुपर्णारि, ऐरावत, महापद्म, कंबल, अश्वतर, महानील, धृतराष्ट्र, बलाहक, एलापत्र, खड्ग, कर्कोटक, महाकर्ण, गंधर्व, सनस्विक, पुष्पदंत, नहुष, पद्म, कुलिक, खररोमा, कुमार, धनंजय, शंखपाल, पाणि जैसे सभी श्रेष्ठ नाग आ कर आपका अभिषेक करें। हे राजा! ऐरावत, कुमुद, पद्म, पुष्पदंत, बामन, अंजन, सुप्रतीक और नील जैसे महागज आपको अच्छी जगह पर रखें।

बिधिहंस रु शिववृषभ प्रीति धरि, उच्चैश्रवा हय रु धन्वंतरि।
कौस्तुभ शंख चक्र त्रिशिखाख्य हु, बज्र रु नंदक अस्त्र समाख्यहु॥८९॥

अवनिप तोहि संचिकैं ए सब, बिजय बिथारहु तावकीन अब।
वृद्धशाखा तप यश दम, सत्य दान मख ब्रह्मचर्य शम॥९०॥

आयु रु चित्रगुप्त ए जेते, सिंचहु तोहि कहे श्रुति तेते।
दंड रु पिंगल मृत्यु काल पहु, अंतक बालखिल्य जय मंडहु॥९१॥

हे राजा! आप पर ब्रह्मा का हँस और शिव का वृषभ प्रीति धरे। उच्चेश्रवा अश्व और धन्वंतरि आपकी रक्षा करें। इसी तरह कौस्तुभमणि, शंख, चक्र, त्रिशिखा, वज्र और नंदक नामक अस्त्र आपकी रक्षा करें। ये सारे हे राजा! आपका सिंचन कर आपकी विजय के विस्तार में सहायक बनें! हे राजा! श्रुति जिन्हें कहती हैं वे वृद्धशाखा, तप, यश, दम, सत्य, दान, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, शम, आयु और चित्रगुप्त सभी आपका अभिषेक करें। इसी प्रकार हे राजा! दंड, पिंगल, मृत्यु, काल, अंतक, और बालखिल्य आपकी जय में सहायक हों!

दिग्गो च्यारि सुरभि पुनि ज्योंही, सब गायन जुत सिंचहु त्योंही।
व्यास नाकुभव शमन पराशर, देवल पर्बत भार्गव तप पर॥९२॥

जाबालि जमदग्नि योगेश्वर, कण्व कुशारणि वेदवाह बर।
शुचिश्रवा गाधेय रु बर्द्धन, शूलकछप अत्रि रु कात्यायन॥९३॥

बिदूरथ रु एकत बलाक द्वित, गौतम भरद्वाज कुटिमृड त्रित।
शांडिल्य रु मौद्गल्य रु गालव, वृहदश्व रु इभसुत सारंगव॥९४॥

यवक्रीत जयजानु घटोदर रैभ्य आत्मधामा जैमिनि बर।
कुंभज दुंदु रु मृदु शुचि तपमय, इध्मबाहु मृष बहुरि महोदय॥९५॥

एते मुन्दि अभिसेक रक्कि रति, सिंचहु तोहि उमेद महीपति।

हे राजा! चारों दिशाएं और सुरभि (कामधेनु) आकर गानयुक्त हो आपका अभिषेक करें। हे राजा! अब व्यास, नाकुभव (वाल्मीकि), शमन, पराशर, देवल, पर्वत, भार्गव, जाबालि, जमदग्नि, योगेश्वर (याज्ञवल्क्य), कण्व, कुशारणि, वेदवाह, शुचिश्रवा, गाधेय, वर्द्धन, शूलकच्छप, अत्रि, कात्यायन, विदूरथ, एकत, बलाक, द्वित, गौतम, भारद्वाज, कृटिमृड, त्रित, शांडिल्य, मौद्गल्य, गालव, वृहदश्व, इभसुत, सारंगव, यवक्रीत, जयजानु, घटोदर, रैम्य, आत्मधामा, जैमिनी, कुंभज (अगस्त्य), दुंदु, मृदु, शुचि, इध्मबाहु और मृध जैसे प्रसिद्ध मुनि आ कर आपका अभिषेक करें।

पृथु दिलीप दुक्खत भरत अथ, मुन ककुत्स्थ युवनाश्व जयद्रथ ॥९६ ॥
अनेना रु मांधाता ज्योंही, शत्रुजित रु मुचकुंद हु त्योंही।
पुरुरवा इक्ष्वाकु रु यदु पुनि, अंबरीष नाभाग तथा सुनि ॥९७ ॥
भूरिश्रवा महाहनु पुरु जिम, वृहदश्व रु सुद्युम्न भूप तिम।
भूरिद्युम्न तथा प्रद्युम्न हु, संजय पुनि इतिमुख नृप सिंचहु ॥९८ ॥
परजन्यादि मेघ नाना तरु, औषधि रत्न अनेक बीज बरु।
पुरुष अभ्रमेयांग भूत सर, भू जल तेज अनिल अरु अंबर ॥९९ ॥
मन बुद्धि रु अव्यक्तात्मा पहु, एहु तोहि हडुन पति सिंचहु।
रुक्यभौम अरु शिलाभौम जिम, पातालाख्य नीलवृत्तिक तिम ॥१०० ॥
पीत रक्त सित असित भौम सब, अभिसिंचहु इत्यादि तो हि अब।
जंबू शाक क्रौंच कुश पुष्कर, प्लक्ष शाल्मली देहु स्वाम्य बर ॥१०१ ॥

हे राजा! पृथु, दिलीप, दुष्यंत, भरत, ककुस्थ, युवनाश्व, जयद्रथ, अनेना, मांधाता, शत्रुजित, मुचुकुंद, पुरुरवा, इक्ष्वाकु, यदु, अंबरीष, नाभाग, भूरिश्रवा, महाहनु, पुरु, वृहदश्व, सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, प्रद्युम्न, संजय इत्यादि राजा लोग आपका अभिषेक करें। इनके अतिरिक्त परजन्यादि मेघ, नाना प्रकार के तरुवर, औषधि, रत्न, श्रेष्ठ बीज, पुरुष अभ्रमेयांग और पांच तत्व यथा भू, जल, तेज (अग्नि), अनिल और अंबर सहित मन, बुद्धि और अव्यक्तात्मा ये सभी हे हाड़ा राजा! आपका सिंचन करें। हे राजा! इसी तरह रुक्यभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलवृत्तिक, पीत, रक्त, सित, असित सभी प्रकार की भूमि आपका अभिसिंचन करें। आगे जंबू, शाक, क्रौंच, कुश, पुष्कर, प्लक्ष, शाल्मली जैसे द्वीप आपको श्रेष्ठ वरदान देकर आपका अभिषेक करें।

उत्तर कुरु एरावत अपहुत, केतुमाल भद्राश्व इलावृत।
त्यों हरिवर्ष किंपुरुष भारत, रम्य खंड सिंचहु हित धारत ॥१०२ ॥
इंद्रद्वीप कशेरु तथा पुनि, ताम्रपर्णा रु गभस्तिमान सुनि।
नागद्वीप सौम्य गंधर्व हु, वरुण अभय ए द्वीपहु सिंचहु ॥१०३ ॥
हेमकूट हिमवान निषध गिरि, नील श्वेत अरु शृंगवान फिरि।
मेरु गंधमादन महेन्द्र जिम, माल्यवान अरु मलय सह्य तिम ॥१०४ ॥

शुक्तिवान गिरि ऋक्षवान, सुनि, विंध्याचल गिरि पारियात्र पुनि।
इत्यादिक सब पुण्य महीधर, सिंचहु तोहि महीपति संभर ॥१०५॥
ऋक यजु साम अथर्व च्यारि श्रुति, सिंचहु तोहि प्रसन्न पाय नुति।
इतिहास धनुर्वेद आयु पहु, पुनि गंधर्व शिल्प उपवेदहु ॥१०६॥

हे राजा! अब पृथ्वी के नवखंड यथा उतरकुरु, ऐरावत, पाप नाशक केतुमाल, भद्राश्व, इलावृत, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारत और रम्य खंड सभी हितपूर्वक आपका अभिषेक करेंगे। अब हे राजा! सारे नवद्वीप यथा इन्द्रद्वीप, केसेरू, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व, वरुण और अभयद्वीप आपका अभिसिंचन करें। हे राजा! अब हेमकूट, हिमवान, निषध, नीलगिरि, श्वेत, श्रृंगवान, सुमेरू, गंधमादन, महेन्द्र, माल्यवान, मलयगिरि, सह्याद्री, शुक्तिवान, ऋक्षवान, विंध्याचल, पारियात्र आदि सभी सोलह पर्वत आपका अभिषेक करें। यही नहीं ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थवेद (चारों वेद) आपकी स्तुति से प्रसन्न हो कर आपका अभिषेक करें! इनके साथ पाँचों उपवेद यथा इतिहास, धनुर्वेद, आयुर्वेद, गंधर्ववेद, शिल्पवेद आपका अभिषेक करें।

शिक्षा कल्प व्याकरण ज्योंही, ज्योतिष छंद निरुक्त हि त्योंही।
सिंचहु अंग बेद के ए खट, तोहि भूप उम्मेद बिहित बट ॥१०७॥
ए खट अंग रु बेद च्यारि पुनि, मीमांसा स्मृति न्याय तथा सुनि।
अरु पुराण बिद्याहु चतुर्दस, सिंचहु ए नृप तोहि महाजस ॥१०८॥
पांचरात्र अरु वेद पाशुपत, कृतांत पंचक सांख्य योग मत।
बिबिधि शास्त्र इत्यादि नरेश्वर, सिंचहु तोहि दिव्य जल घट कर ॥१०९॥
गायत्री गंगा गांधारी, जय बुल्लहु महाशिवा नारी।
सुर दानव गंधर्ब यक्ष पुनि, राक्षस पन्नग मुनि मनु गो सुनि ॥११०॥
देवन की माता पुनि ज्योंही, देव की पतनी सब त्योंही।
द्रुम रु नाग दैत्य रु अच्छरि गन, अस्त्र शस्त्र राजा अरु बाहन ॥१११॥
ओषध रत्न काल अवयव जिम, स्थानक पुण्य आयतन सब तिम।
जीमूत रु जीमूतबिकार हु, उक्त अनुक्त बिजय बिसतारहु ॥११२॥

हे राजा! अब शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त वेदों के इन खट अंगों सहित मीमांसा, स्मृति, न्याय, पुराण और चारों वेदों की विद्या इस तरह आपको महायश दिलाने वाली चौदह प्रकार की विद्याएँ आपका अभिषेक करें। इनके अलावा पाँचरात्र, वेद पाशुपत, पंच-कृतांत, सांख्य और योग मत जैसे विविध मतों के शास्त्र आपका दिव्य जल से अभिषेक करें! गायत्री, गंगा, गांधारी और महाशिवा जैसी नारियां आपकी जयकार करती हुई आपका अभिषेक करें। इस तरह सुर, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, मुनि, मनु, गो, देवों की माताएँ, देवों की पत्नियां, द्रुम, नाग, दैत्य, अप्सराएँ, अस्त्र, शस्त्र, राजा, वाहन, औषधि, रत्न, काल, अवयव, स्थानक, पुण्य, आयतन, जीमूत, जीमूतविकार आदि आपकी विजय के विस्तार की कामना करें।

लवणोद रु दुग्धोद घृतोदक, दधिमंडोद तथा मद्योदक।
इक्षुरसोद रु सुद्धोदक बर, गर्भोदक सिंचहु ए सागर॥११३॥

बहुरि च्यारि सागर निज जल करि, सिंचहु तोहि कनक मय घट भरि।
प्रयाग नैमिष प्रभास पुष्कर, उत्तरमानस तथा ब्रह्मसर॥११४॥

नंदकुंड गयशीर्ष पंचनद, कालोदक रु स्वर्गमार्गप्रद।
त्योंहि अमरकंटक भृगुतीरथ, कलिकालाश्रम अग्नितीर्थ अथ॥११५॥

गोतीर्थ रु तृणबिंदुकृताश्रम, जंबूमार्ग रु तंडुलिकाश्रम।
स्वर्ग कपिल तीरथ अरु वातिक, त्यों आगस्त्य महासर खंडिक॥११६॥

अंगद्वार कुमारीतीरथ, कुशावर्त्त विल्वक अघहरकथ।
नील रैवत रु अर्बुद पर्बत, शाकंभरी सुगंधी मुनि मत॥११७॥

कुब्जाम्रक भृगुतुंग रु कनखल, धारा कुंभा कपिलाश्रम भल।
अन्नतुंग अरु चमसोद्भेदन, अश्वगंध कालंजर बिनशन॥११८॥

रुद्रक अणि केदार मोच, जिम महालय रु बदरीआश्रम तिम।
नंदा ससितीरथ रवितीरथ, वासवतीरथ नासत्यक अथ॥११९॥

वरुण वायु वैश्रवण तीर्थ पुनि, द्रुहिण ईश यम अनल तीर्थ सुनि।
बिरूपाख्यतीरथ पवित्र जिम, धर्मतीर्थ अच्छरितीर्थ हु तिम॥१२०॥

रुचिरा

ऋषि वसु साध्य मरुत आदित्यक रुद्र अंगिरस तीर्थ जिते।
विश्वेदेवतीर्थ भृगुतीर्थ रु प्लक्षप्रस्रवण सकल तिते।
मानससर बाराहसरोवर सालिग्रम सरोवर हू।
कामाश्रम रु सपूर्व सुपुत्रा त्योंही त्रिकूट महावरहू॥१२१॥

चिद्रकूट क्रतुसार विष्णुपद कापिल वासुकि तीर्थ महा।
सिंधूत्तम सूर्यारक कुंभक पुंडरीक अविमुक्त तहा।
तपोद्वार सिंधूदधिसंगम गंगासागर संगम हू।
अच्छोदक रु बिंदुसर मानस फल्गुतीर्थ सु मनोरमहू॥१२२॥

लौहित्यक कुंभावसुंद पुनि धर्मारण्वक पुनि नमने।
वस्त्रापथ रु छागलेयक तिम वदरीपाबन भव्यमने।
बन्हितीर्थ अरु मेषतीर्थ नृप हड्डु सप्तऋषितीर्थ जुपै।
पुष्पन्यास कार्णश्व हंसपद, अश्वतीर्थ मणिमंथ सुपै॥१२३॥

हीरकम्

दिविका अरु इंद्रमार्ग स्वर्णबिंदु सिष्टजो।
आहल्लक ऐरावत करबीर हु इष्ट जो।
भोगयश वणिक नागम ऋणमोचनकाख्य हू।
पापमोचनिक उद्वेजन संपूज्याख्य हू॥१२४॥

देवब्रह्मसर धृतसर दधिसरवर नाम जे।
सिंचहु इत्यादि सकल तीरथ सुख धाम जे।
मंडहु जय ए नरेस मेटहु अघ सर्ब कों।
तावक बिथराय तेज खंडहु अरि बर्गकों॥१२५॥

हे राजा! अब लवणोद, दुग्धोद, घृतोदक, दधिमंडोद, मद्योदक, इक्षुरसोद, सुद्धोदक, गर्भोदक ये आठों समुद्र आपका अभिसिंचन करें! इनके अतिरिक्त चारों सागर अपने जल को कनक निर्मित घट मे भर कर आपका सिंचन करे! हे राजा! अब प्रयाग, नैमिषारण्य, प्रभास, पुष्कर, उत्तरमानस, ब्रह्मसर, नंदकुंड, गयशीर्ष, पंचनद, कालोदक, स्वर्गमार्गप्रद,

अमरकंटक, भृगुतीर्थ, कलिकालाश्रम, अग्नितीर्थ, गोतीर्थ, तृणबिंदुकृताश्रम, जंबू मार्ग, तंडुलिकाश्रम, स्वर्गतीर्थ, कपिलतीर्थ, वातिक, आगस्त्य, महासर, खंडिकतीर्थ, अंगद्वार, कुमारीतीर्थ, कुशावर्त्त, बिल्वक, शाकंभरी, सुगंधी, नील-रैंवत, अर्बुद-पर्वत-तीर्थ, कुब्जम्रक, भृगुतुंग, कनखल, धारातीर्थ, कुंभा, कपिलाश्रम, अन्नतुंग, चसमोद्भेदन, अश्वगंध, कालंजर, विनशन, रुद्रक, अणि, केदार, मोचतीर्थ, महालय, बद्रीआश्रम, नंदातीर्थ, शशितीर्थ, रवितीर्थ, वासव तीर्थ, नासत्यक, वरुण, वायुतीर्थ, वैश्रवण, द्रुहिणतीर्थ, ईश, यमतीर्थ, अनल, विरुपाख्य (विरूपतीर्थ), धर्मतीर्थ, अच्छरितीर्थ, ऋषि, वसु, साध्य, मरुत, आदित्यक, रुद्रतीर्थ, अंगिरस, विश्वदेव, प्लक्ष प्रस्रवण, मानससर, वाराह सरोवर, शालिग्राम सरोवर, कामाश्रम, सपूर्व, सुपुत्रा, त्रिकुट, चित्रकूट, क्रतुसार, विष्णुपद, कापिल, वासुकितीर्थ, सिंधुतम, सूर्यारक, कुंभकतीर्थ, पुंडरीक, अविमुक्त, तपोद्वार, सिंधूदधिसंगम, गंगासागर संगम, अच्छोदक, बिंदुसर, मानस, फल्गुतीर्थ, लौहित्यक, कंभावसुंद, धर्मारण्यक, वस्त्रापथ, छागलेयक, बन्हितीर्थ, मेषतीर्थ, सप्तऋषितीर्थ, पुष्पन्यास, कार्णश्व, हँसपद, अश्वतीर्थ, मणिमंथ, दिविका, इन्द्रमार्ग, स्वर्णबिन्दु, आहल्लक, ऐरावत, करबीर, भोगयशतीर्थ, वणिक, नागम ऋणमोचनक, पापमोचनिक, उद्वेजन, संपूज्य, देव-ब्रह्मसर, घृतसर, दधिसरवर आदि सभी तीर्थ जो स्वयं सुख के धाम हैं ये सभी आपकी जय की कामना करते हुए सारे पापों का नाश कर, आपके तेज का प्रसार कर शत्रुसंहार कराने वाले हैं। ये सभी आपका सिंचन करें।

हरिगीतम्

गंगा रु ह्रदिनी ह्लादिनी सीता रु चक्षु नदी जथा।
तिम कांचनाक्षी सुप्रभा रेवा रु सिंधु ह्रदा तथा।
अघओघ अंकुस पावनी विमलोदका पुनि जानिये।
क्षिप्रा रु शोण रु तर्ष सरयू चंद्रभागा मानिये ॥१२६॥

धूमा सरस्वति ओघनादा गंडकी रु इरावती।
पीता बिशाला मानसी रंभा हु सुद्ध सुहावती।
केशा सुबेशा देविका रु सिवा विभागा पावनी।
यमुना देवह्रदा बितस्ता कौशिकी पुनि मुनि मनी ॥१२७॥

चर्मण्वती रु विदर्भिका कुंती रु अच्छोदा धुनी।
तपती रु निर्विंध्या तृतीया वंदना श्रुतिमें सुनी।
सुरसा रु इक्षुमती अवंती धूतपापा गौमती।
पुनि शोण इक्षुकि वेदमाता बाहुदारु सरस्वती ॥१२८॥
श्येनी रु पर्णाशा कुमुद्वति वेदघुर्घुरदा तथा।
पुनि सदानीरा त्योंहिं बेणुमती रु देवस्मृति तथा।
मंदाकिनी रु पलाशिनी रु पिसाचिकी पुनि पिप्पली।
तृपिका दशार्णा सिंधुरेखा त्योंहिं करतोया भली ॥१२९॥
दूजी कुमुद्वतिका शिनीवाली कुहू पुनि मंजुला।
चित्रोपला अरु चित्रवर्णा शुक्ति मीला वाकुला।
ताप्ती कपू अमला पयोष्णी मंदरा निषधावती।
वेणा सिता दूजी हु निर्विंध्या रु भीमा कुंती ॥१३०॥
तोया रु वैतरणी महागोरी रु गोदा मंगला।
नृसमा रु भीमरथी रु जंबू कृष्णाबर्णा सज्जला।
पुनि तुंगभद्रा हु तरंगिनि मंदगा रु भयंकरा।
वात्या रु कावेरी रु कृतमाला हु मुक्तिद संबरा ॥१३१॥
पुनि ताम्रपर्णी पुष्पभद्रा उत्पलावति मद्रनी।
त्रिदिवालया अरु वंशधीरा लांगुली सुभगा घनी।
सुकुलावती ऋषिका रु ऋषिकुल्या रु बरबेगा क्षया।
दूजी पयोष्णी मंदबाहिनि कालबाहिनि त्यों दया ॥१३२॥
व्योमा रु देवी त्यों बिशाला कंपला रु सुवाहिनी।
दूजी हू करतोया रु बेत्रवती सुभद्रा हू गिनी।
ताम्रा रु अरुणा सुप्रकारा अद्रिका रु हिरणमई।
पुनि सुप्रकारा दूसरी इषमा रु अश्ववती नई ॥१३३॥
आलोपला अरु आयगा भासी रु संध्या भूप जे।
शाला रु बड़वा मालिका बलयावंती हु अनूपजे।
रु महेंद्रवाणी बाहुदा दूजी रु नीलोद्धतकरा।
बनवासिनी नंदा रु परनंदा सुनंदा अघहरा ॥१३४॥

बसुवासिनी पुनि आपगा इत्यादि सब यंहं आयकैं।
जल पाप नासक बिबिधि निज निज दिव्य घट भरि लायकैं।
उम्मेद नृप बर तोहि सिंचहु मंत्र इहि गति बुझ्झिकैं।
संपातवान हिरण्य घट गहि सिंचयो हित खुझ्झिकैं ॥१३५॥

हे राजा! अब नदियाँ आकर आपका अभिषेक करें जिनमें गंगा, ह्लदिनी, ह्लादिनी, सीता, चक्षु, कांचनाक्षी, सुप्रभा, रेवा, सिंधु, ह्रदा, पावनी, विमलोदका, क्षिप्रा, शोण, तर्प, सरयू, चन्द्रभागा, धूमा, सरस्वती, ओघनादा, गंडकी, इरावती, पीता, विशाला, मानसी, रंभा, केशा, सुवेशा, देविका, शिवा, विभागा, यमुना, देवह्रदा, वितस्ता, कौशिकी, चर्मण्वती, विदर्भिका, कुंती, अच्छोदा, तासी, निर्विंध्या, वंदना, तृतीया, सुरसा, इक्षुमती, अवंती, धूतपापा, गोमती, इक्षुकि, वेदमाता, बाहुदारू, श्येनी, पर्णाशा, कुमुद्वति, वेदघुर्घुरदा, सदानीरा, वेणुमती, देवस्मृति, मंदाकिनी, पलाशिनी, पिशाचिकी, पिप्पली, तृपिका, दशार्णा, सिंधुरेखा, करतोया, कुमुद्वतिका (दूसरी), शिनीवाली, कुहू, मंजुला, चित्रोपला, चित्रवर्णा, शुक्ति, मीला, वाकुला, तापी, कपु, अमला, पयोष्णी, मंदरा, निषधावती, वेणा, (दूसरी) निर्विंध्या, भीमा, दुर्गती, तोया, वैतरणी, महागोरी, गोदावरी, मंगला, भीमरथी, नृसमा, जंबू, कृष्णवर्णा, तुंगभद्रा, मंदगा, भयंकरा, वात्या, कावेरी, कृतमाला, संबरा, ताम्रपर्णी, पुष्पभद्रा, उत्पलावती, मद्रनी, त्रिदिवालया, वंशधीरा, लांगुली, सुकुलावती, ऋषिका, ऋषिकुल्या, बरवेगा, क्षया, पयोष्णी (दूसरी) मंदवाहिनी, कालवाहिनी, दया, व्योपा, देव, विशाला, कंपला, सुवाहिनी, वेत्रवती, (दूसरी) करतोया, सुभद्रा, ताम्रा, अरुणा, सुप्रकारा, अद्रिका, हिरण्यमई, इषमा, अश्ववती, आलोपला, आयगा, भासी, संध्या, शाला, बड़वा, मालिका, बलयावती, महेन्द्रवाणी, बाहुदा, नीलोद्वतकरा, वनवासिनी, नंदा, परनंदा, सुनंदा, वसुवासिनी और अघहरा हों। ये सभी पापनाशक नदियां अपने-अपने दिव्य घट में जल भर लाकर श्रेष्ठ राजा हे उम्मेदसिंह! आपका अभिषेक करें! ऐसा मंत्रों में कह कर सारी नदियों का पानी एक स्वर्णनिर्मित कलश में भरा गया जिससे धाराएँ निकलती थी और उससे राजा का सिंचन किया गया।

वह कलस बर सब मिश्र जल जुत सर्व औषधि जल भर्यो।
सबगंध बीज प्रसून फल मणि नीर पूरित जो कर्यो।
सित सूत्र वेष्टित कंठ जो सितवस्त्र कर्त्तन चित्रयो।
पुनि छीर वृच्छलतातपत्रक सुद्ध हाटक जो भयो ॥१३६ ॥

वह कलस लै तब गणक पुंगव उक्त मंत्र सुनाय कैं।
सिंच्यो नरेसहिं स्वास्ति पढि इम वेद रीति बिधाय कैं।
पुनि गंधतैलन अंग उब्बटि सुद्ध न्हानहु मंडयो।
सित बस्त्र धरि छवि मुकुर घृत बिच देखि जो द्विज कों दयो ॥१३७ ॥

दधि दुब्ब चंदन कुंकुमादिक द्रव्य मंगल भूप लैं।
हरि पूजि हाटक मूर्त्तिमैं उपचार अष्टि अनूप लै।
मधुपर्क भूखन वस्त्र कै गणक रु पुरोहित पूजये।
पुनि बिप्र इतरहु पूजिकैं उनकेहु आशिष व्हां लये ॥१३८ ॥

उस कलश में सारे स्रोतों से लाया गया जल भरा गया जो सारी औषधियों से युक्त था। इस जल में फिर बीज, पुष्प, फल, मणियाँ और सुगंधित द्रव्य मिलाया गया। इसके बाद इस कलश के कंठ में श्वेत रंग के कपड़े से बनी झालर पहनाई गई। शुद्ध स्वर्ण से बने इस घड़े में फिर दूध, वृक्षों के पत्ते और लताएँ मिलाई गई। इस प्रकार तैयार किये गए घड़े को तब ज्योतिषियों ने हाथ में उठा कर उसे मंत्रसिक्त किया फिर वेदोक्त विधि-विधान से स्वस्ति वाचन करते हुए राजा के शरीर पर उसके जल को उड़ेला गया। फिर राजा को सुगंधित इत्र-फुलैल युक्त उबटन लगा कर नहलाया गया। राजा ने स्नान के बाद अपना प्रतिबिम्ब पहले दर्पण, बाद में घी से भरे बर्तन में निहारा। इसके बाद वह घी से भरा बर्तन ब्राह्मणों को दिया गया। तदनन्तर राजा ने दही, दूब, चंदन और कुमकुम जैसी पवित्र सामग्री अपने हाथ में ले कर स्वर्णनिर्मित श्री हरि की प्रतिमा का षोड़स उपचारों सहित अनुपम रूप से पूजन किया। इष्ट देव की पूजा के बाद शहद, आभूषण और वस्त्रों से ज्योतिषि और पुरोहित की पूजा की। इस क्रम में आगे राजा ने इतर ब्राह्मणों की अर्चना कर उनसे आशीर्वाद पाया।

दोहा

बिहित पट्ट बिप्रन तदनु, बंध्यो नृपति ललाट।
बंध्यो पुनि मनिगन जटित, नृप सिर मुकुट सुघाट ॥१३९॥

वृष मार्जार तरक्षु की, बहुरि सिंह की खाल।
तर ऊपर क्रमतें तबहि, डारी मंच बिसाल ॥१४०॥

तिन ऊपर उत्तम बसन, दीनों बिसद बिछाय।
पुरोहित सु तिहिं मंच पर, दयो नृपहिं बैठाय ॥१४१॥

द्वास्थ दिखाये पुनि नृपहिं, सचिव पौरजन व्रात।
बनिक प्रकृति इत्यादि सब, कहि कहि किति सुहात ॥१४२॥

इसके बाद ब्राह्मणों ने राजा के ललाट पर एक पट्टिका बांधी और उस पर तब रत्नजटित सुन्दर घड़ा हुआ मुकुट बांधा गया। फिर मंच पर पहले बैल की खाल बिछाई गई उस पर बिल्ली की खाल की तह लगाई। उस पर चीते की खाल बिछा कर ऊपर सिंह की खाल बिछाई गई। खालों से बने इस मंच पर एक श्वेत रंग का उत्तम वस्त्र बिछाया गया। इस प्रकार निर्मित मंच पर तब राजा को पुरोहित ने ले जाकर बिठाया। इस अवसर पर तब राजा के समक्ष द्वारपाल, राजा के परिजन और मंत्रियों के समूह को लेकर आया। इनके बाद प्रजाजन और बनिक समुदाय के लोग राजा के समक्ष लाये गए जिन्होंने राजा की कीर्ति का बखान करते हुए अपने स्वामी के दर्शन किए।

आम बसन गज हय कनक, गो अज अवि गृह अप्पि।
गणक पुरोहित उभय पुनि, पूजे नृप हित थप्पि ॥१४३॥

त्योंहि तीन ऋक साम यजु, पाठक पूजे बिप्र।
गोरस मोदक करि बहुरि, सबहि जिमाये छिप्र ॥१४४॥

रजत कनक गो बस्त्र तिल, अन्न पुष्प फल हेम।
भूमि दान इत्यादि सब, दिय बिप्रन हित छेम ॥१४५॥

पुनि करि अग्गि प्रदच्छिना, धनुख बान कर धारि।
परसि पिट्ठि वृष धेनु की, गुरु बंदन उच्चारि ॥१४६॥

फिर राजा ने राजज्योतिषि और राजपुरोहित दोनों की पूजा कर उन्हें गाँव की जागीर, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, स्वर्ण मुहर, गाय, बकरी, भेड़ और निवास प्रदान किए। इसी प्रकार आगे राजा ने ऋक्, साम और यजुर्वेद के पाठक बने हुए ब्राह्मणों की अर्चना की और सभी को लड्डुओं और मक्खन का भोजन करवाया। भोजनोपरान्त इन ब्राह्मणों को सोना, चांदी, गाय, वस्त्र, तिल, अन्न (धान), पुष्प, फल, भूमि आदि का दान दिया। फिर यज्ञ की अग्नि की परिक्रमा कर राजा ने अपने हाथों में धनुष-बाण धारण किए। इसके बाद राजा ने गाय और बैल की पीठ का स्पर्श कर अपने गुरुजनों की वन्दना की।

तदनु बिहित लच्छन ललित, जातिमान हय लाय।
सर्वोषधि जल कलस करि, दीनों सुबिधि न्हवाय॥१४७॥

बस्त्र कनक भूखन बितरि, पढे पुरोहित मंत्र।
करहु श्रवन तिन अर्थ कछु, संभर राम स्वतंत्र॥१४८॥

तू जय हय तू राजहय, आद्य इंदिराजात।
जिम यह राजा नरनपति, तू जिम हयन सुहात॥१४९॥

आरोहैं गंधर्ब जिम, नित्य तोहि नरनाह।
तिम रक्खहु नरनाह कों, सदा पूज्य बरबाह॥१५०॥

तत्पश्चात् वहाँ उच्च जाति का सुन्दर लक्षणों वाला घोड़ा लाया गया और उसे सारी औषधियों से युक्त जल से भरे कलश द्वारा अच्छी तरह नहलाया गया। हे राजा रामसिंह! फिर स्वर्ण, वस्त्र और आभूषणों का वितरण कर पुरोहितों ने मंत्रोच्चार किया। कुछ उन मंत्रों के अर्थ आपको बताता हूँ उन्हें आप सुने! हे घोड़े! तू विजय पाने वाला राजा की सवारी का घोड़ा है, जो आदि में लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ था। जिस तरह यह राजा सारे प्राणियों का स्वामी है उसी तरह तू सारे घोड़ों का राजा है। नरश्रेष्ठ राजा अब से नित्य तुझ पर सवार होंगे! हे श्रेष्ठ वाहन रूप घोड़े! तू अपने पर सवार अपने स्वामी राजा को सदा पूज्य ही रखना।

नृपहिं दिखावहु स्वप्नकरि, आवैं जबहि अरिष्ट।
पुनि रक्खहु सब हय धर्‍यो, यह भर तो पर शिष्ट॥१५१॥

अबतैं यह नृप भक्ति करि, आवहिं तेरे अग्ग।
गंध माल अनुलेप करि, पूजहिं प्रीति समग्ग॥१५२॥

स्वस्तिवचन आशिष बिबिध, बिप्रन केहु पढाय।
तोहिं हड्डु नृप पूजिहै, पट्टोचित हयराय॥१५३॥

मघवा रक्खहु पूर्ब तैं, दक्खिन तै यम तोहि।
पच्छिम उत्तर तैं सदा, बरुन संभुसख सोहि॥१५४॥

सब दिसतैं रक्खहु सबहि, पूज्यो हय इहि राह।
गणक पुरोहित भूप कों, बहुरि चढायो बाह॥१५५॥

हे घोड़े! तू अपने राजा को स्वप्न में अरिष्ट (पीड़ा) का पूर्वाभास करा देना अर्थात् उन पर आने वाली आपदा का अभिज्ञान करा देना। इस बात का भार हे शिष्ट घोड़े हम तुम पर डालते हैं। अब ये राजा तेरी भक्ति करने तेरे सम्मुख आएगा और तुझे सुगंधित द्रव्यों का लेप लगाएगा और प्रीतिपूर्वक तेरी अर्चना कर तुझे पुष्पहार समर्पित करेगा। इसके बाद हम ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करते हुए नानाविध आशीष देंगे और हे अश्वराज! हाड़ा राजा तेरी पूजा करेगा। इस समय इन्द्र पूर्व दिशा से और यम दक्षिण दिशा से तेरी रक्षा करें। पश्चिम दिशा से वरुण और उत्तर दिशा से शंभुसखा (चन्द्रमा) तुझ पर कृपादृष्टि डाले। इस प्रकार सारी दिशाओं से शुभदृष्टि लेकर राजा उम्मेदसिंह ने अपने घोड़े की पूजा की फिर राज ज्योतिषी और राजपुरोहित दोनों ने हाथ पकड़ कर राजा को इस घोड़े पर आरूढ़ किया।

तदनंतर बारन बिहित, आन्यों रचि सनमान।
मंत्र सुनाये गणक बर, ताके दक्खिन कान॥१५६॥

नृप को गजपति होहु तू, श्रीगज कीनों भूप।
गंधादिक पूजा सदा, लहिहै तू जयरूप॥१५७॥

नृप को रक्खहु नागपति, रन मग गृह सब ठाम।
तजि पसुभावहिं दिव्यता, ले हुव पीलु ललाम॥१५८॥

ऐरावत गज को तनय, नाम अरिष्ट सिराहि।
देवासुर रनमैं सुरन, कीनों श्रीगज चाहि॥१५९॥

तदनन्तर खासा हाथी का श्रृंगार कर उसे पूरे सम्मान के साथ उस

स्थल पर लाया गया। हाथी के आने पर उसके दाहिने कान में ब्राह्मण ने श्रेष्ठ मंत्र पढ़े और कहा कि हे हाथी! आज से तू राजा का गजराज हुआ। राजा ने तुझे श्री युक्त किया! हे विजय दिलाने वाले गजराज! आज से तू अपना पशुभाव त्याग कर स्वयं में सुन्दर दिव्यता ग्रहण कर और राजा को तू युद्ध में, मार्ग में और घर में सभी जगह सुरक्षित रखना। तू ऐरावत हाथी की संतति है तेरे शुभ नाम की सभी सराहना करते हैं। देवासुर संग्राम के समय देवताओं ने तेरे वंश को अर्थात् तुझे श्रीयुक्त किया था।

तोबिच ताको तेज सब, आवहु नागन नाह।
नृपहिं चढायो पूजि इम, इभ पर बिहित उछाह॥१६०॥

गणक पुरोहित सचिव भट, भये गजन च्रढि संग।
होय महापथ निज नगर, फिरे अतीव उमंग॥१६१॥

देवालय जहं जहं मिले, तहं तहं पूजन कीन।
परिकर जुत प्रासाद पुनि, प्रबिस्यो भूप प्रबीन॥१६२॥

सचिव भटादिन बिबिध बसु, दान मान सनमानि।
बिप्र जिमाये अयुत मित, आमनाय बिधि आनि॥१६३॥

दीन अनाथ हिं दक्खिना, बिबिध उचित बहु दत्त।
सिक्ख सबन दिय स्वस्ति सुनि, भूप असन किय तत्त॥१६४॥

हे हथनियों के नाथ! उस श्रीयुक्त वंश का तेज तुझमें समाहित हो! ऐसे अर्थ वाले मंत्रोच्चार के मध्य तब पुरोहितों ने राजा को उत्साहपूर्वक हाथी पर सवार करवाया। इसके बाद राजा के पुरोहित, ज्योतिष, सचिव और सामन्त सभी लोग राजा के संग चले और अपने नगर के राजपथ से चल कर उमंग से भरे वे पूरे नगर में घूमें। बीच राह में जहाँ-जहाँ भी मन्दिर आये। राजा ने सभी मन्दिरों में पूजा-अर्चना की और इस तरह नगर की परिक्रमा पूरी कर सभी लोग राजप्रासाद में आए। यहाँ पहुँच कर राजा ने अपने सचिव और सामन्तों को विविध प्रकार का धन दे कर उनका सम्मान किया और वेद के विधि-विधान पूर्वक दस हजार ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज दिया। इसके बाद राजा ने सभी का स्वस्ति-वाचन सुन कर सभी को अपने-अपने घर जाने की विदाज्ञा दी और तब कहीं राजा ने स्वयं भोजन किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रेबुन्दीप्रविष्टहड्डेन्द्राऽभिषेकविधिवर्णनमष्टाविंशोमयूखः ॥ आदितः ॥३०९ ॥

श्री वंशभास्कर महामचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में उसके बूंदी में प्रवेश करने और हाडों के इन्द्र के अभिषेक की विधि के वर्णन का अट्ठाईसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ नौ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

पंच गगन धृति सक समय, बाहुल पक्ख बलच्च।
रतिपति तिथि नृप कें भयो, अभिसेचन इम अच्छ ॥१ ॥

पुनि किन्नों जिन जिन तिलक, अभिसेचन के अंत।
क्रम सन तिन नामन कहों, सुनहु राम छितिकंत ॥२ ॥

प्रथम पुरोहित निज तिलक, किन्नों झिंतुव नाम।
तदनंतर उपदेस गुरु, बिरच्यो बेणियराम ॥३ ॥

तदनु तिलक मल्लार किय, पुनि माधव कछवाह।
इहिं दिन इन गद्दिय अधर, रहि किय रीति निबाह ॥४ ॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पाँच के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन राजा उम्मेदसिंह का राज्याभिषेक हुआ। अभिषेक के समय जिन-जिन ने राजा को तिलक लगाया उन सभी के क्रमशः नाम हे राजा रामसिंह! मैं आपसे कहता हूँ उन्हें सुने। सर्वप्रथम राजपुरोहित झिंतुवराम ने तिलक किया, इसके बाद राजा के मंत्रोपदेश करने वाले गुरु वेणीराम ने तिलक लगाया। तदुपरान्त मल्हारराव होल्कर ने और उसके बाद कछवाहा माधवसिंह ने राजा को तिलक किया। इस अवसर पर राजा उम्मेदसिंह की गद्दी अर्थात् आसन सभी से ऊँचा रखने की रीति का निर्वाह हुआ।

साहिपुरप उम्मेद नृप, पुनि किय तिलक प्रबीन।
रानाउत संभू बहरि रान, सेनपति कीन ॥५ ॥

तदनु कहें मल्लारकैं, किय नारव हरनाथ।
खत्रिय केसवदास किय, सुमति बहुरि हित साथ ॥६ ॥

देवगढप जसवंत पुनि, मेघ बेघमप तत्थ।
कोटापति कटकेस पुनि, अखैरमूप वकील।
किन्न तिलक इन हे उभय, हुलकर संग सु लीन॥८॥

इस क्रम में तब शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के ललाट पर तिलक किया फिर महाराणा उदयपुर की सेना के साथ सेनापति बन कर आए राणावत शंभुसिंह ने राजा के तिलक लगाया। इसके आगे होल्कर मल्हारराव के कहने पर नरूका हरनाथसिंह ने और खत्री केशवदास ने सुमति विचार कर राजा को तिलक किया। देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह और बेंगू के रावत मेघसिंह के बाद कोटा के सेनापति कायस्थ अखैराम ने हाड़ा राजा के तिलक लगाया। इस क्रम में आगे करौली के राजा के मंत्री और सोपुर के वकील ने हाड़ा राजा के ललाट पर तिलक किया जो होल्कर के साथ आए हुये थे।

साहिपुरेसहिं आदि लै, सोपुर सचिव समेत।
नजरि निछावरि किन्न इन, अतिहित बिनय उपेत॥९॥

तदनंतर नृप उट्ठिकैं, दम्म निवेदि हजार।
कुलदेवी पूजन कियउ, रचि षोड़स उपचार॥१०॥

पीतांबर हरि पूजि पुनि, भेट निवेदन ठानि।
गिरि नितंब खासा महल, तंहं संसद किय आनि॥११॥

दुव हय दुव सिरूपाव इक, गज मनिभूखन एक।
किन्नैं इम नृप की नजरि, हुलकर बिनय बिबेक॥१२॥

इस अवसर पर शाहपुरा के स्वामी उम्मेदसिंह से लगाकर सोपुर राजा के वकील सहित सभी ने पूरी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए हित पूर्वक हाड़ा राजा के नजर, न्यौछावर की। इसेक बाद हाड़ा राजा भ्रदासन से उठ खड़ा हुआ और एक हजार रूपये चढ़ा कर अपनी कुल देवी आशापुरा की षोड़स प्रकार के उपचारों सहित पूजा अर्चना की फिर राजा ने श्री हरि (पीताम्बर देव) की पूजा कर भेंट चढ़ाई। पूजा अर्चना के बाद हाड़ा राजा ने पर्वत के शिखर पर बने खासा-महल में राजदरबार लगाया। यहाँ राजा

उम्मेदसिंह को दो घोड़े, दो शिरोपाव, एक हाथी और एक रत्नजटित आभूषण उपहार स्वरूप होल्कर की ओर से भेंट किये गये।

किन्न नजरि बुंदीस को, प्रीति उचित चहि चामि॥१३॥

संतू पुनि हुलकर सुभट, इक हय इक सिरूपाव।
कटक इक्क पुनि कनक को, किन्न नजरि करि चाव॥१४॥

इक्क इक्क सिरूपाव हय, इक इक नजरि बिधाय।
रामराव हुलकर सचिव, अरु तंते द्विजराय॥१५॥

सेटू मुख हुलकर भटन, किन्न नजरि इहि रीति
प्रेम सिवाईसिंह मुख, माधव भट सप्रीति॥१६॥

मल्हारराव होल्कर की ही तरह कछवाहा राजा जयसिंह के पुत्र कच्छवाहा माधवसिंह ने भी हाड़ा राजा के अभिषेक उत्सव में अपने उछाह का प्रदर्शन करते हुए राजा की नजर की। इसके बाद होल्कर के सामन्त संतू ने एक घोड़ा, एक शिरोपाव और स्वर्ण निर्मित हाथ में पहनने का कड़ा, हाड़ा राजा को उपहार में नजर किये। इसी तरह होल्कर के सचिव रामराव और तांतिया गंगाधर के साथ होल्कर के योद्धा सेटू ने भी हाड़ा राजा की नजर की। प्रेमसिंह और सवाईसिंह जैसे माधवसिंह कछवाहा के सामन्तों ने भी प्रीतिपूर्वक हाड़ा राजा को नजर की।

इमहि नजरि निज भटन की, लै नृप संभरवार।
पठये डेरन सिक्ख दै, माधव अरु मल्लार॥१७॥

उदयनैर कोटा कटक, हुलकर आयस पाय।
पत्ते पुनि निज निज पूरन, तेरसि रत्ति बिताय॥१८॥

दिवस चउद्दसि गोठि करि, बिबिध भंति बुंदीस।
उभय जिमाये कटक जुत, माधव हुलकर ईस॥१९॥

सह कुटुंब पहिरावनी, हुलकर की नृप कीन।
दुव बाजी सिरूपाव दुव, इक गज अप्पि नवीन॥२०॥

इसके बाद हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने बूंदी राज के सामन्तों की

नजर ग्रहण की फिर उसने विदाज्ञा देकर माधवसिंह कछवाहा और मल्हारराव होल्कर को अपने-अपने शिविर में जाने को रवाना किया। अब उदयपुर और कोटा से आए सैन्य दलों ने होल्कर से वापस अपने नगर लौटने की आज्ञा मांगी इस पर होल्कर ने उन्हें त्रयोदशी तिथि की रात्रि व्यतीत कर अगले दिन जाने की बात कही। चतुर्दशी तिथि के दिन राजा उम्मेदसिंह ने अपनी ओर से एक बड़े भोज का आयोजन किया जिसमें राजा ने होल्कर और माधवसिंह कछवाहा के दलों को प्रीतिपूर्वक भोजन करवाया। इसके बाद हाड़ा राजा ने प्रत्युत्तर में होल्कर की सकुटुम्ब पहरावनी करते हुए उसे दो उत्तम जाति के घोड़े, दो शिरोपाव और एक हाथी जैसे उपहार भेंट किए।

पादाकुलकम्

नव हीरन सिरूपेच सुभायक, रंग गुलाब जटित मधनायक।
बुधसिंह जु आलम सन लिन्नों, सो नृप यहं मल्लार हिं दिन्नों ॥२१॥
इक बारन तंते द्विज कों दिय, इक त्योंहीं संतू हित अप्पिय।
रामराव मल्लार सचिव हित, गज रुप्पय दिय पंच सहंस मित ॥२२॥
इतनेहीं सेटू हित अप्पे, थिर ए च्यारि स्वीय करि थप्पे।
रामराय सुत आनंदरावहिं, इक अब्बहि दिय इक सिरूपावहिं ॥२३॥
पूरबिया द्विज बालकृष्ण हित, हय सिरूपाव दम्म द्वैसत मित।
हुलकर दूत स्वामि हित दीनै, इक इक हय सिरूपाव नवीनैं ॥२४॥

नौ हीरों से जटित एक सिरपेच नामक आभूषण जो गुलाबी रंग के अन्य रत्नों से जड़ा था और जिसे दिल्ली के आलमशाह ने पूर्व हाड़ा राजा बुधसिंह को प्रदान किया था। इस बहुमूल्य आभूषण को हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने मल्हारराव होल्कर को भेंट दिया। राजा ने एक हाथी तांतिया गंगाधर को दिया और एक हाथी संतू बावला को दिया। मल्हाराव होल्कर के सचिव रामराव को हाथी की जगह हाथी का मूल्य पाँच हजार रूपये दिया गया। राजा ने यही हिसाब सेटू खैराड़ के लिए रखा, उसे भी हाथी का मूल्य दिया गया। राजा ने होल्कर के चारों आदमियों को हाथी दिये। हाड़ा राजा ने इस अवसर पर रामराव के पुत्र आनन्द राव को एक शिरोपाव और दो सौ

रूपये नकद दिये और होल्कर के दूत स्वामी के लिए भी शिरोपाव सहित घोड़ा राजा ने प्रदान किया।

दोहा

अश्वन के अनुचर सहित, सबको इम सतकार।
बुंदीपति करि करि बिबिध, किय प्रसन्न मल्लार॥२५॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी के राज सिंहासन पर बैठते ही इस प्रकार होल्कर के सारे आदमियों को पुरस्कार देकर प्रसन्न किया। राजा ने होल्कर के घोडो के चरवादारों को भी नहीं छोड़ा उनका भी सत्कार किया।

सचरणगद्यम्

अग्गैं बल्लभ कुल दीक्षा ही सोतो गोस्वामि गोपीनाथ नैं मंत्र दैबे कों न आय मिटाई।

तब रामानुज दीक्षा लै रु रनपंडित महारावराजा उम्मेदसिंह अैसैं आमैर के उदर तैं बुंदी कढाई।

अब तखत बैठत ही देस मैं जयश्रीरंगनाथ कहिबे कों हुकम चलायो।

अरु पत्र महुरछापन मैं प्रीतिपूर्बक श्रीरंगनाथ नामधेय लिखायो॥२६॥

अरु अग्गैं अपनें पिता पितामहादिकन की दान करी पृथ्वी समस्त संप्रदाननकों खोजि खोजि बुलाय दीनीं।

अरु अपनी आपत्ति मैं सूरबीर सुभटादिक समस्त स्वामिधर्मी सेवामैं रजू रहे तिनकों ग्राम गज बस्त्र बाजिन की बखसीस कीनीं।

उनके अभिधान रावराजेन्द्र रामसिंह सुनिबे कों सावधानी करिये।

अरु प्रपितामह के वितरण बारिधि कों बिद्वज्जन बानी के तरंड करि तरिये॥२७॥

पूर्व में बूंदी के राजा वल्लभ कुल में दीक्षित होते आए थे पर इस अवसर पर गोस्वामी गोपीनाथ गुरुमंत्र देने नहीं आया इसलिए यह परम्परा मिट गई। इसकी जगह रण पंडित (युद्ध विद्या में चतुर) राजा उम्मेदसिंह

ने रामानुज सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की जिसने जयपुर द्वारा निगल ली गई बूंदी को जयपुर (आमेर) के उदर से वापस निकाला। राजा ने राजपाट ग्रहण करते ही आदेश दिया कि अब से हमारे राज्य में अभिवादन स्वरूप 'जय श्री रंगनाथ' जाएगा। यही नहीं राजकीय पत्र पर लगने वाली छाप (मुहर) में भी श्री रंगनाथ का नाम लगवाया। फिर अपने पिता और दादा द्वारा दान की गई भूमि को फिर से दान लेने वालों को बुलवा कर उपलब्ध करवाई। वहीं राजा ने तब अपने पक्ष में रह कर स्वामिधर्म का निर्वाह करने वाले सभी सामन्तों को बुलाकर गांव की जागीर, हाथी, शिरोपाव, घोड़े आदि की बख्शीश कर उन्हें नवाजा। हे राजा रामसिंह! अब मैं (ग्रथंकार) ऐसी जागीर पाने वाले सभी सामन्तों का क्रमशः विवरण दे रहा हूँ, उसे आप सावधानीपूर्वक सुनें। आप यह जानें कि आपके पितामह के दान रूपी समुद्र को विद्वान लोगों ने अपनी वाणी रूपी नाव से कैसे पार किया।

दोहा

हड्डा हरजन सचिव हित, दै सिविका गज दास।
हिंडोली पुर सों दयो, पटा सहंस पंचास॥२८॥

देव नत्ति सिवसिंह सुत, भारत हित बुंदीस।
पत्तनखेड़ा सों पटा, दयो सहंस चालीस॥२९॥

अमरसिंह रट्ठोर सुत, अभयसिंह हित तम्न।
पटा सहंस छत्तीस कों, पुर अलोद जुत दत्त॥३०॥

नाथाउत पित्थल तनय, जयसिंहहि चहुवान।
पटा हजार पचीस जुत, नगर दयो निम्मान॥३१॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने सर्वप्रथम अपने सचिव हाड़ा हर[illegible]न को हाथी और दासों सहित सवारी की पालकी प्रदान की और हिंडोली नगर के साथ पचास हजार की जागीर का पट्टा दिया। देवसिंह के पोते और शिवसिह के पुत्र भारतसिंह को हाड़ा राजा ने पत्तन खेड़ा सहित चालीस हजार की जागीर का पट्टा प्रदान किया। राजा उम्मेदसिह ने फिर राठौड अमरसिंह के पुत्र राठौड़ अभयसिह को आलोद नामक पुर सहित कुल छत्तीस हजार की जागीर प्रदान की। इसके बाद हाड़ा राजा ने पृथ्वीसिंह नाथावत के पुत्र

जयसिंह को निमांणा नामक नगर सहित कुल पच्चीस हजार की आमदनी वाली जागीर का पट्टा दिया।

बंधु भवानीसिंह भट, महासिंहहर हेत।
बीस हजार पटा दयो, धोबड़ द्रंग समेत॥३२॥

सेरसिंह सामंतहर, हड्डा अरथ अनूप।
पटा सहंस धृति जुत दयो, भजनेरी पुर भूप॥३३॥

हरदाउत हिंदू सुतज, नाहर कों हित संग।
पटा सहंस पंद्रह सहित, दियउ पगारां द्रंग॥३४॥

तोक महासिंहोत हित, प्रथित दिखावत प्यार।
द्रंग जैतगढ़ सों दयो, पटासु पंति हजार॥३५॥

बूंदी के राजा ने इस श्रृंखला में महासिंहपोता अपने बांधव हाड़ा भवानीसिंह को धोवड़ नामक नगर सहित बीस हजार की जागीर का पट्टा प्रदान किया। सामंतपोता हाड़ा शेरसिंह को राजा उम्मेदसिंह ने भजनेरी पुर सहित अठारह हजार की जागीर दी। हरदावत हाड़ा हिन्दूसिंह के पुत्र नाहरसिंह को पगारां नगर सहित कुल पन्द्रह हजार की जागीर का पट्टा दिया। महासिंहोत हाड़ा तोकसिंह के प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित करते हुए राजा उम्मेदसिंह ने उसे जैतगढ़ नामक नगर सहित दस हजार की जागीर दी।

दसरथसिंह प्रयाग सुत, महासिंह सु कुलीन।
अट्ठ सहंस को तिहिं पटा, सुहरनि पुर समदीन॥३६॥

मुहुकमहर मरजाद सुत, भट नगराजन अत्थ।
पंच सहंस को दिय पटा, नगर मोठ सम सत्थ॥३७॥

बुल्लि सिवाईसिंह भट, अमर कबंधज ताहि।
पंचसहंस को दिय पटा, चंद्रवाट पुर चाहि॥३८॥

पंचोली माथुर प्रथम, मयाराम कायस्थ।
दियउ गाम बहु द्रव्य जुत, सह सिरूपाव समत्थ॥३९॥

बूंदी के राजा ने इस क्रम में आगे महासिंहोत हाड़ा प्रयागसिंह के पुत्र दशरथसिंह को सुहरनी नामक पुर सहित कुल आठ हजार की जागीर का पट्टा दिया। महकमसिंहोत हाड़ा मरजादसिंह के पुत्र और अपने सामन्त

नगराज को मोठ गाँव की जागीर सहित पाँच हजार की आमदनी वाली जागीर का पट्टा दिया। इसके बाद राजा ने राठौड़ अमरसिंह के पुत्र सवाई[illegible] को बुला[illegible] के साथ पाँच हजार की जागीर प्रदान की। बूंदी राज के पंचौली माथुर मयाराम कायस्थ को राजा ने बहुत सारा धन, शिरोपाव और एक गाँव की जागीर दी।

पटा स्याम धात्रेय हित, दै मिति तीन हजार।
तारागढ़ निज दुग्ग को, किन्न सु किल्लादार॥४०॥

महडू चारन दान हित, संभर प्रीति प्रकासि।
सहंस पंच के ग्राम दिय, ठीकरिया बरवासि॥४१॥

स्वीय भट्ट जगराम सुत, बुल्लि भवानीराम।
मुद्रा दोय हजार मित, दयो सहंसपुर ग्राम॥४२॥

इत्यादिक सब सेवकन दै धन धाम उदार।
करन बिदा मल्लार कों, बलि किय चित्त बिचार॥४३॥

इसी क्रम में आगे हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने धायभाई श्याम को तीन हजार रूपये प्रदान कर उसे अपने दुर्ग तारागढ़ का किल्लेदार बनाया। इसके बार दानां नामक मेहडु चारण को ठीकरिया और बड़वासी नामक दो गाँवों की जागीर सहित कुल पाँच हजार की जागीर का पट्टा दिया। राजा ने फिर अपने भाट जगराम के पुत्र भवानीराम को बुलाकर दो हजार की आमदनी वाला सहँसपुर नामक ग्राम प्रदान किया। इस प्रकार अपने सामन्तों और सेवकों को नकद पुरस्कार और गांव देकर राजा ने मन में मल्हाराव होल्कर को अपने दल सहित विदा करने का विचार किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे पुरोधः सम्प्रदायगुरु मल्लार माधव आदि रावराणमाङ्गल्यतिलका-ऽऽदिकरणहड्डेन्द्रहरि कुलदेवी पूजनपूर्वकविहितप्रासादप्रवेशन हुलकर कूर्म्म प्रभृतिगज हय भूषण बस्त्रा ऽऽदिनिवेदनतत्स्वस्वशिविरप्रेषण-सर्वसम्भोजन गज हय भूषण वस्त्रा ऽऽदिसैन्यमल्लारसत्करणसमात्त रामानुजसम्प्रदायव्यवहारमुद्राऽऽदिश्रीरंगाऽभिख्योल्लेखनपूर्वपुरुषदत्त-समर्पणस्वपरिकरसुभट सुसचिव सुभृत्याऽऽदिमेदिनीमुख बितरण-तन्मननमेकोनत्रिंशो मयूखः॥ आदितः॥३१०॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह चरित्र में पुरोहित और संप्रदाय गुरु, मल्लार, माधवसिंह आदि [illegible] राजा के मांगलिक तिलक आदि करना। हड्डुन्द्र का विष्णु और कुलदेवी का [illegible] आदि करके उचित महल में जाकर हुलकर और माधवसिंह कछवाहा आदि का हाथी, घोड़े आभूषण वस्त्र आदि नजर करना, उनको अपने अपने डेरों में भेजकर सबको भोजन कराना, हाथी, घोड़े, आभूषण वस्त्र आदि से सेना सहित मल्हारराव का सत्कार करना, रामानुज संप्रदाय को ग्रहण करके व्यवहार की छाप में 'श्रीरंग' का नाम लिखाना। अपने पुरखों द्वारा प्रदत्त दान को यथावत देकर अपनी परगह के उमराव, श्रेष्ठ कामदार, श्रेष्ठ सेवक आदि को भूमि आदि देने के स्मरण कराने का उन्नतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ दस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इहिं अंतर मरुपित अनुज, बखतसिंह छक छाय।
दिल्ली सन लहि जवन दल, अग्रज दब्बन आय॥१॥

अभयसिंह आतुर तबहिं, पठये बुंदिय पत्र।
संभर सहित सहाय कों, आवहु हुलकर अत्र॥२॥

हुलकर हड्डु नरेस प्रति, अक्खिय पत्र उदंत।
सुनि बुंदिय धव सज्ज हुव, सह मलार हुलसंत॥३॥

जननिन रानिन हू तिहित, दिन्नें कटक पठाय।
गंगराड़ कोटानगर, बंसबहाल भनाय॥४॥

सज्जि अप्प हुलकर सहित, किय बुंदिय सन कुच्च।
मरूपति सों सत्वर मिले, उभय करन जय उच्च॥५॥

हे राजा रामसिंह! इसी बीच मारवाड़ (जोधपुर) के राजा अभयसिंह का छोटा भाई बखतसिंह कुपित हो दिल्ली गया और वहाँ से यवनों की सेना लेकर अपने बड़े भाई की भूमि दबाने को रवाना हुआ। इस बात के समाचार मिलते ही राजा अभयसिह राठौड़ ने आतुर हो कर बूंदी पत्र भेजा जिससे लिखा कि हे मल्हारराव होल्कर! आप हाड़ा राजा के दल सहित

मेरी सहायता करने पहुँचें। पत्र पाते ही होल्कर ने पत्र का आशय बूंदी के राजा को सुनाया। वह सुनकर बूंदी का स्वामी हुलसते हुए होल्कर के साथ जाने को सज्जित हुआ। उधर उसने अपनी रानियां और अंतरपुर के अन्य सदस्यों को बुलाने के लिए गंगराड़, कोटा, बांसवाड़ा और भिनाय नगर अपनी सेना के छोटे-छोटे दल रवाना किये। इसके बाद स्वयं हाड़ा राजा सज्जित होकर होल्कर के संग बूंदी से रवाना हुआ। दोनों शीघ्र ही जोधपुर के राजा से उसकी फतह करवाने को जा मिले।

रामपुर सु माधव गयो, बुंदिय तैं इहिं बेर।
ए दुव मरूपति भीर इम, आये पुर अजमेर॥६॥
बखतसिंह सम्मुह बहुरि, तीनन किन्न प्रयान।
रक्खि निकट पर दल दयो, संभर नगर मिलान॥७॥
तंहं हुलकर कछु रीति कहि, रठ्ठोरन समुझाय।
अग्रज कै अरु अनुज कै, दिन्नों साम कराय॥८॥
दूजे दिन इक बत्त हुव, बुंदिय कटक बिहान।
सुपहु राम दिज्जे श्रवन, नय मति धर्म निधान॥९॥

इसी समय बूंदी से चलकर कछवाहा माधवसिंह रामपुरा गया था वहीं होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दोनों चल कर मारवाड़ के राजा की सहायतार्थ अजमेर पहुंचे। यहां से बखतसिंह राठौड़ के दल से मुकाबला करने हेतु होल्कर, हाड़ा राजा और राठौड़ राजा अभयसिंह ने प्रयाण किया और आगे शत्रु सेना के समीप ही सांभर नगर में जा पड़ाव किया। यहाँ पहुँच कर मल्हारराव होल्कर ने राठौड़ों को समझाया और नतीजन दोनों राठौड़ भाइयों (राजा अभयसिंह और बखतसिंह) के मध्य संधि करवा दी। यहाँ अगले दिन बूंदी की सेना में प्रातःकाल एक बात हुई। हे नीति और धर्म में चतुर राजा रामसिंह! आप सुनिये मैं उसे कहता हूँ।

पादाकुलकम्

अग्गै इक संकरगढ स्वामी, बुंदिय भट रानाउत नामी।
तिहि सिवसिंह मंडि रन राउत, बक्कर पुर प हन्यों कन्हाउत॥१०॥

सो सिवसिंह हुतो नृप सत्थहि, अरिसुत राजसिंह गय तत्थहि।
करत प्रात संध्या बुंदियपति, सिवसिंह सु निजनाथ रक्खि रति॥११॥

डेरा सन संभर ढिग आवत, राजसिंह वह मिल्यो रिसावत।
हनि सिवसिंहहिं तुपक झारि खल, गो भजि राजसिंह मारवदल॥१२॥

साहिपुराधिप अनुज सहोदर, हो सिरदारसिंह मरूपति भर।
कन्हाउत तस सरन गह्यो तब, यह उदंत बुंदीस सुन्यों अब॥१३॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में बूंदी का एक सामन्त जो शंकरगढ़ का स्वामी था उस राणावत शिवसिंह ने बक्करपुर के स्वामी कान्हावत शाखा के सिसोदिया क्षत्रिय से युद्ध रच कर उसे मार गिराया था। वही शिवसिंह अभी हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के साथ था, इस समय उसके शत्रु का पुत्र राजसिंह भी वहाँ आया। प्रातःकाल की बेला में जब बूंदी का राजा संध्या करने में निमग्न था और शिवसिंह अपने स्वामी हाड़ा राजा की सेवा में था। अपने शिविर से चल कर जब शिवसिंह अपने स्वामी के पास आ रहा था कि उसे रास्ते में कुपित राजसिंह मिला। इस दुष्ट राजसिंह ने तुरन्त अपनी बन्दूक चला कर शिवसिंह को मार गिराया और मारवाड़ी सेना के दल की ओर भाग गया। वहाँ शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह का छोटा भाई सरदारसिंह था जो मारवाड़ के राजा का सामन्त था। वह राजसिंह कान्हावत इस सरदारसिंह की शरण में चला गया। इस पूरे वृत्तान्त को हाड़ा राजा ने सुना।

दोहा

उट्ठि उघारे देह नृप, संध्या तजि गहि संगि।
हय अरोहि हंक्यो मनहु, अग पर इंद्र उमंगि॥१४॥

चलन लगे भट संग निज, तिनकों सपथ दिवाय।
अप्प पटी दै अश्व कों, लिय कन्हाउत जाय॥१५॥

सत्थ सहित पिक्खत रह्यो, रानाउत सिरदार।
राजसिंह कन्हाउत सु, मार्‌यो संभरवार॥१६॥

इम रिपु हनि बरछी चुवत, आयो पुनि निज ऐन।
रह्यो लखत रट्ठोर को, चित्र लिख्यो सो सैन॥१७॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने जब अपने सामन्त के मारे जाने की बात सुनी तो अपनी संध्या छोड़ कर उघड़ी देह ही उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी सांग (बरछी) उठाई और लपक कर अपने घोड़े पर आरूढ़ हो बढ़ा जैसे पर्वत को चूर करने को उमंगपूर्वक इन्द्र बढ़ा था। इस समय अपने स्वामी के साथ चलने को बूंदी के सामन्त भी सज्जित हुए पर राजा ने उनको अपनी शपथ दिला कर रोक दिया और अपने घोड़े को सरपट भगाता हुआ वह वहाँ पहुँचा जहाँ कान्हावत छिपा हुआ था। अपने साथियों सहित राणावत सरदारसिंह खड़ा-खड़ा देखता ही रह गया और चहुवान राजा उम्मेदसिंह ने जाते ही राजसिंह कान्हावत को मार डाला। अपने शत्रु को मार कर टपकते रक्त वाली अपनी बरछी सहित निडर राजा वापस अपने घर आ गया। राठौड़ राजा की सेना चित्रलिखित सी यह सब कुछ देखती रह गई।

षट्पात्

यह कराल उद्घोष उठ्यो पृतना त्रय अंतर,
दुव दिस दुंदुभि बज्जि भीरु गय भज्जि दिगंतर।
हड्ड कबंधन हयन जंग पक्खर जब डारिय,
सुनि हुलकर यह सोर भयो उपदेसक भारिय।
नृप अभयसिंह उम्मेद नृप समुझाये दुव नीति सन।
कहि देसकाल आगम कलित कियउ साम करि हित कथन ॥१८॥

राजसिंह कान्हावत के इस तरह मारने का हाहाकार तीनों सेनाओं के मध्य फैल गया और तुरन्त ही दोनों ओर दुंदुभियाँ बज उठीं अर्थात दोनों पक्ष तुरन्त ही आमने-सामने हो गए। युद्धारम्भ की दुंदभियों का नाद सुन कर कायर लोग भाग खड़े हुए। हाड़ा योद्धाओं ने पाखरों से सज्जित अपने घोड़े जब राठौड़ सेना के मध्य डाले। इसका शोर सुनते ही मल्हारराव होल्कर तुरन्त ही वहाँ आया और दोनों पक्षों को समझाने लगा। उसने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और राठौड़ राजा अभयसिंह दोनों को अपने पास बुला कर नीति-सम्मत बातों से समझाया। आप लोगों को इस कठिन देश काल की परिस्थितियों को देखते हुए इस तरह नहीं लड़ना चाहिए। दोनों पक्षों का हित-कथन कर होल्कर ने अन्ततः समझौता करवा दिया।

दोहा

तदनंतर दक्खिन गयउ, रचि दरकुंच मलार।
निज पत्तन बुंदिय तरफ, आयउ संभरवार॥१९॥

इसके बाद मल्हारराव होल्कर अपने दल सहित यहाँ से कूच कर दक्षिण में अपने घर गया और चहुवान राजा उम्मेदसिंह अपने नगर बूंदी की ओर रवाना हुआ।

पादाकुलकम्

हरदाउत नाहर मग अंतर, महिमानी मंडिय बिधिसों वर।
नगर पग्गरां थंभि नृपति तब, जिम्मि गोठि आयउ बुंदिय अब॥२०॥

माघ बलच्छ पच्छ जय मत्तो, दक्खिन द्वार होय पुर पत्तो।
घर घर मंगल गान भयो घन, लग्गे लोग बधाई बंटन॥२१॥

पिच्छैं सन जननी दुव आई, पतनी तीन सुहाग सुहाई।
यह रानिन पति की हित आवरि, किन्न बिधिजुत नजरि निछावरि॥२२॥

अब उमेद नृप नीति जमाई, गई प्रजा सु बुलाय बसाई।
मैनन तेय उपद्रव मेटिय, बारह खेट दबाय स्वबस किय॥२३॥

मार्ग में हरदावत् नाहरसिंह ने लौटते हुए अपने स्वामी का स्वागत किया और आतिथ्य ग्रहण करने का निवेदन किया। इसे मानते हुए हाड़ा राजा पगारां नामक नगर में ठहरा और गोठ जीम कर बूंदी आया। माघ माह के शुक्ल पक्ष का समय व्यतीत कर नगर के दक्षिण दिशा वाले नगरद्वार से होकर विजय में मदमत्त राजा ने प्रवेश लिया। राजा के शुभागमन के अवसर पर पूरे नगर के घर-घर में मंगलगान हुआ और नगरवासियों ने बधाई बांटी। राजा के आगमन से पूर्व ही राजा की दोनों माताएँ और तीनों पत्नियाँ लौट आई थी। बूंदी में पहुँचने पर राजा की रानियों ने स्नेह पूर्वक पति को हित के साथ नजर और न्योछावरें दी। राजा उम्मेदसिंह ने नीति पूर्वक अपना राज जमाने के लिए बूंदी से गई हुई अपनी प्रजा को वापस बूंदी बुला कर बसाया। राजा ने मीणा लोगों के उपद्रव को मिटा कर मीणाओं के बारह खेड़ों को दबा कर फिर से अपने वश में किया

दोहा

बुंदिय नागर बिप्र इक, सरबेश्वर अभिधान।
चोरे चोरन दम्म तस, सहंस सत्त परिमान॥२४॥

कुतवाल सु बसु चोर जुत, खोज्यो भूपतिराम।
छत्रैं नृपहिं निवेदयो, छत्रमहल सुख धाम॥२५॥

सो धन संभर ख्यात करि, सरबेश्वर हित दीन।
श्रील सेठ यह नीति लखि, लगे बसन हित लीन॥२६॥

इसी समय बूंदी नगर के निवासी एक नागर ब्राह्मण जिसका नाम सर्वेश्वर था के घर से अज्ञात चोरों ने उसके सात हजार रूपये चुरा लिए। हे राजा रामसिंह! राज्य के कोतवाल ने तुरन्त ही चोरों को माल सहित खोज निकाला और रूपये ला कर अपने स्वामी को छत्रमहल में जा नजर किये। प्रातःकाल सभी के सामने राजा उम्मेदसिंह ने वह चोरी गए रूपये सर्वेश्वर को बुला कर वापस किये। धनाढ्य सेठों ने राजा के इस कृत्य को देखकर अपने राजा पर विश्वास करते हुए निश्चिंत हो बूंदी में बसना आरंभ किया।

चोरन जारन दुसह दुख, धर्म धरन सुख पूर।
राज्य बिगारे कितव जन, कंपन लग्गे कूर॥२७॥

जब बुंदिय जयसिंह लिय, कति सठ सेवक तत्थ।
रसना रत ग्रासहिं रहिय, न हुव बुद्ध नृप सत्थ॥२८॥

ते अब दुद्धर नृपहिं तकि, लूम अराल हलात।
भीत आय हाजरि भये, बुंदी मंडल ब्रात॥२९॥

मोर वृद्ध प्रपितामहहु, मिलि आये तिन मांहिं।
कहत सकुचि रविमल्ल कवि, इम सागस हम आंहिं॥३०॥

अपने नगर से चोरों और जार लोगों के दुस्सह दुःख को धर्म धारण करने वाले हाड़ा राजा ने मिटाया। छली मनुष्य जो राज को बिगाड़ने की सोचे हुए थे वे राजा के भय से थर-थर काँप उठे। पूर्व में जिस समय आमेर के कछवाहा राजा ने बूंदी को अपने अधिकार में लिया था उस समय हाड़ा राजा बुधसिंह के दुष्ट सेवकों ने अपनी जीभ पर ग्रास की आशा में अपने स्वामी का साथ नहीं दिया था अर्थात् जो अपने राजा से विमुख हो गए थे। ऐसे सभी

सेवक इस नये राजा उम्मेदसिंह को दुर्द्धर्ष देख कर अपनी टेढी पूंछ को हिलाते हुए भयभीत हो राजा के समक्ष हाजिर हुए। बूंदी में ऐसे पूंछ हिलाने वाले कुत्तों का बड़ा समूह था। हे राजा रामसिंह! मेरे (ग्रंथकार के) वृद्ध प्रपितामह भी ऐसे स्वामी-विमुख लोगों के समूह में मिल गए। यही सोच कर लज्जित हो आपका कवि सूर्यमल्ल कहता है कि इस कारण से हम भी सागस अर्थात् दोषयुक्त हैं।

पादाकुलकम्

सुनहु राम महिपाल धर्मधन, स्मृति जाकों वरजत अग्गैं सन।
पुरुखन कों अनुचित पद मैं दिय, करहु माफ अपराध यहै किय ॥३१॥
हाजरि सब इम बसीभूत हुव, धामचंड उम्मेद तपत धुव।
फग्गुन असित मांहिं तदनंतर, कोटा गय उम्मेद धरावर ॥३२॥
महाराव सन मिलि हित किन्नों, बहुरि आय बुंदिय रस लिन्नों।
दुज्जनसल्ल सु कुहक असूई, बुंदिय लेत पर्‍यो दुख कूई ॥३३॥
जानी इन अक्खी सुहि किन्नी, जैपुर दब्बि पहुमि निज छिन्नी।
अब उमेद बुंदिय भुग्गैं नन, ऐसे मंत्र रचहि मिलि अप्पन ॥३४॥

जिसके धर्म ही धन है ऐसे राजा रामसिंह! आप सुनें कि धर्मशास्त्र जिसके लिए मना करते आए हैं पर मैंने उसकी लीक को छोड़ कर अपने ही पुरखों को नीच पद दे डाला। मैं अपने इस अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना करता हूँ! इस तरह नये राजा उम्मेदसिंह को प्रचंड सूर्य की तरह तपते देख राजा बुधसिंह के समय में अपने स्वामी से विमुख हुए सारे जन वापस हाजिर होने लगे। इसके बाद फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह कोटा गया। वहाँ पहुँच कर राजा उम्मेदसिंह कोटा के महाराव से हितपूर्वक मिला और वापस बूंदी आया। उधर वह कोटा का राजा दुर्जनशाल जो एक ठग और असूया रखने वाला था वह तो राजा उम्मेदसिंह को इस तरह अपनी बूंदी वापस लेते देख कर जैसे पीड़ा के कुएँ में ही जा गिरा। उसने जब यह जाना कि राजा उम्मेदसिंह ने जैसा कहा था वैसा कर दिखाया। इसने आमेर के राजा द्वारा दबाई गई अपनी भूमि को फिर से छीन लिया। कोटा के राजा ने तब मन ही मन सोचा कि मैं ऐसा इन्द्रजाल रचूंगा कि जिससे राजा उम्मेदसिंह अपनी बूंदी के राज को नहीं भोग सकेगा।

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रेसहायीकृतदिल्लीसैन्यज्यायोजनिनीषुकबन्धबखतसिंहाऽऽगमन-तन्निरोधाऽर्थधन्वेषाऽभयसिंहाऽऽहूतहड्डु हुलकराजमेरगमनमल्लारवखत-सिंहनिवारणशातितसम्मभरेशसुभटशंकरगढस्वामिशीषोंद्दशिवसिंहवमृ-वैरोज्जिहीर्षुवर्करपतिकन्हाउत्तराजसिंहधन्वध्वजिनीशरणसम्पादश्रुत-शात्रवसमात्तशक्त्येकाकिबुन्दीन्द्रतन्मारणशमितैतद्वाहिनीद्वय विरोध-हुलकरदक्षिणगमनरावराणिनिजपुरप्रविशनचौराद्युपद्रवाऽपाकरणप्रस्थित-प्रजाप्रत्यागमनमिलितमहारावपुनः प्रभुबुन्दीप्रविशनकोटेशकौहक्यकलनं त्रिंशो मूयख॥ आदितः ॥३११॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह चरित्र में दिल्ली की सेना को सहायक करके बड़े भाई को जीतने की इच्छा वाले राठौड़ बखतसिंह का आना, उसको रोकने के अर्थ मारवाड़ के पति अभयसिंह के बुलाने से हाड़ा उम्मेदसिंह और हुलकर का अजमेर जाना और मल्लारराव का बखतसिंह को मना करना। चहुवानों के पति के उमराव शंकरगढ़ के स्वामी सिसोदिया शिवसिंह को पिता के बैर की इच्छा से मारने वाले वाक के पति कान्हावत राजसिंह का मारवाड़ की सेना की शरण लेना सुनकर शत्रु को वश में करने को बरछी से अकेले बूंदीश का उसको मारना। इन दोनों सेनाओं के विरोध को मिटा कर हुलकर का दक्षिण में जाना, रावराजा का अपने पुर में प्रवेश कर चोरों के उपद्रव को मिटाना और गई हुई प्रजा का वापस लौटना, महाराव से मिलकर फिर प्रभु उम्मेदसिंह का बूंदी में आना और कोटा के पति की इन्द्रजाल की गणना का तीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ ग्यारह मयूख हुए।

गीर्व्वाणभाषा

इंद्रवंशा

एवं समालोच्य सधीसखैस्समं कोटेश्वर मज्जनशल्यभूपतिः।
दालेलिकृष्णं प्रतिनैनवास्थितं प्रीतिच्छदम्प्रेषितवान्स्वदोर्लिविम्॥१॥

तस्मिन्नुदन्तन्नधमेन लेखितं कूर्म्मादयोऽनूनरहस्यकोविदाः।
भो रावराजेन्द्र तवाऽभिषेचनं कर्त्तुं समुद्युक्तधियो वयं स्थिताः॥२॥

श्रीमन्तनन्हाव्हकुमारिकेश्वरं घोराभिसम्पातशताङ्गधूर्वहम्।
काय्र्ये पुरस्कृत्य कृपाणपाणयः श्रेयो गमिष्याम उपायषद्गलाः ॥३॥

इस प्रकार मंत्रियों के साथ विचार करके कोटा के पति सज्जनों के शाल रूप राजा ने (कोटा के महाराव का नाम दुर्जनशाल था परंतु उम्मेदसिंह के विरुद्ध कार्य करने से कवि ने सज्जनशल्य लिखा है।) नैणवा नगर में स्थित दलेलसिंह के पुत्र कृष्णसिंह को अपने हाथ का लिखा प्रीति पत्र भेजा। उस अधम ने उसमें वृत्तान्त लिखा कि हे रावराजेन्द्र! तुम्हारे अभिषेक करने में कछवाहा आदि सब पूर्ण गुप्त भेद जानने वाले हम अच्छी प्रकार से दत्तचित्त होकर स्थित हैं। कन्याकुमारिका क्षेत्र के पति नन्ह नामवाले श्रीमन्त को कि जो भयंकर प्रहारों वाले युद्ध रूप रथ की धुरा को धारण करने वाला है कार्य में आगे करके हाथ में तलवारें धारण कर उपाय से कल्याण को प्राप्त होंगे।

सन्नह्य सेनां मदवन्मतङ्गजामुत्फुल्लसत्प्रोथलसत्तुरङ्गमाम्।
राणञ्जिसंध्यासुतदण्डनायकां धूल्ल्युत्करांतर्हितकञ्जबान्धवाम्॥४॥

आकर्णमाकर्णितकाण्डकार्मुकां व्विस्फारसन्त्रस्तसपत्नसञ्चयाम्।
आनद्धकान्तायसवर्मबाहुलां चाक्चक्यवच्चन्द्रकचन्द्रकाञ्झलाम्॥५॥

सन्देशहारोक्तिगृहितनिश्चयां विख्यातयाना ऽऽसन सन्धिविग्रहाम्।
द्वैधाऽऽश्रयोल्लसविलासवैभवां सङ्ग्रामवित्सादि निषादि सौभगाम्॥६॥

मस्त हाथियों वाली और फूले हुए फुरनों (नासिका) वाले उत्तम घोड़ों वाली सेना को सज्जित कर कि जिमसें सिंधिया का पुत्र रणंजय सेनापति है और जिसने धूलि के समूह से सूर्य को ढक दिया है। धनुष को कान तक खींचकर टंकार करने से भयभीत किया है शत्रुओं के समूह को जिसनें, फौलाद के कवच और दस्ताना बांधे, सुवर्ण की चकाचौंध देने वाले चंद्रमा युक्त ढालों वाली सेना को जिसने। हलकारों के कथन से निश्चय करने वाली प्रसिद्ध यान, आसन, संधि, विग्रह, द्वैध और आश्रम इन नीति के छहों गुणों के विशाल वैभवशाली और युद्ध को जानने वाले घोड़ों के सवार और हाथियों के सवारों के ऐश्वर्यवाली सेना को जिसने।

शौण्डीर्यसन्दानितशूरशात्रवां प्राप्ताषडक्षीणविविक्तमन्त्रणाम्।
प्रेंखोलदुच्चूलितवैजयन्तिकां धारारयोद्धूतसमस्तसागराम्॥७॥

शाक्तीक याष्टीक विनोदबन्धुरां नैस्त्रिंशिक प्रासिक धन्वि दुर्द्धराम्।
प्रोद्दण्डदुस्फोट कुठार पट्टिशां जेष्याम उम्मेद मलार यामलाम्॥८ ॥

तूर्णं व्यतीत्येषदहर्गणान्वयं निर्जित्स संख्ये बुधसिंहजाऽन्वयम्।
दास्याम उन्मार्जितसर्वकण्टकं बुन्द्याऽऽधिपत्यं भवते निरंकुशम्॥९ ॥

ईर्ष्यापरः सालमनप्तरि च्छदं क्षिप्रं लिखित्वेति सभीमनन्दनः।
श्रीमन्तमन्त्रिण्यथ रामचद्रकेऽलेखीद्द्वितीयं दलमात्तकिल्विषः ॥१० ॥

पराक्रम से वीर शत्रुओं के समूह को बांधने वाली, तीसरे के कान में सलाह को नहीं जाने देने वाली, कंपित वस्त्र की ध्वजावाली (विजय करने वाली सेना का झंडा ही खुला रहता है) और अपने प्रवाह के वेग से समुद्रों को कंपायमान करने वाली सेना है हमारी। बरछी और लाठी से लड़ने वालों से सुंदर, तलवार भाला और धनुष धारण करने वालों से दुस्तर और उग्र घाव करने वाले कुठार और कटारियों वाली, ऐसी सेना से उम्मेदसिंह और मल्हारराव दोनों को जीतेंगे। थोड़े मास बिताकर शीघ्र युद्ध में बुधसिंह के वंश और इनकी उपासना करने वाले (संबंधियों) को जीतकर सब कांटे उखाड़ कर अंकुश रहित बूंदी का स्वामीपन आपको देंगे। ईर्षा में तत्पर होकर सालमसिंह के पोते को ऐसा पत्र शीघ्र लिखकर उस पाप को ग्रहण करने वाले भीमसिंह के पुत्र ने इसके आगे श्रीमन्त के मंत्री रामचन्द्र को दूसरा पत्र लिखा।

अनुष्टुब्युग्मविपुला

पुण्येषाऽमात्ययोर्बाढं रामचन्द्र मलारयोः
अजायत पुरा बैरं करेण वामिभयोर्यथा॥

तदालोच्य महारावः पूर्वस्मिन्नलिखद्दलम्।
निन्द्यं कृतं मलारेणार्पितोम्मेदाय बुन्दिका॥१२ ॥

भवेद्यदि मदायत्ता तदायत्ता वयं तव।
कूर्म्माद्यखिलराजानः स्यामाऽऽज्ञाकारिणो वयम्॥१३ ॥

एतच्छ्रुत्वा दलोदन्तं कोटाऽधीश्वरलेखितम्।
लिलेख नन्हमन्त्रीत्यं रामचन्द्रस्तदुत्तरम्॥१४ ॥

पूना के स्वामी के मंत्री रामचन्द्र और मल्हारराव में जैसे एक हथनी

पर दो हाथियों के विरोध हो वैसा पहिले इन दोनों में हुआ इस बात को विचार कर (कोटा के) महाराव ने पहले रामचन्द्र को पत्र लिखा कि उम्मेदसिंह को बूंदी देने का कार्य मल्लारराव ने निन्दा के योग्य किया है। वह बूंदी यदि मेरे अधीन हो तो कछवाहा आदि हम सब राजा निश्चय ही तुम्हारे आज्ञाकारी होकर तुम्हारे अधीन हों। कोटा के पति के लिखे हुए इस पत्र के वृत्तान्त को सुनकर नन्ह के मंत्री रामचन्द्र ने उसका उत्तर इस प्रकार लिखा।

आत्मनोऽयं स्वतंत्रत्वं पज्जः ख्यापयितुं ननु।
अयुक्तमकरोन्नीचैर्मलारो मातृशासितः ॥१५॥

न भोक्तुमुचितो बुन्द्याः स्कन्धवारम्मनोरमम्।
देवानांप्रिय उम्मेदस्सिंहानाम्भोग्यमस्थिभुक् ॥१६॥

उदयद्रङ्गपृथ्वीभुग्जगत्सिंहमतं व्विना।
कार्येऽस्मिन्नाऽस्मदादीनां श्रीमंतोऽनुसरेद्वचः ॥१७॥

राणेश्वरबिभित्सुस्त्वं नन्हे लेखय तद्दलम्।
बुन्द्यां कोटेडधीनायां प्रीताः स्म इति सत्वरम् ॥१८॥

उस नीच मूर्ख और शूद्र मल्लार ने अपनी स्वतंत्रता प्रसिद्ध करने को निश्चय ही यह कार्य अयोग्य किया है। जैसे सिंहों के भोगने योग्य को कुत्ता भोगने योग्य नहीं होता वैसे रमणीय राजधानी बूंदी को भोगने योग्य मूर्ख उम्मेदसिंह नहीं है। उदयपुर की पृथ्वी को भोगने वाले राणा जगतसिंह की सलाह के बिना इस कार्य में हम लोगों के वचन श्रीमंत नन्ह नहीं मानेगा। महाराणा को भेदने (फोड़ने) की इच्छा वाले तुम ऐसा पत्र नन्ह के नाम लिखवाओ कि यह बूंदी, कोटा के पति के शीघ्र अधीन होने में हम प्रसन्न हैं।

शीर्षोद्दवर्णदूतेनाऽप्यस्माकं सम्मतेन च।
करिष्यत्येव पुण्येशो बुंदीन्दौर्ज्जनशल्ल्यिकीम् ॥१९॥

वर्णदूतं विदित्वैवं रामचंद्रेण चालितम्।
राणादीन् सम्मते नेतुं तच्चके भैमिरुद्यनम् ॥२०॥

महाराणा के पत्र से और हमारी सलाह से, पूना के स्वामी बूंदी को निश्चय ही दुर्जनशाल की (तुम्हारी) करेंगे। ऐसे रामचन्द्र के भेजे हुए पत्र को जानकर भीमसिंह के पुत्र ने महाराणा आदि को अपने पक्ष में लाने का यह उद्यम किया।

उपजातिः

इतस्स बुन्दीपतिरात्तधर्मा चाणक्य कामन्दक वाक्यवर्मा।
शर्माऽऽश्रयोऽर्थिव्रजदत्तभर्मा स्वाध्यायसाध्याऽयसहायकर्मा॥२१॥

वृद्धश्रवाः सन्बलगोत्रपालस्तथा तपस्तक्षतयाऽनुपेतः।
अशीर्णपादो ह्यपि धर्मराजो राजा पि दोषाकरताविहीनः॥२२॥

श्रीदोप्यखर्वः सबलो ऽपि सौम्यः शिवो ऽविरूपाक्षपुराऽध्वरत्रः।
अभीष्टमेनो ऽपि निरस्तजाड्यो दरन्न भेजे पुरुषोत्तमोपि॥२३॥

इधर वह बूंदी का पति (उम्मेदसिंह) धर्म को ग्रहण करने वाला, चाणक्य और कामन्दक के वचन रूपी कवच वाला, ब्राह्मणों के आश्रय वाला और याचकों के समूह को सुवर्ण देने वाला, वेद और पुराणों के पठन पाठन से सिद्ध होने वाली शुभदायी विधि की सहायता से कर्म करने वाला और वृद्धों की सुनने वाला (इन्द्र) होने पर भी बल और गोत्र का पालन करने वाला। यहाँ बल और गोत्र शब्दों में श्लेष है अर्थात् इन्द्र पक्ष में बल (दैत्य) और गोत्र (पर्वत) इन का वह भेदन करने वाला है और बुन्दीन्द्र के पक्ष में बल (सेना) और गोत्र (कुटुंब अथवा जाति समूह) जिनकी यह पालना करने वाला है और इसी प्रकार तप को काटने से अनुपेत (युक्त नहीं) है (अर्थात् तप करने वाला है और वह इन्द्र तपस्वियों के तप को काटने वाला है) अशीर्णपाद होकर भी धर्मराज है (अर्थात् धर्म के चरण तो युग युग प्रति क्षय होते जाते हैं और इनके चरण अक्षय हैं) और राजा होने पर भी दोषों की खान नहीं है। (राजा नाम चन्द्रमा का है सो दोषाकर (अर्थात् रात्रि को करने वाला है)। कुबेर होने पर भी निधि रहित है (अर्थात् कुबेर तो लक्ष्मी का संचय करने वाला है और यह उड़ाने वाला है कुबेर पक्ष में खर्ब निधि और राजा पक्ष में खर्ब छोटे मनवाला अर्थात कृपण) बलवान होने पर भी सौम्य है, शिव होकर भी विरूपाक्ष (क्रूर दृष्टि वाला) नहीं है (तीन नेत्र होने से शिव का नाम विरूपाक्ष है) और पुर तथा यज्ञ की रक्षा करने वाला है(शिव त्रिपुर के और दक्ष के यज्ञ के नाश करने वाले हैं)। अभीष्टमेन होने पर भी मूर्ख नहीं है (अर्थात् इच्छानुसार मानने वाला मूर्ख होता है। और यह इष्ट को मानने वाला बुद्धिमान है।) पुरुषोत्तम होने पर भी दर का सेवन नहीं करता है

(पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के पक्ष में दर (शंख) और पुरुषों में उत्तम उम्मेदसिंह के पक्ष में दर (भय) वाची है)।

अनूनबाणः कमनोपि साङ्गः सत्यप्रियो भास्वदलीकशाली।
यद्यप्युदारो दृढमुष्टिदण्डो विरोचनो प्यञ्चदनन्तसप्तिः॥२४॥
अनेकदंशोपि सपर्शुपाणिः सत्स्वर्णकायोपि न चक्रिशत्रुः।
अनाश्रयाशः शुचिरेव साक्षादजिह्मगो भूमिभुजङ्गभोगी॥२५॥
प्रचण्डसद्दण्डजितारिपक्षः षाड्गुण्य शक्तित्रय तत्वदक्षः।
कृतापराधान्विनियम्य दुष्टान् राज्यं चकारापरकार्त्तवीर्यः॥२६॥

कामदेव होकर भी अनून (बहुत) बाणों वाला और अङ्ग सहित है। (कामदेव पंच बाणवाला और अंग रहित है।) सत्यप्रिय होकर भी भाषणशील (श्रेष्ट वक्ता) है। (और उधर युधिष्टिर सत्यप्रिय होने पर भी अश्वत्थामा के वध के अर्थ झूठ बोलने वाला था अथवा अप्रिय वक्ता था) उदार होने पर भी दंड देने में दृढमुष्टि (कृपण) है सूर्य होकर भी उत्तम अनेक घोड़ों वाला है (सूर्य केवल सात घोड़ों वाला ही है।) पर्शुपाणि होकर भी अनेक कवचधारियों (क्षत्रियों) वाला है (पर्शुपाणि अर्थात् परशुराम तो क्षत्रियों का नाश करने वाला था) और यह परसी (शस्त्र विशेष) हाथ में रखने वाला होकर भी क्षत्रियों को रखने वाला है स्वर्णकाय होकर भी चक्री का शुत्र नहीं है (अर्थात् स्वर्णकार्य गरुड़ तो चक्री सर्प का शत्रु है) और उम्मेदसिंह स्वर्ण सदृश शरीर वाला होकर चक्री विष्णु का शत्रु नहीं है शुचि होकर भी आश्रय का नाश करने वाला नहीं है (अर्थात् शुचि (अग्नि) तो आश्रय का नाश करता है और यह शुचि पवित्र आश्रय की रक्षा करता है भोगी होने पर भी अजिह्म सरल है (अर्थात् सर्प भूमि का पति नहीं होने पर भी वक्रगति (टेढ़ा चलने वाला है और यह सीधा होने पर भी भूमि रूपी वेश्या को भोगने वाला पति है। वेश्या के पति का नाम भुजंग है)। शास्त्र विहित उचित भयंकर दंड से शत्रु पक्ष को जीतने वाला सन्धि विग्रहादि छहों गुण और प्रभुशक्ति मंत्रशक्ति उत्साह शक्ति इन तीनों शक्तियों के मर्म में निपुण, अपराध करने वाले दुष्टों को विशेषता से दमन करके यह राजा उम्मेदसिंह मानों दूसरे कार्तवीर्य की तरह राज्य करने वाला है।

व्यतीत्य वीरः शिशिरं वसंतं तथैव चोष्णोपगमं गुणज्ञः।
प्राप्तासु वर्षासु परोपकारी व्यधत्त बुन्द्यां विविधान्विनोदान्॥२७॥
अनोकुहैरं कुरितैस्तृणोघैस्तत्राडशैलो रुचिरो वभूव।
जाताः समस्ता हरिता हरित्काः शृंगारशालिन्यवनी रराज॥२८॥
अलंकृतोदग्दिगुदारधारा कादम्बिनीकालहरित्कडारा।
ववर्ष वातोच्छलदम्बुवारानल्पकल्पप्रकटप्रसारा॥२९॥
चिरायभूभूविरहोपघाती पानीयपानीयपुरःप्रपाती।
तापं तडित्वांस्तपनस्य तर्ज्जन्नप्लावयद्भूमिमतीव गर्ज्जन॥३०॥

उस वीर ने शिशिर बसंत और उसी प्रकार निश्चय ही ग्रीष्म को बिताकर परोपकारी वर्षा के प्राप्त होने पर गुणों को जानने वाले (उस उम्मेदसिंह) ने बूंदी में नाना प्रकार के विलास किये। तहां वृक्षों के अंकुरों से और तृणों के समूहों से आडावला (अरावली) नामक पर्वत मनोहर हुआ सब दिशा हरी होकर शृंगार युक्त भूमि शोभायमान हुई। जिसने उत्तर दिशा को भूषित की है ऐसी काले, हरे और पीले रंग की और पवन से उछलते हुए जल के समूहवाली, प्रलय के समान अधिक है प्रत्यक्ष विस्तार जिसका, ऐसी उदार धारावाली मेघमाला बरसी। बहुत समय से पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले विरह का नाश करने वाले, पूर्व में अत्यन्त पानी गिराने वाले, ग्रीष्म के संताप को मिटाने वाले, मेघ ने बहुत गर्जना करके भूमि को डुबोया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे सहायीभूतमहारावनयनपुरबुंद्युद्धरणपत्र प्रेषणदालेलि कृष्णाऽनु-नयनतदनुमल्लारस्पर्द्धिरामचंद्रोपयोगिकरणप्राप्ततत्पत्रराणाऽऽदिसम्मेल-नोद्यमनबुंदीद्रवर्षर्तुविनोदविहरणमेकत्रिंशो मयूखः॥ आदितः ॥३१२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह चरित्र में कोटा के महाराव का सहायक होकर नैणवापुर में बूंदी दिलाने का पत्र भेजकर दलेलसिंह के पुत्र कृष्णसिंह से प्रार्थना करना, इसके बाद मल्लार की बराबरी करने वाले रामचन्द्र को उपयोगी करना और उसका पत्र पाकर राणा आदि को मिलाने का उपाय करना, बूंदींद्र का वर्षा ऋतु में विनोद पूर्वक विहार करने का इकतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बारह मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इम पाउस आगम उदित, अतुल अब्भ आसार।
अंकूरन भुव अच्छदिय, किय पूरन कासार॥१॥
यंहं अग्गैं गुनगोरि दिन, होतो उच्छव पूर।
बुद्ध सहोदर जोध के, बूडत वह हुव दूर॥२॥

हे राजा रामसिंह! इस तरह पावस ऋतु के आगमन समय में अतुलनीय मेघ छाए। जो बूंदी पर जम कर बरसे परिणामस्वरूप सारी भूमि हरी-भरी हो गई और सारे तालाब पानी से लबालब भर गए। पूर्व में यहाँ बूंदी में गणगौर के उत्सव को जोरदार ढंग से मनाने की प्रथा थी पर इसी गणगौर के दिन हाड़ा राजा बुधसिंह का छोटा भाई जोधसिंह जैतसागर में डूब मरा था। उसी दिन से गणगौर का उत्सव मनाना बन्द हो गया।

पादाकुलकम्

अब सावन अवदात तीज दिन, उच्छव किय बिख्यात हड्डु इन।
रानीजनन सुघाट सुहाई, पारवती प्रतिमा बनवाई॥३॥
बहुबिधि भूखन बसन बनाये, प्रीति उपेत ताहि पहिराये।
दै पटु संग अलंकृत दासी, नाम तीज वह प्रकट निकासी॥४॥
गई जैतसागर तड़ाग तट, भूपहु पत्त तत्त सब लै भट।
इक्क ओर देवी संसद जंहं, भूप सभा इक ओर बनी तंहं॥५॥
बारसुंदरिन नटन बनायो, अतुल मेघ आलाप उठायो।
बलि तंहं घटिका दोय बिताई, पुनि देवी महलन पधराई॥६॥

अब फिर से गणगौर का उत्सव मनाने की शुरूआत करते हुए राजा उम्मेदसिंह ने श्रावन माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के दिन रानियों की मनभावन श्रेष्ठ आकृति वाली पार्वती देवी की सुन्दर प्रतिमा बनवाई। रानियों ने गवर के लिए नानाविध प्रकार के आभूषण और वस्त्र बनवाए और प्रीति सहित गवर को पहनाए। फिर आभूषण पहने हुए एक चतुर दासी जिसका नाम तीजां था के सिर पर प्रतिमा धरवा कर सारी रानियां

जैतसागर तालाब के तट पर गईं। राजा भी अपने सामतों सहित वहाँ आया। यहाँ जैतसागर के तट पर एक और रानियों ने देवी की राजसभा लगाई तो दूसरी तरफ राजा उम्मेदसिंह ने अपना दरबार लगाया। वैश्याओं ने नयनाभिराम नृत्य आरंभ किया तभी आकाश में मेघ घटाओं ने अतुलनीय आलाप लिया। तब भी राग-रंग से सजी यह महफिल दो घड़ी तक चली। इसके बाद गवर माता की प्रतिमा को वापस महलों में लाया गया।

तदनु नरेस सेवकन हित हिय, मादक बस्तु मद्य बिनु बंटिय।
त्योंही कुसुमन हार किलंगी, सोभित अतर पान तिन संगी॥७॥

दै इम सबन चढ्यो बुंदीपति, आयो महलन मन प्रसन्न अति।
दूजे दिनहु यहै बिधि ठानी, पच्छे चढत पर्‍यो घन पानी॥८॥

पहुंच्यो निट्ठि निजालय संभर, फुट्टि तड़ाग चल्यो इहिं अंतर।
बिक्रम सक खट नभ बसु बसुमति, अतुल बिराव अचानक भो अति॥९॥

इसी समय राजा ने अपने सेवकों में शराब के अतिरिक्त अन्य मादक द्रव्य बँटवाए (बूंदी के राजाओं में वर्तमान महाराव रघुवरसिंह के अलावा राजा बुधसिंह ने ही मद्य-सेवन किया था) जिनके साथ फूलों के हार, पुष्प गुंथी कलंगियां, इत्र और पान जैसी सामग्री भी थी। अपने सेवकों और सामन्तों में तीज के अवसर पर प्रथानुसार बाँटी जाने सामग्री का वितरण कर बूंदी का राजा उम्मेदसिंह जैतसागर से घोड़े पर सवार हो प्रफुल्लित मन लिये अपने महलों में आया। अगले दिन भी यही कार्यक्रम दुहराया गया पर दूसरे दिन अपरान्ह में गरज कर पानी बरसा। बरसती भीषण वर्षा के कारण राजा बमुश्किल तमाम अपने महल तक पहुँच पाया। इसी बीच पानी की अधिक आवक के कारण तालाब फूट गया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छः के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में एक जोरदार धमाके के साथ तालाब की पाल टूट गई।

दोहा

सावन बिसद चउत्थि तिथि, रत्ति घटिय दुव जात।
जल न जैतसागर झिल्यो, उडिय सेतु अररात॥१०॥

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि का वह दिन था जिस

दिन दो घड़ी रात के व्यतीत होने पर जैतसागर तालाब की पाल पानी का दबाव बर्दाश्त न कर सकी और 'अरड़ाट' की ध्वनि के साथ तालाब की पाल टूट कर वह चली।

षट्पात्

अति जव फुट्टिय सेतु मनहुं तोपन गन छुट्टिय,
के लग्गत सतकोटि कूट पब्बय जनु तुट्टिय।
बुरजन ब्राज उडाय फोरि कोसन फटकारे,
मगबिच बिटप मिले सु हीनबल्कल करि डारे।
निग्रहु निवास मुंदिय सकल बिकल नक्र रुकि रुकि रहैं।
प्राकार पृथुल अटकैं न जल तो पत्तन बहु जन बहैं॥११॥

जैतसागर तालाब की पाल इतनी तेज आवाज के साथ फूटी मानो तोप चलने का धमाका हुआ हो। पाल इस तरह टूटी मानो वज्रपात से गिरि-शिखर टूट कर बिखरे हों। पाल पर बने बुर्जों (कोठों) के समूह गायब हो गये और देखते-देखते पानी कोसों तक फैल गया। पानी के बहाव के सामने जो भी पेड़ आए पानी ने उन्हें छाल रहित ठूंठ बना डाला। गहरे जलाशयों के इस तरह टूटने से व्याकुल मगरमच्छ भी कठिनाई से इधर-उधर रुके रहे। बूंदी की शहरपनाह से अवरूद्ध हो पानी शहर में नहीं गया अन्यथा पानी की चपेट में आकर कई लोग बह जाते।

दोहा

इम फुट्टत सर सेतुकों, सुन्यों अचानक स्वान।
कछुक काल अचिरज रह्यो, पुनि किय सबन प्रमान॥१२॥
प्रात ताल ऐसो लख्यो, हुव सब बैभव हानि।
मानहु बनिक धनाढ्य घर, लुट्टयो रंकन आनि॥१३॥
जोधसिंह जिहिं मध्य थित, बूड्यो अग्ग प्रमत्त।
जो सब अंग उपांग जुत, कढ्यो तरंडक तत्त॥१४॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने आपने साथ के लोगों सहित अचानक जब तालाब की पाल के टूटने का धमाका सुना तो थोड़ी देर तक सभी आकबाक

रह गए पर वापस शीघ्र ही संभल कर राजा ने अपने लवाजमें सहित वहाँ से प्रयाण किया। अगले दिन प्रातःकाल उन्होंने देखा कि भारी नुकसान हुआ है बूंदी की हालत ऐसी हो गई मानो किसी धनाढ्य सेठ के घर को रंकों ने लूट लिया हो। यह तालाब इतना गहरा था कि पूर्व में इसी में प्रमत्त हाड़ा जोधसिंह डूब गया था और उसे अंग-उपांग सहित निकालने के लिए नावें लगानी पड़ी थीं।

लिन्नी बुंदिय जानि इत, उदयनैर जगतेस।
पठये पत्र उमेद प्रति, लिखि हित बिहित बिसेस॥१५॥

अक्खी हमहु प्रसन्न अति, अब हड्डुन अधिराज।
अरहि इहाँ सन आयहैं, टीका के सब साज॥१६॥

कोऊ कोबिद सचिव निज, भेचहु सत्वर अत्थ।
हिय उपज्यो कछु पुच्छि हम, संसय तजहि समत्थ॥१७॥

नृपति पुरोहित मुक्कल्यो, दयाराम सुनि एह।
पहुंचि बिप्र तब दुव नृपन, संध्यो सरस सनेह॥१८॥

इधर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने जब यह सुना कि हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपनी बूंदी वापस अपने अधिकार में कर ली तो उन्होंने उचित बधाई का पत्र लिखवा कर प्रीतिपूर्वक बूंदी भिजवाया। इस पत्र में महाराणा ने लिखवाया कि हे हाड़ा राजा! बूंदी वापस लेने के समाचार से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। उदयपुर से शीघ्र ही टीका की सामग्री लेकर भले सरदार हाजिर होंगे। अब आपसे निवेदन है कि आप अपने किसी चतुर सचिव को अविलम्ब यहाँ भेजें ताकि मैं उससे कुछ बातें पूछ कर अपने संशय को मिटा सकूँ। महाराणा का ऐसा पत्र पाते ही हाड़ा राजा ने अपने राजपुरोहित दयाराम को उदयपुर भेजा जिसने वहाँ पहुँच कर दोनों राजाओं के मध्य सरस स्नेह के बंधन को और अधिक मजबूती प्रदान की।

अभयसिंह मरुभूप को, इत आयउ अवसान।
निज भट सब बुल्ले निकट होत कलेवर हान॥१९॥

अक्खी अब मम जात असु, इत सोदर बखतेस।
मोछत ही होवन लग्यो, अग्गैं धन्व नरेस॥२०॥

सो सठ अब मेरे मरत, नागोरहिं रक्खैं न।
मारि बिडारहिं मम सुतहिं, लहहिं जोधपुर अैन॥२१॥

रामसिंह मम पुत्र यह, है कुपुत्र मति हीन।
यासों तुम सब पलटिहो, रहिहो नांहिं अधीन॥२२॥

उधर मारवाड़ के राजा अभयसिंह का अंतकाल निकट आ गया। उसने स्वयं को मरणासन्न देख कर अपने सामन्तों को बुलवाया और कहा कि मेरे प्राण तो अब जाने वाले हैं। उधर वह मेरा छोटा भाई हैं बखतसिंह जो मेरी विद्यमानता में ही मारवाड़ का राजा बनना चाहता था। इसलिए मुझे पक्का भरोसा है कि मेरे मरने पर वह मात्र नागौर तक महदूद नहीं रहेगा। वह तो मेरे पुत्र को मार भगा कर जोधपुर पर अपना अधिकार करेगा। मैं जानता हूँ कि मेरा पुत्र रामसिंह कपूत है और मूर्ख है और यह भी जानता हूँ कि आप लोग ऐसे मूर्ख का साथ नहीं दोगे अर्थात् आप लोग इसके मातहत सामन्त बन कर नहीं रहोगे।

कुल कुठार कंटक यहै, पापी खल पहिचानि।
तुमहु कहां तक रक्खिहो, कूर नृपहिं मम कानि॥२३॥

तातैं जो अवरहि तकहु, तो पहिलैं कहि देहु।
याहि दिवावहु इतर कछु, वाहि जोधपुर एहु॥२४॥

नहिं तो जो अब इहिं मिलैं, पिच्छैं सोहु मिलैं न।
पुच्छन यह बुल्ले तुमहिं, अब मुहि बढत अचैंन॥२५॥

मेरतिया उपटंकि इक, दूदाउत रट्ठोर।
बुल्लयो सुनि रय्यांपुरप, सेरसिंह भट मोर॥२६॥

मेरा पुत्र न केवल कुल के लिए कलंक है पर वह दुष्ट तो समाज कंटक भी है। तुम लोग भी मेरे अदब के मारे उसको कब तक सहन कर पाओगे अर्थात् नहीं। इसी कारण से हो सकता है कि तुम मेरे सामन्त लोग बाद में किसी अन्य विकल्प के लिए सोचने लगो। यदि ऐसा है तो मुझे पहले बता दो। यदि तुम लोग जोधपुर बखतसिंह को देना चाहते हो तो मेरे पुत्र को अन्य कोई परगना दिलवा दो। यदि ऐसा अभी नहीं किया गया तो मेरा मन कहता है मेरे मरने के बाद तो इसे वह भी नहीं मिलेगा। मैंने आप

सभी लोगों से यही सब पूछने को बुलाया था क्योंकि मेरी बैचेनी बढ़ती जा रही है। अपने स्वामी के मुँह से यह सब सुनने के बाद दूदावत मेड़तिया राठौड़ शेरसिंह कहने लगा जो रियां का जागीरदार था।

हम हत्थिन ठिल्लैं भुजन, घल्लैं अद्रिन बत्थ।
खंडैं दक्खिन खग्ग बल, मंडै रन बिनु मत्थ॥२७॥

तिन जीवत कातर बचन, नन अक्खहु नरनाह।
कुलकुठार भवदीय सुत, तदपि करहि निरबाह॥२८॥

अधम तऊ यह कुमर पै, जो यह कन्या होय।
सोपैं भुग्गहिं जोधपुर, हम छत त्रास न होय॥२९॥

यह सुनि नृप बुल्ल्यो बहुरि, इतर भटन सन एस।
कैसी भासत सबन कों, अक्खहु मोहि असेस॥३०॥

हे स्वामी! हम अपनी भुजाओं की टक्कर से हाथियों को विचलित कर देने वाले और भिड़ने को पर्वत में बाथ डालने वाले योद्धा हैं। हम अपनी तलवार की ताकत से दक्षिणी सेना को भी खंडित करने वाले और समर में मस्तक कट जाने पर भी कबंध हो लड़ने वाले हैं। हम जैसे योद्धाओं के जीवित रहते स्वामी! आप ऐसे कातर वचन अपने मुँह से न कहें। लाख कुल का कुठार ही क्यों न हो हम उस आपके पुत्र रामसिंह से निर्वाह करेंगे अर्थात् निबाहेंगे। हे स्वामी! पापी है तब भी है तो मर्द ना? यदि इसकी जगह कन्या भी होती तब भी वह जोधपुर पर राज्य करती और हमारे रहते उसे किसी प्रकार का कोई भय नहीं होता। शेरसिंह मेड़तिया की यह बात सुन कर राजा अभयसिंह ने अपने इतर सामन्तों से पूछा कि आप लोगों को भविष्य में क्या दिखता है? मुझसे आप लोग कहते क्यों नहीं?

चंपाउत रट्ठोर तंहं, नगर आउवा ईस।
कुसलसिंह बुल्ल्यो सुनहु, इक मम धन्व अधीस॥३१॥

अैसी भासत कुमर की, करिहैं नीचन संग।
उचितन को आदर घटै, रंगै अनुचित रंग॥३२॥

सोतो हम सहिहैं सबहि, पै डेरन परवाय।
दुद्दुकारि रु कढ्ढै हमहिं, ततो रह्यो नहिं जाय॥३३॥

यह उदंत हुव जोधपुर, सुनहु भूप चहुवान।
अभयसिंह तजि तनु तदनु, कियउ महाप्रस्थान॥३४॥

राठौड़ राजा अभयसिंह से ऐसा सुन कर आऊवा का स्वामी चांपावत राठौड़ कुशलसिंह बोला कि हे मारवाड़ के स्वामी! आप मेरी एक बात सुनिये। मुझे साफ-साफ नजर आ रहा है कि कुमार रामसिंह नीच व्यक्तियों की संगत में रहना पसन्द करेगा इससे आदरयोग्य लोगों का आदर घटेगा और वह अनुचित रंग में रंगा रहेगा। हे स्वामी! इतना कुछ हुआ तब भी हम उसे सहन कर लेंगे पर यदि कहीं उसने हमारे शिविर (घर) बर्बाद कर हमें दुत्कार कर निकाल दिया तो ऐसी हालत में हमारा मातहत बने रहना नहीं हो सकेगा। हे राजा रामसिंह! वहाँ जोधपुर में यह वृत्तांत घटित हुआ और इसके थोड़े समय बाद ही मारवाड़ के राजा अभयसिंह का स्वर्गवास हो गया।

रामसिंह बैठो तखत, कुलहिं कलंकित कार।
जानतहे ताकों जगत, बहहि लयो आचार॥३५॥

इक ढड्डी अंत्यज अधम, अमी नाम अघरूप
वह बादक कंडोल को, मित्र कियउ मरुभूप॥३६॥

भगिनी ताकी, भांवती, नाम सुरूपां नारि।
रानिन पर पटरागिनी, करि रक्खी गृह डारि॥३७॥

अपने पिता राजा अभयसिंह की मृत्यु के बाद जोधपुर की राजगद्दी पर वह कुल को कलंकित करने वाला कुमार रामसिंह ही बैठा। लोगों को जिस बात का सन्देह था यह राजा रामसिंह वही आचरण करने लगा। राजा रामसिंह ने अपने ही राज्य के एक अधम और अंत्यज ढाढी जाति के अमीरचंद नामक वाद्य-कलाकार (जो तुरही बजाता था) को अपना मित्र बनाया। इस कमअक्ल सलाहकार की एक बहिन रूपवती थी जिसका नाम भांवती था। राजा रामसिंह ने इस ढाढी जाति की स्त्री को घर में डाल कर उसे सभी रानियों पर पटरानी बनाया।

पादाकुलकम्

दिन विपरीत जोधपुर केरे, तातैं बिधि ऐसे नृप हेरे।
सुरिन को सतकार न रक्खैं, सूरन सन अनुचित जड़ अक्खैं॥३८॥

नहिं सचिवन दासन सनमानैं, अरु बालिस नीचन हित आनैं।
मरूपति मित्र मृत्यु जब पायो, सुनि टीका मल्लार पठायो ॥३९॥

गो तिहिं संग मत्त इक बारन, परिणत प्रबल श्रवत मद धारन।
अभयसिंह सुत कोतुक आयो, सो गज निज गज संग लरायो ॥४०॥

हुलकर के इभ तैं निज हारयो, तब सठ मारन ताहि बिचारयो।
तोप दगाय हनहु इहिं अक्ख्यो, जग्गू विप्र निट्ठि कहि रक्ख्यो ॥४१॥

हे राजा रामसिंह! आप देखें कि जोधपुर के दिन विपरीत थे अर्थात् भाग्य खराब था जिससे उसे ऐसा राजा मिला। जो पंडितों का तो तनिक भी सम्मान नहीं करता था और शूरवीरों को वह मूर्ख अनुचित बातें कहता। न वह अपने सचिव और सेवकों का ही सत्कार करता। वह अल्पमति राजा रामसिंह तो सिर्फ नीच व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने में ही अपना हित समझता। मारवाड़ के राजा और अपने मित्र अभयसिंह के मरने के समाचार जब मल्हारराव होल्कर को मिले तो उसने नये राजा हेतु टीका का दस्तूर भिजवाया। होल्कर ने टीका की सामग्री में एक मदमस्त हाथी भेजा जो तिरछी घात करने वाला मदझर था। इसे देख कर अभयसिंह के पुत्र राजा रामसिंह को कौतुक सूझा और उसने इस हाथी से लड़वाने को अपना एक हाथी मंगवाया। दोनों हाथियों की जोरदार भिड़ंत हुई जिसमें होल्कर का भेजा हाथी जीत गया। यह देख कर मूर्ख राजा रामसिंह को गुस्सा आ गया और उसने इस हाथी को मारने की सोची। राजा ने तुरन्त आदेश दिया कि होल्कर द्वारा प्रदत्त हाथी को तोप के गोले से उड़ा दिया जाए पर जगराम नामक एक ब्राह्मण ने राजा को समझाया और उसे ऐसा करने से रोका।

बखतसिंह नागोर धराधन, निज धात्री पठई कछु कारन।
बुल्लि रु तास बसन उतराये, बुलि धरि सेकिम छगल चराये ॥४२॥

चंपाउत वह कुसल इक्क दिन, आयउ सभा जानि रामहिं इन।
तास पिट्ठि इक दास पठायो, अधोबस्त्र करि सैन कढायो ॥४३॥

तू बपु खर्ब कह्यो पुनि तासों, बढैं न तब बिक्रम लघु स्वासों।
सो पै दुस्सह कुसल रह्यो सहि, अभयसिंह आदेस चित्तचहि ॥४४॥

बहु अनुचित इम अधम बनावैं, कवि लोलाहु कहत अलसावैं।
सुनहु राम संभर असुस्वामी, बिथरी इम मरूपति बदनामी ॥४५॥

बखतसिंह सुनि मोद बढावैं, लैन जोधपुर दाव लगावैं।
... ॥४६॥

इसी समय में बखतसिंह ने नागौर से अपनी एक धात्री को किसी कार्यवश जोधपुर भेजा। इस दुष्ट राजा रामसिंह ने उस बूढी धात्री को बुलवाया और उसे नंगा करवा कर उसके योनि प्रदेश में पत्ते सहित मूलियां डलवा दीं और फिर उसके चारों ओर बकरियां चरने को छुड़वा दी। एक दिन आऊवा का स्वामी चांपावत राठौड़ कुशलसिंह राजा रामसिंह को अपना स्वामी जानकर उसके दरबार में आया। जब वह जाने लगा तो राजा रामसिंह ने अपने एक दास को उसके पीछे लगा कर संकेत से कुशलसिंह की धोती खुलवा दी फिर राजा ने नंगे कुशलसिंह से कहा कि देख! तेरा लिंग कितना छोटा है! यदि इसे नापा जाए तो यह कुत्ते के लिंग से भी छोटा ठहरेगा। इस तरह की बदतमीजी के अपमान का घूंट पी कर रह गया कुशलसिंह क्योंकि उसने अपने मन में पूर्व स्वामी अभयसिंह द्वारा कही बात का स्मरण किया। उस राजा रामसिंह राठौड़ ने ऐसी कई अनुचित बातें की जिन्हें कहते हुए कवि (ग्रंथकार) की जीभ उसका साथ नहीं देती। हे प्राणों के स्वामी हाड़ा राजा रामसिंह! ऐसे कृत्यों से दिशा-दिशा में जोधपुर के राजा रामसिंह की अपकीर्ति फैली। जिसे सुनकर बखतसिंह मन ही मन प्रसन्न होने लगा और सोचने लगा कि यही स्थिति रही तो जोधपुर पर मेरा अधिकार सुगमता से हो जाएगा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे पितृव्यकल्पवनगतगुणगौरीमहोबुन्दीन्द्रश्रावणश्रामशुक्लप्रथम-शिवादिनो त्सवस्थापनतदपरदिवससङ्कट्टयात्राऽनन्तरजैतसागरमहा-तड़ागजलसेतुत्रोटनराणाजगत्सिंहबिहितवर्णदूतबुंद्याऽऽगमनाऽवगत-दलोदन्तरावराट्पुरोहितदयारामोदयपुरप्रेषणधन्वधरेशाऽभयसिंहमहा-परिणामव्याधिवर्द्धनस्वकुपुत्रसमयसामन्तस्वीकरणाऽकरणनिश्चयका-बन्धराजकायत्यजनततनुजरामसिंहपट्टप्रापणतदुचिताऽनादरणांतप्रजनसहचरी-भवनपरिभावक पीलुमारणबिचारपितृव्यकधात्रेयीविवस्त्रीकरण-कुशलसिंहाऽधोवस्त्रकर्त्तनप्रतिपुरुषतन्निन्दाप्रसरणं द्वात्रिंशो मयूखः॥ आदित ॥३१३

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की सप्तमराशि में उम्मेदसिंह चरित्र में काका के मरने से बंद हुए गणगौर के उत्सव को बूंदी के पति का सावन मास के शुक्ल पक्ष की तीज के दिन फिर से स्थापन करना उसके दूसरे दिन समूह के गये बाद बड़े तालाब जैतसागर के जल का पाल को तोड़ना। राणा जगतसिंह के उचित पत्र का बूंदी में आना जानकर पत्र के उत्तर में रावराजा का पुरोहित दयाराम को उदयपुर भेजना, मारवाड़ के पति अभयसिंह को काल रोग के बढ़ने पर अपने कुपुत्र के राजापन को स्वीकार न करने के विचार से अपने उमरावों को बुलाकर निश्चय करना, शेरसिंह का सब सहन करने का स्वीकार करना और कुशलसिंह का उचित अनुचित निवेदन करना, राठौड़ों के राजा का शरीर छोड़ना और उस पुत्र रामसिंह का पाट पाना उसका उचित लोगों का अनादर करना और अन्त्यज लोगों का साथ करना अनादर करने वाले हाथी को मारने का विचार और काका की धाय को नग्न करना कुशलसिंह की धोती काटने से मनुष्य प्रति में उसके निन्दा फैलने का बत्तीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तेरह मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रितभाषा

पादाकुलकम

इत बुंदीस मंत्र इक धार्‌यो, सहर सितारा गमन बिचार्‌यो।
संग लयो निज दीप सहोदर, भजनेरीपति सेर सुभट बर॥१॥

हड्डा पुनि नाहर हरदाउत, अरु दलेल हरजन अमात्य सुत।
इत्यादिकन सहित नृप हंकिय, सुनि प्रयान दिस दिस अरि संकिय॥

नृपहिं चलत कोटेस निवार्‌यो, तउ न रुक्यो छल तास निहार्‌यो।
सक खट नभ धृति भद्द बिसद तंहं, बुंदिय रक्खि सचिव हरजन कंहं॥

पति संभर चल्ल्यो दक्खिन प्रति, रहि बघम इक रत्ति महामति।
दरकुंचन इम पत्त अवंतिय, श्राद्ध अपरपक्षग तत्थहि किय॥४॥

हे राजा रामसिंह! इधर बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने सितारा शहर जाने का विचार किया। इसके लिए उसने अपने छोटे भाई दीपसिंह और भजनेरी के जागीरदार अपने सामन्त शेरसिंह को अपने साथ लिया। इन दोनों के अलावा हाड़ा राजा ने हरदावत हाड़ा नाहरसिंह और अपने सचिव

हरजन हाड़ा के पुत्र दलेलसिंह को भी अपने काफिले में शामिल किया। उपरोक्त योद्धाओं के साथ राजा ने बूंदी से प्रयाण किया। राजा के इस प्रयाण की चर्चा सुन कर सभी ओर राजा के शत्रुओं में भय छा गया। कोटा के राजा ने राजा उम्मेदसिंह को इस यात्रा पर जाने से मना किया तब भी वह नहीं रुका क्योंकि वह कोटा के राजा के मना करने के पीछे रहे छल को जान गया था। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छह के भाद्रपद माह के शुक्ल पक्ष में राजा उम्मेदसिंह ने बूंदी की देखरेख के लिए अपने सचिव हरजन को रखा और स्वयं दक्षिण में जाने हेतु रवाना हुआ। राजा ने राह में एक रात्रि बेगूं में बिताई फिर वहां से दर कूच दर मंजिल बढ़ता वह उज्जैन पहुँचा। यहाँ रहते हुए राजा ने दूसरे पक्ष में (ज्योतिष में शुक्ल पक्ष को द्वितीय 'अपरपक्षाग' पक्ष माना जाता है) श्राद्ध आदि कर्म संपन्न किये।

हंके पुनि लग्गत नवरत्ते, अष्टमि दिन रेवा तट पत्त।
तंहं दक्खिन पति चोकीदारन, मंग्यो कर वह सरित उतारन॥५॥

सुनि नृप कहिय हम न कर दैहैं, जब उन अक्खिय पार न जैहैं।
तब तिन्ह भूप मिटाय बिडारे, पोतन करि निजतंत्र पधारे॥६॥

श्रीओंकार ईस दरसन करि, मांधाता जुत पूजि चयन परि।
रेवा नदि पुनि लंघि बड़े रय, पत्त नगर बुरहानपुराव्हय॥७॥

जोतिलिंग सिव अरचन मंडिय, विश्वकर्म प्रतिमा दरसन किय।
पुर अवरंगाबाद गये पुनि, गोदावरी बहुरि न्हाये धुनि॥८॥

नवरात्रि के आरंभ होते राजा यहाँ से आगे रवाना हुआ सो अष्टमी तिथि के दिन वह नर्मदा नदी के तट पर जा पहुँचा। यहाँ नदी के तट पर रहने वाले मराठ चोकीदारों ने राजा से नदी पार करवाने का कर माँगा। यह सुन कर हाड़ा राजा ने कहा कि हम कोई कर नहीं देंगे तो प्रत्युत्तर में तट सेवकों ने कहा कि तब आप नदी के पार नहीं जा सकते। यह सुनते ही हाड़ा राजा ने उन पहरेदारों को वहाँ से पीट-पाट कर भगा दिया और उनकी नावों को अपने अधिकार में लेकर (राजा ने) अपने साथियों सहित नर्बदा पार की। यहाँ राजा ने प्रसिद्ध तीर्थ ओंकारेश्वर महादेव के दर्शन किये वहीं मांधाता की पूजा अर्चना सम्पन्न की। यहाँ से वापस नर्बदा को पार

करते हुए राजा का दल बुरहानपुर नामक नगर में पहुँचा। यहाँ शिव के ज्योर्तिलिंग की पूजा की और विश्वकर्मा की प्रतिमा के दर्शन किये। राजा दल सहित यहाँ से औरंगाबाद पहुँचा और वहाँ पवित्र गोदावरी नदी में स्नान किया।

श्राद्ध बपन उपवास बिहित सब, बिरचि अग्ग बुंदीस चलिय तब।
उज्ज असित इम गय धरि नय धुर, बापगाँव नामक हुलकर पुर॥९॥

पुण्यापुर मल्लार हुतो तब, खंडू नृप सतकार कियो सब।
सम्मुह जाय बधाय रु लिन्नें, हय सिरूपाव निवेदन किन्नें॥१०॥

मुदित रची दिन प्रति महिमानी, दुलभ सिकार अनेक दिखानी।
अह कति रहत मलारहु आयो, बिबिध हेत मिलि दुहुंन बढायो॥११॥

बुंदिय खबरि गई नृप पैं तब, सचिवन अग्गैं दुखित प्रजा सब।
हरजन धन छिन्नत नन हारैं, बनिकन दै अभिसाप बिगारैं॥१२॥

हाड़ा राजा ने यहाँ उपवास रख कर मुंडन करवाया और श्राद्ध-तर्पण आदि पूरे विधि-विधान से सम्पन्न किया। राजा यहाँ से आगे बढ़ा और कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष में नीति को धारण करने वाला उम्मेदसिंह होल्कर मल्हारराव के बाप नामक गाँव में पहुँचा। इस वक्त मल्हारराव होल्कर तो पुण्यापुर अर्थात् पूना नगर में था इसलिए खांडेराव होल्कर ने हाड़ा राजा के दल का सत्कार किया। होल्कर के पुत्र ने सामने जाकर राजा की अगवानी की और शिरोपाव सहित एक घोड़े का उपहार नजर किया। खांडेराव ने प्रसन्न होकर राजा की पूरी आवभगत की और यहाँ उपलब्ध कई प्रकार के दुर्लभ जीवों का शिकार करवाया। राजा ने कई दिन यहाँ रहते व्यतीत किए तब कहीं मल्हारराव होल्कर आया। आते ही होल्कर ने दोनों पक्षों की प्रीति को और प्रगाढ़ बनाया। इस समय हाड़ा राजा के पास बूंदी से खबर आई कि आपकी अनुपस्थिति में आपके सचिव हरजन से सारी प्रजा परेशान है। पीछे बूंदी में हरजन हाड़ा लोगों से धन ऐंठने लगा है और वह सेठ-साहुकारों पर मिथ्या दोष लगा कर उन्हें दंडित करने लगा है।

चोरन तैं मिलि द्रव्य चुरावैं, खोसि खोसि सबकों बसु खावैं।
सुनि उदघोस कियो नृप निश्चय, निकस्यो सत्य तबहि मंड्यो नय।

भजनेरीपति सेरसिंह भट, हरजन कों पकरन पठयो झट।
तिहिं आय रु माटुंदा पत्तन, हड्डा घेरि लयो वह हरजन॥१४॥

कोटेसहिं तिहिं तबहि कहाई, भजनेरी प गहत मुहिं भाई।
अप्पहिं दये संग इनके हम, करहु सहाय स्वदासन हे छम॥१५॥

कोटापति सुनि करि त्वरिताई, पृतना दैन सहाय पठाई।
जो पहुंचै न इतैं बिच करि जय, गहि हरजनहिं सेर बुंदिय गय॥१६॥

वह सचिव हरजन चोरों से भी मिला हुआ है और मिल कर चोरी करवाने लगा है। वह धन खसोटने लगा है। इस प्रकार की पुकार आई सुन कर हाड़ा राजा ने तुरन्त नीतिपूर्वक निर्णय लिया। राजा ने तुरन्त अपने साथ आए भजनेरी के स्वामी शेरसिंह को भेजा और कहा कि जाते ही उसे बंदी बना लेना। शेरसिंह ने यहाँ पहुँचते ही माटुंदा नामक पुर में हरजन हाड़ा को आ घेरा। यह देख कर हरजन हाड़ा ने कोटा के राजा के पास खबर भिजवाई कि भजनेरी वाला शेरसिंह मुझे पकड़ने आया है अतः हे समर्थ राजा! मेरी सहायता कर मुझे बचाइये! समाचार पाते ही कोटा के राजा ने भी त्वरा दिखाते हुए शीघ्र ही अपनी सेना का एक दल हरजन की सहायता को रवाना किया पर इससे पूर्व कि कोटा की सेना वहाँ पहुँचती शेरसिंह ने हरजन को पकड़ लिया और वह उसे बूंदी ले गया।

तारागढ़ कारा बिच डारयो, बंधन लहि तब दर्प बिसारयो।
बापगांव मल्लार जुद्धजित, निज कन्न्या उपयम मंडिय इत॥१७॥

बुन्दीसहु बहुधन खरच्यो जहं, लगनकाल इक बत्त सुनी तहं।
अगहन मास बिसद सप्त अह, तज्यो छत्रपति साहू बिग्रह॥१८॥

हुलकर घर अति सोक तास हुव, सुता विवाहि चलन चिंत्यो धुव।
अनुज बापगाँवहि नृप रक्खिय, हरजन पुत्र अरज यह अक्खिय॥१९॥

द्वै दिन सिक्ख मोहि नृप दीजै, त्वरित आनि मिलिहों दिन तीजैं।
द्वै दिन सिक्ख ताहि तब दिन्नी, कछु न संक भजि जावन किन्नी॥२०॥

शेरसिंह ने सचिव हरजन हाड़ा को बंदी बना कर तारागढ दुर्ग की कारागार में डाल दिया। वह भी बंधन पा कर अपना दर्प खो बैठा। उधर बाप गाँव में युद्ध जीतने वाले मल्हाराव होल्कर ने अपनी बेटी का विवाह

मांडा। इस विवाह में बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने बहुत सारा धन खर्च किया। विवाह के लग्न मंडप में एक नई बात सुनने को मिली कि अगहन माह के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन छत्रपति साहू जी महाराज ने अपना शरीर त्याग दिया। इस खबर के सुनते ही होल्कर के घर में शोक व्याप्त हो गया। राजा ने भी होल्कर की बेटी के विवाह सम्पन्न होने पर यहाँ से जाने का कार्यक्रम बनाया। राजा ने अपने छोटे भाई दीपसिंह को बाप गाँव में छोड़ने की सोची तभी हरजन के पुत्र दलेलसिंह ने राजा से आकर निवेदन किया कि हे स्वामी! मुझे आप दो दिन का अवकाश दीजिये मैं शीघ्र ही तीसरे दिन आपसे वापस आ मिलूंगा। राजा ने दो दिन के अवकाश उपभोग की आज्ञा दी और मन में तनिक भी यह शंका नहीं की कि यह भाग जाएगा।

इत हड्डु रु हुलकर अनुरत्ते, पहिलैं दुव पुण्यापुर पत्त।
हौंतहँ सचिव सदासिव हितमय, नन्ह पितृव्यक सीमा जित नय ॥२१॥
संभरपति सम्मुह वह आयो, दिन दस रक्खि सनेह दिखायो।
इत हरजन सुत बापगांव रहि, जनकहिं सुनि पकरयो बिरोध चहि ॥२२॥
नृप अनुजहिं फोरन किय दुर्नय, फुट्ट्यो नहिं तब भजि कोटा गय।
इत संभर हुलकर पुण्या सन, पत्ते उभय सितारा पत्तन ॥२३॥
हड्डुहिं आत सुनत हरखायो, सम्मुह नन्ह कोस इक आयो।
डेरा काफरखोह दिवाये, पुनि महिमानी साज पठाये ॥२४॥

विवाह पश्चात् मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दोनों प्रीति पूर्वक बाप गाँव से पूना नगर में पहुँचे। पूना नगर में आगे नन्ह का चाचा और श्रीमंत का सचिव सदाशिव विद्यमान था जो नीतिपूर्वक अपने राज की सीमा बढ़ाने वाला था। वह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की अगवानी करने चला कर सम्मुख आया। पूरे आदर सत्कार सहित सदाशिव ने अपने अतिथि हाड़ा राजा को दस दिन यहाँ रखा। उधर वह हरजन हाड़ा का पुत्र दलेलसिंह पीछे से बाप गाँव में ही रह गया और अपने पिता को बंदी बनाए जाने के विरोध में उसने राजा के छोटे भाई दीपसिंह को अपने पक्ष में करने का अनीतिपूर्ण प्रयत्न किया पर जब उसने देखा कि राजा का भाई

टस से मस नहीं हुआ तो वह दलेलसिंह यहाँ से भाग कर कोटा चला गया। उधर होल्कर और राजा उम्मेदसिंह दोनों पूना से आगे सितारा शहर की ओर रवाना हुए। जब सितारा में श्रीमंत नन्ह ने हाड़ा राजा के आगमन के समाचार सुने तो वह राजा की अगवानी करने चल कर एक कोस की दूरी तक सामने आया। नन्ह ने अपने अतिथियों के शिविर काफरखोह में लगवाए और वहाँ आवभगत की सारी सामग्री भिजवाई।

साहू भूप मर्‌यो बिनु संतति, पृथुल राज्य किम रहैं बिनां पति।
साहू पितामही तारा तंहं, अरु प्रधान श्रीमंत नन्ह जंहं ॥२५॥
मंत्र बिचारि पनालागढ सन, राम बुलायउ संभा नंदन
अग्गैं नृप सिवराज कर्ण निभ, भूखन कविहिं दये बावन इभ ॥२६॥
संभा हुव ताको लघु सोदर, दिन्नों जाहि पनालागढ़ बर।
ताकैं सुत यह रामनाम हुव, सो अब कियउ सितारापति ध्रुव ॥२७॥
राजाराम बहुरि संभरपति, मिलिवाये दुव नन्ह महामति।
बैठे दुव इक तखत बरब्बर, चले दु ओर मोरछल चामर ॥२८॥
डोले त्रय पुनि नन्ह मंगाये, राजाराम बिवाह रचाये।
साहू पट्ट राम इम बैठो, इत इक लरन घूंसल्या पैठो ॥२९॥

छत्रपति साहू जी महाराज निःसन्तान मर गए। अब इतने बड़े राज्य की देखभाल स्वामी के बिना कैसे संभव हो? तब साहू महाराज की दादी तारा और प्रधान श्रीमंत नन्ह ने आपस में मंत्रणा की और पनालागढ़ से शंभा जी राव के पुत्र राम को यहाँ बुलवाया। (पूर्व समय में जिस राजा शिवराज (शिवाजी) ने कर्ण की तरह वदान्यता का प्रदर्शन करते हुए भूषण कवि को बावन हाथी दिये थे। इसी राजा शिवाजी ने अपने छोटे भाई शंभाजी राव को पनालागढ की जागीर दी थी।) पनालागढ़ के इस जागीरदार शंभाजी राव के राम नामक पुत्र था उसे यहाँ बुला कर सितारा का राजा बनाया। श्रीमंत नन्ह ने तब हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और सितारा के राजा राम को आपस में मिलवाया। दोनों राजा एक ही उच्च आसन पर बैठे। दोनों राजाओं पर चँवर ढुलाये गए। श्रीमंत नन्ह ने अपने राजा राम के विवाह रचवाने हेतु तीन डोले मँगवाए (कन्या को विवाह हेतु बुलाने को डोला मँगवाना कहते

हैं) और विवाह करवाए। इस तरह छत्रपति साहू जी महाराज की गद्दी पर राम बैठ कर उनका उत्तराधिकारी हुआ। यहाँ तब लड़ने को एक घोंसले आया।

दोहा

कहि अग्गैं श्रीमंत द्विज, बाजेराय प्रधान।
रघु नाम भट घुंसल्या, पठयो हिंदुसथान॥३०॥

तिहिं जनपद गुड़वान अरु, खानदेस लिय जित्ति।
हाकिम पंडित भासकर, रक्ख्यो तंहं करि कित्ति॥३१॥

पच्छो पुनि दक्खिन गयो, मृत सुनि बाजेराय।
साव रह्यो श्रीमंत सुत, नन्ह न जानैं न्याय॥३२॥

नन्ह हुकम लै छन्न तब, कतिक पिसुन भट्ट ओर।
खानदेस गुड़वानमैं, आये बनि बरजोर॥३३॥

कहते हैं कि पूर्व में प्रधान श्रीमंत बाजीराव पेशवा ने अपने एक सामन्त रघु नामक घोंसले को हिन्दुओं के स्थान की ओर भेजा अर्थात् उत्तर दिशा में भेजा था। इस पराक्रमी योद्धा रघु ने जाते ही गुड़वान जनपद सहित खान देश को विजित कर लिया। उसने तब इन विजित प्रदेशों पर पंडित भास्कर को हाकिम नियुक्त किया। वह यहाँ से वापस दक्षिण में गया क्योंकि उसने सुना कि बाजीराव की मृत्यु हो गई है और उसका पुत्र श्रीमंत नन्ह अभी बालक है। वह अभी न्याय करना क्या जाने? उधर श्रीमंत नन्ह से चुगली कर और चुपके से आज्ञा लेकर कुछ अन्य योद्धा खानदेश और गुड़वान जनपद में बरजोर बन कर गए।

तत्थ रघू भट भासकर, मार्‌यो इन करि जंग।
अप्पन थानां रक्खि तंहं, पार्‌यो द्वेस प्रसंग॥३४॥

बत्त यहै सुनि घुंसल्या, तबतैं धरत बिरोध।
अब आयउ श्रीमंत सों, जुद्ध रचन सजि जोध॥३५॥

हुलकर पति तंहं बीच परि, दोउन बैर मिटाय।
आनि रघु श्रीमंत कै, दिन्नों पयन लगाय॥३६॥

अनाधिकार बरजोरी कर जो सामन्त यहाँ आए उन्हें रघु घोंसले के

हाकिम भास्कर पंडित ने युद्ध कर मार भगाया और फिर से अपने थाने यहाँ कायम कर लिये। जब इसकी खबर रघु घोंसले को लगी तो मन ही मन श्रीमंत नन्ह पर बहुत खफा हुआ और अपने योद्धाओं को सज्जित कर वह श्रीमंत से युद्ध करने की इच्छा से सितारा पर चढ़ आया। संयोग से मल्हारराव होल्कर अभी वहीं था। उसने दोनों पक्षों को समझाया और वैर मिटवा कर दोनों में सुलह करवा दी। होल्कर ने रघु घौंसले को ला कर श्रीमंत नन्ह के चरण स्पर्श करवा दिए। इस तरह दोनों पक्षों की प्रतिद्वंद्विता मिटाई।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे बुन्दीन्द्रसितारापुरप्रस्थानतिरस्कृतमहाराष्ट्रमहिममेकलजोल्लङ्घनप्रति-तीर्थस्नानप्रत्यर्चाऽर्चनविहितविधेयसम्भरेशमल्लाराऽधिष्ठानबापग्राम-प्रविशनखण्डूसन्मुखाऽऽगमना ऽऽदिततत्सत्करणश्रुततदुदन्तहुलकरा-ऽऽगमनहड्डेन्द्रहरजना ऽमात्यदेशदुःखश्रवणप्रेषिततत्सनाभिसेरसिंह-वश्यवेष्टनहरजनाऽऽहूतकोटाकटकपूर्वभजनगरीभर्त्तृनिगृहीतबुंदीपुट-भेदनतारादुर्गप्राकारप्रवेशनोम्मेदसिंहहुलकरसुताविवाहबहुवसुवितरण-तत्रत्यम्लेच्छमण्डलमर्द्दकशीर्षोद्दसितारास्वामिसाहूश्मशानसदनसमासा-दनश्रवणपैत्र्यर्णव्यपकरणव्याजनीताऽवसरहारजनिकोटाऽऽगमनप्रदृ-ष्टपुण्यापुरसदाशिवसत्कृतमल्लारोम्मेदसितारासम्प्रापणश्रीमन्तसन्मुखा-ऽऽगमनपनालापतिरामराजाऽधिपत्याऽभिषेचनतद्बुन्दीन्द्रसम्मिलनतदेका ऽऽम्रनसन्निविशननन्हरामरावविवाहनमहाराष्ट्रमंडनसितारेशसुभटरणर-सिकरघूपूर्वाऽपमानसूचनतत्कुपिततद्योधनाऽऽगमन मल्लारत द्विग्रहपरा-सनरघूश्रीमन्तचरणपातं त्रयस्त्रिंशो मयूखः॥ आदितः॥३१४॥

इति श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह के चरित्र में बूंदीन्द्र का सितारा नगर को प्रस्थान करना, मरहठों की महिमा का तिरस्कार करके नर्मदा को उल्लंघन करना, करने योग्य हरेक तीर्थ में स्नान और प्रत्येक मूर्ति का पूजन करके रावराजा का मल्लार के स्थान बाप गांव में प्रवेश करना, खंडू का सन्मुख आने आदि से उसका सत्कार करना, राजा के समाचार सुनकर हुलकर का आना, हड्डेन्द्र का हरजन के दिये देश के दुख को अमात्यों से सुनकर अपने भाई शेरसिंह को भेजकर हरजन को पकड़ने के लिए घेरना, हरजन की बुलाई कोटा की सेना के आने से पहले

भजनेरी के पति शेरसिंह से पकड़े हुए हरजन को बुंदी नगर के तारागढ़ के किले में कैद करना, उम्मेदसिंह का हुलकर की बेटी के विवाह में बहुत सारा द्रव्य देना, वहाँ के मुसलमानों के मंडल को मारने वाले सिसोदिया सितारा के स्वामी साहू का मरघट में घर करना सुनना, पिता के ऋण को दूर करने के बहाने से अवसर पाकर हरजन के पुत्र का कोटा आना, सदाशिव से सत्कार किये हुए मल्लार और उम्मेदसिंह का पूना देखकर सितारे जाना, श्रीमन्त का सन्मुख आना, पलाना के पति रामराजा का राज्याभिषेक होना, उससे बुंदी के राजा का मिलना, मरहठों के मंडल सितारा के स्वामी के सुभट रणरसिक रघुके पूर्व अपमान को सूचित करना, उसका कुपित होकर युद्ध करने को आना, मल्लार का उसके बैर को मिटाना, रघु को श्रीमन्त के चरणों में गिराने का तैंतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ। और आदि से तीन सौ चौदह मयूख समाप्त हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

हरजन पुत्त दलेल इत, कोटा जाय प्रमत्त।
पठये लिखि नृप अनुज प्रति, बापगांव इम पत्त॥१॥

अप्प रहहु मम संग अरु, कोटा आवहु दीप।
तो बुंदिय पुर तखत धरि, मन्नें तुमहिं महीप॥२॥

दीपसिंह ए पत्र द्रुत, पठये अग्रज पास।
लखि तिन्ह मंद दलेल को, सुपहु तज्यो बिसवास॥३॥

हे राजा रामसिंह! इधर हरजन हाड़ा के पुत्र दलेलसिंह ने कोटा पहुँच कर प्रमत्त हो हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह को एक पत्र लिख कर बाप गाँव में भिजवाया। इस पत्र में उसने लिखा कि हे दीपसिंह! यदि तुम हमारे पक्ष में होकर यहाँ कोटा आ जाओगे तो हम तुम्हें बूंदी की राजगद्दी पर आसीन कर राजा बना देंगे अथवा हम तुम्हें राजा मानने को तैयार हैं। दीपसिंह हाड़ा को जब यह पत्र मिला तो उसने इस पत्र को सीधा आगे अपने बड़े भाई हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पास भिजवा दिया। पत्र को देखते ही हाड़ा राजा ने मंदबुद्धि दलेलसिंह पर भरोसा करना छोड़ दिया।

षट्पात्

नगर सितारा नीच हड्डु नाहर हरदाउत,
निज नृप सम्मति बिनुहिं जानि अप्पहिं सु बुद्ध जुत।
हुलकर प्रति किय अरज अग्ग नभ बसु सत्रह सक,
टोडा लिय जयसिंह डारि मिच्छन पर ओदक।
आवां पुरी रु दुन्नी उभय थान लये हमरेहु तब।
टोड्डा सु दिन्न तुम माधवहिं तो बखसहु मम भुवहु अब।।४।।

उधर सितारा नगर में हरदावत हाड़ा नीच नाहरसिंह ने अपने स्वामी की इजाजत लिये बगैर ही अपने आपको बुद्धिमान गिनते हुए सीधा होल्कर से यह निवेदन किया कि हे होल्कर मल्हारराव! पूर्व में विक्रम संवत् के वर्ष सत्रह सौ अस्सी में कछवाहा राजा जयसिंह ने यवनों को भय दे कर टोडा नगर अपने अधिकार में किया था। इस समय टोडा के साथ आवाँ और दूनी ये दो पुर हमारे भी दबा लिये गए। अब आपने जब टोडा का परगना माधवसिंह कछवाहा को प्रदान करवा दिया तो हमारी भूमि का क्या हुआ? अर्थात् हमें हमारे दोनों गाँव वापस देने चाहिए थे।

दोहा

कुप्प्यो हुलकर सुनत यह, सोर रह्यो पुर छाय।
अक्खी नृप कहते हमहिं, तो बनतोहु उपाय।।५।।
हम सन भिन्न प्रबुद्ध व्है, बिगराई निज बत्त।
भनि इम नाहर तैं भयो, बुंदिय भूप बिरत्त।।६।।
अग्गैं नन्ह अमात्य इत, रामचंद्र अघरत्त।
रानहिं सम्मलि लैन कों, पठये कोटा पत्त।।७।।
द्रुत विश्वेश्वरनाम द्विज, निज वकील कोटेस।
उदयनैर पठयो तबहि, फोरन रान नरेस।।८।।
तानैं मिलि जगतेस को, लिन्नों मन पलटाय।
दक्खिन देस प्रधान पैं, दिय इम पत्र लिखाय।।९।।

यह सुनते ही होल्कर क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया वह गरजते हुए बोला कि यदि यह बात तुम्हारे स्वामी हाड़ा राजा उम्मेदसिंह

हमसे कहते तो संभव है हम कुछ उपाय ढूंढते। इसी समय हाड़ा राजा ने भी नाहरसिंह से कहा कि हमसे बिना पूछे सीधे कहने की होशियारी कर अपनी बात बिगाड़ी, इस समझदारी से क्या मिला? इतना कह कर हाड़ा राजा भी नाहरसिंह से विरक्त हो गया। पूर्व में श्रीमंत नन्ह के अमात्य रामचन्द्र ने उदयपुर के महाराणा को अपने पक्ष में करने हेतु एक पत्र लिख कर कोटा भेजा। कोटा के राजा ने तुरन्त अपने एक वकील विश्वेश्वर नामक ब्राह्मण को रामचन्द्र का पत्र देकर उदयपुर भेजा और कहा कि यह दिखा कर महाराणा को अपने पक्ष में करना। इस ब्राह्मण ने उदयपुर पहुँच कर महाराणा जगतसिंह का मन पलटा दिया और दक्षिण देश के प्रधान के नाम इस आशय का एक पत्र लिखवा लिया।

दै बुंदिय उम्मेद हित, अनुचित हुलकर कीन।
करहु कथित कोटेस को, तो हम सर्ब अधीन॥१०॥

जोलों ए दल दूत लै, निकसै नैर बिहाय।
तोलों अक्खिय रान प्रति, दयाराम द्विजराय॥११॥

कोटेस हिं जानहु कुहक, मिल्यो सु जैपुर मांहिं।
सुनिहो रंचक दिनन मैं, है तुमतैं हित नांहिं॥१२॥

सु सुनि रान चलमति कहिय, कछु दिन परख बिथाय।
दक्खिन पत्र पठाय हैं, तोलग देहु थराय॥१३॥

भैसरोर पति स्वसुर हो, चुंडाउत भट लाल।
ता पंहं कृष्ण दलेल सुत, इत दिय पत्र उताल॥१४॥

पत्र में महाराणा जगतसिंह से लिखवाया कि मल्हारराव होल्कर ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को बूंदी देकर अनुचित कर्म किया है अब यदि आप कोटा के राजा का कहा करेंगे तो आप समझना कि हम सभी आपके अधीन रहेंगे। जब तक दूत महाराणा का ऐसा पत्र लेकर नगर से बाहर निकलते तभी ब्राह्मण दयाराम ने आ कर महाराणा से निवेदन किया। दयाराम ने कहा कि हे महाराणा! आप नहीं जानते कोटा का राजा कपटी है और वह जयपुर के कछवाहा राजा से मिला हुआ है। आप थोड़े ही दिनों में सुन लेंगे कि कोटा का राजा आपका हितैषी नहीं है। दयाराम की ऐसी बात सुन कर चलायमान मति वाले महाराणा ने कहा कि चलो, हम तुम्हारे

कहने पर कुछ दिनों के लिए परख करने हेतु ठहर जाते हैं। हम तब तक दक्षिण में अपना पत्र भेजना मुल्तवी करते हैं। उधर दलेलसिंह हाड़ा के पुत्र कृष्णसिंह ने शीघ्र ही भेंसरोड़ के स्वामी और महाराणा के सामन्त चूंडावत लालसिंह को जो उसका श्वसुर था एक पत्र लिख भेजा।

पत्र रावराजोपपद, रानां को लिखवाय।
सो ममढिग भेजहु स्वसुर, प्यारे अवसर पाय॥१५॥

इम लिखि पठयो उदयपुर, अप्पन बनिक बकील।
सोहु मिलायो रान सन, करि हट लाल कुसील॥१६॥

लघुमति पत्र लिखाय दिय, कृष्ण कथित परिमान।
जल कुल्ल्या जिम रान पन, फेर्यो फिरत अजान॥१७॥

बखतसिंह नागोर पति, इत सठ मंडि मरोर।
दिल्ली दल बुल्ल्यो बहुरि, दैन जोधपुर जोर॥१८॥

इस पत्र में उसने लिखा कि ओ श्वसुर जी! आप अवसर देख कर महाराणा से एक पत्र मेरे नाम लिखवा भेजें जिसमें मुझे रावराजा के उपटंक से संबोधित किया गया हो। कृष्णसिंह ने ऐसा पत्र लिख कर अपने बनिक वकील के हाथों उदयपुर भिजवाया। इस वकील को ले जाकर लालसिंह चूंडावत ने महाराणा जगतसिंह से मिलवाया। यही नहीं उस बुरे स्वभाव वाले ने कृष्णसिंह के नाम जैसा चाहा वैसा पत्र महाराणा से लिखवा दिया। लालसिंह ने सहज ही पानी की नहर के बहाव की तरह महाराणा का मन फिरवा दिया। उधर नागौर के स्वामी बखतसिंह ने दर्प से भर कर एक पत्र फिर से दिल्ली भिजवाया जिसमें यह प्रार्थना थी कि दिल्ली जोधपुर पर अपना दबाव डाले।

अरजी अहमदसाह सुनि, पुनि पठयो बल पूर।
जवन सलावतखान जहं, सेनानी करि सूर॥१९॥

कूरम ईश्वरिसिंह की, तनया सन बिख्यात।
रामसिंह मरुराज को, पहिलैं सगपन जात॥२०॥

यातैं आवत जोधपुर, सुनि दिल्लिय दल सोर।
कुम्महिं मरूपति भीर कों, बुल्ल्यो गिनि बरजोर॥२१॥

तब कूरम आमैर पति, उत्तर पठयो एह।
फोज खरच भेजहु ततो, आवहिं भीर सनेह ॥२२॥

बखतसिंह की इस अर्जी को अहमदशाह ने मान ली और सलावतखान को सेनापति बना कर जोधपुर पर शाही सेना का एक दल रवाना किया। इधर जयपुर के कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने अपनी पुत्री की सगाई जोधपुर के राजा रामसिंह राठौड़ से कर रखी थी। जब राजा रामसिंह ने सुना कि दिल्ली का दल जोधपुर पर चढ़ाई करने आ रहा है तो उसने अपने भावी श्वसुर को ताकतवर समझ कर उससे अपनी सहायता करने की गुहार की। यह सुन कर आमेर के कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने वापस कहलवाया कि हे राठौड़ राजा! यदि आप फौजखर्ची देने को तैयार हों तो हम सस्नेह आपकी सहायता करने आ सकते हैं।

षट्पात्

अग्गैं नृप करते सहाय सुनि बिपति परस्पर,
फजखरच लेते न जदपि होतो भर संगर।
जामाता सन कुम्म मेटि रीति सु धन मंगिय,
तब मरुभूप सनेम लक्ख दम्मन भरनां दिय।
सजि तब अनीक जयसिंह सुव कोटा भेजिय कग्गरहिं।
हम संग होय जवनन हनहु तो बुंदिय तुम बस करहिं ॥२३॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में राजा लोग एक दूसरे पर विपत्ती आने पर परस्पर सहायता करते थे। वे किसी से कोई फौजखर्च नहीं लेते तब भी भीषण संग्राम में संलग्न रहते थे। अब देखिये अपने दामाद के साथ इस पुरानी रीति को मिटा कर कछवाहा राजा ने फौजखर्च का धन मांगा। तब मारवाड़ के राजा रामसिंह ने डेढ़ लाख रूपये देने की पेशकश की। इस प्रस्ताव को सुन कर आमेर के राजा ने अपनी सेना सज्जित की और कोटा के राजा को एक पत्र लिख भेजा। इस पत्र में कछवाहा राजा ने लिखा कि हे कोटापति! यदि आप हमारे संग आ कर यवनों को मारेंगे तो हम बूंदी को आपके अधिकार में करवा देंगे।

यह कहाय करि कुंच चल्यो मरूपति सहाय पर,
मरूपति सों अति मोद मिल्यो तीरथगुरु पुक्खर।

नगर मेरता तदनु जाय दोउन मिलान दिय,
इत दिल्ली दल ईस उदयपत्तन दल भेजिय।
हम संग होहु जगतेस नृप सह माधव सेवानुरत।
अग्रजहिं मारि अप्पहिं हमहु तो अनुजहिं जैपुर तखत॥२४॥

कोटा के राजा को ऐसा कहला कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह मारवाड़ के राजा रामसिंह की सहायता करने रवाना हुआ। वह शीघ्र ही पुष्कर पहुँचा जहाँ दोनों राजाओं का मिलना हुआ। यहाँ से आगे चढ़ कर राजा ने मेड़ता में अपना पड़ाव डाला। उधर दिल्ली से आए दल के सेनापति सलावतखान ने उदयपुर पत्र भेजा कि हे महाराणा जगतसिंह ! आप और माधवसिंह कछवाहा दोनों हमारे साथ हो जाएँ। यदि वह माधवसिंह अपने बड़े भाई ईश्वरीसिंह को मार कर हमें सोंपेगा तो हम उसे जयपुर का तख्त सोंप देंगे।

यह सुनि सज्जिय रान होन दिल्लीय दल सम्मलि,
इत कोटा अधिराज कुम्म कग्गर बंचिय बलि।
हुव तयार तव हड्डु करन कूरम किंकर पन,
बुंदिय लोभ बिथाय रचन दिल्लिय दल तैं रन।
पुरजन कितेक कछु काम तंहं कोटा के गय उदयपुर।
तिन कहिय जात कोटेस सजि जैपुर सम्मलि दल प्रचुर॥२५॥

पत्र पढ़ कर महाराणा जगतसिंह ने दिल्ली के दल में शामिल होने को अपनी सेना सज्जित की। उधर कोटा के राजा ने कछवाहा राजा के पत्र को पढ़ा और शीघ्र ही सेना सज्जित कर कछवाहों का किंकर बनने को तैयार हुआ। वह बूंदी पाने के लोभ में दिल्ली के दल से लोहा लेने चला। इस समय कुछ कोटा के निवासी अपने किसी कार्य से उदयपुर गए उन्होंने वहाँ महाराणा को खबर दी कि कोटा का राजा तो बड़े दल सहित सज्जित होकर जयपुर की सेना में शामिल होने जा रहा है।

दयाराम द्विज तबहि रान यह सुनत सिराह्यो।
अक्खिय हम सन हेत नांहिं कोटेस निबाह्यो।
यह सुनाय वे पत्र लिखे दक्खिन पहुंचावन।
दिन्नैं ते द्विज हत्थ प्रीति बुंदिय पर लावन।

द्विज दयाराम ते दल सकल सहर सितारा मुक्कलिय।
तब उभय हड्ड हुलकर तमकि कग्गर बंचत कोप किय॥२६॥

महाराणा ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने सर्वप्रथम द्विज दयाराम की सराहना की और उसे बुला कर कहा कि तुमने ठीक कहा था कोटा के राजा ने हमसे स्नेह नहीं निभाया। इतना कह कर महाराणा ने नये पत्र दक्षिण में भेजने हेतु लिखवाए और उन्हें द्विज दयाराम को सोंपा। इन पत्रों में महाराणा ने श्रीमंत से बूंदी की सहायता करने का लिखा। द्विज दयाराम ने तुरन्त महाराणा के लिखे पत्रों को सितारा भिजवाया। ये पत्र जब होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को मिले तो उन्होंने पत्र पढ़ते ही क्रोध किया।

दोहा

पुनि मलार खिजि नन्ह पर, रुठि चल्ल्यो निज देस।
सुनत नन्ह अड्डो फिरयो, बुल्ल्यो बिनय बिसेस॥२७॥

छमहु कोप मल्लार छम, सुनहु बत्त मम एक।
सचिव अठ्ठ यह मुख्यहे, अग्गैं बिहित बिबेक॥२८॥

इस पत्र को देख कर मल्हारराव होल्कर श्रीमंत नन्ह पर खीझ उठा और वहाँ से (सितारा से) रूठ कर अपने देश जाने को रवाना हुआ। इसकी खबर जब नन्ह को हुई तो वह मल्हारराव को मनाने के लिए बीच राह में रास्ता रोके खड़ा हो गया और विनम्रता के साथ कहने लगा। हे समर्थ होल्कर! आप अपने क्रोध का शमन करें और मेरी एक बात सुनें। पूर्व में भी अपने विवेक से सितारा के ये आठ सचिव मुख्य रहे हैं।

पादाकुलकम्

श्रीपतिराव हुते सबमैं इन, प्रतिनिधि को उपपद पायो जिन।
तिन मुख अग्गैं मम प्रपितामह, बिश्वनाथ बितये अनेक अह॥२९॥

बाला हुव पुनि बिश्वनाथ सुत, तेहु रहे मुख अग्ग बिनय जुत।
श्रीपति संग पेस रहिबे सन, तिनहिं पेसवा कहन लगे जन॥३०॥

बाजेराय भये बालासुत, मामक जनक पेसवा नय जुत।
श्रीपतिराव मरे प्रतिनिधि जब, तुम पंचन हमरो जस किय तब॥३१॥

श्रीपति की तब मुख्य सचिव गति, बाजेरायहिं दई छत्रपति।
अंक छाप जिम खनित उधारे, सो तुम सुनहु गद्यकरि सारे॥३२॥

सर्वप्रथम श्रीपतिराव ने कायम मुकाम प्रतिनिधि का उप पद प्राप्त किया था। उनके आगे मेरे प्रपितामह विश्वनाथ ने रह कर कई दिन बिताये! विश्वनाथ का पुत्र बालाजीराव अपने पिता के बाद मुख्य सचिव के आगे रहे। श्रीपति के साथ अधीन रहने के कारण (पेस रहने से) सभी लोग उन्हें पेशवा कहने लगे। बालाजी राव के बाद उसका पुत्र बाजीराव नामक मेरे पिता नीतियुक्त नये पेशवा बने। जब मुख्य प्रतिनिधि श्रीपति का स्वर्गवास हुआ तब आप ही सारे पंचों ने पेशवाओं के कार्य की सराहना की थी। जिसे सुन कर छत्रपति ने तब श्रीपतिराव का मुख्य सचिवत्व बाजीराव पेशवा को दे दिया। यही नहीं उस समय की छाप (मुहर) पर यह इबारत अंकित की गई जो आगे के गद्यांश में दी गई है।

सचरणगद्यम्

'श्रीसाहुराजा छत्रपति हर्षनिधान बाजेराय बालाजी पंडितप्रधान' ए अंक छाप मैं खुदाय हमारे पिता पेसवा बाजेराय छत्रपति नैं मुख्य प्रधान कीनैं।

अरु उनके देहांत के अनंतर 'श्रीसाहूराजाछत्रपति हर्षनिधान नन्हांजीबाजेराय पंडितप्रधान' ए अंक सितारेश्वर ने छाप मैं खुदाय दीनैं।

तदनंतर जब छत्रपति साहू परलोक गये।

तब पनालागढ़ सों पितृव्यक संभा के पुत्र राजाराम आयकैं सिताराके अधीस भये॥३३॥

'श्री साहू राजा छत्रपति हर्षनिधान बाजीराव बालाजी (का पुत्र) पंडित प्रधान' इस प्रकार की इबारत छाप में खुदवा कर हमारे पिता पेशवा बाजीराव को छत्रपति महाराज ने मुख्य प्रधान बनाया था और उसके देहावसान के बाद 'श्री साहू राजा छत्रपति हर्ष निधान नन्हाजी बाजीराव पंडित प्रधान' की इबारत सितारा के स्वामी ने छाप में खुदवा कर प्रदान की। इसके बाद जब छत्रपति का स्वर्गवास हुआ तब पनालागढ़ से छत्रपति के काका शंभाजी राव के पुत्र राजाराम यहाँ सितारा के नये स्वामी बने।

अब वेही अंक नई छाप मैं राजाराम के नाम सहित खनाये।

सो सब इत्यादिक अभ्युदय के फल तुम पंचन नैं प्रसंसापूर्वक मिलाये।

तुमहीनैं हैदराबाद के नवाब निजामनमुलक कों जेर करि रूपय्ये मैं सिक्का अपने अंक को खुदाय जागीरी पटा मैं हैदराबाद ही पच्छो उनकों दिवाय बंदगी सितारे की कराई।

अरु गुजरात को मालिक दामा गायग्वाल साठि हजार सेना को सिरदार फिराऊ भयो ताकों कैद करि दंड लै रु गुजरात को अपनें अधीन बनाई॥३४॥

इसके बाद नई छाप में भी वही इबारत राजा राम के नाम से खुदवाई गई। ये सारे अभ्युदय रूपी फल हमें आप सभी पंचों की प्रशंसा से ही मिले हैं। हे होल्कर! आपने ही हैदराबाद के नवाब निजामुलमुल्क को हरा कर उनके सिक्के रुपये (मुद्रा) में अपनी इबारत खुदवा कर हैदराबाद की जागीर पट्टे द्वारा वापस उनको सौंपी पर उसमें बंदगी सितारा की करवाई। उसी तरह गुजरात का स्वामी दामा गायग्वाल (गायकवाड़) साठ हजार की संख्या वाली सेना का सेनापति विद्रोह कर उठा तब आपने ही उसे कैद किया और उससे दंड वसूल कर गुजरात को अपने अधीन बनाया।

तुमारे प्रताप तैं इत्यादिक अभ्युदय देखि सबन नैं सितारे कों कुमारिकेश्वर कह्यो।

तिनके रुठि गयें रामराजा के राज्य में स्वामिधर्मी सचिव कोन रह्यो।

अैसो आदेस श्रीमंत को सुनि हुलकर नें दयाराम द्विजके पठाये दल दिखाये।

अरु कही कोटादिक कूर बुंदीस सों बैर करैं सो पापिष्ठ पंडित रामचन्द्र के सिखाये॥३५॥

हे मल्हारराव! तुम्हारे पराक्रम से ही राज्य का अभ्युदय हुआ और यही कारण है कि सितारा का राजा कुमारिकेश्वर के खिताब वाला कहलाया।

अब तुम्हारे इस तरह रूठ कर जाने पर रामराजा के राज्य में स्वामिधर्म पालने वाला सचिव कौन रह जाएगा? श्रीमंत नन्ह की यह बात सुन कर मल्हारराव होल्कर ने ब्राह्मण दयाराम के भेजे हुए पत्र दिखाये और कहा कि कोटा के जैसा कायर राजा बूंदी के स्वामी से बैर करें ? यह सब तभी संभव है जब पापी पंडित रामचन्द्र ने ऐसी सिखलाहट की हो। अर्थात् यह सभी कुछ उसी का किया करा है।

दोहा

सुनत पत्र श्रीमंत करि, रामचंद्र पर रीस।
सज्जित हिंदुसथान पर, किन्नों हुलकर ईस॥३६॥

कछुदिन पहिलैं नन्ह सों रामचंद्र कहि बत्त।
संध्या को अधिकार सब, छिन्न्यों पिसुन प्रमत्त॥३८॥

निंदा बहुरि मलार की, कहि कहि कितव कुढार।
अप्पहिं हिंदुसथान पर, हुव मालिक हुसियार॥३८॥

अब ताको यह कपट लखि, नन्ह दयो सु निवारि।
किय तयार मल्लार कंहं, बलि बिस्वास बधारि॥३९॥

होल्कर के दिखाये पत्रों को देख कर श्रीमंत नन्ह पेशवा पंडित रामचन्द्र पर कुपित हुआ और उसने तुरन्त मल्हारराव को सेना सहित सज्जित होकर हिन्दुस्तान (उत्तर के क्षेत्र) पर जाने को कहा। अभी कुछ दिन पूर्व श्रीमंत नन्ह पेशवा के आगे पंडित रामचन्द्र ने चुगली कर सिंधिया के सारे अधिकार छिनवा दिये थे। यही नहीं उसने मल्हारराव की भी पेशवा के समक्ष निंदा पर निंदा की और स्वयं चतुराई से हिन्दुस्तान का मालिक ही बन बैठा पर अब उसका सारा छल-प्रपंच देख कर श्रीमंत पेशवा नन्ह ने उसे वंचित कर दिया और अपने विश्वास का प्रदर्शन करते हुए फिर से मल्हारराव होल्कर को उत्तर क्षेत्र में जाने हेतु तैयार किया।

राजोरा सटवा तबहि, हुलकर निज उमराव।
दस हजार दल संग दै, पठयो अग्ग सचाव॥४०॥

अक्खी तुम पहिलैं चलहु, दब्बहु हिंदुसथान।
चातुरमास बिताय हम, आवहिं कटक अमान॥४१॥

तब सटवा दरकुंच करि, लंघि नगर उज्जैन।
आयो सुनि दिस दिस उठिय, ओदक भूपन अैन॥४२॥

श्रीमंत पेशवा ने मल्हारराव होल्कर के सामन्त राजोरा सटवा को दस हजार सैनिक दे कर उत्साहपूर्वक अग्रिम रवाना किया और कहा कि तुम इस सेना के साथ आगे चल कर हिन्दुओं के स्थानों को दबाओ पीछे से चतुर्मास (पावस ऋतु) बिता कर हम एक भारी सेना के साथ आ रहे हैं। आदेश पाते ही सटवा ने वहाँ से दल सहित कूच किया और शीघ्र ही उज्जैन पार किया। उधर सटवा के दल के आने की खबर चारों ओर फैली और यहाँ राजाओं के घर-घर में भय व्याप्त हो गया।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे कोटागतहारजनिदलेलसिंहबुन्दीन्द्रसोदरदीपसिंहभेदन पत्रलिखन-दृष्टाऽनुजप्रेषितत्पत्रसितारासंस्थितरावराडमात्यविश्वासत्यजननिजपुरा-ऽऽवा दुंण्यु द्धरणहरदाउत्तनाहरसिंहमल्लारविज्ञापनकोपतत्तद-नूरीकरणश्रुतैनद्धड्डेन्द्रस्वभटकुत्सनसमवगतश्रीमन्ताऽमात्यपण्डितरामचन्द्र-राणाभेदनपत्रकोटेशविप्रविश्वेश्वरोदयपुरप्रेषणबिभित्सुमायामूढराणा-बुन्दीदुर्जनशल्यदापनपत्रलिखन प्रस्थित तद्द्विजदयारामनिवारणदा-लेलिश्वशुरचुंडाउत्तलालसिंहजामातृ हितराणारावराट्पदपत्रलेखननागोर-पुरेशरठ्ठोड़बखतसिंहस्वसहायदिल्लीसैन्याऽव्हयनतद्गीतयोधपुरेशरठ्ठो-डरामसिंहस्वीयश्वशुरकूर्म राजाऽऽव्हानानीतसाऽर्द्धलक्ष मुद्रासितजामातृ-द्रव्यसमाहूतमहारावप्रस्थितजायसिंहिपुष्करक्षेत्रजामातृमिलननृपद्वय मेरतापुरपृतनापातनप्राप्तदिल्लीशसेनानी पत्रराणा जिगमिषुभवनश्रुत-कोटेशशत्रुभावराणापूर्वलिखितदयारामऽर्पणपुरातत्सिताराप्रेषणश्रीमन्त-श्रुतैतदुदन्तकुपितयियासुहुलकर हड्डेन्द्र ऽनुनयनज्ञातरामचन्द्रकौहक्य-नन्हतदधिकारमल्लाराऽर्पण मल्लारस्वभटसटवाहिंदुस्थानागमनं चतुस्त्रिंशो मयूखः॥ आदितः॥३१५॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि में उम्मेदसिंह के चरित्र में कोटा में गये हुए हरजन के पुत्र दलेलसिंह का बुन्दी के पति के छोटे भाई दीपसिंह को फोड़ने का पत्र लिखना। छोटे भाई के भेजे हुए उसके

पत्र को देखकर सितारा में ठहरे हुए रावराजा का अमात्य का विश्वास छोड़ना अपने पुर आवां और दूणी के निकलाने की हरदाउत नाहरसिंह का मल्लार से अरज करना और उसका क्रोध सहित अस्वीकार करना सुन कर हड्डेन्द्र का अपने उस उमराव की निंदा करना, श्रीमन्त के अमात्य रामचन्द्र का राणा को फोड़ने का पत्र प्राप्त करके कोटा के पति का ब्राह्मण विश्वेश्वर को उदयपुर भेजना और उसकी माया में मूर्ख राणा का दुर्जनशाल को बूंदी देने की सम्मति का पत्र लिखकर भेजने में ब्राह्मण दयाराम का रोकना, दलेलसिंह के श्वसुर चूंडावत लालसिंह का जमाई के अर्थ राणा से रावराजा के पद का पत्र लिखवाना, नागोर पुर के पति राठौड़ बखतसिंह का अपनी सहाय को दिल्ली की सेना को बुलाना और वह सुनकर जोधपुर के पति राठौड़ रामसिंह का अपने श्वसुर कछवाहा राजा ईश्वरसिंह को बुलाना जमाई से डेढ़ लाख रूपये लेकर कोटा के महाराव को बुलाकर जयसिंह के पुत्र का पुष्कर क्षेत्र में जमाई से मिलना, दोनों राजाओं का मेड़ता नगर में मुकाम करना और दिल्ली के सेनापति का पत्र पाकर राणा का जाने की इच्छा वाला होना और कोटा के पति का शत्रु भाव सुनकर पहिले लिखे पत्रों का दयाराम को देना, उसका उन पत्रों को सितारापुर भेजना और श्रीमंत का उस वृत्तान्त को सुनकर कोप से जाने वाले हुलकर और उम्मेदसिंह को नहीं जाने देना, रामचन्द्र का छल जानकर नन्ह का उसका अधिकार मल्लार को देना और मल्लार और अपने उमराव सटवा का हिंदुस्तान में आने का चौंतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ पंद्रह मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पादाकुलकम्

इत कोटापति को बहिकायो, बुंदिय लरन कृष्ण वह आयो।
दै घेरा तोपन रन मंडिय, खोम बरण कपिसिर कछु खंडिय ॥१ ॥

लग्गे कहन सेस दिग्गज गन, बिरचहु बाहुज नास बिरंचन।
इनको बीज रहैं छिति जोलों, रंचक चैन हमें नहिं तोलों ॥२ ॥

दिस दिस यह कोलाहल अद्भुत, बुंदिय इम बिंटिय दलेल सुत।
नहिं नृप तदपि कढ्यो अंतर दल, चालुक कायथ हत्थ चलाचल ॥३ ॥

हे राजा रामसिंह! इधर कोटा के राजा द्वारा बहकाया हुआ दलेलसिंह का पुत्र कृष्णसिंह बूंदी से लड़ने आया। उसने अपनी तोपों से बूंदी को घेर कर युद्ध आरंभ किया। तोपों के प्रहार से उसने बूंदी के दुर्ग की कुछ बुर्जे, शहरपनाह और कंगुरे खंडित कर डाले। यह देख कर शेषनाग और दसों दिशाओं के दिकपाल ब्रह्मा से प्रार्थना करने लगे कि हे देव! आप इन क्षत्रियों का नाश कर डालो ! क्योंकि जब तक पृथ्वी पर उनका बीज रहेगा तब तक ये हमें रंच मात्र भी चैन नहीं लेने देंगे। दिशा-दिशा में यह बात फैल गई कि बूंदी को दलेलसिंह के पुत्र ने आ घेरा है। इस समय राजा उम्मेदसिंह यहाँ उपस्थित नहीं था तब भी दुर्ग के भीतर से चालुक्य और कायस्थ के साथ सेना बाहर मुकाबले को आई।

षट्पात्

सोलंखी संग्रामसिंह जोराउर नंदन,
कायथ मोजीराम कढे अरि करन निकंदन।
मारे के रन अपर झारि निब्भर समसेरन,
देर न किय दालेलि भज्यो भीरुक तजि डेरन।
नैनवा मग्ग लिय रुक्कि इन तब सु जाय कोटा रहिय।
कोटेस हिंतु दै द्रुत कटक करहु भीर अब इम कहिय॥४॥

इस सेना में सोलंकी जोरावरसिंह का वीर पुत्र संग्रामसिंह था तो उसके साथ मोजीराम कायस्थ भी सज्जित होकर बाहर आया। शत्रु का संहार करने में अग्रणी रहने वाले इन वीरों ने बाहर निकलते ही अपनी तलवारों के प्रहार करने आरंभ किये। प्रहारों की भरमार के आगे दलेलसिंह का पुत्र न टिक सका और वह कायर कृष्णसिंह अपने शिविर छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। उसने बूंदी से सीधा नैनवा जाने वाला मार्ग पकड़ा और भागता-भागता कोटा जा पहुँचा। उसने कोटा के राजा से जा कर कहा कि आप मेरी सहायता करें।

दोहा

गो बुंदिय तुमरे कहैं, आयो रखत लुटाय।
बल बिनु बैर न बाहुरत, सत्वर देहु सहाय॥५॥
दुजनसल्ल उत्तर दयो, दिवस भीरके ए न।
कछुक काल छन्नें रहहु, सटवा आत ससेन॥६॥

राजोरा दरकुंच रचि, कोटा सन लहि दंड।
द्रुत पहुंच्यो अजमेर दिस, मंडत अमल अखंड॥७॥

खत्री केसवदास कै, पठये सटवा पत्र।
बखतसिंह सन बैर तुम, अनुचित करहु न अत्र॥८॥

हे कोटा के स्वामी! मैं आपके कहने पर ही बूंदी लड़ने गया था वहाँ अपनी युद्ध सामग्री भी खो आया। बल के बिना बैर नहीं लिया जा सकता इसलिए अब आप मुझे शीघ्र ही सैन्य मदद दीजिये। कृष्णसिंह का ऐसा निवेदन सुनकर कोटा के राजा दुर्जनसाल ने उत्तर दिया कि ये दिन भिड़ने के नहीं हैं। परिस्थितियाँ देखकर थोड़े दिन चुप होकर बैठे रहो। सुना नहीं तुमने वह सटवा अपनी सेना के साथ इधर बढ़ा चला आ रहा है। राजोरा सटवा ने दर कूच कर मंजिल कोटा आ कर राजा से दंड वसूला और वहाँ से आगे अजमेर तक अपना अमल जमाता हुआ गया। यहाँ आ कर उसने खत्री केशवदास को पत्र भेजा जिसमें लिखा कि तुम्हें बखतसिंह राठौड़ से अनावश्यक बैर नहीं मोल लेना चाहिए।

कूरम प्रति केसव कहिय, बरजत तुमहिं मलार।
जो चहिहैं अब जंग तो, ढहिहैं सब ढुंढार॥९॥

बरज्यो इत बखतेस हू, मरहट्ठन भय मानि।
लै बहु धन मरूपाल सों, बुल्ल्यो न लरन बानि॥१०॥

पत्र पा कर केशवदास खत्री ने तुरन्त अपने स्वामी कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह से जा कहा कि हे स्वामी! आप युद्ध में जाना रोक दें क्योंकि मल्हारराव होल्कर यह नहीं चाहता है। इस पर भी यदि आप युद्ध में जाने पर उतारू हैं तो देख लेना पीछे से आपका ढूंढाड़ (जयपुर क्षेत्र) ढेर में तब्दील हो जाएगा। इसी तरह बखतसिंह को भी मराठा सेना के बल का भय दिखा कर लड़ने से रोका और इस काम के लिए मारवाड़ के राजा से बहुत सारा धन वसूल कर लिया। यह सुन कर कछवाहा राजा ने मल्हारराव के सामन्त सटवा को कहा कि फिर वह बखतसिंह मूर्ख की तरह बार-बार दिल्ली से सेना क्यों बुलाता है? उसका भी उपाय होना चाहिए। इधर सय्यद सलावतखान को जब यह पता चला कि मल्हारराव होल्कर के आदेश से युद्ध रुका है तो वह भी डर गया और अपने दल सहित वापस दिल्ली लौट गया।

सुनि तब ईश्वरिसिंहहू, सटवा नीति सुनाय।
क्यों पुनि पुनि दिल्लिय कटक, बालिस लेत बुलाय॥११॥

हुलकर को यह सुनि हुकम, तब नबाब डरि तत्त।
सय्यद खान सलावतहु, पच्छो दिल्लिय पत्त॥१२॥

मल्हारराव होल्कर के उमराव राजोरा सटवा ने राठौड़ बखतसिंह और कछवाहा राजा के युद्ध को रोकते समय जो बात कही थी उसे राजा ईश्वरीसिंह ने सुनी जिसमें उसने कहा था कि वह मूर्ख (राजा) क्यों बार-बार दिल्ली की शाही सेना को बुलाता है! होल्कर की ऐसी आज्ञा सुन कर वह सय्यद सलावत खान डर गया और तुरन्त ही वापस दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

कुम्महिँ जानि सहाय कर, रामसिंह मरुराय।
केसव हठि रोक्यो कलह, इहिँ कारन अकुलाय॥१३॥

सम्मति हरगोबिंद की, लै कबंध नृप राम।
कुम्महिँ अक्खिप केसवहु, है यह स्वामि हराम॥१४॥

माधव अरु उम्मेद सों, याकै प्रीति अजस्त्र।
छन्नैं आवत जात छद, घनें गये इम घस्त्र॥१५॥

कोउक पत्र फरेब करि, लिपि ताकी लिखवाय।
तैसोही लिखि कुम्म को, दिन्नों बिदित दिखाय॥१६॥

हे राजा रामसिंह! कछवाहा राजा ने सोचा कि मेरे ही मंत्री केशवदास खत्री ने जोधपुर वालों की अप्रत्यक्ष सहायता करने के लिए हृदयपूर्वक उस युद्ध को होने से रोका लगता है और राजा यह सोचते ही मन ही मन अकुलाने लगा। उसी समय कछवाहा राजा ने हरगोविन्द नाटाणी की सम्मति ली अर्थात उससे पूछा कि क्या यह सही है? और उसके सहमत होते ही राजा ईश्वरीसिंह ने केशवदास के लिए कहा कि वह स्वामी हराम है अर्थात् स्वामिभक्त नहीं है। यह केशवदास, माधवसिंह कछवाहा और हाड़ा उम्मेदसिंह से मिला हुआ है इसकी प्रीति मेरे इन दोनों अहितकारियों से अधिक है। बहुत दिनों से निरन्तर इनके मध्य गुप्त पत्र व्यवहार चल रहा है। इस समय हरगोविन्द नाटाणी ने किसी अन्य के हाथ से केशवदास की लिखावट में एक पत्र लिखवाया और तुरन्त अपने स्वामी कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह को जा दिखाया।

सु लखि पत्र जयसिंह सुव, मन्नी सत्यहि मुद्ध।
बुल्लि सभा अंतर बन्यों, केसव उप्पर क्रुद्ध॥१७॥

केसव अक्खिय जोरी कर, इतरन को छल एह।
असु कीजै तनु अंतरित, निकसैं जो मम लेह॥१८॥

मन्नी तदपि न मातृमुख, सुनहु राम नृप हाय।
करि हठ दिन्नों केसवहिं, पापी गरल पिवाय॥१९॥

बुल्ल्यो तँहँ जयसिंह सुव, हे पामर मतिहीन।
मिलि तैंही मल्लार मैं, खर जैपुर किय खीन॥२०॥

राजा जयसिंह के पुत्र (ईश्वरीसिंह) ने इस पत्र व्यवहार को देखते ही सत्य मान लिया अर्थात् उस मूर्ख राजा ने बिना ही खोजबीन के पत्र को असली माना और क्रोध में लाल-पीला हो कर केशवदास खत्री को अपनी राजसभा में बुलवा कर कहा कि देख तेरी यह करतूत, तू मेरे अहित करने वालों से मिला हुआ है और इस बात का प्रमाण तेरी लिखावट वाला यह पत्र है। अपने पर लगे आरोप से इनकार करते हुए केशवदास ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे स्वामी! यह किसी अन्य का छल है! आप जाँच करवा लीजिए! यदि मेरी लिखावट निकली अर्थात् यदि यह पत्र मेरे हाथ का लिखा साबित हो जाए तो आप मेरे प्राण लेने को स्वतंत्र है! केशवदास की बात को नहीं मानने के लिए उस मूर्ख राजा ने उसकी बात को अनसुना कर दिया। हे राजा रामसिंह! उस पापी कछवाहा राजा ने तब हठपूर्वक अपने मंत्री केशवदास खत्री को जहर पीने की आज्ञा दी। राजा जयसिंह के पुत्र (ईश्वरीसिंह) ने तब भरी सभा में कहा कि हे नीच मतिहीन खत्री! तू ने मल्हारराव होल्कर से मिल कर जयपुर को कमजोर बनाने का अपराध किया है!

च्यारि परग्गन सोदरहिँ, हड्डु हिँ बुंदिय देस।
कितब दिवाये प्रसभ करि, वाको फल सहि एस॥२१॥

कहाँ सहायक तव कुमति, मूरख वह मल्लार।
वाहि बचावन प्रान अब, बुल्लहु क्यों न लबार॥२२॥

सुनि अक्खिय केसव सुमति, स्वामि हनैं जबदास।
त्राता कोन द्वितीय तँहँ, गिलत सिंह गज ग्रास॥२३॥

केसव केसव ध्यान करि, पुनि पुनि बिरचि प्रनाम।
गहि भाजन पिन्नों गरल, रटि अच्युत हरि राम॥२४॥

तूने ही मेरे भाई माधवसिंह कछवाहा को चार परगने दिलवाये और उम्मेदसिंह हाड़ा को बूंदी का राज दिलवाया है! हे ठग! तूने जिद कर यह जो राज्य विरुद्ध कार्य किया उसी का फल यह सजा है। हे कुमति! अब वह तुम्हारा सहायक मूर्ख मल्हारराव होल्कर कहाँ है? अपने प्राण बचाने हेतु अब तू वाचाल उस को क्यों नहीं बुलाता? यह सुनकर सुमति खत्री केशवदास ने कहा कि जहाँ स्वामी स्वयं अपने दासों को मारने पर उतारू हो ऐसे में कोई रक्षा करने वाला दूसरा कहाँ से आएगा। सिंह जब हाथी को ग्रसने को उतावला हो ऐसे में बचाव की गुहार का क्या अर्थ? इतना कह कर केशवदास ने केशव (कृष्ण) का ध्यान कर अपने इष्टदेव को प्रणाम किया और चुपचाप विष का प्याला ले कर श्रीहरि का नाम रटते हुए पी गया।

लेत जहर आवत लहर, नील नहर यह भाखि।
बिनु आगस जो देत बिख, सो पावत श्रुति साखि॥२५॥

इम कहि इक घटिका अवधि, केसव छोरयो काय।
बहुल छिन्नि ताको बिभव, लाई कूरम लाय॥२६॥

आयो जैपुर कुम्म इम, मंत्री पटु निज मारि।
सटवा यह बदनीति सुनि, बिबिध लिखिय बिसतारि॥२७॥

सुनि हुलकर श्रीमंत सों, अक्ख्यो यह अपराध।
हठ पूरब लिन्नों हुकम, बिरचन जैपुर बाध॥२८॥

जहर पीने के बाद जब केशवदास खत्री को चक्कर आने लगे तब उस नीले नाखूनों वाले (जहर पीने के फलस्वरूप नाखून नीले रंग के हो जाते हैं) खत्री ने कहा जो बिना ही किसी अपराध के विष देते हैं उनके लिए साक्षी वेद (कहते) हैं कि स्वामी को भी जहर ही मिलता है। ऐसा कह कर एक घड़ी जीवित रह कर केशवदास ने अपने प्राण त्याग दिये। कछवाहा राजा ने अपने उस (स्वामिभक्त) प्रधान के प्राण लेने के बाद उसका वैभव छीन कर और आग लगाई। अपने चतुर मंत्री को मार कर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह अपने नगर जयपुर आया। उधर होल्कर के उमराव सटवा ने यह पूरा वृत्तान्त विस्तार से अपने स्वामी को लिख भेजा। मल्हारराव ने पत्र पढ़ते ही श्रीमंत के आगे

कछवाहा राजा का यह अपराध जा सुनाया और हठ करते हुए श्रीमंत से जयपुर को सबक सिखाने की आज्ञा प्राप्त की अर्थात् जयपुर का नाश करने की इजाजत ली।

हुलकर हड्ड रु नन्ह पुनि, तजिग सितारा तत्त।
सक हय नभ धृति चैत्र सित, पुण्यापत्तन पत्त॥२९॥

तनय स्वीय उपवीत तँहँ, बलि निज अनुज बिवाह।
पुण्या किय श्रीमंत प्रभु, अति हित उभप उछाह॥३०॥

महिमानी उम्मेद की, बहु श्रीमंत बनाय।
प्रीति सहित अनुकूल पन, दिन दिन अधिक दिखाय॥३१॥

रामचंद के कथित करि, संध्या को अधिकार।
भपो खालसै किन्न अब, ताकि अरज मलार॥३२॥

तब मल्हारराव होल्कर, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और श्रीमंत नन्हे राव सतारा नगर से रवाना होकर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सात के चैत्र माह के शुक्ल पक्ष में पूणे नगर में पहुँचे। यहाँ श्रीमंत ने अपने पुत्र और छोटे भाई दोनों का विवाह उछाहपूर्वक सम्पन्न किया। इस अवसर पर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को श्रीमंत ने विशिष्ट अतिथि का आदर दिया और इस तरह श्रीमंत हाड़ा राजा से दिन-प्रतिदिन अधिक प्रीति का प्रदर्शन करने लगा। इस समय श्रीमंत ने पंडित रामचन्द्र के कथनानुसार सिंधिया के अधिकार कम कर जो जागीर खालसा कर ली थी उस बाबत मल्हारराव ने निवेदन किया।

षट्पात्

सुनहु नन्ह हम अग्ग लियउ मालव जवनन सन,
तब पत्तन उज्जैन महाकालेस निकेतन।
परमार सु आनंद मैं रु संध्या राणंजिय,
तीनन तजि हिय गंठि सत्य इहिं रीति सपथ किय।
इकचित स्वामि कारिज करहिं अरु जो होवहिं काल बसि।
तो तास सुतन जीवैं सु जन हिय लगाय पालहिं हुलसि॥३३॥

हे स्वामी श्रीमंत! हमने पूर्व में जो यवनों से मालवा का परवाना लिया था उस समय उज्जैन के महाकाल के मन्दिर में आनन्दराव परमार, रणंजय

सिंधिया और मैंने अपने मन की गांठें खोल कर सत्य रीति से आपस में यह शपथपूर्वक तय किया था कि हम अपने स्वामी का प्रत्येक कार्य दत्तचित्त हो कर करेंगे चाहे इस कार्य में यदि हमारी जान चली जाए। हम में से किसी के काल कवलित हो जाने की दशा में हमारे पुत्रों को जीवित रहने वाला हुलस कर पालेगा।

दोहा

यह करार जो भुल्लि अरू, चलिहै कुमति कुचाल।
ताहि महाकालेश्वरहु, प्रगट करहिं पैमाल॥३४॥

हमरे हुव संधा यह सु, जानत तुमहु अजेय।
रामचंद के कथित करि, संध्या नहिं अप्रमेय॥३५॥

रुप्पय पैंसठ लक्ख तब, दै मलार बिच रक्खि।
संध्या सन श्रीमंत लिय, सेनापति तिहिं रक्खि॥३६॥

हम में से यदि कोई कुमति इस आपसी करार को भूल कर कुचाल चलेगा तो उसे महाकाल प्रकट होकर दण्ड दें! हम तीनों के मध्य इस प्रकार की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा हो रखी है इसलिए हे श्रीमंत! अब आप उस रामचन्द्र के सिखाये सिंधिया को दंडित न करें क्योंकि वह अनादर करने योग्य नहीं है। मल्हारराव के ऐसे निवेदन पर तब श्रीमंत ने होल्कर को मध्यस्थ रख कर सिंधिया से पैंसठ लाख रुपयों की राशि ली और उसे सेनापति के पद पर यथावत रखा।

पादाकुलकम्

हुलकर को श्रीमंत कथित किय, संध्या जया लगावन निज हिय॥
नाम चमारगौंद तस पतन, आउउ ताहि मनावन अप्पन॥३७॥

लै तिहिं संग गये पुण्या जब, रचिय मंत्र हुलकर संध्या तब॥
हिन्दुसथान मौंहिं अप्पन दुव, स्वामी नन्ह तयार करे ध्रुव॥३८॥

रह्यो परंतु उहाँ को बहुतर, बित्त हायनिक रामचंद कर॥
जो न रहैं अप्पन बस यह धन, तो करैंहि वह दुष्ट दुष्टपन॥३९॥

यह तब दुहुँन नन्ह प्रति अक्खिय, आब्दिक कर अप्पनैं कर रक्खिय॥
श्रीमंतहु यह अरज मन्नि लिय, हिन्दुसथान अधीन दुहुँन किय॥४०॥

श्रीमंत ने मल्हारराव होल्कर का कहा मान लिया कि वह सिंधिया जयाजीराव को अपनत्व देगा और इसके लिए श्रीमंत चला कर सिंधिया के गाँव चमारगोंदा तक गया। वहाँ उसने यह प्रदर्शित किया कि मैं तुम्हे मनाने आया हूँ। श्रीमंत तब जयाजी सिंधिया को अपने साथ ले कर पूना आया और पूना में होल्कर और सिंधिया के साथ बैठ कर मंत्रणा की। उसमें उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान में (देश के उत्तरी भाग) हम दोनों ही उपयुक्त व्यक्ति हैं यदि श्रीमंत हमें अधिकार दे कर प्रबल बनायें! यह बात अलहदा है कि उस क्षेत्र के बहुतेरे वार्षिक कर पर रामचन्द्र का अधिकार है। यदि हम दोनों सावधानी पूर्वक कराधान से प्राप्त होने वाले धन को अपने अधिकार में न लें तो वह दुष्ट रामचन्द्र अपनी दुष्टता अवश्य दिखायेगा। इसलिए होल्कर और सिंधिया दोनों ने श्रीमंत से निवेदन किया कि हे स्वामी! आप वार्षिक कर से होने वाली आमदनी को अपने हाथ में रखिये। दोनों के निवेदन को श्रीमंत ने मान लिया और हिन्दुस्तान को उन दोनों के अधीन कर दिया।

दोहा

तबतैं हिंदुसथान की, खरनीको कर सर्ब।
हुलकर संध्याऽधीन हुव, आब्दिक बित्त अखर्ब॥४१॥
सिक्ख दैन श्रीमंत पुनि, संभर डेरन आय।
तरल निवेदे दस तुरंग, करटी दुव अतिकाय॥४२॥
भूखन मनिन अनर्घ दुव, दस सिरुपाव उदार।
दिन्नी बुंदिय सिक्ख इम, करि संभर सतकार॥४३॥
सक मुनि नभ बसु इंदु सम, सावन पंचमि स्याम।
बुंदिय आयो करि विजय, धरनीपति निज धाम॥४४॥

हे राजा रामसिंह! तभी से हिन्दुस्तान की धरती से वार्षिक कर के रूप में अर्जित होने वाली पूरी राशि होल्कर और सिंधिया के अधीन हो गयी। उधर विवाह पश्चात् हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को विदाज्ञा प्रदान करने के लिए श्रीमंत, राजा उम्मेदसिंह के शिविर में आया और यहाँ उसने राजा को दो हाथी और दस घोड़े उपहार में दिये। इनके अतिरिक्त मणिजटित दो अमूल्य आभूषण

और दस सिरोपाव हाड़ा राजा को निवेदित कर बूंदी जाने हेतु रवाना किया। चहुवान राजा उम्मेदसिंह का इस तरह सम्मान कर श्रीमंत ने उसे रुखसत किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सात के श्रावण माह के कृष्ण पक्ष की पंचमीं तिथि के दिन को फिर से बूंदी अर्जित करने वाला हाड़ा राजा उम्मेदसिंह अपने घर लौटा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रे कोटेशप्रेरितदालेलिकृष्णसिंहबूंदीवेष्टनरावराट्सुभटसोलंखिसंग्राम कायस्थमोजीराम तदभिभवनकृष्णसिंहकोटासहायप्रार्थन दुर्ज्जनशल्य तदनङ्गीकरण राजोरा सटवावखतसिंहे श्वरीसिंह युद्धवारणश्रुत पशून्यकूर्म्मराजखत्रिकेशवगरलदापनजा ततदुदन्तहुलकरजयपुरध्वंसि नीनन्हास्स्त्रानयनतदनुश्रीमंत हड्डु हुलकर पुण्यापुरास्स्गमनकृततनयोप-वीतास्नुजविवाहोत्सवनन्हमल्लारवचना स्नुकूलसंध्याजयासेनास्थिकारा-स्र्पण मल्लार जया हिंदुस्थान प्रेषणोरीकरणनन्ह बुन्दीन्द्रशिविरागमन-तुरगदशक करटियुग मणिभूषणद्वया स्सदिनिवेदनरावराट्बुन्द्यास्स्गमन पंञ्चत्रिंशो मयूखः। आदितः ॥३१६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में कोटा के पति की प्रेरणा से दलेलसिंह के पुत्र कृष्णसिंह का बून्दी घेरना और रावराजा के भट सोलंखी संग्रामसिंह और कायस्थ मोजीराम का उसके सम्मुख होना, कृष्णसिंह का सहायता के अर्थ कोटा के पति की प्रार्थना करना और उसका अस्वीकार करना, राजोरा सटवा का बखतसिंह और ईश्वरीसिंह का युद्ध रोकना और चुगली सुनकर कछवाहों के राजा का केशवदास को जहर देना, यह वृत्तान्त जानकर होल्कर का जयपुर को नाश करने की नन्ह से आज्ञा लेना, बाद में श्रीमन्त, उम्मेदसिंह और होल्कर का पूना नगर में आना, पुत्र की जनेऊ और छोटे भाई का विवाह करके नन्ह का मल्हार के वचनों के अनुकूल सिंधिया को जया नामक सेना का अधिकार देना और मल्हार व जया को हिन्दुस्तान में भेजना मंजूर करना, नन्ह का बून्दी के राजा के डेरे आना और दस घोड़े, दो हाथी, दो जड़ाऊ भूषण आदि भेंट करना और रावराजा का बून्दी आने का पैंतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सोलह मयूख हुए।

पायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

कोटा पति संकल्प सब, करे नियति प्रतिकूल।
रामचंद्र सन हित रच्यो, मोघ भयो सु समूल॥१॥

पलटायो जगतसेन पुनि, सावधान ह्वै सोहि।
बूंदी पठयो कृष्ण बलि, भजि सु पराजित भोहि॥२॥

जैपुर सम्मिलि पुनि जुरन, लग्गो करन प्रयान।
बरज्यो सटवा कुम्म तब, थकि बैठो निज थान॥३॥

ऐसो अनुचित ईरखा, किन्नों जड़ कोटेस।
न फल्यो उद्यम नीच को, सोक रह्यो अवसेस॥४॥

हे राजा रामसिंह! कोटा के राजा के सारे मंसूबे उसके भाग्य ने उलटे कर दिये। राजा ने अपना हित सोच कर पंडित रामचन्द्र से जो मेलजोल बढ़ाया था वह सारा निरर्थक हो गया। उसने तब जैसे-तैसे कर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह को फिर से अपने पक्ष में किया और कृष्णसिंह को बूंदी पर आक्रमण करने भेजा पर वह वहाँ से पराजित हो भाग आया। तब उसने सोचा कि अब जयपुर से निकटता बढाना लाभदायक होगा पर होल्कर के उमराव सटवा ने उसे यह सब करने से मना कर दिया। वह अन्त में सभी ओर से अपने प्रयासों से थक हार कर बैठ गया। हे राजा रामसिंह! इस तरह वह जड़मति कोटा का राजा अनुचित ईर्ष्या का व्यवहार करता रहा पर उसके हाथ हताशा के अतिरिक्त कुछ न लगा। उस नीच का सारा उद्यम फलहीन व्यर्थ गया।

उदयनैर सन रान इत, दयाराम द्विज संग।
पठयो टीका उपकरन, अनुसरि प्रीति उमंग॥५॥

हाटक साखति उभय हय, मदकल इक मातंग।
सूचीमुख सिरपेच इक, दुब सिरुपाव सुरंग॥६॥

टीका को यह साज दिप, दयाराम द्विज सत्थ।
पंरपरा दसतूर पुनि, सुनिये राम समत्थ॥७॥

अग्गैं सुपहु सुभांड सुत, नृप नारायनदास।
रन रानों संग्राम की, टारी दुस्सह त्रास॥८॥

मंडूपुरप नवाब को, इक्का भट लिय मारि।
संभर को सीसोद तब, बहु आसान बिचारि॥९॥

उधर उमंग और प्रीति से भरे उदयपुर के महाराणा ने बूंदी के राजा के टीका की रस्म की सारी सामग्री पंडित दयाराम के साथ रवाना की। जिसमें स्वर्णनिर्मित काठी सहित दो घोड़े और एक मदकर मस्त हाथी था। हाथी घोड़ों के अलावा महाराणा ने हीरों से जड़ा एक सिरपेच और दो सुरंगे रंग के सिरोपाव भी भिजवाए। टीका के दस्तूर की उपरोक्त सामग्री दे कर पंडित को इसलिए रवाना किया क्योंकि यह रिवाज परम्परा से चला आ रहा था। हे समर्थ राजा रामसिंह! यह कदीमी दस्तूर राजा सुभांडदेव के पुत्र राजा नारायणदास के समय से चला आ रहा था जिसने मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह को दुस्सह आपदा के भय से निजात दिलाई थी। मांडू के नवाब द्वारा चौथ वसूलने हेतु जो इक्का भेजा गया था उसे हाड़ा राजा ने मार कर सिसोदिया महाराणा को राहत दिलाई थी। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने मेवाड़ पर हाड़ाओं द्वारा किये गए इस अहसान का स्मरण कर यह टीका की सामग्री बूंदी के लिए रवाना की।

पादाकुलकम्

प्रथम रान संग्राम भीर करि, बाबर को बहु कटक हन्यों लरि।
च्यारि अग्ग चालीस घाय सहि, विजय कियो बुंदिस धर्म बहि॥१०॥

इक्का मुगल यहै पुनि मारयो, अपनें सिर उपकार बिचारयो।
भटन सहित यह मंत्र रान किय, बिनई पुनि बुंदीसहिं बुलिय॥११॥

तुम हमतैं कछु भेट अब्द प्रति, इच्छत लेहु रक्खि निज उन्नति।
रचि तब नर्म कह्यो संभर पहु, पट्टिस खग्ग कोस दुव प्रेसहु॥१२॥

बैर तीन हायन बिच लैहैं, तब तुम पर हड्डुन हित ह्वैहैं।
भेजहु प्रथम बिजयदसमी दिन, पुनि गुनगोरि दिवस आहुठ इन॥१३॥

हाड़ा राजा नारायणदास ने पूर्व में चित्तौड़गढ पर आक्रमण करने आई बाबर की सेना से भिड़ कर उसका संहार किया और इस भीषण संग्राम में हाड़ा राजा ने अपने शरीर पर चवालीस घाव खाये पर विजय को हाथ से नहीं जाने दी। इसके बाद हाड़ा राजा ने महाराणा को तंग करने वाले इक्के का काम तमाम किया था। महाराणा संग्रामसिंह ने इसे अपने सिर पर हुआ उपकार

मानते हुए अपने सामन्तों से मंत्रणा की और हाड़ा राजा को बुला कर कहा कि आप हम से प्रतिवर्ष कुछ खिराज लें और इसके लिए आप अपनी इच्छा बताएँ! तब मुस्करा कर हाड़ा राजा नारायणदास ने मजाक के लहजे में कहा कि हे महाराणा! आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे कटार और खड्ग के दो म्यान दे दें! पर हम आपकी यह भेंट वर्ष में तीन बार लेंगे। आप ऐसा कर हम हाड़ाओं का उपकार करेंगे! पहली भेंट (म्यानों का जोड़ा) हमें विजयदशमी के दिन चाहिए! हे आहाड़ के स्वामी! दूसरी भेंट की खेप आप हमें गणगोर के अवसर पर दें।

बरसगंठि दिन बहुरि पठावहु, तो हम हेत गिनैं तुमरो बहु।
यह नृप नर्म रान स्वीकृत किय, अबरहु प्रीति रीति इम बंधिय ॥१४॥

हाटक राज उपेत इक्क हय, इक तरवारि मुट्ठि तिहिं मनिमय।
इक्क१ निखंग इक्क बिसिखासन, चीरा इक्क मूल मिति जास न ॥१५॥

असि पट्टिस के कोस सहित चहि, इक सिरुपेच इते भेजन कहि।
तबतैं चली रीति वह आई, सो रानहिं नहिं मिटत सुहाई ॥१६॥

दयाराम द्विज तत्थ रान अब, टींका संग ए हु पठये सब।
बुंदिय रान सचिव द्विज लाये, बिजयदसमि दिन नजरि कराये ॥१७॥

उपहार की तीसरी खेप मुझे यदि मेरी बरसगांठ (जन्मदिन) के दिन प्राप्त हो तो हम मानेंगे कि आप हमसे पूरा स्नेह रखते हैं। हाड़ा राजा द्वारा मजाक में कही इन शर्तों को महाराणा संग्रामसिंह ने जस का तस मान लिया और तभी से इसे रिवाज सा बना दिया। महाराणा ने तब से स्वर्ण की काठी सहित एक घोड़ा, एक तलवार जिसकी मूठ रत्नजटित हो, एक धनुष, एक तरकश, एक चीरा(लहरिये की पगड़ी जिसकी लंबाई तय न हो) एक कटारी और तलवार के दो खाली म्यान, एक सिरपेच का आभूषण आदि सामग्री बूंदी भेजने का दस्तूर सा बना दिया। इस प्रकार की परम्परा मेवाड़ में महाराणा संग्रामसिंह के समय से चली आ रही थी उसे महाराणा जगतसिंह ने बरकरार रखी अर्थात उसे बन्द नहीं किया। महाराणा ने यही सोच कर दयाराम ब्राह्मण के साथ टीके की उपरोक्त सामग्री भेजी। विजयदशमी के दिन सारी सामग्री ले कर उदयपुर का सचिव और दयाराम ब्राह्मण दोनों बूंदी पहुँचे और टीके की सामग्री हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को भेंट की।

दोहा

उज्ज अमावसि निस तदनु, चोकिदारन फोरि।
तारागढ सन कढि गयउ, हरजन वह छल जोरि॥१८॥

इत दक्खिन अब वे उभय, मुनि नभ धृति इस मास।
हुलकर संध्या सज्ज हुव, लगि दिगबिजय हुलास॥१९॥

इधर विजयदशमी के बाद आई कार्तिक मास की अमावस्या को रात्रि के समय बूंदी के तारागढ दुर्ग की कारा से चौकीदारों को फोड़ कर (अर्थात उन्हें अपने साथ मिला कर) वह हरजन हाड़ा छल-कपट से भाग गया। उधर दक्षिण में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सात के आश्विन माह में मल्हारराव होल्कर और जयाजीराव सिंधिया दोनों दिग्विजय करने के उल्लास से भरे सेना सहित कूच करने को सज्जित हुए।

षट्पात्

बिजयदसमि दिन बीर सेन हंकिय सागर सम,
संध्या तँहँ हुलकरहिँ कहिय कछु काम गेह मम।
मैं चमारगौंदा प्रवेसि वह करि द्रुत आवत,
अप्प चलहु इत अग्ग अवनि सत्रुन अपनावत।
यह कहि जया सु गय निज नगर इत मलार हंकिय-कटक।
दिस बिदिस बत्त फुट्टिप दुसह रचहिँ कोनदक्खिन रटक॥२०॥

विजयदशमी के शुभ दिन मराठों की वीर सेना उमड़ते समुंदर की मानिन्द उमड़ती बढ़ी। कूच के बाद जयाजी सिंधिया ने मल्हारराव होल्कर से कहा कि मुझे अपने घर पर एक आवश्यक कार्य से जाना है। इसलिए में अपने गाँव चमारगोंदा जा कर शीघ्र ही काम निबटा कर आता हूँ आप तब तक शत्रुओं की भूमि दबाते हुए आगे बढ़ते रहना। जयाजी सिंधिया इतना कह कर अपने गाँव गया और मल्हारराव अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा। मराठा सेना के इस आगमन की खबर से दिशा दिशा में इस बात के कयास लगाये जाने लगे कि दक्षिण का यह कहर अब किस पर गिरने वाला है।

हुलकर सुत जुत हंकि लंघि चम्मलि इत आयउ,
वृत्त सुनत बुंदिस जाय सम्मुह गृह लायउ।

अरु हय नभ धृति अब्द मास अगहन पख उज्जल,
दुहुँन नैनवा आय बिंटि तोपन किय कंदल।
तब सठ [illegible] अन्तहपुर ताज भज्जय।
हड्डु रु मलार ताकी तियन पठई पीहर विरचि नय ॥२१॥

मल्हारराव होल्कर अपने पुत्र के साथ सेना को आगे बढ़ाता हुआ चम्बल नदी को पार कर इधर बढ़ा आ रहा है यह बात जब बूंदी के राजा उम्मेदसिंह ने सुनी तो वह उनके सम्मुख गया और उनकी मनुहार कर हाड़ा राजा सभी को ससम्मान अपने घर बूंदी लाया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सात के अगहन माह के शुक्ल पक्ष में यहाँ से होल्कर और हाड़ा राजा दोनों दल-बल सहित नेनवा आए और यहाँ तोपों को चला कर युद्ध आरंभ किया। इस समय मुर्ख दलेलसिंह का पुत्र कृष्णसिंह हाड़ा जो अपने अन्तहपुर में था वह तोपों की गर्जना सुनते ही अपना घर छोड़ कर भाग गया। मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तब नीति पूर्वक नैनवा में शेष रही कृष्णसिंह की पत्नियों को उनके अपने-अपने पीहर भिजवाया।

दोहा

नगर समीधी नैनवा, करउर ए सब लिन्न।
तिनमें नृप बुन्दीस तब, अमल अप्पनों किन्न॥२२॥

कायर कृष्णसिंह के इस तरह भाग जाने के बाद हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने समीधी, नेनवा, करउर आदि नगरों को अपने अधिकार में ले लिया और सारी भूमि पर अपना अमल जमाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे कोटेशयत्ननिष्फलीभवनराणातिलकोपहारबुन्दी प्रेषणहर्जन-कारानिष्क सनमल्लारहिंदुस्थाना स्गमननयनपुरयुद्धकरण दालेलिपलायन बुन्दीन्द्रतद्भूम्युद्धरणं षट्त्रिंशो मयूखः ॥ आदितः ॥ ३१७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में कोटा के राजा का यत्न निष्फल होना, राणा का तिलक की सामग्री बून्दी भेजना, हरजन का कैद से निकलना, मल्हार का हिन्दुस्तान में आना (सामान्य रीति से सभी भारतवर्ष के पूर्वी प्रान्त को हिन्दुस्तान कहते हैं।)

नैणवा पुर में युद्ध करना और दलेलसिंह के पुत्र कृष्णसिंह का भागना तथा बून्दी के पति का उसकी भूमि लेने का छत्तीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सत्रह मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

निःशाणी

इम सुत भीरू दलेल का तजि तियन पलाया।
ताके देस असेस मैं नृप अमल बिधाया॥
पुनि हुलकर संभर सहित अमरख उफनाया।
खत्री केसव बैर पैं जयनैर चलाया॥ १॥
फट्टी पन्नग संकुली फन पलटि फिराया।
खुल्ले नैंन महेस के नव माल लुभाया॥
लग्गा बावन संगही रन कोतुक आया।
जाल बनाया जुग्गिनी कर ताल बजाया॥ २॥
गिद्धिनि चिल्हनि गैन मैं गन के गहकाया।
धूरि बिलग्गी भानु कैं सब भानु छिपाया॥
शृंग मचक्के मेरु के थर खंड धुजाया।
हाक नकीबन की मची दल डाक लगाया॥ ३॥

हे राजा रामसिंह! इस तरह वह दलेलसिंह का कायर पुत्र कृष्णसिंह हाड़ा नैनवा नगर में अपना रनिवास वहीं छोड़ कर भाग गया। तब उसके जागीर क्षेत्र सहित अन्य क्षेत्र को अपने अधिकार में ले कर राजा उम्मेदसिंह ने अपना अमल जमाया। इसके बाद मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह जयपुर पर कुपित हो कर केशवदास खत्री को मारने का वैर लेने हेतु ससैन्य बढ़े। मराठों की बड़ी सेना के भार से शेषनाग की रीढ़ की हड्डी दर्द से फटने लगी तो उसने पृथ्वी के गोले को अपने दूसरे फण पर लिया। मराठा सेना के सँचरण को देख कर महादेव ने अपनी समाधि तोड़ी और मन ही मन नई मुंडमाल के लिए लुभायमान हुए। वे युद्ध के कौतुक को निहारने को बावन भैरवों के संग रणभूमि की ओर बढ़े। योगिनियों के समूह ने घेरा बना कर

प्रसन्नता जाहिर करने को ताली बजाई। गिद्ध और चील्ह पक्षी आकाश में मंडराते हुए चहके। सेना के विचरण से उड़ी धूल ने ऊपर उठ कर आकाश को छा दिया और सूरज को ढाँप लिया। धरती के काँपने से पहाड़ों के शिखर टूट कर बिखरने लगे। इसी बीच नकीबों (छड़ीदारों) ने वीरहाक कर दल के योद्धाओं को क्रोध दिलवाया।

सुनि आवत दक्खिन कटक कूरम अकुलाया।
द्रुत कग्गर बुंदीस पैं लिखवाय पठाया॥
छंडी छोनिय रावरी हम साम बनाया।
हुलकर सम्मलि होय क्यों अब दंड उपाया॥ ४॥
किन्नौं प्रथम करार जो नहिं नैंक मिटाया।
अब कैसे अपराध पैं मल्लार कुपाया॥
केसव आयस नाँ किया इम मारि गिराया।
दास तदपि आमैर का इनका न नसाया॥ ५॥
अग्गैं रंचक दोस पैं अतिदंड न गाया।
समुझावहु तुम संभरी हुलकर हठ आया॥
एकाकी अब अप्पका अवलंब बनाया।
ए कग्गर आमैर का मुनसीन सुनाँया॥ ६॥

इधर कछवाहा राजा यह सुन कर व्याकुल हो गया कि दक्षिण वाले मराठों का दल चढ़ाई करने आ रहा है। उसने तुरन्त एक पत्र लिखकर बूंदी के राजा के पास भिजवाया। जिसमे लिखा कि हे राजा! हमने रावरी भूमि को छोड़ कर आपके साथ संधि की थी पर अब आपने होल्कर के साथ हो कर नये सिरे से हमें दंडित करने की क्यों सोची है? हमने आपसे जो करार किया था उससे हम विचलित नही हुए तब समझ में नहीं आता कि होल्कर हम पर कुपित क्यों हुआ? केशवदास ने हुक्म अदुली की थी इस कारण से उसे मृत्यु की सजा दी गई। यदि हमनें केशवदास को मारा भी तो वह तो आमेर का दास था हमने कोई होल्कर के आदमी को तो नहीं मारा ? फिर इस छोटे से दोष पर इतनी बड़ी सजा क्यों तजबीज की गई? हे हाड़ा राजा! आप होल्कर को समझायें की वह आक्रमण करने का हठ छोड़ दे! अभी तो मुझे बस एक

आपका सहारा है! इस आशय का आमेर के कछवाहा राजा का पत्र जब बूंदी के हाड़ा राजा के पास पहुँचा तो राजा के मुंशी ने पत्र राजा के समक्ष पढ़ा।

बिनय भरे सुनि बैन ए संभर सकुचाया।
मंत्र बिरचि मल्लार तैं हिय गूढ खुलाया॥
हुलकर अक्खी भूपतैं नहिं बैर सिवाया।
दक्खिन निंदा अद्दरी बलि दर्प्प बढाया॥ ७॥

मारत केसवदास कों उन बैन लगाया।
जिहिं बल तैं बुंदी बहुरि चउ देस गुमाया॥
सो हुलकर तेरो कहाँ अब अंतक आया।
ऐसें कहि अपराध बिनु पटु सचिव नसाया॥ ८॥

ताही के दृढ दोसपैं इत मैं चलि आया।
मारन का नहि मंत्र पैं अति दर्प छकाया॥
यातैं रुप्पय दंड का लैहैं मनभाया।
बुंदीपति सुनि बैन ए प्रतिबैन लिखाया॥९॥

अपने लिए ऐसे आदर और विनम्रता से भरे आमेर के राजा के बोल सुनकर हाड़ा राजा पहले तो सकुचाया फिर उसने मल्हारराव से जाकर इस विषय में मंत्रणा की और होल्कर के साथ हृदय की गूढ़ बातें जानीं। होल्कर ने हाड़ा राजा से कहा कि कछवाहा राजा से हमारा यूं तो कोई सीधा-सीधा वैर नहीं है पर उसने दर्प भरे वचनों से दक्षिणी अर्थात मराठों की निंदा की, केशवदास को जहर देने के बाद उसके समक्ष राजा ने जो कुवचन कहे वे ये थे। राजा ने कहा था कि जिसके बल के आसरे तूने बूंदी वापस करवाई और हमारे चार परगने हमसे छिनवाकर माधवसिंह को दिलवाए! हे खत्री! अब वह तेरा महाबली होल्कर कहाँ हैं? अर्थात् तेरे अन्त समय में आकर तेरी सहायता क्यों नहीं करता? कछवाहा ईश्वरीसिंह ने ऐसे वचन कह कर अपने निरपराध चतुर सचिव को मारा है उसके इसी अपराध भरे कृत्य के कारण मैं चढ़ाई करने आया हूँ! हे हाड़ा राजा! मेरी उसे मारने की इच्छा नहीं है। मैं तो उसका दर्प चूर कर उससे फौजकसी के खर्च का मनमाना दण्ड वसूल करूँगा। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने होल्कर का मंतव्य जान कर कछवाहा राजा के पत्र का प्रत्युत्तर लिखवाया।

कूरम हम तुमरैं कहैं हुलकर समुझाया।
पै पिसुनन की मन्नि कैं तुम दर्प दिखाया॥
यातैं आयस नन्ह का लहि कटक चलाया।
केसवदास बिनास का इन ओगुन गाया॥१०॥

मारन का नहिं मंत्र पै धन लैन थकाया।
प्रत्यागत इच्छैं नहीं एहू हठ आया॥
यातैं अप्पहु अप्पहू दम दम्म सिवाया।
लै तिनकों टरि जाँहिंगे दल खरच दुखाया॥११॥

ए कग्गर कूरम सुनत इत मंत्र उपाया।
देनों दम्म न उचित करि लरनों चित लाया॥
अक्खी हरगोबिंद सों रन ही मन भाया।
बीरन बुल्लहु बेगही दल सजब सुहाया॥१२॥

हाड़ा राजा ने लिखवाया कि हे कछवाहा राजा! मैंने आपके चाहे अनुसार मल्हारराव होल्कर को समझाया पर आपके चुगलखोरों ने चुगली की है कि आपने दर्प से होल्कर के लिए अपवचन कहे। यही कारण है कि वह होल्कर श्रीमंत से आज्ञा ले कर ससैन्य आपको दंडित करने आया है। उसे आपका खत्री केशवदास को यों जहर पिलाना अच्छा नहीं लगा। वह आपको मारना नहीं चाहता पर आपसे दण्ड की राशि अवश्य वसूल करेगा। मैंने वापस जाने का कहा पर वह अपनी जिद पर अड़ा है कि आपको दंडित किये बिना वापस नहीं लौटेगा इसलिए आपके लिए उचित यह रहेगा कि आप उसे दंड स्वरूप रुपये दे दें। वह अपनी फौजकसी के रुपये वसूल कर आक्रमण टाल देगा। हाड़ा राजा के इस पत्र को पा कर कछवाहा राजा ने अपने लोगों से मंत्रणा की और दंड की राशि नहीं दे कर मुकाबला करने का निर्णय लिया राजा ने अपने प्रधान हरगोविन्द नाटाणी से कहा कि मुझे तो युद्ध करना अधिक उचित लगता है इसलिए अपनी सेना सजाओ और शीघ्र ही योद्धाओं को एकत्र करो।

कूरम याकी कन्यका रक्खी करि जाया।
यातैं हरगोविंदहू अवसर यह पाया॥
बुल्ल्यो मेरी जेब मैं दल लक्ख सजाया।
जब चाहैं तब लीजिये भट संगर भाया॥ १

मरहट्ट मन भीरु है जब बाजि उठाया।
तबही पायन लग्गिहैं ओदक अकुलाया॥
तुम आमैर अधीस ह्वै सिर छत्र धराया।
वे अनुचर द्विज दीनकी इत आत सिखाया॥१४॥
भिच्छा मंगनहार का जिन ओदन खाया।
ते प्रभु कों पहुँचै नहीं असि त्रास डराया॥
कहाँ जेठ दिनकर कहाँ खद्योत खिसाया।
कहाँ सिंह गजरिपु कहाँ किखिदुब्बल काया॥१५॥

उधर कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने जो हरगोविन्द नाटाणी की कन्या को जबरन अपनी पासवान बना कर रख छोड़ा था उसे याद कर नाटाणी ने सोचा कि राजा को सबक देने का यह अच्छा अवसर हाथ आया है। राजा के प्रधान नाटाणी ने तब कहा कि हे स्वामी! एक लाख की संख्या वाली फौज तो मेरी जेब में पड़ी है आपकी जब इच्छा हो तब आप उसका प्रयोग करते हुए युद्ध रचें! आप जब अपनी सेना सहित घोड़े की लगाम खीचेंगे तो वे कायर मन वाले मराठे तोबा कर जाएँगे। वे सभी डर कर आपके चरणों में आ गिरेंगे। कहाँ आप आमेर जैसे बड़े और ताकतवर राज्य का छत्र अपने सिर पर धारण करते हैं और कहाँ वे दीन ब्राह्मण के बेचारे अनुचर? आपका उनका क्या मुकाबला? भीक्षा माँगने वाले ब्राह्मण का अन्न खाने वाले वे मराठे आपकी तलवार के भय की क्या बराबरी करेंगे? कहाँ आप जेठ माह के तपते सूर्य और कहाँ वे खिसियाए हुए जुगनू? कहाँ तो हाथियों को मारने वाला सिंह और कहाँ दुर्बल काया वाला बन्दर? आपकी उनसे कैसी बराबरी?

कहि कहि हरगोबिंद इम कूरम बहिकाया।
हरिनारायन पुत्र निज पख पुब्ब सिखाया॥
सब जैपुर पति के सुभट सुत संग दिवाया॥
सेखावाटी मुलक मैं पहिलैंहि पठाया॥१६॥
अच्छे तोप तुरंग गन सब तत्थ चलाया।
कूरम जब मंग्यो कटक मंडी तब माया॥
मो ढिग लक्ख अनीक है यह छद्म रचाया॥
दक्खिन का उत पत्र दै बल बेग बुलाया॥१७॥

आवैं जितनैं अंतरँग इम दिवस गुमाया।
इततैं हुलकर हड्डु नृप दरकुंच चलाया॥
जैपुर तैं त्रय कोस पैं निज दल उतराया॥
झीलि झल्लौंनाँ कुंड पैं झंडाल झुकाया॥१८॥

ऐसे वचन कह-कह कर हरगोविन्द नाटाणी ने अपने स्वामी कछवाहा ईश्वरीसिंह को इधर तो युद्ध के लिए उकसाया और उधर उसने एक पखवाड़ा पूर्व ही अपने पुत्र हरिनारायण के साथ जयपुर के सारे सामन्त योद्धाओं को संग दे कर शेखावाटी के मुल्क पर भेज रखा था। सेना की अच्छी-अच्छी तोपें और अच्छे-अच्छे घोड़े तो उसने पहले ही अपने पुत्र के साथ शेखावटी में भिजवा रखे थे। अब इस समय जब राजा ने सेना मांगी तो उसने कपट की माया रच कर झूठमूठ ही कह दिया कि मेरे पास एक लाख की संख्या वाली फौज मौजूद है। फिर उसने छलपूर्वक एक पत्र लिख कर अपने पुत्र को भिजवाया कि जयपुर पर मराठा सेना आक्रमण करने को आतुर है इसलिए सेना सहित शीघ्र इधर पहुँचो! इस कार्यवाही में हरगोविन्द नाटाणी ने होल्कर की सेना यहाँ पहुंचे उतने दिनों की अवधि यों ही व्यतीत करवा दी। इस बीच मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह जंगी सेना के साथ दर कूच दर मंजिल यहाँ आ पहुँचे। उन्होंने जयपुर से तीन कोस के फासले पर अपना सैन्य पड़ाव डाला। होल्कर ने झालना नामक कुंड में अपनी सेना कों स्नान आदि करवा कर सफर की थकान मिटाई और शीघ्र ही हाथियों की पीठ पर अपनी सेना के बड़े-बड़े ध्वज लगवाये।

नट्टानी तब सचिव निज कछवाह बुलाया॥
बुल्लयो तैं तब जेबमैं दल लक्ख बताया॥
वाकों कढ्ढु यार अब अरि अंतिक आया॥
बिनु उद्यम तेरे कहैं दिन बीस बिताया॥१९॥
बुल्ल्यो हरगोबिंद तब तुम आखु लगाया॥
तिन कट्टी मम जेब ओ बल सब बिखराया॥
नट्टानी यह जंपि कैं निज गेह पलाया॥
इत आमैर अंधीस कों अब त्रास दबाया॥२०॥

हय अंबर धृति पोस बदि नवमी दिन पाया॥
तास निसा के जाम जुग नृप निठ्ठि गुमाया॥
जानी बनिक बिरोध कैं भावी बिगराया॥२१॥

कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने तब अपने सचिव नाटाणी को बुलवाया और कहा कि तू जो अपनी जेब में एक लाख की संख्या वाली फौज बताता था उसे जेब से निकाल! देख शत्रु सिर पर चढ़ आया है! तेरे कथन पर विश्वास करते हुए हमने पिछले बीस दिन का समय बिना किसी उद्यम के व्यतीत कर दिया। इस पर हागोविन्द नाटाणी ने प्रत्युत्तर दिया कि हे स्वामी! आपने जो चूहे कुतरने के लिए छोड़े उन्होंने मेरी जेब कुतर डाली और सारी सेना चूहों के कुतरे छेद से निकल कर इधर उधर बिखर गई है। इतना कह कर वह नाटाणी तो अपने घर भाग गया। सेना का बल नहीं पा कर कछवाहा राजा को भय ने आ घेरा। विक्रमी संवत् के वर्ष अट्ठारह सौ सात के पोष माह के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को रात्रि के दो प्रहर व्यतीत होने के समय राजा ईश्वरीसिंह गुम हो गया। ऐसा लगता था मानों उस बनिये (हरगोविन्द) के विरोध से पूरे जयपुर राज्य का भविष्य डगमगा गया हो।

छन्नैं गरल अमत्र इक मतिमंद मँगाया॥
सुत्तो ताको पान करि दुव नैंन मिचाया॥
काहू नहिं जानी यहै नृप नै बिख खाया॥
खात समैं इक पत्र मैं इम अंक लगाया॥२२॥

सुनिये संभर प्रात जे अनुचरन उठाया॥
ईश्वर लेह मिटैं नहीं जुग जुग जे गाया॥
प्याला केसवदास को पाया सुहि पाया॥
अैसैं लिखि आमैरपति इम बेर बिहाया॥२३॥

जानी सचिवन प्रात जब पुर द्वार लगाया॥
इत खंडू हुलकर तनय नृप डेरन आया॥
अक्खी चढि अप्पन चलैं भट्ट लै मन भाया॥
बाहिर तैं लखि आयहैं पुर सुनत सुहाया॥२४॥

कृष्ण पक्ष की इस रात्रि के अन्धकार में उस मूर्ख राजा ने चुपके से

जहर का प्याला मँगवाया और उसका पान कर वह चुपचाप अपनी आँखें बंद कर सो गया किसी को भी पता नहीं चला कि कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने जहर खा लिया है। बस, जहर पीते समय राजा ने एक कागज पर कुछ अवश्य लिखा। हे चहुवान राजा रामसिंह! दूसरे दिन सूर्योदय के समय जब अनुचर जगाने गये तब पता चला कि राजा नहीं रहा। युगों-युगों से हमारे यहाँ यह जो कथन प्रचलित है कि ईश्वर का लेख लिखा हुआ नहीं मिटता (दूसरे अर्थ में स्वयं राजा ईश्वरी सिंह का किया कर्म नहीं मिटा) जिसने केशवदास खत्री को जो प्याला(विष) पिलाया था वह प्याला मुझे भी मिला। इस तरह की इबारत लिख कर आमेर के स्वामी ने अपना शरीर छोड़ा। प्रातःकाल में जब सचिवों को इस बात का पता चला तो उन्होंने तुरन्त जयपुर नगर के सभी द्वार बंद करवा दिये। इधर मल्हारराव होल्कर का पुत्र खंडूराव होल्कर जब राजा के शिविर में पहुँचा इस समय वह अपनी पसन्द के योद्धाओं के साथ घोड़े पर सवार था। उसने अपने साथियों से कहा कि चलो ! बाहर से उस नगर जयपुर को देख आते हैं, सुनते हैं कि यह नगर बहुत सुन्दर है।

सह खंडू नृप संभरी चढि तबहि चलाया॥
संग लये भट तीन सत निज परख गिनाया॥
जैपुर के प्राकार ढिग रहि तुरग बिहाया॥
इक्क अटा चढिकैं सकल पुर त्यों ड्डग लाया॥२५॥
जैसैं जैपुर सिल्पमत जयसिंह बसाया॥
भेदी कोउक अंग ते कहि भिन्न बताया॥
यह कूरम सचिवन सुनी दुव देखन आया॥
तब पुर दक्खिन द्वार का द्रुत अरर खुलाया॥२६॥

खंडूराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह दोनों घोड़ों पर सवार हो नगर देखने को चले उस समय उनके साथ चुने हुए तीन सौ सवारों का दल था। सभी जयपुर की शहरपनाह के पास पहुँच कर अपने-अपने घोड़े से उतरे और वहाँ एक मकान की छत पर चढ़ कर उन्होंने जयपुर नगर पर एक विहंगम दृष्टि डाली। उन्होंने देखा कि पूर्व राजा जयसिंह ने कैसे चतुर नगर-नियोजकों की सहायता से सुन्दर नगर बसाया और यह भी देखा कि

नगर के भिन्न-भिन्न अंगों को किस तरह सुव्यवस्थित ढंग से बसाया गया है। होल्कर और हाड़ा राजा के इस तरह नगर देखने की बात जब जयपुर के सचिवों ने सुनी तो उन्होंने शीघ्र ही नगर के दक्षिणी प्रवेश द्वार के दरवाजे खुलवाये।

सिबिका हरगोबिंद चढि बाहिर कढि धाया।
बिद्याधर त्योंही बहुरि दुव समुख चलाया॥
आय निकट बुंदीस सों सब वृत कहाया॥
जैसी बिधि गर रत्ति मैं नृप गरल चबाया॥२७॥

दोहू सचिवन कों सुनत इन सपथ कराया।
तब सच्ची गिनि सेन मैं यह वृत पठाया॥
सो सुनि हुलकर सैन लै जैपुर ढिग आया।
करि मुकाम प्राकार तट निज थूल तनाया॥२८॥

इस समय एक पालकी में बैठ कर प्रधान सचिव हरगोविन्द नाटाणी शहर के बाहर आया। इसी तरह विद्याधर भी आया। दोनों चलकर उनके सम्मुख गये। यहाँ पहुँच कर नाटाणी ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि कैसे विगत रात्रि को राजा ईश्वरीसिंह ने जहर का प्याला पी कर अपनी इहलीला समाप्त की। दोनों सचिवों से जब हाड़ा राजा ने शपथ दिला कर पूछा कि क्या यह वाकया सच है? उन्होंने कहा कि 'हाँ' तब सत्य मान कर हाड़ा राजा ने सैन्य शिविर में यह समाचार कहलवाया कि राजा की मृत्यु हो गई है। जिसे सुन कर होल्कर मल्हारराव अपनी सेना के साथ शहर के निकट आया और शहरपनाह के निकट अपना जंगी डेरा (तंबू) खड़ा करवाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे हुलकर हड्डेन्द्र जयपुर प्रस्थानप्राप्तकूर्मराजपत्ररावरा वमल्लारास्नुनयन-कथित केशवदास वैर हुलकर जैपुरगमनमंत्रिहरगोविन्दपरोक्षसैन्य निष्कासनजायसिंहि विश्वसनज्ञात शत्रुसामीप्यसैन्य रहित पीतगरल कूर्म्मराजदेहत्यजनबोधसिंहि मल्लारि जयपुर बहिर्दर्शन जयपुरसचिव-तत्सम्मिलनहुलकरा स्स्वानप्राकारास्यःपृतनापातनं सप्तत्रिंशे मयूखः। आदितः ॥३१८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में होल्कर और हाड़ा क्षत्रियों के इन्द्र का जयपुर पर गमन करना, कछवाहों के राजा का पत्र पाकर रावराजा का होल्कर से विनय करना, कहे हुए केशवदास के वैर पर होल्कर का जयपुर जाना, मंत्री हरगोविन्द का पीठ पीछे सेना को निकाल कर जयसिंह के पुत्र को विश्वास देना, शत्रु को समीप जानकर सेना रहित कछवाहा राजा का जहर पीकर शरीर छोड़ना, बुधसिंह के पुत्र और मल्हार के पुत्र का जयपुर को बाहर से देखना, जयपुर के सचिवों का उनसे मिलना और होल्कर को बुलाना और कोट के नीचे सेना का पड़ाव करने का सैंतीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अठारह मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

पोस असित दसमी दिवस, इम जयपत्तन आय।
पुनि प्रबंध अपनों करन, लिय बुंदीस बुलाय॥१॥
अक्खी तुम जावहु नृपति, लखि पुर राजनिकाय।
अंतहपुर जुत अप्पनाँ, जामिक देहु जमाय॥२॥
तब पुर अंतरं जाय नृप, धरि चोकी सब ठाम।
कहिय आय मल्लार प्रति, भये नृपहिं खट जाम॥ ३॥
उचित दाह कछवाह को, अब न बिलंब बिधेय।
इते काल रंक न रहैं, श्रुति अक्खत सुहि श्रेय॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! पोष माह के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथि के दिन इस प्रकार होल्कर जयपुर नगर के निकट आया। यहाँ पहुँच कर मल्हारराव ने बूंदी के हाड़ा राजा को बुलवाया कि अब कैसे अपना प्रबन्ध करना है। राजा के आने पर होल्कर ने कहा कि हे राजा उम्मेदसिंह! तुम नगर में जाकर राजमहल देखो और वहाँ अन्तहपुर सहित महलों के बाहर अपने प्रहरी नियुक्त कर दो। यह सुनकर हाड़ा राजा ने नगर में प्रवेश कर सभी जगह अपनी चौकियाँ स्थापित कर दी फिर उसने मल्हारराव से आकर कहा कि राजा के शव को रखे पूरे छः प्रहर व्यतीत हो चुके हैं। वेदों का श्रेष्ठ कथन यह कि इतने

समय तक तो किसी रंक का शव भी नहीं रखा जाता अर्थात उसकी भी अन्तिम क्रिया कर दी जानी चाहिए।

पादाकुलकम्

सुनि हुलकर कछु सोक सहित हुव, जैपुर सचिव बुलाये वे दुव॥
हरगोविंद बहुरि विद्याधर, तिनहिं कह्यो दाहहु नृप सत्वर ॥५॥

तब तिन अरज मलारहिं किन्नीं, चोकी तुम अप्पन धरि दन्नीं
कोस सबहि नहिं हत्थ हमारैं, किहिं ठा सन उपकरन निकारैं ॥६॥

इन अक्खिय हमसन लै जावहु, नहिंनिदेस किम कोस खुलावहु
यह सुनाय निज कोसन तैं तब, सामग्री हुलक पठई सब॥७॥

ताहि संग बनिक रु बिद्याधर, लै तब उभय गये पुर अंदर ।
राज्य बडो कछु काम न आयो, हुलकर तैं खंपन नृप पायो॥८॥

हाड़ा राजा से यह सब सुनकर थोड़ी देर को मल्हारराव होल्कर भी शोकमग्न हो गया फिर उसने जयपुर के दोनों सचिवों को बुलवाया। हरगोविन्द नाटाणी और विद्याधर जब दोनों आये तो होल्कर ने उनसे कहा कि राजा कि अन्त्येष्टि क्रिया जल्दी सम्पन्न करो! इस पर सचिवों ने निवेदन किया कि सभी जगहों पर आपकी चौकियां लगी हैं ऐसे में सारे कोठारों तक पहुँचना हमारे लिए संभव नहीं फिर हम राजा की दाहक्रिया की सामग्री कैसे जुटाएँ? यह सुनकर होल्कर ने कहा कि आप वांछित सामग्री हमसे ले जायें। कुठार खुलवाने के निर्देश हमारे पास नहीं इसलिए उन्हें कैसे खुलवाया जा सकता हैं? इतना कहकर मल्हारराव होल्कर ने अपने भंडार से दाह संस्कार की सारी सामग्री उन्हें उपलब्ध करवाई। उस सामग्री को लेकर हरगोविन्द नाटाणी और विद्याधर दोनों सचिव वापस नगर में आये। हे राजा रामसिंह! जयपुर जैसे बड़े राज्य की जागीर अपने अधिकार में होने पर भी राजा के कुछ काम नहीं आई। राजा ईश्वरीसिंह को तो अन्तिम कफन भी होल्कर से मिला।

दोहा

महलन बिच निष्कुट रुचिर, जयनिवास अभिधान।
किन्न दाह कछवाहको, तिहिं ढिग बिहित बिधान॥ ९॥

बिगरी ईश्वरिसिंह मति, बरस इक्क पहिलैंहि।
सुपहु राम सोपै सुनहु, नर कच्चे इम व्हैंहि॥१०॥

मत्त भयो जयसिंह सुव, जैपुर गद्दिय पाय।
खान नाम इभपाल इक, किन्नों सचिव बढाय ॥११॥

जवन वहै उनमत्त भो, नृप को हेत निहारि।
अति अनीति लग्गो करन, पर नारिन घर डारि ॥१२॥

जयपुर के राजमहलों में जो सुन्दर गृहवाटिका (घर का बगीचा) जयनिवास नाम से अवास्थित है इसी के निकट कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह का दाह-संस्कार उचित विधि से सम्पन्न किया गया। हे राजा रामसिंह! कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की मति तो एक वर्ष पहले ही भ्रष्ट हो गई थी। आप सुनें कि मनुष्य कैसे सच्चे से कच्चा हो जाता है? जयपुर का राज सिंहासन पाते ही राजा जयसिंह का यह पुत्र (ईश्वरीसिंह) भ्रष्ट हो गया। उसने अपने खान नामक एक महावत को पदोन्नति दे कर अपना सचिव बनाया। वह यवन खान भी राजा का ऐसा स्नेह पा कर भला उन्मत्त क्यों नहीं होता अर्थात् वह उन्मत्त हो गया। वह पराये घरों की स्त्रियों को अत्यधिक अनीति से बलात् अपने घर में डालने लगा।

कूरम आसव पान करि, इकदिन बुल्ल्यो वाहि।
मंदिर श्रीगोबिंद के, चित कछु मंत्रन चाहि ॥१३॥

बरज्यो इतरन तदपि तैंहैं, किन्नों कुम्म अजान।
आधोरन के हत्थ तैं, पानकरस को पान ॥१४॥

पुनि वासों गलबाँहैं करि, फिरयो निरंकुस होय।
जब आसव मद उतरयो, सोच्यो तब सठ रोय ॥१५॥

दिवाकीर्ति इक दैधिपव, बारी संभुव नाम।
सोहु बढायो सचिव करि, दै सिबिका गज गाम ॥१६॥

कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह ने एक दिन अत्यधिक मद्यपान कर इस खान को श्री गोविन्ददेव जी के पवित्र मंदिर में कुछ सलाह करने हेतु बुलवाया। राजा को ऐसा करने से कई सभ्रांत लोगों ने रोकना चाहा पर राजा ने उनकी एक न सुनी। राजा ने इस महावत के हाथ से मंदिर में शराब पिया फिर इस खान को अपनी बाँहों में भर कर निरंकुश हो नगर में घूमा। जब शराब का नशा काफुर हुआ तब तो पश्चाताप में मूर्ख राजा रोया भी। शंभु नामक एक नाई को

जिसकी एक अविवाहिता (नाते वाली) स्त्री दिवाकीर्ति थी, उसको भी राजा ने सचिव का पद दे दिया। यही नहीं इस नाई को बैठने को पालकी, हाथी और जागीर में गाँव प्रदान किये।

अंत्यज लोक अनेक इम, रक्खे ढिग पटु जानि।
मर्यो सु कूरम लै गरल, यँहँ दक्खिन भय आनि॥१७॥
बारनारि इक रूपबसु, मन्नी तिय करि मेल।
सोहु जरी रचि सहगमन, जयनिवास गृहवेल॥१८॥
दूजे दिन हुलकर तनय, किन्नीं खंडुव बत्त।
कूरम गृह सुंदर सुनत, पातुरि बहु गुन रत्त॥१९॥
लखि अच्छी तिन माँहिँ सौं, चुनि चुनि कल्हि मँगाय।
घर हम भुग्गन रक्खिहैं, गिनत समर्थ न न्याय॥२०॥

इस तरह कछावाहा राजा ईश्वरीसिंह ने कई अत्यंज (शूद्र) लोगों को चतुर समझ कर अपने पास रखना आरंभ किया। वही राजा मराठा सेना के आगमन की सुन कर भय से जहर पीकर मर गया। एक गणिका जिसका रूप ही उसका धन था, उसे अपनी रखैल बना कर राजा ने अपने हरम में रखा। राजा के साथ सहगमन करते हुए यही गणिका जयनिवास की वाटिका के पास जल कर मरी। राजा के देहान्त के दूसरे दिन मल्हारराव होल्कर के पुत्र खांडेराव होल्कर ने कहा कि हमने सुना है कि राजा के जनाना में कई अत्यन्त रूपवंत और गुणवंती गणिकाएँ हैं! कल उनमें से अच्छी लगने वाली कुछ स्त्रियों को चुन-चुन कर हम बुलाएँगे और भोगने के लिए हम उन्हें अपनी रखैल बना कर घर में रखेंगे क्योंकि समर्थ लोग न्याय अन्याय नहीं देखते।

यह उदंत अवरोध गत, सुनि पातुरि भय पग्गि।
एकादसि बासर जरी, एकादस लहि अग्गि॥२१॥
रानिन हू यह भय सुनत, इक गृह सोर बिछाय।
सबन बिचारी उडन की, करन प्रान बिनु काय॥२२॥
तब आतुर नाजर जनन, अक्खी बाहिर आय।
जो न बनैं सत्वर जतन, रानी जन उडि जाय॥२३॥

आये हुलकर संग यँहँ, माधव के हु वकील।
बनिक कन्ह कोबिद बहुरि, कूरम प्रेम कुसील॥२४॥
तिन यह सुनि बुंदीस प्रति, अक्ख्यो अनुचित कर्म।
भूप सुनत अति कोप भरि, धर्यो लरन भट धर्म॥२५॥

खांडेराव द्वारा कही गई यह बात जब जयपुर के रनिवास में पहुँची तो सारी गणिकाएँ भयग्रस्त हो गईं और एकादशी तिथि के दिन उन ग्यारह गणिकाओं ने अग्नि को अपनाया अर्थात् वे सभी जल मरी। यह वृतान्त जब अन्तहपुर में रानियों ने सुना तो उन्होंने एक कक्ष में बारूद बिछवाया और मन ही मन तय किया कि इसके धमाके में अपना शरीर होम देना है। बारूद बिछाने की बात भयभीत नाजरों ने जनाना से बाहर आ कही कि यदि शीघ्र ही कोई उपाय नहीं किया गया तो सारी रानियाँ बारूदी विस्फोट में जल मरेंगी। यह सुन कर कछवाहा माधवसिंह के वकील जिनमें चतुर बनिया कान्ह और खोटे स्वभाव वाला प्रेमसिंह कछवाहा थे, ये दोनों होल्कर के शिविर में आए। इन दोनों ने बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को उलाहना देते हुए कहा कि यह नितान्त अनुचित कर्म है। हाड़ा राजा को पूरा वृत्तान्त सुनते ही क्रोध आ गया और उस वीर ने लड़ने के लिए योद्धा का धर्म निभाने की सोची।

षट्पात्

असनायित्त हरि अंग मनहुँ बिच्छिय अल मारिय,
सागर सापन असह अंखि जनु कपिल उघारिय।
काली मनहुँ कराल सुंभ उप्परी त्रिसूल लिय,
दलन जंभ दंभोलि पकरि पलट्यो कि सचीप्रिय।
श्रीवत्सधर कि सिसुपाल के अंतिम आगस उज्झलिय।
इम भूप सुनत खंडुव अनय करखि मुच्छ बुल्लिय बलिय॥२६॥

जैसे कि भूखे सिंह के शरीर पर किसी बिच्छू ने डंक मारा हो या सागर के पुत्रों को शाप देने के लिए कपिल देव ने अपने नेत्र उघाड़े हों। मानों कालिका देवी ने असुर शुंभ के ऊपर अपना भयंकर त्रिशूल उठाया हो अथवा जंभासुर को मारने के लिए वज्र उठा कर इन्द्र पलटा हो। मानों श्री कृष्ण शिशुपाल के अन्तिम अपराध(एक सौ एकवें) पर उसका संहार करने बढ़े

हों। इस तरह बूंदी का राजा खाँडेराव होल्कर की अनीतिपूर्ण बात सुन अपनी मूँछों पर ताव देता हुआ कुपित हुआ और कहने लगा।

सुनहु बत्त मल्लार सल्ल मिच्छन उर अप्पन,
पठये तुम पुण्येस धर्म हिंदुन दृढ थप्पन।
अनय अज्ज इक सुनिय तनय भवदीय कहत यह,
नृप जैपुर पति नारि गेह डारहिँ हकरि अग्गह।
सब ठाम लज्ज एकहि समुझि अब खंडुव बरजन उचित।
उनमाँहिं हमहु नहिंतो अबहि हड्डुन हिय तुमतैं न हित॥२७॥

हे मल्हारराव होल्कर! मेरी बात सुन कि एक तो हम लोग म्लेच्छों के उर में खटकने वाले कांटे हैं फिर तुम्हें पूना के स्वामी ने हिन्दुओं के धर्म को दृढता से स्थापित करने भेजा है। ऐसे में मैने आज एक अनीति की बात सुनी है, तुम्हारा बेटा कहता है कि वह जयपुर के राजा की रानियों को आग्रहपूर्वक अपने घर में भोगने को डालेगा अर्थात् उन्हें अपनी रखैलें बनायेगा। मल्हारराव! लज्जा तो सभी जगह की एक सी होती है इस बात को समझ कर तुम्हें अपने पुत्र को रोकना चाहिए क्योंकि मैं ऐसे लोगो मै से नहीं हूँ। यदि ऐसा सोचा गया तो समझना कि हाड़ा के मन में अब तुम्हारा हित करने की बात शेष नहीं रह गई है।

दोहा

हैं हमरी बेटी बहिनि, उनके आलय माँहिं।
त्योंहि समझहु चतुर तुम, उनकी हम घर आँहिं॥२८॥
अज्ज बिपत्ति जु एक बिच, सो दूजे बिच सोहि।
मनुजन को तब जब मरन, तो बर अवसर कोहि॥२९॥
हम सिर तुम आसान किय, इन पर डारि चपेट।
जो समुझहु कृतघन हमहिं, तो बुंदिय वह भेट॥३०॥
यह अनीति जो नीति करि, मन्नैं हमहु प्रमत्त।
अखिल दिखावैं अंगुलिन, बिक्ख बिक्खकहि बत्त॥३१॥

हे मल्हारराव! जयपुर राजा के घर में हमारी भी बहिन -बेटियाँ हैं और इसी तरह यह भी समझ लो कि उनके घर की बेटियाँ हमारे घरों में है। आज यह विपत्ति मात्र इस घर पर नहीं आई, ऐसी विपत्ति दूसरों के घरों पर भी आ

सकती है और ऐसे अवसरों पर मनुष्यों का मरना ही श्रेष्ठ कर्म माना गया है। हाँ, मेरे सिर पर तुम्हारा अहसान है कि तुमने मुझे बूंदी वापस दिलवाई है पर ऐसा कृत्य सहने के लिए नहीं। मुझे लाख कृतघ्न समझ लेना। मैं बूंदी वापस कर सकता हूँ क्योंकि यदि आज हमने प्रमत्त हो कर इस अनीति भरी बात को नीति सम्मत मान लिया तो कल हमें सभी लोग अंगुलियाँ दिखा कर कहेंगे कि देखो यह नकटा है, नकटा!

धरम चलावत नयधरन, तुम सहाय भुव लीन।
अधरम करि लैबो उचित, पाक दमन पदवी न॥३२॥

सोदर तैंहु सखा अधिक, सो कूरम तुम सूर।
यातैं खंडुव मात वे, तिनकों तक्कत कूर॥३३॥

नृपति अंखि सच्ची निरखि, जानी यह मरि जाय।
हित करि हुलकर हड्ड कों, लिन्नों हृदय लगाय॥३४॥

काल देस आलोच करि, चित्त धरम दृढ चाहि।
तरज्यो अप्पन पुत्र कों, संभर नृपहि सिराहि॥३५॥

मैनें तुम्हारी सहायता से बूंदी को लिया है तो धर्म की मर्यादा रखने और नीति को धारण करने हेतु लिया है। मुझे अधर्म पूर्वक तो %प्राक दामन % की पदवी लेना भी स्वीकार नहीं। हे मल्हारराव! तुम और कछवाहा राजा तो पगड़ी बदल कर एक दूजे के सखा बने थे और सुनते है कि सखा सगे भाई से बढ़ कर होता है। तुम्हारे इस रिश्ते से तो वे रानियां खांडेराव की माताओं जैसी हैं। उनको वह कायर बुरी नजर से ताकता है? हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के इन क्रोध भरे वचनों को सुन कर मल्हारराव ने सोचा कि राजा सच कह रहा है, यह सचमुच इस बात पर मर मिटेगा तब उसने हित का प्रदर्शन करते हुए प्रीतिपूर्वक हाड़ा राजा को हृदय से लगा लिया। मल्हारराव ने देश और काल का विचार कर चित्त धर्म में दृढ़ किया और तुरन्त अपने पुत्र को धमकाया। यही नहीं, पूरी दृढ़ता से नीति सम्मत बात कहने के लिए होल्कर ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की खूब सराहना की।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे कूर्म्मराजमरणज्ञानास्नन्तर हड्डेन्द्र पूर्वकमहाराष्ट्रजामिक जयपुरदक्ष-

दणादत्तस्वोपहार हुलकर कूर्म्मराजदाहनतत्पूर्वास्नाचारकथनैकवार स्त्रीतत्सहगमन मल्लारिकूर्म्मास्न्तः पुरलुट्टनमननश्रुतमतदुदन्तैकादश भुजिष्याज्वलननिवसनसर्वराज्ञीजनवन्हिविशनविचारणज्ञाततद्वृत्तान्त-हड्डेन्द्ररोषारुणी भवन मल्लारशिक्षादानवाक्प्रतोदप्रबोधित हुलकरहड्डेन्द्र-हृदया श्लेषणस्वपुत्रखण्डूतर्जनमष्टत्रिंशो मयूखः । आदितः ॥३१९ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में कछवाहों के राजा के मरने का ज्ञान हुए बाद हड्डेन्द्र आदि का मराठा के पहरायत रखना, होल्कर का सामग्री देने से कूर्मराज का दाह होना और उसके पहिले के दुराचारों का कहना, उसके साथ एक वेश्या का सती होना, मल्हार के पुत्र द्वारा कछवाहे के जनाने को लूटने का विचार करने का वृत्तान्त सुनकर ग्यारह पासवान स्त्रियों का अग्नि में प्रवेश करना और सब रानियों का अग्नि में प्रवेश करने का विचार करना, वह वृत्तान्त जानकर हड्डेन्द्र का क्रोध में लाल होना और मल्हार को शिक्षा देने रूपी वचनों के चाबुक से समझाये हुए होल्कर का हड्डेन्द्र को हृदय से लगाना, अपने पुत्र खंडू को धमकाने का अड़तीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उन्नीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

सुनि अक्खिय मल्लार प्रबिसि जैपुर बुंदियपति,
कूरम सचिवन कहहु मोद रक्खहु त्रासहु मति।
प्रकट जाय प्रच्छन्न कुम्म नृप तियन कहावहु,
धन्य सती तुम धरम सोहु हम तियन सिखावहु।
कछु बोधहीन खंडुव कहिय आगस बखसहु मोहि यह।
निजनाथ मित्र मम सिर निडर सासन करहु सखीन सह ॥१ ॥

हे राजा रामसिंह! मल्हारराव होल्कर का कहा सुन कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह जयपुर नगर में प्रविष्ट हुआ। उसने महलों में जाकर कछवाहा राजा के सचिवों से कहा कि डरो मत! हिम्मत से काम लो! इसके बाद राजा जनाना ड्योढी पर गया और यहाँ से उसने राजा ईश्वरीसिंह की रानियों से कहलाया कि हे सतियो! तुम्हारा धर्म धन्य है! हम इसे अपनी स्त्रियों को भी सिखाएगें! उस मूर्ख खांडेराव ने बिना ही विचारे जो कह दिया उसके अपराध की क्षमा

आप मुझे दीजिये! मुझे अपने दिवंगत पति का मित्र समझें और कोई आज्ञा हो तो मुझे बताएँ मै उसे शिरोधार्य करूंगा!

दोहा

सुनि इम हड्डु नरेस तब, बिस्वासे सब जाय।
अक्खी डरहु न नैक अब, हम तुम संग सहाय॥ २॥

तबहि पाय बिस्वास तिन, प्रतिउत्तर दिय एह।
उपकारहिं अपकार पर, नृप तुम किन्न सनेह॥३॥

स्वापतेय अब दंड को, मंगहिँ यह मल्लार।
कछुक घटावहु जतन करि, सोपै संभरवार॥४॥

कोटि पंच हुलकर कहे, लैन दम्म हठ लाय।
बुल्ल्यो तँहँ नृप करि बिनय, जुलम सह्यो किम जाय॥५॥

यही नहीं हाड़ा राजा ने कछवाहा राजा के सभी परिजनों और परिकरों को विश्वास में लिया और कहा कि आप लोगों को तनिक भी अब भयग्रस्त होने की जरूरत नहीं। मैं आप लोगों की सहायता में तत्पर हूँ। तब उन लोगों ने बूंदी के स्वामी पर भरोसा करते हुए कहा कि हे राजा! आपने अपने अपकार को भूल कर स्नेहवश हम पर उपकार करने की सोची इसके लिए आप धन्य हैं पर एक निवेदन है कि मल्हारराव होल्कर अब हमसे दण्ड के रुपये माँगेगा इस हेतु निवेदन है कि हे हाड़ा राजा! आप अपने प्रयासों से उस दण्ड की राशि को थोडा कम करवा देना। जब होल्कर मल्हारराव ने हठपूर्वक फौजखर्च के पाँच करोड़ रुपये मांगे तब राजा उम्मेदसिंह ने विनम्रता के साथ कहा कि यह राशि बहुत अधिक है। ऐसा असहनीय जुल्म न करें!

बहुत बेर दक्खिन दलन, कूरम दंडित कीन।
लखि श्रद्धा बसु लीजिए, इन्ह गिनि निबल अधीन॥६॥

कारिज पर खरचत कला, मूलहिँ रक्खि समग्ग।
अरथ पटुन की रीति यह, अक्खी बृद्धन अग्ग॥७॥

कला बढत पुनि मूलकरि, मूल मिटैं सु मिटाय।
जैसैं रजका मूल जुत, लयो न पुनि लहराय॥ ८॥

जातैं पुनि बसु उप्पजहिँ, ऐसो रक्खि उपाय।
अक्खहु दम श्रद्धा उचित, हठ तजि हुलकर राय॥९॥

हे होल्कर! इससे पूर्व भी दक्षिण की मराठा सेना ने कई बार कछवाहा राजा से दण्ड वसूला है। इस बार इन निबलों पर दया विचार कर दण्ड की राशि थोड़ी कम कीजिये। अर्थ में चतुर लोगों का प्रसिद्ध कथन है कि किसी कार्य पर ब्याज की राशि खर्च करनी चाहिए और मूलधन को जस का तस रखना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर ब्याज की निरंतर आय होती रहती है। यदि ऐसा न कर मूलधन को ही खर्च कर दिया जाए तो उसके साथ सूद भी खत्म हो जाता है। जैसे रजका घास को मूल सहित लेने पर वह फिर से फूट कर नहीं लहलहाता। आप भी ऐसा उपाय करें जिससे धन की फिर से आय हो ! इसलिए हे होल्कर राय! आप अपना हठ छोड़ कर दया विचारते हुए दण्ड की उचित राशि ही माँगें।

हम मन्नहिँ आसान यह, देखहु सक्ति उदार।
कुल्ल्या जल होय न कबहु, पूरन पारावार॥१०॥

तब निहारि भूपति बिनय, काल देस अरु काज।
दम्म कोटि एक दंड के, रक्खे हुलकर राज॥११॥

तीन अंस श्रीमंत के, चोथो निज करि चित्त।
ऐसे क्रम आमैर सन, बंटन मंग्यो बित्त॥१२॥

कतिक दम्म मनि गन कतिक, भूखन कतिक नवीन।
करि किम्मति गज हय कतिक, दंड माँहिं तब दीन॥१३॥

हे होल्कर! यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपका अहसानमंद होऊँगा। आपको अपने रुतबे को देखते हुए उदार बन कर देखना होगा, बेचारी नहर की क्या औकात कि वह समुद्र को भर सके? हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की विनय को देखते हुए मल्हारराव होल्कर ने देश और काल पर विचार किया और जयपुर के कछवाहों पर दण्ड की राशि पाँच करोड़ से घटा कर एक करोड़ कर दी। होल्कर ने मन ही मन हिसाब लगाया कि इस राशि का तीन चौथाई अंश तो श्रीमंत के खजाने मे जाएगा और एक चौथाई मेरे हिस्से मे आएगा। होल्कर ने इस क्रम से बँटवारा करते हुए एक करोड़ का धन माँगा। इस दण्ड राशि के पेटे कुछ तो रोकड़ रुपये दिये गये। कुछ जवाहरात और नये

आभूषण दिये। इसके बाद शेष बची राशि के पेटे जयपुर की ओर से हाथी और घोड़ों का विक्रय मूल्य तय कर उतने हाथी घोड़े दिये गये।

बारी संभुव खान बलि, पीलुपाल पकराय।
दम्म घटे तिनमैं दये, हरगोबिंद कहाय॥१४॥

कीलित तब दोऊन करि; लै लक्खन हठ लग्गि।
कोटि अंक पूरन कियउ, प्रकट लोभ बस पग्गि॥१५॥

इत माधव कछु अध्वभव, खेद उदैपुर टारि।
पत्तो पत्तन रामपुर, पाय परग्गन च्यारि॥१६॥

निज पतनी रट्ठोरि लिय, दोहद लच्छन धारि।
कूरम उद्भव तास किय, अष्टम मास उतारि॥१७॥

यातैं हुलकर संग इत, आयो नहिँ कछवाह।
कन्ह रू प्रेम बकील दुव, लखन पठाये लाह॥१८॥

इसी समय राजा ईश्वरीसिंह के मुँह लगे हुए शंभू नाई और खान जो महावत था दोनों को पकड़ कर हरगोविन्द नाटाणी ने होल्कर को सोंपते हुए कहा कि अब भी कुछ दाम घट रहे हैं उन रुपयों के एवजाने में आप इन्हें ले जाईये। दोनों कैद हुए राजा के इन पासवानों से होल्कर ने कहा कि रकम पूरी करो, लाख रुपये कम पड़ते हैं। इस तरह होल्कर मल्हारराव ने लोभ के वश हो एक करोड़ की अपनी दण्ड राशि पूरी वसूल की। उधर माधवसिंह कछवाहा जो यात्रा प्रवास के दौरान कुछ रोगग्रस्त हो गया था। उसने उदयपुर में ठहर कर पहले अपना इलाज करवाया फिर वह चार परगनों का अधिकार लेने रामपुरा नगर पहुँचा। माधवसिंह की राठौड़ वंशीय पत्नी ने गर्भ के लक्षण धारण किए अर्थात् वह गर्भवती थी। इस समय उसका गर्भ आठ महीनों का हो गया। कछवाहा माधवसिंह ने इस उपलक्ष्य में एक उत्सव का आयोजन किया। यही कारण रहा कि मल्हारराव होल्कर के साथ माधवसिंह जयपुर नहीं आ सका पर उसने अपना हित देख कर दो वकील कान्ह और प्रेमसिंह होल्कर के पास भेजे।

षट्पात्

ईश्वरिसिंह निपात सुनत हुलकर दल मुक्कि।
बुल्लिय माधव बेग बंचि पत्र सु आयो चरि

संगानेर समीप रह्यो कति दिन मुकाम करि,
बारह दिवस बिताय गयो जयनैर गर्ब भरि।
सुनि आत कटक जयपुर सहित बुंदिय पति हुलकर बलिय।
जद्दव नरेस खंडुव सजव इत्थिन चढि सम्मुह हलिय॥१९॥

कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह की मृत्यु की खबर सुनते ही मल्हारराव होल्कर ने एक पत्र लिख कर माधवसिंह कछवाहा को जयपुर बुलवाया। पत्र पाते ही अविलंब माधवसिंह रवाना हो गया। उसने सांगानेर के करीब पहुँच कर मुकाम किया। वह यहाँ पर कुछ दिनों तक ठहरा रहा। अपने बड़ेभाई राजा ईश्वरीसिंह के बारह दिनों की क्रियाएं पूरी होने के बाद वह गर्व से भरा जयपुर नगर में आया। माधवसिंह का आगमन सुन कर मल्हारराव होल्कर और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह भी सेना सहित जयपुर नगर में प्रविष्ट हुए। इस समय खांडेराव ओर यादव राजा (करोली का) दोनों हाथी पर सवार हो सेना के साथ चले।

दोहा

जद्दव नृप गोपाल जँहँ, नगर करोली नाह।
मंत्र करन मल्लार सन, आयो मिलन उछाह॥२०॥

वह अरु खंडुव इक्क इभ, बैठि चले तिहिँ बेर।
प्रथम कहे ते रहि पृथक, फैलत फोजन फेर॥२१॥

मिले परसपर मन मुदित, सबै बिहित सतकार।
इक्क अनेकप आरुहे, माधव अरु मल्लार॥२२॥

कुम्भ कह्यो न मुहूर्त अब, प्रबिसैं नहीँ पुर पोरि।
अब प्रबिसहु हुलकर कहिय, संध्या आत बहोरि॥२३॥

करोली का राजा यादव गोपालसिंह भी इन दिनों चला कर मंत्रणा करने की गरज से होल्कर के पास आया हुआ था और अभी भी यहाँ विद्यमान था। वह यादव राजा और खांड़ेराव होल्कर दोनों एक ही हाथी पर सवार हुए पर जैसा मैने (ग्रंथकार ने) पूर्व में कहा कि मल्हारराव और हाड़ा राजा इससे अलग ही सेना के बड़े फैलाव में थे। माधवसिंह कछवाहा के मिलने पर सभी परस्पर एक दूसरे का सम्मान करते हुए मिले। फिर एक ही हाथी पर माधवसिंह

कछवाहा और मल्हारराव होल्कर दोनों सवार हो कर आगे चले। इस समय कछवाहा माधवसिंह ने कहा कि हे मल्हारराव होल्कर! अभी अच्छा मुहूर्त नहीं है इसलिए इस समय नगर के द्वार में प्रवेश लेना अच्छा नही रहेगा। यह सुन कर होल्कर ने कहा कि अभी प्रवेश लेना उत्तम है क्योंकि फिर संध्या का समय हो जाएगा और दूसरे अर्थ में फिर सिंधिया आ जाएगा।

पादाकुलकम्

इम कहि नगर प्रवेस करायो, निज महलन माधव नृप आयो॥
पहुँचावन मल्लार आदि सब, गये जलेब चोक लगि ए तब॥२४॥
चढे गजन डेरन पुनि आये, बलि उत्तरि कटिबंध बिहाये॥
हुलकर निज बुल्ले जामिक जन, माधव अमल कियो जयपत्तन॥२५॥

होल्कर ने ऐसा कह कर माधवसिंह सहित हाथी को नगर में प्रवेश कराया। नगर में पहुँच कर माधवसिंह कछवाहा अपने महल में आया। यहाँ से जब मल्हारराव वापस अपने शिविर में आने को रवाना हुआ तो कछवाहा के सभी लोग उसे जलेबी चौक तक छोड़ने आये। हाथी पर सवार हो मल्हारराव, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह, यादव राजा गोपालसिंह और खांडेराव सभी शिविर में आए और यहाँ पहुँच कर वे अपनी - अपनी सवारी से उतरे। फिर अपने-अपने तंबू में जा कर उन्होंने कमर बंधे(कटिबंध) खोले। इसके बाद मल्हारराव होल्कर ने अपने तैनात किये हुए प्रहरियों को वापस बुला लिया और जयपुर नगर पर माधवसिंह कछवाहा का अमल हो गया।

दोहा

संध्या पुनि राणंजि सुत, सजि दुद्धर बहु सैन।
जयपत्तन आयो जया, अति जव छेकत अैन॥२६॥

उधर सिंधिया जयाजीराव अपने पुत्र रणंजय सिंधिया के साथ एक बड़ी सेना ले कर पूरे वेग से मार्ग पर बढ़ते हुए जयपुर नगर आ पहुँचा।

गीतिका

सुनिकैं जया जयनैर आवत हड्डु कूरम हू चढे।
दल मै नकीबन दोरि आरव जान सम्मुह के पढे॥
सह भूप जद्दव पुत्र खंडव लै मलार हु संक्रम्यौं।
हम च्यारि चक्कन चालतैं भय च्यारि चक्कन मैं भ्रम्यौं॥२७॥

मुदपाय मुत्तियडुंगरी तक जाय सम्मुह ए मिले।
सब पुच्छि मंगल माँहि माँहिं बहोरि पत्तन त्यौं पिले॥
अरु चंदपोरि मुकाम अप्पन दै जया तँहँ उत्तर्यो।
पुनि मंत मित्त मलारतैं दम बित्त बंटनको कर्यो॥२८॥

जयाजी सिंधिया के आगमन का समाचार सुन कर माधवसिंह कछवाहा और हाड़ा उम्मेदसिंह स्वागत करने जाने के लिए अपने-अपने घोड़ों पर सवार हुए। उस समय दल के नकीबों ने ऊँची आवाज में सम्मुख जाने की सूचना दी। यादव राजा और अपने पुत्र खांडेराव को साथ ले तब मल्हारराव होल्कर भी अगवानी करने हेतु रवाना हुआ। इस तरह चतुरंगिनी सेना के प्रयाण से चारों दिशाओं में अचानक भय व्याप्त हो गया। मोदपूर्वक इन सभी का काफिला जयपुर से चल कर मोतीडूंगरी पहुँचा। जहाँ उन्होंने सिंधिया और उसके दल की अगवानी करते हुए भावभीना स्वागत किया। दोनों ओर के दल के सदस्यों ने परस्पर एक दूजे की कुशलक्षेम पूछी। यहाँ से चल कर जयाजी सिंधिया दल सहित आगे बढा और चाँदपोल के पास आ अपना पड़ाव डाला। यहाँ जयाजी सिंधिया ने अपने मित्र मल्हारराव से जयपुर से प्राप्त दण्डराशि के बटँवारे हेतु मंत्रणा की।

तबही मलार पचीस लक्ख लये ति दोउन बंटये।
श्रियमंत के पुनि पंचसप्तति लक्ख दक्खिन प्रेरये।।
अरु जैपुरेस दुहून सौं महिमानि जिम्मन की कहि।
सुनिये महीपति राम जो इक हाँ चही इक नाँ चही॥२९॥

तब मल्हारराव होल्कर ने इस दण्ड की राशि में से जो पच्चीस लाख रुपये स्वयं के हिस्से के लिये थे। इस राशि को उसने सिंधिया के साथ आधा-आधा बाँट लिया शेष पचहत्तर लाख रुपये का धन उन्होंने श्रीमंत के पास दक्षिण में (पूना) भिजवाया। इस समय जयपुर के नये स्वामी माधवसिंह कछवाहा ने सिंधिया और होल्कर दोनों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। हे राजा रामसिंह! अब सुनिये कि इनमें से एक ने हाँ कही वही दूसरे ने नहीं कहा।

दोहा

हुलकर बत्त सु अद्दरिय, पै संध्या किय नाँहिं।
बुल्ल्यो जैपुर देत बिख, मिठ्ठी कहि खिन माँहिं॥३०॥

देखि रीत बुंदीस की, आरंभत तुम एह।
पै हड्डे अकपट प्रथित, गाढ कुहक यह गेह॥३१॥

इन दोनों में से मल्हारराव होल्कर ने तो कछवाहा का न्योता स्वीकार कर लिया पर सिंधिया जयाजी ने इस मनुहार को यह कह कर ठुकरा दिया कि जयपुर में तो मीठी-मीठी बात कर जहर देने (पिलाने) का रिवाज है। जयपुर वाले भी बूंदी में प्रचलित रिवाजों का अनुसरण करने लगे हैं पर बूंदी वाले तो निष्कपट मन वाले के रूप में प्रसिद्ध हैं जब कि यह जयपुर का घराना तो बड़ा कपटी है।

षट्पात्

सोदर कहँ जयसिंह अग्ग हालाहल अप्पिय,
मारे पुत्र रु मात तदपि पप्पिय नन तप्पिय।
मान हनिय मारूफ जलधि बिस्वास निमज्जत,
ढुंढाहर के ढोल बिदित याही गति बज्जत।
तातैं न हमहि निश्चय तुलत स्वागत हम मन्यौं सकल।
कछु बित्त तुरग पुनि भेट करि कुंच करवहु छोरि छल॥३२॥

जयाजीराव सिंधिया ने कहा कि पूर्व में कछवाहा राजा जयसिंह ने अपने सगे भाई विजयसिंह को जहर दिया। इस राजा ने अपने पुत्र और माँ को मारा, तब भी यह पापी तृप्त नहीं हुआ। यही नहीं इससे भी पूर्व राजा मानसिंह ने विश्वास रूपी समुद्र में डूबते हुए कई प्रसिद्ध व्यक्तियों को मारा। सिंधिया ने कहा कि ढूँढाड़ के ढोल इसी तरह बजते हैं अर्थात् उनका कोई सही अर्थ नहीं निकाला जा सकता। यही कारण है कि हम ने आप लोगों द्वारा किये गये स्वागत को स्वीकार किया। अब आप लोग छल-कपट छोड़ कर थोड़ा वित्त और घोड़े भेंट कर तुरन्त यहाँ से हमारा कूच करवायें।

तदनेनंतर मरहट्ट द्रंग अंतर दूजे दिन,
क्रय बिक्रय कछु करन बहुत प्रबिसे संका बिन।
तिनकी बंधन तोरी इक्क बड़वा पुर आई,
सो सेखाउत सठन छन्न गृह बंधि छपाई।
लखि तहि खुल्लि लावन लगे उन तब झारिय खग्ग असर।
यह हक्क मचिग पत्तन अखिल अरु द्वारन लगे अरर॥३३॥

इसके बाद दूसरे दिन मराठा सेना के कुछ लोग जयपुर नगर में सामान का क्रय-विक्रय करने निशंक हो कर गये। उसी बीच मराठा शिविर में बंधी हुई एक घोड़ी बंधन तुड़ा कर भाग छूटी और वह जयपुर नगर की ओर भागी। नगर में कुछ मूर्ख शेखावतों ने चुपके से उस घोड़ी को पकड़ कर अपने घर में बांध लिया अर्थात् उसे अपने घर में छिपा लिया। पर मराठों ने उसे देख लिया अर्थात् ढूँढ निकाला और वे अपनी घोड़ी को खूँटे से खोलकर लाने लगे उस समय शेखावतों ने अपने हाथ खोल दिये अर्थात् तलवारें चलाई। इस हादसे को सुनते ही सारे नगर में यह खबर फैल गई और तुरन्त ही नगर के सारे प्रवेशद्वारों के दरवाजे बन्द करवा दिये गये।

सुनत सोर गहि सजव लोक पत्थर असि लट्ठन,
पुर के मिलि मिलि प्रचुर लगे मारन मरहट्ठन।
हे जन च्यारि हजारि च्यारि तिनके बिभाग करि,
अंस तीन असुहीन भये लव इक्क घाय भरि।
बाहिर गये ति पुरजन बहुत भजत हनें दक्खिन भटन।
बुंदीस कटक आय रु बजे करि कितेक अतिजव अटन॥३४॥

घटना स्थल पर मचे शोर को सुनकर नगरवासी सभी पत्थर और लाठियाँ लेकर आ इकटठे् हुए और उन्होंने मराठों को जहाँ देखो वहीं मारो की प्रक्रिया अपनाई। इस समय नगर में चार हजार मराठे आए हुए थे उनके हिस्से किए गए अर्थात् इनमें से तीन हिस्से के लोग मारे गये और एक हिस्से के लोग घायल हुए, इस तरह उन्होंने मराठों को मारा। इसी समय बूंदी के राजा उम्मेदसिंह की सेना ने भाग कर अपनी जान बचाई।

दोहा

आनत बामी अप्पनी, दक्खिन लोक अदोस।
अपराधी जैपुर जनन, रच्यो अलीक हि रोस॥३५॥

मनुज समर्थन के मरत, तक्क्यो माधव त्रास।
भावी निज चिंतत भयो, संतत डारि निसास॥३६॥

हुलकरराज समीप हो, कुम्म सचिव इहिँ काल।
प्रान बचन पायन पर्‌यो, बनिक सु कन्ह बिहाल॥३७॥

देखि ताहि हुलकर सदय, बुंदिय सचिव बुलाय।
अक्खी संभर पास इहिं, धरहु जिवावन ज़ाय॥३८॥

अपनी घोड़ी को खोल कर लाने में दक्षिण वाले मराठे निर्दोष थे बल्कि जयपुर वाले अपराधी थे और उन्होंने झूठा क्रोध रचा। माधवसिंह कछवाहा ने जब अपने भविष्य की चिंता करते हुए यह देखा कि उसके समर्थन करने वाले मर रहे हैं तब उसने निरंतर निःश्वास डाले। इस समय कछवाहा राजा का सचिव जो मल्हारराव होल्कर के नजदीक था वह कान्ह नामक बनिया अपने प्राण बचाने को मराठों के चरणों में गिर पड़ा। इसे इस दशा में देखकर होल्कर ने बूंदी के सचिव को वहाँ बुलवाया और कहा कि इसे अपने स्वामी राजा के पास ले जाओ और इसे जीवित रखने का उपाय करो।

दक्खिन जन नहिंतो दुमन, अब आपस इच्छै न।
ढुंढत जन ढुंढारके, हनत फिरत रुकिहै न॥३९॥

मयाराम कायत्थ तब, दयाराम द्विजराज।
पत्ते लै बुंदीस प्रति, कन्ह जिवावन काज॥४०॥

संध्या कुप्पित एह सुनि, बिरचन जैपुर बाध।
बहु माधव थप्पिय बिनय, अप्पिय तब अपराध॥४१॥

प्रचुर बित्त लिय दंड पुनि, अरु पठई कहि एह।
यँहँ भेजहु घायल अखिल, दाह करहु मृत देह॥४२॥

क्योंकि अब हमारे दल के लोग हमारी आज्ञा की प्रतीक्षा नही कर रहे हैं वे तो ढूंढाड़ के आदमियों को मारने के लिए ढूंढते फिर रहे हैं। होल्कर से ऐसा सुन कर मयाराम कायस्थ और दयाराम ब्राह्मण दोनों हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पास गये जिससे कान्हा के प्राण बच जाएँ। उधर अपने आदमियों के मारे जाने के बारे में सुनकर जयाजी सिंधिया अत्यधिक कुपित हुआ और उसने जयपुर का नाश करने की सोची। तब माधवसिंह कछवाहा ने बहुत अनुनय - विनय किया और कहा कि आप इसे मेरा अपराध मान कर दण्ड कर दीजिये। यह सुन कर सिंधिया से प्रचुर मात्रा में दण्डस्वरूप धन लिया और यह कहला भेजा कि मेरे घायलों को तुरन्त यहाँ भेजा जाये और मृतकों की दाह क्रिया की व्यवस्था हो।

जन हजार घायल जबहि, दल पठाय सब दिन्न।
तिन्न सहँस कुणपन त्वरित, कर्म उचित बिधि किन्न ॥४३॥

गढ के गोलंदाज इक, दिन्नी तोप दगाय।
निज रुचिसों कि निदस सों, जानी सो नहिँ जाय ॥४४॥

फुरत बन्हि पर फोज मैं, लग्ग्यो गोलक लोल।
बहुरि तास बिग्रह बढ्यो, कूरम चुक्क्यो कोल ॥४५॥

कुंच तबहि दुव सेन करि, संध्या हुलकर सत्य।
भंकरोर जाय रु भये, संगर रचन समत्थ ॥४६॥

सिंधिया की आज्ञानुसार एक हजार घायल मराठा सेना के सैन्य शिविर में भिजवाये गये और तीन हजार मृतकों की तुरन्त पूरे विधि -विधान के साथ अन्त्येष्टि की गई। इस समय जयपुर के दुर्ग से एक गोलंदाज ने तोप चला दी साफ-साफ यह नहीं कहा जा सकता कि यह तोप उसने किसी के आदेश से चलाई या उस स्वयं से भूलवश चल गई। इसका प्रज्वलित गोला सीधा मराठा सेना के शिविर में आ पड़ा और इससे शिविर मे आग लग गई इससे दोनों पक्षों में फिर से तनातनी बढ़ गई। कछवाहा माधवसिंह वाला पक्ष शांति रखने का वादा नहीं निभा पाया इसलिए फिर झड़पें हुई पर यह अच्छा रहा कि इसी समय मल्हारराव होल्कर और सिंधिया जयाजी के दोनों दलों ने यहाँ से कूच किया पर इस सम्मिलित जंगी मराठा सेना ने भाकरोड़ (भाकरोटा) पहुँच कर मोर्चा लेने की सोची।

छुज्जि तबहि जयनैर धव, संध्या हुलकर पास।
गोलंदाजहिँ लै गयो, आतुर नम्र उदास ॥४७॥

बुल्ल्यो इहिँ किय हुकम बिनु, है मम दोस यहैं न।
दोऊ तुम सागस दमन, नमन कियँ हित नैन ॥४८॥

बिनय पिक्खि दोउन बहुरि, दुव लक्ख हि लिय दम्म।
आगस किन्नों माफ वह, करिय कुंच जय कम्म ॥४९॥

आयो तब करि सिक्ख इत, निजपुर संभर नाह।
टौंका जैपुर मुक्कलिय, रक्खि सनातन राह ॥५०॥

यह सुनकर जयपुर का स्वामी माधवसिंह कछवाहा भय से कांपता

हुआ सिंधिया और होल्कर के समक्ष आ उपस्थित हुआ। इस समय वह अपने साथ उस गोलंदाज कों भी पकड़ कर ले गया था। कछवाहा ने जाते ही कहा इस तोप दागे जाने वाली घटना में मेरा कोई अपराध नहीं यह तो इस गोंलंदाज ने बिना ही किसी के हुक्म के गलती से तोप चला दी। आप दोनों तो अपने अपराधी को दण्ड देने में विख्यात हैं ! इतना कहकर कछवाहा माधवसिंह ने हित के नेत्रों से नमस्कार किया। मल्हारराव और जयाजीराव दोनों ने राजा की विनम्रता देखते हुए उसका अपराध क्षमा किया और दो लाख रुपयों का दण्ड किया। इसे वसूल कर मराठा सेना ने वहाँ से आगे विजय पाने के अर्थ प्रयाण किया। यहाँ से हाड़ा राजा उम्मेदसिंह भी विदाज्ञा लेकर अपने नगर बूंदी में आया और उसने परम्परा का निर्वाह करते हुए बूंदी की और से टीका की सामग्री जयपुर भिजवाई।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मे दसिंह-चरित्रेबुन्दीशकूर्म्मशुद्धान्तत्रासध्वंसनकोटि द्रम्म कूर्म्मदण्डदापनरामपुरेश माधवसिंहपत्नीरठ्ठोड़िदोहदलक्षणसीमन्तो त्सवकरणप्राप्तमल्लारपत्रत ज्जयपुरास्सगमनराज्यप्रापणास्नन्तरसन्ध्याजयास्सगमन कूम्मगृह भोजनानङ्गी करणबड़वानिमित्त बहुलमहाराष्ट्रजनमरणातत्क्रुद्धहुलकर सन्ध्या पुनर्द्दण्डनयनकूर्म्मनिजनालीयन्त्रप्रेरकतन्निवेदन पुनर्नीतलक्षद्वयद्रम्म-दक्षिणसैन्यप्रस्थान रावराड्बुन्द्यास्सगमन तिलकोपहारजयपुरप्रेषण-मेकोनचत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२०॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में बून्दी के पति का कछवाहा के जनाने के त्रास को मिटाना और कछवाहे का दण्ड के करोड़ रुपये देना, रामपुरा के पति माधवसिंह की स्त्री (राठौड़ी) का गर्भ के आठ मास का उत्सव करना, मल्हार का पत्र पाकर उस माधवसिंह का जयपुर आना, और राज्य पाये बाद जया नामक सिंधिया का आना, कछवाहा के घर में भोजन करने को अस्वीकार करना और घोड़ी के कारण बहुत से मराठों का मरना, उस क्रोध से होल्कर और सिंधिया का फिर दण्ड लेना, कछवाहे का अपनी तोप को चलाने वाले को नजर करना, फिर दो लाख रुपये लेकर दक्षिण की सेना का गमन और रावराजा का बून्दी आकर टीका की सामग्री जयपुर भेजने का उनचालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पादाकुलकम्

इत मनसूरअली अभिधानक, अहमदसाह बजीर अचानक॥
पठयो कटक रचन घमसानन, हनन फुरक्काबाद पठानन॥ १॥

नवलराय कायथ सेनानी, तिँहिँ द्रुत जाय रारि तब तानी॥।
बंगस खानमुहुम्मद बीबी, गर्जैं उतहु धरैं न गरीबी॥ २॥

अबलापन नहिँ नैंक उधारैं, राज्य फुरक्काबाद सम्हारैं॥
नवलराय तिँहिँ सन किन्नों रन, नारि सवल बस तदपि भई नन ॥३॥

कायथ तब करि सपथ संधि किय, दै बिसास दल तास लुट्टि लिय॥
बीबी तिहिँ दुव मास टारि बलि, किन्नों आनि बजीर हिंतु कलि ॥४॥

हे राजा रामसिंह ! उधर दिल्ली के बादशाह अहमदशाह के वजीर मन्सूरअली ने शाही सेना को सज्जित कर फरुक्काबाद के पठानों का संहार कर उन्हें विजित करने भेजा। इस घमासान युद्ध के लिए उसने नवलराय कायस्थ को सेनापति बनाया जिसने दल के साथ शीघ्र वहाँ पहुँच कर युद्ध आरम्भ किया पर वहाँ की शासक बंगस खानमुहम्मद बीबी ने मन की हीनता नहीं दिखाई। उसने अबला होते हुए भी अपना अबलापन (बलहीनता अथवा कमजोर बल) प्रदर्शित नहीं किया। वह अपने फरुक्काबाद के राज की रक्षा करती रही। कायस्थ नवलराय ने जा कर उससे युद्ध किया पर व्यर्थ, वह सबल स्त्री उनके वश में नहीं आई। अर्थात् उसकी सेना ने शाही सेना का डट कर मुकाबला किया। अपनी दाल न गलते देख नवलराय ने शपथपूर्वक बीबी से संधि कर ली पर विश्वास दिला कर उसने बीबी की सेना को लूट लिया। बीबी ने भी दो माह का समय चुपचाप बिताया फिर अपनी सेना को साथ ले कर उसने शाही वजीर से आ कर लोहा लिया।

नवलराय कायत्थ हन्यौं तब, सहँस पचास कटक लुट्ट्यो सब॥
लखि यह भीरु बजीर पलायो, अति आतुर दिल्लिय पर आयो ॥५॥

कछु रुप्पय तिहिँ दैन कहाये, बलि सहाय मरहट्ठ बुलाये॥
राजा जुगलकिसोर भट्ट जन, बहुरि दिवान रामनारायन॥६॥

ए दुव लैन दक्खिननि आये, सन्ध्या हुलकर संग सिधाये॥
भूति अवेरि जानि बीबी भय, प्रविसी जाय कमाऊ पब्बय॥७॥

लहि बजीर सन खरचज एहु तब, बीबी बिंटन उतहि गये सब ॥
रामसिंह इत धन्वधरापति, इकदिन कहिय लेन सिर आपति ॥ ८ ॥

बीबी की सेना ने आक्रमण कर कायस्थ नवलराय को मार गिराया और पचास हजार की संख्या वाली शाही सेना को लूट लिया। यह देख कर शाही वजीर मन्सूरअली कायर की तरह वहाँ से भाग निकला और शीघ्र ही वह दिल्ली लौटा। यहाँ आ कर उसने रुपये देने का इकरार कर मराठों को सहायता के लिए बुलाने की सोची। उसने राजा जुगलकिशोर और दीवान रामनारायण दोनों सामन्तों कों दक्षिण में भिजवाया। वे यहाँ आ कर अपने साथ सिंधिया और होल्कर को दल बल सहित ले गये। इस बात की खबर जब फरुक्काबाद पहुँची तो बीबी अपना ऐश्वर्य एकत्रित कर (सारा धन माल ले कर) भय की मारी कुमायुं की पहाड़ियों में जा छिपी। तब होल्कर और सिंधिया दिल्ली के शाही वजीर से फौजकसी के रुपये लेकर कुमायुं गये ताकि वे वहाँ बीबी को घेर सकें। इधर मारवाड़ के राजा रामसिंह ने अपने सिर एक दिन आपदा को आमंत्रित करते हुए यह कह दिया।

भट रट्ठोर सभा जब आवत, तिनके लोचन मोहि डरावत ॥
लगत बुरे मोकौं सठ सारे, कैसी बिधि अब जाय निकारे ॥ ९ ॥

ढड्ढी अमिय कह्यो बनि सक्खी, तुमरे जनक यहै इन्ह अक्खी ॥
चंपाउत कुसलेस कहयो तब, यह सुत अधम भयो तोहू अब ॥१० ॥

जब डेरनं परवाय हमारे, दुदुकारहिं तब कढहिं निकारे ॥
सुहि इनको करि बेग बिडारहु, व्है बिलंब तो इन करि हारहु ॥११ ॥

अनुग पठाय अनय सुहि धार्‌यो, डेरन पारि कुसल दुदुकार्‌यो ॥
अर चढि तब नागोर गयो यह, मन्यौं सुनि बखतेस महामह ॥१२ ॥

जोधपुर के राठौड़ राजा ने यह कहा कि मेरे अधिनस्थ राठौड़ सामंत जब राजसभा में आते हैं तो वे अपनी रक्तिम आँखों से (क्रोध पूर्वक) मुझे डराने का उपक्रम करते हैं। मुझे ये सारे दुष्ट सामन्त अच्छे नहीं लगते बल्कि मेरी नजर में खटकते हैं इसलिए इनसे निजात पाने के लिए इन्हें कैसे निकाला जाये। उस दिन राजा के ढाढी ने कहा कि मैं साक्षी हूँ कि आपके पिता ने इन्हें ऐसा करने को कहा था, इनसे पूछिये ? यह सुन कर मारवाड़ के सामंत

आऊवा के चांपावत कुशलसिंह ने कहा कि हमें यह पता है कि हमारे पूर्व स्वामी का यह पुत्र कुपुत्र हो गया है तब भी हम अपनी स्वामिभक्ति के बंधन में बंधे हैं। जब तक यह राजा हमारे शिविर ध्वस्त कर हमें दुत्कार कर यहाँ से निकाल न दे तब तक हम यहीं बने रहेंगे। ऐसा सुन कर राजा ने मन में सोचा कि अतिशीघ्र ही यह भी करना होगा अन्यथा विलंब का अर्थ होगा कि मैं हार गया। ऐसा सोच, अनीति धारण कर राजा रामसिंह ने अपने नोकरों को भेज कर उसका शिविर ध्वस्त करवा दिया और दुत्कार के साथ कुशलसिंह को वहाँ से बेआबरू कर निकलवाया। चांपावत कुशलसिंह इस अपमान के बाद अविलम्ब जोधपुर से सीधा नागौर पहुँचा जहाँ राठौड़ बखतसिंह ने उसका उत्सावपूर्वक सम्मान के साथ स्वागत किया।

सम्मुह पठ्यो बिजयसिंह सुत, जिहिं लिय कुसल बधाय बिनय जुत ॥
कथन यहै बखतेस कहायो, आये तुम सु जोधपुर आयो ॥१३ ॥

बढ़्यो तबहि दोहू दिस बिग्रह, चाहैं करन परस्पर निग्रह ॥
रामसिंह सन सबहि रिसाये, इतर भटहु निज निज घर आये ॥१४ ॥

इक बदल्यो न सेर दूदाउत, रह्यो अनादरहू सहि राउत ॥
सेना बहुरि उभय दिस सज्जिय, बंब पणव आनक रन बज्जिय ॥१५ ॥

चलत बेर मृत सेर तुंरगम, किय सब अरज दैन हय नृप सम ॥
बुल्ल्यो मरूप उचित तुमरे हय, हेरहु रजक कुलालन आलय ॥१६ ॥

बखतसिंह ने अपने पुत्र विजयसिंह को कुशालसिंह की अगवानी करने भेजा जिसने चांपावत के समक्ष जा कर भावभीना स्वागत किया। इस समय बखतसिंह ने अपने पुत्र से यह कहने का कहा था कि हे कुशालसिंह! आपका मेरे घर आना ऐसा है मानो जोधपुर मेरे घर आया हो अर्थात जोधपुर मेरे अधिकार में आ गया हो। इसके बाद जोधपुर राजा का अपने सामन्तों से बहुत वैमनस्य बढा। दोनों पक्ष एक दूजे को बंदी बनाने पर उतारू हो गये। स्थिति ऐसी बनी कि सभी सामन्त राजा रामसिंह से नाराज हो विमुख हो गये और अन्य सामन्त भी राजा की चाकरी छोड़ अपने-अपने घर चले गये। मात्र एक दूदावत शेरसिंह अपने स्वामी से विमुख नहीं हुआ। अनादर सह कर भी उसने स्वामिभक्ति नहीं छोडी। जोधपुर और नागौर दोनों ओर सेनाएं सज्जित होने

लगीं और युद्ध के नगारे, मर्दल और ढोल बजने लगे। मारवाड़ की सेना के प्रयाण करते समय शेरसिंह का घोड़ा मर गया जब सभी ने अपने स्वामी राठौड़ राजा से एक घोड़ा देने का कहा इस पर राजा रामसिंह ने कहा कि इसके उपयुक्त सवारी या तो धोबी के घर मिलेगी यदि नहीं तो कुम्हार के घर अर्थात् इसके योग्य सवारी गधा मेरे पास नहीं है।

भीखम धुर धोरी अँचत भर, सेर सुपै सहि भो अग्रेसर॥
जान्यौं नृप मतिमंद न जानैं, पै हम स्वामिधर्म पहिचानैं॥१७॥

चले उभय पुनि कटक खेत चढि, पटके बाजि भटन हरि हरि पढि॥
हल्लिय आलुक भोग हजारा, धुज्जिय पहुमि तुरंगम धारा॥१८॥

दसन लगे तुट्टन दिगदंतिन, तुमुल राग सिंधुव हुव तंतिन॥
कंकट फटत बाढ करवालन, मुंडन खोजि रचत हर मालन॥१९॥

रुंड नचत कति रविहिं रिझावत, आयुध तजि बत्थन कतिआवत॥
कतिकन फट्टुत हृदय कलेजे, भिदत मत्थ कढ्ढुत कहुँ भेजे॥२०॥

भीष्म की तरह अपनी राजधानी से प्रतिबद्ध वह वीर दूदावत शेरसिंह ऐसे अनादर को सहन कर भी सेना में अग्रणी हुआ। उसने मन मे सोचा कि यह मतिमंद राजा तो नहीं समझता पर मैं तो अपने स्वामिधर्म को जानता हूँ। मैं कैसे इस कठिन समय में राजा से विमुख हो सकता हूँ। इस तरह दल- बल के साथ अपने स्वामी के साथ वह शेरसिंह बढ़ा और अपने साथी योद्धाओं सहित उसने भगवान का स्मरण कर घोड़े रणभूमि की ओर बढ़ाये। सेना के इस प्रयाण से शेषनाग के हजार फण काँप उठे और घोडों की दौड़ से भूमि थरथराई। सभी दिशाओं के दिग्गजों के दाँत दरकने लगे। तंतु वाद्यों पर सिंधु राग गूंजने लगी। तलवारों के प्रहारों से कवच फटने लगे और महादेव अपनी मुंडमाला के लिए नरमुण्ड तलाशने लगे। कई कबंध हुए वीर अपनी धड़ों से नृत्य कर सूर्यदेव को रिझाने लगे वहीं कई अपने आयुधों का त्याग कर मल्लयुद्ध रचाने लगे। कई वीरों के हृदय और कलेजे फटने लगे। वहीं कई योद्धाओं का माथा कटने से उनका भेजा बाहर झांकने लगा।

अंखि तिरत सोनित कहुँ अच्छी, मनहु श्रोन बिच रोहित मच्छी॥
सायक कहुँ लगि नाभि सुहावत, पिहुल लट्ठि कलुव छबि पावत॥२१॥

एडी कटि कटि कहुँक उछट्टत, फाँक नागरंगक जनु फट्टत॥
ओठ कहुँक कटि कटि भुव आवैं, बिंब मनहुँ असि घन बरसावें ॥२२॥
कहुँक दंत गिरि रोचि प्रकासैं, भूमि मनहु हीरन गन भासैं॥
नयन गडी कहुँ मुच्छ निहारैं, मीन बदन बनसी छबि मारैं॥२३॥
इत कहुँ रीढक भिन्न उलत, कदली छदन दंड जनु कट्टत॥
कहुँक झरत करतैं करभन कुल, महिला जनन ऊरु जनु मंजुल॥२४॥

रणभूमि में कई वीरों के नेत्र इस तरह रुधिर में तैरने लगे मानो जल के प्रवाह में लाल रंग की मछलियाँ तैर रही हों। कहीं वीरों की नाभि में घुसे हुए तीर तेल के कोल्हू में खड़ी बडी लाठ की तरह शोभा देने लगे। कहीं पर वीरों की ऐड़ियाँ कट कर यों उछलती हैं मानों नारंगी की फटती फांकें हों। कहीं पर योद्धाओं के कटे होंठ रणभूमि में यों गिरते हैं मानों तलवार रूपी मेघ मूंगे बरसा रहे हों। कहीं पर कट कर पर गिरे हुए दाँत यो नजर आते हैं मानों भूमि पर हीरे पड़े हों। कही किसी योद्धा की आँख गड़ी मूंछ यों लग रही है जैसे किसी मछली के मुँह में काँटा फंसा हुआ हो। कई वीर शत्रु की तलवार के प्रहार से रीढ की हड्डी कट जाने पर यों उछलते हैं मानों केले के तने पर से पत्ते कट कर गिरते हों। कहीं पर हथेलियों के गुद्दे कट कर पड़े यों लगते हैं जैसे स्त्रियों के सुन्दर जंघा प्रदेश हों।

लोला कहुँक पुरीतति लोहित, सलिल अरुन अलगर्द कि सोहित॥
अवनि लसैं धमनीगन ऐसे, कुवलय नाल घनात्यय कैसे॥२५॥
अंखि कतिक भुव लसत गिरी इम, रुचिर कोकनद की पंखुरी जिम॥
बिच ताराचल असित बिराजत, लखत मरंद मत्त अलि लाजत॥२६॥
भुव कहुँ क्लोम कलेजा भासत, पाउस जनु छत्राक प्रकासत॥
लोटत सिर ककुं छत्र बिलाये, ढबतन जनु नारेल ढुराये॥२७॥
उरझी कहुँकसिखा कटि ऐसैं, जालअसित रेसम भव जैसैं॥
भिरि कहूँ टोप बजत असि भारी, झल्लरि हरिमंदिर जनु झारी॥२८॥

रणभूमि में कहीं पर रुधिर में चपल आँते पड़ी हैं और वे ऐसे लग रही हैं मानों रक्तिम वर्ण के पानी के जलसर्प हों। भूमि पर पड़ी वीरों की कटी हुई धमनियाँ ऐसी शोभा दे रहीं है मानों शरद ऋतु में खिलने वाले निलोफर

कमलों की डंडियाँ (नालियाँ) हों। वीरों के कटे हुए जमीन पर बिखरे नेत्र सुन्दर कमल की पंखुड़ियों की शोभा देने वाले हैं पर इन नेत्रों की जो श्याम रंग की चपल पुतलियाँ हैं उन्हें देखकर पुष्प रस से मस्त भँवरे लज्जित होते हैं। रणभूमि में पड़े हुए वीरो के कलेजे और तिल्लियाँ ऐसे लग रहे हैं जैसे वर्षा ऋतु में उगे हुए कुकुरमुत्ता हों। कहीं पर छत्रों के नष्ट हो जाने पर कटे हुए मस्तक यों लुढ़कते हैं मानों लुढ़काए हुए नारियल लुढ़क रहें हों। कहीं पर वीरों की कट कर उलझी शिखाएँ (चोटियां) यों लगती हैं मानों वह कोई काले रंग के रेशम की जाली हो। कहीं पर योद्धा के शिरस्त्राण पर पड़ी तलवार यों झनझना रही है जैसे किसी हरिमन्दिर में पूजा के समय झालर बजती हो।

संचर छुरिका धसत सुहानी, पिचकारिन छुटत जनु पानी॥
लोहित फलक तिरत कहुँ डोलत, कमठ बिसेस कि सलिल किलोलत॥२९॥

पार निकसि पट्टिस छबि पावत, दड्ढ मनुहुँ जम लपन दिखावत॥
सर पूरन कहुँ गिरत सराश्रय, उडत कि पिच्छ छोरि सिखि आश्रय॥३०॥

खग्ग कहुँक हड्डुन खटकावैं, बढई तरु कि कुठार बजावैं॥
दंसन अटकत तेग दुधारी, कट्टैं बन जनु कूर कबारी॥३१॥

कहुँक देत सिरसौं सिर टक्कर, दुव उद्धत जनु भिरत पृथूदर॥
कहुँ गुटिका गन धसत कपालन, जनु सिरघा प्रबिसत्त मधुजालन॥३२॥

किसी वीर के शरीर में धँसती हुई छुरी से निकलता लहू यों लगता है जैसे किसी पिचकारी से पानी निकल रहा हो। रणभूमि में बहते रुधिर में तैरती हुई ढालें यों नजर आती हैं मानों जल में कछुए क्रीडा कर रहे हों। किसी शत्रु के शरीर से पार हुई कटारी ऐसी लगती है मानों यमराज अपना मुँह फाड़ कर दाढ़ दिखा रहा हो। तीरों से भरे हुए तरकश गिरे हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानों मयूर अपने ठिकाने पर पँख छोड़ कर उड़ गया हो। युद्ध के समय एक दूजे पर तलवार के प्रहार सामने वाले की हड्डियों से लग कर ऐसी ध्वनि करने लगे जैसे पेड़ को काटते हुए बढई के कुठार बज रहे हों। शत्रुओं के कवचों पर योद्धाओं के खड़ग यों टकराने लगे मानों कोई मूर्ख कबाड़ी (घर के छादन की काष्ट बेचनें वाले) अंधाधुंध वन काटने लगा हो। कहीं पर वीर अपने सिर की टक्कर शत्रु के सिर पर इस तरह दे रहे हैं मानों दो मेढे भिड़ रहे हों। कहीं पर

बन्दूक से चली गोलियाँ शत्रुओं के कपालों में यों घुसने लगी मानों मधुमक्खियाँ अपने छत्ते में प्रवेश करती हों।

दमकत इलि तनुत्र बिदारैं, मृगपति बाल कला छबि मारैं॥
तोमर धसत कुंजरन तिक्खे, सैलन बेध बेणु जनु सिक्खे॥३३॥

जुट्टे इम नागोर जोधपुर, धोरी कुसल सेर अँचत धुर॥
खोजन चंपाउतहिँ खिजायो, अरिदल मध्य सेर धसि आयो॥३४॥

इक जंबूर लग्यो याके उर, फारि कढ्यो सु दुसह रीढक फुर॥
इहिँ छत मोह लहत दूदाउत, आयउ कढि उततैं चंपाउत॥३५॥

सुज्जमल्ल तब सेर सहोदर, बुल्ल्यो कुसलहु आत भ्रात बर॥
सावधान हुव सेर यहै सुनि, पकरि खग्ग सम्मुह हंक्यो पुनि॥३६॥

रणभूमि में किसी वीर की तलवार अपने शत्रु का कवच काटती हुई यों चमकती है मानों दूज का चन्द्रमा शोभा दे रहा हो। हाथियों की बड़ी-बड़ी काया में वीरों के तीखे भाले यों घुसते हैं मानों बांस के गुच्छ पहाड़ का भेदना सीख रहे हों। इस तरह जोधपुर और नागौर के योद्धा आपस में भिड़े और इनमें भी वह कुशालसिंह और शेरसिंह दूदावत तो उस बैल की तरह थे जिसके कंधों पर अपनी गाड़ी खींचने का भार होता है। इसी समय शेरसिंह कुपित हो चांपावत कुशालसिंह को ढूंढने शत्रु सेना को चीरता हुआ आगे बढ़ा। यहाँ उसकी छाती में असहनीय जंबूर का एक गोला आ लगा जो उसकी ढाल और पीठ को फाड़ता हुआ पार निकल गया। अपने को लगे बड़े इस घाव से शेरसिंह मूर्छित हो गया तभी उधर से कुशालसिंह चांपावत यहाँ आ निकला। इस समय शेरसिंह के छोटे भाई सूर्यमल्ल ने पुकार कर कहा हे अग्रज! देखो कुशालसिंह आ रहा है। यह सुनते ही वह वीर शेरसिंह सावचेत हो कर खड़ा हो गया और अपनी तलवार उठा कर चांपावत का सामना करने बढ़ा।

दुहुँन धीरता मिलत दिखाई, नागफेन मनुहारि बनाई॥
तदनु सेर बुल्ल्यो रन तंडत, मुच्छ कचन उद्धत कर मंडत॥३७॥

अब इत आवहु कुसल अखारैं, जहर जरैं न तुमहिँ वह जारैं॥
बीज दुसह अग्गैं तुम बाये, अब चक्खहु तिनकैं फल आये॥३८॥

झपटि सेर इम कहि असि झारिय, फारि टोप मस्तक सब फारिय॥
छोहित कुसल संगि इत छुट्टिय, फबत सेर छत्तिय लगि फुट्टिय॥३९॥

बेर दुहुँन तिहिँ बेर बिहाये, पुण्यलोक इच्छित तिन पाये॥
सुभट मरे दुहुँ ओर पंचसत, घायल परे अठ्ठसत घुम्मत॥४०॥

दोनों वीरों ने मिलते ही एक दूसरे को अफीम की मनुहार की, फिर शेरसिंह दूदावत रणभूमि में गर्जना कर अपनी मूँछों को ताव देता हुआ बोला कि हे कुशालसिंह! अब मेरा सामना करने को इधर अखाड़े आ! मेरा जहर तभी उतरेगा जब वह तुम्हें उतार लेगा अर्थात् तुम्हें मारने पर ही मुझे चैन आएगा। मेरी असह्य तलवार के सामने तुम अब आए हो तो इसका फल भी चखो, इतना कह कर उस पर झपटते हुए शेरसिंह ने अपनी तलवार का एक भरपूर प्रहार किया जिससे कुशालसिंह का शिरस्त्राण कट कर मस्तक फट गया और प्रत्युत्तर में इसी समय कुशालसिंह के हाथ की बरछी चली जो सीधी शेरसिंह की छाती चीर गई। दोनों के प्रहारों के फलस्वरूप दोनों ने एक साथ अपने शरीर छोड़े और दोनों अपने इच्छित लोक अर्थात् स्वर्गलोक को गये। इस भिड़ंत में दोनों पक्षों के पाँच सौ योद्धा मारे गये और आठ सौ घायल होकर रणभूमि में गिरे।

सेर कहिय अग्गैं मरुपति सन, प्रबिस्यो त्रिदिव निबाहि वहै पन॥
कलि इम बखतसिंह जय किन्नौं, लगि हठ आनि जोधपुर लिन्नौं॥४१॥

बैठि तखत जय पटह बजाये, साज बहुरि रनकाज सजाये॥
हुव यह रन नव नभ धृति हायन, पाप राम किय हारि पलायन॥४२॥

जिहिँ ढिग इक्क पुरोहित जग्गुव हठी द्वितीय खीमसरैं पति हुव॥
मरहट्ठन सज्ज नृपहिँ मिलावन, अब किय दुहुँन कमाऊ आवन॥४३॥

जया मलार गये सम्मुह जब, आन्यौं सिविर रामसिंहहिँ अब॥
संध्याकौं तँहँ कुमति सुहाई, मूढ मरुप सन किय मित्राई॥४४॥

पूर्व में दूदावत शेरसिंह ने जो अपने मारवाड़ के स्वामी से कहा था उसी के अनुरूप अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए वह स्वर्ग गया। इस युद्ध में नागौर के बखतसिंह को विजय मिली और तब उसने हठपूर्वक आ कर जोधपुर को अपने अधिकार में लिया।उसने राजगद्दी पर बैठ कर विजय के ढोल बजवाये और भविष्य के युद्ध की पूरी तैयारियाँ कीं। यह युद्ध विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ नौ में हुआ जिसमें जोधपुर के राजा रामसिंह राठौड़ ने रणभूमि से पलायन करने का पाप किया। पलायन करते समय राजा के

साथ एक जग्गू नामक पुरोहित और दूसरा खींवसर का जागीरदार था। इन दोनों ने राजा रामसिंह को मराठों से मिलाने की सोची और यही सोच कर वे दोनों उसे ले कर कुमांयु की पहाड़ियों की ओर गये। राठौड़ राजा के आने के समाचार यहाँ जब जयाजी राव सिंधिया और मल्हारराव होल्कर को मिले तो वे दोनों राजा की अगवानी में गये और राजा को अपने शिविर में ले कर आये। यहाँ जयाजीराव सिंधिया को पता नहीं क्या कुमति सूझी कि उसने मारवाड़ के राजा से मित्रता की।

पग्ग पलटि कहि तब सुख पैहैं, द्रुत जब तुमहि जोधपुर दैहैं॥
इत जगतेस रान के आमय, बढ्यो अतीव असाध्य जराबय॥४५॥

कुमर प्रताप हुतो कारा तब, इहिं ग्राहक भट च्यारि मिले अब॥
नाथ रान जगतेस सहोदर, झल्ला राघवदेव पापपर॥४६॥

भारतसिंह रान दल स्वामी, देवगढप जसवंत हरामी॥
बुल्लिय चउ अब मंत्र बिचारहिं, किय अप्पन तब कैद कुमारहिं॥४७॥

कारा मैंहि प्रताप कैहु सुव, राजसिंह अभिधान कुमर हुव॥
आयो रान कोहि अवसान न, पै संसय अपनैंहू प्रानन॥४८॥

इस अवसर पर सिंधिया और मारवाड़ के राजा ने आपस में अपनी पगड़ी बदली तभी सिंधिया ने कहा कि हे राजा! हम जब तुम्हें तुम्हारा जोधपुर वापस करवायेंगे तभी हमें असली सुख मिलेगा! उधर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के शरीर में रोग हुआ जो वृद्धावस्था के कारण असाध्य हो गया। इस समय महाराणा का पुत्र कुमार प्रतापसिंह कारागार में कैद था। पूर्व में इसे पकड़ने वाले महाराणा के चार सामन्त थे। इन चारों में महाराणा का भाई नाथसिंह, परमपापी राघवदेव झाला, महाराणा का सेनापति भारतसिंह और धोखेबाज देवगढ़ का जागीरदार जसवंतसिंह थे। इन चारों ने मिलकर मंत्रणा की कि हमीं लोगों ने कुमार को पकड़कर कैद में डाला था। अब मात्र महाराणा जगतसिंह का अन्त काल नहीं आया है। महाराणा की मृत्यु के बाद हमारे प्राण भी बचेंगे या नहीं इसमें संशय है। उधर कारागार की अवधि में ही कुमार प्रतापसिंह के एक पुत्र जन्मा जिसका नाम राजसिंह रखा गया।

सो नृप होय वैर अनुसरिहै, कुलजुत कदन अप्पनों करिहै॥
वाहि छन्न यातैं बिख अप्पहु, थिर यह नाथ भूप करि थप्पहु॥४९॥

बैर बिचारि यहै च्यारिन बलि, साहिपुरप पंचम लिय सम्मलि ॥
सोचि रान जगतेस यहै सुनि, पठयो हुकम बिचारि नीति पुनि ॥५०॥

जो तुम स्वामिधरम हित जानत, पंच हि भट मम हुकम प्रमानत ॥
जवजुत तो चढि चढि घर जावहु, रहि नहि अत्थ बिरोध रचावहु ॥५१॥

कह्यन तिन पठयो दल यह कहि, चढि चढि घरन गये तब पंच हि ॥
तदनु बसु ख धृति सक बिक्रम कृत, मास जेठ जगतेस रान मृत ॥५२॥

उन चारों ने सोचा कि कुमार प्रतापसिंह महाराणा बनते ही हम से बैर लेगा और संभव है हम सभी का कुल सहित सँहार करवा दे। इसलिए अच्छा यह रहेगा कि हम उसे जहर दे दें और नाथसिंह को महाराणा की गद्दी पर बिठा दें। इस तरह की योजना चारों ने बनाई और इस अपनी योजना में पाँचवा साथी शाहपुरा के स्वामी को भी बना लिया। इस बात की भनक जब महाराणा जगतसिंह को पड़ी तो इस पर विचार कर नीतिपूर्वक यह आदेश दिया कि यदि तुम पाँचों जन स्वामिभक्ति के धर्म को मानने वाले हो और मेरी आज्ञा का पालन करने वाले हो तो शीघ्रातिशीघ्र अपनी-अपनी सवारी पर आरूढ़ हो अपने- अपने घर चले जाओ! यहाँ रह कर विरोध को अधिक बढ़ाने की जरूरत नहीं है! ऐसा कह कर महाराणा ने इन पाँचों को अपने नगर से निकालने हेतु अपनी सेना भेजी। इससे वे पाँचों अपने-अपने ठिकानों पर चले गए। पीछे से विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ-आठ के ज्येष्ठ माह में महाराणा जगतसिंह चल बसा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रे दिल्ली शसचिव प्रेषित ससैन्य सेनानिकायस्थनवलरायफुरक्काबाद पतिबंगसयवन मुहुम्मदखान बीबी युद्धकरण कृत समकायस्थतद्विभव लुण्टनदत्त मास द्वयान्तर बीबी नवलराय मारगाहारितरण विभवयबनेन्द्र सचिवमनसूरअली पलायन दत्तवाहिनीव्ययवसुदिल्लीशहुल कर संध्या स्स्व्हानप्रद्रुत बीबी कमाऊपर्वत प्रविशन दक्षिण सैन्यतद्वेष्टन मरुपति रामसिंह स्वभट चम्पाउत्त कुशालसिंह निष्कासन तन्नागोरेश बखतसिंह सम्मिलनभ्रातृज पितृव्यक महारण भवन। सोढस्वामितिरस्कृतिसेरसिंह कुकृत्य कुपित कुशालसिंह मरण, विजित बखतसिंह योधपुर प्रभूभवन पलायित रामसिंह कमाऊ कुण्डलन जया मल्लार प्रार्थना कृत मैत्रीभाव-

संध्यामरुपसहायास्ङ्गीकरण निष्कासित दुष्टभटमहारुग्णराणाजगत्सिंहमरणं चत्वारिंशो मयूखः । आदितः ॥३२१ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में दिल्ली के वजीर के भेजे हुए सेना सहित सेनापति कायस्थ नवलराय का फरूक्काबाद की मालिक बंगस यवन मुहम्मदखान बीबी से युद्ध करना और मिलाप करके कायस्थ का उसका वैभव लूटना। दो मास बीच में देकर बीबी का नवलराय को मारना, युद्ध का वैभव छोड़कर बादशाह के वजीन मनसूरअली का भागना, सेना के खर्च का धन देकर बादशाह का होल्कर और सिंधिया को बुलाना और बीबी का भागकर कुमाऊँ पर्वत में जाना, दक्षिण की सेना का उसको घेरना, मारवाड़ के राजा के सामन्त चांपावत कुशलसिंह को निकालना और उसका नागौर के स्वामी बखतसिंह से मिलना। भतीजे और काका के मध्य बड़े युद्ध का होना, शेरसिंह और कुशलसिंह का मारा जाना और युद्ध में विजयी बखतसिंह का जोधपुर का राजा बनना, भागे हुए रामसिंह का कुमायुं पर्वत को घेरने वाले जयाजीराव सिंधिया और मल्हारराव से प्रार्थना करना, सिंधिया का मारवाड़ के राजा की सहायता करना स्वीकार करना और उदयपुर में दुष्ट उमरावों को मेवाड़ से निकालने वाले महाराणा जगतसिंह के मरने का चालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इक्कीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पादाकुलकम्

यह सुनि बुंदिप सोक उपज्जिय, जाम च्यारि नउबत्ति न बज्जिय ॥
इत भट सलूमरिप चुंडाउत, रानां करन कुमारहिँ राउत ॥१ ॥

कारा जाय प्रतापहिँ कढ्ढिय, बहु भय सुनत ग्राहकन बढ्ढिय ॥
सो अब रान उदैपुर स्वामी, नय जुत भयो छत्रधरि नामी ॥२ ॥

जेर कियो परताप जनक जब, ताको खान पान सद्धन तब ॥
अमरचंद पूरबिया इक द्विज, निकट बहै रक्ख्यो सेबक निज ॥ ३ ॥

सेबा जिहिँ तनमन धन सद्धी, अंतर किन्न घरी नहिँ अद्धी ॥
अब नृप होय प्रताप बिप्र वह, सचिव मुख्य किय अतुल प्रीति सह ॥ ४ ॥

हे राजा रामसिंह! महाराणा जगतसिंह की मृत्यु के समाचार से बूंदी में शोक छा गया। इसके फलस्वरूप चार प्रहरों तक नगारे आदि वाद्य नहीं बजाये

गये। उधर संलूबर के चूंडावत स्वामी ने तब राजकुमार प्रतापसिंह को महाराणा बनाने की सोची। उसने कारागार में जाकर पहले कुमार को वहाँ से निकाला। इस बात की खबर जब कुमार को पकड़ने वाले चारों सामंतों ने सुनी तो वे भयभीत हो गए कि वह कुमार मेवाड़ का स्वामी हो गया। वह प्रतापसिंह नीति सम्मत (राजा) बन गया। जब इस कुमार को इसके पिता ने कैद करवाया था तब कुमार के खानपान का ध्यान रखने के लिए अमरचन्द पूरबिया नामक एक ब्राह्मण को नियुक्त किया गया था। जो कुमार की सेवा में होने से सदा निकट बना रहता। इस ब्राह्मण ने भी अपने कुमार की सेवा पूरे तन-मन से की। उसका आदेश बजा लाने में उसने घड़ी भर का समय भी नही लगाया। अब कुमार प्रतापसिंह ने महाराणा बनते ही प्रीति का प्रदर्शन करते हुए इस ब्राह्मण को अपना मुख्य सचिव बनाया।

सिविका गज ताजीम समप्पिय, थिर सुबिप्र ठाकुर कहि थप्पिय ॥
मन्नत बंदि निलय सेवन मति, अमरचंद बसि रान भयो अति ॥ ५ ॥

बलि वे ग्राहक च्यारि बुलाये, लेस खिज्यो नहि हृदय लगाये ॥
इकदिन अभ्र अभ्र घुमड़े अति, कहिय प्रताप तबहि काका प्रति ॥ ६ ॥

सुनहु जनक सासन अनुसारी, मचक जानु जिँहिँ दिन तुम मारी ॥
सो रीढक संधिग अब सल्लत, घन जब होत तबहि दुख घल्लत ॥ ७ ॥

यह नृप सहज सरलपन अक्खी, रिस गिनि नाथ हृदय धरि रक्खी
आतुर सठ नाहक अकुलायो, स्वीय नगर बग्घोर सिधायो ॥ ८ ॥

. महाराणा प्रतापसिंह ने पालकी, हाथी और ताजीम दे कर उसका मान बढ़ाया और उसे ठाकुर का संबोधन दे कर अपने जागीरदार की इज्जत प्रदान की। कारागर में अच्छी टहल-चाकरी करने से वह अमरचंद नये महाराणा के निकट का व्यक्ति बन गया। महाराणा प्रतापसिंह ने तब स्वयं को पकड़ने वाले चारों व्यक्तियों को राजदरबार में बुलवाया पर उन पर खीझ नही करते हुए अपने सीने से लगाया। एक दिन आकाश में बादल उमड़े उस समय प्रतापसिंह ने अपने काका नाथूसिंह से (जो उन चार व्यक्तियों में से था) कहा कि हे मेरे आज्ञाकारी! उस दिन आपने मुझे पकड़ते समय मेरी पीठ पर जो घुटने की मारी थी। उसी दिन से बादल होने पर मेरी पीठ के संधि स्थल पर दर्द होता है

और यह पीड़ा मुझे दुःख देती है। नये महाराणा ने तो यह बात सहज भाव से बादल देखकर कही थी पर इसे सुनकर नाथूसिंह को तेश आ गया। वह मूर्ख व्यर्थ ही यह सुनकर व्याकुल हो गया और उदयपुर से चुपचाप अपने नगर बागोर आ गया।

सक नव नभ धृति समय होत सठ, हिय भय धारि बिरचि अनुचित हठ॥
पुत्र भीम जुत नाथ पलायो, अतिजव नगर सादड़ी आयो॥ ९॥
तँहँ टिक्यो न करि पुनि त्वरिताई, देवलिया पहुँच्यो गरदाई॥
उम्मट घर तदनंतर आयो, व्याहन सगपन तत्थ बिधायो॥१०॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ नौ में अनुचित हठ धारण कर मन में डरते हुए नाथूसिंह अपने पुत्र भीमसिंह के साथ उदयपुर से भाग गया और शीघ्र ही सादड़ी नामक नगर में आया। वह यहाँ भी अधिक समय तक टिका न रह सका और शीघ्र ही यहाँ से चल कर कुमार को जहर देने की इच्छा वाला(नाथूसिंह)देवलिया (प्रतापगढ़)पहुँचा। देवलिया से आगे उम्मट के घर(नरसिंहगढ़) गया जहाँ विवाह हेतु उसकी सगाई हो रखी थी।

दोहा

उम्मट की कन्या उभय, परनि पिता अरु पुत्र।
बुंदी पुर आपे बहुरि, तक्कत नृपहिँ तनुत्र॥११॥

यहाँ उम्मट राजा की दो कन्याओं से पिता नाथूसिंह और पुत्र भीमसिंह दोनों ने विवाह रचाया और वहाँ से लौटते हुए बूंदी आये क्योंकि वो हाड़ा राजा उम्मेदसिंह में अपने रक्षक की छवि देखते थे।

षट्पात्

सक नव नभ धृति समय श्राम श्रावन यँहँ आये,
देवपुरा लग समुख जाय बुंदिस बधाये।
चलन दम्म सत चारि दये संभर नृप दिनप्रति,
बारह बासर रक्खि बिदा किय बखसि बाजि कति।
तब नाथ भीम जनक रु तनय आये दुव ढुंढार इत।
माधव नरेस बखतेस जँहँ हे सम्मलि कछु काज हित॥१२॥

विक्रम संवत् के वर्ष अटठारह सौ नौ के श्रावण माह में ये दोनों पिता-पुत्र विवाह कर लौटे। इनके आगमन की सुन कर बूंदी का राजा उम्मेदसिंह देवपुरा नामक गाँव तक उनकी अगवानी करने गया। स्वागत के बाद बूंदी में आने पर हाड़ा राजा ने बाजार चलन की मुद्रा के चार सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से उन्हें प्रदान किये। नाथूसिंह और भीमसिंह दोनों को हाड़ा राजा ने बारह दिन तक अपने यहाँ मेहमान रखा और कई घोड़ों की बख्सीस दे कर विदा किया। यहाँ से दोनों पिता-पुत्र चल कर ढूंढाड़(जयपुर) प्रदेश में आये जहाँ कछवाहा राजा माधवसिंह और राठौड़ राजा बखतसिंह दोनों किसी कार्यवश इकट्ठे हो रखे थे।

दोहा

बखतसिंह मरुईस अरु, माधव जैपुर ईस।
मरहट्ठन मेटन अमल, उभय मिले अबनीस॥१३॥
मालपुरा सन इक मिजल, भूपोलाव तड़ाग।
पहु कछवाह कबंध पति, जत्थ मिले जय लाग॥१४॥

मारवाड़ का राठौड़ राजा बखतसिंह और जयपुर का कछवाहा राजा माधवसिंह दोनों मराठों के अधिकार वाली भूमि को वापस लेने की योजना बनाने को इकट्ठे हुए थे। मालपुरा से एक पड़ाव की दूरी पर भूपोलाव नामक तालाब पर कछवाहा राजा और राठौड़ राजा दोनों विजय की इच्छा के साथ मिले।

षट्पात्

सूनु सहित सीसोद नाथ तिन प्रति प्रयान किय,
सुनि माधव बखतेस जाय सम्मुह बधाय लिय।
तदनु मरुप बखतेस छली तत्थहि बपु छोरयो,
न्याय रहित सठ नाथ मिलत माधव मन मोरयो।
कछवाह कहिय सीसोद सन करहिं तुमहिं मेवार पति।
परताप नाँहिं नृपता उचित गहहु ताहि तुम पुब्बगति॥१५॥

अपने पुत्र भीमसिंह सहित सिसोदिया नाथसिंह ने भूपोलाव जाने का रुख किया। इनके आगमन की खबर पा कर राजा माधवसिंह और बखतसिंह

दोनों चल कर उनके सम्मुख गये और पूरे सत्कार के साथ उनका स्वागत किया। इसी समय मारवाड़ के छली राजा बखतसिंह ने अपना शरीर छोड़ा। सिसोदिया नाथसिंह न्याय रहित हो राजा माधवसिंह कछवाहा से मिला और अपनी मुलाकात से राजा का मन अपने अनुकूल कर लिया। यही नहीं राजा माधवसिंह ने सिसोदिया नाथसिंह को भरोसा दिलाया कि मै आपको मेवाड़ का राजा बनाऊँगा। वह प्रतापसिंह वैसे भी राजा बनने योग्य नहीं है। उसे तुमने जैसे पूर्व में पकड़ा था वैसे ही अब भी पकड़ लो।

दोहा

अग्ग रान जगतेस अति, कूरम माधव काज।
कोटि दम्म निज खरच किय, रोकन जैपुर राज॥१६॥

पहले मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह ने माधवसिंह की समस्या का निराकरण करने के लिए अपने एक करोड़ रुपये व्यय किये थे कि किसी भी तरह से बन पड़े इसे जयपुर का राज मिल जाये।

ऊरुज हरगोबिंद के, कहैं सु उपकृत भुल्लि।
कूरम नृप कृतघन भयो, लैन उदैपुर बुल्लि॥१७॥

बरज्यो जदपि झलाय पति, कुसलसिंह कछवाह।
मन्त्री तदपि न मंदमति, अघ हिय धारि अथाह॥१८॥

नाथ भीर कूरम नृपहिँ, सुनि भारत जसवंत।
राघवदेव उमेद ए, मिले आनि दृढ मंत॥१९॥

कनक छत्र धरि नाथ सिर, चामर बिसद बुराय।
मिलि इतनैं रानाँ मुलक, लूटन लग्गे आय॥२०॥

हे राजा रामसिंह! वैश्य हरगोविन्द नाटाणी के कहने से कछवाहा राजा ने कृतघ्न होकर महाराणा द्वारा स्वयं पर किये गये उपकार को भुला दिया तभी सिसोदिया नाथूसिंह से उसने कहा कि मैं उदयपुर ले कर तुम्हें दे दूंगा। ऐसा कहने से रोकते हुए झलाय नगर के स्वामी कछवाहा कुशलसिंह ने उसे टोका पर तब भी उस मंदमति राजा माधवसिंह ने अपने हृदय में पाप भरकर उसकी नहीं सुनी। इधर जब भारतसिंह, जसवंतसिंह, राघवदेव और उम्मेदसिंह ने सुना कि जयपुर का कछवाहा राजा सिसोदिया नाथूसिंह

का सहायक हो गया है तो वे चारों आकर नाथूसिंह से मिले। उन्होंने मिलकर नाथूसिंह के सिर पर सोने का छत्र धरा और उसे चंवर ढुराने लगे। इसके बाद वे निश्चिंत हो महाराणा के मुल्क मेवाड़ को लूटने लगे।

बखतसिंह के मरत इत, बिजयसिंह अवनीस।
तखत जोधपुर को लह्यो, सुभग छत्र धरि सीस॥२१॥

याही बरस उमेद नृप, स्वीय सहोदर दीप।
परिनायो सावर नगर, मंडि उछाह महीप॥२२॥

सगताउत सगतेस की, कन्या अनुप कुमारि।
दुलहनि दीप बिबाहि तब, आयो निलय पधारि॥२३॥

इत बुंदीस उमेद की, सतत सुहागिनि नारि।
ऊदाउति रानिय लयो, दोहद लच्छन धारि॥२४॥

इधर जोधपुर में राजा बखतसिंह के मरने पर उसके पुत्र विजयसिंह ने अपने सिर पर मुकुट धर कर जोधपुर का सिंहासन अपने अधिकार में लिया। इसी वर्ष बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने छोटे भाई दीपसिंह का विवाह उत्सवपूर्वक सावर नगर के स्वामी के यहाँ करवाया। शक्तिसिंह शक्तावत की पुत्री अनुपम कुमारी को तब अपनी दुल्हन बनाकर दीपसिंह वापस अपने घर बूंदी आया। इसी अवधि में राजा उम्मेदसिंह की चिर सुहागिन उदावत वंशीय रानी ने गर्भ धारण किया।

ताके अष्टम मास को, उच्छव मंडि अनंत।
समरसिंह नृप कुल सकल, किय इक्कत मतिमंत॥२५॥

तदनंतर नव ख धृति सक, माघ त्रयोदसि सेत।
अजितसिंह नृप कै कुमर, हुव सुभ अंक उपेत॥२६॥

जातकरम तब तास किय, निगम उक्त रचि न्याय।
नांदीमुख मुख श्राद्ध करि, लक्खन दिन्न लुटाय॥१७॥

राजा उम्मेदसिंह ने अपनी रानी के गर्भ के आठ मास व्यतीत होने पर बड़ा भारी उत्सव किया और इस अवसर पर राजा समरसिंह के वंश के सभी कुल बांधवों को आमंत्रित किया। तदन्तर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ नौ के माघ मास में शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन

राजा के घर शुभ नक्षत्रों वाले अजीतसिंह नामक राजकुमार ने जन्म लिया। सद्यजात बालक के सारे जातकर्म वेदोक्त विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न किये गये। इस अवसर पर नांदीमुख आदि श्राद्ध भी सम्पन्न किये गये और राजा ने लाखों रुपयों का दान किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशाबुम्मेदसिंह चरित्रे कुमार प्रतापसिंह राणा पट्टप्रापण निज सेवक विप्रास्मरचन्द्र सचिवी करण स्वनिग्राहक सुभटचतुष्क समास्श्र्वासन राणाकर्तृक मृत्युभ्रान्त पलायित ससुत पितृव्यकनाथ सिंह बुन्द्यास्गमन। बुन्दीश-सत्कृतनाथ सिंह जयपुर जन पदस्थ कूर्म्मराजमाधवसिंह कबन्धराज बखतसिंह सम्मिलन कृत कुकृत्यमरूपास्जितसिंहिमरण जायसिंहि कृतघ्नीभवन नाथसिंह सहायार्थोदयपुरदापना स्भ्युपगमनश्रुतैतद्वार-तसिंहास्दिचतुष्टय नाथसिंह सहायीभवनच्छत्रचामरास्स्दितदपर्ण राणाराष्ट्रमेदपाटलुण्टनबाखतसिंहि विजय सिंहयोधपुरगद्दिकोपविशन बुन्दीन्द्रास्नुजदीपसिंहसावरपुरेश शीर्षोद्दशक्तिसिंह कन्योद्वहनरावराड् राज्ञ्यूदाउत्तिदोहदलक्षणधरणतत्सीमन्त महोत्सवास्नुष्ठानसमयान्त तद्राजकुमारा स्जितसिंहोद्गमनमेक चत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में कुमार प्रतापसिंह का राणा के पाट को पाना और अपने सेवक ब्राह्मण अमरचन्द को सचिव करना, अपने पकड़ने वाले चारों उमरावों को विश्वासना और राणा से मृत्यु का सन्देह करने वाले काका नाथसिंह का पुत्र सहित भागकर बून्दी आना, बून्दी के पति से सत्कार पाये हुए नाथसिंह का जयपुर के देश में स्थित कछवाहा राजा माधवसिंह और राठौड़ राजा बखतसिंह से मिलना, पाप करने वाले मारवाड़ के पति अजीतसिंह के पुत्र बखतसिंह का मरना, जयसिंह के पुत्र माधवसिंह का कृतघ्नी होकर नाथसिंह की सहायता के अर्थ उदयपुर देने का स्वीकार सुनकर भारतसिंह आदि चारों का नाथसिंह का सहायक होना और उसको छत्र चमर आदि देकर राणा के राज्य मेवाड़ को लुटना, बखतसिंह के पुत्र विजयसिंह का जोधपुर की गद्दी पर बैठना और बून्दी के पति के छोटे भाई दीपसिंह का सावरपुर के पति सिसोदिया शक्तिसिंह की पुत्री से विवाह करना, रावराजा की रानी (उदाउत) का गर्भ धारण करना और उनके आठ मास (आगरनी) का महोत्सव किये बाद उसके राजकुमार

अजीतसिंह के जन्म का इकतालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बाईस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

तदनंतर सक ख ससि धृति, बिसद चतुर्दसि राध।
सोदर दीप सिकार गय, बिरचि भ्रात हित बाध॥१॥

हे राजा रामसिंह! इसके बाद विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ दस के वैशाख माह में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि को राजा उम्मेदसिंह का सहोदर दीपसिंह हाड़ा अपने अग्रज के हितों को बाधित करने की सोच कर मना करने पर भी शिकार खेलने गया।

षट्पात्

मृगया मिस प्रच्छन्न प्रात कढि दीप सहोदर,
कोटा गय चल बुद्ध अप्प हय इक अनुचर।
कोटापति सुनि सचिव झल्ल मदनेस पठायो,
लैबे कौं नटि दीप नगर तबतो नहिँ आयो।
कायत्थ अखैराम सु बहुरि आय याहि पुर लै गयउ।
पुनि जाहि कुमर पदवी महल दुजनसल्ल रक्खत भयउ॥ २॥

शिकार खेलने जाने का बहाना बनाकर राजा का छोटा भाई दीपसिंह चुपके से बूंदी से निकलकर अपने एक अनुचर के साथ घोड़े पर सवार हो कोटा की ओर चला। जब कोटा के राजा ने दीपसिंह के आने की खबर सुनी तो उसने अपने सचिव मदनसिंह झाला को सामने भेजा। अपने को लेने आये झाला से उस समय तो दीपसिंह ने कोटा आने से मना कर दिया पर जब कायस्थ अखैराम ने फिर से आकर निवेदन किया तो वह उसके साथ हो लिया। कोटा में पहुँचने पर राजा दुर्जनशाल ने दीपसिंह को कुँवरपदे (जहाँ राजकुमार रहते हैं) के महल में पूरे आदर के साथ रखा।

इत यह सुनि बुंदीस लैन निज सचिव पठाये,
तबहु दीप नटि तिनहिँ तरजि पच्छे पहुँचाये।
गागरनीपुर अभयसिंह रट्ठोर सुता सुनि,
परनि ताहि द्रुत जाय दीप आयउ कोटा पुनि।

बुंदीस हिंतु नाहम बिमन कछु दिन तत्थ अतीत करि।
गो पुनि सबाम पुर इंद्रगढ देव कथित दृढ चित्त धरि।।३।।

इधर बूंदी के राजा उम्मेदसिंह को जब अपने छोटे भाई के कोटा जाने के समाचार मिले तो उसे वापस लिवा लाने के लिए अपने सचिवों को भेजा पर दीपसिंह ने एक की नहीं सुनी बल्कि उन्हें दुत्कार कर कोटा से भगा दिया। यहाँ उसने सुना कि गागरनी नगर के राठौड अभयसिंह की कन्या अत्यन्त रूपवती और गुणवान है तो दीपसिंह हाड़ा उसे विवाहने को गागरनी गया। विवाह कर वह सपत्नी वापस कोटा ही लौटा। मन ही मन अपने भाई राजा उम्मेदसिंह से उदासीन रहते हुए दीपसिंह ने कुछ दिन वहीं कोटा में बिताये। थोड़े दिनों के बाद वह देवीसिंह के समझाने पर अपनी नवोढ़ा सहित इन्द्रगढ़ चला गया।

दोहा

अभयसिंह रट्ठोर को, देवसिंह हो भाम।
पतनी के परतंत्र तिहिं, किन्नौं अनुचित काम।। ४।।

पत्तन कोटा दीप प्रति, पठये यागति पत्र।
तुमकौं बुंदिय हौंस जो, आवहु तो द्रुत अत्र।। ५।।

तुमरे उप्पर तनक हू, अग्रज अनुकंपा न।
मंत्र करन इमसौं मिलहु, थप्पहिं ज्यों नृप थान।। ६।।

ए कग्गर सुनि इंद्रगढ, पहुँच्यो दीप प्रमत्त।
अग्रज हिंतु बिरोध इम, तक्क्यो बालिस तत्त।। ७।।

यह देवीसिंह गागरनी के राठौड़ अभयसिंह का बहिनोई था और उसने अपनी स्त्री के पराधीन होकर अनुचित कर्म किया था। उसने कोटा में दीपसिंह को पत्र लिखकर भिजवाया कि हे दीपसिंह! यदि तुम्हारे मन में बूंदी पाने की इच्छा हो तो तुरन्त यहाँ चले आओ क्योंकि तुम्हारे पर तुम्हारे अग्रज राजा की तनिक भी अनुकम्पा नहीं है। इसके लिए हम से मंत्रणा करने यदि तुम यहाँ आओ तो मैं तुम्हें बूंदी के राज-सिंहासन पर स्थापित कर सकता हूँ। ऐसा पत्र पाते ही वह दीपसिंह तुरन्त ही इन्द्रगढ़ आया और उस मूर्ख ने मन ही मन अपने बड़े भाई राजा का विरोध करने की ठानी।

करि अनिष्ट बुंदीस को, देवसिंह धरि द्वेस।
पठयो जैपुर दीप कों, बिग्रह रचन बिसेस ॥८॥

सुनि माधव जैपुर सुपहु, आवत हड्डु उमाहि।
पठयो सम्मुह दीप के, सचिव मुख्य हरसाहि ॥९॥

कूरम गद्दिय कोन पर, बैठारयो सबिनोद।
पटा हजार पचास को, दयो नगर उकड़ोद ॥१०॥

आवत अंतरद्वार तक, चामर तास चलाय।
इम बुंदीपति को अनुज, रक्ख्यो जैपुर राय ॥११॥

हाड़ा राजा के प्रति द्वेषता से भरे देवीसिंह ने तत्काल ही दीपसिंह को मोर्चा लेने की सहायता प्राप्त करने हेतु जयपुर कछवाहा राजा के पास भेजा। जब जयपुर में कछवाहा राजा माधवसिंह ने सुना कि हाड़ा दीपसिंह मेरे पास आ रहा है तो उसने प्रसन्नता महसूस करते हुए अपने मुख्य सचिव को उसकी अगवानी करने भेजा। जयपुर आने पर राजा माधवसिंह ने हाड़ा दीपसिंह को अपनी गद्दी के कोने पर हर्ष का प्रदर्शन करते हुए बैठाया और पचास हजार की जागीर में उकड़ोद परगने का पट्टा प्रदान किया। यही नहीं उसके आने पर भीतर वाली ड्योढी तक उसके चंवर ढुलवाये। बूंदी के हाड़ा राजा के छोटे भाई (दीपसिंह) को जयपुर के राजा ने इस प्रकार का सम्मान प्रदान किया।

षट्पात्

तदनंतर नभ चंद्र अट्ठ अचला मित हायन,
माधव दिल्लिय द्रंग पत्त बनि प्रीति परायन।
सासन अहमदसाह दयो करि सोहि दिखायो,
कछु बासर तँहँ कढ्ढि सिक्ख लहि आलय आयो।
रघुनाथराय श्रीमंत सुत नन्ह अनुज जबनेस जुत।
मग माँहिं मिलत सम्मति रचिय हरगोबिंदहिं गहन द्रुत ॥१२॥

तदनन्तर विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ दस में बादशाह का प्रीतिपात्र बन कर कछवाहा राजा माधवसिंह दिल्ली गया। बादशाह अहमदशाह ने उसे जो भी हुक्म दिया कछवाहा राजा उसे बजा लाया। कुछ दिन दिल्ली

में बिताने के बाद बादशाह से विदाज्ञा लेकर वह वापस अपने घर आया। उधर श्रीमन्त पेशवा के पुत्र और नन्ह के छोटे भाई रघुनाथराय की जब बादशाह से मार्ग में भेंट हुई तो उन्होंने जयपुर के सचिव हरगोविन्द नाटाणी को शीघ्र ही पकड़ने की मंत्रणा की।

पादाकुलकम्

दिल्लिय गमन कुम्म जब किन्नौं, बुंदियपुर कग्गर तब दिन्नौं॥
कोऊ भट मम संग पठावहु, हित मैं नृप अंतर जिन लावहु॥१३॥
तब भगवंतसिंह माधानी, पठयो भूपति प्रीति प्रमानी॥
व्है दिल्लिय माधव घर आयो, रक्ख्यो सचिव लोभ कछु छायो॥१४॥

कछवाहा राजा माधवसिंह जब दिल्ली जाने को रवाना हुआ था उस समय उसने बूंदी के राजा को एक पत्र लिखकर भेजा कि हे राजा! मेरे साथ आप अपना कोई सामन्त भेजें जिस पर आपका भरोसा हो। पत्र पाकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने माधोसिंहोत हाड़ा (माधानी) भगवंतसिंह को अपना समझ कर भेजा। दिल्ली में अपना काम पूरा कर राजा माधवसिंह तो जयपुर आ गया पर उसने किसी प्रलोभनवश अपने सचिव हरगोविन्द नाटाणी को वहीं दिल्ली में रख छोड़ा।

दोहा

सिद्ध भयो नहिँ लोभ सो, सिक्ख दई खिजि साह।
हरगोबिंद अमात्यहू, लग्गो जैपुर राह॥१५॥
रक्षक ताकी संग हो, माधानी भगवंत।
नन्ह अनुज मग मैं मिलत, अमरख किन्न अनंत॥१६॥
पकरन होगोबिंद कौं, बिंट्यो कटक बिथारि।
भूप सुनहु भगवंत भट, तँहँ झारी तरवारि॥१७॥
मारि बहुत मरहट्ठ भट, जित्त्यो दुद्धर जंग।
कुम्म सचिव गहन न दयो, आन्यों जैपुर द्रंग॥१८॥

पर जब वह लोभ पूरा नहीं हुआ तो बादशाह ने खीझ कर जयपुर के सचिव को रवाना किया। हरगोविन्द नाटाणी ने भी तब शाही विदाज्ञा पाकर जयपुर की राह ली। इस समय नाटाणी के साथ माधानी हाड़ा

भगवंतसिंह था रास्ते में नन्ह जी पेशवा के छोटे भाई रघुनाथराय ने हरगोविन्द नाटाणी को पकड़ने के लिए अपनी पूर्व योजना के अनुरूप अपनी सेना की सहायता से उसे जा घेरा। हे राजा रामसिंह! आप सुनें कि हाड़ा भगवतंसिंह ने वहाँ अपनी तलवार जोरदार चलाई। उसने मराठों की इच्छा पूरी नहीं होने दी। हरगोविन्द नाटाणी को वह भगवतंसिंह सुरक्षित रूप में जयपुर ले आया।

इत संध्या हुलकर उभय, अचल कमाऊ छोरि।
जट्टन के कुंभेरगढ, लग्गे लरन बहोरि॥१९॥

खंडू हुलकर पुत्र के, गोली लग्गिय मत्थ।
ततकालहि अकुलाय तिँहिँ, तज्यो कलेवर तत्थ॥२०॥

लै तब ताके बैर मैं, कोटि इक्क दम दम्म।
दिल्लीपर दोऊ चढे, करन नन्ह जय कम्म॥२१॥

जवनईस सत्वर जबहि, सुनि यह अहमदसाह।
मरहट्टन चल्यो, सजि निज कटक सिपाह॥२२॥

उधर सिंधिया और होल्कर अपने दल सहित कुंमायुं की पहाड़ियों की घेराबन्दी छोड़कर लौटते हुए जाटों के कुम्हेर दुर्ग पर आकर युद्ध में संलग्न हो गये। इस भिड़न्त में मल्हारराव होल्कर के पुत्र खांडेराव के सिर में गोली लगी और इससे उसने तुरन्त ही अकुला कर वहीं अपने प्राण त्याग दिये। इससे बैर और बढ़ गया। होल्कर ने तब कुम्हेर के जाट शासकों से दण्ड स्वरूप एक करोड़ रुपये वसूल किये। इसके बाद सिंधिया और होल्कर दोनों नन्हजी पेशवा की विजय कराने को दिल्ली पर चढ़ाई करने बढ़े। अपने पर होने वाले मराठों के आक्रमण की सुन कर बादशाह अहमदशाह भी अपनी शाही सेना को सज्जित कर मुकाबला करने को सामने बढ़ा।

षट्पात्

सक नभ ससि धृति समय प्रचुर लै दल दिल्लिय पति,
सन्ध्या हुलकर समुख अनखि हंक्यो सत्वर गति।
मिलत सेन दुव मचिग कलह दारुन करवालन,
लुत्थिन लुत्थि बिलग्गि ढंकि छोनिय गज ढालन।

चलि चउ प्रकार आयुध चपल बज्र अचल जिम रीठ बजि।
दक्खिन अनीक जित्त्यो दुसह भीरु गयउ जवनेस भजि ॥२३॥

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ दस में अपनी जंगी शाही सेना के साथ बादशाह अहमदशाह ने प्रयाण किया और सिंधिया तथा होल्कर पर कुपित हो युद्ध करने को सन्नद्ध हुआ। दोनों सेनाओं के मिलते ही वहाँ भीषण युद्ध हुआ। तलवारों के इस दारुण कलह से रणभूमि में योद्धाओं के कटे हुए शवों के ढेर लग गये और रणआंगन कटे हुए हाथियों से पट गया। चारों प्रकार के आयुध दोनों ओर से चपल गति से चले। घमासान युद्ध मचा। अन्ततः दुस्सह मराठा सेना ने जीत हासिल की और बादशाह कायरों की तरह रणभूमि से पलायन कर गया।

दोहा

अहमदसाह पलाय इम, पच्छो दिल्लिय पत्त।
खानकलीज हराम खल, पकर्‌यो स्वामि प्रमत्त ॥२४॥

नयन फोरि जवनेस के, कारा पटक्यो कूर।
आलमगीर स नाम इक, साह कियो बनि सूर ॥२५॥

अग्गहि खानकलीज इहिं, लिन्नों नादर बुल्लि।
अंध बंध अहमद कियो, खल बिरोध अब खुल्लि ॥२६॥

मरहट्ठे दब्बत मुलक, दिल्लिय पत्ते दोरि।
कछु दम दम्म कलीज दै, किन्नों साम बहोरि ॥२७॥

रणभूमि से पलायन कर बादशाह वापस जब दिल्ली पहुँचा तो उसी के वजीर कलीजखान ने उसे बंदी बना लिया। इसके बाद वजीर ने अपने स्वामी की आँखें निकलवा दीं और उसे कारागार में डाल दिया। फिर उस कलीजखान ने आलमगीर नामक एक नये बादशाह को दिल्ली के तख्त पर बिठा दिया। पूर्व में भी इस दुष्ट कलीजखान ने नादिरशाह को दिल्ली बुलाया था और अब खुलमखुल्ला विरोध करते हुए उसने अहमदशाह को अंधा बना कर कारागार में डाल दिया। इसी समय शाही इलाका दबाते हुए मराठे दिल्ली पहुँचे पर कालीजखान ने दण्ड के रुपये दे कर उनसे संधि कर ली।

अंबर ससि धृति अब्द इम, कितव कलीज कुचाल।
गद्दी आलमगीर कों, बैठार्‌यो मति बाल ॥२८॥

कछु सिवाय धन भेट करि, निलज कलीज नवाब।
मरहट्ठे दुव मुक्कले, जेर करन पंजाब॥२९॥

मारक नादरसाह को, अहमदखान पठान।
उतत्तैं वह उत्तरि अटक, आयो कटक अमान॥३०॥

जिहिँ जनपद पंजाब मैं, लिन्नों अमल जमाय।
हाकिम निज धरि बाहुर्‌यो, इतको अमल उठाय॥३१॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ दस में उस धोखेबाज कलीजखान ने चाल चल कर बालक बुद्धि वाले आलमगीर को शाही तख्त पर बिठाया। यही नहीं उसने थोड़ा धन और अधिक दे कर मराठों को पंजाब फतह करने भेज दिया। नादिरशाह को मारने वाला अहमदखान पठान कटक नदी को लांघ कर बड़ी सेना के साथ आर्यावर्त्त में आ घुसा था और उसने पंजाब के मुल्क को अपने अधिकार में कर लिया था फिर वह पंजाब पर अपना हाकिम तैनात कर वापस लौट गया था।

तिनसों मरहट्ठन तबहि, रची जाय द्रुत रारि।
उत किन्नों दिल्लिय अमल, थानाँ अपर बिडारि॥३२॥

कतिक नगर पंजाब के, लुट्टि सहित लाहोर।
महरट्ठे जय मत्त मन, आये जैपुर ओर॥३३॥

मिलन काज मल्लार सों, नय पटु हड्डु नरेस।
बुंदीसन करि कुच्चा बलि, पत्तो जैपुर देस॥३४॥

माधव हड्डु मलार अरु, संध्या बिहित बिबेक।
मिलि च्यारिन सम्मलि रहत, कट्टे दिवस कितेक॥३५॥

हरजन पुत्त दलेल तँहँ, हो जैपुरपति तत्थ।
लाय हृदय नृप ताहि लै, आयो निलय समत्थ॥३६॥

नृप माधव गो जयनगर, हुलकर दक्खिन देस।
रट्ठोरन उप्पर चल्यो, संध्या कुपित बिसेस॥३७॥

इस हाकिम के साथ अब हठपूर्वक शीघ्र जा कर मराठों ने लोहा लेने की सोची। जाते ही मराठों ने तलवार बजाई और उसके थाने हटाकर पंजाब पर फिर से दिल्ली के बादशाह का अमल कायम किया। मराठों ने

पंजाब के कई नगरों को लाहोर सहित लूटा और विजय के मद में मस्त मराठा तब जयपुर की ओर जाने को बढ़े। उधर नीति में निपुण बूंदी का हाड़ा राजा उम्मेदसिंह भी अपने मित्र मल्हारराव होल्कर से मिलने बूंदी से कूच कर जयपुर पहुँचा। यहाँ जयपुर में जयाजीराव सिंधिया, मल्हारराव होल्कर, हाड़ा राजा उम्मेदसिंह और कछवाहा राजा माधवसिंह आपस में मिले और कुछ दिन यहाँ ठहर कर सभी ने साथ बिताये। हरजन हाड़ा का पुत्र दलेलसिंह जो जयपुर के राजा के पास था उसे हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने सीने से लगाया और स्नेह का प्रदर्शन करते हुए उसे साथ लेकर राजा अपने घर (बूंदी) आया। कछवाहा राजा जयपुर में ही रहा और मल्हारराव होल्कर अपने दल सहित वापस दक्षिण की ओर अपने मुल्क में आने को बढ़ा। वहीं सिंधिया जो जोधपुर के राठौड़ राजा रामसिंह को गद्दी से हटा कर बने नये राजा विजयसिंह पर खफा था उसे सबक सिखाने को कुपित हो दल सहित उधर रवाना हुआ।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टमराशावुम्मेदसिंह चरित्रे बुन्दीन्द्रानुजदीपसिंहनिष्क्रमनतत्कोटागमन गागरणीशरट्ठोड़ा स्भयसिंहकन्योद्वहनेन्द्रगढेशदेवसिंहभेदितचित्तदीपसिंहजयपुरप्रेषणासत्कृत-हड्डेन्द्रास्नुजदिल्लीगतकूर्म्मराजमाधवसिंहप्रत्यागमननास्नन्तरास्गच्छ-त्सचिवहरगोबिन्दनिग्रहणनिमित्तश्रीमन्तनन्हानुजरघुनाथराययुद्धकरणजितयुद्ध-माधाणिहड्डुभगवन्तसिंहहरगोविन्दजयपुरानयनत्पक्तकमाऊगिरिहुलकर संध्या जट्टदुर्गकुम्भेरवेष्ठनतत्समरमल्लारपुत्रखण्डूमरणनीतकोटिद्रम्म तद्वैरोद्धर्तृजया मल्लार दिल्लीशास्हमदशाहविजयकलीजखानस्फोटितनय नयवनेशकाराक्षेपणतद्रगदिकास्स्लमगीरोपवेशनदत्तदमद्रव्यदक्षिण-सैन्यपञ्जाबप्रेषणपरास्तीकृतनादरध्नदिल्लीशास्थीनीकृतपञ्जा बहुलकर संध्या जयपुरजनपदास्गमनहड्डेन्द्रा कूर्म्मेन्द्र तत्सम्मिलननीतिहारजनि-दलेलसिंहरावराडबुन्द्यास्गमनमाधवसिंहजयपुरप्रविशनमल्लार दक्षिण गमनस्वमित्ररामसिंहसहायीभूतसंध्याजया तद्योधपुरदाबनार्थसञ्जीभवनं द्विचत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२३॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में बून्दी के पति के छोटे भाई दीपसिंह का निकल कर कोटा जाना और गागरनी के पति राठौड़ अभयसिंह की पुत्री से विवाह करना, इन्द्रगढ के पति

देवसिंह का चित्त भ्रमित से दीपसिंह को जयपुर भेजना और हाड़ों के पति के छोटे भाई का सत्कार करके दिल्ली गये हुए कछवाहा राजा माधवसिंह का लौटना, इसके बाद आने वाले सचिव हरगोविन्द को पकड़ने के कारण श्रीमंत नन्ह के छोटे भाई रघुनाथराय का युद्ध करनाऔर युद्ध जीतने वाले माधोसिंहोत हाड़ा भगवंतसिंह का हरगोविन्द को जयपुर लाना, कमाऊँ पर्वत को छोड़कर होल्कर और सिंधिया का जाट के कुंभेरगढ को घेरना और उस युद्ध में मल्हार के पुत्र खंडू का मरना, उस के वैर में करोड़ रुपये लेकर जया और मल्हार का दिल्ली के पति अहमदशाह को विजय करना, कलीजखां का बादशाह के नेत्र फोड़कर कैद करना और उसकी गद्दी पर आलमशाह को बिठाना, दण्ड का धन देकर दक्षिण की सेना को पंजाब में भेजना और नादरशाह के मारने वाले को हराकर पंजाब को दिल्ली के अधीन करके होल्कर और सिंधिया का जयपुर के देश में आना, हाड़ों के इन्द्र और कछवाहों के इन्द्र का उनसे मिलना और हरजन के पुत्र दलेलसिंह को लेकर रावराजा का बून्दी आना और माधवसिंह का जयपुर प्रवेश करना, मल्हार का दक्षिण में जाना और अपने मित्र रामसिंह का सहायक होकर जया नामक सिंधिया का उसको जोधपुर दिलाने के अर्थ सज्जित होने का बयालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तेईस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

रूपनगर नृप राजसिंह जब देह त्याग किय,
सूनु ज्येष्ट सांमतसिंह तब तास तखत लिय।
अनुज बहादुर बहुरि भ्रात सांमत निकारयो,
लिन्नी गद्दिय छिन्नि छत्र अप्पन सिर धारयो।
सिरदारसिंह निज सुत सहित नृप सांमत बिपत्ति सहि।
लिय तबहि आय संध्या सरन राम मरुप जिम दीन रहि॥१॥

हे राजा रामसिंह! रूपनगढ़ के राठौड़ राजा राजसिंह का देहान्त हो गया तो अपने पिता का उत्तराधिकारी होने के नाते राजा का बड़ा बेटा सामन्तसिंह राजगद्दी पर बैठा पर उसके छोटे भाई बहादुरसिंह ने बलात अपने बड़े भाई को राजा के पद से हटा दिया और उसकी जगह स्वयं

छत्र धारण कर राजा बन बैठा। तब राजा सामन्तसिंह इस विपत्ति के समय अपने पुत्र सरदारसिंह के साथ सिंधिया जयाजीराव की शरण में गया और वहाँ वह भी जोधपुर के हटाये गये राजा रामसिंह की तरह दीन होकर सहायता की गुहार करने लगा।

दोहा

सक नभ ससि धृति समय ही, उदयनैर इत एह।
रान प्रतापहु रोग बस, तजत भयो निज देह॥२॥
तब जो कारा माँहिं हुव, राजसिंह सुत तास।
सो नृप भो दस बरस बय, पै नहि नीति प्रकास॥३॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ दस में उधर उदयपुर में महाराणा प्रतापसिंह (द्वितीय) का रोग बढ़ जाने के कारण देहान्त हो गया। तब महाराणा का पुत्र राजसिंह जो कारावास में था उदयपुर का राजा बना। इस समय राजसिंह की उम्र मात्र दस वर्ष की थी और वह नीति में भी चतुर नहीं था।

षट्पात्

रूपनगर नृप ससुत संग सांमतसिंह अब,
त्यौंहीं मरुपति रामसिंह दोउन इम लै तब।
संध्या सेनहिँ सज्जि चल्यो इनके अरि मारन,
दोउन निज भुव दैन बिदित निज कित्ति बिथारन,
सुनि एह बहादुरसिंह इत बिजयसिंह सम्मलि गयउ।
मेरता नगर दुव दल मिलत सक सिव धृति संगर भयउ॥४॥

रूपनगढ़ का राजा सामन्तसिंह अपने पुत्र के साथ सिंधिया के पास गया हुआ था और इसी स्थिति में जोधपुर का राजा रामसिंह भी वहाँ पहुँचा हुआ था। इन दोनों को अपने साथ ले सिंधिया ने अपनी सेना सज्जित की और इन दोनों राजाओं के शत्रुओं को सबक सिखाने को रवाना हुआ। सिंधिया इन दोनों राजाओं की गई हुई जागीर वापस दिला कर अपनी कीर्ति संवर्धित करने की मंशा से चला। जब रूपनगढ़ के नये राजा बहादुरसिंह ने सिंधिया की सेना के आने के समाचार सुने तो वह

जोधपुर के नये राजा विजयसिंह से जा मिला। इन दोनों नये राजाओं के दल मेड़ता में मिले और विक्रम संवत् के अठारह सौ ग्यारह में युद्ध हुआ।

दोहा

बिजय बहादुर उभय उत, इत सांमत रु राम।
संध्या दुहुँन सहाय कर, कलि मंड्यो जय काम॥ ५॥

जोधपुर से विजयसिंह की सेना और रूपनगढ़ से बहादुरसिंह की सेना ये दोनों सेना एक पक्ष में थी वहीं दूसरे पक्ष में रामसिंह और सामन्तसिंह का दल था। जयाजीराव सिंधिया की सेना रामसिंह और सामन्तसिंह वाले पक्ष की और थी। दोनों पक्षों में विजय प्राप्ति के लिए घमासान हुआ।

सारङ्गः

संध्या जया ओ बिजैसिंह रट्ठोर, यौं मेरता खेत जुट्टे बडे जोर॥
भारी मच्यो सेस के सीस पै भार, भो कुंडली सो फटा डारि फुंक्कार॥६॥

बाराह की दड्ढ मैं पीर ब्है पूर, होनैं लग्यो कामठी पिट्ठि को चूर॥
कंपे सबैं दिक्करी चिक्करी पारि, धुज्जी धरित्रीहु भै कल्प को धारि॥७॥

आदित्य आभा गई धूलि तैं ढंकि, लोकेस अट्ठों परे सोक मैं संकि॥
घाँघाँ बढ्यों धूमकी धार अंधार, उलंघिबे सेतु लग्गे अकूपार॥८॥

यों सस्त्र संबाहिनी बाहिनी बेग, दोऊ मिली ओ चली उज्जली तेग॥
आकर्ण ऐंचे करैं चाप टंकार, सन्नद्ध संधा करैं जुट्टि जुज्झार॥९॥

सिंधिया जयाजीराव और विजयसिंह राठौड़ ये दोनों अपनी अपनी सेना के साथ मेड़ता नगर को रणभूमि बना कर बलपूर्वक आ डटे। इससे पृथ्वी पर बढ़ी अचानक हलचल से शेष नाग के फण पर भार आया और वह नाग अपने सभी फणों से फुंकार कर उठा। वाराह की दंतुलि में पीड़ा बढ़ी और कच्छप की पीठ चरमराने लगी। सभी दिशाओं के हाथी (दिक्पाल) चीख मार कर काँपने लगे। पृथ्वी स्वयं भी प्रलय की आशंका में थरथराने लगी। सूर्य की कांति धूलि से आछन्न हो गई और आठों लोकपाल भय के मारे शोक में डूब गये। दिशा-दिशा में धुएँ की तरह

अंधेरा छा गया और समुद्र भी अपनी मर्यादा छोड़ कर सीमा लांघने लगे। इस प्रकार शस्त्रों से शत्रुओं के अंगों का मर्दन करने वाली दोनों सेनाएँ घटा के वेग से उमड़ी और दोनों के मिलते ही चमकती हुई तलवारें चलने लगी। कानों तक खींचे हुए धनुष टंकार करने लगे और वीर युद्ध से नहीं भागने की प्रतिज्ञा करने लगे।

फट्टैं गिरे तुंड मूर्द्धा अलीकाऽऽलि, कट्टैं कढैं नेत्र ओ उच्छटैं पालि॥
भ्रूपक्ष्म ओ कूप बुट्टैं मनों मेह, लोला करैं के कटी नासिका लेह ॥१०॥
छोनी छबैं गल्ल ओ संख के तोम, सोहैं गिरे रत्त मैं मासुरी लोम॥
तुट्टैं उड़ैं तालु त्यों दड्ढ ओ दंस, कट्टे कृकाटी कहों कंधरा अंस ॥११॥
केते चिरैं कंकटी खग्ग की धार, जुज्झार केते करैं पार कट्टार॥
कड्ढैं कहो बीर मांतग के दंत, फट्टैं कहौं पेट ओ उच्छटैं अंत॥१२॥
नच्चैं कहौं बिप्फुरे घुम्मि के रुंड, जच्चैं कहौं धुज्जटी मालकों मुंड॥
डोलैं कहौं डाकिनी रत्त सौ मत्त, मींडैं कहौं जुग्गिनी गत्त सों गत्त॥१३॥

थोड़ी ही देर में रणभूमि में कटे-फटे मस्तक, मुख और ललाट की पंक्तियां गिरने लगी। कहीं पर कट कर निकले हुए नेत्र बिखरने लगे तो कहीं कानों के अग्रभाग गिरने लगे। कहीं पर कटी हुई कुहनियों की, तो कहीं कटी भौंहों की झड़ी सी लगी। कहीं पर कटी हुई जिव्हाएँ नासिका को चाटती सी लगी। कहीं पर कटे हुए गालों और ग्रीवा के समूहों से भूमि पटने लगी। कहीं पर गिरे हुए रक्त सने मूंछों के केश शोभा देने लगे। कहीं पर तालु, दाढें और दाँत टूट कर उछलने लगे। कहीं पर वीरों के कंधे कटने लगे तो कहीं पर कंठ की मणियाँ (कृकाटी) कटने लगीं। कहीं पर तलवार की धार से कवच चिरने लगे और कई योद्धा अपनी कटार को शत्रु देह के पार उतारने लगे। कहीं पर वीर हाथियों के दाँत उखाड़ने लगे तो कहीं पर शत्रु का पेट चीर कर आँतें निकालने लगे। रणभूमि में कहीं पर बिफरे हुए रुंड घूमने लगे और कहीं पर शिव अपनी मुंडमाल के लिए मस्तक माँगने लगे। कहीं पर डाकिनियाँ रक्त से अघाई हुई मस्त फिरने लगीं और कहीं पर योगिनियाँ अपने गात से गात रगड़ने लगीं।

जुट्टैं कहौं जोध के मल्ल संग्राम, फुट्टैं कहौं फील मैं कुंत उद्दाम ॥
कुक्कैं कहौं भीरु व्है सेस कंकाल, हुक्कैं कहौं हायकै घाय बेहाल ॥१४ ॥

दग्गैं कहौं लोप कौं तोप बंदूक, लग्गैं कहौं उच्छलैं फाल मंडूक ॥
चक्खैं कहौं गोद गिद्धी बडी चाह, अक्खैं कहौं साकिनी वाह वाह ॥१५ ॥

कुद्दैं कहौं एकही पाय तैं रुंड, मुंद्दैं कहौं नैन के भू गिरे मुंड ॥
बज्जैं कहौं माधुरी नारदी बीन, पुज्जैं कहौं कालिका लै बपा पीन ॥१६ ॥

फेरैं कहौं भूप है छत्र की छाँह, गेरैं कहौं अच्छरी कंठ मैं बाँह ॥
मारैं कहौं अग्ग व्है खग्ग सामंत, हारैं कहौं उच्चरैं हंत हाहंत ॥१७ ॥

रणभूमि में कहीं पर योद्धा मल्लयुद्ध में संलग्न होने लगे तो कहीं पर उद्दाम भाले हाथियों के शरीर में खुभने लगे। कहीं पर अस्थिपंजर के साबुत बच जाने पर भी कायर कूकने लगे। वहीं कुछ घाव लग जाने पर 'हाय-हाय' करने लगे। कहीं पर शत्रु को लोप करने के लिए तोपें, बन्दूकें चलने लगीं और कहीं पर योद्धा गोली लगते ही मैंढ़क की तरह उछलने लगे। कहीं पर गिद्धनियाँ बड़े चाव से मृतकों का माँस खाने लगीं और कहीं पर शाकिनियाँ, वीरों की प्रशंसा में 'वाह-वाह' उचारने लगीं। कहीं पर रुंड अपनी एक ही टांग पर उछलने लगे तो कहीं पर कटे हुए मस्तक भूमि पर नेत्र बंद कर गिरने लगे। युद्ध को देखकर नारद अपनी मधुर वीणा बजाने लगे। वहीं कुछ वीर अपनी पुष्ट मज्जा से कालिका को आराधने लगे। रणभूमि में कहीं पर छत्र की छाया में राजा अपने घोड़े फिराने लगे और कहीं पर अप्सराएँ वीरों के गले में अपनी बाँहें डालने लगीं। कहीं पर योद्धा आगे बढ़ कर शत्रु पर अपनी तलवार का प्रहार करने लगे। वहीं घावों से भरे हुए कुछ हारे हुए योद्धा हाहाकार करने लगे।

झूमैं कहौं कुंभि के कंठ सो जाय, घुम्मैं कहौं बीर के तीर के घाय ॥
रंगैं कहौं जोध के रत्त मैं मुच्छ, मंगैं कहौं प्रेतनी गोद के गुच्छ ॥१८ ॥

गैमत्थ चोफार फट्टैं कहों तत्त, मनो जगन्नाथ के भत्तके पत्त ॥
बज्जैं कहो वृत सारंग बिस्फार, उड्डैं कहों सोर के जोर अंगार ॥१९ ॥

खज्जूरिसे तुट्टि झंडे झुकैं लोल, जंगी बजे गोमुका भेरिका ढोल ॥
हुल्ले फिरैं निट्ठि कैं भिन्न बेतंड, फल्ले फिरैं फेरवी कोक फेरंड ॥२० ॥

बानैत केते भरैं भूत को बत्थ, सोहैं घनैं मारते संकुले सत्थ ॥
कहूँ कहाँ उच्छटैं चौंर ओ छत्र, पापी छकैं भैरवी लोहितास्पत्र ॥२१ ॥

कहीं पर वीर हाथियों के कंठ से जा लगने लगे तो कहीं पर तीर खा कर चक्कर खाने लगे। कहीं वीर अपनी मूँछें रक्त से रंगने लगे तो प्रेतनियाँ चर्बी का ढेर मांगने लगीं। कहीं पर हाथियों के मस्तक चौफाड़ (चार भागों से विभक्त) होने लगे मानों वे जगन्नाथ के भात की पत्तलें हों। कहीं गोलाकार हुए धनुषों की टंकारें गूंजने लगीं और कहीं पर बारूद के बल पर अंगारे उछलने लगे। कहीं पर खजूर की मानिन्द लम्बे और चपल झण्डे टूट कर गिरने लगे। कहीं पर गोमुखा, ढोल और रणभेरी जैसे वाद्य घनघना उठे। कहीं पर चोट खाये हाथी अंकुश के प्रहारों से ही कठिनाई से काबू में आने लगे और कहीं पर भेड़िये, गीदड़ जैसे माँसाहारी जीव फूल कर कुप्पा होने लगे। कहीं पर योद्धा प्रेतों को बाथ में भर कर पींचने लगे तो कहीं पर वे शत्रु के संकुलित समूह को मारते हुए शोभा पाने लगे। कहीं पर छत्र और चंवर भी कट कर गिरने लगे और कहीं पर देवी भेरवी छक कर रक्त से भरा पात्र पीने लगी।

यौं मेरता खेत मंड्यो महाजुद्ध, जुट्टे भले दक्खिनी काल से क्रुद्ध ॥
संध्या जया भ्रात यौं दत्त गो दोरि, नक्खी बिजैसिंह की फोज झंझोरि ॥२२ ॥

दै मार रट्ठोर डारे घनें कुट्टि, ओ तोपखाँना खजाना लये लुट्टि ॥
संध्या यहै जंग जित्ते बडे जोर, भज्ज्यो बिजैसिंह गो दुग्ग नागोर ॥२३ ॥

मेड़ता की रणभूमि में महासंग्राम मचा जिसमें यमराज की तरह क्रोधित मराठे वीर मोर्चे पर डटे। इस भिड़ंत में जयाजीरात्र का भाई दत्ता सिंधिया शत्रु सेना को काटता-चीरता पार निकल गया। उस अकेले ने विजयसिंह राठौड़ की सेना को झंझोड़ कर रख दिया। उसने कई राठौड़ योद्धाओं को रणभूमि में काट गिराया और जोधपुर की सेना के तोपखाने और खजाने को लूट लिया। इस तरह जयाजीराव सिंधिया की सेना ने अपने पराक्रम से विजय पाई और राजा विजयसिंह रणभूमि से भाग कर नागौर के दुर्ग में जा घुसा।

दोहा

बिजयसिंह मरुभूप भजि, गयो नगर नागोर।
जाय बहादुर हू दुरयो, रूपनगर रट्ठोर ॥२४ ॥

प्रथम बिजयसिंह हिं दमन, जया तबहि बरजोर।
तोपन जाल कराल रचि, गढ बिंट्यो नागोर॥२५॥

राठौड़ राजा बहादुरसिंह भाग कर रूपनगढ़ में जा छिपा और विजयसिंह अपना मारवाड़ प्रदेश छोड़ कर नागौर में जा रहा। बलवान जयाजीराव सिंधिया ने तब भी पीछा नहीं छोड़ा। उसने तुरन्त अपने दल सहित नागौर को जा घेरा। सिंधिया सर्वप्रथम इस राजा विजयसिंह से दण्ड की राशि वसूलना चाहता था।

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रे रूपनगराऽधिराजसामंतसिंह स्वाऽनुजबहादुरसिंह बिग्रह बिस्तरण कलुषिकुहककनिष्टनिष्कासितससून्वग्रजसन्ध्या जयाशरणाऽऽसादन मेदपाटेशराणा प्रतापसिंह मरण तत्सुत राजसिंहोदयपुर पट्टप्रापणसरामसिंह सामन्तसिंह जया योधपुर रूपनगरोद्धरणाऽर्थप्रस्थान श्रुतैतत्स बहादुरसिंह मरूपविजयसिंह सन्मुखाऽऽगमन मेरता नगर महाऽऽयोधन विरचन लुण्टित वैरिविभव जया जयाऽनुष्ठान पलायित विजयनागोर दुर्ग प्रविशनम्लानमुख बहादुरसिंह रूपनगराऽऽगमन प्रस्थितपार्ष्णिपीड़न जयानागोर कोट्टाऽऽवरणीभवनं त्रिचत्वारिंशो मयूखः। आदितः॥३२४॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में रूपनगर के पति सामन्तसिंह और छोटे भाई बहादुरसिंह का विग्रह बढ़ना और पापी (छली) छोटे भाई के निकाले पुत्र सहित बड़े भाई का सिंधिया जया की शरण लेना, मेवाड़ के पति राणा प्रतापसिंह का मरना और उसके पुत्र राजसिंह का उदयपुर का पाट पाना, रामसिंह और सामन्तसिंह सहित जया को जोधपुर और रूपनगर के निकालने के अर्थ गमन सुन कर बहादुरसिंह सहित मारवाड़ के पति विजयसिंह का सम्मुख आना, मेड़ता नगर में बड़ा युद्ध करना और शत्रु के वैभव को लूटकर जया के जय करने से भागकर विजयसिंह का नागौर के गढ में प्रवेश करना और मलीन मुख बहादुरसिंह का रूपनगर में आना, एड़ी दबाते हुए जया का गमन करके नागौर को घेरने का तैंतालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चौबीस मयूख हुए।

प्रायो व्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

बुंदी नृप उम्मेद इत, रामानुज मत धारि।
देस बिथारी रीति दृढ, संप्रदाय अनुसारि ॥१॥
प्रतिमा इक श्रीरंगकी, दक्खिन हिंतु मँगाय।
सिव धृति मित सक सुक्र बदि, एकादसि तिथि पाय ॥२॥
मंदिर महलन माँहिं रचि, सिल्प बिबिध मत सक्त।
बिरचि प्रतिष्ठा निगम बिधि, वह थप्पी अति भक्त ॥३॥
तबतैं यह श्रीरंग को, अतुल पट्ट उच्छाह।
जेठ असित एकादसी, होत राम नरनाह ॥ ४॥
याहि बरस को उज्ज सित, छट्ठी बासर पाय।
भूप भुजिष्याहू जन्यो, सुत गुमानजुत राय ॥ ५॥

हे राजा रामसिंह! इधर बूंदी का राजा उम्मेदसिंह रामानुज सम्प्रदाय का अनुयायी बन गया और उसने अपने पूरे राज्य में दृढ़तापूर्वक इस सम्प्रदाय का प्रसार करवाया। उसने इसके लिए दक्षिण से एक श्रीरंग भगवान की प्रतिमा मंगवाई और विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ ग्यारह के ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि के दिन शुभ मुहूर्त में उसकी प्रतिष्ठा अपने महलों के मध्य निर्मित मन्दिर में करवाई। राजा ने मूर्ति की प्रतिष्ठा वेदोक्त विधि विधान के अनुसार सारी पूजा अर्चना सम्पन्न करवा कर पूरी श्रद्धा के साथ की। हे राजा रामसिंह! यही कारण है कि आज भी ज्येष्ठ माह की कृष्णा एकादशी के दिन बूंदी में श्रीरंग जी के मन्दिर में बड़े पाटोत्सव के आयोजन की परम्परा है। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ ग्यारह के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की छठी तिथि के दिन राजा की गुमानराय नामक पासवान ने राजा के एक पुत्र को जन्म दिया।

नाम तास सिवसिंह दिय, जातक द्विजन बिचारि।
तदनंतर जो वृत्त हुव, सुनहु भूप हित धारि ॥ ६॥
सक जगती धृति माघ सित, सुक्रवार स्मरदीह।
ऊदाउति रानिय जन्यौं, कुमर बहादुरसीह ॥ ७॥

अजितसिंह अरु यह कुमर, सोदर दुव सु कुमार।
बाल छपाकर जिम बढ़त, दिन दिन अधिक उदार॥८॥

बिजयसिंह मरुपाल इत, रुद्ध नगर नागोर।
संध्या को संकट सहत, कछु न जनावत जोर॥ ९॥

बरस इक्क घेरा रह्यो, तोपन लग्गो ताप।
संध्या नहिं जावत सह्यो, दुपहर जेठ दिवाप॥१०॥

इस सद्यजात बालक का नाम पंडितों ने शिवसिंह रखा। इस के बाद जो कुछ घटित हुआ हे राजा! वही आपको कहता हूँ उसे आप हितपूर्वक ध्यान दे कर सुनें। विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ बारह के माघ मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की उदावत वंशीय रानी ने बहादुरसिंह नामक कुमार को जन्म दिया। इस तरह सहोदर कुमार अजीतसिंह और बहादुरसिंह दोनों समय के साथ बड़े होने लगे जैसे द्वितीया तिथि का चन्द्रमा पूर्णमासी का चन्द्र बनने के लिए दिन-दिन बढ़ता रहता है। उधर मारवाड़ का राजा विजयसिंह जो नागौर में जा कर अवरूद्ध हो गया था और वह बलहीन इन दिनों सिंधिया के घेरे का संकट झेल रहा था। सिंधिया जयाजीराव का यह घेरा नागौर पर पूरे एक वर्ष की अवधि तक रहा और निरन्तर तोपों के ताप का प्रभाव रहा। सिंधिया वहाँ से जाने का नाम नहीं ले रहा था। यही कारण रहा कि राजा विजयसिंह को जेठ माह के तपते सूर्य की दुपहरी जैसा ताप निरन्तर सहना पड़ा।

व्याकुल तब बखतेस सुत, चूक बिचारिय चित्त।
दुव इंदे पड़िहार द्रुत, बुल्ले दे बहु बित्त॥११॥

अग्गै सन इंदे रहत, मरु जनपद के माँहिं।
चूक करन मैं जे चतुर, न करैं मरतहु नाँहिं॥१२॥

पावैं मरुपति के पटा, बिनु सेवा रहि गेह।
काम परैं जब चूक को, अप्पैं तब निज देह॥१३॥

करैं यहहि सेवा कठिन, जब तब संभव होय।
इतर काल कढ़ुं घरन, खिजे देत असु खोय॥१४॥

अग्गैं जिन सुमियानगढ, बिजड़ जवन लिय मारि।
मरत डरे नहिं नैंक मन, बिरच्यो चूक बिचारि॥१५॥

ऐसी आपदा वाली परिस्थिति में राजा बखतसिंह के पुत्र विजयसिंह ने मन में छल करने की सोची और उसने दो ईंदा शाखा के पड़िहार क्षत्रियों को बुलवाया फिर धन दे कर उन्हें इस कार्य के लिए लगाया। पूर्व में मारवाड़ जनपद में इन ईंदा क्षत्रियों का बाहुल्य था जो चूक (छल से मारना) करने में माहिर माने जाते थे। वे ऐसे कामों के लिए मर जाते तब भी ना नहीं कहते थे। इनको इसी कारण से राठौड़ राजा जागीर के गाँव देते रहे थे। उनसे चाकरी भी नहीं ली जाती थी बस, जब किसी से चूक करनी होती तब इन्हें याद किया जाता और ये अपनी जान दे कर भी ऐसे जोखिम भरे कार्यों को अंजाम देते। राजा को जब भी ऐसी कठिन सेवा की जरूरत पड़ती ये सदैव तत्पर रहते। शान्तिकाल में ये ईंदा अपना समय सामान्यतः घर में व्यतीत करते पर खीझने पर प्राण देने में भी देरी नहीं लगाते। पूर्व समय में इन्हीं ईंदाओं ने सुमियाणा नगर में बिजड़ नामक यवन को मारा था वह भी छल कपट से। वे मन में मृत्यु से तनिक भी नहीं डरे और कार्य को अजांम दिया।

अभयसिंह मरुईस को, पुनि निज आयस पाय।
पीलू लखपति दक्खिनी, दुव दिय मारि गिराय॥१६॥

कोलौं हम या गति कहैं, इंदन को आचार।
जे रचि बाजी जीव की, खेल्है अजब खिल्हार॥१७॥

तिहिं कुल के दुव बीर तब, इंदे बुल्लिय अत्थ।
कह्यो हनहु संध्या कुटिल, तिन प्रति धन्वप तत्थ॥१८॥

सुनत जया की सेन मैं, अभय बनिक बनि आय।
बनिज बिथार्यो बंचकन, बिपणि बजार बनाय॥१९॥

दुव हि लरे पुनि इक्क दिन, समुझत क्रीत हिसाब।
कल्पित कछु अपराध करि, खिजि खिजि होत खराब॥२०॥

इन ईंदा क्षत्रियों ने पूर्व में मारवाड़ के राजा अभयसिंह की आज्ञा से पीलू और लखपत नामक दो मराठा योद्धाओं को भी मार गिराया था।

हे राजा रामसिंह! मैं (ग्रंथकर्ता) कहाँ तक इन ईंदा क्षत्रियों का आचरण गिनाऊँ। बस इतना समझ लीजिये कि ये ईंदा जान की बाजी लगा कर मौत का अजब खेल खेलने में निष्णात खिलाड़ी होते हैं। इसी ईंदा कुल के ऐसे दो चतुर खिलाड़ियों को विजयसिंह ने नागौर बुलवाया और उन्हें धन दे कर कहा कि इस कुटिल सिंधिया से चूक करो अर्थात् इसे मार गिराओ। यह आदेश सुनते ही वे दोनों ईंदा वीर, बनिये का वेष बना कर सिंधिया के सैन्य शिविर में आये। यहाँ पहुँच कर दोनों ठगों ने व्यापार करने के ढोंग रचाने हेतु दुकानें लगाई फिर एक दिन दोनों ने लेन-देन के हिसाब का बहाना बनाया और आपस में लड़ने लगे। दोनों एक दूजे पर धोखा देने का इल्जाम लगा कर 'तू-तू, मैं-मैं' करते हुए झगड़ पड़े।

बकत परस्पर जैन बनि, उभय तित्थगर आन।
पलटत पायन धौतपट, होत पदत्रन हान॥२१॥

सिथिल पग्घ सिर तैं सरकि, उरझी कंठन आय।
कलम गई गिरि कान तैं, मुख गल स्वास न माय॥२२॥

इक्क कहैं कहिहौं अबहि, गिनि रक्खि मैं गूढ।
मोदक खावत मात तब, मार्‌यो उंदुरु मूढ॥२३॥

जपैं इतर तेरे जनक, छली जिनोद्भित छोरि।
मक्खी दस घृत माँहिं तैं, नक्खि जियत निचोरि॥१४॥

गहत इक्क पत्थर गड्यो, दैबे कौं करि दाब।
खैंचत बिटपन इक्क खिजि, घल्लत गालिन घाव॥२५॥

वे दोनों ठग बनिये आपस में एक दूसरे को गलियां बकते हुए एक दूसरे को तीर्थकरों की शपथ का वास्ता देकर अपनी-अपनी बात को सही ठहराने पर आमादा हुए और अन्ततः अपनी-अपनी धोतियों के पाँयचे संभालते हुए एक दूसरे पर अपनी जूतियों के प्रहार करने लगे। ऐसा करने में उन बनियों के सिर की ढीली बंधी हुई पगड़ियाँ बिखरने लगीं और खुल कर उनके गलों में उलझ गई। उनके कानों में खोंसी हुई कलमें नीचे गिर पड़ी और लड़ने के परिश्रम में उनकी सांस गले और मुँह में नहीं समाने लगी। एक बनिये ने दूसरे को डराने के लिए कहा कि मुझे

तेरे घर के सारे राज पता हैं मैं सारी गूढ बातें जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूं कि तेरी अहिंसक माँ ने एक लड्डू कुतरते चूहे को मारा था। इस पर दूसरे ने प्रत्यारोप लगाते हुए कहा कि मैं भी तेरे घर की बातें जानता हूँ। मैं यहाँ यह बता दूँ कि तेरे बाप (पिता) ने अरिहंतों के अहिंसा धर्म के उपदेशों को भूला कर एक बार घी के बर्तन में दस जीवित मक्खियों को निचोड़ कर बाहर निकाला था अर्थात् घी के कारण उन्हें मसल कर मारा था। इसी बीच बनिये बने हुए ईंदों में से एक ने अपने प्रतिद्वंद्वी को मारने के लिए एक गढ़ा हुआ पत्थर उठाने का प्रयत्न किया तो दूसरे ने प्रतिवाद में गालियाँ बकते हुए प्रहार करने हेतु एक पेड़ को उखाड़ने की गरज से खींचा अर्थात् वे दोनों बनियों की तरह लड़ने का अभिनय करने लगे।

जिम तिम बिरचत करि जतन, अधोबात उतसर्ग।
लखि इत उत बिहसन लगे, बल दक्खिन भट बर्ग॥२६॥

इक मारत मुट्ठी उछरि, खिजि इक दंतन खात।
संध्या की डोढी गये, लरत प्रहारत लात॥२७॥

धौतबसन अंतर दुहुँन, कछि कछि दृढ कोपीन।
दुव असिधेनु दुराय तँहँ, लरन भये इम लीन॥२८॥

लरत बनिक कौतुक लखत, उलट्यो कटक अपार।
प्रहसन रूपक जिम प्रचुर, प्रकट्यो हास्य प्रचार॥२९॥

स्मित कति जन कति जन हसित, बिहसित कतिक बनात।
कतिक करत बक्रोष्टिका, कति अतिहास जनात॥३०॥

पूरे यत्नों से इस तरह का झगड़े का स्वांग करते वे लड़ने के श्रम से अपनी गुदा से अपान वायु त्यागने लगे। यह तमाशा देखने को दक्षिणी सेना के सैनिक उनके चारों ओर घेरा बना कर खड़े हो गए और उन्हें देख-देख कर हँसने लगे। उन दोनों बनियों में से एक उछल कर दूसरे पर मुस्टिका-प्रहार करता तो प्रत्युत्तर में अपनी खीझ का प्रदर्शन करते दूसरा उसे दाँतों से खाने का उपक्रम करता। इस तरह वे लातों का एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लड़ते-लड़ते सिंधिया के शिविर के दरवाजे तक पहुँच गये। इन दोनों बनिया बने ईंदाओं ने अपनी ढीली ढाली धोती

(बनियों की धोती के अनुरूप) के भीतर पहने हुए कच्छे में कसी लंगोट में छुरियाँ छिपा रखी थीं। इन बनियों की ऐसी हास्यास्पद लड़ाई के कौतुक को निहारने के लिए मराठा सेना की टुकड़ियाँ उलट पड़ीं। इस प्रहसन (हास्य-नाटक) के देखने वालों में प्रचुर हास्य पसर गया। (यहाँ ग्रंथकार ने हास्य प्रकारों का वर्णन किया है। **'रसतरंगिणी' के अनुसार हास्य दो प्रकार का होता है एक स्वनिष्ठ (स्वयं पर हँसना) और दूसरा परनिष्ठ (दूसरे की हँसी उड़ाना) ये दोनों प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषों के अनुसार छः प्रकार के हो जाते हैं। इस तरह छः प्रकार के स्वनिष्ठ और छः प्रकार के परनिष्ठ कुल बारह भेद हो जाते हैं। (1) स्मित (2) हासित (3) विहसित (4) उपहसित (5) अपहसित (6) अतिहसित ये छः प्रकार के हास्य स्वनिष्ठ होते हैं और इतने ही अर्थात् छः हास्य प्रकार परनिष्ठ होते हैं)** कई लोग स्मित, तो कुछ हसित और कई विहसित हास्य करने लगे। कुछ में वक्रोष्ठिका और कुछ में अतिहास प्रकट हुआ।

अट्टहास कतिकन उदित, आच्छुरितक कति अंग।
कतिकन अवहसित रु कतिन, परि उपहसित प्रसंग॥३१॥

कहुँ दृग विकसन संकुचन, ओठ फुरकन हु उप्पि।
बढ्यो प्रमथदेवत बिसद, रस संध्या छल रूप्पि॥३२॥

करत्र दंतधावन करम, जया पटालय जत्थ।
कोतुक यह अक्ख्यो कतिन, तासों जाय रु तत्थ॥३३॥

बनिक लरत देखे बहुत, मुट्ठी मल्लक मार।
पै इक रारि अपुब्ब प्रभु, दरसनीय निज द्वार॥३४॥

देखत जन पकरत उदर, दुस्सह हसन दुखात।
कोतूहल यह लखन को, जुरे छुरैं नहिँ जात॥३५॥

कई दर्शकगण उन ईंदा क्षत्रियों के करतबों पर अट्टहास कर उठे तो कुछ आच्छुरितक हास्य हँसने लगे। कुछ लोगों ने अवहसित तो कुछ ने उपहसित हास्य का आश्रय लिया। दर्शकगणों में से कुछ के नैत्र बिस्फारित होकर संकुचित होने लगे। कुछ हँसने की प्रविधि में अपने होठ फुरकाने

लगे। इस तरह सिंधिया की सेना ऐसे हास्य रस में मग्न होकर थीं वहीं ठिठक गई। वह हास्य रस जिसका देवता शिव हैं और जिसका रंग श्वेत कहा जाता है वह सभी ओर छा गया। इस समय अपने शिविर के बाहर जयाजीराव सिंधिया दतौन कर पानी से कुल्ले कर रहा था तभी कुछ लोगों ने उसे बनियों की इस लड़ाई के कौतुक की खबर दी। उन्होंने कहा कि हे स्वामी! अब तक हमने कई बनियों को मुष्ठिप्रहार करते हुए लड़ते देखा है पर आज आपके शिविर के आगे बनियों की दर्शनीय लड़ाई हो रही है। सभी देखने वाले अपना पेट पकड़े हँस-हँस कर निढाल हुए जा रहे हैं फिर भी कुतूहल भरे दृश्य को देखने से बाज नहीं आ रहे। वे अपनी जगह से बिना हिले निरन्तर हँसने में संलग्न हैं।

संध्या के सिर यह सुनत, अंतक छायो आय।
बुल्ल्यो तब बुल्लहु बनिक, निरखि निवैरं न्याय॥३६॥

इम भाखत सँहँसन अनुग, दंभिन लाये दोरि।
लातन नख दंतन लरत, झुकत गये झंझोरि॥३७॥

अति समीप जावत अटक, प्रतिहारन किय पूर।
रारि तदपि अदभुत रचत, दंभी न रहे दूर॥३८॥

कहत इक्क अपराध करि, मारत यह पुनि मोहि।
इतर कहत संध्या अधिप, करत न्याय सबकोहि॥३९॥

तू सठ तोलत छद्म तकि, लुट्टि अजानन लेत।
धटिकादिक मन के धरत, दीनन ऊनित देत॥४०॥

अपने सेवकों से ऐसी बात सुनते ही सिंधिया जयाजीराव ने काल के वश में होकर कहा कि यदि यह बात है तो उन बनिकों को यहाँ बुला लाओ। मैं उनका न्याय कर झगड़ा मिटवा दूंगा। अपने स्वामी से वह सुनते ही कई सेवक भागे-भागे गए और लातों और दाँतों से लड़ने वाले उन दोनों बनिकों को न्याय दिलाने को लेकर आए। वे दोनों बनिक कहीं लड़ते-लड़ते सिंधिया के करीब न चले जाये यह सोच कर द्वारपालों ने उन्हें आगे जाने से रोकना चाहा पर व्यर्थ वे दोनों तो और अधिक रोचक लड़ाई करते हुए सिंधिया के और अधिक पास हो गये। इनमें से एक ने

दूसरे की शिकायत करते हुए कहा कि एक तो इसने गलती की और ऊपर से मुझे मारने भी लग गया। दूसरे ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि हे सिंधिया स्वामी! आप सभी का न्याय करने वाले हैं! तनिक इसका भी फैसला करना कि यह दुष्ट कम तोल कर बेचारे भोले भाले ग्राहकों को ठगता है! यह तराजू के पलड़े में मनमाने नकली बाट धरता है और गरीबों को कम तोलता है!

पुनि कहि इम दंतन पयन, लरे नखन रिस लाय।
तालिन दै संध्या तकै, गालिन देत गिनाय॥४१॥

कढ्ढि छुरिन जावत निकट, दई जया उर दोरि।
गटकत हिय कालिक गई, फोरी पंजर फोरि॥४२॥

देत समय बुल्ले दुव हि, होत अचानक हाक।
कहिये संध्या न्याय करि, को हम माँहिं कजाक॥४३॥

भाखि यह रु सत्वर भजत, मार्‍यो इक असि मार।
कढिगो इक रोवत कुहक, इक्खहु यह अंधार॥४४॥

उसने आगे कहा कि हे स्वामी! इसने मुझे दांतों से काट खाया। यह देखो, यहाँ लातें मारी और यहाँ नाखून मारे हैं। ताली बजा कर सिंधिया का ध्यान अपनी ओर खींचते हुए वह गालियाँ गिनाने लगा जो उसके प्रतिद्वंद्वी ने दी थी। इसी समय दूसरा स्वांगधारी बनिया उचित अवसर देख कर सिंधिया के करीब गया और उसने एक झटके से अपने अधोवस्त्र में छिपाई छुरी निकाली और उसे सिंधिया की छाती में गोंप दिया। वह छुरी जयाजीराव का हृदय और कलेजा चीरती हुई तुरन्त उसके शरीर को भेदती हुई निकल गई। यह घटना होते ही सेना में खलबली मच गई। इसी समय उन दोनों बनिया बने हुए ईंदा क्षत्रियों ने सिंधिया से पूछा कि अब आप न्याय करना कि हम दोनों में से वार करने वाला छली कौन है? इतना कह कर दोनों ईंदा वहाँ से भागने लगे। इनमें से एक ईंदा क्षत्रिय को तो भागते हुए संधिया के सैनिकों ने अपनी तलवार के प्रहार से काट गिराया जब कि दूसरा कपटी वहाँ से रोते रोते यह कहते हुए साफ बच निकला कि यहाँ न्याय नहीं, देखो, कैसा अन्याय किया।

षट्पात्

कोलाहल हुव कटक मरत संध्या कुल इन के,
भये रुदन के छिप्र दुंदुभि छत्तिन के।
बिजैसिंह मरुईस सुनत किय मोद सिवायो,
अभयसिंह सुत अधम पिहुल आतुर दुख पायो।
सक दुव मृगांक बसु इक समय धिठ्ठन इम छल बेस धरि।
मरुपाल साल संध्यामय सु कढ्यो इंदन इम जतन करि॥४५॥

सिंधिया कुल के स्वामी जयाजीराव के इस तरह मारे जाने पर उसकी सेना में हाहाकार मच गया। शीघ्र ही उसके परिजन और सेवक अपनी छाती रूपी दुंदुभियों को पीटते हुए रुदन-राग निकालने लगे। अर्थात् छाती पीट-पीट कर रोने लगे। सिंधिया के मारे जाने की खबर पा कर मारवाड़ के राजा विजयसिंह ने खुशियां मनाई वहीं अभयसिंह के दुष्ट पुत्र को गहरा धक्का लगा। उसे बहुत दुःख हुआ। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बारह में उन ढीठ ईंदा क्षत्रियों ने बनिये का स्वांग रच कर मारवाड़ के स्वामी के उर में लगे सिंधिया रूपी कांटे को अपने प्रयत्नों से खींच निकाला।

दोहा

जया तनय जनकू जबहि, पट्ट जनक को पाय।
बिंटि रह्यो नागोर बलि, तोपन रारि रचाय॥४६॥

अपने पिता जयाजीराव के इस तरह मारे जाने पर जनकूजी राव सिंधिया ने अपने पिता का स्थान लिया। वह नागौर को उसी तरह घेरे रहा और उसने अपनी तोपों से घमासान मचाने की योजना को पूरा करने की ठानी।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे बुन्दीश्वरनिजा ऽऽलयरचित सुमन्दिर श्रीरंग प्रतिष्ठापनिनजरा-ज्यूदाउत्त्यौरसराजकुमार बहादुरसिंहोद्गमन कुमार शिवसिंहभुजिष्याजठर जन्मप्रापण नागोर दुर्गस्थरठ्ठोड़विजयसिंह व्याकुली भवन तत्प्रेषित कृत वणिग्वेशेन्दोपरटकिं प्रतिहारद्वय जयामारणप्राप्तजन-काऽधिकारतत्पुत्रजनकू नागोररणरचनं चतुश्चत्वारिंशो मयूखः। आदितः॥३२५॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में बून्दी के पति का अपने महलों में बनाये हुए श्रेष्ठ मंदिर में श्रीरंग की प्रतिष्ठा करना और अपनी रानी ऊदाउती के उदर से राजकुमार बहादुरसिंह का जन्म होना, कुँवर शिवसिंह का दासी के पेट से जन्म पाना, नागौर के गढ़ में स्थित राठौड़ विजयसिंह का व्याकुल होना और उस के भेजे बनियों के वेशवाले (ईंदा पदवीवाले) दो पड़िहारों का जया क़ो मारना, पिता का अधिकार पाकर उसके पुत्र जनकू का नागौर में युद्ध रचने का चवालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आद से तीन सौ पच्चीस मयूख हुए।

प्रायोब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

रोला

बिजयसिंह कौं बिंटि कलह जनकू व्याकुल किय।
करि तब संधि कबंध दम्म दसलक्ख दंड दिय॥
जनक लयो अजमेर अब सु पच्छो डरि अप्प्यो।
बलि संभरपुर बंट थान दायाद हिँ थप्प्यो॥१॥
निलय जया के नाम बिबिध मंजुल बनवाये।
मेरता रु नागोर लरजि बहु दम्म लगाये॥
करि जनकू अब कुंच अनखि पच्छो मुरि आयो।
रूपनगर सन रारि बिरचि रट्ठोर दबायो॥२॥

हे राजा रामसिंह! तब नागौर के चारों ओर अपनी सेना का मजबूत घेरा देकर जनकूजी राव सिंधिया ने विजयसिंह राठौड़ को परेशान कर डाला। जब अन्य कोई चारा नहीं रहा तो राठौड़ राजा ने संधि का प्रस्ताव रखा। इस पर सिंधिया ने उससे दस लाख रुपयों का दण्ड वसूल किया। यही नहीं विजयसिंह के पिता ने पूर्व में अजमेर पर अधिकार किया था उसे भी डर के मारे वापस करना पड़ा। इसके अतिरिक्त सांभर की जागीर में से आधा हिस्सा उसे अपने भाई को देना पड़ा। इसके साथ ही उसे मेड़ता और नागौर में काफी पैसा खर्च कर जयाजीराव सिंधिया के नाम पर सुन्दर निर्माण करवाने पड़े। अर्थात् भयभीत विजयसिंह को यह सभी कुछ करना पड़ा। इतना करने के बाद ही जनकू सिंधिया ने अपनी सेना

के साथ नागौर से कूच किया। पर वह वापस मुड़ कर रूपनगढ़ पर कुपित हुआ और उसने बहादुरसिंह राठौड़ को जा दबाया।

सकुचि बहादुरसिंह मन्नि अतिबल मरहट्ठन।
आनि मिल्यो डर आनि प्रकट दिखराय नम्रपन॥
रूपनगर खाली कराय सामंतहिँ दिन्नों।
याहि कृष्णगढ अप्पि कुंच जनकू पुनि किन्नौं॥ ३॥

काका दत्ता संग बहुरि समसेरबहादुर।
सुत बाजराय सौं एह जनम्यौं जवनी उर॥
इन दोउन जुत उलटि धप्यो जनकू दक्खिन धर।
बुंदिय आवत भूप जाय सम्मुह लायो घर॥ ४॥

सिंधिया के कुपित हो रूपनगढ पर चढ़ आने की सुन कर बहादुरसिंह मन ही मन डर गया। उसे इस बात का भय था कि मराठों की सेना बहुत बलशाली है। इस भय से बहादुरसिंह सिंधिया के सामने चला कर गया और विनम्रता का प्रदर्शन किया। सिंधिया ने तब उससे रूपनगढ़ खाली करवा कर सामन्तसिंह को दिया और किशनगढ़ बहादुरसिंह के अधिकार में रखा। इतना करने के बाद जनकूजी राव सिंधिया ने अपने चाचा दत्ताराव के साथ वहाँ से कूच किया। इस समय सिंधिया के साथ शमशेर बहादुर भी था जो बाजीराव की यवन पासवान के गर्भ से जन्मा था। इन दोनों के साथ सिंधिया शीघ्र ही वापस दक्षिण की ओर चला। रास्ते में इस सैन्य काफिले के बूंदी पहुँचने पर वहाँ के राजा ने सामने आकर स्वागत किया।

सबको करि सतकार मंडि मंजुल महिमानी।
संभर दिय पुनि सिक्ख विहित हित मय कहि बानी॥
कोटापति अत कुमति अधिक चक्खी आकूती।
बाजीकरन बिनोद आनि मंडन रत ऊती॥५॥

तास नसा करि तबहि खेद हुव देह खपावन।
अतिजगती धृति अब्द श्राम बरखा ऋतु श्रावन॥
बेलक कृष्णाबिलास व्याधि करि देह विहायो।
सचिव झल्ल मदनेस बेग तब अजित बुलायो॥ ६॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने सभी का सत्कार कर सुन्दर मेहमाननवाजी की। इसके बाद चहुवान राजा ने दोनों पक्षों के हित की बातें की और सिंधिया के दल को विदा किया। उधर कोटा के कुमति राजा ने बाजीकरन (घोड़े के समान मैथुन करने को आयुर्वेद में बाजीकरन कहा जाता है।) के उत्साह में रति क्रीड़ा पर अधिक जोर देना आरंभ किया और इसके लिए माजुम (भांग) के नशे का सेवन भी अधिक करने लगा जिससे उसे देह क्षय का रोग लग गया। इसके कारण विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तेरह की पावस ऋतु के श्रावन माह में कृष्णविलास नामक अपने बाग के महलों में बीमार हाड़ा राजा का देहावसान हो गया। राजा की मृत्यु को देख कर कोटा राज के सचिव मदनसिंह झाला ने तुरन्त अजीतसिंह को बुलावा भेजा।

द्विज इक दानतिराय द्रंग अनता पठयो द्रुत।
बिष्णुसिंह नाती सु अजित बुल्ल्यो पित्थल सुत॥
याकौं तब द्विज एह लघुहि अनता सन लायो।
अब्द पचास अवस्थ वृद्ध गद्दिय बैठायो॥ ७॥

झाला मदनसिंह ने इसके लिए एक ब्राह्मण दानराय को शीघ्र अन्ता भेजा और वहाँ से विष्णुसिंह हाड़ा के पौत्र और पृथ्वीसिंह के पुत्र अजीतसिंह को बुलवाया। वह ब्राह्मण शीघ्र ही अंता पहुँचा और अजीतसिंह को अपने साथ लेकर तुरन्त कोटा आया। अजीतसिंह जो अभी पचास वर्ष की वय वाला था वह कोटा की राजगद्दी पर बिठाया गया अर्थात् उसे नया राजा बनाया गया।

दोहा

इत सन्ध्या उज्जैन तैं, यह सुनि दत्ता आय।
कोटा बिंटिय अनख करि, सेना अयुत सजाय॥ ८॥

बुल्ल्यो हमरे हुकम बिनु, अजितसिंह हुव ईस।
अप्पहु यातैं दंड अब, श्रीमंत हि गिनि सीस॥ ९॥

मुद्रा बारह लक्ख मित, दिन्नी तब सहि दंड।
दक्खिन को फैल्यो दुसह, ऐसो तहर अखंड॥१०॥

कोटा के नये राजा बनाये जाने की बात सिंधिया ने सुनी तो उसने अपने चाचा दत्ताराव को सेना सहित उज्जैन से भेजा। दत्ताराव ने दस हजार की संख्या वाली सेना के साथ शीघ्र ही कोटा पहुँच कर उसे घेर लिया। इसके बाद उसने कहलाया कि हमारी अनुमति के बिना ही अजीतसिंह को राजा कैसे बना दिया गया? इसके लिए अब कोटा को दंड की राशि श्रीमंत को देनी पड़ेगी तब आखिर में बारह लाख रुपयों की राशि का दंड तय किया गया और दक्षिण की मराठा सेना ने वह कोटा से वसूल किया। इस घटना से मराठों का दबदबा इस इलाके में पहले से कहीं अधिक बढ़ गया।

आयो इत उत्तरि अटक, उद्धत कटक अमान।
मारक नादरसाह को, अहमदसाह पठान॥११॥

सक अतिजगती धृति समा, व्यापत समय बसंत।
किन्नीं जिहिं मथुरा कतल, हत्या पर सठ हंत॥१२॥

आतप कातर पुनि गयउ, ग्रीखम लग्गत गेह।
मनुज हजारन मारिकैं, ओतु स्नुनन जुत एह॥१३॥

उधर अटक नदी को पार कर जंगी उद्धत फौज के साथ नादिरशाह को मारने वाला अहमदशाह पठान आर्यावर्त्त पर चढ़ आया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बारह की बसंत ऋतु के समय अहमदशाह ने मथुरा पर चढ़ाई कर वहाँ कत्ले आम मचाया। उस दुष्ट ने मथुरा में परम हिंसा का ताण्डव मचाया। मथुरा जनपद की गर्मी के आतप से परेशान होकर वह हजारों आदमियों का कत्ल करने वाला अहमदशाह पठान अपने कुत्तों बिल्लियों के साथ गर्मी के आगमन को देख कर वापस अपने वतन को लौट गया।

पादाकुलकम्

पुर मकसूदाबाद ललामक, सुहि मुरसिदाबाद जुग नामक॥
बंगदेस अंतर तद्वासक, जवन सिराजुद्दोला सासक॥१४॥

जिहिं इंग्रेज जमत इत जानैं, पुनि करि अमल बढत पहिचानैं॥
सचिव कोहु तस पुर ढाका सन, धुत्त अछुंत लै भज्यो बहु धन॥१५॥

सपै रह्यो अंग्रेजन सरनैं, बल जिनको सब सिर जग बरनै ॥
इत्यादिक हेतुन नबाब यह, सजि पैठो कलकत्ता साग्रह ॥१६ ॥

जित्ति पुर सु सहसन सेना जुत, दुर्ग फोर्टबिलियम लिन्नौं द्रुत ॥
पुर जिंहिं रस चउ ससि मित पाये, जे अंग्रेज प्रबल पकराये ॥१७ ॥

इधर मकसूदाबाद और मुर्सिदाबाद जैसे नगरों वाले बंग देश का शासक नवाब सिराजुद्दोला था उसने जब यह देखा कि अंग्रेज लोग उसके इलाके में जमने की कोशिश में हैं। ये यहाँ जम कर अपने अमल के क्षेत्र का विस्तार करेंगे। उसे यह पसन्द नहीं था। इसी बीच उसका एक सचिव राजधानी ढाका से बहुत सारा धन लेकर भाग छूटा और वह सचिव अंग्रेजों की शरण में चला गया। उस सचिव ने सोचा कि प्रभुत्ता सम्पन्न इन अंग्रेजों से कौन टक्कर ले सकता है पर नवाब सिराजुद्दोला के लिए यह बात असहनीय हो गई कि उसके अपराधी को अंग्रेजों ने अपनी शरण में रखा है वह तुरन्त अपनी सेना सज्जित कर कलकत्ता पर चढ़ आया। सिराजुद्दोला ने कलकत्ता नगर को शीघ्र ही फतह कर लिया और अपनी बड़ी फौज के आसरे फोर्ट विलियम नामक अंग्रेजों के दुर्ग पर भी उसने अधिकार कर लिया। यही नहीं कलकत्ता नगर में जो एक सौ छियालीस अंग्रेज अधिकारी उसके हाथ लगे उन्हें उसने बंदी बना लिया।

अति संकट कारा ते अटके, पै माये न तदपिन्तँहँ पटके ॥
इहिं संकट कैदी व्याकुल अति, गुन रवि मित दबि मरे कीट गति ॥१८ ॥

जियत बचे तेईस प्रात जिम, मंदराज यँहँ सुद्धि सुनी इम ॥
तब कर्नेल क्लेव साहब तह, सज्जि लरन नवसत गोरन सह ॥१९ ॥

सत पंद्रह मित अवर सिपाहन, द्रुत आयो अहितन हियदाहन ॥
आश्रम ससि बसु ससि सक आगम, समर रच्यो सुचि गिम्ह समागम ॥२० ॥

कलकत्ता जित्ति सु अरि काढे, बलि नवाब उत्तर दल बाढे ॥
सत्त अयुत बल सह अग्रेसर, सज्यो नबाब पलासी संगर ॥ २१ ॥

भिरत भज्यो सु काल तोपन करि, लह्यो बिजय अंग्रेज अतुल लरि ॥
अमल कंपनी को तादिन उत, देस बंग बिच कछुक जम्यो द्रुत ॥ २२ ॥

नवाब सिराजुद्दोला ने अपने पकड़े हुए प्रबल शत्रु अंग्रेजों को

कारावास में ला पटका। कारागृह संकरा था तब भी उसने सारे अंग्रेजों को उसमें ठूंस दिया। कारागृह में इतनी जगह नहीं थी इसलिए जबरन ठूंसे गये इन अंग्रेज अधिकारियों में से एक सौ तेईस दब कर कीड़े-मकोड़ों की मौत मर गये। मात्र तेईस अंग्रेज जीवित बचे इसकी खबर जब कर्नल क्लाइव ने सुनी तो वह तुरन्त अपने एक सौ नौ अंग्रेज साथियों के साथ पन्द्रह सौ काले (देसी) सैनिक संग ले अपने शत्रु का जी जलाने को मुठभेड़ करने आ धमका। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौदह के आषाढ़ माह के शुक्ल पक्ष में दोनों पक्षों का (काले और गोरों का) घमासान मचाने हेतु समागम हुआ। कर्नल क्लाइव की इस सेना ने शीघ्र ही कलकत्ता को फिर से अपने अधिकार में ले लिया और नवाब सिराजुद्दोला की सेना को उत्तर दिशा में खदेड़ दिया। इसके बाद नवाब सिराजुद्दोला अपनी सात हजार की संख्या वाली सेना को सज्जित कर आगे होकर अंग्रेजों से मोर्चा लेने को प्लासी की रणभूमि में गया पर यहाँ मुठभेड़ होते ही उसकी सेना अंग्रेजों की आग उगलती तोपों के समक्ष अधिक देर तक नहीं ठहर पाई और अंग्रेजों ने सहज ही यह युद्ध जीत लिया। बस, उसी दिन से बंग देश पर अंग्रेजों ने थोड़ा-थोड़ा कर शीघ्र पूरा अधिकार कर लिया।

दोहा

इंद्रगढाधिप देव इत, पाप कुमाय प्रमत्त।
नृपके सोदर दीप पँहँ, पठये जैपुर पत्त॥२३॥

यह उदंत तिनमैं लिख्यो, अब डरि भूप उमेद।
अप्पहि लैन अमात्य कौं, भेजहि लखि द्रुत भेद॥२४॥

मनहु मनायें मति सुमति, रक्खहु धीरज रंच।
बिन्नति इस दक्खिन बिखय, पठई नीति प्रपंच॥२५॥

कछु बसु नजरि निवेदि कैं, लै श्रीमंत निदेस।
अप्पहिँ हम करिहैं अरहि, बुंदीनगर नरेस॥२६॥

भावी बसि ए भूप के, पाये दूतन पत्र।
नृप उमेद देवहिँ गिन्यों, ए सुनि पाप अमत्र॥ २७॥

इधर इन्द्रगढ़ के स्वामी देवसिंह ने अपने स्वामी से विमुख होने का पाप कमाया और इस पाप में प्रमत्त उसने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के

छोटे भाई दीपसिंह के पास जयपुर पत्र लिख कर भेजे। इन पत्रों में क्या लिखा गया है अर्थात् क्या नई योजना बनाई जा रही है। इसको जानने के लिए हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने आमात्य को जयपुर भेजा। तब पता चला कि देवसिंह ने इन पत्रों के माध्यम से दीपसिंह के पास यह संदेश भिजवाया था कि हे बुद्धिमान दीपसिंह ! आप थोड़ा धैर्य रखें हमने कूट योजना बना कर दक्षिण के श्रीमंत को अपनी यह विनती भिजवाई है कि वे थोड़ा धन लेकर हमें अपनी स्वीकृति दे दे फिर तो हम शीघ्र ही आपको बूंदी का राजा बना देंगे। भाग्य के संयोग से देवसिंह द्वारा लिखे गये ये पत्र हाड़ा राजा के दूतों को प्राप्त हो गये। इन्हें देख कर राजा उम्मेदसिंह ने तब इन्द्रगढ़ के स्वामी देवसिंह को निरा पाप का पात्र समझा अर्थात् उसे स्वामिधर्म का उल्लंघन करने वाला पापी माना।

गीतिका

इत सक्करी धृति अब्द लग्गत सेन दक्खिन तैं चली।
रघुनाथ मालिक नन्ह सोदर ओ मलार बढे बली॥
दल आत बुंदिय के समीप नरेस सम्मुह जात भो।
महिमानि दै इक रत्ति रक्खि रु देव पत्र दिखात भो॥२८॥
रघुनाथ पत्त मलार संजुत बंचिकै नृप कैं कह्यो।
तुम ईस मारहु देवसिंहहि पाप पापिय ज्यों चह्यो॥
करि कुंच यों कहि दक्खिनी जयनैर छोनिय संचरे।
गढ भोम नामक बिंटि कोपन जाल तोपन के जरे॥२९॥

इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौदह के आरंभ में मराठों की सेना ने दक्षिण से प्रयाण रचा। इस सेना में श्रीमंत नन्ह का सहोदर रघुनाथ जो सेनापति था वह मल्हारराव होल्कर को संग लेकर रवाना हुआ। जब यह मराठा सेना बूंदी के करीब पहुँची तो इस सेना के आगमन का समाचार पा कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह स्वागत करने को अगवानी करने गया। उसने सारी सेना को एक रात अपने यहाँ बतौर मेहमान बना कर रखा और इसी समय हाड़ा राजा ने देवसिंह के लिखे पत्र अपने मित्र मल्हारराव को दिखलाये। मल्हारराव और रघुनाथ ने संयुक्त रूप से जब उन पत्रों को पढ़ा तो उन्होंने हाड़ा राजा से कहा कि आप मालिक हैं।

आप चाहें तो अपने स्वामी के प्रति अधर्म करने वाले देवसिंह को मार डालें। यह आपका अधिकार है। इतना कह कर मराठा सेना बूंदी से कूच कर जयपुर राज की सीमा में गई। इस सेना ने जाते ही अपनी तोपों से भोमगढ़ नामक दुर्ग को जा घेरा।

कछवाह के भट ते भजे सब भोम दुग्गहिं छोरि कैं।
इन आन मंडियअप्पनी ततकाल जो गढ छोरि कैं॥
पुनि टोंक पत्तन घेरि घत्तन देस जैपुर को दल्यो।
कछवाह माधव भूप सो सुनि आजि को नहिं उज्झल्यो॥३०॥

भोमगढ़ में दुर्ग की रक्षार्थ जितने भी कछवाहे योद्धा तैनात थे वे सभी बिना ही शत्रु सेना का मुकाबला किये वहाँ से भाग खड़े हुए। मराठा सेना ने तब शीघ्र ही गढ़ को फतह कर उस इलाके में अपनी आन की दुहाई फिरवाई। इससे आगे बढ़ कर मराठा सेना ने टोंक नामक नगर को जा घेरा और इस प्रकार जयपुर के राज्य का प्रदेश दबाने लगे। कछवाहा राजा माधवसिंह तब भी मुकाबले के लिए युद्ध करने को तत्पर नहीं हुआ। वह यह सभी सुनकर भी चुप बैठ रहा।

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे जया वैर निमित्तजन कूदण्डितविजयसिंह दमद्रम्मलक्ष दशक सहिताऽजमेरद्रङ्गःमहाराष्ट्रनिवेदनसम्भरपुर विभाग रामसिंहाऽर्पणमेरता नागोर सन्ध्यासद्मनिर्मापन प्रस्थित जनकू रूपनगर भारक्षेपणतत्पुर सामन्त सिंहीयकरण बहादुरसिंहाऽर्थकृष्णगढ दापन बुन्दीद क्षिणयियासुससैन्य सन्ध्याभोजन काटेशदुर्जनशल्य मातुलानीमत्त मृत्युप्रापण सचिवा-ऽऽदितत्पट्टाऽनतेशाऽजितसिंह बन्धन तन्निमित्तसन्ध्यादत्तद्वादशलक्ष कोटादण्डद्रम्मसमुद्धरणलर्घित करतोयानादरषाहमारकपठानाऽहम-दषाहकुमारिका गमन मथुरामहापुरी प्राणिमात्रप्राण वियोजन सोदरदीपसिंह सम्बन्धिदेवसिंहविरचितवर्ण दूत बुन्दीन्द्रदर्शन समह्मरनन्हाऽनुजरघुनाथ-रायोदगागमनदर्शित देवसिंह दल सम्भरेश तत्सन्मनननीत भौमदुर्ग-महाराष्ट्रजयपुरदेशदलनं पंचचत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में जया के वैर के कारण विजयसिंह को दण्ड देकर जनकू का दस

लाख रुपये सहित भेंट में मिले अजमेर नगर को मराठों के अधिकार में लेना और रामसिंह को हिस्से में साँभर पुर देना, मेड़ता और नागौर में सिंधिया के स्मारक बना कर जनकू सिंधिया का रूपनगर पर दवाब डालना और उस पुर को सामन्तसिंह को दे कर बहादुरसिंह को किशनगढ़ देना, दक्षिण जाने की इच्छा वाले सिंधिया का सेना सहित तब बून्दी में भोजन करना और कोटा के राजा का माजूम सेवन से मरना, सचिव आदि का उसका सिरपेच अंता नगर के पति अजीतसिंह के सिर पर बांध कर उसे राजा बनाना और उसके कारण सिंधिया के किये दण्ड के बारह लाख रुपये कोटा से लेना, अटक नदी लांघ कर नादरशाह के मारने वाले पठान अहमदशाह का आर्यावर्त में आकर मथुरा में प्राणी मात्र के प्राणों का वियोग करना (मारना), छोटे सगे भाई दीपसिंह सम्बन्धी देवसिंह के रचे हुए पत्रों को बून्दी के पति का देखना और मल्हार व नन्ह के छोटे भाई रघुनाथराव का उत्तर दिशा में आना, देवसिंह के पत्र दिखाकर चहुवाणों के पति का उनका सम्मान करना और भोमगढ को लेकर मराठों की सेना का जयपुर के देश को पीसने का पैंतालींसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छब्बीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

नृप उमेद करउर नगर, इत गय अवसर पाय।
देव रु दोलतसिंह दुव, इहाँ जनक सुत आय॥१॥
नति जुत लग्गे नृपति पय, बैठे मिसल बिचारि।
कह्यो भूप तुम हित करत, स्वामि धरम अनुसारि ॥ २॥
इंद्रगढेश्वर देव इह, बुल्ल्यो अनृत बनाय।
सेवक हम प्रभु के सकल, करैं हुकम मन काय॥३॥

हे राजा रामसिंह! इधर बून्दी का हाड़ा राजा उम्मेदसिंह अवसर निकाल कर करउर नगर को गया। इस समय वहाँ देवसिंह अपने पुत्र दौलतसिंह के साथ आया हुआ था। दोनों पिता-पुत्र ने हाड़ा राजा को झुक कर पूरी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए जुहार किया और मिसल में यथा स्थान बैठे तब हाड़ा राजा ने पूछा कि हे देवसिंह! क्या तुम स्वामिधर्म के अनुसार राज्य का हित सोचते हुए व्यवहार कर रहे हो? इस पर वह इन्द्रगढ का स्वामी झूठ का सहारा

ले कर कहने लगा कि हे मालिक! हम तो आपके दास हैं आप कोई आज्ञा कर देखें। हम मन वचन से उसे पूरा करने को तत्पर रहते हैं।

मनहंसः

सुनिकैं इतेक नरेस वे दल बुल्लि कैं,
उनकौं दये उनके लिखे सब खुल्लि कैं॥
तिन्ह बंचि देव सिटाय नाँ कछु बुल्लयो॥
तब भूप कुप्पि निदेस मारन को दयो॥४॥
रु कही दयो हय नाँहि सो हम भुल्लये॥
तुमनैं तथापि बिरोध बीज इते बये॥
कहि यों हन्यों वह देव सोक सम्हारतैं॥
पकर्यो सु दोलतसिंह खग्ग निकारतैं॥५॥
करि कैद बुंदिय दुग्ग ताकैंहैं प्रेसयो॥
अरु अप्प इन्द्रगढाख्य पत्तन मैं गयो॥
निज आन मंडिय रक्खि हाकिम व्हाँ भले॥
उनके बधूजन नैनवा सब मुक्कले॥६॥

देवसिंह के ऐसा कहने पर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने वे पत्र मंगवाये जो देवसिंह ने जयपुर में दीपसिंह को लिखे थे। पत्र आने पर राजा ने कहा कि इन पत्रों को देखते हो? अच्छी तरह देखो कि तुमने क्या लिखा है? पत्रों को पढ़ते ही देवसिंह अचकचा कर चुप हो गया। उससे कुछ भी कहते न बना तब हाड़ा राजा ने उसे मारने का हुक्म जारी करते हुए कहा कि पूर्व में मैंने तुमसे घोड़ा मांगा था वह तुमने नहीं दिया। उस हुक्मअदूली को मैंने जानबूझ कर भुला दिया पर तुम हमारे विरोध के बीज बोते रहे। ऐसा कह कर राजा उम्मेदसिंह ने देवसिंह को मार गिराया और प्रतिरोध के लिये अपनी तलवार निकालते हुए उसके पुत्र दौलतसिंह को बन्दी बना लिया। हाड़ा राजा ने तब दौलतसिंह को बून्दी के दुर्ग में ले जा कर कैद करने का आदेश दिया। इसके बाद हाड़ा राजा वहाँ से चल कर इन्द्रगढ पहुँचा। वहाँ नगर में अपनी आन की दुहाई फिरवाई और इस विजित परगने पर अपना हाकिम नियुक्त किया। राजा ने तभी देवसिंह के जनाना की सभी स्त्रियों को इन्द्रगढ से नैनवा नगर भिजवा दिया।

नृप नैं इम पत्तन इंद्रगढाख्य लयो,
रहिकैं कछु बासर केतन गड्डि दयो॥
पुनि लैन परग्गन कों पृतना पठई,
भट ता बिच मुख्य सु तोक भयो बिजई॥ ७॥
ध्वजिनी यह बुंदिय आन रचंत फिरैं,
भट कोउ न ताहन सत्रु दकालि भिरैं॥
सुनिकैं यह खत्तउली पति आत भयो,
नृप के दल पैं सहसा रतिवाह दयो॥ ८॥
बजि हक्क ललक्क बढी धमचक्क मची,
निस मैं चउसट्ठि अचानक आय नचि॥
तजि निंद रु तोकहु लै समसेर चल्यो,
सु मनों बड़वानल सागर पैं उझल्यो॥ ९॥
उमड्यो जनु कन्ह कुसस्थल के रन पैं,
पटक्यो बपु सत्रुन की समसेरन पैं॥
हनुमंत कि लंकहि लैन मलंगि बढ्यो,
कपिलेश्वर के मुख तैं जनु साप कढ्यो॥१०॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने इस तरह इन्द्रगढ़ को अपने अधिकार में लिया फिर कुछ दिन वहाँ ठहर कर अपनी ध्वजा रोपी। इसके बाद राजा ने शेष परगने को अपने अधिकार में लेने को अपनी सेना भेजी जिसमें राजा के मुख्य-मुख्य सामन्त योद्धा थे इनमें से तोकसिंह ने विजय पाई। यह सेना जब इस क्षेत्र में अपने राजा की आन दुहाई फिराने लगी और उसे दकालने वाला कोई सामने नहीं आया। यह बात जब खातोली के स्वामी ने सुनी तो वह मुकाबला करने को बढ़ा और उसने आ कर बून्दी की सेना पर अचानक रात में धावा बोला। दोनों पक्षों में धमचक मची और घमासान होने लगा मानों रात्रि में चौंसठ योगिनियों ने आ कर अचानक अपना नृत्य आरम्भ किया हो। वह वीर तोकसिंह नींद से जग कर अपनी तलवार उठाये यों चला जैसे समुद्र में बड़वानल चली हो। वह वीर कुपित हो रणभूमि में इस तरह बढ़ा जैसे कन्नोज

के युद्ध में कन्ह चौहान बढ़ा हो। उसने रणभूमि में जा कर शत्रुओं की तलवारों के आगे अपने शरीर को झोंका। वह इतनी उमंग से भरा रणभूमि की ओर बढ़ा जैसे कूदता-फाँदता हनुमान लंका को विजित करने जा रहा हो या कि मुनि कपिल के मुँह से शाप निकल रहा हो।

इम तोक रजोगुन मैं छकि रंग रुप्यो,
लखिकैं तिहिं खत्तवली दल जात लुप्यो॥
बखतावर त्यों मुहुकम्म कुलीन बली,
भट सम्मुह जाय रची धमचक्क भली॥११॥
बिनु घोटक दोउन की तरवारि बही,
कबलों सु कही नृप राम न जात कही॥
तरकैं समसेर बिदारि बकत्तर कों,
उछटैं सिर तुट्टि निरंतर अंबर कों॥१२॥
फटि टोप गिरे बिखरे दसतान दिपैं,
लगि लोहित छुट्टि छछक्कन छोनि लिपैं॥
बरछीन कितेक महाबल बेध करैं,
कमनैत कितेक कलंबन प्रान हरैं॥१३॥

उस वीर तोकसिंह ने क्रोध से भरे अपने पाँव रणभूमि में यों रोपे कि उसे देख कर खातोली की सेना अचनाक आगे बढती हुई थम गई। इसी तरह मुहुकमसिंह हाड़ा के वंशज बख्तावरसिंह ने एक निर्भय योद्धा की तरह आगे बढ़ कर शत्रु सेना से लोहा लिया। हे राजा रामसिंह! इन दोनों विकट योद्धाओं ने बिना ही घोड़ों पर सवार हो पैदल बढ कर ऐसी तलवार चलाई कि मुझे वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे। शत्रु योद्धाओं के कवचों को चीरती-फाड़ती उनकी तलवारें निरंतर चलती रहीं जिससे रणभूमि में सामने वाले योद्धाओं के कटे हुए सिर आकाश की ओर अर्थात् ऊपर उछलने लगे। रणभूमि में जगह-जगह फटे हुए शिरस्त्राण और कटे हुए बाहुल नजर आने लगे और रक्त की धाराएँ फव्वारों की तरह उमग उठी और भूमि को रक्तिम रंग में लीपने लगीं। इस घमासान में दोनों ओर के योद्धा बर्छियों से बिंध कर गिरने लगे वहीं धनुर्धारी अपने तीखे बाणों से शत्रुओं के प्राण हरने लगे।

तरवारि तनुत्रन माँहिं दुरैं दमकैं,
चुभि भद्द बलाहक ज्यों ह्लादिनी चमकैं॥
उछटैं गल गाल रु भाल कपाल कटैं,
बिनु मस्तक केक कबंध कराल अटैं॥१४॥
भिरिकैं इम संहरि सत्रुन के भट के,
बखतावर तोक बनैं बटके बटके॥
गिरितैं दुव बुंदिय की पृतना बिगरी,
पहुँची भजि संभर भूपति पैं सिगरी॥२५॥
पुनि हड्डुन के पति सेन घनी पठई,
द्रुतही तिहिं बुंदिय आन फिराय दई॥
कर लैन लगे फिरि हाकिम बुंदिय के,
हठ मोघ भये सब सत्रुन के हिय के॥१६॥

रणभूमि में मचे इस भीषण संग्राम में वीरों की तलवारें अपने शत्रु शरीर में दुबक कर निकलती हुई यों चमकने लगीं जैसे भाद्रपद माह के मेघ में बिजली चमकती हो। वीरों के कटे हुए गले, गाल, ललाट और कपाल उछलने लगे वहीं रणभूमि में कई कबंध विकराल हो उठे। ऐसी भयंकर भिड़ंत में शत्रुओं से भिड़ते हुए और उन्हें काट गिराते हुए बख्तावरसिंह और तोक सिंह दोनों उद्‌भट योद्धा स्वयं कट कर टुकड़ा-टुकड़ा हो रणभूमि में बिखर गये। इन दोनों निडर और उद्धत योद्धाओं के कट कर गिरने के बाद बून्दी की सेना की हालत पतली हो गई वह भाग कर हाड़ा राजा के पास पहुँची। हाड़ा राजा ने तब सेना के नये दल दे कर अपनी सेना को वापस रणभूमि में भेजा। इस नई आई सेना ने खातोली की सेना को फतह कर लिया और अपने स्वामी बून्दी के राजा के नाम की आन-दुहाई फिराई। इसके बाद बून्दी के नियुक्त हाकिम वहाँ से कर वसूलने लगे और शत्रु के मंसूबे व्यर्थ हो गए।

दोहा

अनघोरा अरु ढीपरी, लै रु अमल निज कीन।
ग्राम इंद्रगढ के सकल, किय इत्यादि अधीन॥१७॥
ग्राम ढीपरी माँहिं गढ, बंध्यो नृप रन बट्ट।
त्यौंहिं इंद्रगढ आदि पर, रच्यो दुर्ग चतुरट्ट॥१८॥

कृत्रिम इक आयत कियउ, महलन मध्य निवान।
बलि बिंझासनि देविगिरि, सुभग रचे सोपान॥१९॥
संदानित पुनि देव सुत, दोलतसिंह जु कीन।
तारागढ तैंहँ असु तजे, आमय कछुक अधीन॥२०॥
नृपति पठाई नैनवा, याकी मात रु नारि।
याकै तहँ हुव पुत्र इक, सोहु मरयो गद धारि॥२१॥

इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद अनघोरा और ढीपरी दोनों नगरों को बून्दी की सेना ने अपनेअधिकार में ले लिया। इस तरह इन्द्रगढ के परगने में पड़ने वाले सारे गाँव बून्दी के अधिकार में आ गए। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तब ढीपरी नामक गाँव में दुर्ग बनवाया। वहीं इन्द्रगढ़ की पहाड़ी पर एक चार बुर्जों वाला किला बनवाया। यहीं नहीं हाड़ा राजा ने वहाँ महलों के मध्य एक कुंड बनवाया। इसके अतिरिक्त राजा ने बिंझासण माता (देवी) के मन्दिर वाली पहाड़ी पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनवाई। इधर हाड़ा राजा ने देवसिंह के पुत्र दौलतसिंह को अपने बून्दी दुर्ग में कैद किया था उसने तारागढ़ के कारावास में कुछ दिन बीमार रह कर अपने प्राण त्याग दिये। हाड़ा राजा ने पूर्व में इन्द्रगढ़ से देवसिंह के जनाना की स्त्रियों को नैणवा भेजा था उनमें दौलतसिंह की माता और स्त्री भी थी। इसकी स्त्री ने वहाँ एक पुत्र को जन्म दिया पर वह रोग के वश हो कर चल बसा।

द्रुत नृप बुल्ल्यो देव को, भक्तराम तब भ्रात।
दयो कृपा करि इंद्रगढ, जाहि अब्द त्रय जात॥२२॥
कछु यह हम भावी कह्यो, बलि क्रमतैं अब बत्त।
इम नृप लीनौं इंद्रगढ, घल्लि घत्त पर घत्त॥२३॥
बेद इंदु धृति अब्द बिच, माधव माधव मास।
खत्तोली पति हू दयो, इम नृप दल सिर त्रास॥२४॥
तोक महासिंहोत तँहँ, जैतगढाधिप जोध।
तिल तिल तेगन तुट्टयो, रचि बहु सत्रुन रोध॥२५॥
अपराधीकौं मारि इम, नृप आयो निज नैर।
जैपुर पर मल्लार इत, बंध्यो दुद्धर बैर॥२६॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तब देवसिंह के भाई भक्तराम को बुलवाया और उसके आने पर राजा ने कृपा कर इन्द्रगढ़ उसे तीन वर्ष बाद प्रदान किया। हे राजा रामसिंह! मैं यह भविष्य की बात यहीं कह रहा हूँ पर यह बात तथ्यपूर्ण है कि घात पर घात लगा कर हाड़ा राजा ने इन्द्रगढ़ को अपने अधिकार में लिया और विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौदह की बसंत ऋतु के वैशाख माह में बून्दी के राजा ने खातोली के स्वामी की सेना को हरा कर उसे भयभीत किया। इस युद्ध में महासिंह हाड़ा का वंशज तोकसिंह जो जैतगढ का स्वामी था और ऐसा योद्धा था जो रणभूमि में तिल-तिल कट कर अपने शत्रुओं को मारते हुए मरा। अपने अपराधी को मार कर हाड़ा राजा अपने नगर बून्दी आया और उधर जयपुर के विरोध में मल्हारराव होल्कर ने दुर्द्धर्ष वैर लेने की सोची।

इति श्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेद सिंह चरित्रे बुन्दीशकरवरदंग गमन समाहूत दर्शिततत्पत्रेन्द्रगढेश देवसिंहमारणतदीयतनुजदोलतसिंह दुर्गकाराक्षेपणतत्स्त्रीजननयन-पुरप्रेषणरावराजेन्द्रगढगमनत दभूमिशासनार्स्थस सैन्यत्तोकसिंह प्रेषणखत्तोली शतत्सोभिक रचनतोकसिंहबखतावरसिंहमरण-बुन्दीपृतनापलायन पुनः प्रेषितभटदेवसिंहदेशस्वीकरणढीपरीन्द्रगढ चतुर-ट्टदुर्गनिपाना ऽऽदिविन्ध्यवासिनीगिरिसोपानादिसमनुष्ठानसन्दा नितदोल-सिंहकाराकलवलेहानजात तत्पुत्रनयनपुरमरणरावराड्बुन्द्यास्गमनमल्लार जयपुरबैरबन्धनं षट्चत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में बून्दी के पति का करवर नगर में जाना, मंगाये हुए उसके पत्र दिखाकर इन्द्रगढ के पति देवसिंह को मारना, उसके पुत्र दौलतसिंह को गढ में कैद करना और उसकी स्त्रियों को नैणवापुर में भेजना, रावराजा का इन्द्रगढ जाना और उसकी भूमि को अधीन करने के अर्थ अपनी सेना सहित तोकसिंह को भेजना, खातोली के पति का उस पर रतिवाह देना और तोकसिंह व बखतावरसिंह का मरना, बून्दी की सेना का भागना और फिर भेजे हुए वीरों का देवसिंह के देश को लेना, ढीपरी और इन्द्रगढ में चार बुरजों वाला गढ, जलाशय, विन्ध्यवासिनी के पर्वत पर सीढियाँ आदि बनाना, कैद किये हुए

दौलतसिंह का कैद में मरना और उसके जन्में हुए पुत्र का नैणवानगर में मरना, रावराजा का बून्दी आना और मल्हार का जयपुर से वैर करनें का छियालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सत्ताईस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात्

अक्खी माधव अग्ग हमहु जैपूर पति व्हैहैं,
तबहि रामपुर तुमहिं दुव हि हुलकरपति देहैं।
बरस सत्त गय बित्ति द्रंग कूरम नहीं दिन्नें,
यातैं हुलकर सज्ज कटक जैपुर पर किन्नैं।
माधव नरेश सुनि भीत मन दमम लख्ख ग्यारह दिये।
बनि नम्र परग्गन जुत बहुरि ए दुव पत्तन अप्पये॥१॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में माधवसिंह कछवाहा ने होल्कर से कहा था कि यदि मैं जयपुर का राजा बन गया तो तुम्हें मैं दोनों रामपुरा की जागीर दूँगा। इस वादे को किये अब तक सात वर्ष बीत गये पर कछवाहा राजा ने अपना वचन पूरा नहीं किया था इसलिए अब होल्कर ने जयपुर पर चढ़ाई करने को अपनी सेना सज्जित की। कछवाहा राजा माधवसिंह ने जब यह देखा कि अब कोई चारा नहीं रहा तो उसने ग्यारह लाख रुपयों की दण्ड राशि फौज-खर्च के साथ, विनम्रता प्रदर्शित करते हुए, दोनों रामपुरा होल्कर को दे दिये।

दोहा

पत्तन चन्द्राउतन को, रामपुरा सह देस।
जो लिन्नों जयसिंह सो, किन्नों हुलकर पेस॥ २॥
टोंक नगर के प्रांत ढिग, दूजो रामपुरा सु।
कहियत रायबसंत को, वह दिन्नों डरि आसु॥ ३॥
दुव पुर जनपद सहित दै, तब मेट्यो इम त्रास।
दक्खिन को दल टारि दिय, माधव माधव मास॥ ४॥

पूर्व में कछवाहा राजा जयसिंह ने चन्द्रावतों के अधिकार वाले रामपुरा नगर और उसके परगने को उनसे छीन लिया था। उसी रामपुरा को अब माधवसिंह को होल्कर को पेश करना पड़ा। उसी तरह दूसरा रामपुरा जो टोंक

के प्रांत में अवस्थित था वह भी कछवाहा राजा ने डरते हुए शीघ्र ही होल्कर को दे दिया । दोनों रामपुरा नामक नगर अपने जनपद सहित कछवाहा राजा ने दे कर भय से मुक्ति पाई और इस तरह राजा माधवसिंह ने माधव (वैशाख) मास में रुपये और जागीर दे कर दक्षिण से आई होल्कर की मराठा सेना का जयपुर पर चढाई करना टलवा दिया ।

हरिगीतम्

सक बान चन्द्र भुजंग भू जयनैर यौं जनकू बढ्यो ॥
सन्ध्या जया सुत सेन सज्जि रु देव दक्खिन तैं चढ्यो ॥
गोदावरी नदि लंघि त्यौं अवरंग पत्तन लंघयो ॥
बुरहान पत्तन लंघि बेग मिलान मेकलजा दयो ॥ ५ ॥
ओंकार ईसहिं पुज्जि यौं जनकू अवंतिय उत्तर्‌यो ॥
गढ भैंसरोर मुकाम दै दरकुंच हंकत जो पर्‌यो ॥
सुनि एह बुंदिय भूप तत्थहि जाय कैं हित मंडयो ॥
महिमानि जिम्मत जाहु यौं कहि नैर लावन कौं भयो ॥६ ॥

वहीं विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पन्द्रह में जयाजीराव सिंधिया का पुत्र जनकूजी राव सिंधिया भी दक्षिण से जयपुर की और सेना सहित रवाना हुआ । सिंधिया ने अपनी फौज के साथ शीघ्र ही गोदावरी नदी को पार किया और औरंगाबाद को लांघता हुआ बुरहानपुर आ पहुँचा । यहाँ से आगे उसने नर्बदा नदी के तट पर पहुँच कर पडाव डालाँ । इस नदी को पार कर उसने उज्जैन नगरी में अपने प्रसिद्ध इष्टदेव औंकारेश्वर महादेव की पूजा अर्चना की । यहाँ से आगे कूच करता वह ससैन्य भैंसरोड़गढ़ आ पहुँचा । इस बात के समाचार जब बूँदी के राजा उम्मेदसिंह ने सुने तो वह तुरन्त सिंधिया की अगवानी में भैंसरोड़गढ़ पहुँचा । यहाँ आकर उसने सिंधिया को अपना मेहमान बनने की विनती करते हुए कहा कि आगे जाने से पहले आप मेरे नगर में भोजन कर पधारें ।

तँहँ इंद्रगढपति देव की तिय पत्र बिन्नति मुक्कली ॥
अरु यौं लिखि तुम अद्ध छोनिय लेहु पिक्खहु जो भली ॥
तिँहिं बंचिकै जनकू कहे कटु बैन बुंदिय भूप सों ॥
हमरो सहाय बनाय कैं तुम निक्खसे दुख कूप सौं ॥ ७ ॥

हमरो निदेस लयैं बिनों तुम इष्ट अप्पन नों करो॥
उनकों ब अप्पहु इंद्रगढ निज राज्य प्रभुपन जो धरो॥
सुनि हड्डु बुल्लिय पेसवा तुमरे जु प्रानन ईस है॥
तिनकों सुनाय करी कही सुनि रावरी इत रीस है॥ ८॥

इसी समय उचित अवसर देख कर इन्द्रगढ के स्वामी देवसिंह की पत्नी ने एक प्रार्थना पत्र भिजवाया जिसमें अनुरोध किया गया था कि हे हाड़ा राजा! आप अच्छी देख कर इन्द्रगढ की आधी भूमि ले लीजिये पर आधी तो हम लोगों के लिए छोड़ दीजिये । यह पत्र जब सिंधिया जनकूजी राव ने पढा तो उसे बुरा लगा । उसने तुरन्त हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को इस बात का उलाहना देते हुए खरी -खोटी सुनाई । सिंधिया ने कहा हे राजा! इतना शीघ्र ही भूल गये कि तुम हमारी सहायता से ही अपने दु:ख के कुएँ से निकल पाये हो । हमारे निर्देश लिये बिना ही तुम अपनी मन - मरजी चलाने लगे हो । अब यदि तुम्हें अपना राज्य बूंदी प्यारा है तो शीघ्र ही इन्द्रगढ़ वापस देवसिंह के पुत्र आदि को सौंप दो । सिंधिया से ऐसा सुन कर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने प्रत्युत्तर दिया कि हे सिंधिया ! तुम्हारे प्राणों के स्वामी जो पेशवा है हमने उनकी रजा लेकर ही यह कार्य किया है अर्थात् इन्द्रगढ लिया है । फिर गुस्सा क्यों कर रहे हो ?

करनों तुम्हैं हितमाँहिं अहित हि तो ब हम घर जाय हैं॥
तुम सज्जि आवहु जंग कों अब हड्डु हत्थ दिखाय हैं॥
आयो यहै कहि भूप बुंदिय साज संगर के भये॥
सुनि यों मलार रु नन्ह भ्रात निवारि दोउन कों दये॥९॥
जनकू जया सुत कुंच कैं तब पत्त जैपुर बेगही॥
कुछ दम्म माधव दंड दै डरि नम्रता गति के गही॥
पुनि सुक्रताल नजीबखाँ सन जाय कैं जनकू लस्यो।
महिं तत्थ मिच्छ रुहिल्ल सों मरहट्ठ भार सह्यो परयो॥१०॥

अब यदि तुम्हारे मन में हमारा हित न कर अहित करने की इच्छा है तो मैं अपने घर बूंदी जा रहा हूँ । आप अच्छी तरह अपनी सेना सज्जित कर वहाँ आना फिर हम हाड़ा क्षत्रिय भी अपने हाथ दिखाएँगे। ऐसा कह कर राजा

उम्मेदसिंह रवाना हो गया । दोनों के मध्य युद्ध के आसार बढ़े पर यह बात जब मल्हारराव और पेशवा नन्ह के छोटे भाई रघुनाथराव ने सुनी तो दोनों ने बीच - बचाव किया । उन्होंनें सिंधिया राजा और हाड़ा राजा दोनों को समझा दिया। तब जयाजीराव सिंधिया का पुत्र जनकू वहाँ से कूच कर आगे जयपुर की ओर बढा । आगे कछवाहा राजा ने जब सिंधिया की सेना के आगमन के समाचार सुने तो राजा माधवसिंह ने कुछ दण्ड राशि फौज खर्च की दे कर नम्रता का वर्ताव किया । सिंधिया ने तब जयपुर को छोड़ कर आगे शुक्रताल जा कर नजीब खां से युद्ध आरंभ किया पर जब रोहिल्ला नजीब खां ने देखा कि मराठा सेना भारी है और इनके सामने मेरा टिकना नहीं हो सकेगा तो वह रणभूमि से भाग छूटा ।

त्रय अब्द सौं रनथंभ गिरि इत फोज दक्खिन की लरैं॥
बिच साह के भट सज्ज ते नहिं दुग्ग छोरन अहरैं॥
लरतैं परंतु छत्तीस मास बिताय व्याकुल वे भये॥
खंडारि जैपुर दुग्ग ही ढिग तत्थ कग्गर प्रेसये॥११॥

कछवाह सेवक साह को इम ताहि हम गढ अप्पिहैं॥
मरि जाहिं पै मरहट्ठ कौं रनथंभ मैं नहिं थप्पिहैं॥
तुम छन्न आवहु रत्ति मैं हम दुग्ग तैं कढि जाय हैं॥
पचरंग केतन कुम्म भूपति कोहि अत्थ लगाय हैं॥१२॥

इधर तीन वर्षो से लगातार मराठा सेना रणथंभोर दुर्ग पर अधिकार करने के लिए जूझ रही थी पर बादशाह के योद्धा भी सज्जित हो कर बराबर मुकाबला कर रहे थे । वे दुर्ग नहीं छोड़ रहे थे । जब लड़ते- लड़ते छत्तीस मास का समय व्यतीत हो गया तो उनकी हिम्मत जवाब दे गई और वे व्याकुल हो गए । ऐसे में रणथंभोर दुर्ग के पास पड़ते जयपुर राज्य के अधीन खंडारी (खंडेला) दुर्ग में उन्होंने एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि चूंकि कछवाहा राजा बादशाह के खैरख्वाह हैं इसलिए हम दुर्ग आपको सौंप सकते हैं। हम मर कर भी यह रणथंभोर का गढ़ मराठों के हाथों नहीं सोंपेंगे इसलिए अच्छा यह रहेगा कि आप चुपचाप रात्रि के समय यहाँ आयें, आपके आने पर हम दुर्ग छोड़ कर चले जाएँगे । हमारे प्रयत्न यही रहेंगे कि जैसे कैसे भी हो जयपुर का पचरंगा ध्वज ही रणथंभोर दुर्ग पर फहराये।

खंडारि मुख्य अनोपसिंह हुतो पचेवरि को धनी॥
खंगार बंसिय बंचि जो दल रत्ति गो सजिकैं अनी॥
लखि साह सेवक ताहि तब रनथंभ अंतर लै गयै॥
तिँहिँ झारि खग्गन नन्ह बीर भजाय बाहिर के दये॥१३॥
कढि साह के भट वर्ग दिल्लिय जाय वृत्त निवेदयो॥
इम बान भू धृति पोस सित रनथंभ कूरम कै गयो॥
संभार खान रु पान के तैँहँ कुम्म संचित के करे॥
बारूद सीसक बित्त रक्खि तड़ाग जीरण उद्धरे॥१४॥

इस समय खंडारी में मुख्य योद्धा पंचेवड़ी का स्वामी अनोपसिंह था। पत्र पाकर वह खंगारोत अपनी सेना सज्जित कर रात्रि को निर्देशानुसार वहाँ पहुँचा। शाही सैनिक उसे चुपचाप दुर्ग के भीतर ले गए। तब इस खगांरोत वीर ने अपने साथियों सहित बाहर घेरा डाले पड़ी पेशवा नन्ह की सेना पर तलवार बजाई। अचानक हुए इस भीषण हमले से घबरा कर मराठा सेना भाग खड़ी हुई तब यहाँ से शाही सैनिक निकल कर दिल्ली गये और उन्होंने जा कर वहाँ पूरा वृत्तान्त कहा। इस तरह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पन्द्रह में रणथंभोर का दुर्ग भी जयपुर के कछवाहा राजा के अधिकार में आया। दुर्ग पर अधिकार हो जाने के बाद राजा माधवसिंह ने दुर्ग में रहने वाले सैनिकों के लिए खाने -पीने की सामग्री भिजवाई। यही नहीं दुर्ग में सैन्य सामग्री यथा बारूद और सीसा भी एकत्रित किया गया। धन की व्यवस्था की गई और दुर्ग में बने पुराने तालाबों का पुररुद्धार करवाया गया अर्थात् सैनिकों के पीने के पानी के स्रोत बनाये गये।

दोहा

बहुरि दुग्ग रनथंभ ढिग, जयपुर छबि अनुसार।
निज नामक माधव नगर, रच्यो बिबिध बिसतार॥१५॥
हुलकर पैँहँ पठयो हुकम, सुनत एह श्रीमंत।
दुर्ग्ग लेहु रनथंभ द्रुत, अब करि जैपुर अंत॥१६॥
तंते वह पठयो तबहि, दै हुलकर दल संग।
गंगाधर दरकुंच गति, जित्तन आयो जंग॥१७॥

जनपद नागरचाल जिहिं, क्रमि पत्तन कक्कोर।
कीनों जैपुर कटक सों, जुद्ध तुमुल बरजोर॥१८॥

यही नही रणथंभोर दुर्ग के निकट कछवाहा राजा ने जयपुर की तर्ज पर अपने नाम से विस्तार वाला माधवनगर नामक एक नगर बसाया । रणथंभोर दुर्ग के जयपुर के अधिकार में जाने की बात जब पेशवा नन्हजीराव ने सुनी तो उसने तुरन्त होल्कर के पास अपनी यह आज्ञा पहुँचाई कि वह तुरन्त जा कर रणथंभोर को मराठों के अधिकार में करे और जयपुर का अधिकार खत्म करे । उसने इस कार्य के लिए होल्कर की सेना का साथ देने तांतिया को भेजा । गंगाधर भी दक्षिण से कूच कर शीघ्र ही विजय की इच्छा से बढ़ा। नागरचाल को पार कर वह शीघ्र ही कक्कोरपुर जा पहुँचा। यहाँ पहुँच कर उसने जयपुर की सेना के साथ भीषण युद्ध छेड़ा।

षट्पात्

अतिजव हयन उठाय धर्यो परदल गंगाधर,
मंड्यो आयुध मेह दुर्यो बढि खेह दिवाकर।
खुंदि पहुमि हय खुरन ढुरन लग्गे सागर जल,
लग्गे पब्बय गुरन मुरन अतलादि महीतल।
काहु को भयो नाहिं जय कलह पै बहु भट कटि कटि परिग।
इम पहुमि लुत्थि छादित मनहु बनिजकार टंडा ढरिग॥१९॥

अपने घोड़ें उठा कर साथियों सहित तांतिया गंगाधर टूट कर शत्रु सेना (जयपुर वाली) पर पड़ा । तुरन्त ही रणभूमि में शस्त्रों की वर्षा होने लगी। सूर्य रणभूमि में उड़ी धूल से ढ़क गया। घोड़ों ने अपने खुरों से धरती का कलेजा रोंदना आरंभ किया। इस भीषण युद्ध के अवसर पर समुद्र ने भी मर्यादा त्यागी। पृथ्वी सहित अतल आदि लोक कांपने लगे जिससे पर्वतों के शिखर टूटने लगे। इस दुर्दन्त भिड़त में किसी एक पक्ष की विजय न हो सकी पर बहुत सारे योद्धा कट कर रणभूमि में यों गिरे कि उनके शवों के ढेर लग गये । ऐसा लगता था मानो वहाँ किसी बनजारे की बाळद ने डेरा किया हो।

दोहा

सुभट मरे रन पंचसत, इत उत के अनुरत्त।
घाय दुसह लग्गे घनें, गंगाधर के गत्त॥२०॥

जैपुर बड उमराव जुग, परे भिन्न तजि प्रान।
सत्यासी तिनके सुभट, मरे इतर छकि मान॥२१॥

जाधसिंह अभिधान इक नाथाउत कछवाह।
मिसल दाहिनी को मुकुट, चोमू पत्तन नाह॥२२॥

बगरूपति दूजो बहुरि, कूरम चतुरभुजोत।
रन गुलाबसिंहहु रह्यो, बाम मिसल उद्योत॥२३॥

ए उमरावन अग्रणी, जैपुर के गिरि जात।
भये न सम्मुह इतर भट, दुर्मन भाव दिखात॥२४॥

दोनों ओर के युद्धप्रिय पाँच सौ वीर मारे गये और इस भिंड़त में गंगाधर तांतिया की देह पर कई गहरे घाव लगे। इधर जयपुर के दो मुख्य सामन्त प्राण त्याग कर रणभूमि में गिरे। इनके साथ रणदर्प में सतासी अन्य योद्धा भी युद्धभूमि में खेत रहे। जोधसिंह नामक एक नाथावत कछवाहा जो जयपुर की दाहिनी मिसल में बैठने वाला चोमूं का स्वामी था वह मारा गया तो मिसल की बैठक की ताजीम वाला गुलाबसिंह भी रणभूमि में लड़ता हुआ नि:शेष हुआ जो बगरू का स्वामी था और चतुर्भुजोत कछवाहा था। इन दोनों जयपुर के मुख्य उमरावों के युद्ध में मरने के बाद इतर यौद्धा आगे नहीं आये वे उदासीन बने रहे।

इत तंते गंगाधर हु, घन खग्गन सहि घाय।
तब मुरर्‍यो दक्खिन तरफ, करन अनामय काय॥२५॥

समा अष्टि धृति प्रमित सक, लग्गत ऋतु हेमंत।
अगहन मैं ए कुम्म दुव, हुव गतप्रान लरंत॥२६॥

इत गंगाधर कों मुर्‍यो, सुनि हुलकर मल्लार।
जैपुर पर हंक्यो जवहि, पहु रचि कटक प्रसार॥२७॥

इधर भिड़ंत के बाद खूब सारे घाव खा कर गंगाधर तांतिया वापस दक्षिण की ओर गया ताकि कुछ दिन चिकित्सा करवा कर पुन : स्वस्थ हो सके । विक्रम सवंत् के वर्ष अठारह सौ सोलह के आरंभ में हेमन्त ऋतु के आगमन समय अगहन माह में हुए इस युद्ध में दो कछवाहा सामन्त जोधसिंह और गुलाबसिंह मारे गये। उधर गंगाधर तांतिया के वापस दक्षिण की ओर

मुड़ने के समाचार सुन कर मल्हारराव ने कुपित हो अपनी सज्जित सेना से जयपुर पर शीघ्र ही चढाई करने की सोची तब कछवाहा राजा ने कुपित हो मुकाबला करने की गरज से अपनी सेना का विस्तार किया ।

षट्पात्

दक्खिन धर को थंभ चढ्यो हुलकर जैपुर पर,
दरकुंचन करि दोर अवनि दब्बत डारत डर।
जनपद नागरचाल प्रथम बिंट्यो उनियारा,
भयो चकित भोगीस धरनि फुट्टत हय धारा।
सिरदारसिंह नारव नमित सयन जोरि लग्गो पयन।
तिहिँ दंडि गमन अग्गैं कियउ हुलकर लगि जैपुर अयन॥२८॥

दक्षिणी धरा का वह स्तंभ होल्कर जयपुर पर चढ़ आया। वह दर कूच दर मंजिल अपनी सेना के घोड़े भगाता आसपास के प्रदेशो में अपना भय व्याप्त करता हुआ सर्वप्रथम नागरचाल नामक जनपद में आया। यहाँ जयपुर राज्य की सीमा में घुसते ही उसने उणियारा नगर को जा घेरा । मराठा सेना की धमचक से शेषनाग चकित हो गया और घोड़ों की दौड़ से धरा दरकने लगी। अपने नगर (उणियारा)को अचानक इस तरह घिरा हुआ देखकर नरूका सरदारसिंह अपने दोनों हाथ जोड़ता हुआ होल्कर के चरणों में आ गया। होल्कर ने तब उससे फौजकसी के खर्च के रुपये ले कर आगे जयपुर जाने वाली राह ली।

कुसथल मृत फतमल्ल तास हुव रतनसिंह सुत्त,
ताको इक लघुपुत्र नाम बिक्रम साहस जुत।
जगतसिंह रट्ठोर हिंतु सहसा रचि संगर,
छिन्नि नगर बरवाड़ भयो पति अप्प बंधि घर।
इहिँ हेतु आय मल्लार इत तोपन ताप चलाय कैँ।
रट्ठोर अमल पच्छो रचिय गो कछवाह पला कैँ॥२९॥

इधर कुसथल के जागीरदार फतहमल के मरने पर उसका बड़ा पुत्र रतनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ उसका एक छोटा पुत्र विक्रमसिंह वीर और पराक्रमी था उसने जगतसिंह राठौड़ से जा कर युद्ध रचा और उसे भगा

कर बरवाड़ा पर अपना अधिकार जमाया। वह वहीं बरवाड़ा में अपना निवास बना कर रहने लगा। इसी कारण होल्कर ने राह में पड़े बरवाड़ा को भी अपनी सेना के घेरे में ले लिया और तुरन्त ही तोपों से गोले दाग कर बरवाड़ा पर फिर से राठौड़ जगतसिंह का अधिकार करवा दिया। यही नहीं उसने कछवाहा विक्रमसिंह को वहाँ से भगा दिया।

दोहा

दक्खिन जैपुर बैर सुनि, जगतसिंह अभिधान।
सुत कबंध सिवसिंह को, बैठो लै निज थान॥३०॥

तब कूरम रतनेस सुत, राजाउत करि रारि।
छिन्नि नगर बरवाड़ लिय, दिय रट्ठोर निकारि॥३१॥

यातै हुलकर भीर करि, वह कछवाह भजाय।
जगतसिंह बरवाड़ पुर, बहुरि दयो बैठाय॥३२॥

सक रस ससि बसु ससि बरस, श्राम बलच्छ सहस्य।
हुलकर सन बुंदीस हू, गो कछु करन रहस्य॥३३॥

जगतसिंह नामक राठौड़ जो शिवसिंह का पुत्र था वह चुपचाप अपनी बरवाड़ा की जागीर पर कायम था पर मराठों और जयपुर की अनबन की खबर पा कर इसे एक उचित अवसर समझते हुए कछवाहा रतनसिंह के पुत्र राजावत विक्रमसिंह ने झगड़ा कर उससे बरवाड़ा जबरन छीन लिया और राठौड़ को वहाँ से निकाल दिया। इस अत्याचार की बात सुन कर होल्कर ने राठौड़ जगतसिंह की सहायता की। उसने राठौड़ का पक्ष ले कर कछवाहा विक्रमसिंह को वहाँ से भगा दिया और बरवाड़ा पर फिर से राठौड़ जगतसिंह का अधिकार करवा दिया। इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सोलह के पौष माह के शुक्ल पक्ष में बूंदी का हाड़ा राजा उम्मेदसिंह होल्कर से गुप्त मंत्रणा करने गया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे माधवसिंहपूर्वप्रतिजातरामपुरद्वय मल्लारोपायनीकरण सन्ध्या-जनकूदग्दिगमनसम्मुखप्रस्थितरावराद्तन्मिलन प्राप्त देवसिंहपत्नीविज्ञप्तिपत्र सन्ध्याहड्डेन्द्र कुत्सनतत्क्रुद्धबुन्द्यागतबुन्दीशसमिदीहनश्रुतैतद्रघुनाथराय

मल्लार युयुत्सुद्वय निवारणनीतजयपुरदमद्रम्मजनकूशुक्रतालयुद्धविजयन-रुहिल्लनजीबखानपलायन दिल्लीश दुर्गेशदुर्गरणस्थम्भकूर्म्मराज निवेदन-जयपुरदक्षिणाविरोधवर्धनश्रीमन्तशासितहुलकरगंगाधराऽदिपुरतः प्रेषणतज्जैपुर सैन्य समायोधन माधवसिंहमुख्य सुभटनाथाउतयोधसिंह चतुर्भुजोतगुलाबसिंहा ऽदिमरणाक्षतक्षुण्णगंगाधरदक्षिणऽदिगमनश्रुतैल-हुलकराऽगमनत न्नारवसरदारसिंहदमनराजाउत्तविक्रमोद्धत बरवाड़पुरराठोड़ जगतसिंहा ऽऽर्प्पणसम्मतमल्लारमन्त्रण बुंदीन्द्रबरवाड़पूर्गमनं सप्तचत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, माधवसिंह का पहिले के दिये हुए दोनों रामपुरों को मल्हार की भेंट करना और जनकू नामक सिंधिया का उत्तर दिशा में आना, सम्मुख जाकर रावराजा का उस से मिलना और देवसिंह की स्त्री की अरजी पाकर सिंधिया का हाड़ों के पति को धमकाना, उससे क्रुद्ध हो कर बून्दी में आये बून्दी के पति को युद्ध की इच्छावाला सुनकर रघुनाथराय और मल्हार का युद्ध की इच्छा वाले उन दोनों को रोकना, जयपुर से दण्ड के रुपये लेकर जनकू का दिल्ली के बादशाह के गढ के पति को कछवाहा राजा माधवसिंह को देना और जयपुर और दक्षिण का विरोध बढना, श्रीमंत के हुकम पाये हुए मल्हार का गंगाधर आदि को आगे भेजना और उसका जयपुर की सेना से युद्ध करना, माधवसिंह के मुख्य सुभट उमराव नाथाउत जोधसिंह और चतुर्भुजोत गुलाबसिंह आदि का मरना और पाँवों से क्षीण गंगाधर का दक्षिण आदि में जाना, यह सुनकर होल्कर का आना और उसका नरूके सरदारसिंह को दण्ड देना, राजाउत विक्रमसिंह के लिये बरवाड़ पुर को राठौड़ जगतसिंह को देने और मल्हार से सलाह करने को बून्दीन्द्र का बरवाड़ जाने का सैंतालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अठ्ठाईस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पज्झटिका

लिय अजितसिंह पठुप कुमार, लघु पुत्र बहादुर बहुरि लार॥
बुंदीस मिल्यो बरवाड़ जाय, सम्मुह मलार आयो सुभाय॥ १॥
करि उभय रहे दिन दुव मुकाम, तँहँ सुनिय सुद्धि पंजाब धाम॥
सजि सेन खानअहमद पठान, उल्लंघि अटक आयो अमान॥ २॥

पंजाब अमल अप्पन जमाय,दक्खिन के हाकिम दिय उठाय॥
यह सुनत किन्न हुलकर प्रयान, चढि संग भयो नृप चाहुवान॥ ३॥
सिसु जानि सिखावन सुतन नीति, लायो सु दिखावन राजनीति॥
बप सप्त बरस जेठो कुमार,लघु पुत्र अब्द चउ बेस धार॥४॥

हे राजा रामसिंह! बूंदी का राजा उम्मेदसिंह अपने पाटवी कुमार अजीतसिंह और छोटे बेटे बहादुरसिंह को अपने साथ ले कर बरवाड़ा आया और यहाँ से चला कर वह होल्कर से मिलने गया। दोनों वहाँ साथ-साथ दो दिन तक प्रीतिपूर्वक रहे। इसी बीच खबर आई कि पँजाब प्रांत पर अहमदखान पठान अपनी सज्जित सेना के साथ चढ आया और उसने अपनी भारी सेना के साथ अटक नदी को लांघ लिया। उसने पंजाब प्रांत पर आते ही अधिकार कर लिया और वहाँ पर नियुक्त दक्षिण के हाकिमों को निकाल बाहर किया। इस खबर को सुनते ही होल्कर ने पंजाब की ओर कूच किया तब चहुवान राजा उम्मेदसिंह भी उसके साथ जाने को रवाना हुआ। यहाँ बरवाड़ा आते समय हाड़ा राजा अपने दोनों कुमारों को अपने साथ लाया था जिससे कि वे भी राजनीति के व्यवहार देख - सीख सकें। यद्यपि इस समय बूंदी के कुमार बाल्यावस्था में थे । बड़ा कुमार सात वर्ष का और छोटे वाला चार वर्ष का था।

तिनको पुनि बुंदिय सिक्ख दिन्न,मल्लार संग नृप गमन किन्न॥
मल्लार चट्टसू आदि नैर,लुट्टे जैपुर के बिरचि बैर॥५॥
पंजाब अमल मंडत पठान,जयनैर छोरि किय उत प्रयान॥
इक बंधु महासिंहोत तत्थ,किय तुपक झारि निस बिच अनत्थ॥ ६॥
सुहरनिपति दसरथसिंह सुप्त, किन्नो प्रयागसुत प्रान लुप्त॥
खोज्यो वह मारक सुनत भूप,सु मिल्यो न भज्यो परित्रास कूप॥ ७॥
करि तदनु हड्डु हुलकर प्रयान, पुर कोटपुत्तली दिय मिलान॥
किय सेन पठानन सीस सज्ज, श्रीमंत बिजय रन करन कज्ज॥ ८॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने दोनों पुत्रों को वापस बूंदी जाने के लिए रवाना किया और स्वयं मल्हारराव होल्कर के साथ रवाना हुआ। मल्हारराव ने रास्ते में पड़े जयपुर के नगर चट्टसू (चाकसू) को लूट लिया क्योंकि उसके मन में अभी तक जयपुर से वैर लेने की बात बैठी हुई थी। चूंकि इस समय

पंजाब पर पठान अहमदखान के अधिकार की घटना हो गई थी इसलिए होल्कर को पहले वहाँ जाना आवश्यक था। यही कारण था कि वह जयपुर नगर को छोड़ कर इधर रवाना हुआ। कूच करते काफिले में एक रात्रि को हाड़ा राजा के एक बांधव महासिंहोत हाड़ा ने यों ही अकारण अपनी बन्दूक चलाई जिससे सुहरनी का स्वामी और प्रयागसिंह का पुत्र दशरथसिंह नींद में सोया हुआ मारा गया। यह सुनते ही हाड़ा राजा ने हत्यारे को ढुंढवाया पर वह भय के मारे कहीं भाग कर छिप गया था इसलिए राजा के हाथ नहीं आया। तब राजा होल्कर के साथ कूच कर आगे आया। आगे कोटपुतली में पहुँच कर होल्कर की सेना ने पड़ाव ड़ाला। यहाँ से उसने पठानों पर आक्रमण कर अपने स्वामी श्रीमंत पेशवा की विजय करवाने को अपनी सेना सज्जित की।

गाजुद्दीखाँ इत व्है हराम, मारयो प्रभु आलमगीर नाम॥
यह सुनत मुलक पंजाब छोरि, इत नादरघ्न आयो सु दोरि॥९॥

तब त्रास निजामनमुलक पाय, मरहट्ठ सकल बुल्ले सहाय॥
जित तित हुतो सु दक्खिन अनीक, सब दिल्लिय आयो चहि समीक॥ १०॥

उततै सु खानअहमद पठान, आयो सबेग दिल्लिय अमान॥
सुनि हुलकर अक्खिय नृपहि एह, भुव करत रंग तुम जाहुं गेह॥११॥

गो बुंदिय तब संभर नृपाल, आयो मलार दिल्लिय उताल॥
संकरदा पत्तन लूट ठानि, सज्ज्यो पठान सन जंग जानि॥१२॥

इस तरह होल्कर अपने स्वामी पेशवा श्रीमंत की फतह करवाने को अपनी सज्जित सेना के साथ जाता था कि तभी दिल्ली में एक नमकहराम (गाजुद्दीखान) ने अपने स्वामी बादशाह आलमगीर को मार डाला। यह खबर पा कर नादिरशाह को मारने वाला वह पठान अहमदखान पंजाब छोड़ कर अपने दल सहित दिल्ली की ओर बढ़ा। यह देख कर निजामुलमुल्क ने डर कर दिल्ली की रक्षार्थ सभी मराठों को सहायता करने दिल्ली बुलाया। इस समय उत्तर प्रांत में जहाँ-जहाँ भी मराठा सेना थी वह युद्ध करने को तत्पर हो दिल्ली आई। उधर पंजाब की ओर से वह अहमदखान पठान तेज गति से दिल्ली की ओर आ रहा था इस स्थिति को देखते हुए होल्कर ने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह से कहा कि अब दिल्ली पर वर्चस्व के लिए युद्ध होगा इसलिए

आपको बूंदी अपने घर चले जाना चाहिए। होल्कर से विदाज्ञा मिल जाने पर हाड़ा राजा बूंदी आया और उधर होल्कर अपने दल सहित दिल्ली पहुँचा। यहाँ आते ही होल्कर ने संकरदा नामक पुर (कदाचित शकरपुर) को लूटने की सोची जिसके बहाने पठान अहमदखान की फौज से भिड़ंत हो सके।

जनकू हु जयासुत सुनत आय, दत्ता हु सैन आयो सजाय॥
संभासुत आयो बहुरि सूर, जब मंडि लरन संध्या जरूर॥१३॥

अरु सठ कलीज निज धर्महीन, आलीगोहर दिल्लीस कीन॥
दै पुनि मरहट्ठन कोटि दम्म, किय तिन सहाय निज विजय कम्म॥१४॥

दिल्ली दल दक्खिन दल दुरंत, मिलि इक्क सज्यो अब विरची मंत॥
बज्जिग निसान जिततित बिसेस, सज्जिग प्रवीर दल दक्खि देस॥१५॥

हुव विविध तोप सज्जित हरोल, लहरात धुजा फहरात लोल॥
मृगराजमुखी कति लेबमान, वाराहमुखी कति वर विधान॥१६॥

दिल्ली के बुलावे पर उधर जयाजीराव सिंधिया का पुत्र जनकूजीराव आया तो दत्ताराव भी सेना सहित पहुँचा। शंभाजीराव का वीर पुत्र भी युद्ध करने की इच्छा से शीघ्र ही दिल्ली आया। ऐसे समय में मूर्ख कलीजखान नें आलीगोहर को नया बादशाह नियुक्त किया और मराठों को एक करोड़ की राशि दी जिससे वे सहायक हो कर युद्ध में दिल्ली की फतह करवायें। तब शाही सेना के साथ मराठों की सेना मिलाकर एक जंगी फौज बनाई गई। कूच के नगारे बजने लगे और यहाँ-वहाँ सभी दल सज्जित होने लगें। तरह-तरह की तोपों को तैयार किया गया और उन पर फहराने वाले बड़े-बड़े ध्वज लगाये गये। इन तोपों में कोई सिंहमुखी तोपें थी तो कुछ वाराहमुखी (वाराह के आकार वाले मुँह वाली) थीं।

बिखधारमुखी कति तति बिसाल, करिराज मुखी कति अति कराल॥
सिंदूर लपन लोहित सुहात, दगि प्रलय काल ततखिन दिखात॥१७॥

कति कांत लोहमय पृटथुलकाय, सुभ रीति सुल्वमय कति सुहाय॥
किप सबल धातुमय सज्ज केक, इम पुनि गुन्नार संचय अनेक॥१८॥

आरूढ निठुर चरखन असेस, बिकराल ज्वाल जनु काल बेस॥
अंगार बमत खिन खिन अपार, हुव सज्ज छार गढ करनहार॥१९॥

मिलि दगत दिसा दैवत मिटाय, सतकोटि नाद सज्जित सिटाय॥
दुवसत हरोल जिन्ह बेलदार, कुछाल जत्थ मग सुद्धकार॥२०॥

कहीं सर्प मुखी तोपों की पक्ति थी तो कहीं हाथी जैसे मुख वाली विकराल तोपें बढीं। मुँह पर अर्थात नाल पर सिंदूर पुती हुई ये तोपें तत्काल प्रलय का कहर बरपा करने वाली थीं। कुछ अच्छे लोहे से निर्मित बड़े आकार वाली थीं। वहीं कुछ ताँबे धातु के मिश्रण से निर्मित थीं। ये तोपें जो कठोर चरखियों पे सवार थी वे साक्षात यमराज की तरह अपनी विकराल अग्निज्वालाओं से सर्वनाश करने वाली थीं। प्रति क्षण अंगारे उगलने वाली और बड़े-बड़े दुर्गों को ढहा देने वाली तोपों को सज्जित किया गया जो दागी जाने पर दिग्पालों सहित दिशाओं को मिटाने वाली और वज्र भयंकर नाद करती हुई चलने वाली थीं। इन तोपों का रास्ता बनाने के लिए दो सौ बेलदार (श्रमिक) हाथों में कुदाल- फावड़ा लिए आगे- आगे चल रहे थे।

सत दुव कुठारधारक सु अग्ग, मेटत तरु रोधक रचत मग्ग॥
ते तोप खिनहू अटकन न देत, लैजात अद्रि सिर मलप लेत॥२१॥

भुव धसत चक्क चरखन भयार, त्रिसती इम तोपन हुव तयार॥
दुव दलन लक्ख घोटक दुरूह, सत्वर फिराक भतिभति समूह॥२२॥

जरजाल सज्ज पखराल जीन, नखराल चाल् रय फाल लीन॥
नतगोधि चपल चपला समान, केतक कलीन उपमान कान॥२३॥

खुर रजजपत्त कृत नटन खेल, मनु ससि कलंक खुरतार मेल॥
प्रतिक्रमन खेह उद्धुत अनूप, धरनी कि रच्छकन देत धूप॥२४॥

वहीं दो सौ कुठारधारी (कुल्हाड़े के साथ बढ़ई) चल रहे थे जो रास्ते में पड़ने वाले (बाधक) पेड़ों को हटाते जाते थे। सारे मजदूर अपने पीछे आ रही तोपों की पक्तियों को बिना रुके अबाध गति से आगे बढ़ाने में सहायक थे जो पलक झपकने जितनी देर में उन्हें ऊँची चढ़ाई पर ले जाने में तत्पर और सक्षम थे। इन तोपों की भारी चरखियों के चलने से उनके पहिये धरती मे गढ़ने लगे। इस तरह की तीन सौ तोपें सज्जित की गईं। यही नहीं शाही सेना और मराठा सेना को मिला कर इस सम्मिलित सेना में एक लाख घोड़े थे जो अलग-अलग समूहों में चले। ये घोड़े ऐसे जो सवार के संकेत पर चपल गति

से इधर उधर मुड़ने वाले थे। ये घोड़े सुन्दर जरीदार जालियों और पाखरों वाले जीनों से सुसज्जित नखराली चाल से चलने वाले थे। ये घोड़े वेग की लय से छलाँगे भरने वाले थे। झुके हुए ललाट वाले ये घोड़े बिजली की तरह चपल थे जिनके कान केतकी की कली जैसे थे। चाँदी के पतरे लगे खुरों से नृत्य करने वाले इन घोड़ों के खुरों का खुरतालों से ऐसा मेल है जैसा चन्द्रमा का कलंक से अर्थात राहु से मेल है। इन घोड़ों के चलने से अनुपम धूल (खेह) यों उठने लगी मानों भूमि इन रक्षकों (घोड़ों) को धूप दे रही हों और धूप का धुँआ उठ रहा हो।

जे बैद्य पराजय रोग जाल, अरु बिजय सिद्धि साधन उताल॥
अरि पवन पिक्खि जित्त्यो असेस, व्यालहु जिन सेवत यालबेस।२४।
धुनि सीस लखत जिन फाँद धाप, प्राकार रचन छोरत धराप॥
लखि जिन मलंग तिरछी लजंत, कुलटा कटाच्छ डारन तजंत॥२६॥
छेकत दयाल उड्डान आनि, जावत सह्यो न भुव कंप जानि॥
कसि कसि अराल कोदंड कंध, व्यर्थी करंत ज्या जेरबंध॥२७॥
बिच ग्रीव हेम शृंखल बिराजि; सोहत सुहि लस्तक छबिहिँ साजि
मिलि यालन जूरा लंबमान, बहु भल्ल अजब सुहि इक्क बान॥२८॥

ये घोड़े पराजय रूपी रोग समूह के वैद्य और विजय रूपी सिद्धि को शीघ्र साधने वाले थे। शत्रु रूपी पवन को देख जिसे जीता हुआ समझने वाले इन घोड़ों के अयाल (रोमावली) की शोभा में बराबरी सर्प करते हों। ये घोड़े अपने मस्तक को धुनकर जिसको भी देखते हैं उसे दौड़ कर फांद जाने वाले थे। भूमि के पति रूप ये घोड़े शहरपनाह की रचना को न्यून समझने वाले उन्हें यों फांद कर पार कर जाते हैं कि उन्हें निरखकर कुलटा स्त्री अपना तिरछा कटाक्ष डालना भी शीघ्र छोड़ दे। ये घोड़े अपने चलने से भूमि का काँपना देखकर मन में दया उपजा कर (जैसे) उड़ने वाले थे। अपने धनुषाकार टेढ़े कन्धों को खींच- खींच कर जेरबंध रूपी प्रत्यंचा को व्यर्थ कर देने वाले इन घोड़ों के गले में बंधी स्वर्णनिर्मित सांकल (श्रृंखला) ऐसी शोभा देती है जैसे यह धनुष की मूठ (लस्तक) हो और केशों के मिलने से बना जूड़ा ही बहुत अणियों वाला अपूर्व बाण हो।

गुन होत सिथिल ज्यों गति गहीर, त्योंत्योंहि खिचत यह जानि तीर॥
हद छवि कलाप पृथु बालहस्त, सोहत हय धन्वी इम समस्त ॥२९॥
बर नेत्रछादिनी दिय बखानि, जवनी जजि सालिग्राम जानि॥
बजि प्रोथन प्रबिसत गंधवाह, दुरिजात पराजित जनु सदाह ॥३०॥
स्वचरन समेटि मलपत सुहात, जनु टारि मेदिनी मर्मजात॥
आवर्त फिरत करति अति उताल, जलनिधि अनीक सुहि भ्रमन जाल ॥३१॥
पलटत दराज गति बाज पूर, जम जनक दर्प दारक जरूर॥
आवृत बपु रोमन छवि अखर्ब, सेवत कि चित्त रय पढन सर्ब॥ ३२॥

इनके गंभीर गति से चलने पर ज्यों ज्यों प्रत्यंचा ढीली होती है त्यों त्यों वह तीर और अधिक खिंच जाता है। इन घोड़ों के बड़े बालछे (पूँछ) ही जैसे इन शोभादायक धनुषों के तीरकश हों। इस प्रकार की धनुष की छवि से शोभित घोड़े बढ़े। इनके नेत्रों पर छादित उजाली (यथार्थ में इनका नाम अंधारी है पर विरुद्ध लक्षणा के कारण लोक में उजाली कही जाती है) ऐसी लगती जैसे शालिग्राम की पूजा में कनात लगाई गई हो। बढ़ते हुए इन घोड़ों के नासाछिद्रों में घुसता पवन यों बजता है जैसे पराजय की दाह पाया हुआ पवन मानों इनकी नासिकाओं से छिपने की उतावली में हो। अपने चरणों को समेट छलांग लगाते ये घोड़े ऐसे लगते हैं मानों वे भूमि के मर्म स्थानों पर पाँव रखने को बचाते हुए ऐसा करते हों। तेज गति से आ कर ये घोड़े कावा (चक्राकार) में फिरते ऐसे लगते हैं जैसे वे सेना रूपी समुद्र में पड़ते भँवर हों। पूरी तेज गति से आकर जब ये घोड़े अचानक पलटतें है तो ऐसा लगता है जैसे यमराज के पिता का दर्प चूर कर रहे हों। इन घोड़ों के शरीर पर बनी भंवरियों (आवर्तों) की बड़ी शोभा है (चित्त का वेग घोड़े के वेग से अधिक नहीं होता यही सोच कर जैसे ये भंवरियाँ यहाँ हों) और जैसे वेग भ्रमरी रूप में इनकी देह में गोलाकार चक्कर काटता हो।

दिल्ली रु सितारा मिली दुरूह, जिन किय तयार इम बाजि जूह॥
सतदोय द्विरद किय सज्ज संग, अंदुक प्रलंब अँचत अभंग॥३३॥
बाद्धिधि जिहाज जिम लगत बात, हंके इम पयपय भुवि हलात॥
गतिमंद झरत मद अवर गात, बिजयाऽभिसिक्त कटकहिं बनात॥३४॥

पृथुकुंभ सिरी करि पिहित पीन, कंचुकि उरोज जनु थगित कीन ॥
रन नगर उच्च अट्टाल रूप, अतिसय बिसाल उच्छ्रय अनूप ॥३५ ॥

दुवकुंभ कुंभ सिखरक दिपंत, मंजुल ध्वज लंबित केतुमंत ॥
जिन रक्खि बाम दक्खिन जरूर, सूतहि सिखाय टरि जात सूर ॥३६ ॥

ऐसे घोड़ों का विशाल झुण्ड दिल्ली और सतारा के स्वामियों ने मिलकर एकत्रित किया जो अब रणभूमि की ओर बढ़ा। इन घोड़ों के अलावा इस सेना में दो सौ हाथी सज्जित हो कर अपने पाँवो में बंधी लंबी जंजीरें खींचते हुए बढ़े। पवन के चलने से जिस प्रकार समुद्र में जहाज हिलता है उसी प्रकार ये हाथी अपने प्रत्येक कदम से भूमि को डुलाते चले। धीमी गति से चलने वाले इन हाथियों के अपने गात से जो मद झरता है उससे वे मानों अपनी सेना के फतह होने का अभिषेक कर रहे हों। इनके पृथुल कुम्भस्थलों को मस्तक भूषण (सिरी) यों ढंके हुए है मानों कोई कंचुकी स्त्री के उरोजों को थोड़ा बहुत ढके हुए हो। युद्ध के नगर अर्थात रणभूमि में अट्टालिका जैसे नजर आने वाले हैं ये हाथी। इनकी बुर्जे अत्यंत विशाल और ऊँची हैं जिन्हें किसी ऊँची चीज की उपमा से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इनके दोनों कुम्भ तो सुमेरू पर्वत के शिखर लगते हैं। इनकी पीठ पर लहराते सुन्दर ध्वज जैसे उच्च केतुमान नामक खण्ड विशेष हों जिसमें से विचरण करता हुआ सूर्य अपने सारथी को बाँए अथवा दाँए टलने का निर्देश दे कर रथ सहित गुजरता है।

घुम्मत घुमंडि घन सघन घोर, जावत मिटात पवमान जोर ॥
सुंडा फटकारत नभ सुहात, जिहिं त्रास संकि सिसुमार जात ॥३७ ॥

भननंकि भ्रमर कुंभन भ्रमंत, किय पत्रभंगि तिय कुच कि कंत ॥
पच्छिन हटात बमथून पूर, गज्जत गुसैल मंडत गरूर ॥३८ ॥

आटोप रचत अंगुलि उठाय, काकोदर भोग कि काल काय ॥
भासत कलाप ग्रीवा प्रभान, मंदरगिरि बासुकि घेर मान ॥३९ ॥

दोलायमान श्रवनन दिखात, गिद्ध कि जटायु पच्छन हलात ॥
अंदुक प्रलंब जो व्है न अंग, मारैं मलंगि बाजिन मलंग ॥४० ॥

ये हाथी रणभूमि में यों घूमते हैं जैसे आकाश में सघन श्याम मेघ विचरण करते हों और जब ये किसी दिशा में बढ़ते हैं तब सामने से बहते पवन

के बल को क्षीण कर देने वाले हैं जब ये अपनी सूँड को आकाश की ओर उठा कर फटकारते है तो इनके भय से शिशुमार कुण्डली (अंतरिक्ष की नक्षत्रमंडली) सामने से हट जाती है। इनके कुंभस्थलों पर 'भनन- भनन' की गुंजार के साथ भँवरे इसलिए मंडराते हैं मानों किसी पति ने स्त्री के कुचों पर कस्तूरी आदि के लेपन करने की तरह वहाँ कुछ लेप रखा हो। ये हाथी सूंडों से जल कण फेंकते बढ़ रहे हैं सो मानों वे सामने उड़ कर आते पक्षियों को हराने का प्रयत्न करते हों और ये दर्प से भरे गुस्से में जब चिंघाड़ते हैं तो लगता जैसे आकाश में मेघ गर्जना हो रही हो। ये जब अपनी सूंड के अग्रभाग को उठाकर मस्तक पर छत्र सा बनाते है तब लगता है जैसे कोई काला भुजंग फण कर रहा हो। इनके गले में बंधा कलावा यों लगता है मानों मदरांचल पर्वत के चारों और वासुकि नाग अपनी कुंडली का घेरा डाल कर बैठा हो। चलते हुए जब ये अपने दोलायमान कान हिलाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे जटायु अपने पंख हिला रहा हो। इनके पाँवों में बंधी लंबी और जंगी सांकलें न हों तो ये छलांगें भरते घोड़ों को पीछे छोड़ने को खुद छलांगें भरने लग जायें अर्थात यदि इनके पाँवों में अंदुक न हों तो ये छलांग भरने को आतुर लगते हैं।

जंजीर जबर जिनके सुहात, पद्धति हल पद्धति रचत जात॥
सजि डाकदार हुव बिंटि संग, मारत बहु बेणुक रचि मलंग॥४१॥

दुति स्याम मुक्त कच दरस देत, पब्बय रहेकि गरदाय प्रेत॥
बारूद बिहित चरखी बिसाल, जे करत डरत मग चित्र जाल॥४२॥

मग मत्त चरन डारत मरोर, अदभुत दिखात गति ओर ओर॥
बारूद पूर्ण जिम चलत बान, इम चलत स्वैर जिततित अमान॥४३॥

इकनिमिख निवर्त्तन अंतराय, दूजो न बनत निकटहि दिखाय॥
पच्छिम सन पूरब पलटि जाय, व्है वायु लेत नैऋत निराय॥४४॥

रणभूमि की ओर बढते ये हाथी अपने पाँवो की जंजीरों से राह में ऐसी लकीर बनाते जा रहे हैं मानों किसी ने हल चलाकर चाँस खींची हो। इनको आगे बढाने के लिए सांटमारों का झुण्ड इनके चारों ओर पसरा है। जो बीच-बीच में उछल कर इनके शरीर पर भाले खुभाते चल रहे हैं। बढ़ते हुए हाथियों के चारों ओर अपने केशविहीन सिरों वाले सांटमार चलते हुए यों लग रहे हैं मानों किसी पर्वत को प्रेत घेर रहे हों । बारूद वाली तोपों की बड़ी-बड़ी

चरखियों को खींचते ये जब बढ़ते हैं तब रास्ते में भय का आश्चर्यजनक सृजन करते चलते हैं। चलते हुए जब ये अपनी ठसक से कदम आगे धरते हैं तब ये अपनी अद्‌भुत चाल का प्रदर्शन कर रहे होते हैं। जिस तरह बारूद युक्त बाण हर किसी दिशा में बढ़ता है उसी तरह मार्ग में बढ़ते हुए ये हाथी अपनी इच्छा से इधर-उधर होते चल रहे हैं। पलटने में एक निमिष मात्र लगाने वाले ये हाथी दूसरे ही क्षण वापस निकट नजर आते हैं। पश्चिम दिशा से पूर्व में और वायु दिशा से नैऋत में पलटने में ये देरी नहीं लगाते।

सत दुव इम जंगम अद्रि सज्जि, बल हुव तयार रनतूर बज्जि ॥
जवनन कुरान पढि किय निमाज, जुरि हंकिय आरूहि बाजिराज ॥४५ ॥

स्व बजीर निजामनमुलक सत्थ, सब साह सेन सज्जिग समत्थ ॥
इत हुव मलार दत्ता तयार, संभा सुत जनकू रन सिँगार ॥४६ ॥

जल गंग न्हाय करि दान जत्थ, पढि बिष्णुकवच दस नाम पत्थ ॥
सजि यौं बनि दिल्लिय दल सहाय, लहि काल चले कर मुच्छ लाय ॥४७ ॥

इततैं दरकुंचन भरि उडान, पहुँच्योहि आय दिल्लिय पठान ॥
दल कौं पुर बाहिर कढत देर, नहिँ मिलत भई दल अपर नेर ॥४८ ॥

चलते हुए पर्वतों की छवि वाले ऐसे दो सौ गजराज रणभेरी के बजते ही सेना में सज्जित हुए। युद्ध में जाने से पूर्व यवन योद्धाओं ने कुरान पढ़ कर नमाज अदा की फिर एकत्रित होकर घोड़ों पर सवार हो रणभूमि की ओर बढ़े। शाही सेना के साथ शाही वजीर निजामल्मुल्क भी सज्जित हो बढ़ा। इधर मराठा सेना के योद्धा मल्हारराव होल्कर, दत्ताराव, सँभा का पुत्र और जनकूजीराव सिंधिया भी सज्जित हुए। इन्होंने युद्ध के लिए प्रयाण करने से पूर्व गंगाजल से स्नान किया फिर दान आदि देकर विष्णुकवच के साथ अर्जुन के दस नामों का पाठ किया फिर शाही सेना की सहायता करने के अर्थ अपनी मूँछों पर ताव देते हुए बढ़े! उधर पंजाब से दरकूच दर मंजिल बढ़ता पठान अहमदखान भी अपने दल के साथ दिल्ली आ पहुँचा। शाही सेना और मराठा सेना की सम्मिलित फौज को दिल्ली नगर से बाहर आने में जितनी देर लगी उतनी उसे अपने सम्मुख उपस्थित शत्रु सेना के नगर में घुसने में नहीं लगीं।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे स्वसुतद्वय सन्धि यान विग्रहा स्वदिशिक्ष यिषुबुन्दीन्द्रबरवाड़पुर-

गमनसम्मुखसमागतमल्लारसम्मिलनश्रुतपठान अहमदषाह प्राप्त पंजाब प्रस्थित हुल्कर सम्मत पस्त्य प्रेषित पुत्रराव राट्सहप्रयाणन्यक्कृत जयपुरजन पदलुण्टन हुल्कर सहायी हड्डेशसुप्त शिविरस्थ सुभट सुहरणीश दशरथसिंह सनाभिशस्त्रमरण कोटपुत्तलीसैन्य शिविर स्थापन नबाबगाजुद्दीखान स्वामि दिल्लीशास्स्लमगीरमारणसमाकर्णितै-तत्त्यक्तपञ्जाबा स्हमदषाहदिल्लीसरणिसमासरण बुन्दी प्रेषित बुन्दीन्द्रलुण्टितसङ्करदापुर मल्लार जनकू दत्ता स्सदिदिल्लीसहायी-भवननिवेदित महाराष्ट्रोपायनीभूत दमद्रम्म कोटिगाजुद्दीखाना स्स्लीगोहर दिल्लीगद्दिकोपविशन सज्जित सकलपुर प्राकार पिस्पर्शयिषुपठान पृतना प्रश्लेषणंमष्टचत्वारिंशो मयूखः। आदितः ॥३२९ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, अपने दोनों पुत्रों को संधि, यान, विग्रह आदि सिखाने की इच्छा वाले बून्दीन्द्र का बरवाड़ पुर में जाना और सामने आये हुए मल्हार से मिलना, अहमदशाह पठान को पंजाब में आया हुआ सुनकर, होल्कर की सलाह से पुत्रों को घर भेजकर रावराजा का होल्कर के साथ जानाऔर जयपुर देश का अनादर करके लूटना, होल्कर के सहायक हड्डेन्द्र के डेरे में सोते हुए अपने उमराव सुहरणवाले दशरथसिंह का अपने सपिंडी भाई के शस्त्र से मरना और कोटपूतली में सेना का डेरा होने पर नवाब गाजुद्दीखाँ का दिल्ली के स्वामी बादशाह आलमगीर को मारने की खबर सुनना, इस कारण से पंजाब को छोड़कर अहमदशाह का दिल्ली के मार्ग को लेना, बून्दी के पति को बून्दी भेज़कर और संकरदा पुर लूटकर मल्हार, जनकू, दत्ता आदि का दिल्ली का सहायक होना, मराठों का दण्ड के करोड़ रुपये नजर करके गाजुद्दीखाँ का आलीगोहर को दिल्ली की गद्दी पर बिठाना, सब का सज कर पुर के कोट से पठान की सेना को पीसने की इच्छा वालों का सेना से मिलने का अड़तालीसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उनतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

लहलह मजनूँ को ललित, तकिया बाहिर तत्थ।
मंडि मरन दुव दल मिले, सस्त्रन झारि सतत्थ॥१॥

सक रस ससि बसु ससि सिसिर, आगम उदित अनेह।
संकरपैंहं पठयो समर, न्यूँता नूतन नेह॥२॥
पृतना इन मिलतैं प्रथम, लग्गी तोपन लाय।
रसना इक सततीन रव, जे किम बरने जाय॥३॥

हे राजा रामसिंह! दिल्ली नगर के बाहर जहाँ लेल्हा- मजनूँ का तकिया बना हुआ है उसी के समीप अहमदखान पठान का दल और शाही सेना जिसके साथ मराठा सेना थी उस सम्मिलित दल के मध्य शस्त्रों की वर्षा करते हुए दोनों ओर के योद्धा मरने की ठान कर भिड़े। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सोलह में शिशिर आगमन के समय इन योद्धाओं ने नवीन स्नेह के साथ महादेव को रणभूमि में आने का निमंत्रण भेजा। इन दोनों जंगी सेनाओं के आमने- सामने होते ही तोपों ने आग उगलनी आरंभ की। हे राजा रामसिंह! मेरे (मुझ ग्रंथकार के) तो मात्र एक जीभ है भला में तीन सौ तोपों के धमाकों का वर्णन कैसे कर सकता हूँ अर्थात् यह कवि के लिए असंभव कार्य है।

भुजङ्गप्रयातम्

दग्यो तोप संदोह छोनी दरारी, बढ्यो धूम आवाज घाँघाँ बिथारी॥
फबैं लोल गोला करी कुंभ फुट्टैं, पताकान के पुंज टुट्टैं बिछुट्टैं॥४॥
बनैं फेर पैं फेर ज्यौं बाक्यबादी, गिरैं चोट सैं लोट सादी निसादी॥
उड़ैं बाजि आयास धारा बिसारैं, बिमानावली बीच आयास डारैं॥५॥
जगैं घोर अंधार मैं सोर ज्वाला, मनौं भद्द के अद्द मैं बिज्जुमाला॥
हलैं सेस को ज्यौं फटा को हजारा, सिदैं त्यौं मही कान्त कल्पाभिसारा॥६॥
लगैं चोट पैं चोट मातंग लोटैं, उड़ैं पंत्ति जोटैं बचैं कोन ओटैं॥
घनैं घुम्मि घाँघाँ झुके हत्थि घोरे, बनैं ज्वालमाला अकूपार बोरे॥७॥

तोपों के झुण्ड ने जब चलना आरंभ किया तो पृथ्वी में दरारें आने लगीं और उनके धमाकों की आवाज सभी दिशाओं में गूंज उठी। उनके मुहानों से निकलते सुन्दर लाल लाल गोलों से हाथियों के कुंभस्थल फूटने लगे और पताकाओं के झुण्ड टूट कर बिखरने लगे। शास्त्रार्थ करने वाले नैयायिक के मुख से अविराम निसृत वचनों की तरह गोले पे गोले छूटने लगे। जिनकी चोट से घोड़ों के सवार और हाथियों के सवार उड़ने लगे। योद्धाओं के घोड़े अपनी

पाँचों तरह की चाल भूल कर मात्र उड़ने लगे। जिनसे आकाश में उड़ती विमानों की पक्तियों में विघ्न पड़ने लगा। भयंकर अंधेरे में बारूद की ज्वालाएँ यों भड़कने लगीं मानों भाद्रपद माह के सघन मेघों में बिजलियों का समूह चमकने लगा हो। इससे शेषनाग के हजार फणों का समूह हिलने लगा, भूमि भीगने लगी (रक्त से) और प्रलय ढहाने वाले शस्त्र चलने लगे। तोप के गोलों के प्रहारों से हाथी लुढ़कने लगे वहीं उनके वेग से उठे पवन से पैदल सैनिक उड़ने लगे क्योंकि फिर वे किसकी ओट में अपना बचाव करते। कई जगह चक्कर काट कर ठौर-ठौर हाथी घोड़े भूमि पर पड़ने लगे और अग्नि के समुद्र में डूबे हुए वे जलने लगे।

कछू काल दै तोप यौं रारि किन्नी, लरे फेरि लै खग्ग है बग्ग लिन्नी ॥
धमंकी धरा बाढ कैं बाढ बज्यो, बढ्यो बीर को भीरु को नीर लज्यो ॥८ ॥

मिले दुग्ध पानीय ज्यौं जोध मत्ते, कला ऐंदवी से चले काल कत्ते ॥
कटैं कुंभ बाहित्थ सुंडा कलावा, कहौं रुंड घुम्मैं अटैं देत कावा ॥९ ॥

छिकैं कंधरा जीन बाजीन छुट्टैं, फबैं लीन जालीन मैं सांगि फुट्टैं ॥
उडैं अस्थि संघात के ओर औरैं, छले मेघ मानौं घनैं ग्राव छौरैं ॥१० ॥

कटैं उच्छटैं टोप जाली करक्कैं, फटैं पेट नागोद फैलैं फरक्कैं ॥
कढैं नैन छौरैं न लग्गी कनीनी, लसैं षट्पदी फूल ज्यौं संग लीनी ॥११ ॥

शुरूआती दौर में कुछ देर तक तोपों का घमासान मचा रहा इसके बाद तो दोनों ओर के योद्धाओं ने अपने - अपने घोड़ों की लगामें उठाई और अपनी - अपनी तलवारें संभाली। इससे भूमि काँप उठी और तलवारों की धार पर तलवारें बज उठीं। जिसे सुन कर वीर योद्धाओं का पराक्रम बढ़ा और कायरों का पानी लज्जित हुआ। दोनों दलों के योद्धा एक दूसरे की सेना में यों रिलमिल गए जैसे दूध में पानी एकमेक होता है। इन्द्र के वज्र की गति से काल रूपी खड़ग चलने लगे। हाथियों के कुंभस्थल, ललाट के अधोभाग, सूँड और कलावे कटने लगे और रणभूमि में मस्तक विहीन रुंड गोल गोल घूमने लगे। घोड़ों के कन्धे कट कर उनके जीन खुलने लगे और कवचों को भेदती बर्छियाँ शोभा देने लगीं। रणभूमि में वीरों की हड्डियों के समूह चारों ओर उड़ने लगे मानों आकाश से मेघ सफैद रंग के ओले बरसाते हों। कहीं शिरस्त्राण कट कर

उसके नीचे की जाली उछलने लगी तो कहीं कवच फटने लगे। कहीं पर पेट के कवच (नागोद) फटने से योद्धाओं के पेट फूलने और फुरकने लगे। योद्धाओं के पुतलियों सहित नेत्र निकलने लगे मानों भंवरे भी फूलों का साथ न छोड़ कर साथ आए हों।

बरक्कैं झरैं कंधरा अंस बाहा, उडैं मूर्द्ध मज्जा दहीसार आहा॥
दिपैं बीर सुंडिज्ज जुज्झैं दिखावैं, परैं सस्त्र मैं सस्त्र छेटी न पावैं॥१२॥
व्यवच्छेद धन्वीन के दंस बेधैं, नमंती जुरैं कोटि द्वैधा निसेधैं॥
तकैं सूरहू दूरवेधी तमासा, उडैं बाज के बाज के प्रान आसा॥१३॥
गिनैं लस्तकैं सत्रु व्है दूर गव्या, लहैं अैंचि नीरैं सुपैं मन्नि लव्या॥
निहारो यहै चाप मैं रीति नव्या, सुनैं ही बनें भीरु सव्यास्पसव्या॥१४॥
बजैं पत्रणा सोक त्यों भै बिथारैं, महातूण की पूर्णता दीप्ति मारैं
डसैं कर्त्तरी सिंज कौं आनि ज्यौंज्यौं, तितिच्छू टरैं दुष्टतैं साधु त्यौंत्यौं॥१५॥

रणभूमि में कहीं पर वीरों के कन्धे, गर्दनें और बाहु कट कर गिरने लगे तो कहीं पर योद्धाओं की फटी खोपड़ी से सफैद रंग का भेजा गिरने लगा जैसे मक्खन गिरा हो। अपने पराक्रम का प्रदर्शन करते वीर योद्धा शोभा पाने लगे और शस्त्र पर शस्त्रों के सतत प्रहार होने लगे। धनुषधारियों के छोड़े बाण शत्रु योद्धाओं के कवच बेधने लगे और ऐसा करने में धनुष की कोटियाँ झुक कर आपस में यों मिलने लगीं मानों वे द्वैत का निषेध करती हों। बेधन का यह तमाशा दूर से ही कई योद्धा निहारने लगे। वहीं रणभूमि में कई घोड़े बाज पक्षी की तरह अपने बल से झपाटे भरने लगे। धनुष का लस्तक (मूठ) जिस शत्रु को दूर मानता उसी को धनुष की प्रत्यंचा छेदन करने योग्य मान कर समीप लेने लगी। युद्धक्षेत्र में धनुष की यह नई रीत देखो कि इसकी टंकार सुनते ही कायर लोग दाँए-बाँए होने लगते हैं अर्थात सम्मुख नहीं आते। तेज गति से चलते बाणों की सनसनाहट रणभूमि में भय का प्रसार करने लगी और बड़े तरकश अपने भरे होने की दीप्ति देने लगे । ज्यों ही कोई तलवारधारी शत्रु पास आकर धनुष की प्रत्यंचा काटने को उद्यत होता तो धनुर्धारी उससे दूर हट जाता। जैसे दुष्ट को देखकर क्षमाशील साधु टलता है।

न छोरैं तऊ तामसी वृत्ति धारैं, ज्यका कुप्पि ताकों तबैं दूर डारैं॥
परैं हीन संग्राह के चर्म पंती, भली जो बिनाँ अंघ्रि दौलेय भंति॥१६॥

बहैं सूल छूरी इली त्यों बरच्छी, छबैं सालभी पंति ज्यों तीर पच्छी॥
दिपैं भू खलूरी बनी कोस द्वै द्वै, हलैं मत्त धाँधों खरैं रुंड व्है व्है॥१७॥

महा तार मैं प्रेत आलाप मारैं, नचैं जोगिनी लौंन भैरों उतारैं॥
हसैं डाकिनी साकिनी घुम्मि हल्लैं, घनी रास मैं घुम्मरी घेर घल्लैं॥१८॥

जगी ज्वाल ज्यों कंत के दंत जारैं, मरी यों डरी दिग्गजी चीह मारैं
अमा ईंदु को रूप आदित्य धार्यो, चिके चक्क चक्कीन हाहा उचार्यो॥१९॥

तब भी ये तामसी वृति वाले तलवारधारी उन धनुर्धरों को नहीं छोड़ते पर प्रत्यंचा साधु की तरह क्रोध कर उनको परे हटाने लगी। रणभूमि में बिना हत्थे वाली (मूठ टूट अथवा कट जाने पर) ढालें यों पड़ी हैं जैसे बिना पैरों वाले कछुओं की पंक्ति पड़ी हो। थोड़ी देर में रणभूमि में चलती हुई शूल, छुरे, तलवार और बर्छियों का अंबार लग गया वहीं बाण तो टिड्डी दल की तरह आकाश में छा गये। रणभूमि की दो-दो कोस तक की भूमि जैसे शस्त्राभ्यास के अखाड़े सी बन गई जिसमें मस्तकविहीन रुंड आराम से चहलकदमी करने लगे। उच्च स्वर में प्रेत आलाप लेने लगे तो योगिनियाँ नृत्य करने लगीं और भैरव लोन उतारने लगे (यह नजर ना लगने का टोटका है)। रणभूमि में कटे वीरों के शव देख-देख कर डाकिनियाँ प्रसन्न होने लगीं और साकिनियाँ घूमर लेती अपने लहँगों का घेरा पसारने लगीं। रणभूमि में जगी अग्निज्वालाएँ ज्यों-ज्यों पतियों (हाथियों) के दाँत जलाने लगी त्यों त्यों दिग्गजी हथनियाँ 'मरी-मरी' की चीख मारने लगीं। सूर्य ने अमावस्या के चन्द्रमा का रूप धर लिया अर्थात् अगोचर हो गया। इस चूक से चक्रवाक पक्षियों में हाहाकार मच गया (ऐसी मान्यता है कि रात्रि में चक्रवाक पक्षियों की जोड़ी बिछड़ जाती है)।

फबैं खग्ग लग्गे बजे टोप फोरैं, घरयारी मनों प्रात की घात घोरैं॥
मचे कोप उच्छाह थायी न मावैं, तथा हास बीभच्छ सोभा बतावैं॥२०॥

बिधाता बढी सृष्टि तैं दर्प छंड्यो, मनों मोति बिक्रेय बाजार मंड्यो॥
कुहू रत्त मैं झंपि गिद्धी किलोलैं, डूबे सिंधु अंधार जे भोर डोलैं॥२१॥

घनें बान जोधान के उद्ध चारैं, मनों पूजिबे अच्छरी फूल डारैं॥
बढैं मार पैं मार बिस्फार बानी, भयंकार आचार मंडै भवानी॥२२॥

बनैं बावरी कुंभ बानैंत बुल्लैं, सती केर नारेर व्है बीज खुल्लैं॥
अनी प्रान के जान के होत सूनी, पुकारैं बढो रे बढो यों चमूनी॥२३॥

तलवार का प्रहार होते ही फूटते हुए शिरस्त्राण बज कर ऐसी शोभा देने लगे मानो घड़ियाल बजाने वाला प्रातः काल की सेवा-पूजा के समय घड़ियाल बजा रहा हो। इस भीषण युद्ध के कारण रणभूमि में लड़ रहे योद्धाओं में उपजा वीर रस और उसका स्थाई भाव उत्साह समा नहीं रहा। इसी प्रकार विभत्स और हास्य रस भी रणभूमि की शोभा बढ़ाने लगे। ब्रह्मा ने अपनी रची हुई सृष्टि का घमंड छोड़ कर जैसे मृत्यु का बाजार लगा दिया हो। नष्टचन्द्रा अमावस्या की काली अंधेरी रात में गिद्धनियाँ किलोल करती झपटने लगीं। पर वे इस अंधेरे के समुद्र में रात भर डोलती रहेंगी। वीर धनुर्धरों के बाण ऊँचे आकाश में चलने लगे तो ऐसा लगने लगा जैसे ऊपर से अप्सराएँ इन वीरों पर पुष्पवर्षा करने लगी हों। चारों ओर मार पर मार करने वाली धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि बढ़ने लगी और रणचंडी कालिका रक्त पीने का भयंकर आचरण करने लगी। रण में योद्धा पागल स्त्री का घड़ा बनकर बोलने लगे अर्थात् स्वयं को क्षणभंगुर समझ कर बोलने लगे और सती के हाथ का नारियल बनकर क्रोध करने लगें। इधर सेना अपने सैनिकों के मरने पर सूनी-सूनी होने लगी और उधर सेनापति 'बढ़ो-बढ़ो' के बोल उचारने लगे।

मरे रे मरे भीरु कुक्कैं पलावैं, खरे रे खरे बीर अक्खैं टिकावैं॥
अरैं संगि के संगितैं अग्र ऐसैं, जुरे वैदुषी कोटि द्वै तिक्ख जैसैं॥२४॥

घनैं बीर सुत्तेन कों भीरु घावैं, बकैं जीत भोरे बनी मैं बनावैं॥
बिदू दारि दंतीन बेधैं बरच्छी, अधो व्है चलैं अस्त्र की रेल अच्छी॥२५॥

सुही नारि वक्षोज द्वै मैं बिसाला, मनों बित्थरी लंब मानिक्य माला॥
लगे सुंडि पैं स्याह के सेल हल्लैं, किधों कन्ह कालीय पैं घूम घल्लैं॥२६॥

भये रंग कुल्हू भये लट्ठि भाले, बलीबर्द भो बीर जी इच्छु जाले॥
किते पत्ति घोरेन कों मुंड मारैं, मनों धेनु ऊधन्य बच्छा अहारैं॥२७॥

दूसरी ओर कायर 'मरे रे मरे' कहते भागने लगे और वीर लोग उन्हें 'खड़े रहो-डटे रहो' कह कर युद्ध में टिकाये रखने लगे। बर्छियों के अग्रभाग आमने सामने यों मिलने लगे जैसे शास्त्रार्थ करने वालों की कोटियाँ जुड़ती हैं। रणभूमि में कट कर सोए हुए वीरों को भागने वाले कायर रौंधने लगे। वहीं कलराते हुए घायल 'मैनें जीत दिलाई' की रट लगाने लगे। हाथियों के कुम्भस्थल के मध्य स्थान पर जब बर्छियों के प्रहार होने लगे तो इससे भूमि

पर टपके रक्त की धार बह निकली और यह बहती हुई धार ऐसी लगने लगी मानों किसी स्त्री के विशाल उरोजों के मध्य माणिक्य की लंबी माला पड़ी हो। हाथियों की काली सूंडों में घुसे हुए भाले हिलते हुए यों लगने लगे मानों कृष्ण कालीय नाग के फणों को नाथते घूम रहे हों। यह युद्ध कोल्हू रूप हो गया जिसमें लाठ रूपी भाले हैं तो वीर रस रूपी इसमें जुते हुए बैल हैं और जीव इसमें पेरे जाने वाले गन्ने हैं। कई पैदल सैनिक जब अपने सिर की टक्कर शत्रु सवारों के घोड़ों को मारने लगे तो वे ऐसे लगे जैसे कोई दूध पीता हुआ बछड़ा गाय के थनों पर मुँह मार रहा हो।

कहीं अच्छरी सूर कों मंडि माली, बनावैं गरैं बाँह गावैं बिसाली ॥
कहीं भिन्न कुंभीन लोही छछक्कैं, किधौं तिंदु तैं फाल फुल्लिंग तक्कैं ॥२८ ॥

भनंकार भैकार भेरी बिथारैं, घटा भद्द की जानि निर्घोस डारैं ॥
कहीं टोप कों खंडि खंडा खटक्कैं, गुलाबी कली प्रात मानों चटक्कैं ॥२९ ॥

छिदे केक कुंभीन तैं कण्ण छुट्टैं, ति ज्यों बात तैं ताल तैं पण्ण तुट्टैं ॥
कहीं क्रुद्ध बुक्केन कों मींडि तोरैं, मनों सूप मैं सूद निंबू निचोरैं ॥३० ॥

कहीं बीर बैठे घनें घाय घुम्मैं, झपट्टैं कहीं लुत्थि तैं लुत्थि झुम्मैं ॥
अहारैं कहीं ऐंचि गोमायु अंती, प्रहारैं मनों पन्नगी मोर पंती ॥३१ ॥

रणभूमि में कहीं पर अप्सराएँ शूरवीरों का वरण कर उनके गले में गलबाँहें डाले गीत गाने लगीं तो कहीं पर कटे हुए हाथियों के घावों से रक्त के फव्वारे छूटने लगे और हवा में ये रक्त कण यों लगने लगे जैसे जलते हुए सूखे तेंदू के पत्तों से स्फुलिंग उछल रहे हों। नोबत – नगारे ऐसी भयकारी ध्वनि फैलाने लगे मानों भाद्रपद माह के मेघ गर्जना करने लगे हों। कहीं पर शत्रु योद्धा के सिर पर खांडे (सीधी तलवार) के प्रहार से टोप कटने के बाद उसकी कपाली पर टकराता खांडा ऐसी ध्वनि करने लगा मानों प्रभात के समय गुलाब की कली चटकी हो। कहीं पर कट कर हाथियों के कान यों गिरने लगे मानों ताड़ वृक्ष के पत्ते हवा से टूट कर गिर रहे हों। कहीं पर वीर शत्रु के गुर्दों को तोड़ यों मसलने लगे जैसे दाल में रसोईदार नीबू निचोड़ रहा हो। कहीं पर खूब सारे घावों से छके वीर बैठे हैं तो कहीं एक लोथ दूसरे पर झपटने लगी। रणभूमि में कहीं पर गीदड़ मृत वीरों की आंतड़ियाँ खाने के लिए यों खींचते हैं मानों मयूर सांपों की पंक्ति को मारने के लिए अपने पंजों से प्रहार करते हों।

कढैं डाकिनी लिप्त लोही कलेजी, रँगे पट्ट ज्यों मट्ट तैं रंगरेजी॥
हबक्कैं कहों घाय बुल्लैं हजारैं, मनों तेग के ताप आक्रंद मारैं॥३२॥

बिनोदैं कहों कंक बुल्लैं बनावैं, मनों बंदि ईरान को जै मनावैं॥
तमंके इते संग दिल्ली सितारे, उमंगे उतैं मिच्छ ईरानवारे॥३३॥

दुहँओर यों हत्थ अच्छे दिखाये, घने हत्थि त्यौं सत्ति ओ पत्ति घाये॥
सितारा रु दिल्ली थके दैव सारैं, मची आन ईरान की भान मारैं॥३४॥

छक्यो लोह संभा तनैं देह छुट्यो, तथा बीर दत्ता पर्यो तेग तुट्यो॥
जयानंद के जोर कै घाय लग्गे, भिदे दक्खिनी ए घने हारि भग्गे॥३५॥

अछूती अनी इक्क मल्लार कढ्यो, बली देस ईरान को जोर बढ्यो
दुर्यो भज्जि कैं खान गाजुद्दि दिल्ली, पराजै भयो जुद्ध की हौंस पिल्ली॥३६॥

रणभूमि में कई डाकिनियां रक्त से लिथड़े मृत वीरों के कलेजे यों निकालनें लगीं जैसे रंगरेज अपने रंग की मटकी से रंगा हुआ कपड़ा निकाल रहा हो। कहीं पर घायलों के हजारों घाव 'हबक- हबक' करने लगे मानों वे तलवारों के उताप से कूकते हों। कहीं पर विनोद से भरें कंक (ढींच) पक्षी बोलने लगे मानों वे ईरान से आये हुए शत्रुओं के भाट (बंदीजन) हों और उनकी जय जयकार कर रहे हों। जिसे सुनकर दिल्ली और मराठा (सतारा की) सेना के योद्धा क्रोध से भर उठे वहीं ईरान वाले शत्रु यवन उत्साह युक्त हुए। दोनों दलों के योद्धाओं ने रण में अच्छे हाथ दिखाये जिससे कई हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों को घाव लगे। इतना सब कुछ होने के बाद भी भाग्यवश सतारा और दिल्ली की एकत्रित सेना कांतिहीन हुई अर्थात् हार गई और ईरान के सेना नायक पठान की आन फिरने लगी अर्थात् उसकी कांति बढ़ गई। रणभूमि में कई घाव खा कर घायल हुआ संभाजीराव का पुत्र मर गया और वीर दत्ताराव भी अपनी टूटी हुई तलवार के साथ रणभूमि में गिरा। जयाजीराव सिंधिया के पुत्र के कई गहरे घाव लगे। तीन बड़े मराठा योद्धा बेधे गये वहीं शेष भाग खड़े हुए। अपने दल के साथ एक मल्हारराव अक्षत रहकर वहाँ से निकला। इस युद्ध से बलवान ईरानियों का दबदबा बढ़ा। उधर दिल्ली में गाजुद्दीनखान भाग कर कहीं छिप गया क्योंकि उसकी पराजय हुई और उसके मन से युद्ध करने की इच्छा भी निकल गई थी।

दोहा

पुनि तजि खान कलीज तजि, आलीगोहर साह।
दुव सरनागत जट्ट को, लग्गि भरतपुर राह ॥३७॥

इसके बाद कलीजखान दिल्ली को त्याग कर निकला और इसी तरह बादशाह आली गोहर भी। दोनों ने भरतपुर के जाट शासकों की शरण लेने की चाह में भरतपुर जाने वाली राह पकड़ी।

पादाकुलकम्

मिले अवर दिल्लीपति के तब, सत्रुन माँहिं नबाबसुभट सब॥
इक हाफिज रहमुतुल्ला सठ, बिरचि हराम सुजाद्दोला हठ॥३८॥
बहुरि नजीमुद्दोला बालिस, पुनि सादूल्लखान मिलन मिस॥
अहमदखान पठान माँहिं इम, जुलमी मिलि सब भये दास जिम॥३९॥

पीछे से शाही सामंत अर्थात् कई नवाब बादशाह का साथ छोड़ कर शत्रु पक्ष में जा मिले अर्थात् पठान अहमदखान के साथ हो लिये। इनमें से एक हाफिज रहमत्तुल्ला था तो दूसरा स्वामी से हठपूर्वक विमुख होने वाला हरामी सुजाउद्दोला था। इनके अतिरिक्त मूर्ख नजीमुद्दोला और सादुल्लाखान भी उनमें से थे जो अहमदखान पठान से जा मिले। इन जुल्मियों ने जा कर ईरानी पठान की दासता स्वीकार कर ली ।

इति श्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रेऽहमदषाहरणविजयनसम्भासुत दत्ता वीरशय्याशयनजनकू क्षतप्रापणसपरिकरमल्लार निष्कसनकान्दिशीककलीजखान भरतपुर जट्टशरणग्रहण हाफिजरहमुत्तुल्ला नबाबसुजाउद्दोला नजीमुद्दोला सादुल्लास्सदिदिल्ली शपरिकरसपत्नपठानषाहभेदोपायविषयीभवनंमेकोन पंचाशत्तमो मयूखः। आदितः ॥३३०॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, अहमदशाह का युद्ध में विजय होना और संभा के पुत्र दत्ता का मारा जाना, जनकू का घायल होना और परगह सहित मल्हार का निकलना, कलीजखाँ का मान कर भरतपुर में जाट का शरण लेना, हाफिज रहमत्तुल्ला, नवाब सुजाउद्दोला, नजीमुद्दोला, शाहुल्ला आदि दिल्ली के पति की परगह का शत्रु

पठान अहमदशाह के भेद उपाय से उसके वश में होने का उनचासवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तीस हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

दल बिगर्‍यो दिल्लीस को, मरहट्ठन गत मान।
बच्यो इक्क हुलकर बली, जित्त्यो अहमदखान॥१॥

हे राजा रामसिंह! उधर दिल्ली के बादशाह की सेना अर्थात् शाही सेना बिगड़ गई और मराठा सेना भी मानहीन हो गई। एक मात्र होल्कर का बलवान दल बचा रह गया और अहमदखान पठान की विजय हुई।

षट्पात्

जित्त्यो अहमदखान साह नादर को मारक,
द्रिल्ली दक्खिन दंडि बढ्यो निज जय बिसतारक।
अंतरवेदी आदि बिखय मंडत अप्पन बस,
प्रबिस्यो पूरब माँहिँ रचत स्वाधीन हुकम रस।
गंगा रु जमुन बिच गयउ जब कलह बिजय कोतुक करत।
भूपाल प्राच्य हाजिरि भये सब अधीन हित अनुसरत॥ २॥

वह नादिरशाह को मारने वाला अहमदखान पठान दिल्ली के इस युद्ध में विजयी हुआ और वह दिल्ली के साथ दक्षिणी सेना को दंडित कर अपनी फतह का विस्तार करने वाला यहाँ से आगे बढ़ा। उसने दिल्ली के बाद अंतर्वेदी प्रांत को अपने वश में कर लिया फिर वह आगे पूर्व की ओर अपनी आज्ञा चलाते हुए बढ़ा। वह भिड़ंत करते हुए आगे यमुना और गंगा के बीच के क्षेत्र में पहुँचा। पूर्व दिशा के सभी राजा तब उसकी छत्रछाया में अधीनता स्वीकार करते हुए आ हाजिर हुए।

दोहा

आलीगोहर साह इत, तुरकन पति हत तोर।
आहव जय ईरान को, जानि भयो गत जोर॥ ३॥
संध्या कोँ संग्राम तैं, इत मल्लार उठाय।
भिसकन को आचरि भनित, दिन्नें घाय दबाय॥ ४॥

पठ्यो कग्गर नन्ह प्रति, द्रुत लिखि दक्खिन देस।
इहाँ पराजय अप्पनौं, सबविधि भयउ असेस॥ ५॥

इधर दिल्ली में बादशाह आलीगोहर तुर्कों के स्वामी के सामने निर्बल सिद्ध हुआ। दिल्ली के युद्ध में ईरान के पठान की फतह हो जाने के बाद तो वह एकदम कमजोर हो गया। रणभूमि से घायल सिंधिया को उठा कर होल्कर इलाज करवाने को ले गया। उसने वैद्यों की सलाह से आचरण किया जिससे अन्ततः सिंधिया के सारे घाव ठीक हो गये। इसके बाद उसने पेशवा नन्ह को पत्र लिख कर दक्षिण में भेजा जिसमें लिखा कि हे स्वामी ! यहाँ दिल्ली के युद्ध क्षेत्र में हमारी करारी हार हुई है। हम सभी तरह से हार गये।

षट्पात्

सुनत तमकि श्रीमंत सेन पठ्यो बहोरि सजि,
सेनानी निज सूनु रच्यो विश्वासराव रजि।
निज काका पुनि निडर धीर चीमा अभिधानक,
भट दोउन सिर भीर अरपि दिय हुकम अचानक।
अर जाहु पुत्र काका उभय दलहु जंग ईरान दल।
सत्तरि हजार तुम संग भट खंडहु गाढ असेस खल॥ ६॥

पत्र पाकर श्रीमंत ने कुपित हो कर नई सेना सज्जित करने का आदेश दिया। उसने प्रीति सहित इस नई सेना का सेनापति अपने पुत्र विश्वासराव को बनाया। यही नहीं उसने धीर-वीर योद्धा अपने चाचा चीमाराव को भी सेना के साथ जाने को राजी किया। उसके बाद इन दोनों योद्धाओं को सेना का भार सोंप कर अचानक हुक्म दिया कि ओ पुत्र और चाचा! आप दोनों जायें और शीघ्र ही ईरान की सेना को युद्ध में पराजित कर लौटें। इस कार्य के लिए मैं आप लोगों के साथ सत्तर हजार सैनिकों वाली सेना भेज रहा हूँ जो उन शत्रुओं को मारने में सक्षम है।

सुनि चीमा बिश्वासराव दुब लै दल दुद्धर,
मुदित चले मरहट्ठ अवनि मिच्छन भर उद्धर।
नाना रंग निसान उदित बज्जिग ध्वनि आयत,
कुंभिन नाना केतु खुल्लि हंकिय खेट्टायत।

पक्खर प्रसार छादित पहुमि प्रचुर कुंत अंबर पिहित।
आवाज मुलक फुट्टिय असह बढत सेन संगर बिहित॥ ७॥

श्रीमंत की आज्ञा सुन कर विश्वासराव और चीमाराव दोनों मराठों का दुर्द्धर्ष दल ले कर मुदित मन से यवनों के भार से पृथ्वी का उद्धार करने हेतु रवाना हुए। नाना प्रकार के रंगरंगीले ध्वजों से शोभित यह सेना अपने नगारे बजवाते हुए बढ़ी। हाथियों की पीठ पर नानाविध ध्वजाएँ फहराते हुए खेटायत (योद्धा) आगे चले। पाखरों से सज्जित घोड़ों से पृथ्वी को ढंापती हुई और अपने अनगिन भालों से आकाश को आच्छादित करती हुई यह सेना बढ़ी। सभी मुल्कों में यह शोर फूट गया कि मराठों की नई जंगी सेना युद्ध करने चली है।

नागराज फन फटत कमठ दृढ पिट्ठि करक्कत,
गिरत मार तजि गड्डु दड्डु बाराह बरक्कत।
डरि दिग्गज डगमगत लगत बेपथु लोकेसन,
छुट्टिग छितिपन महल दहल फट्टिग सब देसन।
मेवास त्रास संकित दुमद हेरत सब आलोचि हिय।
चतुरंग प्रचुर दक्खिन चढत किहिं सिर कोप कृतांत किय॥ ८॥

इस नई जंगी फौज के विचरण से नागराज शेषनाग के फण फटने लगे और असहाय बोझ से कच्छपराज की मजबूत पीठ दरकने लगी। इससे आगे भी अधिक बढ़ते भार से गाढ़ छोड़ते हुए वाराह की दंतुलि में दरार आ गई। सारी दिशाओं के हाथी डर कर कांपने लगे। लोकपालों में भय व्याप्त हो गया। रास्ते में पड़ने वाले राज्यों के राजा अपने महल छोड़ कर भागने लगे। सभी ओर दहशत व्याप्त हो गई। इस सेना के भय से लुटेरों के घरों में उदासी छा गई। सभी लोगों के हृदय इस चिंता से भर उठे कि दक्षिणी सेना बढ़ती चली जा रही है। यमराज ने किस के सिर पर कोप किया है?

गिरिन चूर मिलि ग्राव धूरि अंबर संकुलि थट,
मिटि दुग्गम मेवास बनत पद्धर बट उब्बट।
अति अलात झरि अग्गि लग्गि फैलत हय नालन,
तरु तालन तुंगत्व ढह्यो जावत गज ढालन।
वजि मड्डु बंब प्रतिबादका पटह बिजय मर्दल पणव।
सर बीर बढत सिंधुह रुचिर राग अतुल आलाप रव॥ ९॥

इस सेना के पथ संचलन से छोटे-मोटे पहाड़ चूर्ण होने लगे और पत्थर चूरा होकर धूल में तब्दील हो गए। धूल ने ऊपर उठ कर आकाश को छा दिया। रास्ते में पड़ने वाले सारे लुटेरों के दुर्गम ठिकाने नष्ट हो गये। सारे मार्ग और अमार्ग सीधे हो गये। पत्थरों की रगड़ से घोड़ों के पाँवों में लगी खुरतालों से झरती अग्नि झरने लगी और वह फैलने लगी। ऊँचे-ऊँचे हाथियों के निकट आने से बड़े-बड़े तालवृक्षों का घमण्ड चूर होने लगा। मड्ड (वाद्य विशेष) नगारे, मांगलिक बाजे, पटह, मादल और ढोल जैसे बाजे बज उठे। सिंधु राग की सुन्दर रागिनी से योद्धाओं में वीर रस का संचार हुआ और उसका आलाप सभी ओर फैल गया।

फोजन लगि लगि फेट मुरत प्रतिहत रय मारुत,
मिच्छन थर थर मुलक होत घर घर डर हारुत।
बन्य सत्व दल बीच रहत थकि थकि हत रंहस,
महुरैं सलिल मिलाप तकत चंदोल पंक तस।
संतनुतनूज रन तल्य सम नभ सुहात तोमर निकर।
कै नभ निखंग रक्खिय कुपित श्रीमंतहिं रन करन सर॥१०॥

बढ़ती हुई इस सेना के अवरोध से अप्रतिहत बढ़ता पवन रुक गया। इसका आगमन सुन कर म्लेच्छों का मुल्क भय से काँपने लगा। उसके घर-घर में हाहाकार मच गया। राह के जंगल के जीव-जन्तु चमक कर भागते-भागते हत वेग हो कर सेना के मध्य ही रहने आ गये। इस सेना का परिमाण इससे जाना जा सकता है कि इसमें आगे चलने वाले सैनिकों को पीने का पानी मिल जाता पर सबसे अंत वाले के हिस्सें मात्र कीचड़ ही आ पाता। इस सेना के योद्धाओं के हाथों में भालों का समूह इतना बड़ा था मानों इन भालों से उसने आकाश में शान्तनु के पुत्र भीष्म की तरह शरशय्या बनाई हो। अथवा कि यह आकाश मानों कुपित श्रीमंत का तरकश हो। जिसे उसने युद्ध जीतने को भालों रूपी बाणों से भरा हो।

दोहा

मरहट्ठन दल इम अमित, मत्थ घसत ब्रह्मंड।
हिंदुसथान प्रबिष्ट हुव, अरिगन हनन अखंड॥११॥

अहमदखान पठान इत, बढिगो अंतरबेद।
दिल्लीय पहुँचे दक्खिनी, खलन प्रसारन खेद ॥१२॥

दिल्लियपुर प्रबिस दुसह, मरहट्ठे छक मत्त।
आलीगोहर कौं अटकि, छितिप भये धरि छत्त॥१३॥

नन्ह पितृव्यक सूनु सन, मिल्यो आनि मल्लार।
अक्खिय दिल्लिय करहु अब, सुद्ध धरम अनुसार॥१४॥

इस तरह का जंगी मराठा दल दर्प से अपना सिर आसमान से छुआता हुआ आगे बढ़ते- बढ़ते हिन्दू राजाओं के क्षेत्र में प्रविष्ठ हुआ अर्थात् वह उत्तर में अपने सारे शत्रुओं को मारने पहुँचा। इस समय अहमदखान पठान दिल्ली से आगे अंतर्वेदी क्षेत्र में विजय हेतु बढ़ गया था और पीछे से श्रीमंत पेशवा की भेजी हुई ये मराठा सेना अपने शत्रुओं के दिल में दुःख पहुँचाने को दिल्ली पहुँची। इस दुस्सह सेना के दिल्ली में प्रवेश लेते ही मराठा योद्धा मदमस्त हो गए। उन्होंने आलीगोहर नामक बादशाह को हटाकर दिल्ली का छत्र अपने सिर पर ले लिया और दिल्ली के राजा हो गए। श्रीमंत नन्ह के चाचा और पुत्र से मल्हारराव होल्कर आ मिला। उसने आते ही कहा कि अब अपवित्र दिल्ली को अपने धर्म के बताये मार्ग से पवित्र किया जाय। इसके लिए उन्होंने मुगल बादशाहों के रहने के लिए निर्मित महलों को धुलवाया और पँचामृत के साथ गंगाजल मिला कर उन धीर-वीरों ने पूरी दिल्ली में छिड़कवाया।

मुगलन के तब सब महल, धीरन लिन्न धुपाय।
गव्यपंच जल गंग करि, दिय दिल्लिय छिरकाय॥१५॥

बास्तुकर्म अरु हवन बलि, सुरपूजन करि सूर।
धारि निगम हिंदुन धरम, प्रेर्‍यो दिल्लिय पूर॥१६॥

ग्रीखम ऋत्तु मुनि ससिधृति ग, इम बनि दिल्लिय ईस।
दल सज्जित किय दक्खिनिन, रचि सत्रुन सिर रीस॥१७॥

अहमदखान पठान उत, बहु दिन अंतरबेद।
रह्यो अमल अप्पन रचत, भूपन डारत भेद॥१८॥

दिल्लीपति इत दक्खिनी, हुव सो सुनि हुसियार।
पलट्यो अहमदखान पुनि, कुल हिंदुन खयकार॥१९॥

सप्त चंद्र धृति मान सक, माघ सिसिर लहि मेल॥
मकर अरोहत अहिमकर, आये तुरुक अठेल॥२०॥

पृतना लक्ख पठान की, दिल्ली की दुव लक्ख।
जाय मिली सब इक्क जुरि, तमकि उठावन तक्ख॥२१॥

इसके बाद इन मराठा वीरों ने वास्तुकर्म (नांगल) के मुहूर्त में यज्ञ कर सभी देवताओं की पूजा की और वेदोक्त रीति से पूरी दिल्ली में हिन्दू धर्म का प्रसार किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्रह की ग्रीष्म ऋतु में मराठे दिल्ली के स्वामी बन बैठे फिर उन्होंने कुपित हो अपने शत्रु पर चढ़ाई करने हेतु सेना सजाई। उधर वह अहमदखान पठान अन्तर्वेद के परगने को अपने अधिकार में लेता रहा। इसके लिए उसने वहाँ के राजाओं में फूट डाली। जब उसने यह सुना कि दिल्ली पर मराठों का अधिकार हो गया है तो वह हिन्दुओं पर कुपित हो वहाँ से वापस दिल्ली की ओर मुड़ा। विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्रह की शरद ऋतु के माघ मास में जब सूर्य मकर राशि में था अर्थात् मकर सक्रांति के समय तुर्कों की अठेलनीय सेना दिल्ली के समीप आई। इस समय पठान अहमदखान के पास एक लाख की संख्या वाली फौज थी वहीं दिल्ली की सेना दो लाख की संख्या वाली थी। ये दोनों सेनाएँ मिलकर तीन लाख की संख्या वाली हो गई। क्रोध से भरी यह सम्मिलित सेना अपने घोड़े उठा कर (बढ़ाकर) बढ़ी।

पादाकुलकम्

बढि इततैं बिस्वासराव बलि, चीमा अरु जनकू मलार चलि॥
नैन मिलत असिबर करि नग्गे, लरन खान अहमद सन लग्गे॥२२॥

इधर से विश्वासराव, चीमाराव, जनकूराव सिंधिया और मल्हारराव होल्कर अपनी सेना के साथ बढ़े। दोनों सेनाओं का आमना-सामना होते ही ये वीर म्यानों से अपनी अच्छी तलवारें निकाल कर अहमदखान पठान की सेना से लड़ने लगे।

प्लवङ्गमम्

मिलि इततैं मरहट्ठ व्रात रन बित्थर्‍यो, उततैं अहमदखान नकिब हय उप्पर्‍यो॥
बादी प्रतिबादी कि व्याकल न्याय के, कल्पक रचि रचि कोटि भिरे पटु भायके॥२३॥

इधर से मराठा योद्धाओं के समूह ने युद्ध फैलाया तो सामने से अहमदखान पठान ने मुकाबले में अपने घोड़े झोंके। मानों व्याकरण और न्याय के मानने वाले दोनों वादी-प्रतिवादी कल्पना की हुई कोटि रच-रच कर चतुर व्यक्तियों की तरह शास्त्रार्थ में भिड़े हों।

चञ्चला

यों इरान दक्खिनी मिले चलाय द्वै अनीक॥
सस्त्र के प्रहार घोर बित्थरे मच्यो समीक॥
उत्तमंग उच्छटैं कटैं कपाल भूरि भाल॥
केक भिन्न व्है गिरैं सिपाह के भिरैं कराल, ॥२४॥
अच्छरीन के छये बितान रूप लै बिमान॥
चाय सौं रहे किलोलि चिल्ह गिद्ध त्यौं सिचान॥
जुग्गिनीन की जमाति आनिकैं नची जरूर॥
साकिनीन के समूह उल्लसे सिराहि सूर॥२५॥

इस तरह मराठा और ईरान दोनों ओर की सेनाएँ चला कर मिलीं मिलते ही शस्त्रों के घोर प्रहार फैल कर युद्ध मचा। तलवारों की धारों से मस्तक कट कर उछलने लगे तों कहीं कपाल और ललाट कटने लगे। कई कट कर रणभूमि मे गिरे तो कई योद्धा भयंकर युद्ध करने में संलग्न हुए। अप्सराओं के विमान रणभूमि पर वितान की तरह छा गए। चील्ह, गिद्ध, और बाज पक्षी उत्साह से भरे किलोल करने लगे। योगिनियों की जमात रणभूमि में प्रसन्न हो नत्य करने लगी और साकिनियों के समूह वीरों की प्रशंसा करने में हर्ष का अनुभव करने लगे।

सिंह कौं अरोहि कालिका रु बैल कौं महेस॥
आय संग ही खरे बनैं तमासगीर बेस॥
दान सुक्कि दिक्करी करंत चिक्करी पुकारि॥
सेस ओ बराह कुम्म होस कौं रहे बिसारि॥२६॥
रत्त मैं भरे कबंध मत्त के फिरैं उताल॥
भूमि के तनूज जानि आनि ए नचैं बिसाल॥

काच की चुरी समान होत खंड खंड केक ॥
उल्लटैं प्रहार भीरु ही फटै हटैं अनेक ॥२७॥

रणक्षेत्र में आने के लिए कालिका अपने सिंह पर सवार हुई वहीं महादेव अपने वाहन बैल पर आरूढ़ हुए। दोनों साथ-साथ रणभूमि में पहुँचे और तमाशबीन बनकर युद्ध देखने लगे। दिशाओं के हाथियों का मद सूख गया और वे चीख-पुकार में चिंघाड़ने-पुकारने लगे। शेषनाग, वाराह और कच्छप अपना होश- हवाश खो बैठे। रुधिर से लथपथ हो मस्तक विहीन कंबध रणभूमि में उतावले से फिरने लगे मानों अपने आप को पृथ्वी का पुत्र मानकर नाच रहे हों। रणभूमि में कई वीर काँच की चूड़ी की तरह (टूटकर) खंड-खंड हो बिखरने लगे वहीं कई कायर प्रहार के सामने न जा कर मुड़ने लगे और भय से हृदय फटने से हटने लगे।

कालखंज उच्छटे कटे गिरंत प्लीह क्लोम ॥
होत खग्ग अग्गि मैं सुमार हीन प्रान होम ॥
जी तजैं अनेक भीरु भज्जिबो बिचारि जंग ॥
ज्यों निमग्न बारि प्रान त्रान कों गहैं तरंग ॥२८॥

प्रोथ त्यों हयच्छटा कटैं निगाल कश्य पीन ॥
होतं अंग हीन है गिरैं बिभंग तंग-जीन ॥
खग्गघात द्वार व्है चलैं अनेक रत्त खाल ॥
बप्प माय उच्चरैं फिरैं अनेक भै बिहाल ॥२९॥

रणभूमि में कहीं पर फटे हुए कलेजे उछलने लगे तो कहीं पर तिल्ली और फेफड़े गिरने लगे। खड़ग रूपी अग्नि में इस तरह अगणित लोग अपने प्राणों को होमने लगे। वहीं कई कायर रणभूमि से पलायन करने की सोचते हुए प्राण त्यागने लगे जैसे कोई पानी में डूबता प्राणी अपने प्राणों की रक्षा के लिए पानी की लहर को ही पकड़ने का उपक्रम करता हो। अपने नासाछिद्र, गर्दन, कंठ और पुष्ट कमर आदि अंगों से विहीन हो कटे घोड़े गिरने लगे तो उनके साथ टूटे हुए तंग और कटे हुए जीन भी गिरने लगे। तलवारों के प्रहारों से बने घावों से निकले रक्त के नाले बह निकले। वहीं कई भय से बेहाल हो कर मुँह से 'बाप-माँ' उच्चारने लगे।

मंद केक भीरु भज्जि यों टरैं सहैं न मार॥
ज्यों कपीस मालकोस मैं ऋक्कार ओ पकार॥
केक बीर हत्थ कों भले दिखात खग्ग आनि॥
षड्ज अंत्य मूर्च्छना बिलावली बनात जानि॥३०॥
टंकरैं अमाप चाप बान को बनैं बितान॥
काल को निदान लैन ज्या लगैं प्रबीर कान॥
के चलैं कृपान संगि कुंत त्यों छुरी कटार॥
कंकटी कराल सूर छिन्न व्है गिरैं कुढार॥३१॥

कई मूर्ख कायर शस्त्रों की मार न सहने की सोच भाग कर यों टलने लगे जैसे हनुमान के मत वाले मालकोस राग में आने से ऋषभ और पंचम स्वर टलते हों। कई वीर तलवार उठाकर अपने हाथ को सुन्दर बनाने लगे जैसे षड्ज स्वर की अन्तिम मूर्छना विलावल नामक रागनी को सुन्दर बनाती है। अनगिन धनुषों की टंकार होने लगी और बाणों के वितान तन गये और कैसे मारा जाये यह पूछने को प्रत्यंचा वीरों के कानों से सटने लगी। युद्ध में कई कृपान, बर्छिया, भाले ,छुरियाँ और कटारियाँ चलने लगी जिनसे कवचधारी विकराल वीर कट कर बुरी तरह रणभूमि में गिरने लगे।

हत्थ दै मही कितेक घुम्मिकैं उठैं हकंत॥
छाक कापिसायनी मनौं गमार लै छकंत॥
काल से कराल खात के फिरैं छुटे कलंब॥
बक्र बिंब चक्र के चलैं मनों कि सक्र संब॥३२॥
उत्तमंग कंधरा गिरैं अतीव बाहु अंस॥
बंसपिट्ठि पंसुली लगी मनौं कि पत्र बंस॥
तेग के प्रहार केक्क रत्त के रचंत ताल॥
सीस व्है सरोज तत्थ कुंतलावली सिवाल॥३३॥

कई घायल वीर भूमि पर हाथ टिका कर उठे और चलने लगे पर वे यों टेढ़े-मेढ़े चलने लगें जैसे कोई मद्य से छका गँवार शराबी चल रहा हो। धनुष से छूट कर काल के समान भंयकर हो बाण लोगों को खाते फिरने लगे (खाने लगे)। वहीं कई टेढ़े बिंब वाले चक्र यों चलने लगे मानों इन्द्र का वज्र

चला हो। तलवार के प्रहारों से कट कर वीरों के मस्तक, गर्दन ,बाहु और कंधे गिरने लगे तो कहीं वीरों के पीठ की हड्डी से लगी पसलियाँ कट कर यों गिरने लगीं जैसे बाँस का पत्ता गिरता हो। तलवार के प्रहारों से कई रक्त के लाल तालाब बनने लगे जिनमें तैरते मस्तक कमल की तरह लगने लगे और रोमावली शैवाल लगने लगी।

धीर के करीन तैं मलंगि झंप यों धरंत॥
कूट तैं कि केहरी नटी कि तेहरी करंत॥
बस्त्रहीन वै किते दुरैं करीन पाय बीच॥
नाथ श्रावकीन के मनौं कि थंभ भोन नीच॥३४॥
व्यंजनावली पिसाच सूद के करैं बिसाल॥
पाहुनी बुलात न्यौंति जुग्गिनीन खेत्रपाल॥
छुट्टि जात केन के गुमान बान पोन छेहि॥
लब्धबर्ण अग्ग ज्यौं कुकाव्य छिन्न भिन्न वैहि॥३५॥

कई धैर्यवान योद्धा हाथियों की पीठ से छलांग लगा कर यों कूदने लगे जैसे पर्वत से सिंह छलांग लगाते हों या नटी रस्सी पर तीन-तीन छलांग लगाती हो। कई योद्धा वस्त्रविहीन हो कर हाथियों के पैरों में यों छिपने लगे मानों दिगंबर जैनो के देवता जिनालयों के थंभों के नीचे अवस्थित हो रहे हों। अपनी रसोई पकाने वाले पिशाच कई तरह के व्यंजन मरे हुए वीरों के शवों से बनाने में लगे तो क्षेत्रपाल न्योता दे कर योगिनियों को भोजन पर आमंत्रित करते रणभूमि में डोलने लगे। तेजगति से चलते बाणों का पवन लगते ही कई वीरों का घमण्ड यों छूटने लगा जैसे लब्ध प्रतिष्ठ पंडित के आगे खोटा काव्य छिन्न-भिन्न हो जाता है।

होत सूर सोगुनैं उछाह माँहिं दै प्रहार॥
दैन लैन भिन्न पै बढ़ैं कि बावनावतार॥
होत अंग हानि पै कितेन के रुकै न पानि॥
जानि हारि मैं मिठास द्यूत के खिल्हार जानि॥३६॥
अद्धफार वै गिरैं किते तुखार खग्ग ऊति।
बंटि लेत भ्रात द्वै मनौं कि बप्प की बिभूति।

केतु रत्त लिप्त के करीन पैं करैं प्रकास॥
लाखरंग भास राध मास मैं मनौं पलास॥३७॥

प्रहार करते समय योद्धा सौ गुना अधिक उत्साह वाले होने लगे जैसे लेन-देन के अवसर पर वामन अवतार के पैर बढ़े थे। अपने अंगों की हानि होने पर भी कई वीरों के हाथ नही रुकते जैसे जुआरी हारने में भी रस जान कर दाँव लगाना नही रोकता। रणभूमि में कहीं तलवार के प्रहार से कट कर गिरते हुए घोड़े यों दो भाग होते है मानों अपने पिता की सम्पति को दो भाईयों ने आधा-आधा बराबर बाँटा हो। हाथियों की पीठ पर फहरती ध्वजाएँ रक्त रंजित हो यों लगने लगी मानों वैशाख (कदाचित् फाल्गुन) माह में लाल रंग के पलाश फूले हों।

डाकिनी कितीक बीर अंत्र लेत कंठ डारि॥
मालिनी बिडारि ज्यौं प्रमत्त लेत माल धारि॥
के प्रबीर थीर कट्टि सत्रु कौं नये प्रकार॥
चित्रकार बुद्धि मैं करैं ति चित्र चित्रकार॥३८॥
के गदा प्रहार कैं हनैं सकोप मत्थ इट्ठ॥
लोहकार कूट पैं मचैं मनौं कि लोह रिट्ठ॥
प्रेत के प्रतप्त गोद कौं सिरात बक्र पोन॥
लेत के प्रबीर ब्याहि अच्छरी उतारि लोन॥३९॥

रणभूमि में कई डाकिनियाँ मरे हुए वीरों की अंतड़ियों को अपने गले में यों डालने लगीं जैसे कोई मालिन अपनी टोकरी से माला निकाल कर खुद पहन रही हो। रणभूमि में कई धीर-वीर अपने शत्रु को नई तरह से यों काटने लगे कि उन्हें देख कर कोई चित्रकार भी इस विचित्र चित्र को देख कर आश्चर्य से भर उठे। कई वीर अपनी गदा को तान कर शत्रु के मस्तक पर मारने की इच्छा से यों प्रहार करने लगे मानों लुहारों की ऐरन पर कोई घण चलाने का निंरतर अभ्यास करता हो। कहीं पर प्रेत ताते बने माँस को खाने से पूर्व अपने मुँह से फूँक मार कर ठँडा करने में लगे तो (रणभूमि में) कहीं पर अप्सराएँ अपने मनवांछित वीर पर लोन उतारती उससे विवाह करने लगी।

रंग मौंहि बंदि के अंनदि बंदि देत रंग॥
पिक्खि जंग जो रह्यो अनूरू रुक्किकैं पतंग॥

केक्क तंग मार दै हरैं करीन उत्तमंग॥
तोरि शृंग मेरु के चलैं मनौं कि धारगंग॥४०॥

के प्रसन्न गूद तैं अघाय होत गिद्ध कंक॥
त्यौं प्रछन्नद्वार के प्रवेस खर्ब व्है निसंक॥

हत्थि घाय फारमैं दुरैं कितेक भीरु हंत॥
ब्रध्न को उगान जानि चोर ज्यौं दरी बसंत॥४१॥

रणभूमि में मचे इस युद्ध को देख कर कई बंदीजन वीरों को नमस्कार कर उनकी वीरता की प्रशंसा करने में लगे। इसी युद्ध को देखने के लिए सूर्य अपने रथ के सारथी को निर्देश कर रथ रुकवाने लगा। जहाँ कई वीर अपनी तलवार के प्रहार से हाथियों के मस्तक यों काटने लगे मानों सुमेरू पर्वत का शिखर (मस्तक) फोड़ कर गंगा की धारा निकाली हो। रणभूमि में कटे पड़े शवों के मांस को खा कर कई कंक और गिद्ध प्रसन्न होने लगे। ये मांसाहारी पक्षी मृत हाथियों आदि के शरीर में छोटा सा छेद कर आराम से उसमें भीतर जाकर यों प्रसन्न होने लगे जैसे कोई पतले शरीर वाला व्यक्ति प्रछन्न द्वार (द्वार में बनी छोटी सी खिड़की) से निशंक घुस रहा हो। इन्हीं की तरह कई कायर घायल हाथियों के बड़े घावों की फाँक में यों दुबकने लगे जैसे सूर्योदय का होना जान कर चोर गुफाओं में जाकर छिपते हों।

कुब्ज अंध खज व्है नचैं पिसाच हासँ काज॥
साकिनी बढाय दंत के करैं बिरूप साज॥

ईस के हिये गयेहु सीस के कहैं उतारि॥
नाथ लेहु धारि नैंक जुद्धदंत कौं निहारि॥४२॥

सद्य स्वीय रत्त डारि टोप मैं कितेक सूर॥
होय नम्रगात आत मात कालिका हजूर॥

होत सत्व छोरि एक वार के किते महीप॥
दीपिका करैं न तैलहीन ज्यों दसा प्रदीप॥४३॥

रणभूमि में कई पिशाच तमाशा करने को कभी कुबड़े तो कभी अंधे और कभी लंगड़े होने का अभिनय करते नाचने लगे तो कई साकिनियाँ अपने लँबे दाँत बाहर निकाल कर मुँह फुलाती हुई डरावनी शक्लें बनाने लगीं। उधर

शिव के गले की माला में पिरोये हुए कटे हुए मस्तक कहने लगे कि हे नाथ! थोड़ा हमें अपने गले से उतार दो फिर हमारा दंत-युद्ध (कटे मस्तक के पास शस्त्र के नाम पर दाँत होते हैं इस आशय से) देखो! कई वीर स्वयं का ताजा रक्त अपने शिरस्त्राण (टोप) में भर कर विनम्र मुद्रा में रणचंडी के सामने आने लगे। कई राजा एक ही प्रहार में अपना पराक्रम छोड़ने लगे जैसे तेलविहीन दीपक में खाली बत्ती जलना छोड़ देती है।

दोय प्रेत अंतलै फिरैं कहोंक घेर देत॥
खेतकार लट्टिबे लगैं जरीब जानि खेत॥
जंग मैं मलंग केक मल्ल व्है लगात जोथ॥
रंग माँहिं रंग लै करैं कितेक जोथ रोध॥४४॥

सत्रु कंठ दंत दै पिबंत रक्त केक सूर॥
गड्डुरी पछारि सारदूल ज्यों घनें गरूर॥
मेघ व्है मिले अनीक द्वै प्रकोप बात मेल॥
खग्ग त्यों कटार कुंत संगि बान बुंद खेल॥४५॥

रणभूमि में कहीं पर दो प्रेत एक ही अंत्रावली ले कर उसके घेरे को यों तानने लगे मानों कोई दो कृषक लाटने (फसल का कर उगाहने) के लिए खेत नापने को जरीब लगा रहे हों। कई रणभूमि में मल्लयुद्ध करने को मल्ल बनकर कूदने लगे, वहीं कई वीर युद्ध में शस्त्र प्रहारों के लिए प्रशंसा पा कर शत्रु को रोकने में संलग्न होने लगे। कई वीर रणभूमि में अपने शत्रु को गिरा कर उसके कंठ में अपने दाँत गड़ा कर यों रक्त पीने लगे जैसे सिंह बड़े दर्प के साथ किसी भेड़ को पछाड़ कर उसका रक्त पी रहा हो। दोनों दल मेघ होकर मिले अर्थात् टकराये जिससे क्रोध रूपी पवन बहा और दोनों दलों के मिलते ही तलवार, कटारें, भाले, और बर्छियों रूपी बूँदें (वर्षा रूपी) रणभूमि में खेलने (गिरने) लगीं।

के करीन अंग लीन सस्त्र के करैं प्रकास॥
भानु अंधकार मैं करैं अनेक जानि भास॥
सोर की सिखा सिलग्गि जोर की सु गज्जि जात॥
ओर की कहौं कितीक घोर की घटा दबात॥४६॥

होत जंग यों लही समस्त दक्खिनीन हारि॥
उद्यमी कहा करैं न दैव भद्र आनुसारि॥
बित्थरे घुमंडिकैं इरान मिच्छ जै बनाय॥
खीज मैं भये गये घनैं अरीन प्रान खाय॥४७॥

कई हाथियों के काले शरीर में खुभे हुए शस्त्र चमकने (नजर आने) लगे मानों काले अंधेरे में सूर्य अपना प्रकाश चमकाने लगा हो। बारूद में लगी आग से धमाके के साथ ज्वालाएँ धधकने लगीं। इन धमाकों की गर्जना बाबत और क्या कहा जाए उनकी गर्जना मेघ गर्जन को दबा देने वाली थी। इस तरह के हुए भयंकर युद्ध में दक्षिणियों अर्थात् मराठा पक्ष वाली सेना की हार हुई। पक्ष में शुभ भाग्य और देवता अनुकूल न हो तो कोई उद्यमी क्या करे ? ईरान के म्लेच्छ विजय पा कर घुमड़ कर पसरे क्योंकि इन्होंने क्रोधित होकर अपने बहुत सारे शत्रुओं के प्राण जो हर लिये थे।

कुण्डलिका

पानिप करि जुज्झे प्रबल, इम दक्खिन ईरान।
करन अजय दूरी करन, करन बिजय मतिमान॥
करन बिजय मतिमान, रंग कुरुखेत जंग रुचि।
रुचिधर अहमदखान, जयो हुत अरि कृप्रान सुचि॥
न सुचि भजे मरहट्ठ, न सुचि भज्जे स्यानिप करि।
निप करि लये बधाय, गये अच्छरि पानि पकरि॥४८॥

पराक्रमपूर्वक अपने हाथों से पराजय को दूर करने और विजय करने को दक्षिणी (मराठा) और ईरानी दोनों बुद्धिमान प्रबलता के साथ ऐसे लड़े जैसे बुद्धिमान कर्ण और अर्जुन ने कुरुक्षेत्र की रणभूमि में रुचिपूर्वक युद्ध किया था। इस युद्ध में शोभा को धारण करने वाले कांतिमान अहमदखान ने तलवार की अग्नि में अपने शत्रुओं हो होम कर विजय पाई। इधर मराठो नें भी श्रृगांर रस (शुचि) का सेवन नहीं किया। वे बुद्धिमानी कर मृत्यु (शुचि) से नहीं भागे (माघ के काव्य में टीकाकार ने शुचि शब्द का एक अर्थ मृत्यु भी लिखा है) इसलिए स्वर्ग में देवताओं ने उनका कलश के साथ मांगलिक स्वागत किया (कलश बधा कर लेना) वे मराठे अन्तत: अप्सराओं का पाणिग्रहण करते हुए गये।

दोहा

चीमा के सिर की चटक, खोजि कटक रन खेत।
हार्‌यो करि आयास हर, हार्‌यो तदपि न हेत॥४९॥
जया तनय संध्या जिमहिं, जनकू अमरख जग्गि।
न मिल्यो रंचक पलरचन, गो तरवारिन लग्गि॥५०॥

रणभूमि में सेना द्वारा लड़े गये युद्ध के बाद चीमाराव के सिर के टुकड़े को महादेव ढूंढ-ढूंढ कर थक गए पर महादेव ने उस टुकड़े के प्रति अपने मोह को नहीं त्यागा। वे नहीं मिलने पर भी ढूंढते रहे। (चीमा के सिर के इतने छोटे छोटे खंड हो कर रणभूमि में गिरे कि उस वीर के मस्तक की जगह उसके एक टुकड़े को भी महादेव तरस गए। वह वीर इतनी बहादुरी से लड़ा। ग्रन्थकार का यह आशय है-सं.) जयाजी राव सिंधिया के पुत्र जनकू जी राव सिंधिया का भी यही हाल रहा। उसके शव को भी मांसाहारी जानवर रणभूमि में हेरते रहे। वह कदाचित रज-रज कटा और तलवार की धारों से चिपक कर निःशेष हुआ।

षट्पात्

तनय नन्ह के तिमहि बीर बिस्वासराव बढि,
नक्खे तुरग निसंक पान पकरहु पठान बढि।
हारि जिम हुरियार निडर झारी असि नागिनि,
करी बहुत लरि कुमर दुजन तिय दुसह दुहागिनि।
सुरलोक सव्य अच्छरि सहित गंधर्बन गीत सु गयो।
श्रीमंत सुवन हारि न समुझि तरवारिन तिल तिल भयो॥५१॥

श्रीमंत नन्ह के वीर पुत्र विश्वासराव ने भी इसी तरह शत्रु सेना में अपने घोड़े झोंके यह कहते हुए कि मैं आगे बढ़कर अपने हाथों पठान को पकड़ कर बंदी बनाऊँगा। अपने होली के दिनों में होरियारों (डंडे ले कर होली पर गींदड़ की तरह नृत्य करने वाले) की तरह निडर हो अपनी नागिन तलवार पकड़ कर ऐसे प्रहार किये। उसने ऐसा कर रणभूमि में कई शत्रुओं को मार कर उनकी स्त्रियों को दुस्सह वैधव्य दिया फिर स्वयं अप्सरा को अपनी वामा बना कर गंधर्वों का गायन सुनते हुए स्वर्ग गया। श्रीमंत के इस पुत्र विश्वासराव ने

हारना तो जाना ही नहीं था इसलिए वह वीर मराठा शत्रुओं की तलवारों से तिल-तिल कट कर रणभूमि में बिखर गया।

दोहा

रामराव नारुव रघुव, बाला त्र्यंबक बीर।
रामचंद अंबा रतन, सखाराम हमगीर॥५२॥

इत्यादिक उमराव सब, दक्खिन के तजि देह।
नाक गये बंधन नवल, नाक कलत्रन नेह॥५३॥

चीमा, जनकू और विश्वासराव इन तीन वीर योद्धाओं के अतिरिक्त रणभूमि में निशे:ष होने वाले मराठा योद्धाओं में रामराव, नारू, रघुराव, बालेराव, त्र्यंबकराव, रामचन्द्र, अंबा, रतन और सखाराव जैसे वीर थे। दक्षिण के उपरोक्त उमरावों ने रणभूमि में अपनी देह त्यागी और स्वर्ग की नई स्त्रियों अर्थात अप्सराओं के स्नेह में नई रीति से बंध कर स्वर्ग गये।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रेलब्धजया स्हमदखानसमस्थलीसंविशननिवारितजनकूक्षतमल्लारप-राजयपत्रदक्षिण प्रेषण श्रीमन्तनन्हसुतविश्वासराव पितृव्यकचीमा मुख्यसप्ततिसहस्त्र सैन्यप्रेषणतदालीगोहरनिग्रहणदिल्लीशुद्धसंस्करणश्रुतै-तदहमदखानास्गमनदिल्ली रान सेनैक्यमहराष्ट्रसैन्यमहारणभवनससा-मन्तविश्वासराव चीमा जनकू मरणयवनजयसंवर्द्धनं पञ्चाशत्तमो मयूखः। आदितः॥३३१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, विजय पाकर अहमदशाह का अन्तरवेद क्षेत्र में जाना और जनकू के घाव मिटाकर मल्हारराव के हारने का पत्र दक्षिण में भेजना, श्रीमन्त नन्ह का अपने पुत्र विश्वासराव और काका चीमा को मुख्य योद्धा बना कर सत्तर हजार की सेना भेजना और उसका आलीगोहर को पकड़ कर दिल्ली को शुद्ध करना सुनकर अहमदखाँ का आना, दिल्ली और ईरान की सेना का एक होकर मराठों की सेना से बड़ा युद्ध करना और उमरावों सहित विश्वासराव, चीमा और जनकू का मरना, यवनों की फतह होने का पचासवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इकतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

पहिलैं जिम हुलकर प्रथित, बच्यो आयु बल एक।
जाय भरतपुर जट्ट कै, किन्नों घायन सेक॥ १॥

छोरि कलीजहु भरतपुर, सुनि मल्लारहिँ आत।
गयो हैदराबाद भजि, आलय निज अकुलात॥ २॥

किय स्वागत मल्लार को, मुदित जट्ट रविमल्ल।
रखत द्रव्य सब नजरि करि, ढब्ब्यो दक्खिन ढल्ल॥ ३॥

तब हुलकर कछु दिवस तँहँ, रहि रचि कटक नवीन।
भंड अटेरपुरादि सब, लूटि भदावर लीन॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व की भाँति इस युद्ध में भी अपने शेष आयुष्य के बल पर वह प्रसिद्ध होल्कर बच गया। उसने तब भरतपुर के जाट शासक के यहाँ जा कर अपने घावों की चिकित्सा करवाई। इधर भरतपुर में ठहरे हुए कलीज खां ने जब ये सुना कि मल्हाराव होल्कर यहाँ आ रहा है तो वह घबरा कर अपने घर अर्थात् हैदराबाद भाग गया। होल्कर के भरतपुर पहँचने पर वहाँ के जाट राजा सूरजमल ने मुदित मन से उसका स्वागत किया। जाट राजा ने रुपयों सहित अन्य सामग्री नजर की और दक्षिण की ढाल कहलाते होल्कर को अपने यहाँ ससम्मान रखा। कुछ दिनों तक होल्कर ने यहाँ ठहर कर अपनी नई सेना खड़ी की और उसकी सहायता से भंड, अटेरपुरा और भदावर नामक नगरों को लूट लिया।

पुनि मग के गुरु लघु नृपन, दंडत बिजय दिखाय।
गागरनी अभमल्ल गढ, जव करि बिंट्यो जाय॥५॥

कछुक रारि रट्ठोर करि, दयो उचित पुनि दंड।
परि पायन मल्लार के, सद्ध्यो हुकम अखंड॥६॥

हुलकर बहुरि प्रयान करि, कोटा जनपद आय।
दिन कछु घाँट मुंकुददर, रह्यो मुकाम रचाय॥७॥

अहमदखान पठान इत, दक्खिन जित्ति दुरंत।
आलीगोहर साह पुनि, किय दिल्लिय तिय कंत॥ ८॥

यही नहीं रास्ते में पड़ने वाले छोटे मोटे राज्यों के राजाओं से दण्ड वसूल कर अपनी विजय दिखलाता वह आगे बढ़ा और अभयमल के गागरनी दुर्ग को शीघ्र ही जा घेरा। गागरनी के राठौड़ शासक ने थोड़ा मुकाबला करने के बाद अन्ततः समर्पण कर दिया और फौज खर्च की राशि क़ा दण्ड दे कर वह मल्हारराव के चरणों में आ गिरा। वह राठौड़ पूरा ही उसकी आज्ञा के अधीन हो गया। यहाँ से आगे प्रयाण कर होल्कर कोटा जनपद में आ गया। यहाँ उसने मुकुंद दर्रे के घाट में कुछ दिनों के लिए अपना पड़ाव रखा। उधर अहमदखान पठान ने दुर्दम्य मराठों को हरा कर बादशाह आलीगोहर को फिर से दिल्ली रूपी स्त्री का पति बना दिया।

मुख्य बजीर नबाब करि, लखनेऊ नगरेस।
मुगलन राज्य जमाय गो, लंघि अटक निज देस॥ ९॥

इत दक्खिन श्रीमंत सुनि, स्वीय पराजय सोर।
चढि सत्वर अप्पुन चल्यो, जवनन डारन जोर॥१०॥

उसने तब लखनऊ के स्वामी अर्थात् नवाब को दिल्ली का मुख्य शाही वजीर नियुक्त किया और इस तरह आर्यावर्त्त में फिर से मुगलों का राज जमा कर अटक नदी को पार कर अपने स्वदेश लौट गया। इधर दक्षिण में जब पेशवा श्रीमंत नन्ह ने यह सुना कि दिल्ली वाले युद्ध में मराठों की करारी हार हुई तो वह कुपित हो शीघ्र ही अपनी शेष सेना को सज्जित कर दिल्ली के यवन शासक पर दबाव बढ़ाने को चला।

षट्पात्

संध्या जनकू पट्ट दयो केदारराव कँहँ,
अरु दत्ता के पट्ट धरयो साहजि प्रबीर तँहँ।
क्रम सन नाती पुत्र अडर राणंजी के ये,
दासी औरस दुव हि सचिव धन मन करि सेये।
सजि संग सुभट इत्यादि सब क्रम प्रपंच जित्तन करयो।
श्रीमन्त नन्ह बिरचन बिजय दिल्लिय उप्पर उप्परयो॥११॥

श्रीमंत ने दिल्ली प्रयाण से पूर्व सिंधिया जनकूराव के स्थान पर केदारराव को नियुक्त किया। इसी तरह दत्ताराव के स्थान पर महादजी सिंधिया को

नियुक्ति दी। केदारराव और महादजी सिंधिया ये दोनों निडर रणंजय सिंधिया के क्रमशः नाती और पुत्र थे इनमें से पहला केदारराव तो उसका दासी पुत्र था जब कि दूसरा अर्थात् महादजी सिंधिया उसकी विवाहिता स्त्री का पुत्र था। इस तरह अपने सामन्त योद्धाओं के साथ सज्जित सेना लेकर श्रीमंत पेशवा ने अपनी विजय की योजना बनाई और उसे कार्यान्वित करने को श्रीमंत नन्ह तब दिल्ली पर चढाई करने को बढ़ा।

दोहा

दक्खिन के बिपरीत दिन, हुकम बिगारन हार।
दइव इंगरेजन उदित, करन अबहि करतार॥१२॥
करत मिजल श्रीमंत कछु, बढि बपु रोग बिसेस।
प्रानन तजि परलोक गत, साहू सुत सचिवेस॥१३॥
तब मरहट्टन मुरि तखत, निज प्रभु के सिर नाय।
सुत जेठो श्रीमंत को रक्खयो माधवराय॥१४॥

हे राजा रामसिंह! आप देखेंगे कि अब से आगे मराठों के विपरीत दिन आने शुरू हो गए। इनकी आज्ञा की अवहेलना करने के लिए विधाता अंग्रेजों का उदय करेंगे। दिल्ली की राह में ही एक पड़ाव पर रोग के बढ़ जाने के कारण अपने प्राण त्यागकर वह साहू जी राव का पुत्र जो सारे सचिवों का सचिव था, नन्ह परलोक सिधार गया। तब मराठों ने यहीं से वापस मुड़ना ही उचित समझा। सभी वापस राजधानी लौटे और नया पेशवा जो श्रीमंत्र नन्ह का बड़ा होनहार बेटा माधवराव बना, उस अपने स्वामी को सिर झुका कर आदर किया।

रुचिरा

बुल्ल्यो इत बुंदीस नृपति निज दीप अनुज जयनैर रह्यो।
अपकृत तास सकल बिस्मृत करि होय सदय अति हेत चह्यो॥
रुप्पय लक्ख पटा जुत रनरस रसिक कापरनि नगर दयो।
परिखद बिरचि बुलाय बचन पटु अप्पि अभय हिय लाय लयो॥१५॥

इधर बूंदी में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने छोटे भाई दीपसिंह को जो जयपुर रहने लगा था वापस बूंदी बुलाया। दीपसिंह के सारे अपकार्यों को भूल कर दयावान राजा ने दिल से अपने भाई के प्रति स्नेह दिखलाया। राजा ने एक

लाख रुपयों की जागीर का पट्टा जिसमें कापरनी आदि की जागीर थी अपने भाई को प्रदान किया। राजदरबार का आयोजन कर सभी के समक्ष राजा ने अपने छोटे भाई को गले लगाया और मृदु वचनों के साथ अभय की बात कही।

हीरकम्

जैपुर नृप माधव इत बारित कर जानिकैं।
नारव सिरदारसिंह बिंटिय द्रुत आनिकैं॥
कारन रनथंभ अग्ग दक्खिन जयनैर ए।
हमरो हमरो उच्चारि कुप्पिग रचि बैर ए॥१६॥
जैपुर उमरावन सन माधव तब यों कही।
दक्खिन सन मेल कोउ मम भट न करो सही॥
नारव सिरदार तदपि हुलकर पति भिंटयो।
सम्मुह कर जोरि गो रु रक्खन निज भू नयो॥१७॥

उधर जयपुर के कछवाहा राजा माधवसिंह को जब यह पता चला कि नरूका सरदारसिंह वार्षिक खिराज अदा नहीं कर रहा तो उसने तुरन्त अपनी सेना के साथ आ कर उणियारा को घेर लिया। इसका एक कारण और भी था वह यह कि पूर्व में रणथंभोर के दुर्ग पर अधिकार को ले कर कछवाहा राजा और मराठों में तनाजा था। दोनों उसे अपना बताने लगे इससे वैर और बढ गया। इस बात को ले कर राजा माधवसिंह ने अपने सभी सामन्तों को खुली हिदायत दी थी कि आप में से कोई भविष्य में मराठों से मेलजोल नहीं रखेगा। इस हिदायत के बाद भी नरूका सरदारसिंह ने जा कर होल्कर से भेंट की थी और उससे यह करबद्ध प्रार्थना की कि मेरी जागीर सुरक्षित रहे, इसके लिए आपको मेरी मदद करनी पड़ेगी।

मन्नि सु अपराध कुप्पि कूरम अब आय कैं।
बिंटिय उनियार मार तोप मचकाय कैं॥
संबत् धृति अट्ठ अवनि पाउस गत काल मैं।
बिव्हल हुव नारव इम संगर बिकराल मैं॥१८॥
रन करि कछु काल बहुरि नारव भय संधि कैं।
माधव महिपाल के पय लग्गिय सय बंधिकैं॥

दै कछु दम दम्म स्वामि आयस सिर रक्खयो।
हो तुम असुनाथ दास हैं हम इम अक्खयो॥१९॥

अपने उमराव के इस कृत्य को अपराध मानते हुए कछवाहा राजा ने कोप किया और तोपों के साथ आ कर उणियारा को घेर लिया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठारह के पावस ऋतु की समाप्ति के समय नरूका विकराल युद्ध से व्याकुल हो गया। उसने थोड़ी देर तक तो कछवाहा सेना का मुकाबला किया पर अन्ततः उसने संधि का प्रस्ताव किया । नरूका सरदारसिंह हाथ जोड़ कर राजा माधवसिंह के समक्ष आया और उसने कहा कि आप मेरे स्वामी हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा! फौजखर्च की राशि का दण्ड देकर नरूका ने कहा कि आप प्राणनाथ हैं और मैं आपका दास हूँ मुझ पर दया बिचारिये!

चुलिआला

उदयनैर नृप रान रान इत, राजसिंह दिय छोरि कलेवर।
मह अंतहपुर पुर सकल, तँहँ सहसा हुव त्रास घोरतर॥२०॥
सोलह आदिक तब सुभट, अंतहपुर प्रच्छन्न द्वार गत।
रानिन प्रति बिन्नित रचिय, मंडि उचित व्यवहार धर्म मत॥२१॥
अक्खिय नृप परताप को, अन्वय किय इकलिंग नष्ट अब।
पुच्छत हम यातैं प्रकट, सोलह अरु बत्तीस प्रमुख सब॥२२॥
जो रानिय आधान जुत, हो कोउक तो काल निहारहिं।
यह नहि तो अरिसिंह कौं, बैठारन हम पट्ट बिचारहिं॥२३॥

इधर तब उदयपुर में महाराणा राजसिंह का स्वर्गवास (जहर देने से) हो गया इससे अचानक अंतहपुर में शोक छा गया तब उदयपुर के सोलहों उमराव महाराणा की जनाना ड्योढी पर गए और धर्म के अनुसार उचित व्यवहार के साथ विनम्रतापूर्वक रानियों से कहा कि महाराणा प्रतापसिंह का वंश एकलिंगनाथ ने समाप्त कर दिया है। यही कारण है कि उदयपुर के सभी सोलह और बत्तीस (पहले और दूसरे दर्जे के) उमराव हम यहाँ हाजिर हुए हैं और आप लोगों से यह जानना चाहते हैं कि क्या कोई रानी गर्भ से है? यदि ऐसा हो तो हम लोग कुछ समय के लिए प्रतीक्षा कर सकते हैं। यदि कोई रानी

गर्भ से न हो तो उदयपुर की गद्दी पर हमने अरिसिंह को बिठाने का विचार किया है।

उत्तर तब अवरोध सन, प्रकट सुनि रानीन पठायउ।
नहि दोहदलच्छन छिपत, क्यों तुम यह संदिग्ध कहायउ॥२४॥

सुभटन यह उत्तर सुनत, रान प्रताप कनिष्ट भ्रात तब।
गद्दिय पति अरिसिंह किय, परिपाटी व्यवहार सद्धि सब॥२५॥

अरिसिंहहु तब अरज यँहँ, पठई नृप परताप तियन प्रति।
तुम धारत अधान तो, रंचक नहीं मम राज्य माँहिं रति॥२६॥

राज्यसिंह संतति रहत, मोहि मात सब दासहि जानहु।
नृपता यह मम जोग्य नहीं, पटु अप्पहु नहीं छद्म प्रमानहु॥२७॥

उमरावों के इस दरियाफ्त का जबाव देते हुए रानियों ने अन्तहपुर से कहलाया कि दोहद के लक्षण छिपाये नहीं छिपते, फिर आप लोग ऐसा सन्देह क्यों कर रहे हैं? सामन्तों को जब इस उत्तर से संतुष्टि हो गई तब उन्होंने महाराणा प्रतापसिंह(द्वितीय) के छोटे भाई को मेवाड़ की राजगद्दी पर आसीन कर सारे रीति-रिवाजों के अनुसार उसे नया महाराणा बनाया। इस समय अरिसिंह ने भी जनाना में महाराणा प्रतापसिंह (द्वितीय) की रानियों से निवेदन करवाया कि यदि आप में से कोई गर्भ से हो तो उदयपुर का स्वामी वही बने। मेरी तनिक भी इच्छा राजा बनने की नहीं है। ओ माताओ! महाराणा राजसिंह की संतति रहते मैं दासवत हूँ। मैं यह सत्य निवेदन कर रहा हूँ कि मैं राजा बनने के योग्य नहीं ! आप सभी चतुर हैं इसलिए मेरे कथन को छल भरा न समझें!

पठई रानिन अक्खि पुनि, अब तुम नृप अरिसिंह उदयपुर।
करहु नाँहिं संदेह कछु, धरहु राज्य अधिकार भार धुर॥२८॥

इत माधव जयपुर अधिप गिनि बिगरे मरहट्ठ लोभ गहि।
उनको हो निज ढिग अमल, किय सु देस स्वाधीन उचित कहि॥२९॥

सत्वर यह कटु बत्त सुनि, जयपुर सिर मरहट्ठ सजे जब।
पठयो बुंदिय पत्र लिखि, त्वरित दरित कछवाह भूप तब॥३०॥

करन भीर यह काल है, पृतना निज मम पास पठावहु।
मरहट्ठन सन मंत्र रचि, वा उनको यह कोप उठावहु॥३१॥

यह सुन कर सारी रानियों ने कहलाया कि आप भी हमारे बाबत अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह न पालें और उदयपुर के शासक का कार्यभार सम्भालें ! अब आप उदयपुर के महाराणा हैं तो स्वयं को निशक महाराणा समझें! उधर जयपुर में राजा माधवसिंह ने यह सोचा कि लोभ के कारण जब मराठों से हमारे सम्बंध बिगड़ ही गये हैं तो क्यों नहीं उनके अधिकार वाले हमारे परगनों पर फिर से अपना अधिकार जमाया जाए और ऐसा किया। शीघ्र ही इस कड़वी बात को सुन कर मराठे कुपित हो जयपुर पर चढ़ाई करने को सज्जित हुए। ऐसे में जयपुर के कछवाहा राजा ने डर कर बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को एक पत्र भिजवाया जिसमें लिखा कि हे राजा! यदि आप सहायता करें तो यह अवसर है! आप अपनी सेना हमारी सहायता को भिजवायें। यदि नहीं तो आप मराठों से बात कर उनकी हमसे जो नाराजगी है उसे खत्म करवायें!

संभरपति इम पत्र सुनि, अजितसिंह निज पुत्र भेजि दिय।
सहँ सपंच दल संग करि, कुम्म कथित स्वीकार सकल किय॥३२॥

सक बिक्रम धृति समय, कुमर अजित इम बीर सिलहकरि।
नव हायन बय बिच निडर, भीर गयो जयनैर हरख भरि॥३३॥

सुनि माधव अति जव समुख, अग्ग रीति सब लंघि रुआयउ।
मुत्तिय डुंगरि वार मिलि, बिबिध सद्धि सतकार बधायउ॥३४॥

कछवाहा राजा माधवसिंह का ऐसा पत्र पाकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने पुत्र अजीतसिंह को भेजा। कुमार के साथ पाँच हजार की सेना भी रवाना की और इस तरह कछवाहा राजा का कहा माना। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठारह में वीर हाड़ा कुमार अजीतसिंह ने तब जिरह बख्तर पहने। अपनी नौ वर्ष की अवस्था में यह निडर कुमार हर्ष से भरा जयपुर की सहायता करने गया। कुमार के ससैन्य आने के समाचार पा कर कछवाहा राजा माधवसिंह सारे नियम कायदे ताक पर रखकर कुमार की अगवानी करने आया और मोती डूंगरी नाम स्थान पर कुमार का पूरा स्वागत सत्कार कर उससे मिला।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे आयुर्बलास्वशिष्टमल्लारभरतपुरास्सगमनतद्भीतकलीजखान

हैदराबादपलायन स्वीकृत जट्टोपायन लुण्टित भदावरास्सदिदेश-
दण्डितगागरणीशास्भयसिंहहुलकर कोटाजन पदमुकन्ददरघट्टप्रपतन-
पठानास्हमदखानास्लीगोहर्दिल्ल्यर्प्पण सुजाउद्दोलावजीरीभवनास्हमद-
खानेरानगमनश्रुतस्वपराजय जनकू दत्ता स्थानास्पन्न केदारराव-
माहजिसहितदिल्लीविजयार्स्थप्रस्थितश्रीमन्तमरणतत्सुतमाधवरावपितृपट्ट-
प्रापण बुन्दीन्द्रसमाहूत सोदर दीपसिंहार्स्थकापरणिनगरदानकूर्मराराज-
माधवसिंह मल्लार मिलन सास्गसनारवसरदारसिंहनगरोणियारावेष्टन
तच्चरणपतनदण्डद्रव्य निवेदनशीर्षोद्दराजोदपुरेशराणाराजसिंह मरण-
पितृव्यकासरिसिंहतद्गद्दीनिविशन ज्ञात निर्बल महाराष्ट्र जयपुरेश-
तद्देशस्वीकरणश्रुतैतत्सज्ज दक्षिणसेनास्गममाधवसिंह बुन्दीसहायप्रार्थन-
रावराणामहाराजकुमारास्सजितसिंह जयपुर प्रेषणसंमुखास्गत-
जयसिंहितत्सन्मननमेकं पञ्चाशत्तमो मयूखः। आदितः॥ ३३२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, आयुर्बल के बाकी होने से मल्हार का भरतपुर आना और उसके भय से कलीजखाँ का हैदराबाद भागना, जाट की दी हुई भेंट को स्वीकार करके भदावर आदि लूटकर गागरनी के पति अभयसिंह को दण्ड देकर होल्कर का कोटा के देश, मुकन्दरा के घाटे में मुकाम करना। पठान अहमदखाँ का आलीगोहर को दिल्ली देना और सुजाउद्दोला का वजीर होना। अहमदखान का ईरान में जाना और अपनी पराजय सुनकर जनकू और दत्ता के स्थानापन्न केदारराव और माहजी सहित दिल्ली को विजय करने के प्रस्थान किये हुए श्रीमंत का मरना और उसके पुत्र माधवराव का पिता का पाट पाना, बून्दीश के बुलाये हुए सगे भाई दीपसिंह के अर्थ कापरणी नगर का देना और कछवाहा राजा माधवसिंह का होल्कर से मिलने के अपराध से नरूके सरदारसिंह के नगर उणियारा को घेरना और उसका चरणों में पड़कर दण्ड का धन नजर करना, सिसोदिया राजा उदयपुर के पति राणा राजसिंह का मरना और उसके काका अरिसिंह का गद्दी बैठना। मराठों को निर्बल जानकर जयपुर के पति का उनके देश लेना, यह सुनकर सज्जित हो दक्षिण की सेना का आना, माधवसिंह का बून्दी से सहायता की प्रार्थना करना और रावराजा का राजकुमार अजीतसिंह को जयपुर भेजना, जयसिंह के पुत्र का उसके सन्मुख आकर सन्मान करने का इक्कावनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बत्तीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

अजितसिंह मिलि कुमर इम, माधव सन सह मोद।
पहुँच्यो डेरन आनि पहु, बिरचत लरन बिनोद॥ १॥
किय अपुब्ब माधव कहिय, बुंदिय पति यह बत्त।
सुनि रन पट्टप स्वीय सुत, यँहँ पठयो अनुरत्त॥ २॥
कारन पाय बिसेस कछु, दक्खिन दल किय देर।
माधव सुनि रक्ख्यो मुदित, कुमर हड्डु नृप केर॥ ३॥
क्रीड़ा बहु आखेट क्रम, दिन दिन सहल दिखाय।
सम्मुह रक्ख्यो तखत सिर, पुनि पहलन पधराय॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! हाड़ा कुमार अजीतसिंह भी कछवाहा राजा माधवसिंह से मोदपूर्वक मिल कर अपने डेरे पर आया। अपने मन में युद्ध लड़ने का चाव रखने वाले कुमार को देख कर तब कछवाहा राजा ने कहा कि बूंदी के स्वामी ने इस बार तो यह आश्चर्यजनक कार्य किया कि युद्ध होने की खबर सुन कर हमारे साथ प्रीति का प्रदर्शन करते हुए अपने पाटवी कुमार को लड़ने भेजा है। पर कुछ कारण हो जाने से मराठा सेना के आने में विलम्ब हो रहा है यह सुन कर कुछ दिनों के लिए राजा माधवसिंह ने हाड़ा राजा के पुत्र को प्रसन्नतापूर्वक जयपुर में ठहराया। इस अवधि में कुमार को राजा नित्यप्रति आखेट में अपने साथ ले जाता और यही नहीं कछवाहा राजा कुमार को अपने सम्मुख तख्त पर बिठाता फिर उसे अपने ठहरने के महल में भेजता।

दयाराम तँहँ हड्डु द्विज, किय बिन्नति कर जोरि।
जयहरि लिय लिखवाय जब, नृप सन लिखित निहोरि॥५॥
सुत व्हैहैं जु समप्पि हैं, हम तुमकों कछवाह।
धरहिं अंक दायाद धुव, चिंति रावरी चाह॥ ६॥
लयो जनक तुमरे लिखित, उचित दैन अब एह।
नृप संभर अनुकूल गिनि, सद्धहु बिहित सनेह॥ ७॥
हो मुहुकमसिंहोत तँहँ, भिडर हड्डु नगराज।
आश्रित कूरम ईस के, करन स्वामि जय काज॥ ८॥

तभी एक दिन बूंदी राजा द्वारा जयपुर में नियुक्त वकील दयाराम ने कछवाहा राजा से निवेदन किया कि हे राजा! पूर्व में राजा जयसिंह ने हाड़ा राजा बुधसिंह से लिखवा कर एक इकरारनामा लिया था जिसमें हाड़ा राजा ने लिखा था कि मैं अपने जो भी पुत्र जन्मेगा उसे आपको सोंप दूँगा और कछवाहा राजा आप किसी भी बांधव को मेरे गोद रखने के लिए स्वतन्त्र होंगे! हे कछवाहा राजा! आपके पिता (राजा जयसिंह) ने तो ऐसा लिखित करार लिया था पर अब यह उचित अवसर आया है कि आप भी वापस हाड़ा राजा को देने के अनुरूप कुछ दे कर दोनों राज्यों में फिर से प्रीति का वातावरण बनायें। इसी समय मुहकमसिंह हाड़ा का निडर वंशज हाड़ा नगराज भी वहाँ उपस्थित था जो कछवाहा राजा का आश्रित था और अपने स्वामी को फतह दिलाने का कार्य करता था उसने अविलम्ब निवेदन किया कि हे राजा! यह उचित अवसर है । आपको अपना हित देख कर कुछ देना चाहिए!

बुल्ल्यो सोहु बिंलब अब, न करहु हित पहिचानि।
जैपुरपति यह सुनि सजव, अप्पयो लिखित सु आनि॥ ९॥

दक्खिन कटक बिलंब लखि, जानि सबन बिनु जोर।
राजकुमारहिँ सिक्ख दिय, माधव कूरम मोर॥१०॥

जाय पटालय जनक जिम, किय कुमार सतकार।
अक्खिय हित बिच अंतर न, इत उत गिनहु उदार॥११॥

इम कहि इक गज दुव अरब, दुव सिरुपावि सु साज।
नग भूखन इक रुचिर नव, किन्न नजरि हित काज॥१२॥

जयपुर के कछवाहा राजा माधवसिंह ने भी तब शीघ्र ही राजा बुधसिंह का लिखा करारनामा मंगवाया और उसे (हाड़ा कुमार को) वापस कर दिया। इधर मराठा सेना के आने में और विलम्ब होता जान कर सभी ने समझ लिया कि अब मराठा सेना प्रबल नहीं रह गई, उसका जोश चुक गया है तब कछवाहा राजा ने हाड़ा कुमार अजीतसिंह को वापस बूंदी जाने की विदाज्ञा दी। उसने कुमार के डेरे पर जा कर उसके पिता (हाड़ा राजा) की तरह कुमार का सत्कार किया और कहा कि अब हम दोनों (पक्षों में) के हृदय में कोई अंतर नहीं रह गया है। हे उदार कुमार! तुम आज से ऐसा ही समझना। ऐसा कहकर राजा माधवसिंह ने एक हाथी, दो घोड़े, दो सिरोपाव और एक रत्नजडित आभूषण कुमार को भेंट किया।

अरु दलेल उमराव निज, धूलापुरप समत्थ।
लछमन ताको पुत्र लघु, पहुँचावनि दिय सत्थ॥१३॥
दयाराम तँहँ अरज किय, कूरम प्रति पटु प्यार।
किय तुम भेट कुमार की, संभरपति सतकार॥१४॥
नियम गिन्यों हित माँहिं नहिं, यातैं यह दुव एह।
पै अब संभर भूप तैं, अर्द्ध लिखावहु लेह॥१५॥
जयपुर के दफतर जबहि, लिय माधव लिखवाय।
सुनहु राम छितिपाल सो, सुनिबे योग्य सुभाय॥१६॥

यही नहीं कछवाहा राजा ने हाड़ा कुमार के साथ अपने सामन्त धूलापुर के स्वामी दलेलसिंह के छोटे बेटे लक्ष्मणसिंह को भिजवाया कि वह उसे बूंदी पहुँचा कर आये। इसी समय पंडित दयाराम ने कछवाहा राजा से विनम्र निवेदन किया कि हे राजा! सत्कार में यह आपने कुमार को उसके पिता अर्थात् बूंदी के हाड़ा राजा के समान दे दिया। अपने हित की सोच कर नियम तोड़ा लगता है इसीलिए इतना दिया पर निवेदन यह कि आप अपनी भेंट का विवरण (बही में) राजा से आधा लिखवाएँ। यह सुन कर राजा माधवसिंह ने अपने दफ्तर में जो लिखवाया हे राजा रामसिंह! आप उसे सुनें! यह सुनने योग्य बात है (जो ग्रन्थकार कहता है) ।

रोला

संभरपति के समुह कोस इक आवहिं कूरम।
कुमर समुख अधकोस सु पुनि आवहिं सनेह सम॥
कूरम डेरन हड्ड जात तोरन लग आवहिं।
कुमरहि पायंदाज अंत रहि मिलि लै जावहिं॥१७॥
नृपति परस्पर द्वै हि मिलत मस्तक कर आनैं।
कुमर होय अति नम्र यहहि आचार प्रमानैं॥
जानु जोरि नृप जुगल रहैं इक तखत बरब्बर।
बैठैं सनमुख कुमर इक्क तखतहि हित तत्पर॥१८॥

हे राजा रामसिंह! तब कछवाहा राजा ने जो नये कायदे लिखवाये वे इस प्रकार थे:- हाड़ा राजा के आगमन पर जयपुर का राजा एक कोस की पेशवाई में सामने जाएगा वहीं हाड़ा कुमार के आने पर आधाकोस की पेशवाई करेगा। जब हाड़ा राजा कछवाहा राजा के डेरे पर आएगा तो उसके सामने स्वागत करने जयपुर का राजा ड्योढी तक जाएगा और यदि कुमार भेंट करने आए तो ऐसी दशा में सभा के पायदान तक अगुवाई की जाएगी। दोनों राजा जब मिलेंगे तब परस्पर अभिवादन में वे अपने दोनों हाथ मस्तक से लगायेंगे और यही आचरण कुमार को भी पूरी विनम्रता के साथ करना होगा। दोनों राजा राज सभा में सिंहासन के एक ही तख्त पर अपने घुटने मिला कर बैठेंगे और कुमार सामने के तख्त के बराबर ऊँचे आसन पर बैठेगा।

चमर मोरछल होय उभय भूपन ऊपर जँहँ।
कुमार दास कर रक्खि रहैं तस पिट्ठि खरो तँहँ॥
पानदान सन पान भूप नि हत्थ उठावहिँ।
कुमरहिँ अप्पहिँ नृप सु झेलि दुव हत्थन पावहिँ॥१९॥
अंग लगावहिँ अतर उभय नृप उभय करन करि।
कुमर अंग कर इक्क अतर लावहिँ हित अनुसरि॥
पायंदाज प्रदेस अवधि भूपहिँ प्रहुँचावहिँ।
कुमरहिँ गद्दिय छोरि सिक्ख दै सिविर पठावहिँ॥२०॥

सभा में विराजमान दोनों राजाओं पर जिस समय चँवर ढुलाए जाएँ उस समय कुमार के सिर पर चँवर नहीं ढुलाए जाएँगे बल्कि उस समय पीछे खड़ा हुआ कुमार का सेवक चँवर को अपने हाथों में थामे रहेगा। पान पेश करते समय (दोनों राजाओं में से) राजा अपने हाथ से पान लेगा पर कुमार ऐसा न कर अपने दोनों हाथों को फैला कर अदब के साथ दिया हुआ पान लेगा। जिस समय इत्र लगाया जाए उस समय राजा को राजा दोनों हाथों से लगाएगा जब कि कुमार के शरीर पर वह एक हाथ से इत्र लगाएगा। जब राजा जाने को उठे उस समय मेजबान राजा उसे पहुँचाने को सभा के पायदान तक जाएगा पर कुमार को रुखसत करने नहीं जाएगा, मात्र अपने आसन से उठ कर उसे विदा देगा।

इक गज दुव सिरूपाव अरब दुव भूपहिं अप्पहिं।
कुमरहिं दुव सिरूपाव अस्व दुव दै हित थप्पहिं॥
इक भूखन जिहिं अग्घ अप्पि भूपहिं हित धारहिं।
कुमरहिं ता सन अद्ध अग्घ दै मोद बिथारहिं॥२१॥
कूरम इनके सिविर आत इम एहु करैं सब।
लीनी यह लिखबाय स्वीय दफतर माधव तब॥
संबत धृति धृति समय माघ पांडुर पंचमि दिन।
इम बुंदिय निज नैर आय प्रबिस्यो कुमरन इन॥२२॥

कछवाहा राजा ने नये कायदे लिखवाते हुए आगे भेंट की वस्तुओं का विवरण भी लिखवाया। राजा को एक हाथी, दो घोड़े, दो सिरोपाव, और कुमार को दो सिरोपाव और दो घोडे ही दिये जाएँगे। राजा की भेंट में एक आभूषण जितने मूल्य का अर्पित होगा उसके आधे मूल्य का आभूषण कुमार को प्रदान किया जाएगा। कछवाहा राजा ने हाड़ा कुमार के डेरे पर आ कर ये सारे कायदे बनाये और राजा माधवसिंह ने इन सारे कायदों को अपने दफ्तर में भविष्य के लिए लिखवा दिया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठारह के माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन इस तरह जयपुर से लौटते हुए प्रधान हाड़ा कुमार अजीतसिंह ने अपने नगर बूंदी में प्रवेश लिया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे हड्डुराजकुमार जयपुर सुखनिवसन माधवसिंहजयसिंह लेखित बुधसिंहलेख प्रत्यर्पण बुन्दीन्द्र सत्कारार्द्धरीति राजकुमार सत्कारलेख जयपुर लेखमन्दिर लेखन प्रीतिपूर्वक कृतस्वसुभटसार्थाऽजित सिंह-बुन्दीप्रतिप्रस्थापनं द्विपञ्चाशत्तमो मयूखः। आदितः॥३३३॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, हाड़ा राजकुमार का जयपुर मे सुख से निवास करना और माधवसिंह का जयसिंह के लिखाये बुधसिंह के लेख (इकरारनामा)को लौटाना और बून्दी के पति के सत्कार से आधी रीति राजकुमार के सत्कार की जयपुर के दफ्तर में लिखवाना, प्रीति पूर्वक अपने उमराव को साथ करके, बून्दी के कुमार अजीतसिंह को वापस बून्दी भेजने का बावनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तैंतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

संबत नव ससि धृति समय, माधव कोउक काज।
आयो गढ रनथंभ तँहँ, बुल्ल्यो संभरराज॥१॥

सचिव तास आये समुझि, गो बुंदियपति तत्थ।
पुर खंडारि समीप दुव, सुपहु मिले हित सत्थ॥२॥

संभरनृप के कम्म सन, सुभट मिले इकसट्ठि।
उभय मिलत नृप अरिन को, नूर गयो सब नट्ठि॥ ३॥

दिय लिय गज तुरगादि सब, किय कछु दीह मुकाम।
इत बुंदिय नृप अंगना, मुख्य गई सुरधाम॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्नीस में किसी कार्यवश कछवाहा राजा माधवसिंह रणथंभोर दुर्ग में आया। यहाँ से उसने हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को बुलाने हेतु अपने सचिव बूंदी भेजे। सचिवों को आया जान कर हाड़ा राजा भी तुरन्त रवाना हो गया। खण्डारीपुर के पास रणथंभोर को जाते हुए राजा उम्मेदसिंह की राजा माधवसिंह से मुलाकात हुई। दोनों अपने-अपने सामन्तों के साथ मिले। इस समय वहाँ दोनों और के इकसठ सामंत योद्धा जुड़े। इस बात की खबर सुन कर कछवाहा राजा के शत्रुओं के चेहरे की कांति जाती रही। दोनों राजाओं ने परस्पर एक दूजे को हाथी-घोड़े आदि की भेंट दी और यहीं पर कुछ दिन मुकाम किया। इधर पीछे बूंदी में हाड़ा राजा की मुख्य रानी का देहान्त हो गया।

पहिलैं सक खट ख धृति पर, लहि प्रतिपद बैसाख।
ईडरपतिजा भोगिनी, मरी सु मेचख पाख॥५॥

पुनि सत्रह धृति साल पर, अगहन मेचक पाय।
ऊदाउति गतअसु भई, छट्ठी दिन गद छाय॥ ६॥

अब बसु ससि धृति अब्द के, पुण्णिम चैत अनेह।
महिषी हड्ड महीप की, दिय झल्लिय तजि देह॥ ७॥

खबरि तास खंडारिही, पहुँची संभर पास।
नृप हुव लखि अनुचित नियति, अंतर कछुक उदास॥ ८॥

पूर्व में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सोलह के वैशाख माह के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन ईडर के राठौड़ राजा की बेटी और राजा उम्मेदसिंह की रानी का स्वर्गवास हुआ। इसके बाद वर्ष अठारह सौ सत्रह के अगहन माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन हाड़ा राजा की रोगग्रस्त उदावत वंशीय रानी ने प्राण त्यागे। इसके अगले बरस अर्थात् अठारह सौ अठारह के चैत्र माह की पूर्णिमा के दिन हाड़ा राजा की झाला वंशीय रानी का देहावसान हुआ। इस तरह एक के बाद एक रानी के मरने की श्रृंखला में जब राठौड़ रानी के मरने की खबर खंडारीपुर के मुकाम हाड़ा राजा ने सुनी तो नियति के इस क्रूर उपहास को जान कर राजा का मन उदास हो गया।

सुपहु दुहुँन तत्थहि सुन्यो, अब दक्खिन दल आत।
केदार रु माहजि क्रमिग, घल्लन संध्या घात॥ ९॥

सुनि माधव जयपुर गपउ, आयउ स्वपुर उमेद।
दिस दिस मचि दक्खिन दहल, भूपन सिखवत भेद॥१०॥

खंडारीपुर में ठहरे हुए दोनों राजाओं ने सुना कि मराठा सेना आक्रमण को आ रही है और उसके साथ केदारराव और महादजी सिंधिया घात करने आ रहे हैं। यह सुन कर कछवाहा राजा तुरन्त जयपुर के लिए रवाना हुआ और अपने नगर आने को राजा उम्मेदसिंह चला। चारों और भय व्याप्त हो गया कि मराठा सेना यहाँ उत्पात मचाने आ रही है जो यहाँ के राजाओं में फूट डलवाने वाली है।

रोला

इत संध्या उज्जैन आय मालव निज बस किय।
अयन दोय रहि तत्थ दाव मरुधर जित्तन दिय॥

चिंति जया को बैर चंड सजि कटक चलाये।
यँहँ सब नृपन वकील इष्ट सद्धन द्रुत आये॥११॥

इम सबेग अजमेर पत्त रन खुल्लि पताकन।
विजयसिंह सन विजय लेन किय मंत्र कजाकन॥

यह सुनि मरुधर ईस भीरु बुंदिय पुर भूपति।
बुल्ल्यो दै दल बिहित मंडि मंत्रन जुज्झन मति॥१२॥

उधर सिंधिया की सेना ने उज्जैन में आ कर मालवा प्रांत को अप

अधिकर में ले लिया। उज्जैन फतह के बाद दो अयन यहाँ बिता कर सिंधिया ने मारवाड़ को विजय करने का दाँव लगाया। उसने अपने पिता जयाजीराव सिंधिया को मारने का वैर लेने के निमित्त अपनी सेना उस ओर बढ़ाई। तभी यहाँ उज्जेन में राजपूताने के सभी राजाओं के वकील अपनी भलाई का इष्ट साधने को आ उपस्थित हुए। इधर अपने ध्वज फहराती सिंधिया की मराठा सेना अजमेर नगर आ पहुँची और यहाँ से राठौड़ राजा विजयसिंह पर विजय करने की मराठा योद्धाओं ने मंत्रणा कर युद्ध की योजना बनाई। इस बात का पता जब जोधपुर के राजा को चला तो उसने युद्ध में सहायता करने का एक अनुनय से भरा पत्र बूंदी के हाड़ा राजा के पास भिजवाया

इत अतिधृति धृति अब्द, असित सुचि छट्ठि अरक जुत।
भूप भुजिष्या बहुरि जनिग संग्रामसिंह सुत॥
बलि मरुपति दल बीच हड्डु हंकिय सहाय हित।
सम्मुह आयउ बिजयसिंह चाहत प्रमोद चित॥१३॥
दिय डेरा बुंदीस सूरसागर तड़ाग तट।
दक्खिन दल की देर भनत भूपाल तिमहि भट॥
यँहँ वकील अजमेर भेजि मरुराज साम सन।
अट्ठ लक्ख दै दम्म द्रोह मिट्टयो मरहट्ठन॥१४॥

इधर बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की पासँवान ने विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्नीस के आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तदनुसार रविवार के दिन संग्रामसिंह नामक पुत्र को जन्म दिया। तभी मारवाड़ के राजा की सेना के घोड़ों के साथ सम्मिलित करने को हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने (सहायता करने हेतु) अपने घोड़े बढ़ाए। राठौड़ राजा ने सम्मुख आ कर हाड़ाओं की इस सेना का हार्दिक स्वागत किया। राठौड़ राजा ने पूरी आवभगत के साथ हाड़ा राजा के डेरे सूरसागर नामक तालाब के किनारे लगवाये और उधर संधि का प्रस्ताव दे कर अपने वकील को अजमेर रवाना किया। मारवाड़ के वकील ने अजमेर पहुँच कर सिंधिया को आठ लाख रुपयों की राशि दे कर आपसी द्रोह मिटाया।

तब दब्बन ढुंढार चल्यो दक्खिन दल सत्वर।
लुट्टिय पुर मोजाद चारु आपन थन चत्वर॥

स्वीय पितृव्यक सुता बुल्लि ईडरपुर सन यँहँ।
उदयकुमरि अभिधान मरुप व्याहन संभर कँहँ॥१५॥
अतिधृति धृति आषाढ नवमि अवदता लग्न पर।
बुंदीसहि सबिनोद दई दुलहनि बिबाहि बर॥
रक्ख्यो निज आवास नृपहि सनमानि पक्ख त्रय।
हुव प्रतिदिन मुद दुहुँन दोजि सितपक्ख चँद्रोदय॥१६॥

इस तरह मारवाड़ से संधि हो जाने के बाद सिंधिया ने ढूंढाड़ क्षेत्र को दबाने की मंशा से अपनी सेना के साथ जयपुर का रुख किया। मराठा सेना ने राह में पड़े मोजादपुर के समृद्ध बाजार को लूट लिया। इधर जोधपुर में राजा विजयसिंह ने अपने चाचा की पुत्री को ईडर से बुलवाया और उदय कुमारी नामक अपनी इस बहिन का विवाह हाड़ा राजा के साथ सम्पन्न करवाया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्नीस के आषाढ़ माह के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि के शुभ मुहूर्त पर राजा उम्मेदसिंह ने हर्षपूर्वक उदयकुमारी को अपनी दुल्हन बनाया। राठौड़ राजा ने इस विवाह के बाद डेढ़ माह तक हाड़ा राजा को अपने यहाँ जोधपुर रखा जहाँ शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा की तरह दूल्हा-दुल्हन दोनों का प्रेम प्रतिदिन विकसित होता रहा।

पुर भेदन मोजाद इत सु कोटेस सचिव गय।
अखैराम कायत्थ मिलन मरहट्ठन अघ मय॥
संध्या माहजि श्रवन पिसुन पूरे अवसर लहि।
संभर मरुप सहाय होन कारन अनेक कहि॥१७॥
दैं कछु छन्नै दम्म मोरि जित तित माहजि मन।
बुंदिय उप्पर बेग प्रथित आन्यो कराय पन॥
कटक अचानक मुररि चाहि हड्डुन दंडन चित।
अनी बिबिध उम्महिय मुदिर भद्दव लहरू मित॥१८॥

उधर कोटा से वहाँ का सचिव अखैराम कायस्थ चल कर मोजादपुर (मोजमाबाद) नगर में मराठा सेना द्वारा नगरकोट के ध्वस्त करते समय पहुँचा। उसने यहाँ पहुँच कर महादजी सिंधिया से मुलाकात कर बूंदी के राजा की खूब सारी चुगली कर सिंधिया के कान भरे। यही नहीं उसने प्रछन्न तरीके

से कुछ राशि दे कर यह भी कहा कि आप देखें कि हाड़ा राजा उम्मेदसिंह मारवाड़ के राजा की सहायता करने का बहाना बना कर वहाँ गया है ताकि आपसे लड़ सके। इस तरह की अनेक उल्टी सीधी भिड़ा कर अखैराम महादजी सिंधिया की मराठा सेना को बूंदी पर चढ़ा लाया। जयपुर की ओर जाती हुई मराठा सेना इधर बूंदी की ओर मुड़ गई और हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को युद्ध का मजा चखा कर दंडित करने को भाद्रपद माह की मेघपंक्ति की तरह उमड़ती बढ़ी।

द्रंग आत दक्खिनिन सुनत मरुधर तजि संभर।
आयो बुंदिय अरहि सज्या दुद्धर चहि संगर॥
पुटभेदन प्राकार सज्जि चाहत अरि आगम।
मानहु चातक मत्त सघन घन भद्द समागम॥१९॥
चित माहजि लहि चाह दोरि इत बपु दक्खिन दल।
बुंदिय सहसा बिंटि कियउ तोपन कलकल कल॥
अखैराम दल अप्पि सजव बुल्ल्यो कोटेसहिं।
सत्रुसल्ल दल सुनत चल्यो दब्बत द्रुत देसहिं॥२०॥

मराठा सेना यों दनदनाती बूंदी पर चढ़ाई करने आ रही है इस खबर को सुनकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह मारवाड़ (जोधपुर) से रवाना होकर तुरन्त बूंदी आया और यहाँ आते ही दुर्द्धर्ष राजा युद्ध के लिए तैयार हुआ। राजा ने शहरपनाह को दुरुस्त करवाया और स्वयं शत्रु की यों प्रतीक्षा करने लगा जैसे चातक पक्षी सघन मेघों की करता है। उधर दक्षिण (मराठों) की सेना रूपी शरीर से दौड़ता हुआ महादजी सिंधिया अपने चित्त में लड़ने की चाह लिये आया और उसने आकर अचानक बूंदी को घेर कर तोपों का भारी कोलाहल मचाया। कोटा पत्र भेज कर अखैराम ने भी तब अपने स्वामी को ससैन्य बूंदी बुलवाया। कोटा का राजा शत्रुसाल भी पत्र पाते ही तेज गति से चलता हुआ अपनी सेना सहित बढ़ा।

अनतापुरपति अजित प्रथम जो हुव कोटापति।
पट्ट तास यह पाय आय बुंदिय रन किय अति॥
संध्या के भरि श्रवन बन्यों जयकार तास बल।
जिह्मग लहि द्रुण जानि आखु मारत मारत अल॥२१॥

इम माहजि अपनाय बेढि माधवहर बुंदिय।
संध्या कों साबात सौर कौ कूल ज्वलन किय॥
दक्खिन पूरब दुव हि तरफ तापन मचि तोपन।
कुल गोलन प्राकार लगे कोपन रय लोपन॥२२॥

पूर्व में अंता नगर का जागीरदार अजीतसिंह कोटा का राजा बना था। उसी के उत्तराधिकारी बने शत्रुसाल ने बूंदी आ कर जोरदार युद्ध किया। सिंधिया के कान भरवा कर चढ़ाई करवाने वाला शत्रुसाल अब उसी सिंधिया की सेना के बल पर विजय करवाने वाला बना। मानों सर्प के मुँह में चूहा पकड़ा हुआ जान कर बिच्छू साँप के डंक मार रहा हो (सर्प के मुख में चूहा होने के कारण बिच्छू अपने मरने का भय छोड़ देता है क्योंकि वह जानता है कि अभी सांप मुझे नहीं खा सकता है और निर्भय हो सांप के डंक मारता है।) सिंधिया महादजी के साथ लग कर माधवसिंह हाड़ा के वंशज (शत्रुसाल) ने बूंदी को घेर कर सिंधिया रूपी उच्च कोटि के बारूद के ढेर में आग लगाई (यहाँ ग्रंथकार ने बारूद के लिए 'साबात' और 'सौर' दो शब्दों का साथ साथ प्रयोग इसलिए किया लगता है कि ऐसा कर वह वीप्सार्थ के सहारे सिंधिया की प्रबलता दिखा सके-संपा.) बूंदी के दक्षिण और पूर्व दोनों दिशाओं से तोपें घनघना उठीं अर्थात् दोनों ओर से तोपों का आक्रमण आरंभ हुआ।

थाल सलिल गति थरकि मही डुंगर डगमग्गत।
अतल बितल बसवान लज्जि सुतलप पय लग्गत॥
बनि बनि प्रानन पिसुन बीर रस बाढत नारद।
धमि धमि तापन धूम सहज छावत घन सारद॥२३॥
तुट्टत निज सिर त्वरित सूर न चहैं रु चहैं सिव।
इत मारन अरि अतुल उत सु हिंसन अनिच्छ इव॥
काली खप्पर कतिन गोद गत तदपि नटन गहि।
पीवन देत न पलल करहु उपवास पचन कहि॥२४॥

पानी से भरी थाली की तरह पृथ्वी कंपायमान हो उठी जिससे पर्वत डगमगाने लगे। तोपों से छूटे गोलों का समूह बूंदी नगर की शहरपनाह

को क्रोध के वेग से लोपने लगा। तोपों की गर्जना से डरे हुए अतल और वितल लोक के वासी घबरा कर सुतल लोक के स्वामी के चरणों में शरण ढूंढने लगे। प्राणों की बार-बार चुगली करता नारद योद्धाओं में वीर रस का विकास करने लगा। वीर अपने मस्तक यों कटाने लगे मानों इन मस्तकों की उन्हें जरूरत न हो अथवा उनके धड़ पर अनचाहे मस्तक हों पर महादेव अपनी मुंडमाल के लिए उन्हें चुगने लगे। तोपों के धमाकों ने बूंदी पर धुँआ ही धुआँ छोड़कर उसे ऐसा बना दिया मानों शरद ऋतु के बादल छाये हों। इधर से बूंदी वाले वीर शत्रु को मारने में अतुलनीय बने रहे वहीं सामने वाला पक्ष हिंसा के प्रति जैसे अनिच्छा जगाये हुए हो। रणचंडी कालिका के खप्पर में रक्त के साथ गया हुआ वीरों का माँस नृत्य कर (ताजा कटा हुआ मांस थरथराता है) उसे रक्त पीने नहीं दे रहा मानों वह झूम-झूम कर मनाही करता कह रहा हो कि 'देवी मत पी' यह तुमसे हजम नहीं होगा, बेहतर है उपवास रख।

सुरभि पराग समान खेह रवि मधुप दृगन खिरि।
अंधी करत अनूरु सहित कर्द्दम बिथाय किरि॥
तारागढ सिर तोप लोंन कचमाल उतारत।
बंदी गिद्धनि बुल्लि सूर गति गिरिहिं सिंगारत॥२५॥

अक्क गलिन जिम अटत तिमिर फारत गोले तिम।
तोप अदिति के तनूज करहि संख्या पावन किम॥
देत निसैनिन दोरि सूर आरोहित कपिसिर।
इतके असि आघात बढ्ढि डारत तिन्ह बाहिर॥२६॥

बसंत ऋतु की पुष्प रज के समान रणभूमि से उड़ी रज सूर्य रूपी भँवरे के नेत्रों में घुसने लगी और सूर्य के सारथी को भी अंधा करने लगी अर्थात् रणभूमि की धूल ने आकाश में छाकर सूर्य को धुंधला बना डाला। इसी धूल ने वीरों के बहते रक्त में मिल कर वाराह को कीचड़ से सना बना डाला। तारागढ़ के सिर की केशराशि को तोपें अपने प्रहारों से कतरने लगीं और इस तरह नये ढंग का श्रृंगार होने के बाद बूंदी के पर्वत गिद्ध रूपी भाटों को बुला कर वीरों की भांति उनसे अपने श्रृंगार की तारीफ सुनने लगे अर्थात् बूंदी के पर्वत भी वीरों सा श्रृंगार कर वीर बनने लगे।

सूर्य जिस प्रकार अंधेरे को चीरता है उसी प्रकार तोपों के गोले बूंदी की गलियां चीरने लगे। उस दिन तोप की कोख से निसृत उसके पुत्र गोलों की भी अदिती के पुत्रों (देवताओं की गिनती नहीं हो सकती क्योंकि वे असंख्य हैं) की तरह गिनती नहीं हो सकती थी अर्थात् बूंदी पर असंख्य गोले बरसने लगे। शत्रु दल के वीर दौड़-दौड़ कर दुर्ग की दीवार पर नीसरनियाँ लगा कर कंगुरों पर चढ़ने के यत्न करने लगे पर भीतर के हाड़ा अपनी तलवारों के प्रहारों से उन्हें काट कर वापस दुर्ग के बाहर पटकने लगे।

तकि तकि छिद्रन तोपदार बेधत अणु गोलन।
पब्बय तिनके पात झुकत घुम्मत झकझोलन॥
धमकि खनंकत थूजि पृथुल बलभिन पर खप्पर।
बिथुरत जरि बाजार छार टप्पर कठ छप्पर॥२७॥
भीरुन मुख छवि भाँति नटत जल द्रंग निवानन।
सोदागर रसबीर रच्यो बिक्रय इम प्रानन॥
बिरहिनि के उर बिबिध भये तपि तपि भुवमंडल।
कै जिम मनि रविकांत फरस ग्रीखम दाहक फल॥२८॥

शत्रुदल के तोपची कमजोर स्थलों को चिन्हित कर उनका निशाना साधते हुए गोले दागने लगे और पर्वत (तारागढ़ की पहाड़ियाँ) उन गोलों के गिरने से झकझोले खाने लगा। तोपों के धमाकों से काँपते घरों की बड़ी-बड़ी मियालें (बल्लभियाँ) हिलने पर पूरे छप्पर हिलने लगे। प्रज्वलित गोलों के बाजार पर गिरने से जलते हुए काष्ट की बनी छतों की राख नीचे टपकने लगी। इस भीषण मचे तोपों के संग्राम से बूंदी के जलाशयों का पानी भाप बन कर यों उड़ने लगा जैसे रण में कायरो के मुख की कांति उड़ती है। वीर रस रूपी सोदागरों ने यहाँ प्राणों का ऐसा व्यापार रचा कि तोपों के गोले भूमंडल को विरहणी नायिका के हृदय की तरह विदग्ध करने लगे और वह भी ऐसे कि जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्यकात मणि के ताप का फल फर्श (बिछोना) को दाहने वाला होता है।

अट्ट रुगोपर उडत थंभ मंडप थहरावत।
गगन गिद्ध गति ग्राव लोल चढत रु लहरावत॥

माघ त्रयोदसि असित अंक ससि धृति सक अंतर।
माहजि को मिलवाय सज्यो बुंदिय इम संभर॥२९॥
सुनि यह दैन सहाय कटक पठयो कूरमपति।
कह्यो हड्ड जय करहु हेतिबल करहु सत्रु हति॥
पार्मडहेड़ापुरप होय कूरम सेनानी।
राजाउत द्वारकादास आयो अभिमानी॥३०॥

तोपों से छूटते गोलों के प्रहार से बुर्जे और शहर-दरवाजे उड़ने लगे और पीछे मंडप को थामने वाले थंभे थरहराने लगे। शहरपनाह के पत्थरों के टुकड़े आकाश में यों मंडराने लगे मानों गिद्धों का समूह मंडरा रहा हो। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्नीस के माघ मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन महादजी सिंधिया की सम्मिलित सेना से हाड़ा राजा उम्मेदसिंह यों मिलने अर्थात् दो-दो हाथ करने बढ़ा। इस युद्ध की खबर जब जयपुर पहुँची तो बूंदी की सेना की सहायता करने कछवाहा राजा माधवसिंह ने अपनी सेना भेजी। कछवाहा राजा ने अपनी फौज रवाना करते कहा कि वीरो! जाओ और हाड़ा राजा को विजय दिलाओ! अपने शस्त्रों के बल पर शत्रुसंहार करो। इस सेना का सेनापति राजा ने पामड़हेड़ा के जागीरदार राजावत कछवाहा द्वारकादास को नियुक्त किया जो वीरोचित अभिमान से भरा था।

साहिपुरप उम्मेद त्योंहि पठयो सहाय दल।
सुत लघु मालिमसिंह बिरचि सेनेस महाबल॥
बिजयसिंह मरुराज जदपि बुंदिय रन जान्यो।
भेजी तदपि न भीर मूढ कृतघनपन मान्यो॥३१॥
अट्ठ पहर इत हड्ड भूप कटिबंध न खोलत।
पलपल बिच प्राकार भटन ललकारत डोलत॥
सुत हुव पृथ्वीसिंह भूप जैपुरपति के जँहँ।
तास बधाई जंग होत आई बुंदिय तँहँ॥३२॥

बूंदी पर हुए इस मराठा आक्रमण की खबर पाकर शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह सिसोदिया ने भी अपनी सेना सहायता के लिए भेजी और

अपने छोटे बेटे कुमार मालिमसिंह को सेनापति बनाकर रणभूमि की ओर रवाना किया। जोधपुर के राजा विजयसिंह ने भी बूंदी पर आक्रमण की खबर सुनी पर उस कृतघ्न राजा ने सहायता के लिए सेना नहीं भेजी। इधर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह आठों पहर जूझता रहा अर्थात् उसने अपनी कमर नहीं खोली और अहर्निश शहरपनाह के पास मोर्चा लिये वह अपने वीरों का साहस बढ़ाता यहाँ से वहाँ डोलता रहा। इसी समय जयपुर से हर्ष का यह समाचार आया कि कछवाहा राजा माधवसिंह के घर पुत्र का जन्म हुआ है। कुमार पृथ्वीसिंह के जन्म का शुभ समाचार जब बूंदी पहुँचा उस समय बूंदी में भीषण संग्राम मचा था।

उच्छव ताको अतुल सुनत संभर नरेस किय।
मरन मंडि रन तुमुल बहुत दिन किय निसंक हिय॥
जान्यों तुट्टत नाँहिं नैर बुंदिय माहज्जि जब।
अद्दरि साम उपाय पत्र पठयो नृप प्रति तब॥३३॥
कोटापति को कथित मन्त्रि संगर यँहँ मंड्यो।
अप्प मिलहु अब आय छुद्र साहस हम छंड्यो॥
सुनि नृप अरि कृत साम चिंति नय मिलन बिचारिय।
माधानी भगवंत दुग्ग रक्ख्यो रखवारिय॥३४॥

फिर भी सुनते ही हाड़ा राजा ने युद्ध के मध्य ही एक शानदार उत्सव का आयोजन किया और इस तरह मरने को तत्पर हो राजा ने कई दिनों तक शत्रु सेना का निर्भय होकर मुकाबला किया। जब महादजी सिंधिया ने देखा कि यह बूंदी का दुर्ग टूट नहीं रहा है अर्थात् अजेय ही बना हुआ है तो उसने युद्ध रोक कर पूरे आदर के साथ हाड़ा राजा के समक्ष संधि का प्रस्ताव भिजवाया उसमें सिंधिया ने लिखा कि मैंने कोटा के राजा के कहने पर यह सब कुछ किया इसका अफसोस है। अब आप हमसे आकर मिलें हम भी लड़ने के तुच्छ हठ को छोड़ रहे हैं। ऐसा प्रस्ताव पाकर हाड़ा राजा ने भी नीतिसम्मत इस बात को मानते हुए संधि करने के लिए सिंधिया से मिलने की सोची। राजा ने तब माधानी (माधवसिंह हाड़ा के वंशज) भगवंतसिंह को अपने पीछे दुर्ग का रक्षक नियुक्त किया।

अक्खिय हमकों मारि नगर आरि लैन बिचारिहिं।
तो भाई मरि तुमहु देहु पुनि सूबेदारहिं॥
माहजि हिंतु मिलाप कियैं नृप निकसि यहै कहि।
आयउ तोरन अवधि समुख संध्याहु तोर सहि॥३५॥
हथजोरि करि हुलसि जाय बैठे परिखद दुव।
सापराध संध्या समेत हड्डुन बिनोद हुव॥
करन जोरि तब कहिय नम्र माहजि आगस निज।
सुनि हित जुत संभरहु बिकच्च किन्नैं दृग बारिज॥३६॥

राजा उम्मेदसिंह ने भगवतंसिंह को हिदायत देते हुए कहा, संभव है कि मुझे मारकर शत्रु नगर पर अधिकार करने की सोचे ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम तो तुम अपने जीते जी दुर्ग मत छोड़ना। आगे यदि तुम्हारे भी मरने की नोबत आ जाए तो ऐसी दशा में दुर्ग की रखवाली का कार्य सूबेदार को सौंपना। इतना कहकर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह महादजी सिंधिया से मिलने जाने को दुर्ग से निकला। आगे सिंधिया भी अपने शिविर के मुख्य द्वार तक राजा की अगवानी करने आया। दोनों ने हाथ जोड़कर परस्पर अभिवादन किया और दोनों राजा-सभा में जा बैठे। अपराधी सिंधिया के सभी लोगों से हाड़ा राजा ने विनोदपूर्वक वार्तालाप छेड़ा तभी हाथ जोड़ कर विनम्र. मुद्रा में महादजी सिंधिया ने कहा कि यह मेरी गलती थी। मैं इसे अपना अपराध मानता हूँ। सिंधिया के ऐसे वचन सुनते ही हाड़ा राजा के नेत्र कमल प्रफुल्लित हो गए।

अक्खिप तुम कोटेस कुटिल को क्यों न इष्ट किय।
सुनि जोरे तस सयन पिक्खि पुनि नृप बुल्लिय प्रिय॥
खरनी के कछु दम्म चढे आदिक गिनि दिन्ने।
हित अन्यान्य बढाय बिदा मरहट्ठन किन्ने॥३७॥
याहि बरस बुंदीस केर सिरदारसिंह सुव।
ईडरपतिजा उदयकुमरि रानी औरस हुव॥
चैत्र मास मुख असित पक्ख संगत अष्टमि दिन।
उच्छव तिहिं दिन अतुल बहुरि बिरचिय हड्डुन इन॥३८॥

हाड़ा राजा ने तब पूछा कि आपने कोटा के राजा का चाहा हुआ फिर क्यों नहीं किया? यह सुनकर सिंधिया ने हाथ जोड़ दिये। जिन्हें देखकर राजा ने फिर से उसके साथ वही मृदुता से भरा प्रीति का व्यवहार करना शुरू किया। वार्षिक खिराज के कुछ रुपये बकाया थे। वह राशि सिंधिया को चुका दी और दोनों पक्षों में फिर से हितदायक संबंध विकसित हो गये। ऐसा कर हाड़ा राजा ने सिंधिया की सेना को वहाँ से विदा किया। इसी वर्ष में अर्थात् विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्नीस में राजा की ईडर वाली राठौड़ रानी उदयकुमारी की कोख से सरदारसिंह नामक औरस पुत्र ने जन्म लिया। इसके उपलक्ष में उसी दिन राजा उम्मेदसिंह ने चैत्र माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन एक अतुलनीय उत्सव का आयोजन किया।

कोटेस हु आनन बिगारि अतिसय सिटाय हिय।
अखैराम सठ सचिव सहित कोटा प्रवेस किय।।
बिजयसिंह मरु ईस बुल्लि इत हड्डु महीपति।
दीपकुमरि निज बहिनि ताहि व्याहिय मंजुल मति।।३९।।
सक कृति घृति मित समा राध अवदात दसमि दिन।
अति हित करि उच्छाह लगन सद्धिय कबंध इन।।
साल प्रकृति धृति समय तीज फग्गुन सुदि बासर।
ईडरपति लघु सुता दीप सोदर व्योह्यो बर।।४०।।

तब कोटा का राजा भी अतिशय लज्जित हो अपना सा मुँह लेकर अपने सचिव अखैराम कायस्थ के साथ कोटा गया। उधर जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह ने हाड़ा राजा को अपने यहाँ बुलाया और अपनी श्रेष्ठ मति वाली बहिन दीप कुमारी के साथ राजा उम्मेदसिंह का विवाह करवा दिया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बीस के वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन उत्साहपूर्वक राठौड़ राजा ने शुभ लग्न में अपनी बहिन का विवाह किया। इसी तरह अगले वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्कीस के फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के दिन ईडर के राजा की छोटी बेटी से हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के सहोदर दीपसिंह ने विवाह रचाया।

जोधपुरहि यह बिजयसिंह मरुपाल ब्याह किय।
नाम भवानकुमरि बहिनि उच्छव करि ब्याहिय॥
याहि बरस श्रीमंत माधवहु देह बिहायो।
पट्ट नारायराव अनुज ताको तब पायो॥४१॥
तिहिँ काका रघुनाथराव पर बैर बिथारिय।
तानै भजि तब सरन इंगरेजन द्रुत धारिय॥
सक इहिँ कथित समीप साह आलम दिल्ली पति।
दिय इंग्रेजन अर्थ तीन सूबा सहाय मति॥४२॥

दीपसिंह का विवाह भी जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह ने जोधपुर में ही करवाया। अपनी भवानकुमारी नामक इस बहिन के विवाह के अवसर पर राजा ने उत्सव किया। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ इक्कीस में उधर दक्षिण के श्रीमंत माधवराव का देहावसान हुआ तब उसका छोटा भाई नारायणराव श्रीमंत का उत्तराधिकारी बना। जिसने अपने काका रघुनाथराव से वैर बढ़ाया इसी कारण से रघुनाथराव वहाँ से भाग कर अंग्रेजों की शरण में चला गया। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ इक्कीस के लगभग दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने सहायता मिलने की आंकाक्षा में तीन सूबे अंग्रेजों को सौंप दिये।

बंगाला रु बिहार तथा उड्डीसा ए त्रय।
इनमैं तब अंग्रेज भये हाकिम जमात जय॥
सूबा त्रय सिर साह रुद्ध निज गति जब जानी।
इस्तमरारी अंकि दई इनकों दीवानी॥४३॥
प्रथम रुहेला सचिव नजीबुद्दोला के भय।
दिल्ली तैं भजि साह बंग अंतर बचिबे गय॥
कछु हायन तैंहँ कट्टि मर्‌यो सुनि कथित रुहेला।
लहि मरहट्ठ सहाय बिस्यो दिल्लिय लखि बेला॥४४॥

ये तीन सूबे थे बंगाल, बिहार और ओड़ीसा और इन तीनों सूबों में अंग्रेज हाकिमों की जमात खड़ी हो गई। जब बादशाह ने जाना कि अब इन तीनों सूबों पर उसकी कोई प्रशासनिक पकड़ नहीं रह गई है तो उन्हीं

अंग्रेजों को इष्टमुरारदारी (कुछ कर राशि लेकर दी गई जागीर) दे दी गई और दीवानी अधिकार भी प्रदान कर दिये। यही नहीं इसी समय बादशाह आलमशाह स्वयं अपने वजीर नजीबुद्दोला के भय से दिल्ली छोड़कर भागा और बंगाल प्रांत में जाकर रहने लगा। कुछ वर्ष बादशाह ने वहीं बिताये। इसी बीच रुहेला नवाब नजीबुद्दोला मारा गया और यह खबर बादशाह को मिली तो वह मराठों की सहायता से उचित अवसर देखकर वापस दिल्ली आया।

नजफखान जिहिं नाम जवन सो किय वजीर जब।
सक लिपि अंतर ननहु अधिक प्रभु राम इहाँ अब॥
सिवप्रसाद मुनसी जु आहि अधुना अंग्रेजन।
जिहिं दुव ग्रंथ बनाइ बिदित किन्ने छाप्य सन॥४५॥
जिनमैं इक भूगोल आदि हस्तामलक जानहु।
तैंहैं इन्ह सूबा तीन मिलन सूचित सक मानहु॥
ताही नैं इतिहासतिमिरनासक प्रबंध किय।
तामैं पावन पट्ठ साह आलम को सक लिय॥४६॥

बादशाह आलमशाह ने तब दिल्ली आकर नजफखान को नया शाही वजीर नियुक्त किया। हे राजा रामसिंह! मेरे इस वृत्तांत में सक संवतों का अधिक अन्तर नहीं है, पर न्युनाधिक जो भी है उसे सुनें! सिताराहिन्द मुंशी शिवप्रसाद जो अंग्रेजों के समय में अभी विद्यमान है उसने दो ग्रंथों की रचना की है और उन्हें छपवाया भी है। इनमें मे एक ''भूगोल हस्तामलक'' नामक ग्रंथ में मुंशी ने भी अंग्रेजों को तीनों सूबों का मिलना विक्रमी संवत् अठारह सौ इक्कीस में ही लिखा है पर मुंशी शिवप्रसाद ने अपने दूसरे ग्रंथ ''इतिहास तिमिरनाशक'' में इसका समय अठारह सौ सत्ताईस माना है। अब आप ही देखें एक ही लेखक के दिये हुये संवत् में कितना फर्क है? इसी तरह हे स्वामी! अन्य-अन्य लोगों के लिखे इतिहासों में समय प्रदर्शन की पद्धति में अन्तर आ जाता है।

सो हय दुव बसु सोम कितो अंतर इब इक्खहु।
ओरन मैं इहिं रीति परत अंतर प्रभु पिक्खहु॥

मुद्रित किय इक ग्रंथ बिदित पंडित बंसीधर।
सो भारतवर्षीय आदि इतिहास नाम पर ॥४७॥
तामैं बैठन तखत साह आलम सक सूचिय।
सो हय दुव बसु सोम प्रमित जानहु पुहवीपिय॥
बढि घटि अंतर बिबिध लेखकारहि इम लावत।
है तस दोस न हमहिँ लेख अनुसार लिखावत॥४८॥

इसी तरह एक अन्य इतिहास का ग्रंथ जिसे बंशीधर ने प्रकाशित करवाया है। वह भी प्रसिद्ध गिना जाता है जिसका नाम "भारतवर्ष का इतिहास" है। इस ग्रंथ में दिल्ली के तख्त पर आलमशाह के बैठने का वर्ष दिया गया है। हे राजा! इसमें वह बादशाह के गद्दी पर बैठने का समय विक्रम संवत् का वर्ष अठारह सौ सत्ताईस लिखता है। ग्रंथ लिखने वाले द्वारा बताये गये समय में थोड़ा 'घट-बध' अर्थात् आगे-पीछे का समय देना पाया जाता है। अब मेरे इस ग्रंथ में बताये गये समय में यदि अन्तर आता है तो इसका कारण भी ऐसे ही ग्रंथों को समझा जाये क्योंकि मैने उनके लिखे अनुसार ही कहीं-कहीं संवत् दर्ज किये हैं।

परि इम बत्त प्रसंग अन्य ठामहु कहि आये।
बर्त्तमान अब वृत सुनहु प्रभु सबन सुहाये॥
जट्ट जवाहिरमल्ल याहि हायन प्रकुप्पि अब।
लुट्टि दिल्लिय जाय साह धन कोस सहित सब॥४९॥
अग्ग जनक रविमल्ल मर्‍यो दिल्लिय रन अंतर।
ताको बैर बिधाय करिय यह जट्ट जवाहर॥
इत मेवारे भटन सठन तसकरपन धार्‍यो।
बुंदिय जनपद बीच बिबिध बसु हरन बिथार्‍यो॥५०॥

हे राजा! अभी यह प्रसंग यहाँ आ गया था इसलिए बताया और इसी तरह मैंने अन्य जगहों पर भी ऐसा लिखा है। अब मैं वापस उसी प्रसंग पर आता हूँ जहाँ से छोड़ा था। आप सुनें कि इसी वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्कीस में भरतपुर के जवाहरमल जाट ने कुपित हो दिल्ली जाकर शाही खजाने सहित नगर को लूटा था। पूर्व में

इसका पिता सूरजमल जाट दिल्ली के युद्ध में मारा गया था इसीलिए उसके इस पुत्र ने अपने पिता का वैर लेने को लूट की यह कार्यवाही की। इधर मेवाड़ के कुछ दुष्ट सामन्तों ने अपने चोरों की सहायता से बूंदी के जनपदों से धन हरण के कार्य का विस्तार किया।

कुप्पि तबहि बुंदीस सेन सज्जिय तिन उप्पर।
लये पकरि सीसोद झारि असिबर निज तसकर॥
निबसथ टहला मंगटला टिंटहरा के पति।
कन्हाउत ए कैद किये अवरहु सागस कति॥५१॥
मुंडित डड्ढी मुच्छ करि रु डारे काराघर।
परयो पयन सगताउत स्यामपुरेस जोरि कर॥
सु सुनि रान अरिसिंह सचिव पठयो निज बुंदिय।
कन्हाउत छुरान काज उपाय सन तिन किय॥५२॥

बूदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने इन कारगुजारियों पर खफा होकर अपनी सज्जित सेना भेजी और तलवार चला कर आखिरकार हाड़ा राजा के योद्धाओं ने अपने अपराधियों को पकड़ लिया। इनमें से हाड़ा राजा ने टहला, मंगटला, टिंटोड़ा आदि गाँवों के कान्हावत जागीरदारों सहित अन्य अपराधियों को कारावास में डलवा दिया। इनकी दाढ़ी मूँछें और सिर के बाल मुंडवा कर कैद किया। तभी श्यामपुरा का शक्तावत जागीरदार हाथ जोड़ कर हाड़ा राजा के चरणों में आ गिरा। अपने जागीरदारों का कैद करना सुनकर उदयपुर के महाराणा अरिसिंह ने अपने सचिव को बूंदी भेजा। महाराणा के सचिव ने बूंदी आकर इन कान्हावत सरदारों को छुड़वाने के उपाय किये।

सुनि नृप तिनकी अरज चोर कारा बाहिर किय।
श्रद्धा मित सब सौंहि दम्म दम के अलुब्ध लिय॥
यह रानाँ अरिसिंह कथित करि दुष्कर कीनी।
नतो नृपहिं नहिं लोभ धर्म रीतिहि चित चीनी॥५३॥
झंझोली बीखरनि नैर बक्करपुरादि सब।
सद्धन लग्गे संभरेस आदेस नम्र तब॥

इम संभर उम्मेद् मुलक तसकर सब मेटिय।
कलियुग बिच नय धर्म कर्म पांडव नृप ज्यों किय।।५४।।

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने उदयपुर के सचिव के अनुरोध पर इन चोरों को कारावास से आजाद किया और इसके बदले में उनसे निर्लोभी राजा ने दण्ड की राशि वसूल की। हाड़ा राजा ने दण्ड के रुपये लेने का यह दुष्कर कार्य भी महाराणा अरिसिंह के कहने पर किया अन्यथा राजा उम्मेदसिंह तो निर्लोभी और धर्म के अनुसार आचरण करने वाला था। इस घटना के बाद से झंझोली, बीखरनी और बक्करपुरा आदि के जागीरदार हाड़ा राजा के प्रत्येक हुक्म की तामील करने लगे। इस तरह हाड़ा राजा ने अपने राज बूंदी से सारे तस्करों को मिटाया अर्थात् तस्करी समाप्त की और कलियुग के बीच नीति और धर्म के अनुसार राजा युधिष्ठिर की तरह कार्य किये।

दोहा

अमरगढप बक्करपुरप, कन्हाउत इन्ह आदि।
सगताउत पुरबीखरनि झंझोलाऽऽदि प्रमादि।।५५।।
तदंनंतर खईराड़ के, मैनन किय अति मान।
लुट्टन बुंदिय देस लगि, थिर उज्जर किय थान।।५६।।
हिंडीलीपुर आनि किय, मिलि मैंनन अति रारि।
चैनसिंह हम्मीरहर, नत्थू सुत लिय मारि।।५७।।

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अमरगढ़, बक्करपुर के कान्हावतों सहित बीखरनी और झंझोला के शक्तावतों की प्रमादवश की जा रही उदंडता को मिटाया। इसके बाद खैराड़ इलाके के मीणों का बखैड़ा खड़ा हुआ। यहाँ के मीणा लोगों ने बूंदी की सीमा के तटवर्ती गाँवों में लूटपाट शुरू की और पूरी पट्टी को ही उजाड़ कर रख दिया। यही नहीं इन मीणा लोगों ने एकजुट हो हिंडोली नामक पुर में आकर लड़ाई की और हमीर सिंह के वंशज और नाथूसिंह के पुत्र चैनसिंह को मार डाला।

इति श्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-

चरित्रे निजदुर्गरणस्तम्भगतकूर्मराज माधवसिंह हड्डेन्द्राऽऽह्वयहन प्रीति जिगमिषूम्मेदसिंह विपद्मित्रसम्मिलनकौर्ममृगयाऽदिखेलद्रावराणिन-जमहिषीझल्लीराज्ञी मृत्यु श्रवणश्रुतागच्छद्दक्षिणासैन्यमाधवसिंह जयपुर प्रविशन बुन्दीन्द्र बुन्द्या गमन सन्ध्या केदारराव माहजिमालववशीकरण-विचारितयोधपुरेशबिजयसिंह विजितीकररणाऽजमेरद्रङ्गऽऽगमन सहा-यार्थाऽऽहूतहड्डेन्द्रगमनथन्वेश सन्ध्यादण्डद्रम्माऽष्ट लक्ष निवेदन जयपुरजनपदाऽऽगतमाहजिमोजाद नगरलुण्टनरावराणमरुपतिपितृ-व्यकेडरपुरेश रट्ठोड़रायसिंह सुतोदयकुमारियोधपुर विवाहन कोटेश-सचिवंकायस्थाऽक्षयराममोजादपुराऽऽगम नश्रावितमरुपति सहाय-कारणबुन्दीन्द्रदत्तप्रच्छन्नद्रव्यकायस्थमाहजिबुन्द्यानयन श्रुतैतत्सज्जी-भूतबुन्दीन्द्रस्वपुराऽऽगमनसमागतकोटेश शत्रुशल्यसहित सन्ध्येश-हड्डेशसङ्ग्रामसुखाऽनुभवनकूर्म्मराजस्वसुभटद्वारकादाससाहिपुरेशोम्मेद-सिंहस्वंक निष्टसुतमालिमसिंहबुन्दीसहायार्थ प्रेषण कृतघ्न मरुपतिकिमप्य प्रेषणयुध्यद्रावराड्जयपुरेशपुत्रपृथ्वीसिंहोद्भवश्रवणज्ञातदुर्गदुर्गत्वमाहाजिसमाहूत बुन्दीन्द्रसम्मिलननीताऽऽब्दिकद्रव्यतत्प्रस्थान हड्डेन्द्रभोगिन्योरसकुमार सरदारसिंहोद्भवनसम्भरराज स्वभगिनीदीपकुमारीरट्ठोड़राज बिजयसिंह-विवाहन सम्भर दीपसिंहस्वाऽवाग्रजराज्ञ्यनुजाभवानकुमारीयोधपुरोद्वहन श्रीमन्तमाधवरायमरणतदनुजनारायण रावश्रीमन्तीभवनपितृव्यक रघुनाथरावनि ष्काशनतदिंगरेजरणभरतपुरेशजट्टुजवाहरमल्ल दिल्ली लुण्टनसीमासमीपरस्थरा णासामन्त बुन्दी देश विरोधन रावराट्तत्सर्वनिग्रह णराणाऽरिसिंहप्रार्थना मुक्त दुष्टस्वाधीनीकरणण मैणाग णबुन्दीदेश लुण्टन हिंडोलीशहम्मीरवंशीह डुचैन सिंहमारणं त्रिपञ्चाशत्तमो मयूखः। आदितः ॥३३४॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, अपने गढ़ रणस्थंभ में गये हुए कछवाहों के राजा माधवसिंह का हाड़ाओं के पति को बुलाना और प्रीति की इच्छावाले उम्मेदसिंह का आपदा के समय मित्र से मिलना, कछवाहा का शिकार आदि खेलना और रावराजा का अपनी पाटवी रानी (झाली) का मरना सुनना, दक्षिण की सेना का आना

सुन कर सिंधिया केदारराव, माहजी का मालवा देश को अधीन करना और जोधपुर के पति विजयसिंह को जीतना विचार कर अजमेर नगर में आना, सहायता के अर्थ बुलाये हुए हड्डेन्द्र का जाना और मारवाड़ के पति का सिंधिया का दण्ड के आठ लाख रुपये देना। जयपुर के देश में आये हुए माहजी का मोजादनगर को लूटना और रावराजा से मारवाड़ के पति के काका ईडर के राठौड़ राजा रायसिंह की पुत्री उदयकुमारी को जोधपुर में विवाहना। कोटा के राजा के सचिव कायस्थ अक्षयराम का मोजादपुर में आना और मारवाड़ के पति की सहायतार्थ बून्दीन्द्र को जाने के कारण गुप्त रूप से धन देकर कायस्थ का माहजी को बून्दी लाना सुनकर सज्जित हो बून्दी के पति का अपने पुर में आना, आये हुए कोटा के पति शत्रुसाल सहित सिंधिया के पति और हाड़ा राजा का सग्रांम के सुख को अनुभव करना। कछवाहों के राजा का अपने उमराव द्वारकादास और शाहपुरा के पति उम्मेदसिंह का अपने छोटे पुत्र मालमसिंह को बून्दी की सहायतार्थ भेजना और किये उपकार को भूलने वाले मारवाड़ के पति के पुत्र पृथ्वीसिंह के जन्म को सुनना और गढ़ का नहीं मिलना जानकर माहजी का हाड़ा राजा को बुला कर मिलना। सालाना खिराज लेकर उस का जाना और हड्डेन्द्र की छोटी रानी के उदर से कुमार सरदारसिंह का जन्म होना; चहुवानों के राजा का अपनी बहिन दीपकुमारी को राठौड़ों के राजा विजयसिंह को ब्याहना और चहुवान दीपसिंह का अपने बड़े भाई की रानी की छोटी बहिन भवानकुमारी से जोधपुर में विवाह करना। श्रीमंत माधवराव का मरना और उस के छोटे भाई नाराणराव का श्रीमंत होना, काका रघुनाथराव को निकालना और उसका अंग्रेजों की शरण लेना, भरतपुर के पति जाट जवाहरमल्ल का दिल्ली लूटना और सीमा के समीप रहने वाले राणा के उमरावों का बून्दी में विरोध करना, रावराजा का उन सबको पकड़ना और राणा अरिसिंह की प्रार्थना से उन दुष्टों को छोड़कर स्वाधीन करना, मीणों के समूह का बून्दी के देश को लूटना और हिंडोली के पति हम्मीरसिंह के वंश वाले चैनसिंह को मारने का तिरपनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चौंतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

रोला

तब संभर नृप तमकि सेन मैंनन सिर सज्जिय।
बेरिन झारन बाढ गाढ रव पणव गरज्जिय॥
हरिणा निजकवि ग्राम लंघि घेर्‍यो द्रुत ऊमर।
मैने द्वैसत मारि थान किन्नो तर ऊपर॥ १॥
पुनि खेड़ा लिय घेरि दुष्ट तँहँ हनिय इक्कसत।
बहुरि लुहारी बिंटि अडर लुट्टी रन उद्धत॥
सजव कुप्पि च्यारिसत मारि मैनें जय मंडिय।
गद्दोली पुनि ग्राम खुंदि खग्गन सब खंडिय॥ २॥

हे राजा रामसिंह! तब हाड़ा राजा उम्मेदसिंह कुपित हो कर मीणा लोगों के बखेड़े को समाप्त करने के लिए अपनी सज्जित सेना के साथ चला। प्रहार हेतु तलवारों के धार युक्त होते ही भारी ध्वनि करने वाले ढोल बज उठे। जो इस बात की साक्षी दे रहे थे कि राजा अपने शत्रु संहार को चढ़ा है। ग्रंथकार के अपने गांव हरिणाँ को पार कर तुरन्त ही राजा ने ऊमर गाँव को जा घेरा और दो सौ मीणा योद्धाओं को मार कर ऐसा भय जमाया कि शेष सारे भाग-भाग कर पेड़ों पर चढ़ कर छिप गये। यहाँ से आगे चलकर मीणा का खेड़ा नामक गाँव को जा घेरा। यहाँ भी राजा ने एक सौ दुष्टों का संहार किया। फिर शीघ्र ही आगे लुहारी गाँव को जा घेरा। यहाँ भी निडर राजा ने रणोन्मुख होकर शीघ्र ही चार सौ लूट पाट वाले उपद्रवियों को मार गिराया। इस तरह अपने काम में कामयाबी हासिल करते हुए अर्थात् अपनी जय करते हुए हाड़ा राजा ने तुरन्त गाधोली को जा घेरा और यहां से भी अपने अपराधियों को तलवारों से दण्डित कर भगाया।

दारिम रंग दुकूल मत्थ धवपत किलंगिय।
दुव गव्या कोदंड जुरत डुड्डू करि जंगिय॥
बंसुरि भयद बजात पिट्ठि दुव धरत निखंगन।
डारत फोजन फारि मारि कट्टार तुरंगन॥३॥

इम मैनें रन करत हनिय द्वै सत गड्डोलिय।
आयो बुंदिय विजय मंडि बंदिय जस बोलिय॥
मैंनन के सिर मैंनिन के सिर दये करंडन।
बधाई गवावत लायो पुर लग तिन रंडन॥४॥

दाड़िम (अनार) के रंग के वस्त्र पहने अपने मस्तक पर धोकड़ा नामक वृक्ष की पत्तियों की किलंगी धारण करने वाले मीणा ऐसे योद्धा थे जो हर समय अपने साथ दो प्रत्यंचाओं वाला धनुष रखते थे और 'डूडू' की ध्वनि निकालते हुए एकजुट हो शत्रु से भिड़ जाने वाले थे। जो भय व्याप्त करने वाली बांसुरी बजाते और पीठ पर दो-दो तरकश रखने वाले थे। वे अपने तीरों से फौज को फाड़ने वाले और अपनी कटारी से घोड़ों को चीरने में विख्यात माने जाते थे। इस तरह के युद्ध करने वाले दो सौ मीणा योद्धाओं को गाडोली नामक गाँव में घुस कर हाड़ा राजा की सेना ने काट डाला। इस तरह मीणाओं के मुख्य-मुख्य केन्द्रों को फतह कर हाड़ा राजा अपनी राजधानी बूंदी लौटा और बंदीजनों ने राजा के सुयश के बोल उचारे। राजा ने बूंदी लौटते समय मीणाओं के कटे सिरों को टोकरों में भरवाया और उन्हीं की विधवा स्त्रियों के सिर पर लदवा कर बधाई के गीत सुनता हुआ लौटा।

सक आकृति धृति समय भयो यह रन सरदागम।
सेवन सब सीमार लगे रचि सर्नोंति समागम॥
याहि बरस के माघ मास द्वादसि मेचक जुत।
दीपसिंह कै भयो नाम सुरताणसिंह सुत॥५॥
करि अग्गै कोटेस कथित माहजि यह रन किय।
नाथाउत उद्योतसिंह तब अरिन मिलन किय॥
नगर पगारा छोरि स्वामि मन्नै मरहट्ठन।
सत्रु होय किय समर लूटि लीनें कछु रट्ठन॥६॥

हे राजा रामसिंह! हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने उपद्रवियों के शमन की यह कार्यवाही विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ बाईस की शरद ऋतु के आरम्भ में की जिसका यह नतीजा रहा कि बूंदी की सीमा पर बसने

वाले लोग शांति से सुखपूर्वक रहने लगे। इसी वर्ष के माघ मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन राजा के सहोदर दीपसिंह के पुत्र सुरताणसिंह का जन्म हुआ। पूर्व में कोटा के राजा ने महादजी सिंधिया को आगे कर बूंदी पर चढ़ाई करवाई थी उस समय पगारां नामक नगर का जागीरदार नाथावत उद्योतसिंह अपने स्वामी से विमुख होकर मराठों को अपना स्वामी मानकर शत्रुपक्ष से जा मिला था। इस नाथावत ने बूंदी के विरुद्ध शत्रुओं के साथ मिलकर युद्ध में भी भाग लिया था। यही नहीं उसने बूंदी के प्रति शत्रुता का व्यवहार करते हुए कुछ गाँव भी लूटे थे।

याको काका बखतसिह मन्यो तब भूपति।
दयो पगारां ताहि मंडि सनमान महामति॥
अब सु बिकृति धृति अब्द मॉहि उद्योत सु आयो।
नगर पगारों लैन भूप प्रति कथन कहायो॥ ७॥
बुंदीपति तब कुप्पि सुभट पठये तिहिं मारन।
मारयो आनि बजार मध्य कहि तिन अघ कारन॥
याहि बिकृति धृति अब्द मॉहि हुलकर बपु छोरिय।
तब तस नाती मालराव इंदोर तखत लिय॥ ८॥

उस समय इस उद्योतसिंह नाथावत के काका बखतसिंह ने स्वामिधर्म निभाया था इसलिए हाड़ा राजा ने उसका सम्मान करते हुए पगारां की जागीर उसे प्रदान कर दी। अब कई दिनों बाद वर्ष अठारह सौ तेईस में वह उद्योतसिंह वापस लौट कर आया और उसने हाड़ा राजा से कहलाया कि मुझे मेरी जागीर का गाँव पगारां वापस मिलना चाहिए। इस बात को सुनते ही हाड़ा राजा ने कुपित होकर अपने योद्धाओं को भेजा और कहा कि उस नमकहराम को मार कर आओ। योद्धाओं ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुरूप उस पाप करने वाले उद्योतसिंह को बाजार के मध्य लाकर मारा। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ तेईस में मल्हारराव होल्कर का देहांत हो गया तब उसकी जगह होल्कर के पोत्र मालराव ने उत्तराधिकारी के रूप में इन्दौर का तख्त लिया।

सुनि यह टीका साज भूप पठयो तह हितघन।
दुव हय दुव सिरुपाव इक्क गज इक मनि भूखन॥

संकृति धृति मित साल मालरावहु हुलकर मृत।
तब ताको दायाद नाम तक्कू गद्दिय धृत॥९॥
रुप्पय अतिकृति लक्ख दये श्रीमंत अरथ दुत।
इम गद्दिय इंदोर लही तक्कुव सु मंत्र जुत॥
रूपनगरपुर सुता भूप सामंतसिंह घर।
नाम किसोरकुमारि इत सु व्याह्यो नृप सोदर॥१०॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तब मालराव के राजतिलक के अवसर पर अपनी ओर से नियमानुसार दो घोड़े, दो सिरोपाव, एक हाथी और एक रत्नजटित आभूषण जैसी सामग्री उपहार स्वरूप इन्दौर भिजवाई। विधि के विधान से अगले ही वर्ष अठारह सौ चौबीस में मालराव होल्कर की भी मृत्यु हो गई तब उसके पुत्र तक्कू होल्कर को गद्दी पर बिठाया गया और इसके लिए श्रीमंत पेशवा को पच्चीस लाख रुपयों की भेंट दी गई। इस तरह तक्कू होल्कर ने इन्दौर की गद्दी प्राप्त की। इधर रूपनगढ़ के राजा सामन्तसिंह की पुत्री किशोर कुमारी से हाड़ा राजा के सहोदर दीपसिंह ने विवाह किया।

संकृति धृति मित साक बिरचि उच्छव बहु दिन तक।
व्याह बहादुरसिंह कियउ यह दुलहि पितृव्यक॥
याहि साल बिच नृप सपत्न जननी कछु गद्द लहि।
बंसबहाला पतिजा बपु दिय छोरि व्याधि सहि॥११॥
बुंदीपति मासुरि बिहीन बनि प्रेत करंम किय।
द्विजन सु भोजन दान दै रु निगमोक्त सद्धि लिय॥
संकृति धृति मित याहि साल इत जट्ट जवाहर।
जैपुर ऊपर जोर दैन मंड्यो डारन डर॥१२॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौबीस में कई दिनों का बड़ा उत्सव रचकर पूरी धूमधाम के साथ यह विवाह कन्या के काका किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह ने करवाया। इसी वर्ष बूंदी में राजमाता अर्थात् हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की सौतेली माता का देहान्त हुआ जो बांसवाड़ा के राजा की बेटी थी। बूंदी के राजा ने शोक के इस अवसर पर मुडंन करवाकर

अर्थात् प्रथानुसार डाढ़ी मूँछ कटवा कर अपनी माता के सारे प्रेतकर्म सम्पन्न किये। ब्रह्म भोजन करवा कर ब्राह्मणों को दान देने के सारे कार्य राजा ने पूरे वेदोक्त रीति के अनुसार सम्पन्न किये। इसी वर्ष अर्थात अठारह सौ चौबीस में उधर भरतपुर के जाट शासक जवाहरमल ने जयपुर पर दबाव डालने के प्रयत्न किये।

याको भ्रात सु अग्ग नाम नाहर कछु कारन।
आयो जैपुर सरन नारि निज विपति निवारन॥
याकै ही इक युवति रूप गुन अधिक अपूरब॥
ताहि जवाहर जट्ट लैन तक्क्यो कामुक जब॥१३॥
इंहि तब जैपुर आय सरन कूरमपति को लिय।
माधव नार निवाई को परगनॉ ताहि दिय॥
नाहरसिंह बिताय काल कछु तत्थ गयो मरि।
तबहि जवाहर कहिय लैन ताकी वह सुंदरि॥१४॥

इसका मुख्य कारण यह था कि भरतपुर के राजा जवाहरमल जाट का भाई जिसका नाम नाहरमल था वह अपनी पत्नी पर आई विपत्ति के निवारणार्थ जयपुर के राजा की शरण में गया था क्योंकि नाहरमल की पत्नी अनिंद्य सुन्दरी थी। जब कामुक जवाहरमल जाट ने उस यौवन में मदमाती स्त्री को हड़पना चाहा तब वह नाहरमल अपनी पत्नी सहित भरतपुर से भाग कर अपनी सुरक्षा के लिए जयपुर के राजा की शरण में आया। कछवाहा राजा माधवसिंह ने भी तब नाहरमल को भरणपोषण के लिए निवाई नगर का परगना दिया और उसे वहाँ आराम से रखा। यहाँ निवाई में कुछ समय सुख से व्यतीत कर नाहरमल चल बसा। नाहरमल की मृत्यु के बाद भी भरतपुर के शासक जवाहरमल जाट ने उसी स्त्री को जयपुर से मांगा।

सो सुनि माधव ताहि भरतपुर लग्यो पठावन।
बुल्लि तब जट्टनिय उचित है नहीं मम जावन॥
मोको वह गृह डारि कूर रक्खहि बनिता करि।
यातैं भेजहु नॉहि सती जानहु हित अनुसरि॥१५॥

तबहि भरतपुर मंडि पत्र माधव पठवायो।
याको आवन उहाँ इष्ट नहि नैक सुहायो॥
जट्ट जवाहरमल्ल सु सुनि पठयो प्रति उत्तर।
मम बंधव महिलाहिं तुम सु चाहत रक्खन घर॥१६॥

कछवाहा राजा माधवसिंह जब उस जाटनी को भरतपुर भिजवाने लगा तब उस स्त्री ने कहा कि अब मेरा वहाँ जाना उचित नहीं क्योंकि वह क्रूर जवाहरमल मुझे अपने घर में डाल कर (अपनी स्त्री बनाकर) रखेगा। हे राजा। मैं सती स्त्री हूँ दूसरा पति नहीं कर सकती इसलिए मेरा हित सोचते हुए आप मुझे भरतपुर नहीं भेजे। यह सुनकर राजा माधवसिंह ने तब भरतपुर पत्र लिखकर भिजवाया कि यह स्त्री भरतपुर किसी भी स्थिति में नहीं आना चाहती है। इस पत्र को पाकर जवाहरमल जाट ने प्रत्युत्तर भिजवाया कि इसका यह अर्थ हुआ कि मेरे घर (बांधव)की स्त्री को आप अपने घर में डालना चाहते हो।

यह सुनि जैपुर ईस मन्त्रि अभिसाप असह मति।
निकसाई वह नारि गई बिख खाय उचित गति॥
इहि कारन अब अतुल बैर गहि जट्ट जवाहर।
जैपुर उप्पर जोर दैन सज्जे दल दुद्धर॥१७॥
विजयसिंह यह जानि जट्ट जैपुर चढ़ि आवन।
आयो पुष्कर अरहि मिलन अरु मंत्र बनावन॥
उदयपुर रु आमैर ज्यों हि बुंदिय मंडै जिम।
समता गिनि सतकार स्वकर लिखि दल पठये इम॥१८॥

भरतपुर के शासक जवाहरमल के पत्र द्वारा ऐसा लांछन लगाने पर कछवाहा राजा ने स्वयं को अपमानित महसूस किया तब राजा ने उस जाटनी को जयपुर से बाहर निकालने का आदेश दिया। यह देखकर उस जाटनी ने विष खाकर अपनी इहलीला समाप्त कर ली। यही कारण रहा कि भरतपुर के शासक जवाहरमल ने जयपुर के प्रति अपने मन में वैर बांध लिया और उसने अपनी दुर्द्धर्ष सेना को सज्जित कर जयपुर पर दबाव बनाने का विचार किया। इधर जब यह समाचार जोधपुर के राजा

विजयसिंह ने सुना कि जाट जयपुर पर चढ़ाई करने को आमादा है तो वह जोधपुर से चलाकर पुष्कर आया ताकि शीघ्र ही इस बाबत उससे मंत्रणा की जा सके। राठौड़ राजा ने उदयपुर, आमेर और बूंदी के राजाओं के समतुल्य गिनकर उस जाट शासक जवाहरमल को स्वयं अपने हाथ से पत्र लिखकर भिजवाया।

जट्ट जवाहरमल्ल अडर अति बल हो तुम जब।
लियउ आगरा छिन्नि दब्बि दिल्लिय प्रदेस सब॥
अब हमसों तुम आय मिलहु पुष्कर विधाय बल।
इक्क तखत बैठिहैं जेर करिहैं अरि मंडल॥१९॥
इस संकृति धृति अब्द बंचि दल जट्ट जवाहर।
उज्ज पुण्णिमा दिवस मिलन आयो द्रुत पुष्कर॥
मरुपति ताके सिविर प्रथम पहुँच्यो लहि सासन।
सिर कर धरि समकाल उभय बैठे एकासन॥२०॥

इस पत्र में जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह ने लिखा कि हे जवाहरमल! तुम एक निर्भीक और बलवान योद्धा हो। तुम्हीं ने आगरा को दबा लिया और दिल्ली के प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिये। अब तुमसे गुजारिश है कि अपने दल को सज्जित कर मुझसे पुष्कर में आ मिलो। हम तुम मिलकर कर एक ही आसन पर बैठेंगे और मंत्रणा कर अपने शत्रुओं को दबा लेंगे। इस तरह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौबीस में जोधपुर के राजा का पत्र पढ़कर कार्तिक माह की पूर्णिमा तिथि के दिन जवाहरमल जाट भरतपुर से चलकर शीघ्र ही पुष्कर पहुँचा। यहाँ आने पर आज्ञा ले वह मारवाड़ का राजा सीधा उसके शिविर पर पहले मिलने गया। दोनों राजाओं ने परस्पर अभिवादन में अपने मस्तक तक हाथ उठाये और दोनों मंत्रणा के लिए एक ही आसन पर बैठे।

चमर मोरछल छत्र लगे होवन दोउन पर।
पुनि मरुपति के सिविर जट्ट दर्प्पित गय दुद्धर॥
समता को सतकार कियउ पूरब जिम मरुपति॥
पलटि पग्घ रट्ठोर जट्ट हुव सुहृद कुसंगति॥२१॥

तदनु जोधपुर नाह पत्त पठये जयपत्तन।
मित्त याहि गिनि तुमहु मिलहु बैठहु इक आसन॥
तब कूरमपति तमकि एह पठयो प्रति उत्तर।
मित्र होय किम मुद्ध जट्ट जैपुर को किंकर॥२२॥

दोनों राजाओं पर चँवर ढुलाए गये। इसके बाद वह दर्प से भरा दुर्द्धर्ष जवाहरमल मारवाड़ के राठौड़ राजा के शिविर में गया। मारवाड़ के राठौड़ राजा ने उसका पहले की माफिक बराबरी वाला सत्कार (जैसा राठौड़ राजा का किया गया था) किया। इसके बाद जाट शासक जवाहरमल से अपनी पघड़ी बदल कर राठौड़ राजा उसका मित्र बना पर इसे कुसंगति (जाटों के साथ क्षत्रियों की मित्रता के अर्थ में) ही कहा जायेगा। इसके बाद राजा विजयसिंह ने जयपुर के कछवाहा राजा को पत्र लिखा कि आपको जवाहरमल को मित्र समझ कर एक ही आसन पर बैठ मंत्रणा कर इस मामले को सुलझाना चाहिए। पत्र पाते ही क्रोध से भरे कछवाहा राजा ने प्रत्युत्तर में राठौड़ राजा को लिखा कि यह आपने क्या लिखा है? एक जयपुर के दास की हैसियत वाला मूर्ख जाट हमारा मित्र कैसे हो सकता है?

सेवन आत सदैव पिक्खि हमरे परवानाँ।
मम समता के मित्र रावराजा तुम स्नाँ॥
सु सुनि जट्ट दिय पत्र ओलि जैपुर लिखि आड़ी।
दोय परगना देहु हमहिं खोहरी पहाड़ी॥२३॥
रचहु न तो अब रारि तुमहिं दंडन हम तक्कत।
सुनि पठयो निज सेन कुम्म अक्कहिं रज ढक्कत॥
तब माउंडा खेत मिले जट्ट रु जैपुर दल।
फैलिय हेतिन फाग राग सिंधुन कोलाहल॥२४॥

हे राठौड़ राजा! जो व्यक्ति हमारे परवाने पाते ही सेवा में उपस्थित होते रहे हों, वे भला हमारे मित्र कैसे हो सकते है? हाँ, हमारे बराबरी के मित्र होने की हैसियत तो आप या उदयपुर के महाराणा की है। इस पत्र को सुनते ही भरतपुर के शासक जाट जवाहरमल ने जयपुर के पत्र के

'आड़ी ओली' (तर्जना का पत्र) लिखते हुए लिखा कि हे कछवाहा राजा! अब आप हमारे खोहरी और पहाड़ी नामक दो परगने हमें वापस करें! यदि ऐसा नहीं किया गया तो हम युद्ध कर तुम्हें दण्डित करने का हौसला रखते हैं। यह पत्र पाते ही कछवाहा राजा माधवसिंह ने प्रयाण से उड़ती धूल से सूर्य को ढंकने की क्षमता रखने वाली सेना रवाना की। जयपुर से आ रहे दल और जाट जवाहरमल के दल की मुलाकात माउंडा गाँव की रणभूमि में हुई। जहाँ सिन्धु राग का बड़ा रव हुआ और वीरों की शस्त्रों से फाग खेलने की इच्छा पूरी हुई।

इति श्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे बुन्दीन्द्रमैणा विजय प्रस्थानतद्ग्रामामेर खेडा लुहारी गड्डोल्या स्सदिविध्वंसनहतनवशत मैणागणपुनः स्व पुरा स्सविशनसोदरदीपसिंह कुमार सुरताणासिंहोद्भवनसंभरराजचालु क्यनाथाउत्तोद्योतसिंहमारण तत्पितृव्यकबखतसिंहपगारॉंपुरास्र्प्पण हुलकरमल्लाररावदेहत्यजनन सृमालिरावतदधिकारप्रापणबुन्द्रीन्द्र टीकोपाख्यतत्सत्कार प्रेषण मालरावमरणास्नंतरदत्तासतिकृतिलक्ष द्रम्मतद्दायादहुलकरतक्कूहोलकर पुरेन्दोरगद्दिकोपविशन बुन्दीन्द्रास्नुज दीपसिंह रूपनगरासधिराजखोड़ सामन्तसिंहसुता किशोरकुमारीविवाहनरावराट्सपत्नजननीमरणतत्प्रेत-क्रियास्नुष्ठान पूर्वोद न्तविवृद्धवैरजट्टेन्द्र जवाहरमल्ल जयपुरजिगीषुभवन पुष्कर क्षेत्रास्गतमरुपतिविजयसिंह समाहूतजवाहरमल्ल सजातीय-नृपसमससत्कारसम्मिलनकृत जट्टतिरस्कारजयपुरसैन्य जट्टसैन्य माउ-ण्डाया मरड्ड्सम्मिलनं चतुः पञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३३५॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, बून्दी के पति का मीणों को विजय करने का गमन करके उन के गाँव ऊमरखेड़ा, लुहारी, गाडोली आदि का नाश करना और नो सौ के समूह को मारकर अपने पुर में प्रवेश करना। सगे भाई दीपसिंह के कुमार सुरताणसिंह का जन्म होना और चहुवाण राजा को सोलंखी नाथाउत उद्योतसिंह को मारना, उस के काका बखतसिंह को पगारांपुर देना, होल्कर मल्हारराव का मरना और पोते मालराव का उस का अधिकार पाना, बून्दीन्द्र का उसको टीका नामक सतकार भेजना और मालराव के मरे बाद पच्चीस लाख रुपये देकर उसके पुत्र तक्कू का होल्कर के पुर इंदौर की गद्दी पर बैठना, बून्दी के पति के छोटे भाई

दीपसिंह का रूपनगर के पति राठौड़ सामन्तसिंह की पुत्री किशोर कुमारी से विवाह करना और रावराजा की सौतेली माता का मरना, उस की विधि-पूर्वक क्रिया करना, पहिले वृत्तान्त के कारण वैर बंध कर जाटों के पति जवाहरमल्ल का जयपुर को जीतने की इच्छा वाला होना और पुष्कर क्षेत्र में आये हुए मारवाड़ के पति विजयसिंह का जवाहरमल्ल को बुलाकर अपनी जाति के राजाओं के बराबर सत्कार करके मिलना, जाट की सेनाओं का माउंडा ग्राम के युद्ध के क्षेत्र में मिलने का चौवनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ पैंतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

कटक ईस कछवाह को, धूलापुरप दलेल।
लघु सुत लछमन जुत लर्यो, खंडन मंडव खेल ॥१॥
दल बखसी गुरुसाहि द्रुत, सचिव बीर हरसाहि।
एहु खरे खत्री उभय, चंड करन रन चाहि॥२॥
इततैं जट्टहु उप्परयो, तोपन बिरचत ताप।
भट फिरंगि डारत भयो, समरू कापिल साप॥३॥

हे राजा रामसिंह! कछवाहा राजा माधवसिंह की सेना धूलापुर के स्वामी दलेलसिंह के सेनापतित्व में सज्जित हुई। इस समय उसका छोटा बेटा लक्ष्मणसिंह भी साथ था। कछवाहा सेना जब तलवार के प्रहारों का खेल दिखाने को उद्यत हुई तब सेना के साथ जयपुर का सचिव खत्री हरसाहि और फौजबख्शी गुरुसाहि भी थे। भंयकर युद्ध करने की चाह में दोनों अभंग खत्री रणभूमि में आ डटे। इधर से जाट जवाहरमल का दल अपनी तोपों से आग उगलता आ उपस्थित हुआ। वहीं फिरंगी योद्धा समरू भी कपिल मुनि की तरह शत्रुनाश का शाप देने को तत्पर हुआ।

भ्रमरावली

करकि करकि कोप तरकि तरकि तोप,
लरकि लरकि लोप करन लगी।
करखि करखि कत्ति परखि परखि पत्ति,
हरखि हरखि सत्ति हरन लगी।

समर लखन आय अमर गगन छाय,
भ्रमर सुमन भाय निकर जुरे।
सरजि सरजि सोक लरजि लरजि लोक,
बरजि बरजि ओक दिगन दुरे ॥४॥

युद्ध क्या आरम्भ हुआ कि कोप के साथ गर्जना करती तोपें धमाके पर धमाका कर गोले बरसा-बरसा कर शत्रुओं का लोप करने लगीं। खींच-खींच कर निकाली गई तलवारें पैदल सैनिकों की परख पर परख करती हर्षित होती हुई उनकी शक्ति हरने लगी। रणभूमि में आ-आकर देवता युद्ध देखने को आकाश में छा-छा कर यों नजर आने लगे जैसे पुष्प पर भंवरों के समूह आ जुड़े हों। लरजते काँपते लोग मन में शोक उत्पन्न करते हुए अपने-अपने घर छोड़ कर जिधर मुँह था उसी दिशा में जाकर दुबकने लगे।

बढिग त्वरित बीर पढिग दरित पीर,
चढिग सरिता सीर रुहिर रची।
सिलत उरन सेल मिलत फुरन मेल,
ठिलत खुरन ठेल मलप मची।
पिलत धुरन पेल भिलत छुरन भेल,
खिलत सुरन खेल लखन लगे।
हरखि हरखि हूर परखि परखि पूर,
करखि करखि सूर रखन लगे ॥५॥

वीर योद्धा शीघ्र ही अपने स्थान से आगे बढ़ने लगे और उनसे डरने वाले कायर दर्द भरे वचन उचारने लगे। उफान पर आई नदी की तरह रुधिर के नाले बहने लगे। वीर योद्धा परस्पर शत्रुओं की छाती अपने भालों से बेधने लगे। वहीं पक्ष विपक्ष दोनों ओर के बढ़ते आते घोड़ों के थुथने (फुरने) आपस में मिलने लगे। ये घोड़े जो अपने खुरों की टक्कर से घायलों को परे करते हुए छलाँगें भरने लगे। जो वीर अग्रिम पंक्ति में लड़ते योद्धाओं की सहायता करने भेजे जाते वे शत्रु की कटारियों के प्रहारों से बिंधने लगे। इस खेल को देख-देख कर आकाश में देवता

हर्षित होने लगे। वहीं अप्सराएँ हरख-हरख कर वीरता की पूरी परख करती वीरों को पकड़-पकड़ कर अपनी ओर खींचने लगी।

गहत गवरि गैल बहत गिरिस बैल,
सहत भरन सैल कहत फटैं।
चहत भटन चैल दहत मनु कि तैल,
महत फबत फैल अगनि अटैं।
त्रिकसि त्रिकसि तेग बिकसि बिकसि बेग,
निकसि निकसि नेग असुन लहैं।
रपटि रपटि राजि झपटि झपटि आजि,
दपटि दपटि बाजि गजन गहैं ॥६॥

युद्ध क्या आरम्भ हुआ कि पार्वती को अपने साथ ले महादेव बैल पर आरूढ हुए। अपने सीने पर भालों के प्रहार झेलने वाले योद्धा अपने फटने की खबर देने लगे कि अरे फट गए। रणभूमि में बड़े प्रसार की शोभा से शोभित अग्नि की लपटें फिरने लगीं और योद्धाओं के वस्त्रों को तेल की तरह जलाना चाहने लगीं। तीन-तीन तलवारें कसे हुए वीर प्रफुल्लित होकर शीघ्र ही उन्हें निकालकर शत्रुओं के प्राणों का नेग लेने लगे। रणभूमि में झपटती दौड़ती घोड़ों की पंक्तियां दौड़-दौड़ कर हाथियों को घेरने लगीं।

सरत जहर सूक टरत अहर टूक,
करत कहर कूक ककुप करी।
खिसकि खिसकि हत्थ चिसकि चिसकि मत्थ,
सिसकि सिसकि सत्थ दुरत दरी।
छलत बिसिख छाय घलत त्रिसिख घाय,
कलत निसिख काय भटन किते।
पकरि पकरि पाय जकरि जकरि काय,
नकरि नकरि हाय जपत जिते ॥७॥

शेष नाग सरक-सरक कर अपने फणों पर पृथ्वी उठाये रहा पर अत्यधिक भार पड़ने से वह अपने होंठ दांतों से भींचने लगा। इस कहर के ढहने से दिशाओं के हाथी कूकने लगे (चीत्कार करने लगे)। घायल

वीर दर्द से चसमसाते माथे को अपने हाथों को आगे पीछे फिसला कर दबाते हुए सिसकते-सिसकते आड़ में दुबकने लगे। कई वीर बाणों का प्रहार झेल कर भी आगे बढ़ कर शत्रु देह पर अपनी त्रिशूल के घाव देने लगे। कई वीरों के शरीर में तीखे त्रिशूल खुभने लगे। कई वीर अपने फटे-कटे गात को बांध-बांध कर प्रबल शत्रु के पाँव पकड़-पकड़ कर टसकते हुए भी 'नहीं कर' (मत मार) की गुहार के बोल जपने लगे।

भचकि भचकि मुंड लचकि लचकि सुंड,
मचकि मचकि रुंड उछटि कटैं।
भरकि भरकि भेट खरकि खरकि खेट,
धरकि धरकि पेट फलक फटैं।
खटकि खटकि खग्ग चटकि चटकि अग्ग,
लटकि लटकि झग्ग मुखन झरैं।
अटकि अटकि इद्ध गटकि गटकि गिद्ध,
छटकि छटकि बिद्ध बिसिख धरैं ॥८॥

कई वीर अपने मस्तक की टक्कर पर टक्कर शत्रु सिर पर देने लगे तो कई हाथियों की सूंडें बलपूर्वक झुका-झुका कर मरोड़ने लगे। वहीं रुंड मचकोले देते उछलने लगे। ये रुंड सामने किसी के मिलने पर भड़क उठने लगे। ढालों पर तलवारों के खड़कने के शब्द होने लगे। जिनसे धड़क-धड़क करते शत्रुओं के पेट फल की तरह फटने लगे। तलवारों पर तलवारें 'खट-खट' की ध्वनि के साथ खटकने लगीं। जिनसे आग की चिंगारियाँ चटकने लगीं। वहीं कई वीरों के लटके हुए मुख से झाग बाहर झरने लगे। गिद्ध भी बहुत अटक-अटक (रुक रुक) कर उन्हें खाते हुए गटकने (निगलने) लगे। बाणों के प्रहार से छिटक कर दूर गिरने के बाद भी कुछ वीर अपने गात पर बाण धारण करते उनसे विद्ध होने लगे।

भटकि भटकि घुम्मि झटकि झटकि झुम्मि,
पटकि पटकि भुम्मि घुटन घसैं।
बटकि बटकि गुंड मटकि मटकि तुंड,
रटकि रटकि झुंड हुलसि हसैं।

बिरचि बिरचि बान मिरचि मिरचि मान,
किरचि किरचि कान किरन लगे।
ललकि ललकि लाल झलकि झलकि हाल,
खलकि खलकि खाल फिरन लगे ॥९॥

कुछ घायल रणभूमि में व्यर्थ भटकते हुए घूमने लगे। कुछ घायल दूसरे घायलों को जल्दी-जल्दी खींचने में लगे और अन्ततः उन्हें भूमि पर पटक-पटक कर अपने घुटनों के प्रहारों से उन्हें कुचलने लगे। कटे हुए शवों के लोंदे (ग्रास) तोड़-तोड़ कर खाते हुए प्रेत-पिशाचों के झुंड अपने मुँह को मटका-मटका कर रणभूमि में इधर-उधर दौड़ कर हुलसते हुए अट्टहास करने लगे। कहीं पर वीर योद्धा बाण पर बाण चला कर अपने शत्रु का मान मर्दन करने लगे। कहीं पर वीरों के कान टुकड़े-टुकड़े कट कर भूमि पर बिखरने लगे। रणभूमि में कटे हुए धड़ों से बाहर निकलने की तीव्र ललक वाला ताजा लाल-लाल रक्त उमग-उमग कर निकला जिससे रक्त के नाले खलकने (बहने) लगे।

झनकि झनकि झोंर सनकि सुरभि सोंर,
भनकि गुटिन भोर भ्रमन लगे।
तरस खयद खेत परस रयद्व प्रेत,
दरस भयद देत दमन लगे
....।
....॥१०॥

बसंत ऋतु में पुष्प गुच्छों पर मंडराते भ्रमरों के उड़ने की गूंजार जैसी ध्वनि करते गोली रूपी भ्रमर रणभूमि में भ्रमण करने (मंडराने) लगे। वहीं रणभूमि में अपनी भूख प्यास का क्षय करने वाले (मिटाने वाले) और रणभूमि में अपने वेगवान स्पर्श से धूल उड़ाते प्रेत अपने भयदायक दर्शनों से घायलों (लोगों) को डराने लगे। दूसरे अर्थ के अनुसार खयकारी रणभूमि में पड़े प्यासे घायल 'पानी-पानी' करने लगे पर तभी अपने विचरण के वेग से धूल का बगूला उठा देने वाले प्रेत रणभूमि में डरावने रूप में नजर आये तो घायल डरकर अपनी प्यास का दमन करने लगे।

दोहा

जयपुर दल अरु जट्ट दल, रचि कछु तोपन रारि।
अँचि मिले पुनि असिन इम, झुकि झुकि धारन झारि ॥११॥

जयपुर की सेना और भरतपुर वाली जाट सेना ने आरम्भ में तो तोपों से गोले बरसाए पर थोड़ी ही देर बाद दोनों पक्षों के वीर अपनी तलवारें निकाल कर घोड़े से झुक-झुक कर उनके प्रहार करने लगे।

प्रकृतिः

सचिव मुख्य खत्री हरसाहि, अरु बखसी गुरुसाहि उमाहि॥
मिलि अधिबीर जट्ट बहुमारि, तूटि गिरे झारत तरवारि॥१२॥

तलवारों के इस घमासान मे जयपुर का सचिव हरसाहि खत्री और फौजबख्सी गुरुसाहि दोनों वीर नायकों ने रणोत्साह में कई जाटों को मारा पर अन्ततः लड़ते-लड़ते वे दोनों तलवारों से कट कर रणभूमि में गिर पड़े।

षट्पात्

धूलापुरप दलेल सुपहु कूरम सेनानी।
अति जव हयन उठाय मिल्यो जट्टन बिच मानी॥
सिविका दंड समान करे बहु अरि नारिन कर।
सिर ताको लहि सुभग हुलसि किन्नौं भूखन हर॥
संक्रमि निसंक तोपन समुख कातर बच रंच न कह्यो।
भल भल दलेल जयनैर भट रन बिच बनि तिल तिल रह्यो॥१३॥

जयपुर की कछवाहा सेना का सेनापति धूलापुर का जागीरदार कछवाहा दलेलसिंह युद्ध के आरंभ होते ही वेगपूर्वक अपना घोड़ा बढ़ा कर शत्रु सेना के जाट योद्धाओं के मध्य गया। यहाँ उसने अपनी तलवार के प्रचंड प्रहारों से कई शत्रुओं की पत्नियों के हाथ पालकी के डंडे जैसे बना डाले अर्थात् उन्हें विधवा बनाते हुए उनके हाथ चूड़ीविहीन नंगे कर डाले। पर शीघ्र ही उस सौभाग्यशाली वीर के मस्तक को लेकर प्रसन्न हो महादेव ने उसे अपने गले का आभूषण बनाया अर्थात् वह मारा गया। यह कछवाहा वीर सीधा गोले उगलती तोपों के सम्मुख गया पर उसके मुँह से कोई कायरतापूर्ण वचन नहीं निकला। धन्य है! जयपुर का यह योद्धा दलेलसिंह जो रणभूमि में तिल तिल हो कर गिरा।

दोहा

लछमन याको पुत्र लघु, राजाउत रचि रीस॥
अधिक उथप्पिय अरिन असु, सिवहिं समप्पिय सीस॥१४॥

इसके लायक पुत्र लक्ष्मणसिंह राजावत ने भी अपने पिता की परंपरा निभाई। उसने भी कई जाट योद्धाओं के प्राण ले कर अन्त में अपना कटा मस्तक महादेव को सोंपा अर्थात् पूरी बहादुरी के साथ लड़ कर रणभूमि में अपने प्राण त्यागे।

पादाकुलकम्

साँवलदास बंसि सेखाउत, नाम गुमान बंदि बिरुदन नुत॥
सो बढि नगर पचाहर स्वामी, निडर लरयो मस्तक बिनु नामी॥१५॥

सीकरपति सिव को कनिष्ठ सुत, जुरयो तिनहिं बुधसिंह हरख जुत
उर दुंदुभि करि बहु अरि नारिन, तृन गिनि बपु लग्गो तरवारिन॥१६॥

सेखाउत झुंझनु पत्तन पति, नवलसिंह भज्यो दिखात नति॥
सेखाउत सिवदाससिंह पुनि, धानुंती पति परयो खग्ग धुनि॥१७॥

सेखाउत मुंडरा गाम इन, रघुनाथ हु तुट्टयो तरवारिन॥
इंटावा पति तिम नाथाउत, नाहरसिंह परयो रन राउत॥१८॥

इसके अतिरिक्त जयपुर की ओर से लड़ते हुए सांवलोत शाखा वाले शेखावत गुमानसिंह ने भी वीरता की मृत्यु पाई और बंदीजनों के विरुदों में स्तुति योग्य जगह पाई। पचाहर नगर का यह स्वामी कई देर तक मस्तक कट जाने पर भी लड़ा। सीकर के राव राजा शिवसिंह का छोटा बेटा बुधसिंह भी इस युद्ध में पूरे उत्साह के साथ लड़ा। इस वीर ने कई शत्रु नारियों की छाती को नगारे बना डाला अर्थात् जब उसने उनके पतियों को युद्ध में मारा तो विधवा हुई उन स्त्रियों ने नगारे की तरह धमाधम अपनी छाती कूटी और वह वीर अपने शरीर को तृणवत गिनता हुआ शत्रु की तलवारों से कट गया। वहीं झुंझनु नगर का स्वामी नवलसिंह शेखावत नम्रता दिखा कर (कायरता का प्रदर्शन करता) रणभूमि से भाग गया। जब कि धानुंतीपुर का जागीरदार शेखावत शिवदाससिंह रणभूमि में तलवारों के प्रहार झेलता कट मरा। इसी तरह मुंडरा गाँव का स्वामी शेखावत रघुनाथसिंह भी तलवारों की धार से कट कर रणभूमि में निशे:ष हुआ। वीर नाथावत नाहरसिंह जो इंटावा का जागीरदार था वह रावत भी युद्ध में कट मरा।

महासिंह कलमंडा नायक, सुरतानोत पर्‌यो घन घायक॥
जयपुर के इत्यादि सुभट बहु, परे बिहाय देह संगर पहु॥१९॥

खग्गन अमित जट्ट भट खाये, भीरू बचे तिन्ह मारि भजाये॥
छिज्जत कटक जट्ट पय छुट्टे, तेगन पिक्खि सिपाहन तुट्टे॥२०॥

समरू रह्यो फिरंगी सम्मुह, तोप तड़ित झारत अरि भूरुह॥
गोलन कूरम कटक गिरायो, प्रभुहिं भरतपत्तन पहुँचायो॥२१॥

उपरोक्त वीरों के अतिरिक्त कलमंडा गाँव का ठाकुर सुरतानोत महासिंह जो रण में शत्रु का संहार करने वाला था कट पड़ा। जयपुर के ये बहुत सारे योद्धा इस युद्ध में अपने स्वामी के पक्ष में लड़ते हुए रणभूमि में अपनी देह त्याग गये। इस भिड़ंत में भरतपुर के कई जाट योद्धाओं को जयपुर के योद्धाओं की तलवारें खा गई और जो कायर थे उन्हें मार भगाया। अपनी सेना का यों क्षय होते देख और अपने सिपाहियों को तलवार से कटे पड़े देख कर जाट जवाहरमल रणभूमि से भागा। पीछे वह समरू नामक फिरंगी (वह अंग्रेज न होकर फ्रांसीसी था) रणभूमि में डटा रहा उसने अवश्य अपनी तोप रूपी बिजली से अपने शत्रु समूह को पेड़ों की तरह गिराया। इसी स्वामिभक्त योद्धा ने जयपुर की कछवाहा सेना का अपनी तोपों के गोलों से विनाश किया और राजा जवाहरमल जाट को भरतपुर तक सुरक्षित पहुँचाया।

षट्पात्

तखत छत्र अरु तोप कोस लुट्टे कछवाहन।
भरतनैर गय भज्जि जट्ट मरवाय सिपाहन॥
जित्ते कूरम जोध नाग जट्टन गिनि नाहर।
समरू व्है न जु संग जाय पकरैहिं जयाहर॥
संकृति भुजंग ससि मान सक हेमंतक यह जंग हुव।
जयनैर बिजय जट्टन भजन भई बिदित आवाज भुव॥२२॥

अन्ततः अपने सैनिकों का युद्ध में विनाश करवा कर वह जाट जवाहरमल भरतपुर भाग गया। कछवाहे वीरों ने उसका तख्त, धन, तोपें और खजाने को लूट लिया। इस युद्ध में जाट रूपी हाथी को लड़ कर मारने वाले कछवाहा सिंह की विजय हुई। यह तो ठीक हुआ कि फिरंगी समरू जाट सेना के साथ

वंशभास्कर /५५६१

था। यदि वह साथ नहीं होता तो कछवाहे वीर जाट जवाहरमल को वहाँ बंदी बना लेते। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौबीस की हेमंत ऋतु में यह माउंडा का युद्ध हुआ जिसमें जयपुर की कछवाहा सेना ने विजय पाई और भरतपुर की जाट सेना को खदेड़ दिया और पृथ्वी पर यह वाकया इस रूप में प्रसिद्ध हो कर चर्चित हुआ।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंहचरित्रे जयपुर सैन्य जट्टजवाहरमल्लरमाउण्डामालासभिसम्पातानुष्टानमाधवसिंह सेनानीसपुत्रदलेल सचिवखत्रिहरसाहि गुरुसिंह सुभट सेखाउतगुमानसिंह बुधसिंहाऽऽ दिमरणजट्टेन्द्रपलायनहतश्रीसामन्तफिरगिंसमरूसमायोधन-कूर्म्मराजविजयवर्द्धनच्छत्रकोशा ऽऽदिजट्टवैभवलुण्टनं पञ्चपञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३३६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, जयपुर की सेना और जाट जवाहरमल्ल का माउंडा के रणखेत में युद्ध करना, माधवसिंह के सेनापति पुत्र सहित दलेलसिंह, सचिव खत्री हरसाहि और गुरुसाहि, सुभट सेखावत गुमानसिंह, बुधसिंह आदि का मरना, जाटों के पति का हतश्री होकर भागना, फिरंगी समरू का युद्ध करना, कछवाहा राजा का विजयी होना और छत्र, खजाना आदि जाट के वैभव को लूटने का पचपनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छत्तीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इहाँ रन दैन सहाय इत, बडो तनय बुंदीस॥
पठयो जैपुर पुब्बही, मारन जट्ट महीस॥१॥

हे राजा रामसिंह! माउंडा में होने वाले भरतपुर के जाट शासक जवाहरमल के विरुद्ध कछवाहा राजा के युद्ध में सहायता करने के लिए बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपने पाटवी पुत्र अजीतसिंह को जयपुर भेजा ताकि जाट शासक मारा जा सके।

षट्पात्

राजकुमर रन माँहीं नाँहिं माधव जावन दिय,
जात भई पुनि जानि काल अवसर उच्छव किय।

नाहरगढ आमैर आदि निज दुर्ग्ग दिखाये,
नाना सहल सिकार बिरचि अति लाड बढाये।
पुनि माघ बिसद पंचमि दिवस सट्ठि गजन आरुहि सभट।
बुंदीस कुमर जुत फाग बिधि मंडिय डारि गुलाल थट॥२॥

जयपुर पहुँचने पर हाड़ा कुमार अजीतसिंह को कछवाहा राजा माधवसिंह ने रणभूमि में नहीं जाने दिया उसे जयपुर में ही रोक कर समय-समय पर उत्सवों के आयोजन किये। कछवाहा राजा ने हाड़ा कुमार को अपने आमेर और नाहरगढ के किले दिखाये और उसके मनोरंजन के लिए शिकार खेलने के आयोजन किये। माघ शुक्ला पंचमी के दिन साठ हाथियों के समूह पर अपने सामन्तों सहित आरूढ हो बूंदी के कुमार पर गुलाल की वर्षा की गई मानों फाग खेली जा रही हो।

कूरम नृप पुनि कहिय बुल्लि बुंदीस पुरोहित,
राजकुमारहिँ रक्खि चहत व्याहन मेरो चित।
अंक झलाय अधीस सुता लै लगन दिखावहिँ,
बनि हम स्वसुर बिबाहि चतुर कुमरहिँ पहुँचावहिँ।
द्विज दयाराम सुनि किय अरज है अतुलित भवदीय हित।
पै इम न होय उपयम प्रथम बुंदिय सन व्याहन उचित॥३॥

इसी समय कछवाहा राजा माधवसिंह ने बूंदी के पुरोहित को बुलवाया और उसके आने पर कहा कि राजकुमार को यहीं जयपुर में रख कर मेरी इच्छा इनका विवाह रचाने की है। इसके लिए मैं झलाय के स्वामी की पुत्री को गोद ले कर अच्छे लग्न (मुहूर्त) निकलवाना चाहता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस प्रकार अपनी गोद ली हुई कन्या का विवाह राजकुमार से कर मैं इसका स्वसुर बनूँ अर्थात् मैं ही विवाह रचाऊँ। राजा की ऐसी इच्छा सुनकर बूंदी के ब्राह्मण दयाराम ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हे राजा! यह आपका हम पर (बूंदी पर) अतुलनीय स्नेह है कि आप ऐसा प्रस्ताव रख रहे हैं परन्तु कुमार का पहला विवाह तो नियमानुसार बूंदी में ही सम्पन्न होना चाहिए न कि जयपुर में।

दोहा

रहि तदनंतर सिसिर ऋतु, फग्गुन खेलत फाग।
कूरमपति संभर कुमर, अति मंडिय अनुराग॥ ४॥
बलि मधु मास बसंत बिच, बहुबिध हरख विधाय।
कुमरहिँ लाड अनेक करि, रक्ख्यो कूरम राय॥ ५॥
अतिकृति धृति हायन लगत, पुण्णिम चैत्रिक पाय।
कूरमपति लहि राग कछु, बिग्रह दिन्न बिहाय॥६॥
ताको सुत जेठो तबहि, पित्थल बैठो पट्ट।
अजितसिंह हित सिक्ख अब, दिन्नीँ तिहिँ बिधि बट्ट॥७॥
इक नग भूखन द्विरद इक, दुव हय दुव सिरूपाव।
करि इम नजरि कुमार की, भन्यौं गिनहु हित श्राव॥८॥

कछवाहा राजा ने जयपुर में कुमार के विवाह न करने की बात मान ली पर हाड़ा कुमार को जाने नहीं दिया। अपने यहीं रख कर शिशिर ऋतु के फाल्गुन माह में उसके साथ फाग खेल कर राजा ने प्रीति का प्रदर्शन किया। इसके बाद वसंत ऋतु के चैत्र मास में पूरे हर्ष के साथ हाड़ा कुमार को तरह-तरह से लाड़ लड़ाते हुए अपने पास ही रखा। उसे बूंदी जाने नहीं दिया पर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पच्चीस के चैत्र माह की पूर्णिमा तिथि के दिन कछवाहा राजा ने अपनी बीमारी के कारण देह त्याग दी। राजा माधवसिंह के देहावसान के बाद उसका पाटवी पुत्र पृथ्वीसिंह राजगद्दी पर बैठा और राजा बनने के बाद पृथ्वीसिंह ने हाड़ा कुमार अजीतसिंह को पूरे विधि-विधान के साथ बूंदी जाने की विदाज्ञा दी। कुमार को एक हाथी, एक रत्नजटित आभूषण, दो घोड़े और दो सिरोपाव की भेंट कर राजा ने बूंदी के प्रति हित के भाव का प्रदर्शन किया।

षट्पात्

अजितसिंह बुंदीसकुमर इम चलिय सिक्ख करि,
संगानैर सिकार खिल्हि हंकिय रंहस धरि।
रहिस चट्टसुव रत्ति बहुरि दरकुंच बिरचि द्रुत,
बुंदि आयउ वीर समर पंडित भट संजुत।

परि जनक पयन मंडित प्रनति कुसल पुच्छि आसिख कहिय।
अभिमन्यु लखत हरिभाम इम गुरु प्रमोद भूपहु गहिय॥९॥

बूंदी का हाड़ा राजकुमार अजीतसिंह तब जयपुर से विदाज्ञा ले कर रवाना हुआ। उसने रास्ते में सांगानेर में शिकार खेली और आगे फिर वेग से बढ़ा। चाटसू पहुँच कर उसने रात्रि विश्राम किया और प्रात:काल वहाँ से दर कूच दर मंजिल बूंदी की ओर बढ़ा। अपने नगर में पहुँच कर वीर कुमार ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया। हाड़ा राजा ने उससे सारे कुशलक्षेम के समाचार पूछे फिर कहा कि जिस तरह अर्जुन को अपने पुत्र अभिमन्यु पर गर्व था उसी तरह का गर्व हम आप पर करते हैं, ऐसा कह कर हाड़ा राजा ने अजीतसिंह को गले लगाया।

दोहा

तदनु कुमर उपयम उचित, लखि नृप लगन लखाय।
पठयो व्याहन कृष्णगढ, बहुल बरात बनाय॥१०॥
अतिकृति धृति सक आगमन, सद्ध्यो लगन सुढार।
तीज राध अवदात तिथि, उदित बार अंगार॥११॥
सुपहु बहादुरसिंह की, कन्न्या सुज्जकुमारी।
अजितसिंह बुंदीस सुत, नवल बिबाहिय नारि॥१२॥

तदुपरांत राजा ने यह देख कर कि कुमार बड़ा हो गया है उस की शादी करानी उचित है, ऐसा विचार किया। तब राजा ने एक बड़ी बरात साथ कर कुमार को कृष्णगढ़ (किशनगढ़) विवाह करने को विदा किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पच्चीस के आरंभ में ही कुमार ने किशनगढ़ पहुँच कर लग्न साधे (लग्न मुहूर्त पर विवाह किया) जो वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि तदनुसार मंगलवार के दिन के थे। राठौड़ राजा बहादुरसिंह की गुणवती कन्या सूर्य कुमारी के प्रति हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पुत्र अजीतसिंह ने अपने हृदय में नया स्नेह जगा कर उसे अपनी पत्नी बनाया।

षट्पात्

दंपति नल दमंयति पुत्र पाटलि नितांत प्रिय,
मनहु सची मघवान कन्ह रुक्मिनि मिलाप किय।

बासवदत्ता बच्छराज गिरिजा गंगाधर,
अवनिसुता रघुइद्रं दुलहि संज्ञा रु दिवाकर।
रोहिनि सुधागु पंचेषु रति पिलिप्पिला बैकुंठ पति।
रट्ठोरि हड्डु रमनिय रमन इम मंडिय अनुराग अति॥१३॥

पति-पत्नी का यह नया जोडा नल और दमयंती की तरह पुत्र और पाटली की तरह एक दूजे को अत्यंत प्यार करने वाला था। यह नया जोड़ा ऐसा बना जैसा जोड़ा इन्द्र और इन्द्राणी (सची) और श्रीकृष्ण रुकमणी का हो या राजा वत्सराज और वासवदत्ता का अथवा शिव-पार्वती का हो। यह नया जोड़ा रामचन्द्र और सीता के जोड़े अथवा सूर्य और संज्ञा के जोड़े जैसा था। इस नये जोड़े की तुलना चन्द्रमा और रोहिणी, कामदेव और रति सहित विष्णु भगवान और लक्ष्मी के जोड़े से की जां सकती है। इस नये जोड़े में हाड़ा कुमार और राठौड़ कुमारी ने दूल्हा-दुल्हन बन कर पूरे अनुराग के साथ एक दूसरे को चाहा।

दोहा

भ्रात भुजिष्या जठर भव, स्वीय नाम संग्राम।
सोहु सुता सिरदार की, व्याह्यो संगहि वाम॥१४॥
अभयकुमरि अभिधान यह, जननि भुजिष्या जात।
इम बिच्चाहि आये उभय, बुंदिय बिदित बरात॥१५॥

कुमार के पिता हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की एक पासवान के गर्भ से उत्पन्न संग्रामसिंह नामक भाई था उसका भी विवाह किशनगढ़ में कुमार के विवाह के साथ ही सम्पन्न हुआ सरदारसिंह की पासवान के गर्भ से जन्मी अभय कुमारी नामक कन्या से इसका विवाह कराया गया। इस प्रकार दोनों भाई किशनगढ़ विवाह कर बूंदी से गई बड़ी बरात के साथ वापस लौटे।

षट्पात्

याहि बरस इत सुक्र मास मरुपति जेठो सुत,
फतेसिंह अभिधान गयो व्याहन कोटा द्रुत।
महाराव तनया सु रान जगपति तनयाजा,
हड्डी दुलहनि हत्थ रुचिर गहि दुल्लहराजा।

आयो सु तदनु बुंदिय नगर नृप रक्खिय अति लाड करि।
बासर बिताय पंद्रह प्रमित बिदा करिय हित अमित धरि॥१६॥

विक्रम संवत् के उसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ पच्चीस के ज्येष्ठ माह में मारवाड़ के राजा विजयसिंह का पाटवी पुत्र फतहसिंह विवाह करने को कोटा गया। महाराव हाड़ा की पुत्री और उदयपुर के महाराणा जगतसिंह की दोहिती (बेटी की बेटी) से पाणिग्रहण कर दूल्हे राजा वापस जोधपुर लौटते हुए (रास्ते में पड़ती) बूंदी आए। यहाँ हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने कुमार फतेहसिंह को आत्मीय आवभगत के साथ कुछ दिन रखा। पूरे पन्द्रह दिन बूंदी के प्रवास में बिता कर जब कुमार जोधपुर जाने को रवाना हुआ तो हाड़ा राजा ने मारवाड़ का हित देखते हुए बड़े स्नेह के साथ उसे विदा किया।

याहि बरस आसाढ बिसद अष्टमि रविबासर,
सुपहु भुजिष्या सूनु नाम सिवसिंह बीरबर।
मरुपति बिजय खवासि सुता आव्हय पद्मावति,
जाय नगर जोधपुर परनि आयो जिम रतिपति।
मेवार मुलक इत दंद मचि लेन दुरित फल समय लहि।
अरिसिंह रान सन भट अखिल फुट्टे कछुक फरेब कहि॥१७॥

इसी वर्ष के आषाढ माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि तदनुसार रविवार के दिन हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की पासवान के वीर पुत्र शिवसिंह को जोधपुर से विवाह का बुलावा आया। शिवसिंह ने तब जोधपुर जाकर राजा विजयसिंह की खवासिन की पद्मावती नामक पुत्री से विवाह किया और वह कामदेव रूप दूल्हा वापस बूंदी आया। मेवाड़ में इसी समय उपद्रव होने आरंभ हुए। पाप का फल तो उचित समय पर मिलना ही था। नये महाराणा बने अरिसिंह से उसी के सामन्त विमुख हो गये यह कहते हुए कि हमारे साथ छल हुआ है।

दोहा

उद्धत गिनि अरिसिंह कौं, मिलि सुभटन किय मंत्र।
काहूको इक आनि सिसु, सो किय रान स्वतंत्र॥१८॥
रानी झल्लिय के उदर, राजसिंह सन जात।
रतनसिंह अभिधान यह, किन्नों इम विख्यात॥१९॥

झल्ला भट जसवंत निज, गोघुंदा पुर नाह॥
तनया ब्याहिय अग्ग तस, राजसिंह हित राह॥२०॥
सुत ताको यह थप्पि सिसु, रतनसिंह रचि नाम॥
मातामह जसवंत हुव, करन मूढ अघ काम॥२१॥

जब मेवाड़ के सामन्तों ने देखा कि अरिसिंह बहुत उद्धत हो गया है तो उन्होंने आपस में मंत्रणा की और कहीं से एक बालक लाये और उसे महाराणा के रूप में स्थापित कर दिया। उन्होंने कहा कि यह बालक महाराणा राजसिंह की झाला वंशीय रानी के गर्भ से जन्मा है और इसका नाम रत्नसिंह है उन्होंने ऐसा प्रसिद्ध कर दिया। पूर्व में महाराणा राजसिंह के ही एक सामन्त और गोगुन्दा के जागीरदार झाला जसवंतसिंह ने अपना हित देखते हुए अपनी पुत्री का विवाह महाराणा(राजसिंह) के साथ करवाया था। मेवाड़ के सामन्तों ने उसी झाली रानी के गर्भ से उत्पन्न रतनसिंह को महाराणा की औरस सन्तान होने के नाते महाराणा का असली उत्तराधिकारी घोषित किया। इस रतनसिंह के नाना जसवंतसिंह झाला की भी मति मारी गई कि उसने भी इस पाप से भरे कार्य में सहभागिता निभाई।

षट्पात्

गोघुंदापति झल्ल मिल्यो जसवंत मंदमति,
सगताउतन समेत पाप मुहुकम भिंडूर पति।
देवगढप जसवंत सूनु राघव निज संजुत,
फतैसिंह चहुवान द्रंग कुट्ठार ईस द्रुत।
बेघम पुरेस भट मेघ बलि अग्रेसर ए पंच हुव।
वय बाल जय किन्नौं अधिप धरि गढ कुंभलमेरु धुव॥२२॥

गोगुन्दा के मंदमति जागीरदार झाला जसवंतसिंह से सारे शक्तावतों के साथ भींडर का जागीरदार मुहुकमसिंह शक्तावत जा मिला। इसी तरह देवगढ़ का चूंडावत जागीरदार जसवंतसिंह भी अपने पुत्र राघवदेव के साथ इस मंडली में आ मिला। यह देख कर कोठारिया का स्वामी चहुवान फतहसिंह और बेगूं का जागीरदार मेघसिंह भी इस समूह में आ मिले। इस तरह मेवाड के इन उपरोक्त पाँचों मुख्य सामन्तों ने मिलकर बालक रत्नसिंह को महाराणा

घोषित किया और उसे कुंभलगढ़ के दुर्ग में स्थापित कर दिया।

दोहा

देवपुरा हो तँहँ बनिक, किल्लादार बसंत।
सोहु मिल्यो सिसु माँहिँ सठ, हानि धरम करि हंत॥२३॥

समरसिंह राउल नृपति, दिल्लिय जाय उदग्ग।
भगिनी पृथ्वियराज की, पृथा बिबाह्यो अग्ग॥२४॥

तब ताके दायज दिये, एहु बनिक चहुवान।
रहे हुकम अनुगत सदा, अब पलटे अघवान॥२५॥

इस समय महाराणा अरिसिंह की ओर से कुभंलगढ़ दुर्ग का किलेदार एक बसंतीलाल नामक देवपुरा नियुक्त था। वह भी महाराणा की स्वामिभक्ति छोड़ कर इस नये बालक महाराणा रत्नसिंह के पक्ष में आ मिला। पूर्व में जब चितौड़गढ़ के रावल रत्नसिंह का विवाह दिल्ली में पृथ्वीराज चहुवान की बहिन पृथा से हुआ था। तब उसके डायजवालों (दहेज में दिये जाने वाले) में चहुवानों का एक बनिया भी था। उसके वंशज अब तक महाराणा के खानदान के हुक्म के अधीन रहते आये थे पर यह पापी बसंतीलाल अब महाराणा से विमुख हो गया।

जँहँ रानाँ अरिसिंह नैँ, धरे दम्म कृति लक्ख।
तेहु न दिन्नैं द्रोह तकि, प्रबल बंधि परपक्ख॥२६॥

रायसिंह झाल्ला सुभट, नगर सादड़ी नाह।
देलवाड़ पति झल्ल पुनि, राघवदेव सचाह॥२७॥

पत्रन सन ए दुव मिले, भट लहि कछु सिसु भेट।
उभय रहे अरिसिंह मैं, सलूमरि रु आमेट॥२८॥

इस कुंभलगढ़ दुर्ग में किलेदार देवपुरा के अधिकार में महाराणा अरिसिंह ने बीस लाख रुपये रखे हुए थे। देवपुरा यह रकम देने से भी मुकर गया और उल्टा अधिक मुखर हो प्रतिपक्ष के साथ हो गया। थोड़े दिनों के बाद देलवाड़ा के जागीरदार झाला राघवदेव ने पत्र लिख कर सादड़ी के स्वामी झाला रायसिंह से मंत्रणा की कि अब हमें क्या करना चाहिए? पर अन्तत: एक मत हो ये दोनों भी अपने कुछ योद्धाओं के साथ बालक महाराणा रत्नसिंह के

पक्ष से जा मिले। प्रतिपक्षियों का पलड़ा भारी होता जा रहा था। इधर महाराणा अरिसिंह के पक्ष में मात्र सलूम्बर और आमेट के जागीरदार अर्थात् ये दो सामन्त रह गये।

षट्पात्

उदासीन भट इतर रहे प्रकटन आनिमिख बसि,
कपटबाल लै संग सुभट उतके आयुध कसि।
उदयनैर दिय आनि घेर तोपन कराल घन,
फैरन पर रचि फैर ज्वाल व्याकुल किय पुरजन।
तुट्टत निपान फुट्टत निलय गढन गाढ छुट्टत गहन।
प्राचीन बरहि पुत्रन मनहु तजिय बर्न्हिं बिटपन दहन॥२१॥

शेष सारे सामन्त इस बखेड़े से उदासीन बने रहे वे यह देखते रहे कि देखें आगे क्या होता है? फिर ही हम किसके साथ हैं इसका निर्णय करेंगे! थोड़े दिनों बाद उस (नकली) बालक को साथ ले प्रतिपक्ष वाले सामन्त सज्जित हो कर कुंभलगढ़ से निकले और उन्होंने शीघ्र ही आ कर उदयपुर को घेर लिया। तोपों के धमाकों से इस आक्रमणकारी दल ने शहरपनाह के भीतर बसते नगरवासियों को व्याकुल कर दिया। तोपों के निरंतर गोले बरसाने से जलस्रोत सूखने लगें और उपजलाशय (छोटे) फूटने लगे। उदयपुर के महाराणा के पक्ष के लोगों का धैर्य चुकने लगा। वहाँ ऐसी स्थिति हो गई मानों प्राचीन बर्न्हिं के पुत्रों अर्थात् प्रचेताओं ने विटपों से आच्छादित पृथ्वी को फिर से वृक्षविहीन करने को अग्नि फैलाई हो।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह चरित्रे जट्टरणकूर्म्मविजय सहायार्थबुन्दीन्द्रपूर्व प्रेषित राजकुमाराऽजितसिंह जैपुर निबसन युयुत्सुतन्माधवसिंहाऽवरोधन जट्टजयास्नन्तरनानाविलास विलसन द्विजदयारामकुमारवर्यश्वशुरीभवितुकाम जायसिंहहिसम्बोधन समनन्तरतच्चैत्रपूर्णिमा माधवसिंहमरणपृथ्वीसिंह जयपुरगद्दिकोपविशन विहितव्यवहारौम्मेदसिंहि बुन्द्यागमनराधा स्वदाततृतीया सदासेवि-भ्रातृसंग्रामसिंह महाराजकुमारासजितसिंह कृष्णगढ बिवाहन शुक्रमासलग्न मरुराजविजयसिंह कुमारफतैहसिंह कोटेशसुताविवाहन भौजिष्येय बुंदीन्द्रकुमार शिवसिंह भौजिष्येयीधन्वेश बाखतसिंह हिसुतोद्वहन मेदपा

देशस्वामिसामंत विग्रहवर्द्धनराणाराजसिंह व्याजपुत्र रत्नसिंह कुम्भिलमेरुदुर्ग प्रकटीभवनगोघुन्देशझल्ला जसवंतसिंह स्वकुल सहित भिण्डरेश-सगताउत्तमुहुःकर्म्मसिंहसपुत्र देवगढेशचुण्डाउत्त जसवन्तसिंह कुष्ठारेश-चाहुवाणफतेसिंहबेघमेशचुंडाउत्तमेघसिंहदुर्गास्थ्यक्षवणिग्वसन्तरामा स्सदिच्छद्मशिशुप्राकट्यसेवनसादड़ीशझल्लरायसिंहदेलवाड़ेश झल्लराघवदेव प्रच्छन्न शिशुस्वामित्वा स्वीकरणोदयपुरचमूवेष्टन तत्तोपरणराणा-रिसिंहव्याकुली भवनं षट्पञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३३७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के, उम्मेदसिंह चरित्र में, जाट के युद्ध में सहायता देने के अर्थ बून्दी के पति के पहिले भेजे हुए राजकुमार अजीतसिंह का जयपुर में रहना और उस युद्ध की इच्छावाला को माधवसिंह का रोकना, जाट से विजयी होने के बाद अनेक प्रकार के विलास करना और ब्राह्मण दयाराम का कुमार के श्वसुर होने की कामनावाले जयसिंह के पुत्र माधवसिंह को समझाना, उस सम्वत् के पूर्ण होने के बाद चैत्र मास की पूर्णिमा को माधवसिंह का मरना और पृथ्वीसिंह का जयपुर की गद्दी पर बैठना, उचित व्यवहार के साथ उम्मेदसिंह के पुत्र का बून्दी आना और वैशाख सुदि तीज को सदैव सेवा करने वाले भाई संग्रामसिंह और महाराज कुमार अजीतसिंह का कृष्णगढ विवाह करना, ज्येष्ठ मास के लग्न पर मारवाड़ के राजा विजयसिंह के कुमार फतहसिंह का कोटा के पति की पुत्री से विवाह करना और बून्दी के पति के दासीसुत शिवसिंह का मारवाड़ के पति बखतसिंह के पुत्र विजयसिंह की पासवान की पुत्री से विबाहना, मेवाड़ देश में स्वामी और उमरावों में विरोध बढ़ना, राणा राजसिंह के झूठे पुत्र रत्नसिंह का कुंभलमेर के किले में प्रसिद्ध होना, गोगुंदा के पति झाला जसवन्तसिंह, अपने कुल सहित भींडर पुर के पति शक्तावत मुहुकमसिंह, पुत्र सहित देवगढ के पति चूंडावत जसवन्तसिंह, कोठारिया के पति चहुवान फतहसिंह, बेगूं के पति चूंडावत मेघसिंह और किलेदार बनिया बसन्तराम आदि का छलवाले बालक को प्रकट करना, सेवा करने को सादड़ी के पति झाला रायसिंह, देलवाड़े के पति झाला राघवदेव का छद्म बालक का स्वामीपन स्वीकार करना, सेना से उदयपुर को घेरना और उस तोप युद्ध से अरिसिंह के व्याकुल होने का छप्पनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सैंतीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इत हुलकर तक्कू अडर, आयो हिंदुसथान।
आगम पख फग्गुन असित, सक अतिकृति धृति मान॥१॥
तक्कू पँहँ बुंदीस तब, सब टींका विधि साजि ।
पठई कुल पहिरावनी, बलि भूखन गज बाजि॥ २॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पच्चीस के फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष में तक्कू होल्कर अपनी सेना सहित उत्तर दिशा के हिन्दू राजाओं के राज्यों की ओर बढ़ा। बूंदी के हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने पूरे विधि-विधान से टीका की सामग्री भिजवाई थी जब वह तक्कू पाट कर बैठा था। इस सामग्री में हाथी, घोड़े, आभूषण सहित सिरोपाव भी थे अर्थात् पूरी पहरावनी थी।

षट्पात्

याहि बरस बिच अजितसिंह बुन्दीस कुमारहु,
सुनि जनपद निज सोर बित्त लुट्टन मैंनन बहु।
चढ्यो कुपित चहुवान जनक आदेस पाय जँहँ,
बारह खेटन बिंटि ताप दिय अतुल उग्र तँहँ।
करि कैद अखिल तसकर कुमति कारा बिच डारिय कुमर।
जय द्विरद बंधि आलान भुज धन्य धन्य हुव सकल धर॥३॥

विक्रम संवत् के इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ पच्चीस में हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के पाटवी कुमार अजीतसिंह ने अपने जनपद में मचता हुआ हाहाकार सुना कि मीणा लोग धन लूट कर ले जाते हैं। अपनी प्रजा का ऐसा क्रन्दन सुनते ही सहायता को यह कुपित कुमार अपने पिता राजा की आज्ञा ले कर चला। वीर कुमार ने सेना सहित जा कर मीणाओं के बारहों खेड़ों को घेर कर अपना अतुलनीय भय फैलाया। राज के सारे अपराधियों, तस्करों को बंदी बनाकर बूँदी के कारावास में ला डाला। इस कार्य को सम्पन्न कर जैसे कुमार ने अपने बलवान हाथों रूपी आलान (हाथी बांधने का थंभा) से विजय रूपी हाथी को ला बांधा। इससे उसके बलवान भुजों को सारी प्रजा नें 'धन्य-धन्य' कहा।

दोहा

इंद्रकुमरि अरु ब्रजकुमरि, जननि भुजिष्या जात।
दुहिता निज बुन्दीस दुव, व्याहिय इत बिख्यात॥ ४॥
अजितसिंह मरु ईस को, सुत लघु हो जु किसोर।
सुभमति तास खवासि सुत, जैतसिंह रन जोर॥५॥
बुल्लि राजगढसन बिदित, वाहि अतुल उच्छाह।
दुहिता ब्रजकुमरि सु दई, रचि बिबाह हित राह॥६॥
नगर करोली नृप तनय, कुसलसिंह दासेय।
सुत ताको जयसिंह सो, पुनि बुल्ल्यो प्रभु प्रेय॥७॥

हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की पासवान से उत्पन्न दो पुत्रियाँ थी। जिनमें से एक का नाम इन्द्रकुमारी और दूसरी का नाम ब्रजकुमारी था। जब ये विवाह योग्य वय की हुई तो कुमार ने उनका विवाह करवाया। जोधपुर के राठौड़ राजा का छोटा पुत्र जैतसिंह जो शुभमति नामक खवासिन के गर्भ से उत्पन्न था, उसे राजगढ़ से बुला कर हाड़ा कुमार ने ब्रजकुमारी का विवाह पूरी धूमधाम से सम्पन्न करवाया। करोली के राजा कुशलसिंह का दासी पुत्र जो जयसिंह नामक था वह अपने स्वामी का प्यारा था।

इंद्रकुमरि ताकँहँ दई, अखिल सिद्धि अवधान॥
दायज द्रव्य अनेक दिय, चित्त उदधि चहुवान॥ ८॥
बहुरि बहादुरसिंह अरु, स्वीय कुमर सिरदार॥
गग्गराड़ व्याहे उभय, लगन रीति इक लार॥ ९॥
बिक्रम सक पंचीस धृति , पंचमि माघ बलच्छ॥
दनुजपुरोहित बार दिन, उदय रासि लिय अच्छ॥१०॥
बखतसिंह रावत सुता, चंद्रकुमरि अभिधान॥
परनि बहादुरसिंह लिय, तिय झल्लिय मतिमान॥११॥
जोराउर राउत सुता, अभयकुमरि गुन फार॥
दुलहनि अंचल गंठि दै, सो व्याहिय सिरदार॥१२॥

उस जयसिंह को बूंदी बुलवा कर उसके साथ इन्द्रकुमारी का विवाह

करवाया और चहुवान ने उचित दायजा दिया, जिसमें कई चीजें थीं। हाड़ा राजा ने अपनी इन दो पासवान पुत्रियों के अतिरिक्त अपने दोनों छोटे पुत्रों बहादुरसिंह और सरदारसिंह का एक ही लग्न पर गग्गराड़ (गर्गराट) में विवाह रचवाया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पच्चीस के माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि तदनुसार शुक्रवार के दिन अच्छी राशि देख कर शुभ मुहूर्त में रावत झाला बखतसिंह की पुत्री चंद्रकुमारी के साथ तो कुमार बहादुरसिंह को ब्याहा और रावत जोरावरसिंह की गुणवती पुत्री अभयकुमारी के साथ कुमार सरदारसिंह का गठजोड़ा जोड़ा।

कुमर बहादुरसिंह हित, दयो तदनु नृप दाय।
नगर गोठड़ा जुत पटा, असी सहँस मित आय॥१३॥

सुत कनिष्ट सिरदार हित, दिय तदनंतर दाय।
पुरी दुधारी जुत पटा, अग्र लिखित मित आय॥ १४॥

सक अतिकृति धृति प्रमित सम, पिक्खि उचित नृप पास।
थंभायत छट्ठो कियउ, मानिकराम सु व्यास॥१५॥

प्रथम पुरोहित व्यास पुनि, ए उत्तम दुव जानि।
त्यौंहि चारन भट्ट ए, दुव मध्यस्थ बखानि॥१६॥

बारिय तिम ड्रम्मामि बलि, उभय अधम ए आहि।
बहुत वृत्ति बुंदीस की, थंभायत खट चाहि॥१७॥

विवाह के बाद हाड़ा राजा ने अपने छोटे पुत्र कुमार बहादुरसिंह को दाय भाग में गोठड़ा नगर सहित उस परगने की अस्सी हजार प्रतिवर्ष की आमदनी वाली जागीर का पट्टा दिया। इसी तरह सबसे छोटे कुमार सरदारसिंह को पिता राजा ने दुधारी के परगने की जागीर जिसकी वार्षिक आय अस्सी हजार रुपये थी का पट्टा दाय भाग में दिया। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ पच्चीस में ही हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने मानिकराम नामक व्यास को बूंदी का छठा नेग पाने वाला बनाया। तब से बूंदी को पुरोहित और व्यास ये दो उत्तम ब्राह्मण जाति के लोग मध्यम जाति के चारण और भाट सहित अधम जाति के बारी (नाई) और ढोली ये कुल छः जाति वाले बूंदी के थंभायत (नेग पाने वाले) बने। तभी से ये छः जाति वाले बूंदी के राजघराने से नेग पाते हैं।

षट्पात्

रान भटन इत रचि फरेब रतनेस रान किय,
सजि प्रचंड निज सेन उदयपुर आनि बिंटि लिय।
अधिक रान अरिसिंह जंग सन हुव व्याकुल जब,
जालम झल्ला करि वकील पठयो अवंति तब।
अरु अगरचंद महता बनिक इन दोउन द्रुत जाय तित।
पठवाये अरज श्रीमंत पैंहँ लिय आदेस सहाय हित॥१८॥

उधर मेवाड़ में सामन्तों के एक समूह ने फरेब रच कर रत्नसिंह को उदयपुर का नया महाराणा घोषित किया। यही नहीं उन्होंने प्रचंड सेना सज्जित कर उदयपुर नगर को आ घेरा। इतनी बड़ी संख्या में आई फौज को देख कर जब महाराणा अरिसिंह परेशान हो गये तो उन्होंने जालिमसिंह झाला को अपना वकील (प्रतिनिधि) बना कर उज्जैन भेजा और उसके साथ मेहता अगरचंद को किया। दोनों ने शीघ्र ही उज्जैन पहुँच कर श्रीमंत पेशवा के पास उदयपुर का अनुरोध भिजवाया और उससे सहायता का आश्वासन ही नहीं आज्ञा पाई।

दोहा

सुनत अरज श्रीमंत लिखि, दिय कग्गर उज्जैन।
राघव दोला रान की, करहु भीर सह सैन॥१९॥

पायगिया मरहट्ठ तब, राघव लखि पहु पत्त।
जिमहिँ बीर दोला जवन, ते दुव सज्जिय तत्त॥२०॥

पंद्रह सहँस अनीक पति, दोउन सुकर दिखाय।
झल्ला जालमसिंह लै, हंकिय रान सहाय॥२१॥

उदयपुर के वकील का निवेदन सुन कर तुरन्त श्रीमंत ने एक पत्र लिख कर उज्जैन भेजा जिसमें राघवराव और दोला को उदयपुर के महाराणा की सहायता हेतु सेना ले कर जाने का आदेश था। पायगिया मराठा राघवराव अपने स्वामी का पत्र पाते ही सहायता देने को तत्पर हुआ। इसी तरह यवन दोला भी युद्ध में जाने के लिये सज्जित हुआ। दोनों अपने साथ पन्द्रह हजार की संख्या वाली सेना जो रणभूमि में शत्रु को अच्छे हाथ दिखाने वाली थी को साथ ले कर जालिमसिंह के संग उदयपुर के महाराणा अरिसिंह की सहायता करने को रवाना हुए।

षट्पात्

अग्गैं नृप अनिरुद्ध समय झल्ला भट माधव,
तजि जनपद गुजरात इत सु आयो चलि अति जव।
सब कुटुंब निज संग द्विरद सिविका रथ जेवर,
बुंदिय आवत बेर गयो सम्मुह नृप संभर।
सिर कर लगाय मिलि प्रीतिसन रक्खिय तब कछु दिन रहिय।
पुनि जान अरज किय तब सुपहु डेरा जाय रु सिक्ख दिय॥२२॥

पूर्व में जब बूंदी में हाड़ा अनिरुद्धसिंह राजा थे तब उनके समय में माधवसिंह झाला नामक एक सामन्त अपना गुजरात का वतन छोड़ कर इधर आया। इस समय वह हाथी, घोड़े, रथ, पालकियों में अपने पूरे कुटुम्ब सहित सवार था। झाला जब अपने काफिले के साथ बूंदी के समीप पहुँचा तो हाड़ा राजा चल कर उसके स्वागत हेतु सामने गया। अपने दोनों हाथों को मस्तक से छुआ कर उसका अभिवादन स्वीकार किया अर्थात् इतनी इज्जत दे कर हाड़ा राजा झाला माधवसिंह को अपने यहाँ बूंदी लाया और उसे कुछ दिन अपनी राजधानी में अतिथि बना कर रखा। जब थोड़े दिनों बाद झाला माधवसिंह ने विदाज्ञा चाही तो हाड़ा राजा ने उसके शिविर में जा कर विदाज्ञा दी।

दोहा

कोटा माधव झल्ल गय, तदनु दिष्ट अनुसार।
रामसिंह कोटेस यह, रक्खिय सह सतकार॥२३॥
रामसिंह जाजव मर्‌यो, भीम भयो जब भूप।
बानैंहू माधव यहै, रक्ख्यो हित अनुरूप॥२४॥

यहाँ से आगे चल कर माधवसिंह झाला कोटा गया। यहाँ उसे भाग्य के बल पर रामसिंह जैसा कोटा का राजा मिला जिसने उसे सम्मानपूर्वक अपने यहाँ रखा। जब राव राजा रामसिंह जाजवा नामक गाँव की रणभूमि में मारा गया तो उसका उत्तराधिकारी भीमसिंह कोटा का राजा बना। इस राजा भीमसिंह ने भी अपना हित सोच कर माधवसिंह झाला को पूरे आदर के साथ अपने यहाँ रखा।

पादाकुलकम्

माधव के सुत मदनसिंह हुव, दुज्जनसल्ल सु सचिव किन्न धुव ॥
दुज्जनसल्ल मिच्चु जब पायो, तिहिं अनता सन अजित बुलायो ॥२५ ॥
पृथ्वीसिंह मदन झल्ला सुत, सत्रुसल्ल मन्न्यो सु मोद जुत ॥
सत्रुसल्ल बिन सुत बपु तजि दिय, तब तस अनुज गुमान पट्ट लिय ॥२६ ॥
पृथ्वीसिंह झल्ल सुत जालम, यह क्हैहैं जाहिर अब आलम ॥
ताकै कछु कोटापति सौं तब, अनख भई सु रह्यो न तत्थ अब ॥२७ ॥
छोरि गुमानसिंह कोटा पति, उदयनैर आयो प्रपंच मति ॥
सु अरिसिंह रानहु सनमान्यों, अतिहित जाय समुख पुर आन्यौं ॥२८ ॥

माधवसिंह झाला के एक पुत्र मदनसिंह नामक था उसे बाद में कोटा के राजा दुर्जनसाल ने अपना सचिव बनाया। जब राजा दुर्जनसाल का देहावसान हुआ तब अंता नगर से अजीतसिंह को बुला कर कोटा का राजा बनाया गया। इसके बाद कोटा का राजा शत्रुसाल बना। इस राजा ने माधवसिंह झाला के पुत्र मदनसिंह झाला के बेटे पृथ्वीसिंह को अपना सचिव मान कर आदरपूर्वक अपने यहाँ रखा। जब राजा शत्रुसाल निःसन्तान मर गया तब उसके छोटे भाई गुमानसिंह ने कोटा की गद्दी संभाली। इसका समकालीन पृथ्वीसिंह झाला का पुत्र जालिमसिंह झाला की कोटा के राजा से थोड़ी अनबन हो गई तो उसने कोटा राज्य को त्याग दिया। वह राजा गुमानसिंह का सामन्त पद छोड़ कर उदयपुर आ गया। यहाँ आने पर महाराणा अरिसिंह सम्मान पूर्वक उसके सम्मुख गये और उसे लाकर अपने यहाँ रखा।

तखतसिंह जयसिंह रान सुव, ताके सुत अज्ञात नाम हुव ॥
ताकी सुता व्याहि जालम कँहँ, इम सनमानि रान रक्खिय तँहँ ॥२९ ॥
दयो राज्य उपटंक मुदित मन, पुनि पुर चित्ताखेड़ परग्गन ॥
सो जालम यँहँ रान सहायक, लै मरहट्ठ कटक रन लायक ॥३० ॥
छोरि अंवति स्वामि हित छायो, अगरचंद महता जुत आयो ॥
अगरचंद को जनक अग्ग जब, बीकानैर नृपहिँ बिख दै तब ॥३१ ॥
मंडिलगढ़ तिय जुत भजि आयो, ताको सुत यह रान बधायो ॥
इत रानहु रन हित कटि बंधी, रक्खे जवन सहँस खट संधी ॥३२ ॥

महाराणा अरिसिंह ने पूर्व महाराणा जयसिंह के पुत्र तखतसिंह के बेटे जिसका नाम मालूम नहीं हो सका (ग्रंथकार का कथन) उसकी बेटी के साथ जालिमसिंह झाला का विवाह करवाया। यहीं नहीं इस झाला को चित्ताखेड़ा का परगना जागीर में देकर राज की पदवी दी। यही कारण रहा कि वह जालिमसिंह झाला महाराणा का सहायक बना और युद्ध में सहायता के लिए मराठों की सेना लेकर आया। वह उज्जैन से अगर्चंद मेहता के साथ वापस उदयपुर आया। इस अगरचंद के पिता ने जब बीकानेर के राजा को जहर दिया था, तब वह डर के मारे बीकानेर से भाग कर अपनी पत्नी सहित माँडलगढ़ में आ कर रहने लगा था। उसी मेहता के पुत्र अगरचंद को उदयपुर के महाराणा ने सम्मान देकर अपने यहाँ रखा। इस बीच महाराणा अरिसिंह ने अपने हित की सोच कर छः हजार सिंधी यवनों को अपनी फौज में रखा ताकि कठिन अवसर पर सहायता मिल सके।

दोहा

आये दल उज्जैन तैं, सुनि मरहट्ठ सहाय।
पुर तैं रानहु पिल्लयो, दल निज जित्तन दाय॥३३॥

इधर महाराणा ने जब यह समाचार सुना कि उज्जैन से मराठा सेना मेरी सहायता को आ पहुँची तो महाराणा ने नगर के भीतर से अपनी सेना को भेजा ताकि मराठा सेना के साथ मिलकर प्रतिपक्षियों पर विजय प्राप्त की जा सके।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे हुलकरत क्रूदगागमन बुन्दीन्द्रतत्सत्करणमहाराजकुमाराऽजितसिंह मैणागणविध्वंसनरावराड्भौजिष्येयीसुताद्वय भौजिष्येयरठ्ठोड़जैतसिंह यादवजयसिंहविवाहनराजकुमारबहादुरसिंहसरदारसिंह गर्गराटोद्वाहना-ऽनन्तरकुमारद्वयदायविभाजनव्यासमाणिक्यरामपरस्परभिक्षुकपञ्चक समान सन्मन नच्छलबालसेनावेष्ठनव्याकुलराणाऽरिसिंह श्रीमन्त सहाय-प्रार्थनझ ल्लजालमसिंह बणिगगरचन्द प्रेषणज्ञाततद्विज्ञप्तिपत्र श्रीमन्त महाराष्ट्रराघव यवनदोला ऽरिसिंहसहायप्रस्थापनझल्लजालमसिंहप्रपिता-महाऽऽगमाऽऽदिपूर्वोदन्तवर्णनवणिगगरचन्द्रजनकम हापापत्व सूचन समात्त श्रीमन्त सहायराणाऽरिसिंह स्वसैन्य प्रेषणं सप्त पञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३३८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, होल्कर तक्कू का उत्तर दिशा में आना और बून्दी के पति का उसका सत्कार करना, महाराज कुमार अजीतसिंह का युद्ध में मीणों को मारना और रावराजा की दो पासवान की पुत्रियों को पासवानिये राठौड़ जैतसिंह और जादव जयसिंह को विवाहना,, राजकुमार बहादुरसिंह और सरदारसिंह को गर्गराट पुर में विवार करने के बाद भाई बंट देना और व्यास माणिकराम को परस्पर पाँच याचकों के बराबर मानना, झूठे (फरेबी) बालक की सेना से घिर कर राणा अरिसिंह का श्रीमंत से सहायता के अर्थ प्रार्थना करना और झाला जालिमसिंह और महता अगचन्द को भेजना, इनकी अरजी जानकर श्रीमंत का मराठा रघू और दोला मियाँ को अरिसिंह की सहायता में भेजना, झाला जालिमसिंह के प्रपितामह के आने आदि पहिले के वृत्तान्त का कहना और बनिये अगरचन्द के पिता के महापाप की सूचना करना, श्रीमंत की सहायता पाकर राणा अरिसिंह का अपनी सेना भेजने का सत्तावनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अड़तीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

हरिगीतम्

पुर सलूमरि पति भीम भ्रात पहाड़ लै दल निक्खस्यो।
अरु फतैसिंह हु चोंडहर आमेटपुर पति उल्लस्यों॥
घाणोर पति रट्ठोर बीरमदेव संगहि सज्जयो।
रट्ठोर अक्खयसिंह तिम बधनोर पुर पति गज्जयो॥ १॥
बनहड़ापति नृप रायसिंहहु रान बंसिय उज्झल्यो।
उम्मेद साहिपुरेस भूप सुजान बंसिय उज्जल्यो॥
बिंझोलि पति सुभकर्ण त्यौं परमार असिबर संग्रह्यो।
बलि चौंडबंसिय भैंसरोर पुरेस मानहु उम्महयो॥ २॥

हे राजा रामसिंह! तब नगर के भीतर से महाराणा की सेना लेकर सलूम्बर के स्वामी भीमसिंह चहुवान का छोटा भाई पहाड़सिंह युद्ध के मोर्चे पर जाने को निकला। वहीं चूंडा का वंशज आमेट का जागीरदार फतहसिंह भी युद्ध में जाने के उत्साह से प्रफुल्लित सा मोर्चे की ओर बढ़ा। इसके साथ घाणोर

(घाणेराव) का स्वामी राठौड़ वीरमदेव भी चला। बदनोरपुर का जागीरदार अक्षयसिंह राठौड़ भी गर्जना करता बढ़ा तो बनेड़ा का राजा रायसिंह राणावत भी बढ़ा। वहीं सुजानसिंह का वंशज और शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह भी युद्ध में जाने को रवाना हुआ। बिजोलिया के स्वामी परमार शुभकरण ने भी अपनी तलवार संभाली तो साथ में चूंडा का वंशज भेंसरोड़ का जागीरदार मानसिंह भी रणोत्साह से भर कर बढ़ा।

इत्यादि सूर सिपाह संधिन लै उदैपुर तैं कढे।
सह झल्ल जालमसिंह दक्खिन बीर वे उत तैं बढे॥
दुहुँ ओर आत अनीक लखि सिसु कौं सहायक लै भजे।
चित्तोरा कौं कछु भेद सौं लहि दुग्गमैं दृढ व्है सजे॥ ३॥
दोला मियाँ मरहट्ठ राघव ए उदैपुर मैं रहे।
छल बाल के प्रतिपाल जे तिनके न नैंक भये चहे॥
ईहि बीच माहजि संधिया पहुँच्यो अवंतिय आनिकैं।
तिहिं जानिकैं सिसु पच्छ के भट भीर लैन प्रमानिकैं॥ ४॥

उपरोक्त सभी सामंत और योद्धा महाराणा की फौज के सिंधी यवन सिपाहियों को अपने साथ ले कर उदयपुर नगर से निकले। वहीं झाला जालिमसिंह के साथ मराठा सेना के वीर उधर से बढ़े। इस दो दिशाओं से सेनाएं आते देख कर बालक रत्नसिंह के सहायक उसे ले कर भागे और चित्तौड़गढ़ के दुर्ग में किसी छद्म के सहारे जा घुसे और वहाँ सज्जित होने लगे। इस समय दोला मियां (यवन) और राघवराव मराठा दोनों उदयपुर में रहे। छल से बनाये हुए बालक महाराणा रत्नसिंह का पालन करने वालों के लिए यह अच्छा हुआ। इसी समय महादजी सिंधिया लौट कर उज्जैन पहुँचा। यह खबर पा कर बालक रत्नसिंह के पक्ष वाले उसकी सहायता पाने की सोचने लगे।

चित्तोर ऊरुज सुरतसिंहहि दे रु लै सिसु कौं चले।
सुनि आय सम्मुह संधिया इन्ह लै गयो सु चहे फले॥
तिन बाल माहजि अंक मैं धरि हो सरण्य यहै कहो।
सुनि यौं उदैपुर दैन की इहिं बत्त माहजि हू चही॥ ५॥
दोला रु राघव हे उदैपुर व्हाँ यहै तिनमैं सुनी।
सिसुपक्ख लग्गिय संधिया अब सेन सज्जहु सौ गुनी॥

हम जाय कैं छल मंत्र मैं तिहिँ लै रु सत्वर मारिहैं॥
गहि बाल जो अरि रावरो तिहिँ कैद आलय डारिहैं॥ ६ ॥

रत्नसिंह के पक्षकारों ने तब चित्तौड़गढ़ वैश्य सूरतसिंह को सौंपा और बालक को अपने साथ ले कर रवाना हुए। उज्जैन की ओर बढ़ते इन लोगों के आने का समाचार पा कर सिंधिया महादजी सामने आया। प्रेमपूर्वक मिल कर इन लोगों को अपने साथ उज्जैन में ले गया। मेवाड़ के इन प्रतिपक्षी सामन्तों ने तब बालक रत्नसिंह को सिंधिया की गोद में बिठाते हुए कहा कि इसे आप अपनी शरण में लें। यह सुन कर महादजी सिंधिया ने उदयपुर देने की बात का प्रस्ताव रखा। दोला यवन और राघवराव दोनों जो उदयपुर में थे उन्होनें यहाँ इस प्रस्ताव की बात सुनी कि बालक रत्नसिंह के पक्षकारों के साथ सिंधिया हो गया है तो वह हमसे सौ गुनी सेना सजायेगा। इसके लिए हम यहाँ से जाते हैं और छल कपट की मंत्रणा के बहाने उस महादजी को शीघ्र ही मार कर वह जो आपका शत्रु बालक (रत्नसिंह) है उसे कारावास में डाल देंगे।

दृढ मंत्र राघव रान कै इत यौं उदैपुर मैं भयो।
सब दच्छ दूतन भेजि कैं यह जानि माहजि हू लयो॥
दोला रु राघव के कुटुंब हुते अंवतिय मैं जहाँ।
करि कैद पुत्र कलत्र कोपित संधिया हु सज्यो तहाँ॥ ७ ॥
यह जानि ये अरिसिंह को दल लै उदैपुर तैं चले।
खुरतार बाजिन मार मत्थ हजार आलुक के हले॥
फहरात लोहित रंग केतन मत्त हत्थिन पैं धरे।
बट अंब जंबु कदंब ज्यौं कुमुदादि अद्रिन पैं खरे ॥ ८ ॥

मराठा राघवराव और महाराणा अरिसिंह के मध्य ऐसी मंत्रणा उदयपुर में हुई पर अपने दक्ष दूतों की सहायता से ये सारी बातें महादजी सिंधिया को उज्जेन में पता लग गई। दोला यवन और राघवराव मराठा के कुटुंबी सभी उज्जैन में थे उन्हें महादजी ने कुपित होकर बंदी बना लिया और अपनी सेना सज्जित की। अपने परिजनों के कैद हो जाने की खबर पा कर इधर उदयपुर से राघवराव और दोला दोनों अरिसिंह की सेना लेकर रवाना हुए। इस सेना के संचलन (विचरण) में घोड़ों के पैरो में लगी खुरतालों से शेषनाग के हजार फणों में हलचल हुई। हाथियों की पीठ पर लगी लाल रंग की पताकाएँ

फहरती हुई ऐसी लगने लगी मानों सुमेरू पर्वत के शिखर कुमुद पर बट, आम, जामुन और कदंब के पेड़ खड़े हों।

डगमग्गि सैलन शृंग त्यौं भर भंग तुट्टन के लगे।
सब अैन संकत सैन हंकत नैन संकर के जगे॥

चढि सिंह कालिय संग चालिय गैन गिद्धनि बित्थरी।
पहुँची अंवतिय यौं चमू अरु हल्ल कित्तन कौं करी॥९॥

उत तैंहु माहजि सज्ज व्है सिसु पच्छ के भट लै चढ्यो।
जिम जेठ सूरज ताव यौं तरकाव तोपन को बढ्यो॥

दुहुँ ओर के रन बाजि कुंजर अब्भ मैं उड़नैं लगे।
खिल सोक गोलन तोक घायल घुम्म लैन घनैं लगे॥१०॥

सेना के विचरण से पृथ्वी कंपायमान हो जाने के कारण डगमगाते पहाड़ों के शिखर भार से टूट कर बिखरने लगे। जहाँ-जहाँ से यह सेना गुजरती वहाँ के घर-घर में भय व्याप्त होने लगा। शंकर की समाधि टूट गई। सिंह पर आरूढ़ हो कालिका महादेव के संग रणभूमि की तरफ बढ़ी। आकाश में गिद्धनियाँ मंडरानें लगीं। ऐसी सेना उज्जैन पहुँची। सभी ओर कोलाहल मच गया। उधर से महादजी सिंधिया बालक महाराणा रत्नसिंह के पक्षकार योद्धाओं के साथ सज्जित हो कर बढ़ा। ज्येष्ठ माह के सूरज के ताव जैसा उत्ताप तोपों का फैला। दोनों ओर से भिड़ंत शुरू हुई। हाथी और घोड़े आकाश में उड़ने लगे। तोपों से छूटते गोलों के समूह से बालक (रत्नसिंह) के पक्ष वाले वीर घायल हो कर रणभूमि में घूमने लगे।

अतलादि भू पुट व्है थरत्थर नीर सिंधुन तैं छल्यो।
दिगधेनु च्यारि हु एन लौं चिकि फेन आनन मैं फल्यो॥

चउसट्ठि जुग्गिनि जंग चत्वर रास मडत रंग मैं।
महती बजावनहारहू कलिकार घुम्मत संग मैं॥११॥

आखाढ मारुत खेह सम्मित धूम छादित लोक भो।
तम थोक रोकन ओक ओकन कोक कोकिन सोक भो॥

जल्ल बात पोमिन पात ज्यौं भुव सेस के सिर मैं नचैं।
कालीय पन्नग भोग पैं जदुनाथ तंडव ज्यौं रचैं॥१२॥

अतल आदि पातालों की पर्तें काँपने लगी जिससे समुद्र का पानी मर्यादा लांघने लगा। दिशाओं की चारों हथनियाँ (दिग्गजों की स्त्रियाँ) हरिणों की तरह चकित हो उठीं और भय के मारे उनके मुख झागों से भर गये। चौंसठ ही योगिनियाँ रणभूमि में आकर नृत्य करने लगीं। महत्ती नामक वीणा के बजाने वाले और कलह कराने वाले नारद मुनि उनके संग घूमने लगे। आषाढ़ माह में चलती आंधियों से रज उड़े वैसी रज उड़ने से पूरा लोक आच्छादित हो गया। जिससे छाये घने अंधेरे के कारण सभी पुरवासी अपने-अपने घरों में दुबके और चक्रवाक पक्षियों की जोड़ी बिछुड़ने से उनमें शोक व्याप्त हो गया। जैसे हवा चलने से पानी की सतह पर खिली कुमुदनी (पद्मिनी) हिलती है उसी तरह शेषनाग के फणों पर टिकी हुई पृथ्वी हिलने लगी अथवा कालीय नाग के फणों पर श्रीकृष्ण ने नृत्य किया था वैसे (पृथ्वी) नाचने लगी।

हनुमान पावक लंक ज्यौं दिय ज्वाल ज्यौं नभ बित्थरैं।
नगरी अंवतिय मैं हु मानव जूह रक्खस ज्याँ जरैं॥
सिप्र नदी लगि तोय तुट्टन नक्र झख गन आवटे।
जिम लोह कप्पर तैल मैं गन पूप के खग लावटे॥१३॥

इम होत लोलन जंग गोलन सेन माहजि की लची।
छलबाल की तब फोज होय हरोल रारि भली रची॥
कछु काल तोपन ज्वाल यौं रचि बग्ग बाजिन की लई।
दुहुँ ओर धीर प्रबीर मिलि भट भीर सस्त्रन की भई॥१४॥

जिस प्रकार हनुमान ने लंका दहन के समय वहाँ पर अग्नि फैलाई थी वैसी ही ज्वालाएँ इस रणभूमि के आकाश तक में छाने लगीं जिससे लंका में राक्षसों की तरह उज्जैन में मनुष्यों के समूह जलने लगे। तोपों के जलते गोलों से शिप्रा नदी का पानी भाप बन उड़ने लगा और नदी के जलचर मगरमच्छ आदि उबलने लगे जैसे कड़ाह के उबलते तेल में बहुत सारे पूए या लावा पक्षी उबलते हों। इस तरह के चपल गोलों से होते भीषण युद्ध से महादजी सिंधिया की सेना लचकी (भागी) तब रत्नसिंह के पक्ष के योद्धाओं ने हरावल में बढ़ते हुए अच्छे हाथ दिखाये अर्थात् कामयाब युद्ध किया। कुछ समय तक तोपें गर्जना करती रही फिर दोनों पक्षों के वीरों ने अपने - अपने घोड़ों की लगाम खींच कर नई बाजी रची और दोनों ओर के योद्धा आपस में भिड़ पड़े जिससे रणभूमि में शस्त्रों की भीड़ लग गई।

छलबाल को दल संधिया लहि बीच सत्रुन कैं भयो।
बरमाल लै ततकाल अंबर जाल अच्छरि को छयो॥
कटि मुंड तुंड कलाप कंठ ललाट के किरने लगे।
बलि मत्त पीवन रत्त फेरव फेरवी फिरनैं लगे॥१५॥
भट ऐंचि कानन देत बानन लेत प्रानन सोधि कैं।
अति कोप छुट्टत रोप फुट्टत टोप संजुत गोधिकैं॥
तरवारि बाहुल लग्गि होत उपेंद्र मंदिर झल्लरी।
नस जाल लुंबत देह दारित जानि अंबर बल्लरी॥१६॥

तभी रत्नसिंह के पक्षकारों की सेना को अपने साथ ले सिंधिया महादजी शत्रुओं के मध्य गया। इसे देख कर आकाश में वरमाला लिए अप्सराओं के समूहों का जाल सा तन गया। रणभूमि में तभी कई वीरों के मस्तक, मुख, ललाट, कट कर गिरने लगे तो कहीं कटे हुए हाथियों के कलावे गिरने लगे। यह देखकर मस्ती से रुधिर पीने को उतावले गीदड़ और स्यालियों (मादा गीदड़) ने रणभूमि में इधर -उधर चक्कर काटने शुरू किये। वीर आपस में एक दूसरे का संधान कर अपने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचते हुए बाण छोड़ने लगे। अत्यन्त कोप के साथ छोड़े गये बाणों से शत्रु वीरों के शिरस्त्राणों सहित ललाट बेधे जाने लगे। तलवारें शत्रु के बाहुलों (कवच के दस्तानों) पर टकराती % झन -झन % की ध्वनि करती यों बजने लगीं मानों विष्णु भगवान की आरती के समय मन्दिर में झालरें घनघना रही हों। योद्धाओं के कटे हुए शरीरों से लटकता उनकी नसों का समूह यों प्रतीत होता मानों आकाश वल्लरी (लता) के तन्तु हों।

उलटैं तुखार प्रहार तैं असवार ऊरध उच्छटैं।
फरकैं कलेज रु फिप्फ फल तैं द्वार छत्तिन के फटैं॥
घटके बनैं बटके लगे झटके उडैं भट के नये।
लटके परैं अटके रकाबन रूप के नट के भये॥१७॥
कटि धार मारन भद्र बारन मत्थ मुत्तिय उच्छलैं।
घन कल्प के घर का महा जरका मनों करका चलैं॥
भहनात गोलिन ब्रात के ऋतुराज मैं अलिराज ज्यों।
असि केक मारत झुंड झारत दब्बि तित्तिर बाज ज्यों॥१८॥

कहीं तलवारों के प्रहार खा कर घोड़े उलटने लगे और सवार ऊपर की ओर उछलने लगे तो कहीं तलवार की धार से शत्रु योद्धाओं के छाती फटे कपाटों से उनके फड़कते कलेजे और फेंफड़े बाहर पड़ने लगे। वीरों के खड़गों के वार से शत्रु कट कर टुकड़े- टुकड़े होने लगे। कई घायल वीर घोड़े की रकाब में पाँव फँस जाने से लटकने लगे मानों वे नट का नया खेल रच रहे हों। तलवारों की धारों से भद्रजाति के हाथियों के मस्तक कट कर मोती यों उछलते हैं मानों प्रलय के मेघ के घर से महाझड़ (लंबी झड़ी)के बड़े- बड़े ओले गिरते हों। रणभूमि में बन्दूकों से चली गोलियों के भनभनाते समूह यों लगतें हैं मानों वसंत ऋतु में भँवरे गुँजार कर रहे हों। कई वीर अपना घोड़ा बढा कर शत्रु पर तलवार का प्रहार कर उसे यों दबाने लगे मानों बाज झपट कर तीतर पक्षी को दबोच रहा हो।

छिकि पार तोमर लार लोहित धार हत्थिन तैं परैं।
अरुनोदका रस की नदी जनु मंदराचल तै ढरैं॥
ध्वजदंड खंड उडैं अनेक मयूर सावन मास ज्यों ।
हय जीन ज्वालन मैं जरैं दव जेठ पब्बय घास ज्यों ॥१९॥
फटि घाय सोनित गैन मै चढि जात जावक जंत्र ज्यों।
भखि प्रेत बीरन के बसा गल अैंचि डारत अंत्र ज्यों॥
अति जोर तै दुहुँ ओर घोर कटार कंकट पै बजैं।
हमगीर धीरन को बढैं तँहँ नीर भीरुन को लजैं ॥२०॥

रणभूमि में हाथियों को बेधते हुए वीरों के भालों स रक्त की धार यों बह निकलने लगी मानों मंदराचल पर्वत से लाल रंग की अमरस नदी फूट रही हो। रणभूमि में पसरी अग्निज्वाला में घोड़ों के जीन %फर्र फर्र% यों जलने लगे मानों ज्येष्ठ माह में लगी आग में किसी पर्वत पर सूखी घास जल रही हो। कहीं पर घाव लगने से वीरों के लहू की धाराएँ यों ऊपर की और उछलने लगीं मानों फव्वारे के यंत्र से फुहारें छूट रही हों। रणभूमि में मृत वीरों की चर्बी खा कर उनकी आँतें प्रेत अपने गले में पहनने लगे। दोनों ओर से योद्धाओं द्वारा चलाई गई कटारें शत्रुओं के कवचों पर बजने लगीं। यह सब अर्थात् ऐसी भीषण मारकाट को देख कर जहाँ धीर वीरों का पराक्रम बढ़ने लगा वहीं कायरों का पानी उतरने लगा।

असवार केक उड़ाय अब्बन हत्थि होदन पैं अरे।
पवमान के रय भान के हय मानसोत्तर ज्यों खरे॥
प्रसरैं फुलिंग झरै सु पावक हेति हेतिन सों घसैं।
लगि अंत लुंबत पंसुली जनु नाग चंदन पै लसैं ॥२१॥
गिरि ढाल लोहित ताल चक्र कुलाल के निभ के भ्रमैं।
तिनपै परैं फटि तुंड के कटि मुंड जे कुट ज्यो जमैं॥
निकसै अलोहित सान लीढक लंब रीढक तोरि कैं॥
मनु फारि सैवल मंजरी सफरी उड़ैं जल छोरि कैं॥२२॥

कई सवार योद्धा हाथियों के होदों पर प्रहार करने को घोड़े इतनी ऊचाँई पर ले गए कि ऐसा लगा मानों पवन के वेग वाले सूर्य के रथ के घोड़े सुमेरू पर्वत पर खड़े हों। योद्धाओं के शस्त्र आपस में टकरा कर अग्नि के स्फुलिंग प्रसरने लगे। कहीं पर वीरों की कटी हुई आँतें उन्हीं की पंसुली में अटक कर यों लटकने लगी मानों चन्दन के पेड़ पर लिपटे सांप लटक रहे हों। रणभूमि में बने रुधिर के तालाब में वीरों के हाथों से छूट कर गिरी हुई ढ़ालें तैरती हुई यों चक्कर लगाने लगी मानों कुम्हार का चाक घूम रहा हो और इन ढ़ालों पर उछल कर वीरों के कटे हुए मुख और मस्तक गिर कर यों जमने लगें जैसे घड़े जमें हुए हों। सान पर तीखी की हुई तलवारें शत्रु को चीरती हुई बिना लहू लगे यों साफ (अछंट) निकलने लगीं जैसे शैवाल के समूह को चीरती मछली पानी से ऊपर उछल कर साफ नजर आती है।

भट सत्थ के दुब हत्थ लै अरि मत्थ यो पटकैं गदा।
सु मकी निकारन लट्ठु मारन की गवारन की अदा॥
भट प्रान छुट्टत स्वास तुट्टत के गिरे हिचकी भरैं।
तुतरात बैन फिरात नैन क़िरात तैं मृग ज्यो करैं॥२३॥
कति झारि कत्तिन को निराय भिराय छतिन को भिलै।
मनु मित्र हंत हवाल के चिरकाल के बिछुरे मिलैं॥
गटिका रु गोलक सिल्प कोबिद केक मंडत चातुरी।
बिसिखा बजार बनाय कैं बिधी सों बसावत जैपुरी ॥२४॥

रणभूमि में कहीं पर वीर अपने दोनों हाथों से पकड़ कर जोर से शत्रु

सिरों पर गदा यों पटकने लगे जैसे गाँव वाले मक्का की फसल निकालने को सूखे हुए पके भुट्टों पर लट्ठ पटकतें हों। कई वीर घायलों के सांस टूटने लगे तो कई हिचकी के साथ रणभूमि में प्राण त्यागने लगे। कई तुतलाते हुए वचन बोलते मरणासन्न योद्धा अपने नेत्र यों फिराने लगे जैसे शिकारी को अपने समक्ष पा कर मृग अपनी आँखे फिराते हैं। कई वीर तलवारों के प्रहार करने के बाद शत्रु योद्धा से सीने मिलाकर यों मिलने लगे मानों मिलने के हर्ष अथवा वियोग के दुःख के साथ (वृत्तान्त से) बहुत समय के बिछुड़े हुए मित्र मिल रहे हों। तोपों से छूटे गोले और बन्दूक से छूटी हुई गोलियाँ अपने वास्तु के शिल्प चातुर्य के साथ भीड़ में गलियाँ और बाजार (चौड़े मार्ग) बनाते गों बढ़ने लगे मानों वे नक्शे के अनुसार खूब खुला - खुला सा जय का नगर बसा रहे हों, दूसरे अर्थ में जयपुर जैसी नगरी बसाते हों।

बिडरात गात डरात दंतन हूत भूत हसे परै।
पटु स्वाद हेरत क्षेत्रपालक नेत्र जे निकसे परैं॥
उडिजात के बिनु पग्घ मस्तक लंब मान सिखा धरैं।
खनि मालिनी जनु गैंद खेल सपत्र सूरन के करैं ॥२५॥
सर ईतिकारक सालभी तति रूप अंबर उल्लसैं।
भर भीतिकारक कालभी तति जंग गोलन को ग्रसैं।
कति बध्य जानन पुंख बानन बात कानन तैं करैं।
अपसव्य हत्थ सगव्य कों तँहँ सव्य कातर उच्चरैं ॥२६॥

रणभूमि में कहीं मृत वीरों के मध्य विडरूप शरीर और अपने बड़े - बड़े दाँतों से भूत हँसते हुए घायलों को डराने लगे तो स्वादपटु क्षेत्रपाल हर कहीं स्वाद वाली वस्तुएँ हेरने लगे और ऐसा करने में उनके नेत्र बाहर को निकले पड़ते नजर आने लगे। कहीं पर पगड़ीविहीन लंबी चोटी वाले मस्तक धड़ से विलग होते उछलते हुए यों लगने लगे जैसे कोई मालिन सूरन (एक जमीकंद विशेष) को पत्तों सहित गेंद के माफिक उछालती खेल रही हो कहीं पर इति करने वाली टिड्डियों के दल की तरह बाण पंक्तिबद्ध आकाश में उड़ने लगे तो कहीं वीरों के लिए भयदायक बनी काल रूप गोलों की पंक्तियाँ योद्धाओं को ग्रसने लगीं। कहीं पर क्या वध योग्य है और क्या नहीं

यह बात कान में पूछने के लिए बाणों की पंख लगी पूँछें वीरों के कान से सटने लगीं। कहीं पर बाएँ हाथ, प्रत्यंचा सहित पीछे हटते दाँए हाथ को कायर की संज्ञा देने लगे।

गज गात ठेलन संगि सेलन ब्रात पैठत यों लसै।
जनु बज्र संगहि बीजुरी धकि स्याम बद्दल मैं धसैं॥
अरिसिंह माहजि के उभै दल यों अवंतिय आहुरे।
बल जानि सत्रुन को उदैपुर के लजे अब बाहुरे ॥२७॥

रणभूमि में कहीं हाथियों के पृथुल शरीरों को बेध कर ठेलने के लिए भालों- बर्छियों के समूह उनके शरीर में यों खुभने लगे जैसे वज्र के साथ बिजली चमक कर काले बादलों में धँस रही हो। महाराणा अरिसिंह और महादजी सिंधिया के दोनों दल उज्जैन की भूमि पर यों भिड़े पर शत्रु को अधिक बलशाली गिन कर उदयपुर की सेना लज्जित होकर भाग खड़ी हुई।

दोहा

चमु उदैपुर की चली,जीवन तैं हित जानि।
संग लगे माहजि सुभट,प्रबल दिखावत पानि॥२८॥
मेवारे दल मॉहि सो, तुरग मुरे तहँ नोन।
जिम भचक्र पच्छिम चलत, ग्रह गन पूरब गोन॥२९॥

उदयपुर की सेना अर्थात् अरिसिंह के पक्ष वाली सेना जीवित रहने में ही अपना हित समझ कर भाग चली पर उसका पीछा करते महादजी सिंधिया के योद्धा तब भी अपने हाथ दिखाते नहीं रुके। मेवाड़ की इस भागती हुई सेना में से नौ घोड़े विपरीत दिशा में मुड़े इस तरह (यहाँ अजहत्स्वार्था लक्षणा से 'घोड़े' शब्द सवारों का अर्थ देता है) मानों सम्पूर्ण तारामण्डल तो पश्चिम दिशा को जा रहा हो पर उनमें से नव ग्रह पीछे की ओर जा रहे हों।

षट्पात्

इक राघव मरहट्ठ जवन दोला द्वितीय जँहँ,
झल्ला जालमसिंह चोंड बंसिय पहाड़ तँहँ।
साहिपुरप उम्मेद मान भट भैंसरोर पति,
अक्खय बीरमदेव उभय रट्ठोर मरन मति।

परमार सुभट सुभकर्ण पुनि ए मुरे दल भजत सन।
नव सफर जानि अतिबल निडर गहरश्रोत किय प्रतिगमन ॥३०॥

इन नौ में से एक (इन नौ ग्रहों के रूपक में ग्रंथकार उन नौ योद्धाओं को गिनाने का उपक्रम कर रहा है) मराठा राघवराव और दूसरा यवन दोला को जानें। तीसरा झाला जालिमसिंह था तो चौथा चूंडा का वशंज पहाड़सिंह। पाँचवाँ शाहपुरा का स्वामी उम्मेदसिंह था तो छठा भेंसरोड़ का रावत योद्धा मानसिंह। सातवाँ अक्षयसिंह राठौड़ और आठवाँ वीरमदेव राठौड़ था। परमार वीर शुभकरण को नवमा गिनें। इस तरह ये नौ सवार भागती सेना से मुड़े मानों नौ निडर और अति बलवान मगरमच्छ उल्टे तैरते हुए गहरे पानी के क्षेत्र की ओर बढ़ रहे हों।

साहिपुरप उम्मेदसिंह असिबर हद झारिय,
खूब बिरचि रन खेल प्रचुर मरहट्ठ प्रहारिय।
करि उज्जल सीसोद कुलहि तिल तिल मित तुट्टिग,
रविमंडल बिच्च होय लाह सुरपुर सुख लुट्टिग।
तिमही पहाड़ भट चोंड हर ईसहिं दैन न अद्दरिय।
बल फारि मारि मरहट्ठ बहु कलह सीस रज रज करिय ॥३१॥

इनमें से शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह ने तो अपनी तलवार से श्रेष्ठ प्रहार कर रण की बाजी को चतुर खिलाड़ी की तरह खेलते हुए प्रचुर मात्रा में शत्रु सेना के मराठा योद्धाओं को मारा और अपने सिसोदिया कुल को उज्जवल करते हुए रणभूमि में तिल-तिल कट कर बिखर गया। वह सूर्य लोक में अवस्थित हो कर स्वर्ग के सुख लूटने लगा। इस सिसोदिया वीर की तरह चूंडा के वंशज पराक्रमी पहाड़सिंह ने भी अपना मस्तक महादेव को नहीं सोपनें की सोची। उसने मराठों की शत्रु सेना को चीरते- फाड़ते हुए घमासान युद्ध किया और इसी घमासान में वह अपने मस्तक को छोटे - छोटे टुकड़ों में कटवा कर रणभूमि में बिखर गया।

दोहा

दोला राघव एहु दुव, सत्रु बहुत संहारि।
पृथुल रारि बिच्च कटि परे, अतुल मारि तरवारि ॥३२॥

इक परमार कबंध उभै, टरे कछुक छतवान।
मरहट्ठन लिन्ने पकरि, जालमसिंह रु मान॥३३॥

बिगर्‌यो दल अरिसिंह को, जित्त्यो माहजि जंग।
सिसु पक्खी हरखे सुभट, आवन राज्य उमंग॥३४॥

दम्म लक्ख अरु बीस गज, तोप छतीस नवीन।
लूट माँहि माहजि लये, तुरग सहँस पुनि तीन॥३५॥

दोला यवन और राघवराव मराठा ये दोनों वीर भी अपनी तलवारों के विकट प्रहारों से कई सारे शत्रु वीरों को संहारते हुए भीषण भिड़ंत में कट पड़े। वहीं परमार शुभकरण सहित दोनों राठौड़ अक्षयसिंह और वीरमदेव मृत्यु से बच गए पर घायल हो कर रणभूमि से गिरे। झाला जालिमसिंह और मानसिंह इन दोनों को मराठों ने पकड़ कर बंदी बना लिया इस तरह उदयपुर के महाराणा अरिसिंह की सेना बिखर गई और महादजी सिंधिया के दल ने विजय पाई। यह स्थिति देखकर बालक रत्नसिंह के पक्षकार प्रसन्न हुए और वापस उदयपुर लौटने की उमंग से भर उठे। वहीं बीस हाथी, अक्षत छत्तीस तोपें, तीन हजार घोड़े और एक लाख रुपयों की नकद राशि उदयपुर की सेना के शिविरों को लूटने में महादजी सिंधिया के हाथ लगी अर्थात् सिंधिया ने उपरोक्त सामग्री उदयपुर वाली अरिसिंह की सेना से लूटी।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे ज्ञातससहायसमागताऽरिसिंहसैन्यछलबालसहिततत्पक्षसुभट-भेदोपायचित्तोड़दुर्गप्रविशनमाहज्यवन्त्यागमनश्रुतैतच्छलप क्षसन्ध्याशरण ग्रहणमाहजिदोला राघव पुत्रकलत्राऽऽदिनिग्र हण तत्महायराणाऽरिसिंहसैन्य सन्ध्यासहायच्छलशिशुसैन्य शिप्रातटमहारणकरणसाहिपुराऽधिराडुम्मेदसिह सलूमरीशभीमा ऽनुजपहाड़सिंह यवनदोला महाराष्ट्रराघव मरणपरमार कबन्ध सक्षतीभवन झल्लाजालमसिंह चुंडाउतमानसिंह कारान्यस-नराणासैन्यपलायनच्छलपक्षसहायीभूतमाहजिविजय प्रापण-परशिविरवैभवलुण्टनमष्टपञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३३९॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के, उम्मेदसिंह चरित्र में, सहायता पर आई हुई और अरिसिंह की सेना को जानकर छलवाले बालक सहित उसके पक्ष के उमरावों का भेद उपाय से चित्तौढ़ के गढ में

घुसना, माहजी का उज्जैन आना सुनकर उन छल पक्षवालों का उसकी शरण लेना, माहजी का दोला और रघु के पुत्र और स्त्रियों आदि को कैद करना और उनकी सहायता पर राणा अरिसिंह की सेना और सिंधिया की सहायता से रत्नसिंह की सेना का शिप्रा नदी के किनारे महायुद्ध करना, शाहपुरा के पति उम्मेदसिंह, सलूंबर के पति भीमसिंह के छोटे भाई पहाड़सिंह, यवन दोला और मराठा राघव का मरना और पँवार और राठौड़ का घायल होना, झाला जालमसिंह और चूंडावत मानसिंह का पकड़ा जाना, राणा की सेना का भागना, छलपक्ष की सहाय करने वाले माहजी का विजय पाना और शत्रु के डेरों का वैभव लूटने का अठावनवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उनतालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

बदलै जालमसिंह कै, सट्ठि सहँस दै दम्म।
मित्र इक्क मरहट्ठ नै, टार्‌यो कैद कुकम्म॥१॥
चुंडाउत छुट्‌यो न वह, भैंसरोर पति मान।
छलसिसु जान्यों छिप्रही, गहिहों व्है अब रान॥२॥
दोला राघव दुहुँन के, लीनें सीस कटाय।
रोपे नगर अवंति बिच, सेलन अग्र चिपाय॥३॥
उदयनैर उप्पर बहुरि, सज्जिय माहजि सैन।
उतकृति धृति आखाढ बिच, लग्ग्यो पत्तन लैन॥४॥

हे राजा रामसिंह! वहाँ उज्जैन से झाला जालिमसिंह के एक मराठा मित्र ने तब साठ हजार रुपयों की रकम दे कर उसे कारावास से छुड़वाया पर भैंसरोड़ का राजा मानसिंह नहीं छूट पाया। इधर उस कपटी बालक (रत्नसिंह) ने सोचा की अब शीघ्र ही मैं उदयपुर का महाराणा बन जाऊँगा। सिंधिया महादजी ने राघवराव और यवन दोला के मस्तक कटवा कर मंगवाए और उन्हें लंबे भालों के अग्रभाग में पिरो कर उज्जैन नगर के मध्य रुपवाया जिससे सभी देख सकें। फिर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छब्बीस के आषाढ़ माह में अपनी सेना को सज्जित कर महादजी सिंधिया उदयपुर पर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकार में लेने के लिए उज्जैन से चला।

रसना जिम संकट रदन, जरि इम तोपन जाल।
संध्या खिजि बिंटिय शहर,करि रन दमन कराल॥ ५॥

भैंसरोर पति मान तँहँ, बिधि कछु कैद बिहाय।
जामिक दिट्ठी बचाय कैं, दुरयो उदैपुर जाय॥ ६॥

बहुत काल घेरा रहयो, भयो उदयपुर त्रस्त।
संध्या को घन बुट्ठि करि, बिगरयो बिभव समस्त॥ ७॥

सेन खरच छलबाल सों, मंग्यो माहजि तत्थ।
देहु उदयपुर उन कहिय, लेहु उचित तुम अत्थ॥ ८॥

जिस तरह बत्तीस दाँतो के घेरे में रहती जीभ संकट महसूसती है उसी तरह तोपों के जाल में उदयपुर नगर को घेर कर कुपित सिंधिया महादजी ने युद्ध का विकराल दण्ड देने की सोची। इस बीच भैंसरोड़ का रावत मानसिंह किसी तरह कोई अवसर पा कर पहरेदारों की नजर से बचता मराठों की कैद से भाग आया और आकर उदयपुर में छिप गया। सिंधिया का यह घेरा लंबे काल तक चला जिससें उदयपुर के सभी नगर वासी त्रस्त हो गए। सिंधिया रूपी मेघ की अतिवृष्टि से नगरवासियों का वैभव खुर्दबुर्द होने लगा। इसी समय कपटी बाल (रत्नसिंह) से महादजी सिंधिया ने फौज खर्च की राशि मांगी क्योंकि पूर्व में उसने कहा था कि हमारे पक्ष की विजय होने की दशा में उदयपुर आपको देय होगा और आप चाहोगे तो अर्थ के रूप में राशि देय होगी।

सुनिय रान अरिसिंह यह, अनख परस्पर होत।
कथित दंड स्वीकरि कहिय,पकरि लेहु छलपोत॥ ९॥

जब माहजि पकरन जतन, किय सो सुनि तत्काल।
किल्ला कुंभिलमेरु गय, सह परिकर वह बाल॥१०॥

दंड रान अरिसिंह दिय, भूखन दम्म तुरंग।
अवसेसन हित ओलि दिय, झल्ला जालम संग॥११॥

जालम को माहजि जबहि, आयउ लै उज्जैन।
बरस याहि ऋतु सरद बिच,सज्जित अतुलित सैन॥ १२॥

जब इस बात के समाचार महाराणा अरिसिंह को मिले कि सिंधिया

महादजी और रत्नसिंह के मध्य परस्पर बिगाड़ हो गया है तो उन्होंने सिंधिया ने जितनी मांगी थी उतनी दण्ड की राशि देना स्वीकार किया बशर्ते कि सिंधिया उस छद्म बालक महाराणा (रत्नसिंह) को बंदी बना ले। महाराणा अरिसिंह के प्रस्ताव के अनुरूप महादजी सिंधिया ने जब बालक रत्नसिंह को पकड़ने के यत्न आरंभ किये तो इसकी भनक उसे लग गई और वह रत्नसिंह अपने परिकरों सहित कुंभलगढ़ के दुर्ग में जा घुसा। महाराणा अरिसिंह ने सिंधिया के दण्ड की राशि में कुछ आभूषण, कुछ रुपये, कुछ घोड़े और शेष राशि के एवजाने में झाला जालिमसिंह को ओल (रुपयों के बादले मे कैद देना) दे दिया तब महादजी सिंधिया जालिमसिंह को विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छब्बीस की शरद ऋतु में अपनी सज्जित सेना के साथ उज्जैन ले आया ।

महाराव कोटा पुरप, नृप गुमान यह जानि।
मोच्यो जालम दम्म दै, परिकर स्वीय प्रमानि ॥१३॥

इत रक्खे अरिसिंह नै, संधी जवन सिपाह।
च्यारि लक्ख तिनके चढे, हक रुप्पय नय राह ॥१४॥

फोरे कुंभिलमेरु के, फुट्टे संधिय नाहि।
पै हक मंगन दंद किय, मुलक उदैपुर मांहि ॥१५॥

दम्म भये नहि दैन को,तब अरिसिंह सिटाय।
आयो व्याहन रीति कछु, संधिन को समुझाय ॥१६॥

जब कोटा के महाराव गुमानसिंह ने यह सुना कि सिंधिया झाला जालिमसिंह को अपने साथ उज्जैन ले गया है तो उन्होंने उसे अपना परिकर मानते हुए स्वयं के पास से दण्ड के रुपये दे कर (झाला को) छुड़वाया। इधर महाराणा अरिसिंह ने जो अपनी सेना में सिंधी यवनों को रखा था उनकी पगार के चार लाख रुपये चढ़ गये। इन सिंधी सिपाहियों को कुंभलगढ़ वालों (रत्नसिंह के पक्षवालों) ने लालच दे कर अपनी ओर मिलाना चाहा पर सिंधी सैनिक टस से मस नहीं हुए पर उन्होंने अपनी बकाया राशि के लिए उदयपुर में उपद्रव मचाना आरंभ किया। इधर अरिसिंह के पास इनके भुगतान हेतु राशि नहीं थी इसलिए वह लज्जित हो कर किसी तरह सिंधी सैनिकों को आश्वासन दे किशनगढ़ विवाह करने आया।

सुता बहादुरसिंह की, परनि कृष्णगढ द्रंग।
रान संकि तत्थहि रह्यो, संधिन दंद प्रसंग ॥१७॥

तदनंतर मुनि नेत्र धृति, बुंदिय नगर नरेस।
भयो उदास प्रवृति सन, बढि वैराग्य बिसेस॥१८॥

राध बिसद द्वादसि रुचिर, रविवासर सुभ रूप।
अजितसिंह जेठो कुमर, किन्नों बुंदिय भूप॥१९॥

प्रथम पुरोहित किय तिलक,निज कर झिंतुवराम।
बहुरि व्यास आसिख बिहित, रचि किय मानिकराम॥२०॥

किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह की पुत्री से विवाह करने के बाद सिंधियों के उपद्रव से डरता महाराणा अरिसिंह उदयपुर नहीं आया। वह किशनगढ़ में ही ठहर गया। इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्ताईस में बूंदी का हाड़ा राजा उम्मेदसिंह राज-काज से उदासीन हो गया। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तदनुसार रविवार के दिन शुभ मुहूर्त देख कर हाड़ा राजा का पाटवी कुमार अजीतसिंह बूंदी की राजगद्दी पर बैठ कर राजा बना। इस अवसर का राज्याभिषेक का पहला तिलक झिंतवराम नामक राजपुरोहित ने किया। इसके बाद मानिकराम नामक व्यास ने आशीर्वचन के बोलों के साथ दूसरा तिलक लगाया।

निज कटि को असिबर नृपति, बंधायउ निज हत्थ।
नृपता दै निज पुत्र को, हुब बिरत्त मन तत्थ॥२१॥

रक्ख्यो नगर बड़ोदिया, निज परिकर व्यय काज।
श्रीजित पद अप्पुन गहिय, तजि दिय पद नरराज॥२२॥

इस अवसर पर हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने अपनी कमर पर बांधने की तलवार अपने हाथ से नये राजा अजीतसिंह की कमर पर बांधी और इस तरह अपने पुत्र को राजपाट दे कर राजा पुरी तरह विरक्त हो गया। राजा उम्मेदसिंह ने तब अपने परिकरों के भरण-पोषण के खर्च के लिए बड़ोदिया नामक नगर अपने अधिकार में रखा और स्वयं ने श्रीजित पद ग्रहण कर (माया रहित हो कर) राजा का पद छोड़ दिया।

घनाक्षरी

जाके काज बिपति बिताई बहु कष्ट सहि,
द्वै द्वै दिन माँहि मेटि जाठर दुसह दाह।
मरन बिचारि मारि मारि तरवारि झारि,
झंडे पचरंग जंग मंडे चहुवान नाह।
जैपुर को जीति नीति दुलभ दिखाई सब,
भूपन दिखाई भूप आदि रजपूती राह।
श्रीजित सहर बुंदी अष्टम उमेद मनु,
कासी जानि लीनी तनुकासी जानि लीनी वाह॥२३॥

जिसके लिए बहुत सारे कष्ट उठाए, विपत्तियाँ झेलीं। दो-दो दिन तक भूखे रह कर पेट की दुस्सह जठराग्नि को बर्दाश्त किया। मरने की ठान कर युद्ध में विरोधियों को तलवार के प्रहारों से शमित किया। इस हाड़ा राजा ने सभी युद्ध के मैदानों में अपने पचरंग ध्वज को फहराया। यही नहीं जयपुर को विजित करने वाली अपनी दुर्लभ राजनीति के बल पर जिस राजा (हाड़ा) ने अन्य सभी राजाओं को परंपरागत राजपूती (पराक्रम) की राह दिखाई। उसी आठवें मनु रूप हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने माया रहित हो बूंदी को ही काशी मान ली और राज छोड़ने के समय आज उस वीतराग राजा ने उसे (बूंदी को) तृण वृत्त मानकर सभी की ओर से वाह-वाही ली।

दोहा

इंद्रगढप उमराव तँहँ, भक्तराम अभिधान।
पुनि खत्तोली नगर पति, रतनसिंह चहुवान॥२४॥
बलवनपति मालम बहुरि, बैरिसल्ल भव बंस।
ज्यौंही भरतसिह जँहँ, खेड़ानगर वतंस॥२५॥
दुर्गसिंह मुहुकम कुलज, अंतरदा नगरेस।
महासिंह गजसिंह जिहिँ, पुर जज्जाउर पैस॥२६॥
तिमहि भवानीसिंह तँहँ, धोवड़ पत्तन नाह॥
भगवंत सु सीलोर पति, माधानी हित चाह॥२७॥

सेरसिंह सांमत हर, भजनैरी पुर भान।
महासिंहहर वीर पुनि, थानाँ पुरप खुमान॥२८॥

बूंदी के राजा अजीतसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर बूंदी के सांमतों में इन्द्रगढ़ का अधिपति भक्तराम और खात्तोली का स्वामी रत्नसिंह चहुवान उपस्थित हुए। वहीं बलवन का जागीरदार वैरीसालोत हाड़ा मालमसिंह, खेड़ा नगर का मुकुट भरतसिंह और मुहकमपोता हाड़ा वंश का दुर्गसिंह जो अतंरदा (अंता) का स्वामी था भी उपस्थित थे। इनके अतिरिक्त जज्जावर (जोजावर) का स्वामी गजसिंह और धोवड़ का जागीरदार भवानीसिंह भी उपस्थित थे। माधानी हाड़ा भगवंतसिंह सीलोर का स्वामी उपस्थित था तो भजनेरी का सूर्य रूप स्वामी सांमतसिंह का वंशज शेरसिंह भी हाजिर था। थानापुर के जागीरदार महासिंह के वंशज वीर खुमानसिंह की तरह सुहरनी का वीर स्वामी समुद्रसिंह भी उपस्थित था।

तिम समुद्रसिंह हु सुभट, सुहरनि पति बरबीर।
नगर जैतगढ नाह पुनि, बाघसिंह रन बीर॥२९॥

भट खुसाल सामंतहर, नगर नांदनाँ ईस।
मिसल दाहिनी के मिले, भट इत्यादि बलीस॥३०॥

बाम मिसल उमराव बलि, सोलंखी जयसीह।
नाथाउत निम्मान पति, पित्थल सुत नय लीह॥३१॥

नाथाउत बखतेस बलि, नगर पगाराँ मोर।
अभयसिंह अमरेस सुत, पति अलोद रठ्ठोर॥३२॥

इत्यादिक सुभटन नजरि, किन्नें हय सिरुपाव।
पठये टीकाँ नृपन पुनि, सुनि यह बत्त सचाव॥३३॥

जैतगढ़ के स्वामी वीर बाघसिंह के साथ नांदनाँ का जागीरदार और सामंतसिंह का वंशज खुशालसिंह भी हाजिर था। उपरोक्त सारे बूंदी की दाई मिसल के उमराव राज्यभिषेक के अवसर पर उपस्थित थे वहीं बाई मिसल के सामंतों में वीर जयसिंह सोलंकी हाजिर था जो सदा नीति के मार्ग पर चलने वाला, निम्माण का स्वामी और नाथावत पृथ्वीसिंह का पुत्र था। पगारां नगर का मुकुट नाथावत बखतसिंह भी उपस्थित था। राठौड़ों में अलोद का

जागीरदार अभयसिंह हाजिर था जो अमरसिंह का पुत्र था। उपरोक्त सारे सामन्तों ने अपने नये स्वामी अजीतसिंह को भेंट में सिरोपाव और घोड़े नजर किये। बूंदी के उमरावों के अतिरिक्त भी जिन रईसों ने टीका भेजा वे इस प्रकार थे।

उदयनैर अरिसिंह नृप, पित्थल जयपुर ईस।
बिजयसिंह रट्ठोर बलि, जनपद धन्व अधीस॥३४॥

कोटापुरप गुमान नृप, छन्न कितव छल जाल।
इमहि करोली पुर अधिप, जद्दव मानिकपाल ॥३५॥

बीकानैर अधीस बलि, सुरतसिंह नरनाह।
रामसिंह नैषध अधिप, नरउरपति कछवाह॥३६॥

भूप बहादुरसिंह तिम, कृष्णगढप रट्ठोर।
गोरबंस अवतंस पुनि, सोपुर नृपति किसोर॥३७॥

इत्यादिक सब नृपन के, टीका गज हयराज।
मनिभूखन सिरुपाव मिलि, सह आये सुभ साज॥३८॥

हाड़ा राजा अजीतसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर दस्तूर मुआफिक टीका की सामग्री भेजने वालों में उदयपुर के महाराणा अरिसिंह, जयपुर के कछवाहा राजा पृथ्वीसिंह और जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह थे। कोटा राजा गुमानसिंह जो गुप्त रूप से विरोध करता था और कपट जाल रचता था पर उसने भी रिवाजानुसार टीका भेजा और ऐसे ही करोली के यादव राजा मानिकपाल ने। बीकानेर के राठौड़ राजा सूरतसिंह, निषध देश के अधिपति और नरवर नरेश कछवाहा रामसिंह, कृष्णगढ़ के राठौड़ राजा बहादुरसिंह और गौड़ वंश के मुकुट सोपुर के राजा किशोरसिंह भी उन राजाओं में से थे जिन्होंने प्रथानुसार टीका में हाथी, घोड़े आभूषण और सिरोपाव युक्त सामग्री हाड़ा राजा अजीतसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर भिजवाई।

सुनि टींका श्रीमंत हू, दयो नरायनराव।
हुलकर तक्कू संधिया, माहजि हू भल भाव॥३९॥

इम श्रीजित उम्मेद यँहँ, किय नृप ज्येष्ट कुमार।
लयो महाराजोपपद, बहादुर रु सिरदार॥४०॥

रक्खे कछु निज ढिग सुभट, नाम सुनहु जिन नाह।
इक थाँनाँपति कों अनुज, बिक्रम सुमन सिपाह॥४१॥

बैरिसल्ल कुल उद्धरन, सुभट नाम सोभाग।
भट किसोर नाथाउत सु, अति जिहिं रन अनुराग॥४२॥

दयानाथ रासू दुव हु, महासिंह कुल जात।
बीर खुसाल निहाल बर, हर सांमत सुहात॥४३॥

उधर दक्षिण में जब श्रीमंत पेशवा ने सुना कि बूंदी के राजा अजीतसिंह का राज्याभिषेक हो रहा है तो उस नारायणराव ने तथा तुकाजीराव (तक्कू) होल्कर, महादजी सिंधिया ने बूंदी के प्रति हित का भाव रखते हुए टीका की सामग्री भिजवाई। (दूसरे अर्थ में श्रीमंत नारायणराव ने उत्तम भावना से तुकोजीराव होल्कर और महादजी सिंधिया के साथ हाड़ा राजा के टीका की सामग्री भेजी)। इस तरह माया को जीतने वाले वीतराग राजा उम्मेदसिंह हाड़ा ने अपने पाटवी कुमार अजीतसिंह को बूंदी का राजा बनाया और अपने छोटे पुत्रों बहादुरसिंह और सरदारसिंह को 'महाराज' के उप पद के योग्य बनाया। इसके बाद हे राजा रामसिंह! वीतराग राजा उम्मेदसिंह ने कुछ जागीरदारों को अपने पास रखा उनके नाम आपसे कहता हूँ! इनमें से एक थाना के जागीरदार का श्रेष्ठ मन वाला छोटा भाई विक्रमसिंह था तो दूसरा था वैरीसाल हाड़ा के कुल को तारने वाला हाड़ा सौभाग्यसिंह। तीसरा नाथावत किशोरसिंह जिसे युद्ध के प्रति अत्यधिक अनुराग था। चौथा और पाँचवा क्रमश: महासिंहोत हाड़ा दयानाथ और रासूनाथ था। छठा वीर खुसालसिंह सामंतसिंहोत हाड़ा और साँतवा निहालसिंह हाड़ा था।

झल्ला बीर दलेल सुत, चंद्रसिंह जय चोर।
बीर सिवाईसिंह बलि, अमरचंद रठ्ठोर॥४४॥

हड्ड खजूरी को बहुरि, दोलतसिंह सुनाम।
ए निज ढिग रक्खे सुभट, श्रीजित बिहित बिराम॥४५॥

बुंदिय तैं ईसान दिस, कोस इक्क मतिमान।
सिव केदार निकेत तँहैं, रहन बिचारयो थान॥४६॥

महलन में उम्मेद नृप, मंदिर उभय बनाइ।
श्रीरंग रु आंनदघन, प्रभु दिन्नें पधराइ॥४७॥

तिनकें ढिग उत्तर तरफ, नाना मुकुर निकेत।
रुचिर चित्रसाला रची, सब सुभ चित्र समेत॥४८॥

राजा ने झाला वीर दलेलसिंह के पुत्र चन्द्रसिंह को भी अपने पास रखा जो युद्ध से विजय चुराने वाला योद्धा था इसे आठवाँ समझें। नवमा झाला सवाईसिंह और दसवाँ अमरचन्द राठौड़ था। इनके अतिरिक्त हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने खजूरी के जागीरदार हाड़ा दौलतसिंह को भी अपने पास रखा। वीतराग राजा उम्मेदसिंह ने अपने साथ इन ग्यारह लोगों को रखा और वह प्रवृत्ति के उपराम में रम गया। बूंदी नगर से ईसान कोण में एक कोस की दूरी पर जहाँ केदारेश्वर महादेव का मन्दिर बना है इस स्थान को श्रीजित राजा ने अपने रहने योग्य समझा। जहाँ तक राजा उम्मेदसिंह द्वारा कराये गए निमार्ण स्थलों का सवाल है उनमें वे दो मन्दिर तो मुख्य हैं जिन्हें राजा ने महलों के मध्य बनवाया और जहाँ श्री रंगजी और आन्नदघन प्रभु के विग्रह स्थापित किये। इन मन्दिरों के पास उत्तर दिशा में काँच जड़ा शीशमहल बनवाया और सुन्दर चित्रशालाओं का निमार्ण करवाया जिनमें नयनाभिराम चित्र बने थे।

प्राची दिस तस हिट्ठ पुनि, नाना द्रुमन निवास।
क्रिड़ा उपबन नाम करि, बिरच्यो रंगबिलास॥४९॥

ताके उत्तर प्रांत पर, तीन निलय किय तत्थ ।
अच्छवाट अरु असनघर, मुकुर महल तिन मत्थ ॥५०॥

तारागढ बिच हरि सदन, आयत कोस निवान
विष्णुसिंह नृप चरित बिच, रचित कहे त्रय थान॥५१॥

कृत गनेसघंटी कहिय, चोथी ताहि चरित्र।
नव्य अधो महलन निलय, बरनत सुनहु बिचित्र॥५२॥

राजमहल प्रासाद सन, दक्खिन दिस थिर थान।
तीन बनाये भूप तिन्ह, अब जानहु अभिधान॥५३॥

इन चित्रशालाओं के नीचे पूर्व दिशा में नाना प्रकार के वृक्षों वाला एक सुन्दर बाग बनवाया और इस क्रीड़ा-उपवन नामक बाग में रंगविलास महल बनवाया। रंगविलास से उत्तर दिशा में तीन निर्माण करवायें जिन पर अच्छवाट (बरामदा), भोजनघर और काँचमहल बनवाये। इनके अतिरिक्त हाड़ा राजा उम्मेदसिंह ने तारागढ़ दुर्ग के मध्य एक मन्दिर और एक कोस लंबा-चौड़ा तालाब बनवाया। हे राजा रामसिंह! मैंने राजा विष्णुसिंह के वृत्तान्त में बताया था कि उन्होंने तीन स्थानों का निर्माण करवाया। उन्हीं के द्वारा कराया गया

चौथा निर्माण गणेश घाटी भी कहा था अब मैं नवीन नीचे के महलों बाबत बताता हूँ। मुख्य राजमहल से दक्षिण दिशा की ओर जो स्थाई निर्माण हैं वे तीनों इस राजा द्वारा निर्मित हैं उनके सुन्दर नाम बताता हूँ।

रुचिर निंब को राउला, इक बहु महल उपेत।
तस दक्खिन दूजो अतुल, जँहँ कुलदेवि निकेत॥५४॥

कहत राउला कूप को, तासौं दक्खिन तत्थ।
तीनन में प्रासाद तति, सब अति उन्नति सत्थ॥५५॥

तिन्ह तोरन बाहिर तहाँ, गोल्हाबापिय पास।
तीरथिया हय की रची, प्रतिमा अट्ट प्रकास॥५६॥

सिव केदार समीप किय, तीजे आश्रम बास।
तँहँ बिरच्यो उत्तर तरफ, उपवन देवबिलास॥५७॥

तास ढिगहि सिखि कोन तँहँ, रचित कुंड अभिराम।
तासौं लगि आवाच्य तट, धवल तुंग निज धाम॥५८॥

इनमें से एक नींब का रावला है जो बड़े महल के साथ है। उसी से थोड़ा दूर दक्षिण में एक राजा की कुल देवी आशापुरा का अतुलनीय मन्दिर है। जिसे रावला कूप कहा जाता है उससे दक्षिण में तीन महल एक ही पंक्ति में बनाये गये जो अपनी भव्यता के साथ वर्तमान में भी विद्यमान हैं। राजा उम्मेदसिंह ने नगर के मुख्य गोपुर से बाहर की ओर गोलॉ-बावड़ी के समीप अपने तिरथिया नामक घोड़े की भव्य प्रतिमा स्थापित करवाई। केदारेश्वर महादेव के पास जब राजा ने वामप्रस्थी होकर निवास किया था वहीं उत्तर दिशा की ओर राजा ने देव विलास नामक एक सुन्दर उपवन का निमार्ण करवाया। इसी के पास अग्निकोण में एक बड़े कुण्ड का निमार्ण करवाया और इसी से मिलता हुआ दक्षिण दिशा में सफैद रंग का अपने निवास हेतु भव्य महल बनवाया।

जो सिकारबुरज हि बजत, आलय प्रचुर उपेत।
आमति जीवन अप्प इह, निबस्यो रुचिर निकेत॥५९॥

तँहँ गुलाबबाटी तिमहिं, मारुति छत्री मंजु।
कुल्या ग्रावन जटित किय, कुंड मिलित चित कंजु॥६०॥

बहुरि मंदुरा आदि बहु, थप्पे कति लघु थान।
बैखानस तँहँ बास करि, बिलस्यो निगम बिधान॥६१॥

जो खवासि नृप कै निपुन, कही रूपरसराय।
तस नामहु इक बाग तँहँ, चतुर रच्यो जस चाय॥६२॥

सिव केदार समीप सो, बज्जहिँ रूपबिलास।
नदी बानगंगा निकट, इत दक्खिन तट आस॥६३॥

यही धवल महल अपने दूसरे नाम शिकार बुर्ज से भी प्रसिद्ध है जिसमें बहुत सारे कमरे हैं। वीतराग राजा जीवन पर्यंत और बुद्धि पर्यत इसी सुन्दर भवन में निवास करता रहा। यहीं पर एक गुलाबबाड़ी और एक भीमकाय सुन्दर छत्तरी का निमार्ण भी कराया। इसके साथ मात्र जडाऊ पत्थरों से निर्मित एक नहर (नाला) का निर्माण कराया जो कुंड (छोटा तालाब) से जुड़ी है और कुण्ड के पानी का स्रोत भी है। इन निर्माणों के अतिरिक्त राजा ने हयशाला जैसे छोटे निर्माण तो कई करवाये जहाँ वानप्रस्थी राजा वेदोक्त विधि-विधान पूर्वक रहा। इस राजा की जो रूपरसराय नामक निपुण पासवान थी उसके नाम पर यशलक्षी राजा ने एक सुन्दर बाग का निमार्ण करवाया। केदारेश्वर महादेव के मन्दिर के पास विद्यमान यह बाग 'रूप विलास' नाम से जाना जाएगा ऐसा सोच कर राजा ने बाणगंगा नदी के दक्षिणी तट पर इसका निर्माण (अपनी पासवान के नाम पर) करवाया!

बेघम नृप बुधसिंह को, चौंरा रुचिर रचाइ।
किन्नौं जस व्यय अतुल करि, मह सह दान मचाइ॥६४॥

बुंदी तैं चहुँ घाँ बिदित, मृगया बुरज महीप।
बिरची तिनमैं सुभ बुरज, दिस प्राची सब दीप॥६५॥

बहुरी कोठा आदि इम, बहु पुर निकट बनाइ।
दूर हु भीमलतादि भुव, पटु मृगया रस पाइ॥६६॥

सत्रुसल्ल तजिकैं सुपहु, व्यय ऐसी करि बित्त।
काहू नैं न रचे निलय, इम उदार चहि चित्त॥६७॥

इस राजा ने बेगूं में अपने पिता राजा बुधसिंह के नाम पर सुन्दर थान बनवाया और इसके पूर्ण होने के अवसर पर एक बड़े उत्सव का आयोजन

किया जिसमें कई रुपयों का दान कर यश कमाया। इस राजा ने अपने राज्यकाल में बूंदी के चारों ओर अर्थात् सभी दिशाओं में शिकार-बुर्जों का निर्माण करवाया इनमें से भी जो पूर्व दिशा में निर्मित है वह शुभ-बुर्ज नामक भव्य बुर्ज सभी ओर से नजर आती है! राजा ने नगर के पास लगे वन में कई कोठे बनवाए जिनसे वन्य प्राणी पानी पी सकें। यहीं पर भीमलता नामक बड़ी शिकारगाह भी बनवाई। हाड़ा राजा शत्रुसाल को छोड़कर इतना धन व्यय कर प्रासाद आदि के निर्माण कार्य किसी अन्य राजा ने नहीं करवाए जितने इस उदार उम्मेदसिंह ने अपने काल में बनवाये।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावुम्मेदसिंह-चरित्रे मित्रमहाराष्ट्रझल्लजालमसिंहकारमोक्षणमाहजिवा हिन्युदयपुरवेष्टन-चुण्डाउत्तमानसिंह कौ हक्यान्तःपुरप्रविशन ज्ञातलुलुप्सारुष्ठ माहजिस पक्षछलडिम्भकुंभिल मेरुदुर्गगमनराणारिसिंहमाहजिदण्डद्रम्मास्र्पणखि-लद्रम्मास्वधिझल्ल जालमसिंह सार्थीकरणदत्तद्रम्मकोटेशगुमानसिंह तन्मोक्षणसंधि भृत्याद्रव्यशकिंतासरिसिंह बहादुरसिंह सुतोद्वाह निमित्त कृष्णागढ निवसन रावराडुम्मेदसिंह महाराज कुमारास्जित सिंहार्स्थराज्यार्स्पणस्वयं श्री जिदुपटंकधारण सर्वभूभृट्टी को पाख्यव्यवहार प्रेषण स्वल्प सार्थसहितश्रीजित्केदारेश्वरस्थाननिवसन मेकोन पञ्चाशत्तमो मयूखः आदितः ॥३४०॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के उम्मेदसिंह चरित्र में, मराठे मित्र द्वारा झाला जालिमसिंह को कैद से छुड़ाना और माहजी का सेना से उदयपुर को घेरना, चूंडावत मानसिंह का छल से पुर के भीतर जाना और लोभ से माहजी को क्रुद्ध जानकर पक्ष सहित छलबालक का कुंभलमेरू के गढ़ में जाना, राणा अरिसिंह का माहजी को दण्ड के रुपये देना और बाकी के रुपयों की अदायगी की अवधि पर्यन्त झाला जालिमसिंह को साथ देना, कोटा के राजा गुमानसिंह का रुपये देकर जालिमसिंह को छुड़ाना, सिंधियों की तनख्वाह के रुपयों से डर कर अरिसिंह का बहादुरसिंह की पुत्री से विवाह के कारण से कृष्णगढ़ में निवास करना, रावराजा उम्मेदसिंह का महाराजकुमार अजीतसिंह के अर्थ राज्य देना और अपना 'श्रीजित' की पदवी धारण करना, सब राजाओं का टीका नामक व्यवहार भेजना और थोड़े साथ सहित श्रीजित के केदारेश्वर स्थान में निवास करने का उनसठवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

मुनि दृग धृति मित सक समय, अजितसिंह नरनाह।
छत्र धर्‌यो निज जनक छत, लहि भद्रासन लाह॥१॥

भ्रातन संजुत भूप के, व्याह प्रजादिक बत्त।
कतिक भूत भावी कतिक, पीढिन क्रम जिम पत्त॥ २॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्ताईस में हाड़ा कुमार अजीतसिंह ने अपने पिता के विद्यमान रहते हुए बून्दी का छत्र अपने सिर पर धारण किया और राजसिंहासन ग्रहण कर सुख पाया। अब मैं नये राजा अजीतसिंह के भाइयों सहित उनके स्वयं के विवाहों का वृत्तान्त कहता हूँ साथ ही उनकी सन्तति का विवरण भी दूँगा। इनमें से कुछ भूतकाल में घटित हुए और कुछ आगे आने वाले समय में सम्पन्न होंगे अर्थात् इस विवरण में कुछ भूतकाल का और शेष भविष्य का है।

घनाक्षरी

उपयम च्यारि कीनें भूपति अजितसिंह,
तिनमैं लहैं द्वै सुत नियति उदर्क ताम।
कृष्णगढ जाइ ब्याही पहिलैं बहादुर की,
कन्या रट्ठऊरी रानी सूरजकुमरि नाम।
राजाउत कित्तिसिंह दुहिता द्वितीय ब्याही,
सो शृंगारकुमारि सतीमनी झलाय धाम।
तीजी ताहि निर्गम मैं परनी भनायपुर,
सो अमानकुमरि दलेल सुता अभिराम॥३॥

हाड़ा राजा अजीतसिंह ने कुल चार विवाह किये और भाग्य योग से उनके दो पुत्र जन्में। राजा ने अपना पहला विवाह किशनगढ़ जा कर राठौड़ राजा बहादुरसिंह की पुत्री सूरज कुमारी के साथ किया वहीं दूसरा विवाह झलाय के जागीरदार राजावत कछवाहा कीर्तिसिंह की कन्या श्रृंगार कुंवरी (जो सतियों में श्रेष्ठ थी) के संग सम्पन्न किया। अपने दूसरे विवाह से वापस लौटते समय रास्ते में भिनाय नामक नगर के राजा दलेलसिंह की सुन्दर कन्या

अमान कुमारी के साथ हाड़ा राजा अजीतसिंह ने तीसरा विवाह किया।

विष्णुसिंह राउल की कन्या बंसबाटपुर,
बखतकुमारि नाम चोथी परन्यों बिदित।
भूपति कै रानी पहिली मैं सुत जेठो भयो,
सो प्रताप सिसुहि मर्यो जो पाइ आयु मित।
सीसोदिनी आहाड़ी चतुर्थ रानी जंपी जास,
बिष्णुसिंह दूजो चिरंजीव भयो पुण्य चित।
एक चंद्रशोभा ही खवासि जानें स्वामी अंत,
राजाउति रानी संग होम्यों अंग हेरि हित॥४॥

इस क्रम में राजा ने अपना चौथा विवाह बाँसवाड़ा के सिसोदिया महारावल विष्णुसिंह की पुत्री बखत कुमारी के साथ सम्पन्न किया। हाड़ा राजा की पहली राठौड़ वंशीय रानी के गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र ने जन्म लिया पर भाग्य के दुर्योग से इस प्रतापसिंह नामक कुमार की उम्र लंबी न थी वह अपनी शैशवावस्था में ही मर गया। बांसवाड़ा वाली रानी बखत कुँवरी के गर्भ से राजा को दूसरे कुमार विष्णुसिंह की प्राप्ति हुई जो पुण्यचित्त और चिरंजीव था। हाड़ा राजा के चार रानियों के अतिरिक्त एक चन्द्रशोभा नामक गुणवती पासवान भी थी जिसने राजावत रानी के साथ राजा के स्वर्गवास हो जाने पर अग्निस्नान कर सहगमन किया।

व्याह तीन कीनें भूप अनुज बहादुर नै,
पाये सुत पंच रु सुता दुव जस प्रकास।
झल्ल बखतेस की सुता सो गर्गराटपुर,
पत्नी बड़ी व्याही चंद्रकुमरि अभिख्या तास।
रट्ठऊरि दूजी राजकुमरि बिबाह्यो बीर,
बीकानैर भूप गजसिंह की सुता जो आस।
सूरजकुमरि तीजी जादवी अमरदुर्ग,
भैरवादिचंद्र सुता परन्यों सबय भास॥५॥

हाड़ा राजा अजीतसिंह के छोटे भाई बहादुरसिंह ने तीन विवाह रचाये

और उसके पाँच पुत्र तथा दो पुत्रियाँ जन्मीं। गर्गराटपुर के स्वामी झाला बखतसिंह की चन्द्रकुमारी नामक पुत्री से हाड़ा बहादुरसिंह ने अपना पहला विवाह किया। उसने दूसरा विवाह बीकानेर के राठौड़ राजा गजसिंह की राजकुमारी नामक कन्या के साथ सम्पन्न किया। बहादुरसिंह की तीसरी पत्नी अमरगढ के यादव भैरवचन्द्र की पुत्री सूरजकुमारी थी जो कुमार की हमउम्र और सुन्दर थी।

ताही जादवी कै रामसिंह बलवंत बलि,
दलपतिसिंह चोथो सामंतादिसिंह सुत।
ताही को द्वितीय नाम जीवन बखानैं जग,
जानों पंच पंचम कनिष्ट सेरसिंह जुत।
ताहीकै सुता द्वै तँहँ------ कुमरि जेठी,
------कुमार दूजी जे न परनी प्रनुत।
भ्राता बलवंत सम थान हेरि हार्‌यो हंत,
इंद्र कौं कै देतो व्याहि चंद्र कौं कै जाइ उत॥ ६॥

इसी यादव पत्नी से हाड़ा बहादुरसिंह के पाँच पुत्र जन्में जिनमें से पहला रामसिंह, दूसरा बलवंतसिंह, तीसरा दलपतसिंह और चौथा सामन्तसिंह जिसका अवर नाम जीवनसिंह भी प्रसिद्ध था हुए। पुत्रों के इस पंचक में पाँचवा पुत्र शेरसिंह नामक था। इन पाँच पुत्रों के अतिरिक्त बहादुरसिंह के दो पुत्रियाँ भी थीं जिनके नाम ज्ञात नहीं पर दोनों ने विवाह नहीं किया क्योंकि इनका भाई बलवंतसिंह उनके अनुरूप वर की हैसियत वाले कुमारों को ढूंढता-ढूंढता थक गया, पता नहीं वह अपनी बहिनों का विवाह इन्द्र अथवा चन्द्रमा से करना चाहता रहा होगा।

भूपति अजा के भ्रात तजि सरदार ब्याह,
च्यारि करि पाये सुत तीन सुता इक्क सह।
झल्ली नानते की बडी पतनी बिबाह्यो एह,
जोरावर कन्या अभैकुमरि स नाम सह।
बीकानेरपुर की बिबाह्यो बर दूजे ब्याह,
नाम इंद्रकुमरि अनंद सुता मंडि मह।

तीजी उनियारे की नरूकी सरदार सुता,
बखतकुमारि नाम व्याही बिंद उक्त अह ॥७॥

हाड़ा राजा अजीतसिंह के भाई बहादुरसिंह से छोटे भाई सरदारसिंह ने चार विवाह रचाये और उसके चार ही सन्तानें जन्मीं जिनमें से तीन पुत्र और एक कन्या थी। कुमार सरदारसिंह ने पहला विवाह नानते के स्वामी झाला जोरावरसिंह की अभय कुमारी नामक पुत्री के साथ रचाया। उसने बीकानेर के राठौड़ आनन्दसिंह की पुत्री इन्द्रकुमारी से उत्सव पूर्वक दूसरा विवाह किया। तीसरा विवाह उसने उणियारा के नरूका सरदारसिंह की पुत्री बखतकुमारी के साथ उचित लग्न के दिन किया।

दोहा

बाधनवारे की बहुरि, उदयभानु कुल धारि।
अखयसिंह तनया बरी, चोथी सुनय कुमारि ॥८॥
जेठो सुत जेठी जन्यौं, ईश्वरिसिंह सनाम।
दूजी दूव सुत इक सुता, त्रितय जन्यौं बिधि ताम॥९॥
क्रम करि इह दूजो कुमर, देबीसिंह उदार।
तीजो पृथ्वीसिंह यह, भो व्यसु सिसु गद भार॥१०॥
याही कै इक अंगजा, जेठी सब तैं जोहि।
खूबकुमरि निज जनक खिन, सोपुर व्याही सोहि॥११॥

उसकी चौथी पत्नी बांदनवाड़ा के राठौड़ कुल की थी। जो वहाँ के जागीरदार अक्षयसिंह की सुनय कुमारी नामक थी। सरदारसिंह की ज्येष्ठ पत्नी के गर्भ से ज्येष्ठ कुमार ईश्वरीसिंह ने जन्म लिया। क्रम से उसकी तीसरी पत्नी के गर्भ से दो पुत्र और एक पुत्री जन्में। इनमें से पहले पुत्र का नाम देवीसिंह था और दूसरे का पृथ्वीसिंह था जो जन्मते ही थोड़े दिनों में रोग ग्रसित होकर मर गया। सरदारसिंह की इस तीसरी पत्नी से एक पुत्री भी थी जो उसके दोनों पुत्रों से बड़ी थी। खूब कुमारी नामक अपनी इस पुत्री का विवाह सरदारसिंह ने अपने पिता की विद्यमानता में ही सोपुर के गौड़ राजा राधिकादास के साथ सम्पन्न करवाया।

गोर राधिकादास नृप, जो परन्यों जस जुत्त।
इक खवासि सरदार कै, हुव ताकै दुव पुत्त ॥१२॥
नाम पहार सुरूप जे, जेठो अज्जहु आहि।
पहु अप्पहु काका कहत, जथा कुलक्रम जाहि ॥१३॥
दीप तनय सुरतान हुव, नगर कापरनि नाह।
बधू उभय तानैं बरी, लह्यो प्रजा चउ लाह ॥१४॥
प्रथम कूरमी रामपुर, राजाउत्ति द्वितीय।
नाम गुलाबकुमारि तस, हुव जेठी इक धीय ॥१५॥

इन चारों पत्नियों के अतिरिक्त कुमार सरदारसिंह के पासवान भी थी जिसकी कोख से दो पुत्र जन्में बड़ा पहाड़सिंह और छाटा स्वरूपसिंह। हे राजा रामसिंह! इन दोनों में से पहाड़सिंह तो आज भी विद्यमान है जिसे आप काका कहते है (यह उसी का पुत्र है) कापरनी के स्वामी हाड़ा दीपसिंह का जो पुत्र सुरतानसिंह था उसने तीन विवाह किये और अपनी सन्तति का सुख भोगा। उसकी पहली पत्नी कछवाहा वंशीय जो रामपुर की थी और दूसरी राजावत थी। कछवाहा वंशीय गुलाबकुंवरी के एक लड़की जन्मी जो सबसे बड़ी थी।

सो व्याही नरउर नृपहिँ, ताके सोदर तीन।
औरस राजाउत्ति कै, प्रकटे सुनहु प्रबीन ॥१६॥
सुत जेठो सामंत हुव, दूजो सगत स गाम।
तिनको अनुज प्रयाग दुव, अनुज असुत मृन ताम ॥१७॥
नृप के भ्रात खवासि भव, जिहिँ सिवसिंह सुभाइ।
बिजय सुता पद्मावती, बरी जोधपुर जाइ ॥१८॥
तास अनुज संग्राम बर, बरी कृष्णगढ द्रंग।
अभयकुमरि सरदारजा, निज अग्रज नृप संग ॥१९॥

इस गुलाबकुंवरी की पुत्री का विवाह नरवर के राजा के साथ हुआ इसके तीन छोटे भाई थे। दूसरी पत्नी जो राजावत वंशीय थी उसकी कोख से जो पुत्र जन्में उनमें बड़ा सामन्तसिंह और छोटा शत्रुसाल था। इन दोनों से छोटा

प्रयागसिंह था जो निसंतान मरा। हाड़ा राजा अजीतसिंह के एक पासवनिया भाई शिवसिंह था जिसने जोधपुर जा कर राजा विजयसिंह की पुत्री पद्मावती से विवाह किया। इसी तरह राजा का दूसरा पासवानिया भाई संग्रामसिंह जो शिवसिंह से छोटा था उसने किशनगढ़ जाकर रूपनगढ़ के राजा सरदारसिंह की पुत्री अभयकुमारी से तब विवाह किया जब राजा अजीतसिंह स्वयं विवाह करने किशनगढ़ गये थे अर्थात् वह संग्रामसिंह जो अजीतसिंह का बराती था स्वयं भी विवाह कर आया।

अनुजन जुत अजमल्ल के, पहु इम व्याह प्रजादि॥
गदित भूत भावी गिनहु, अब बत्तन क्रम आदि ॥२०॥
सूचित सक अजमल्ल इम, पायो बुंदिय पट्ट॥
पद श्रीजित उम्मेद पहु, बह्यो पुरातन बट्ट॥२१॥
तदनंतर सूचित सकहि, श्रीजित सावन मास॥
पतनी जुत पुष्कर गयो, न्हावन प्रीति प्रकास॥२२॥
नगर कृष्णगढ पति गयो, श्रीजित कों तँहँ लैन॥
आयो तब चहुवान इत, अधिप बहादुर अैन॥२३॥
महिमानी अति रचि मुदित, सनमानिय सह सत्थ॥
मिल्यो रान अरिसिंहहू, हुतो संकुचित तत्थ॥२४॥

हे राजा रामसिंह! हाड़ा राजा अजीतसिंह के छोटे भाइयों ने उपरोक्त वर्णित विवाह किये और विवरणानुसार इनकी सन्ततियों का खुलासा भी मैंने (ग्रंथकार ने) कर दिया। मैंने जिस क्रम से उन्हें बताया है इसी क्रम से आप उन्हें पूर्व और पश्चात् के समय के अनुसार समझ लें! मैंने पूर्व में बताया उसी के अनुसार राजा अजीतसिंह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्ताईस में बून्दी की राजगद्दी पर बैठा वहीं पूर्व राजा उम्मेदसिंह 'श्रीजित' की पदवी ले कर परंपरा से चले आए मार्ग का अनुसरण करता हुआ वानप्रस्थी बना। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ सत्ताईस में पूर्व राजा उम्मेदसिंह जब अपनी रानी सहित पुष्कर की तीर्थयात्रा करने गया तब श्रीजित के पुष्कर आने के समाचार पा कर किशनगढ़ का राजा बहादुरसिंह उन्हें अपने घर (किशनगढ़) पधारने की मनुहार करने पुष्कर गया। राठौड़ राजा के आग्रह पर तब राजा उम्मेदसिंह

पुष्कर से किशनगढ़ गया। राजा बहादुरसिंह ने पूरा राजसी सत्कार कर राजा उम्मेदसिंह को अपने यहाँ रखा। हाड़ा राजा उम्मेदसिंह की यहाँ तब महाराणा अरिसिंह से मुलाकात हुई जो इन दिनों (अपने सिंधी सिपाहियों की तनख्वाह नहीं बाँट पाने के कारण) संकुचित सा किशनगढ़ में टिका हुआ था।

चर्च्चरिका

सिक्ख कैं चहुवान श्रीजित मग्ग बुंदिय को लयो,
होय जैपुर सीम आनि मिलान नासरदा दयो॥
राजसिंह हमीरदेव कुलीन नासरदा पुरी,
कुम्म को कटकेस हो सु मिल्यो रची हित चातुरी॥२५॥
अद्दरी महिमानि ओ रहि रत्ति संभर हंकयो,
मोद सौं दरकुंच मंडत आनि आश्रम मैं ठयो॥
यौं उदैपुर देस मैं अति दंद संधिन नैं कर्यो,
दै जरीब समस्त ग्रामन मैं चढ्यो हक जो भर्यो॥२६॥

थोड़े दिनों के आतिथ्य के बाद बून्दी के पूर्व चहुवान राजा उम्मेदसिंह ने राठौड़ राजा से विदाज्ञा लेकर बून्दी लौटने का मार्ग लिया। यहाँ से चल कर राजा ने रास्ते में पड़े नासरदा नामक गाँव में रात्रि मुकाम किया जो जयपुर राज्य का गाँव था। इस नासरदा का स्वामी हमीरदेव का वंशज राजसिंह जो जयपुर की कछवाहा सेना का सेनापति था वह आ कर राजा उम्मेदसिंह से मिला और पूरे आग्रह और सत्कार के साथ उसने अपने यहाँ हाड़ा राजा को रात्रि विश्राम करवाया। प्रात:काल हाड़ा राजा अपने आश्रम में आया। उधर उदयपुर के राज में सिंधी सिपाहियों ने वेतन की राशि नहीं मिलने के कारण उपद्रव मचाना आरंभ किया और इसमें उन यवन सिंधियों ने खालसा के गाँवों में जरीब से नाप-नाप कर जमीन लेना शुरू किया ताकि वे अपने उधार की वूसली कर सकें।

दोहा

इत सक मुनि दृग धृति प्रमित, सप्तमि पोस मिलाप।
अजितसिंह नृप कै भयो, पहिलों कुमर प्रताप॥२७॥
सकुचि रान अरिसिंह इत, रह्यो कृष्णगढ जानि।
आये संधी उदयपुर, हक निज लैन प्रमानि॥२८॥

बडो रान अरिसिंह को, सुत हम्मीर कुमार।
सो गहि आन्यौं निज निलय, बिरचि अनीति अपार॥२९॥

तदपि न हक रूप्पय मिले, संधी तब करि मंत्र।
दै जरीब कर देस तैं, लग्गे लैन स्वतंत्र॥३०॥

अजितसिंह बुंदीस इत, पुनि सुनि मैंनन दोर।
सेना निज चतुरंग सजि, चढ्यो बिड़ारन चोर॥३१॥

सक मुनि लोचन धृति समय, सित पख फग्गुन श्राम।
नगर टौंकड़ा जाय निज, किन्नैं कटक मुकाम॥३२॥

इधर बून्दी में विक्रम संवत् के इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ सत्ताईस के पोष माह के आरंभ में सप्तमी तिथि के दिन राजा अजीतसिंह को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई अर्थात् कुमार प्रतापसिंह ने जन्म लिया। उधर महाराणा अरिसिंह तो जानबूझकर किशनगढ़ में ठहरे हुए थे और पीछे से उदयपुर नगर में सिंधी यवनों ने अपना हक लेने को प्रवेश लिया। उन्होंने महाराणा के पुत्र हम्मीरसिंह को पकड़ लिया और अनीतिपूर्वक उसे ला कर अपने एक घर में बंद कर दिया। इस पर भी जब सिंधी सिपाहियों को उनके माँगते रुपये नहीं मिले तो उन्होंने मंत्रणा कर राज के गाँवों से कर वसूलना आरंभ किया। इधर बून्दी में भी राजा अजीतसिंह ने सुना कि उसके राज के विद्रोही मीणा लोग फिर से लामबंद होने लगे हैं तो वह अपनी सेना सज्जित कर उन चोरों को दण्ड देने निकला। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्ताईस के फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष में हाड़ा राजा ने टोंकड़ा नामक पुर में जाकर सेना सहित अपना पड़ाव डाला।

भुजङ्गप्रयातम्

तहाँतै चढ्यौं संभरी पट्ट ताजी, बढी सेन भेरीन पैं रीठ बाजी॥
भयो भारतैं जंत्र कौं इच्छु भोगी, बन्यों खीन व्यालीन तैं बिप्रयोगी॥३३॥

छटा मेल सौं सेल आकास छाये, मनौं सत्र मैं डब्भ ठट्ठे न माये॥
रचैं चाप टंकार संका रचावें, मनौं पिंजनी तूल झुंफुं मचावै॥३४॥

चमंकैं जुरी टोप सन्नाह आली, किंधौं संग कादंबिनी रंग काली॥
रजैं यौं ध्वजा मत्त हाथीन राखी, सरू के खरे संख पै जानि साखी॥३५॥

बिजै कौं नकीबावली अग्ग बोलैं, हिये हेत फुल्लैं रु हुल्लैं हरोलैं ॥
लगे संग द्रम्मामि सिंधू लगावैं, जथा कोप उच्छाह थाई जगावैं ॥३६॥

यहाँ से बून्दी का पाटवी अर्थात् राजा घोड़े पर आरूढ़ हो बढ़ा उसके साथ सेना चली और रणभेरियाँ बज उठीं। सेना के प्रयाण से बढ़े भार के कारण शेषनाग निचुड़ कर ऐसा हो गया जैसे इक्षुयंत्र (चरखी) में पिला हुआ गन्ना हो। वह नाग इस समय अपनी नागिनों से विमुख हो स्वयं भी वियोगी हो गया। पूरा आकाश सेना के भालों से आच्छादित हो ऐसा हो गया मानो ये खड़े किये डाभ (दर्भ) यज्ञ स्थल पर नहीं समाते हों। वीरों के धनुष की प्रत्यंचाएं यों टंकार कर उठीं मानों रूई धुनने की धुनकी झंकृत हो उठी हो। टोप और कवचों से सज्जित सैनिकों की पंक्तियां ऐसी शोभा देने लगी मानों सेना के साथ मिल कर काले रंग की घटा भी चली हो। मस्त चाल से चलने वाले हाथियों की पीठ पर ध्वजाएँ यों शोभित होने लगीं मानो पर्वतों पर सरू के वृक्ष खड़े हों। सेना के आगे चलती नकीबों की पंक्तियाँ वीरता के ऐसे बोल बोलने लगीं जिन्हें सुन कर वीरों के हृदय प्रफुल्लित होने लगे और वे बढकर हरावल में आने लगे। साथ ही चलते दमामी (ढोली) सिंधु राग अलापते वीरों में क्रोध का स्थाई भाव और उत्साह जगाने लगे।

कुसा मैं तुले जात यौं बाजि कंधें, बहैं चाप चिल्लान ज्यौं एन बंधे ॥
उडैं ओझकै छाँह उच्चेष्ट होती, करै कर्तरी होड हल्लै कनोती ॥३७॥

जगैं ग्राव पैं नाल फुल्लिंग ज्वाला, मनौं गोचरी होत खद्योत माला ॥
फबैं प्रोथ फुल्लेन मैं स्वास फुक्कैं, किधौं ग्राम्य हुक्का तयेहीन कुक्कैं॥३८॥

पृदाकू तथा गाररू हत्थ पोयो, परयो बैलके नासमें नत्थ पोयो ॥
उदै अक्क के चक्क यौं सज्जि आयो, लये बिंटि मैनाँ मनो मेघ छायो ॥३९॥

अपनी लगामों के संतुलन भरे खिंचाव से चलायमान होते घोड़ों के कंधे यों चले जैसे धनुष की प्रत्यंचा में बंधे हरिण जाते हैं। अपनी ही छाया को ऊपर नीचे होते देखकर चमकने वाले इन घोड़ों की कनोती (दोनों कान) हिलने में कैंची से होड़ लेने लगी। इन घोड़ों के चलते समय पाँवों में लगी खुरतालें जब राह के पत्थरों से घर्षण करती है तो झरते अग्निकण यों लगते हैं मानों अंधेरे में जुगनुओं की पक्तियाँ हों। विचरण करने से तेज चलती साँसे उनके नासाछिद्रों में आती-जाती यों बजने लगीं जैसे किसी ग्रामीण पुरुष का

बिना सुलफे का हुक्का 'गुड़गुड़' बोल रहा हो। अथवा किसी सपेरे के हाथ में पकड़ा हुआ सर्प फूंकार रहा हो या फिर बैल नाक में नाथ डालने के बाद फूंकार कर रहा हो। वह हाड़ा राजा सूर्योदय होते ही अपनी ऐसी सेना सज्जित कर बढ़ा और मीणा लोगों के ठिकानों को यों घेर लिया मानों आकाश को मेघों ने आ घेरा हो।

दोहा

मैंनन के सब खेट इम, बिंटि लये नृप जाय।
सुनत वेहु सज्जित भये, बल खल अतुल बढाय।।४० ।।

हाड़ा राजा अजीतसिंह ने एक-एक कर मीणा लोगों के सारे खेड़े (गाँव) घेर लिये जब अपने घिरे जाने का उन्हें इल्म हुआ तो वे भी दुष्ट अपना बल प्रदर्शित करने को युद्ध के लिए सज्जित हुए।

षट्पत्

कर मक्खर कोंदड उभय मक्खर गुन ओपित,
उपासंग दृढ उभय पिट्ठि पूरन आरोपित।
कटि अय कठिन कटार बसन दारिम मसि रंगिय,
सिखिचंद्रक धवपत्र कलित सिर ललित किंलकिय।
अपिहित कपाल फैंटा गरद कहि कहि डुडुव लरन किल।
बंसिय बजात अपसव्य कर किलकारत आयें कुटिल।।४१ ।।

मीणा योद्धाओं ने बाँस के बने अपने धनुष उठाये जिन पर बाँस से बुनी हुई रस्सियों की दो-दो प्रत्यंचाएँ लगीं थी। बाणों से भरे दो-दो तरकश उनकी पीठ पर लगे हुए थे वहीं उनकी कमर में लोहनिर्मित कटारी लटक रही थी। दाड़िम के रंग (स्याही) में रंगे वस्त्र उनके बदन पर थे तो मस्तक पर मयूर के पंख और धोकड़ा वृक्ष के पत्तों की कलंगियाँ शोभित थीं। उनका कपाल अधढका पर सिर पर फैंटा (छोटा साफा) बंधा था। ऐसे मीणा वीर 'डू-डू' की ध्वनि अपने मुँह से निकालते हुए शीघ्र ही मुकाबले को उद्यत हुए। कुछ अपने दाहिने हाथ में पकड़ी बंशी बजाते हुए और कुछ कुटिल युद्धोन्माद की किलकारी करते हुए मोर्चे पर आ डटे।

स्योस्यो करि सिव सुमिरि भये सम्मुह मैंनन गन,
इततैं संभर भटन बाजि पटकिय मिलाय मन।
उततैं तीरन ओघ संगि इततैं घट सारत,
हनन सेन उत हक्क इत सु पकरन उच्चारत।
कटि रुंड मुंड सय पय किरत गिरत चाप जीवा जटित।
खननंकि बाढ आयुध खिरत फिरत तून जित तित फटित॥४२॥

'स्यो-स्यो' (शिव-शिव) का उच्चारण कर वे महादेव का स्मरण करते हुए मीणा वीर मुकाबला करने हाड़ा राजा की सेना के समक्ष आए। उन्हें देखते ही हाड़ा राजा के योद्धा अपने घोड़े बढ़ाते हुए बढ़े। सामने से मीणा धुनर्धरों ने तीरों के समूह चलाए तो जवाब में हाड़ा वीरों की बर्छियाँ चलने लगीं। मीणा पक्ष से सेना को मारने के लिए जोश के बोल उच्चारे जा रहे थे वहीं हाड़ा राजा के योद्धाओं की तरफ से 'पकड़ो-पकड़ो' की आवाजें उठीं। थोड़ी ही देर में कहीं हाथ, पाँव और मस्तक कट कर गिरने लगे तो कहीं प्रत्यंचा सहित धनुष गिरने लगे। शस्त्र खनकने लगे और यहाँ-वहाँ कटे-फटे तरकश गिरने लगे।

उलटि जात असवार पलटि तुक्खार प्रबीरन,
ए खंडत तिन्ह अनखि जुलम मंडत वे तीरन।
जाम जुगल इम जुज्झि निबल अब खल सिर नावत,
परे आनि नृप पयन सयन जोरत अकुलावत।
पहु अजितसिंह यह रन प्रथम, करि इम मैंनन जेर किय।
लुटवाय खेट बारह लये, बरस अढारह बय बलिय॥४३॥

तीरों के प्रहारों से कहीं पर बिद्ध सवार गिरने लगे तो कहीं पर घोड़े घायल हो कर गिरने लगे। इस प्रकार के हमलों से उद्विग्न हो कर हाड़ा वीर शत्रुओं पर जुल्म करने लगे अर्थात् उन्हें मारने की सजा देने लगे। वहीं तीर धारी मीणा योद्धा अपने तीरों से शत्रुओं को घायल करने लगे। दो प्रहर पर्यंत तक डट कर मुकाबला करने के बाद मीणा लोग निर्बल हो कर अपना सिर झुकाने लगे। वे तुरन्त समर्पण की मुद्रा में व्याकुल हो हाड़ा राजा के चरणों में आ गिरे। अपने हाथ जोड़ते हुए वे राजा से क्षमा मांगने लगे। हाड़ा राजा

अजीतसिंह ने इस तरह विद्रोही मीणाओं को परास्त किया। अपनी मात्र अट्ठारह वर्ष की उम्र में राजा अजीतसिंह ने मीणा लोगों के बारह खेड़ों (गाँव) को लूट कर यह विजय पाई।

दोहा

चोरी गोबध आदि के, मैंनन लिखित कराय।
सबके सस्त्र गिराय कै, दिय कृषिकर्म लगाय॥४४॥

तब हाड़ा राजा अजीतसिंह ने मीणा लोगों से लिखवा कर यह करार करवाया कि वे भविष्य में गोवध और चोरी जैसा जघन्य अपराध नहीं करेंगे। इस तरह राजा ने अपने विद्रोही मीणा लोगों से समर्पण करवा कर उन्हें कृषि कार्य में लगाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेऽष्टम राशावजितसिंहचरित्रे सपत्नीक श्रीजिदुम्मेदसिंहपुष्करस्नानभूपबहादुरसिंह तत्कृष्णगढा-ऽऽनयनश्रीजि द्राणऽरिसिंह सम्मिलननासरदामार्ग निजाऽऽश्रमाऽऽगमन-बुन्दीन्द्रप्रथम महाराजकुमार प्रतापसिंहोद्भवनज्ञातकृष्णगढराण तिवास-रुद्वतत्पट्टपपुत्र हम्मीरसिंह सन्ध्यु पाख्ययबनशीषोंद्दभूमिभागधेयनि-ग्रहस्वश्रृत्यास्वाप तेयाऽऽदानरावराड़ ऽजितसिंह पुनर्मैणागणविध्वंस-नशस्त्रन्मयासपूर्वकस्तेय गोवधऽदिरो धतल्लेखलेखनं प्रथमो मयूखः आदितः॥३४१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के अजीतसिंह चरित्र में स्त्री सहित श्रीजित का पुष्कर स्नान करना और कृष्णगढ के राजा बहादुरसिंह का उसको कृष्णगढ लाना, श्रीजित का राणा अरिसिंह से मिलना और नासरदा के मार्ग से अपने आश्रम को आना, बून्दी पति के प्रथम राजकुमार प्रतापसिंह का जन्म होना और राणा का कृष्णगढ़ में अत्यन्त रहना जानकर उसके पाटवी पुत्र हम्मीरसिंह को रोककर सिंधी नामक यवनों का सिसोदियों की भूमि का हासिल ले अपनी तनख्वाह का धन लेना, रावराजा अजीतसिंह का फिर से मीणों के समूह को नाश करना और शस्त्रों के प्रहारों से नाश कर के चोरी और गोवध आदि रोकने का उनका लेख लिखाने का प्रथम मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इकतालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पादाकुलकम्

अग्गैं बिनु अपराध जोर जुत, ग्राम मुहा के इक सगताउत॥
हन्यौं हड्डु तस बैर चिंति यँहँ, तमकि भूप अब दल हंकिय तँहँ॥ १॥

मानपुरा रु मुहा निबसथ दुव, मारि बिडारि बिजय लिन्नों धुव॥
बहु सीसोद पकरि करि बिनु मद, आयउ पुर थानौं निज जनपद॥ २॥

तँहँ नरेस किय यह बिचार मन, इततैं नाँहिं रुकत मैंनैं जन॥
यातैं कहुकँ बिहित गढ बंधै, इत तातैं चोरन चित रंधैं॥ ३॥

बिल्लहटा मेवार ग्राम जँहँ, पिक्ख्यो उचित बनायो गढ तँहँ॥
रानाँ सन यह बत्त कहाई, इततैं रुकत न तेय उपाई॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व में बिना ही किसी कसूर के मुहा (महुआ) गाँव के स्वामी शक्तावत ने हाड़ा को मारा था। इस बैर को याद कर राजा अजीतसिंह अपने दल सहित बढ़ा और उसने जाते ही मानपुरा और महुवा दोनों गाँवों पर अपना अधिकार कर लिया। वहाँ के सिसोदिया शक्तावतों को बंदी बना कर उनका दर्प चूर कर राजा वापस अपने जनपद के गाँव थानापुर आ गया। यहाँ ठहरे हुए राजा ने विचार किया कि ये मीणा लोग वैसे तो रुकने वाले है नहीं, क्यों न इनका कोई पुख्ता इन्तजाम किया जाए। यह विचार करते हुए राजा ने सोचा कि यदि यहाँ एक दुर्ग बनाया जाए और उसमें अपने आदमी तैनात किये जाएँ तो इस समस्या का निदान हो सकता है। दुर्ग निर्माण के लिए मेवाड़ देश की सीमा में पड़ने वाला गाँव बिल्लहटा (बिलड़ा) सबसे उपयुक्त स्थान है। इस क्षेत्र का पूरा मुआयाना कर राजा ने उदयपुर के महाराणा के पास सन्देश भिजवाया कि यदि आप अपना यह गाँव हमें दे दें तो हमारी मुश्किल आसान हो जाएगी। यहाँ से हम चोरी-लूट करने वालों पर अच्छी तरह निगाह रखने में सफल होंगे।

यातैं यह तुमरो निबसथ लिय, हम तँहँ दुष्ट दमन गढ बंधिय॥
अपर लेहु हमसों तुम या सम, करहिं रुद्ध यातैं तसकर क्रम॥५॥

बिलहट्टा इस गढ बंधायउ, गढपति रक्खि रु बुंदिय आयउ॥
बसु लोचन धृति सक तदंनतर, एकादसि ससि राध बिसद पर॥ ६॥

गो नृप वंसबहाला व्याहन, सुहृद जन्य सजि अतुल उछाहन ॥
राउल पृथ्वीसिंह सुता प्रिय, बखतकुमरि अभिधान व्याहि लिय ॥ ७ ॥

लगन दिवस बिल्लहटा सिर द्रुत, चढ़े जाजपुर के रानाउत ॥
सुनि श्रीजित चिंतिय बिचार चित, बुंदिय भूप गयो ब्याहन हित ॥ ८ ॥

हम अपना दुर्ग यहाँ बनाना चाहते है यह सोच कर हमने हे महाराणा! आपका गाँव लिया है आप हमसे इस गाँव के बदले में दूसरा हमारा गाँव ले सकते हैं। इस तरह बिलेड़ा गाँव में हाड़ा राजा ने एक दुर्ग बनावाया और मीणा लोगों पर नजर रखने के लिए अपना गढ़पति वहाँ तैनात कर राजा वापस बून्दी लौटा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठाईस के वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि के दिन विवाह करने को राजा अजीतसिंह बांसवाड़ा गया। राजा अपने सुहृदजनों को बराती बना कर रावल पृथ्वीसिंह की पुत्री बखतकुमारी को ब्याहने पूरे ठाट-बाट से गया। बांसवाड़ा में जिस दिन राजा का लग्न था उसी दिन को अच्छा अवसर मान कर जहाजपुर के राणावत बिल्लहटा (बिलेड़ा) दुर्ग पर चढ़ आए। इसकी खबर जब श्रीजित (राजा उम्मेदसिंह) को मिली तो उसने विचार किया कि राजा अजीतसिंह तो विवाह करने गया हुआ है।

इत सु लैन बिल्लहटा आये, रानाउतन बिरोध रचाये ॥
नृप संधा बिगरैं सु न अच्छी, श्रीजित सोचि चढ्यो तब कच्छी ॥ ९ ॥

श्रीजित संग चढी खिल सेना, मानहु सत्थ हिमालय मेना ॥
परे जाय रानाउत दल पर, कतल मची जनु काल प्रलयंकर ॥१० ॥

चलन लगे सर संगि तुपक असि, लगे फिरन गोमायु गिद्ध लसि ॥
भेजा भचकि उडत आकासहिं, लोल रचत कंदुक जनु लासहिं ॥११ ॥

ओपित धनुख बान संधित इम, उत्तरकुरू बिच अमरनदी जिम ॥
ब्रह्मपुरी जिम पुंख बिराजत, सैलन पर सपर्ब सर साजत ॥१२ ॥

भल्ल उदधि संगम गति भासैं, ताहि लखत भीरुन गन त्रासैं ॥
तुपक चलाय भरत हठि हेरत, गोणी बिच कि बीज कृखि गेरत ॥१३ ॥

और पीछे से मौका ताककर बिल्लहटा वापस लेने को राणावत दल-बल सहित आ धमकें हैं ऐसे में क्या किया जाए? यदि कुछ नहीं किया गया

तो राजा की प्रतिज्ञा बिगड़ेगी। यह सोचकर श्रीजित वानप्रस्थी होते हुए भी तुरन्त घोड़े पर आरूढ हुआ। बून्दी में शेष रही सेना (राजा उम्मेदसिंह) श्रीजित के साथ रवाना हुई मानों हिमालय के साथ उसकी पत्नी मेना चली हो। श्रीजित सेना सहित शीघ्र ही बिल्लहटा (बिलेड़ा) पहुँच कर राणावतों के दल पर टूट पड़े और प्रलयकारी मारकाट मचाई। दोनों ओर से तीर, बरछी, तलवार और बन्दूकें चलने लगीं। थोड़ी ही देर में रणभूमि में मस्त गिद्ध और गीदड़ घूमने लगे। कहीं पर किसी वीर का कपाल कट कर उसका भेजा ऊपर की ओर को उछलने लगा मानों कोई लाल रंग की चपल गैंद उछली हो। वीरों के धनुष पर संधान किये हुए बाण यों शोभित होने लगे मानों उतरकुरू (यह धनुषाकार है) देश में गंगा शोभा देती हो। इन बाणों के पीछे लगे पँख तो मानों काशी पुरी हों और तीर की गांठें गंगा के मार्ग में आने वाले पर्वत हों। तीरों के भाल (फल) के संधिस्थल मानों गंगा नदी और समुद्र का संगमस्थल हों जिन्हें देखते ही जैसे पाप डरता है उसी तरह कायर डर कर भागने लगे। वीर अपनी बन्दूक को चला कर हठ के साथ उसमें वापस बारूद आदि भरने लगे मानों नालिया (हल के साथ बांधी जाने वाली बांस की नली जिससे खेत में बीज डाले जाते हैं) में कोई बीज डाल रहा हो।

परत मरत कति मात पुकारत, अकुलावत कुक्कत अति आरत॥
चक्खत प्रेत नयन शृंगाटक, निधरक रचत अछकछक नाटक॥१४॥

फटिफटि निकसि क्लोम फहरावत, दर्पी मह रसना कि दिखावत॥
ऊरत होत बहत असि अैसैं, जान्हवि धार मेरु सिर जैसैं॥१५॥

प्रभु श्रीजित अरि बहु इम पारे, बनिजारन टंडा जनु ढारे॥
मैनन सहित अयुत रानाउत, देखि हत्थ तजि रखत भजे द्रुत॥१६॥

इस भिड़ंत में दोनों पक्षों के कई वीर घायल होकर गिरते हुए 'हे माँ-हे माँ' उच्चारने लगे तो कई घायल हुए वीर व्याकुल हो कर कूकने लगे। वीरों के कट कर गिरे हुए नेत्रों को चुग कर प्रेत उन्हें सिंघाड़े समझ कर खाने लगे और कई प्रेत पूर्ण तृप्ति का नाटक करने लगे। कई वीरों के कटे पेट से तिल्ली बाहर निकल कर हिलती हुई यों लगती है मानों भेंस के मूत्रस्थान को सूंघ कर कोई कामुक भैंसा (महिष) अपनी जीभ निकाल रहा हो। वीरों की तलवारें प्रहार में पहले ऊपर उठ कर शत्रु पर यों गिरने लगीं मानों सुमेरू के

शिखर से गंगा की धारा बहती हो। हाड़ा राजा श्रीजित ने अपने कई शत्रुओं को मार कर भूमि पर शवों के ढेर लगा दिये मानों वहाँ किसी बनजारे ने विश्राम लेने को अपनी बालद ढाली हो। मीणाओं सहित दस हजार की संख्या वाली राणावतों की सेना अपनी युद्ध सामग्री वहीं छोड़ती हुई श्रीजित के समक्ष न टिक पाने के कारण भाग खड़ी हुई।

दोहा

बहु सीसक बारूद बलि, तुपक नालि जंबूर।
इत्यादिक सत्रुन सिविर, सकल छिन्नि लिय सूर॥१७॥

बिल्लहटा के दुर्ग बिच, रखत वहै सब रक्खि।
पहुँच्यो आश्रम गढपतिहि, अप्पहु मरि यह अक्खि॥१८॥

करि उपयम दुलहनि सहित, अजितसिंह इत भूप।
भैंसरोरगढ कुंच करि, आयो रूच्य अनूप॥१९॥

जो माहजि उज्जैन रन, गह्यो चौंडहर मान।
तिँहिँ महिमानीं प्रसभ करि, रक्खो तँहँ चहुवान॥२०॥

राणावतों का दल जो सामग्री छोड़ कर भागा उसमें बारूद, सीसा और छोटी तोपें थी। राजा ने शत्रु शिविर से सारी सामग्री अपने अधिकार में कर ली। इसके बाद बिलेड़ा के गढ़ में यही सारी सामग्री रखवा कर श्रीजित ने किलेदार से कहा कि अब यह सामग्री मर कर ही देना अर्थात् जीते जी मत देना। ऐसे आवश्यक निर्देश दे श्रीजित वापस अपने आश्रम में आया। उधर बाँसवाड़ा से विवाह कर लौटते हुए अनुपम दूल्हा हाड़ा राजा अजीतसिंह दुल्हन सहित भैंसरोड़गढ से कूच कर वापस बून्दी पहुँचा। चूंडा के जिस वंशज मानसिंह ने उज्जैन के युद्ध में महादजी सिंधिया को पकड़ा था। इस मानसिंह चूंडावत ने रास्ते में राजा अजीतसिंह को अथिति सत्कार हेतु हठपूर्वक रोका।

पादाकुलकम्

अग्ग रान जगतेस चौंडहर, सलूमरीस कुबेर सहोदर।
लाल नाम सोल्लह सम थप्प्यो, अरु तिहिँ भैंसरोरगढ अप्प्यो॥२१॥

भो नृप जब अरिसिंह छत्र धरि, तब वह लाल बुलायो अहरि।
अक्खि पुर बग्घोर पधारहु, मामक नाथ पितृव्यक मारहु॥२२॥

पुर बग्घोर सुनत गो पापी, थिर करि द्रोह मिलन की थापी॥
नाथ कहिय तुमरो बिस्वास न, पठबहु कहि आवहु मम पास न॥२३॥
सिव इकलिंग लाल तब बिच दिय, कपटी पुनि अंदर प्रवेस किय॥
नाथ करत सिव पूजन पायो, लाल तास सिर तोरि गिरायो॥२४॥
ताको सुत यह भैंसरोरपति, मानसिंह अभिधान भीरु मति॥
इहिं करि हठ रक्ख्यो नृप आवत, पुनि सु डर्‌यो गढबिच पधरावत॥२५॥

पूर्व समय में उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने चूंडा के वंशज और सलूंबर के जागीरदार कुबेरसिंह के भाई लालसिंह को अपने उमरावों में जगह दी। महाराणा ने लालसिंह को अपने सोलह उमरावों की श्रेणी का जागीरदार बनाते हुए भैंसरोड़गढ की जागीर अता की थी। इसके बाद जब उदयपुर का महाराणा अरिसिंह बना तो इस लालसिंह को उसने आदर सहित उदयपुर बुलवाया। उदयपुर आने पर लालसिंह से महाराणा अरिसिंह ने कहा कि तुम बागोर जा कर (वहाँ) मेरे काका नाथसिंह को मार कर आओ। यह सुनते ही वह पापी लालसिंह बागोर गया और उसने नाथसिंह से मिलने की इच्छा प्रकट की। इस पर नाथसिंह ने कहलवाया की मुझे उस पर विश्वास नहीं है इसलिए उसे मेरे पास मत भेजो और उसे यहाँ से वापस रवाना कर दो। तब लालसिंह ने एकलिंग नाथ की शपथ उठाकर कहा कि आप भरोसा करें। मैं तो यों ही आपसे मिलना चाहता हूँ आपसे कोई छल नहीं करूँगा। ऐसा विश्वास दिला कर वह पापी बागोर के महल में प्रविष्ट हुआ। आगे नाथसिंह शिव-आराधना में मग्न था। इसी अवस्था में जाते ही लालसिंह ने अपनी तलवार से उसका मस्तक काट गिराया। इसी लालसिंह का पुत्र मानसिंह इन दिनों भैंसरोड़गढ का स्वामी था जिसने सुना कि बून्दी का हाड़ा राजा आ रहा है तो उसने हठपूर्वक मनुहार कर राजा को अपने यहाँ ठहरा कर भोज देना चाहा। हाड़ा राजा ने मन ही मन डरते हुए उसके महल में जाने की बात स्वीकार नहीं की।

दोहा

सामग्री तब गोठि की, दिन्नी सिविर पठाय।
गृह न दिखायो बहम बस, जिन इनकै गढ जाय॥२६॥

सरिता चम्मलि बंभनी, दोउन संगम तत्थ।
अट्ठोत्तरसत धेनु दिय, संभर नाह समत्थ॥२७॥
चढि प्रातहि दरकुंच रचि, रनपटु संभर राय।
सक बसु दृग धृति सुक्र मैं, प्रबिस्यो बुंदिय आया॥२८॥

उधर मानसिंह ने भी भोज हेतु सारी खाद्य-सामग्री हाड़ा राजा अजीतसिंह के शिविर में पहुँचा दी। उसने भी हाड़ा राजा को अपना घर नहीं दिखाया क्योंकि वह डर रहा था कि दुर्ग दिखाने पर कहीं मेरा दुर्ग उनके अधिकार में न चला जाए। चंबल और ब्राह्मणी दोनों नदियों के संगम स्थल पर हाड़ा राजा ने एक सौ आठ गायों का दान किया। फिर वह चहुवानों का समर्थ स्वामी अगले प्रात:काल वहाँ से रवाना हुआ। इस तरह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठाईस के ज्येष्ठ मास में हाड़ा राजा अजीतसिंह बाँसवाड़ा से विवाह कर वापस बून्दी पहुँचा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेऽष्टमराशोवजितसिंह चरित्रे स्मृतपुरातन बन्धु वैररावराण मानपुरामुहाग्रामेशऽऽदिशीर्षोद्दनिग्रहण स्वराष्ट्रथाणापुराऽऽगमन राणाग्रामविल्लहटास्वदुर्ग बन्धनतत्स्यर्द्धिग्राम निविविदिपुराणा ऽनुनयनबुन्द्यागत प्रस्थितरावराड्वंशबलहाला-पुरेशशीर्षोद्दराउलपृथ्वीसिंह दुहितोद्वहन पश्चाद्राणाउत्तसैन्य विल्लहटावेष्टनश्रुतशात्रवश्रीजित्तत्समायोधन कृत विजयस्वाश्रमा ऽऽगमनस्वीकृत चुण्डाउत्तमानसिंह सत्कार सम्भरेशस्वपुर प्रविशनं द्वितीयो मयूखः आदितः॥३४२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के अजीतसिंह के चरित्र में, पहिले का भाई का वैर याद करके रावराजा का मानपुरा और महुवा के पति सिसोदियों को पकड़ना और अपने देश थाणापुर में आना, राणा के ग्राम बीलहटा में अपना गढ़ बांधना और उसकी बराबर का ग्राम निश्चय ही ले लेने का राणा को विनय करना, बून्दी आकर प्रस्थान करके रावराजा का बांसवाड़ा पुर के पति सिसोदिया रावल पृथ्वीसिंह की पुत्री से विवाह करना और पीछे से राणावतों की सेना का बीलहटा को घेरना सुनकर उन शत्रुओं से श्रीजित का युद्ध करना और विजय करके अपने आश्रम में आना, चूंडावत मानसिंह का सत्कार स्वीकार करके रावराजा का अपने पुर बून्दी में

आने का दूसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बयालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

ऋतु पाउस अंतर तदनु, नृप कै कुमर प्रताप।
कृष्णगढप दौहित्र वह, गत हुव रोग अमाप॥ १॥

तदनंतर याही बरस, सित दसमी इस मास।
पतनीजुत श्रीजित चल्यो, प्राची तीरथ आस॥ २॥

हे राजा रामसिंह! पावस ऋतु के व्यतीत हो जाने पर हाड़ा राजा अजीतसिंह का कुमार प्रतापसिंह जो किशनगढ़ का भानजा था रोगग्रस्त हो चल बसा। इसके बाद इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ अठाईस के आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन श्रीजित (पूर्व राजा उम्मेदसिंह हाड़ा) अपनी पत्नी के साथ पूर्व दिशा में तीर्थाटन को रवाना हुआ।

पादाकुलकम्

प्रथम गयो केसवपुरपट्टनि, न्हान दान किय तत्थ उचित भनि॥
इस के अंत ग्रहन ससि के पर, सुबरन भूमि दये पुनि संभर॥ ३॥

इंद्रगढाधिप भक्तराम जँहँ, आयो मिलन लैन संभर कँहँ॥
प्रसभपुब्ब कर जोरि अरज करि, स्वीय निलय लैगो हित अनुसरि॥ ४॥

तँहँ श्रीजित दुव रत्ति बिताई, पुनि ब्रजभूमि हंकि द्रुत पाई॥
गिरि गोवर्द्धन दीपमाल दिन, न्हान दान किय कथित हड्डु इन॥ ५॥

पुनि मथुरा करि उचित रीति सब, अतुल दान वृंदावन किय अब॥
पुनि दरकुंच कडामानिकपुर, सुरतटिनी न्हायो संभर सुर॥ ६॥

श्रीजित बून्दी से प्रस्थान कर सर्वप्रथम केशवपुर पाटण गया जहाँ उसने स्नान कर उचित दान किया। आश्विन माह के अंत में (पूर्णिमा के दिन) चन्द्रग्रहण के अवसर पर चहुवान राजा ने स्वर्ण और भूमि का दान किया। यहीं पाटण में इन्द्रगढ़ का स्वामी भक्तराम अपने स्वामी से मिलने और मनुहार करने उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़ कर हठपूर्वक आग्रह किया और श्रीजित को अपने घर मेहमान बनाकर ले गया। यहाँ इन्द्रगढ़ में

श्रीजित दो दिन ठहरा और यहीं से आगे ब्रज भूमि की यात्रा के लिए रवाना हुआ और दीपावली के दिन श्रीजित ने गोवर्द्धन पर्वत पहुँच कर स्नानदान आदि किया। इसी तरह मथुरा पहुँच कर दान किया और यही सिलसिला वृन्दावन में भी निभाया। यहाँ से कूच कर चहुवान (देव) कड़ा मानिकपुर पहुँचा जहाँ उसने गंगा नदी में स्नान किया।

करि उपवास दान बिधि संजुत, दरकुंचन पहुँच्यो प्रयाग द्रुत॥
बपन न्हान उपवास दान बिधि, करि अरु कृपन लयो कासी निधि॥ ७॥

चेतसिंह कासीपुर भूपति, लैगो सम्मुह आय महामति॥
तँहँ निज धाम राजमंदिर रहि, चतुर समस्त उचित सद्विय चहि॥ ८॥

अजितसिंह बुंदिस भूप इत, आयो नगर इद्रंगढ धरि हित॥
तब सम्मुह कल्ल्यानखेट तक, भक्तराम पहुँच्यो भट नायक॥ ९॥

लैगो नृपहिं बधाय निजालय, रक्ख्यो अति सतकारि निपुन नय॥
तँहँ जेठो भट भक्तराम सुत, कुमर नाम सनमान बिनय जुत॥१०॥

तीर्थयात्रा के नियमानुसार उपवास और दान करता हुआ दर कूच दर मंजिल राजा प्रयागराज पहुँचा। यहाँ राजा ने मुण्डन करवाया फिर स्नान किया। उपवास रखते हुए दान आदि सम्पन्न कर उस कृपण ने अन्ततः काशी रूपी निधि प्राप्त की। श्रीजित के बनारस पहुँचने पर वहाँ का राजा चेतसिंह मिलने आया और महामति हाड़ा राजा को अतिथि बना कर अपने महलों में ले गया। यहाँ महलों में रह कर चतुर राजा ने वेदोक्त विधि से सभी कर्म सम्पन्न किये। इधर हाड़ा राजा अजीतसिंह बून्दी से इन्द्रगढ़ आया तो उसका स्वागत करने को इन्द्रगढ़ का जागीरदार भक्तराम कल्याणीखेड़ा नामक गाँव तक अगवानी करने को चल कर आया। वह स्वागत कर अपने स्वामी को अपने घर ले गया जहाँ राजा की पूरी आवभगत की। यहाँ हाड़ा राजा अजीतसिंह ने भक्तराम के ज्येष्ठ पुत्र कुमार सन्मानसिंह को बुलवाया।

ताहि बुलाय भूप हड्डुन पति, अभ्युत्थान दयो अद्दरि अति॥
यह नवीन किन्नौं नृप आदर, आयो रहि दिन पंच निज नगर॥११॥

उदयनैर इत संधी जवनन, हक लिय चुकि मेवार मुलक्क सन॥
छलसिसु मैं न मिले करि मानहिं, लैन गया इत कृष्णगढ रानहिं॥१२॥

कछु दिन रान बिसास न किन्नौं, पुनि संधिन को आसय लिन्नौं ॥
तब अरिसिंह चल्यो निज देसहिं, स्वसुरहु गो पहुँचान नरेसहिं ॥१३ ॥
निज जनपद रानहिं प्रबिसायो, तब रट्ठोर कृष्णगढ आयो ॥
इत जसवंत देवगढ स्वामी, हुव छलबाल सहाय हरामी ॥१४ ॥

इस अवसर पर खड़े होकर राजा ने कुमार को ताजीम प्रदान की। पहली बार बून्दी के किसी राजा ने यह सम्मान दिया। राजा अजीतसिंह इन्द्रगढ़ पाँच दिन ठहरा फिर वापस बून्दी लौट आया। उधर उदयपुर में सिंधी यवन सिपाहियों को उनकी तनख्वाह की शेष रकम चुका दी गई। ये सिंधी अपनी बकाया राशि के लिए उपद्रव करते रहे पर छल बाल (रत्नसिंह) के पक्ष में नहीं गए। जब चुकारा हो गया तो ये अपने महाराणा को बुलाने हेतु किशनगढ़ गए। थोड़े दिन तो महाराणा ने उनका विश्वास नहीं किया फिर अरिसिंह ने उनके किशनगढ़ आने के प्रयोजन का पता लगाया। जब महाराणा को भरोसा हो गया कि इनका बकाया चुक गया है और ये सचमुच उसे लेने आये हैं तब महाराणा अरिसिंह उदयपुर जाने को रवाना हुआ। इस अवसर पर उसका स्वसुर किशनगढ़ का राठौड़ राजा उसे पहुँचाने गया और महाराणा को उसके प्रांत में प्रवेश कराने के बाद ही वह वापस किशनगढ़ लौटा। उधर देवगढ़ का रावत जसवंतसिंह महाराणा का पक्षद्रोही बन कर रत्नसिंह के खेमे में चला गया।

पृथ्वीसिंह भूप कूरमपति, निज दौहित्र जानि रचि बिन्नति ॥
सुत लघु सहित जाय जैपुर सठ, अरिसिंहहिं मारन मंड्यो हठ ॥१५ ॥
राजसिंह हम्मीरदेव हर, सेनापति फारयो तँहँ सत्वर ॥
जद्दुन कों तजि कछुक अनख लहि, समरू हुतो फिरंगी तत्थहि ॥१६ ॥
सो पठयो अरिसिंह हिं मारन, कुप्पि चल्यो समरू रन कारन ॥
दै कछु दम्म मिलाय ताहि लिय, रान रु समरू भये मित्र प्रिय ॥१७ ॥
रान साम पंडेर ग्राम करि, भरतपुरहि पुनि गो सु गर्ब भरि ॥
इत अरिसिंह उदैपुर आयो, संधिनजुत निज अमल जमायो ॥ १८ ॥

जयपुर के कछवाहा राजा पृथ्वीसिंह को अपना भानजा मानते हुए मनाने की विनती करने के लिए जसवंतसिंह अपने छोटे बेटे के साथ जयपुर

गया। यहाँ पहुँच कर उस दुष्ट जसवंतसिंह ने अपने स्वामी महाराणा अरिसिंह को हठपूर्वक मारने हेतु सहायता मांगी पर हम्मीर देव के वंशज और जयपुर के सेनापति राजसिंह ने उसे सहायता देने से मना कर दिया। इस समय नाराज हो कर जाटों को छोड़ देने के बाद वह फिरंगी समरू वहीं था। जसवंतसिंह ने इस समरू को तैयार कर अरिसिंह को मारने हेतु भेजा। वह भी युद्ध करने तत्काल रवाना हुआ पर महाराणा अरिसिंह ने उसे रुपये दे कर अपने पक्ष में कर लिया और वह अरिसिंह का मित्र हो गया। उसने पंडेर गाँव में महाराणा से संधि की और धन लेकर वहीं से वह फिरंगी दर्प से भरा भरतपुर लौट आया। पंडेर से चलकर अरिसिंह उदयपुर पहुँचा और सिंधी यवन सिपाहियों की सहायता से उदयपुर पर पुनः अपना अधिकार किया।

भीम सलूमरि नाह हुकम लहि, चुँडावत आयो किल्ल चहि॥
कछु छलकरि सिसु सचिव डरायो, खाली गढ चित्तोर करायो ॥१९ ॥

तदनु रान पठयो बुंदिय दल, बिल्लहटा तुम लयो अप्प बल॥
रक्खन ताहि चित्त जो लावहु, तो यँहँ सेवन अनुज पठावहु ॥२० ॥

रुप्पय लक्ख पटा तिहिँ दैहैं, बिल्लहटाह दत्त गिनि लैहें॥
यह सुनि नृप निज अनुज बहादुर, पठयो दै भट संग उदयपुर ॥ २१ ॥

काका अर्जुनसिंह रान तँहँ, पठयो सम्मुह सुनत हड्ड पँहँ॥
दै तिहिँ पटा सुभट निज थप्प्यो, बिल्लहटासु तदपि नहि अप्प्यो ॥२२ ॥

इसके बाद महाराणा अरिसिंह से आज्ञा पा कर सलूंबर का स्वामी भीमसिंह चूंडावत चित्तौड़गढ़ के दुर्ग पर अधिकार करने आया। उसने चित्तौड़ पहुँच कर रत्नसिंह के सचिव को डरा-धमका कर दुर्ग खाली करवा लिया। इसके बाद महाराणा अरिसिंह ने बून्दी शिकायत भरा पत्र लिख कर भिजवाया जिसमें लिखा था कि हे हाड़ा राजा! तुमने छल-कपट से हमारा बिलेड़ा गाँव हथिया लिया है यदि उसे अपने अधिकार में रखना चाहते हो तो अपने छोटे भाई को हमारी नौकरी में भेजो। यदि वह हमारी चाकरी कबूल करे तो हम उसे एक लाख की जागीर का पट्टा देंगे उसमें बिलेड़ा भी सम्मिलित कर देंगे। महाराणा अरिसिंह का ऐसा पत्र पाकर हाड़ा राजा अजीतसिंह ने अपने छोटे भाई को अपने कुछ सामन्त योद्धाओं के साथ उदयपुर रवाना किया। अरिसिंह ने भी हाड़ा राजा के भाई के आगमन के समाचार सुनकर

अपने काका अर्जुनसिंह को पेशवाई के लिए सामने भेजा। हाड़ा राजा के भाई को उदयपुर आने पर महाराणा अरिसिंह ने अपना नया सामन्त बनाते हुए जागीर का पट्टा दिया पर इस जागीर में बिलेड़ा नहीं दिया।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावजितसिंह-चरित्रे बुन्दीन्द्रमहाराजकुमारप्रतापसिंहदेहत्यजन श्रीजित्प्राचीतीर्थयात्रा-प्रस्थानहड्डेन्द्रेन्द्रगढगमन भक्तरामकुमरसन्मानसिंहाऽर्थाऽभ्युत्थानाऽर्पणनीत-भृत्याद्रम्मसन्धियवन कृष्णगढ गमनराणाऽरिसिंहमेदपाटाऽऽनयन जयपुर-गतसपुत्रदेवगढेशचुण्डाउत्तजसवन्तसिंह राणानिपातविचारण-फिरङ्गि समरूमेदपाटप्रेषणातदरिसिंहमैत्रीकरणसलूमरीशचुण डाउत्तमभीमसिंह चित्रकूट स्थलछपक्षनिष्कासनराणा विल्लहटार्थबून्दी-वर्णदूतप्रेषणरावरा ट्सोदरबहदुरसिंहोदयपुरप्रस्थापनताद्विल्लहटा-वर्जितपटोपटङ्किग्रामादिपापणं तृतीयो मयूखः आदितः ॥३४३॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के अजीतसिंह के चरित्र में, बून्दीपति के कुमार प्रतापसिंह का मरना और श्रीजित का पूर्व दिशा के तीर्थो को जाना, हाड़ाओं के पति का इन्द्रगढ़ जाना और भक्तराम के कुमार सन्मानसिंह को ताजीम देना, तनख्वाह के रुपये ग्रहण करके सिन्धी यवनों का कृष्णगढ जाना और राणा अरिसिंह को उदयपुर लाना, पुत्र सहित जयपुर गये हुए देवगढ़ के पति चूंडावत जसवंतसिंह का राणा को मारने का विचार करना और सलूमर के पति चूंडावत भीमसिंह का चीत्तौड़ में स्थित छलबाल के पक्ष को निकालना, राणा का बीलहटा लौटने के अर्थ बून्दी पत्र भेजना और रावराजा का अपने सगे भाई बहादुरसिंह को उदयपुर भेजना उसके बिलहटा के अलावा पट्टा, उपटंक, ग्राम आदि मिलने का तीसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तैंतालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

पादाकुलकम

इत बूंदीस भूप रानिन जुत, इक दिन ससक सिकार गयो द्रुत॥
ताल जोधसागर उपबन जँहँ, ससग्राहक हो ग्रावबाट तँहँ॥ १॥

बनवाई बग्गुरि ताके मुख, यह अवरोध रह्यो तहँ सह सुख॥
धरयो दासिन बिपिन पिट्ठि सन, उठि उठि आन लगे तब ससगन॥२॥

कछुक काल कौतुक इम किन्नौं, अवरोधहिं आयस पुनि दिन्नौं॥
उपबन तब आये बनिताजन, अप्प चल्यो पुनि इक्क अडर मन॥ ३॥

बल्लभदास अनोपराम दुव, नाजर संग इतर कोउ न हुव॥
खर्ब तुरग आरुढ नेरश्वर, उपबन ओर चल्यो हंक अर॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! एक दिन बून्दी का राजा अजीतसिंह अपनी रानियों के साथ खरगोशों की शिकार खेलने गया। जोधसागर तालाब के पास वाले बाग में जहाँ पत्थरों की दीवार का निर्माण कर खरगोशों का बाड़ा बना था। इस बाड़े के प्रवेशद्वार पर बागर (फंदा) बंधवाया और उसी के पास रानियों के बैठने की व्यवस्था की गई। दास दासियों ने वन की ओर से बाड़े को घेरना आरंभ किया इससे खरगोश झाड़ियों में से उठ-उठ कर इधर भागते आने लगे। कुछ देर तक इस मनोरंजक खेल को देखने के बाद राजा ने अपने जनाना को वापस जाने की आज्ञा दी तब सारी रानियाँ वहाँ से बाग में आईं और निडर राजा स्वयं अकेला रवाना हुआ। वल्लभदास और अनोपराम दोनों नाजरों को साथ ले राजा एक टट्टू (छोटा घोड़ा) पर आरूढ़ हुआ और वह भी बाग की तरफ आ रहा था।

इक गहिलोत गुलाब नाम सठ, लाल अनुज तँहँ किय अपुब्ब रठ॥
जामिक दिट्ठि बचाय रु आयो, धव अंतर रहि बिसिख चलायो॥५॥

फुट्टो वह कर बाम कलाई, चहुवानहु तब संगि चलाई॥
अरि कै भजत लगी सु पिट्ठ पर, रीढक रपटि धसी तिरछी धर॥६॥

परि पुनि उट्ठि त्वरा करि लज्यो, बाट सु ऊरुदघ्न चढि भज्यो॥
नृप हय खर्ब रुक्यो सुकोट करि, पिट्ठि लग्यो तब कूदि मलप भरि॥७॥

सजव गयो अरि दै तरु अंतर, उपबन त्याँ मुरत्यो तब संभर॥
याको भ्रात लाल अभिधानक, हो मालिक मृगया सब थानक॥८॥

तभी एक गुहिलोत (सीसोदिया) गुलाबसिंह नामक दुष्ट ने जो लालसिंह का छोटा भाई था अजीब हादसा किया। वह पहरेदारों की नजर बचा कर आया और धोकड़ों के पेड़ों के झुरमुट के पीछे दुबक गया। उसने वहीं से अपने धनुष पर एक तीर का संधान कर चलाया जो सीधा हाड़ा राजा के बाएँ हाथ की कलाई को फाड़ता निकल गया। प्रत्युत्तर में चहुवान राजा ने तुरन्त

अपनी बरछी मारी जो भागते हुए शत्रु की पीठ पर लग कर उसकी रीढ की हड्डी से फिसल गई और आगे जमीन में जा धँसी। एक बार गिर जाने के बाद शत्रु तुरन्त उठा और सामने जांघ जितनी ऊँची राह पर कूद कर भागने लगा। राजा ने पीछा करने को अपना घोड़ा बढ़ाया वह वह टट्टू सामने ऊँची अड़चन पा कर रुक गया। तब राजा घोड़े से नीचे कूद कर शत्रु के पीछे दौड़ा पर इस बीच वह गुलाबसिंह अपने और राजा के मध्य फासला बढाता हुआ पेड़ों के मध्य जा छुपा। तब राजा वापस बाग की ओर आने को मुड़ा। इस गुलाबसिंह का बड़ा भाई जो लालसिंह नामक था हाड़ा राजा के शिकारखाने का हाकिम था।

ताको नृप कोउक होलन पर, कटावायो अग्गैं दक्खिन कर॥
तास अनुज यँहँ बैर बिचारिय, तमकि तीर संभर कर मारिय॥ ९ ॥

विक्रम सक बसुग धृति हायन, असित माघ बिच छन्न उपायन॥
सीसोदक गहिलोत गुलाबसु, प्रबिसि प्रदोसकाल तिँहिंन पसु॥१०॥

बालिस मारि भूप कर बानहिँ, तिमिर सहाय गयो निज थानहिँ॥
तदनु झलाय भनाय नगर दुव, हड्ड नृपति संबंध बिदित हुव॥११॥

जनक पितृव्यक जोध सुता जँहँ, थूहनि रन व्याही कूरम कँहँ॥
ताकी धाइ पुत्रसुत मति बर, पटु सुखाराम नाम नय तत्पर॥१२॥

एक बार उसके किसी अपराध पर कुपित हो हाड़ा राजा ने उसका दाहिना हाथ कटवा दिया था। बस, इसी बैर को याद कर उस गुलाबसिंह ने क्रोध में आ कर हाड़ा राजा को तीर मारा था। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठाईस के माघ मास के कृष्ण पक्ष में चुपके से शिकारगाह में घुस कर संध्या समय में मूर्ख गुहिलोत गुलाबसिंह ने हाड़ा राजा के हाथ पर बाण मारा और स्वयं अंधेरे का फायदा उठाते हुए भाग गया। इस घटना के थोड़े दिनों बाद हाड़ा राजा अजीतसिंह की झलाय और भिनाय नामक दो नगरों से सगाई आई। पूर्व में अपने राजा पिता उम्मेदसिंह के काका जोधसिंह की जिस पुत्री का थूहणी के रनमें कछवाहा राजा जयसिंह से विवाह सम्पन्न हुआ था। उसकी धाय माँ का एक श्रेष्ठमति पुत्र सुखराम नामक था।

नृप किप मुक्ख्य सचिव गुज्जर वह, इम बुंदीस बितावत सुख अह॥
लग्गत नव दृग धृति संवत, आरवार एकादसि संगत॥१३॥

राधमास अवदात पक्ख पर, पुर झलाय ब्याहन गो संभर॥
अनुज बहादुर उदयनैर सन, आसु बुलाय संग लिय अप्पन॥१४॥

इम दुल्लह सज्जित बारात जुत, पुर झलाय प्रमुदित पहुँच्यो द्रुत॥
चढि राजाउत सुतन चलाये, उभय कोस सम्मुह सब आये॥१५॥

कीरतीसिंह झलायनाथ सुत, बखतावर अभिधान प्रीति जुत॥
अभयसिंह ईसरदा स्वामी, भैरवसिंह सुहाड़प नामी॥१६॥

इस नीतिवान गुर्जर सुखराम को हाड़ा राजा ने अपना मुख्य सचिव बनाया था और इसी के सहारे राजा इन दिनों बून्दी में सुखपूर्वक अपने दिन बिता रहा था। विक्रम संवत् के नये वर्ष अर्थात् अठारह सौ उनतीस के आरंभ में वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि तद्नुसार मंगलवार के दिन बून्दी की सुरक्षा का भार सुखराम को सोंप कर राजा स्वयं विवाह रचाने को झलाय नगर जाने को रवाना हुआ। इस अवसर पर हाड़ा राजा ने अपने छोटे भाई को उदयपुर से बुलवाया। उसे अपने साथ ले कर दूल्हा बना राजा अपनी सज्जित बरात के साथ प्रमुदित मन से झलाय नगर पहुँचा। बरात की अगवानी करने को झलाय से दो कोस चल कर राजावत राजा के पुत्र सम्मुख आए। इनमें झलाय के राजावत राजा कीर्तिसिंह का पुत्र बखतसिंह था, वहीं ईसरदा का स्वामी अभयसिंह था। इनके साथ सुहाड़प का जागीरदार भैरवसिंह भी था।

नृपहिं बधाय लैगये पत्तन, घर-घर उच्छव अतुल भये घन॥
अंध स्वसुर समुख़ न इम आयो, पुनि दुल्लह तोरन पधरायो॥१७॥

नीराजन आदिक तदनंतर, बिधि करि व्याह लई दुलहनि बर॥
अंध स्वसुर पद्धत बड पावन, करी अरज इलकाब बढावन॥१८॥

लग्गैं लिखत राजश्री ठाकुर, धाम नाम पुनि तदनु काम धुर॥
तुम जामाता अरज चित लावहु, महाराजपद पत्र लिखावहु॥१९॥

लखि तँहँ नृपहु स्वसुर नति अति प्रिय, महाराज श्रीठाकुर पद दिय॥
इम शृंगार कुमरि अभिधान सु, चल्यो व्याहि बुंदिय चहुवान सु॥२०॥

ये सभी राजावत हाड़ा राजा का स्वागत कर उसे अपने नगर में लाये। पूरे नगर के घर-घर में उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर राजा का होने

वाला श्वसुर चल कर सम्मुख नहीं आया क्योंकि वह अंधा था। इसके बाद दूल्हे राजा को तोरण पर लाया गया वहाँ दूल्हे की आरती उतारी गई फिर शास्त्रोक्त विधि-विधान से विवाह सम्पन्न करवाया गया। इस पवित्र अवसर पर राजा के अंधे श्वसुर ने अपना लकब बढ़ाने का निवेदन भेजा। उसने कहलाया कि अब आप मेरे जामाता हो गए हैं इस बात को ध्यान में रख कर मेरे निवेदन पर विचार करें। पूर्व में आप की ओर से कोई पत्र भेजा जाता उसमें मुझे ठाकुर का संबोधन दिया जाता और फिर काम लिखा जाता था। अब जब मैं आपका श्वसुर हो गया हूँ तो भविष्य में मुझे ठाकुर पद की जगह पर महाराज के पद से संबोधित किया जाए तो मेरी इज्जत में इजाफा होगा। हाड़ा राजा अजीतसिंह ने भी जब अपने श्वसुर की ऐसी विनम्रता देखी तो महाराजा पद से संबोधित करना स्वीकार कर लिया। इस तरह राजावत कुमारी श्रृंगारकुंवरी को अपनी रानी बनाकर हाड़ा राजा बून्दी की ओर रवाना हुआ।

स्वसुर पुरोहित कृपाराम कँहँ, बहुधान कुंडल कटक दये तँहँ ॥
पुनि दरकुंच चल्यो छेकत पथ, सरित बनास बनहटा निबसथ ॥२१॥
अर्बुदजा इम लंघि युद्ध जय, प्रबिस्यो नागरचाल बडे रय ॥
सुनि पुर नगर आत संभर पहु, सम्मुह गो नारव सिरदारहु ॥२२॥
द्वि सिरुपाव दुव हय इक भूखन, नृपकी नजरि निवेदि मुदित मन ॥
निस इक रक्खि दई महिमानी, उनियारेस प्रीति पहिचानी ॥२३॥
पुनि बदि जेठ चउत्थि चलायो, अतिजव दुर्ग नयनपुर आयो ॥
दुलहनि स्वपुर तहाँ सन भेजिय, ब्याहन अप्प भनाय गमन किय ॥२४॥

राजा अजीतसिंह ने अपने श्वसुर के पुरोहित कृपाराम को (जिसने विवाह सम्पन्न करवाया था) बहुमूल्य कुण्डल और स्वर्ण निर्मित हाथ के कड़े इनायत किये। यहाँ से राजा दर कूच दर मंजिल चलता हुआ बनास नदी के किनारे बसे बनहटा गाँव में आया। यहाँ से आगे बनास को पार कर राजा ने नागरचाल जनपद में प्रवेश लिया। हाड़ा राजा के आगमन के समाचार पा कर वह नरूका सरदार अपने संबधियों सहित अगवानी करने गया और उसने मिलने पर राजा को दो घोड़े, दो सिरोपाव और एक आभूषण नजर किया। उणियारा के इस स्वामी ने हाड़ा राजा अजीतसिंह को एक दिन अपने

यहाँ ठहरा कर उसकी पूरी आवभगत की। उणियारा से ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि को रवाना हो कर राजा अजीतसिंह शीघ्र ही अपने नैणवा नगर में आया। यहाँ से उसने अपनी दुल्हन को बून्दी के लिए रवाना किया और स्वयं नया विवाह करने भिनाय नगर को रवाना हुआ।

उदयभान सम्मुह तब आयो, पुनि लहि काल निलय पधरायो॥
नव दुव धृति सक जेठ दसमि दिन, असित पक्ख बुधवार हडु इन॥२५॥

भूप दलेल सुता हुलसित हिय, बखतकुमरि अभिधान ब्याहि लिय॥
पुनि पुष्कर आयो संभरपति, महादान किय न्हाय महामति॥२६॥

करि पुनि कुंच कृष्णगढ आयो, पै निज स्वसुर तत्थ नहिं पायो॥
बिरदसिंह सालक सम्मुह गय, अति प्रबीन बिद्या गुन आलय॥२७॥

रहि कछु दिवस भाम पुनि हंकिय, दरकुंचन आयो पर बुंदिय॥
पुर बाहिर राजाउति रानी, तब लग रही प्रीति पहिचानी॥२८॥

हाड़ा राजा अजीतसिंह का आगमन सुन कर पेशवाई के लिए उदयभान सम्मुख आया और समय पा कर उन्हें अपने घर ले गया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उनतीस के ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथि तदनुसार बुधवार के दिन हाड़ों के स्वामी ने भिनाय के राजा दलेलसिंह की पुत्री बखतकुमारी से विवाह रचाया। अपना विवाह रचा कर भिनाय से हाड़ा राजा पुष्कर आया। यहाँ उसने स्नान कर बहुत बड़ा दान (महादान) किया। पुष्कर से कूच कर हाड़ा राजा किशनगढ़ आया पर इस समय राजा का श्वसुर वहाँ नहीं था इसलिए राजा का विद्या में प्रवीण और गुणी साला कुमार बिरदसिंह अगवानी करने आया। यहाँ कुछ दिन ठहरने के बाद बिरदसिंह का बहिनोई अर्थात् हाड़ा राजा अजीतसिंह रवाना हो कर बून्दी आया। यहाँ नगर के बाहर झलाय वाली राजावत दुल्हन ठहरी हुई थी और इस प्रतीक्षा में थी कि उसका दूल्हा राजा आए और उसके साथ नगर में प्रवेश करे।

अब दुलहनि दुव सहित नरेस्वर, किय प्रवेस बुंदियपुर अंदर॥
यहि बरस कोटेस गुमानहु, व्याहन गो बेघम लै दल बहु॥२९॥

मेघ तनूज प्रतापकुमारी, कोटा परनि गयो छलकारी॥
कासी सन श्रीजित इत हंकिय, गया जाय पितरन सद्गति दिय॥३०॥

पुनि किय बैजनाथ सिव दरसन, बरदवान पहुँच्यो प्रसन्न मन॥
ताके नृप मंडी महिमानी, श्रीजित कीरति सबन सुहानी॥३१॥
पहुँच्यो पुनि बालेसुर बंदर, तँहँ मरहट्ठ भटन मंग्यो कर॥
बढ्यो कलह तब सस्त्र प्रहारे, सत्रु सिपाह अट्ठमित मारे॥३२॥

ऐसी स्थिति में हाड़ा राजा ने अपनी दो दुल्हनों के साथ नगर में प्रवेश किया। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ उनतीस में कोटा का महाराव गुमानसिंह भी अपनी बरात सजा कर बेगूं विवाह करने गया। वहाँ के जागीरदार मेघसिंह के पुत्र प्रतापसिंह की पुत्री से विवाह रचा कर वह कपटी राजा वापस कोटा आया। उधर काशी से श्रीजित रवाना होकर गया जी गया जहाँ उसने अपने पित्तरों की सद्गति के लिए श्राद्ध किया। इसके बाद बैजनाथ महादेव के दर्शनकर श्रीजित बर्दवान पहुँचा। बर्दवान के राजा को पता चलते ही वह श्रीजित की मनुहार करने आया और उसे अपना अतिथि बना कर महलों में ठहराया। यहाँ से आगे श्रीजित (हाड़ा राजा उम्मेदसिंह) बालेसुर के बन्दरगाह पर आया जहाँ मराठों ने राजा से कर मांगा। राजा ने कर अदा करने से मना किया इस पर तकरार बढ़ी। शस्त्र चले और मराठा पक्ष के आठ सिपाही मारे गए।

पुनि द्रुत होय जिहाजपुर चलिय, बलि बेतरनी न्हाँन दान किय॥
नाभिगया पुनि पितर तृप्त करि, कटक होय गय जगदीस नगरि॥३३॥
प्रथम मारकंडेयाश्रम जँहँ, इन्द्रद्युम्न श्राद्ध पुनि किय तँहँ॥
बहुरि महादधि न्हाय श्राद्ध करि, पुरुसोत्तम परसे पुनि श्रीहरि॥३४॥
बिन दुव बैर नयन सुख लिन्नौं, पुनि प्रयान कछु दिन रहि किन्नौं॥
न्हाय स्वेतगंगा अघ जालन, अतिजव होय अढारह नालन॥३५॥
आयो तदनु रामगढ पत्तन, मिल्यो भूप ताकोहु मुदित मन॥
बहुरि होय कासी बैखानस, मुरग्यो बिंध्यवासिनी मानस॥३६॥

श्रीजित तब जहाज पर सवार हुआ और वैतरनो नदी के स्थल पर पहुँचा। यहाँ राजा ने स्नान कर दान दिया। फिर नाभिगया में फिर से पितरों का श्राद्ध सम्पन्न कर कटक होता हुआ श्रीजित जगदीश के नगर अर्थात् जगन्नाथपुरी पहुँचा। यहाँ पहुँचने से पूर्व हाड़ा राजा ने राह में पड़े मारकंडेय

आश्रम में जाकर इन्द्रद्युम्न नामक श्राद्ध सम्पन्न किया फिर समुद्र में स्नान कर पुरषोत्तम नामक श्राद्ध किया और श्री हरि के दर्शन किए। श्रीजित ने जगन्नाथ धाम में ठहर कर प्रतिदिन दो मर्तबा प्रभु के दर्शन कर अपनी आँखों को कृतार्थ किया। यहाँ कुछ दिन रुक कर श्रीजित आगे बढा। आगे श्वेतगंगा में स्नान कर राजा ने अपने पाप समाप्त किए और अठारह नालों को शीघ्रता से पार करता हुआ रामगढ़ पहुँचा। यहाँ पर रामगढ के राजा ने श्रीजित का स्वागत किया और हर्षित हो कर मिला। इस तरह वह वानप्रस्थी राजा काशी होता हुआ विंध्यावासिनी देवी के दर्शनों को गया।

पुष्पदंत जँहँ साप मुक्त हुव, किन्नौं तँहँ देवी दरसन धुव॥
तीरथराज होय पुनि सत्वर, चित्रकूट सेवन करि संभर॥३७॥
होय ओडछा झाँसी आयउ, नरउर बहुरि मिलान लगायउ॥
रामसिंह कूरम नरउरपति, मिल्यो आय सम्मुह मंजुल मति॥३८॥
श्रीजित नजरि तुपक इक किन्नी, महिमानीहु उचित बिधि दिन्नी॥
पुनि केसवपट्टनि मिलान दिय, कथित रीति तँहँ न्हान दान किय॥३९॥
एकादसि नव दुव धृति सक मित, आश्रम निज आयो भद्दव सित॥
बाहुल गो बेघम पुनि तपबल, मातामही न्हवाय गंगजल॥४०॥

जहाँ राह में पड़े पुष्पदंत नाम तीर्थ की यात्रा की और वहाँ सभी प्रकारों के शापों से मुक्त हो वह देवी के दर्शन करने गया। वापस प्रयागराज से होता हुआ श्रीजित चित्रकूट में आया और आगे नरउर पहुँच कर पड़ाव डाला। यहाँ सुन्दर मति वाला नरउर का कछवाहा राजा रामसिंह आ कर हाड़ा राजा से मिला। उसने हाड़ा राजा को एक बन्दूक भेंट की और अच्छी आवभगत के साथ अपने महलों में ठहराया। यहाँ से रवाना होकर लौटते हुए श्रीजित ने फिर केशवपुर पाटण में मुकाम किया जहाँ स्नान, पूजा आदि कर दान पुण्य किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उनतीस के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष में श्रीजित राजा तीर्थयात्रा सम्पन्न कर वापस अपने आश्रम में आया। यहाँ से कार्तिक माह में वह तपस्वी राजा बेंगू आया और अपने साथ लाये हुए गंगाजल से अपनी नानी को स्नान करवाया।

बलि पुष्कर हित गमन बिधायउ, अतिजव हंकि कृष्णगढ आयउ॥
महिमानी रट्ठोर भूप दिय, मन्नि ताहि पुष्कर मंजन किय॥४१॥

हैं अजमेरु स्वीय आश्रम बलि, अगहन मैं आयो अतिजव चलि ॥
सुत बुंदीपति कै तदनंतर, बिष्णुसिंह अभिधान भयो बर ॥४२॥

बेगूं से सीधा वह पुष्कर गया जहाँ हाड़ा राजा के आगमन की खबर सुनकर किशनगढ़ का राजा आ कर मिला। राठौड़ राजा ने यहाँ श्रीजित का आतिथ्य-सत्कार किया जिसे स्वीकार कर हाड़ा राजा ने पुष्कर स्नान किया। इसके बाद अजमेर से सीधा चल कर अगहन माह में राजा अपने आश्रम में वापस लौटा। इसके थोड़े ही दिनों बाद बून्दी के राजा अजीतसिंह के घर कुमार विष्णुसिंह का जन्म हुआ।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेऽष्टमराशिवजितसिंह चरित्रे भ्रातृकरच्छेदवैरोज्जिहीर्षुशीर्षेद्द गुलाबसिंह बुन्दीन्द्रवाहुबाणवेधन तदन्धकार सहायपलायन सचिवीकृतगूर्ज्जर सुखरामरावराड्झलायपुरेश-राजाउत्तकूर्म्मकीर्तिसिंहसुता विवहनवर्द्धितश्वशुरसत्कारस्वीकृत नारवशस्दारसिंहस्वगतबुन्दीप्रेषितनवोढपरिणीत भणायपुरभूप-रट्ठोड़दलेलसिंहदुहितृक पुष्कर स्नातगृहीतशालविरुद्दसिंह स्वागतद्वय-ढरावराड्बुन्दीप्रविशन कोटेशगुमानसिंहबेघमपुर चुण्डाउत्तशीर्षोद्द सिवाई मेघपौत्रीपरिणयनजगदीशाऽवधिसेवित प्राचीतीर्थश्रीजित्स्वाऽऽश्रमागमनऽनन्तरगङ्गोदकमातामहीस्नापनकृष्णगढमार्गाऽनुष्ठितपुष्कर स्नान पुनराश्रमाऽऽगमनरावराड्राजकुमारविष्णुसिंहोद्भवनं चतुर्थो मयूखः आदितः ॥३४४॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के अजीतसिंह के चरित्र में, भाई के हाथ कटने के वैर को लेने की इच्छा वाले सिसोदिया गुलाबसिंह का बून्दी के पति के भुज को बाण से बेधना और उसका अन्धेरे में भागना, गुर्जर सुखराम को सचिव करके रावराजा का झलाय के पति राजाउत कछवाहा कीर्तिसिंह की पुत्री से विवाह करना और श्वसुर का सत्कार बढ़ाकर नरूके सरदारसिंह के स्वागत को स्वीकार कर, दुलहन को बून्दी भेजकर भणाय के राठौड़ दलेलसिंह की पुत्री से विवाह कर, पुष्कर का स्नान कर साले विरुदसिंह का स्वागत ग्रहण कर दो रानियाँ ब्याहे हुए रावराजा का बून्दी में आना, कोटा के पति गुमानसिंह का बेगूं के पति चूंडावत सिवाई मेघसिंह की पोती ब्याहना जगदीश पर्यन्त के पूर्व के तीर्थ करके श्रीजित का

अपने आश्रम में आना, फिर नानी को गंगाजल से स्नान कराना और कृष्णगढ के मार्ग से पुष्कर स्नान करके फिर आश्रम पर आना, रावराजा के राजकुमार विष्णुसिंह के होने का चौथा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चवालीस मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सकनव दुव धृति पोस बदि, द्वादसि मंगलवार।
विष्णुसिंह बुंदीस कै, प्रकट्यो राजकुमार॥ १॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उनतीस के पोष माह के कृष्ण पक्ष की द्वादशी तिथि तदनुसार मंगलवार के दिन बून्दी के हाड़ा राजा अजीतसिंह के यहाँ विष्णुसिंह नामक राजकुमार ने जन्म लिया।

सोरठा

यह दौहित्र उदार, बंसबहालाधीस को।
अमर अंस अवतार, अजितसिंह नृप कै भयो॥ २॥
श्रीजित तदनु सुप्रीति, गंगाजल उच्छव कियउ।
निज कुटुंब रचि नीति, कोटादिक एकत्र किय॥ ३॥

दोहा

अस्थिपाल को जनन सब, बुंदिय लिन्न बुलाय।
पठये करि पहिरावनी, पुनि गंगोदक पाय॥ ४॥

यह उदार कुमार विष्णुसिंह बाँसवाड़ा के सीसोदिया शासक का भानजा था और देव अंश के रूप में राजा अजीतसिंह के यहाँ अवतरित हुआ। इसके बाद श्रीजित (राजा उम्मेदसिंह) ने तीर्थयात्रा पूरी करने के बाद किया जाने वाला गंगाजली का उत्सव प्रीतिपूर्वक आयोजित किया। इस अवसर पर श्रीजित ने इस एक नीति का पालन किया कि सभी कुटुम्बी-बांधवों को एकत्र किया जाए। इसके लिए कोटा के हाड़ाओं सहित अस्थिपाल के सभी वंशज अर्थात् तमाम हाड़ाओं को आमंत्रित कर बुलवाया। सभी को गंगा प्रसादी और गंगाजल दे कर रवाना किया। श्रीजित ने सभी आमंत्रितों को विदा करते समय सिरोपाव दिये।

तदनंतर फग्गुन असित, सक नव दुव धृति मान।
देस सम्हारन काज इत, किय अरिसिंह प्रयान॥ ५॥

बुंदी जनपद के निकट, पुर संकरगढ नाम।
आय तत्थ अरिसिंह नृप, किन्नौं कटक मुकाम॥ ६॥

श्रीजित पँहँ पठई अरज, लिखि निजकर नृप रान।
तुम अनिच्छ हो राजऋषि, बिहित योग बिज्ञान॥ ७॥

हम सेवक दरसन चहत, अधिक रहत जिय आस।
सुनि श्रीजित गो हिय हुलसि, सजव रान नृप पास॥ ८॥

आय समुख अरिसिंह हू, लैगो सिविर बधाय।
त्यागी नहिँ बैठो तखत, श्रीजित बिधि समुझाय॥ ९॥

इसके थोड़े ही दिनों बाद पर इसी वर्ष अठारह सौ उनतीस में उधर उदयपुर से महाराणा अरिसिंह अपने देश को संभालने हेतु दोरे पर निकला। इस सिलसिले में वह बून्दी के सीमावर्ती इलाके में शंकरगढ़ आया और यहीं पर उसने सेना सहित पड़ाव डाला। शंकरगढ़ के इस मुकाम से महाराणा ने अपने हाथ से पत्र लिख कर श्रीजित के आश्रम में भिजवाया जिसमें लिखा था कि आप तो अब राजऋषि होने के कारण योग की सहायता से अनिच्छुक (इच्छा सहित) हो गए हैं पर हमारे जैसे सेवकों की तो इच्छा शेष है कि अब पता नहीं कितना जीना हो इस बीच आपके दर्शन पा लें! पत्र पढ़ते ही हुलसित हो श्रीजित चल कर महाराणा अरिसिंह से मिलने शंकरगढ़ गया। महाराणा भी श्रीजित का स्वागत करने को चलकर सम्मुख आया और पूरे स्वागत सत्कार के साथ हाड़ा राजा उम्मेदसिंह को अपने शिविर में ले कर आया। यहाँ वह त्यागीश्रीजित महाराणा के साथ उच्च आसन पर नहीं बैठा।

चोका उप्पर भिन्न रहि, किय संलाप सनेहु।
अक्खिय तँहँ अरिसिंह इम, बिल्लहटा तजि देहु॥१०॥

ताहि संटि बुंदीस सौं, लेहु इतर तुम ग्राम।
अथवा रुप्पय आय मित, श्रीजित कहिय सुधाम॥११॥

तदनु सिक्ख करि संभरी, अप्पन आश्रम आय।
अक्खिय इम बुंदीस सौं, मिलहु रान सौं जाय॥१२॥

स्वीय सचिव इत रानहू, अमरचंद्र अभिधान।
बंभन बुंदिय मुक्कल्यो, पधरावन चहुवान॥१३॥

अग्गैं कुमर प्रताप ढिग, कारा मैं जगतेस।
सेवन रक्ख्यो बिप्र सो, हंक्यो दब्बत देस॥१४॥

एक अन्य आसन पर बैठ कर ही श्रीजित ने महाराणा के साथ प्रीतियुक्त बातचीत की। इसी बातचीत के मध्य उदयपुर के महाराणा अरिसिंह ने कहा कि आप लोगों को मेरी जागीर का गाँव बिल्लहटा (बिलेड़ा) छोड़ देना चाहिए। इस पर श्रीजित ने कहा कि हे महाराणा! आप अपने इस गाँव के बदले में हम से अन्य कोई गाँव ले लीजिए या फिर वार्षिक आमदनी के आधार पर हिसाब कर उसका मूल्य ले लीजिये। इतना कह कर विदाज्ञा ले श्रीजित अपने आश्रम को चला आया। यहाँ आ कर उसने बून्दी के राजा अजीतसिंह से कहलाया कि तुम्हें जा कर महाराणा अरिसिंह से मिलना चाहिए। उधर से अरिसिंह ने अपने सचिव अमरचन्द ब्राह्मण को बून्दी भेजा कि जा कर हाड़ा राजा से यहाँ पधारने का आग्रह करो। पूर्व काल में इसी ब्राह्मण को महाराणा जगतसिंह ने कुमार प्रताप की सेवार्थ कारावास में रखा था। वह ब्राह्मण अमरचन्द तुरन्त फासला पाटता हुआ गया।

अमरचंद्र कहि मुक्कलिय, अनय सुरथपुर आय।
मेरे सम्मुह दर्प तजि, आवहु संभरराय॥१५॥

दयो सुनत बारूद मैं, मानहु खदिर दमंग।
सजि तनुत्र निर्मोक सम, भो नृप कुपित भुजंग॥१६॥

हुकम पठायो विप्र पँहँ, रे कातर बिपरीत।
सिंहन की समता करत, फेरव होत फजीत॥१७॥

सु सुनि बिप्र खिजि तब कहिय, हे दर्पित बुंदीस।
पहिलैं पिक्खहिं जाय तिँहिं, बहुरि दिखवहिं रीस॥१८॥

इम बिचारी आयो सु द्विज, व्है सिविका आरूढ।
कोउन सम्मुह मुक्कल्यो, मन्त्रि भूप तिँहिं मूढ॥१९॥

इस दर्प से भरे ब्राह्मण अमरचन्द ने अनीति का सहारा लेते हुए बून्दी पहुँच कर राजा को कहलाया कि अपने हाड़ा राजा से कहना कि वह मेरे

समक्ष दर्प रहित हो कर हाजिर हो। इस सन्देश ने बारूद में खेर वृक्ष के अंगारे की (तेज) अग्नि का काम किया। हाड़ा राजा सुनते ही कुपित हो सर्प की कांचली (केंचुल) की तरह कवच धारण कर सर्प के समान फुफकारता हुआ तैयार हुआ। क्रोधित नाग की तरह राजा ने कहलाया कि रे कायर ब्राह्मण! सिंह की बराबरी करने वाले सियार की प्राय: फजीती होती है यह नहीं जानता क्या? यह सुनकर ब्राह्मण अमरचन्द ने भी खीज कर प्रत्युत्तर भिजवाया कि हे दर्प से भरे राजा! पहले वहाँ (शंकरगढ़) जा कर नजारा देख लो फिर मेरे समक्ष अपने क्रोध का प्रदर्शन करना! इतना कहला कर अमरचन्द पालकी में सवार हो हाड़ा राजा के दरबार में गया। हाड़ा राजा अजीतसिंह ने भी अमरचन्द को मूर्ख गिनते हुए अपने किसी आदमी को उसकी अगवानी करने नहीं भेजा।

षट्पात्

संधी भट लिय संग बडे कमनैत बहादुर,
तोड़े सिलगत तुपक पकरि प्रबिसै बुंदिय पुर।
बर्म टोप बाहुलन जटित सब अमरचंद्र जुत,
चिंतत रन मन चंड रुके गज पारि आय द्रुत।
संधी तथापि संतपंच लै हट करि द्विज परिखद गयउ।
अभिमन्यु तनय जनु कलि कुमति तच्छक पर तंडत भयउ॥२०॥

इस समय वह अमरचन्द अपने साथ सिंधी यवन सिपाहियों को लाया था जो लड़ने में बहुत बहादुर थे। सुलगते हुए तोड़े (एक बत्ती विशेष जिससे तोड़ादार बन्दूक चलाई जाती है) और हाथों में बून्दकें उठाय वे सभी बून्दी नगर में प्रविष्ट हुए। इस समय अमरचन्द सहित सभी कवच, दस्तानों आदि से सज्जित थे और मन में युद्ध करने की सोचते हुए हाथीपोल पर आ कर ठहरे। ये सिंधी योद्धा संख्या में पाँच सौ के करीब थे तब भी हठपूर्वक उन्हें अपने साथ ले कर अमरचन्द, हाड़ा राजा की राज्यसभा में गया। मानों कलियुग की कुमति से परीक्षित तक्षक नाग पर गर्जना करने आया हो।

दोहा

अमरचंद आसिख दयो, रक्खि बडो मगरूर।
उद्धयो नहिँ भूपति अनखि, सु लखि महाबल सूर॥२१॥

सचिवन सुभटन निहुरिकरि, बिन्नति सनति सुनाय।
कलह घटावन प्रसभ क्रम, दिन्नों नृपहि उठाय॥२२॥
तदपि मिसल मरजाद तजि, बैठन लग्यो बिप्र।
डोढी रच्छक ओर तब, छोहि लख्यो नृप छिप्र॥२३॥
सैन समुझि बुंदीस की, तानैं द्विज ढिग आय।
दै कर बगल उठाय द्रुत, दया मिसल बैठाय॥२४॥

राजसभा में पहुँचते ही ब्राह्मण अमरचन्द ने मगरूर हो दर्प भरे सुर से आसिख कही जिसे देखकर महाबली वीर राजा ने भी कुपित हो उसकी आसिख पर कान नहीं दिये, न ही वह उठ कर खड़ा हुआ। तब सचिवों और सामन्तों ने अनुनयपूर्वक आग्रह करते हुए हठ के क्रम से दोनों पक्षों के मध्य बढने वाले असंतोष को घटाने के लिए राजा को उठने की प्रार्थना की। इसके बाद जब अमरचन्द अपनी औकात भूलकर बून्दी के उमरावों की पंक्ति की मर्यादा तोड़ते हुए वहाँ बैठने लगा यह देख कर राजा ने क्रोध भरी निगाह से द्वारपाल की ओर देखा। अपने स्वामी के संकेत को समझ कर द्वारपाल उस ब्राह्मण के पास आया और उसकी बगल में अपना हाथ डाल कर अमरचन्द को उठाया और उसे उसके बैठने योग्य पंक्ति में ला बिठाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावजित सिंहचरित्रे रावराड्राजकुमारविष्णुसिंहोद्भवन श्रीजिद्गङ्गोदकोत्सव करणराणारिसिंहस्वदेशटन तच्छीजित्सम्मिलनशीर्षोद्दस्वसचिवा-मरचन्द्रबुन्दीप्रेषणतदरूंतुदविप्रकटुप्रलपनं पञ्चमो मयूखः आदित॥३४५॥

श्रीवशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के अजीतसिंह के चरित्र में, रावराजा के राजकुमार विष्णुसिंह का होना और श्रीजित का गंगाजल का उत्सव करना। राणा अरिसिंह का देशाटन करना और श्रीजित का उनसे मिलना। राणा का अपने सचिव अमरचन्द को बून्दी भेजना और उस ब्राह्मण का मर्म भेदन करने वाले वचनों के कहने का पांचवाँ मूयख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ पैंतालीस मयूख हुए।

स्वागता

तत्समीक्ष्यकुपितो ऽमरचन्द्रः कोपयन्निव नरेन्द्रमवोचत्।
ग्राममर्पयतु बिल्लहटाख्यं सन्धिमेत्य भजतादरिसिंहम्॥ १॥

अन्यथा सपदि सन्ध्युपटङ्कैः शस्त्रसूरियवनैस्तदमीभिः।
न्यङ्नमय्य सकचग्रहमास्यं नीयते तव नृपत्वमपास्य॥ २॥

एवमादिभिररुन्तुदवाक्यैः क्रुच्छरासनविसृष्टकलम्बैः।
बुन्धधीशहृदयं परिभिद्य प्रस्थितस्सहसाऽमरचन्द्रः॥ ३॥

कोपितस्तदनु संभरराजः पन्नगेश्वर इवाङ्ध्र्युपगूढः।
विप्रवाक्यकरणो ह्यरिसिंहः कारकं प्रथममेवममंस्त॥ ४॥

उस बात को देखकर क्रोध में आया हुआ अमरचन्द, राजा को क्रोध कराने वाले वचन बोला कि बिल्लहटा नामक ग्राम देदो और सन्धि (मिलाप) करके आरसिंह (अड़सी) की सेवा करो। नहीं तो ये सिन्धी पदवीवाले यवन शस्त्र-विद्या में पंडित, केश पकड़ कर नीचा मुख करके तुम्हारे राजापन को दूर कर, शीघ्र ले जाएँगे इत्यादि क्रोध रूपी धनुष से छोड़े हुए बाणों के समान मर्म वेधन करने वाले वचनों से, बुन्दीपति के हृदय को घायल कर वह अमरचन्द यकायक (अचानक) उठ चला। इसके बाद जैसे पैर से दबाया हुआ सर्प कुपित हो तैसे चहुवान राजा कुपित हुआ और वह अरिसिंह ब्राह्मण (अमरचन्द) का कहा करने वाला, प्रथम कहने वाले का करने वाला अर्थात् जो पहिले कहै उसी की मानने वाला हुआ।

तत्र शूरसचिवैर्नृपवर्यो बोधितः समयवेल्लनविद्भिः।
सन्धनीय उदयादिपुरेशो रावराडनुदिनं भवतेति॥ ५॥

विप्र एव कुटिलो बलशंसी विग्रहं विरचयंस्तदवादीत्।
स्वामिशासनमृतेऽनयमूर्ति राज्यभारकलितोद्धतदर्प्पः॥ ६॥

गम्यतामवनिराडरिसिंह सज्जनो ह्यनुचिंत सन कर्त्ता।
सन्निशम्य सचिवोक्त मवाच्यं तर्जयिष्यति तमेव सरोषम्॥ ७॥

एवमादिवचनैरवनीशश्चालित सचिवयोद्धभिराय्यैः।
कम्पयन्स दिगिभार्णवभूमिं लुम्पयन्नवट कापथशैल॥ ८॥

तब समय की उलटा पलटी को जानने वाले उमराव और कामदारों (अहलकारों) ने श्रेष्ठ राजा को समझाया कि हे रावराजा आपको उदयपुर के स्वामी से सदैव सन्धि (मिलाप) करना उचित है। राज्य के भार से (सचिव होने से) आया है बड़ा घमण्ड जिसको, अपने पराक्रम को जानने वाला, अनीति की मूर्ति, ऐसे कुटिल ब्राह्मण ने ही, बिना स्वामी की आज्ञा के लड़ाई को रच कर ऐसे वचन कहे हैं। हे महाराज! आप अरिसिंह के समीप चलिये, वह सज्जन है सो अनुचित नहीं करेंगे, किन्तु अमात्य के कहे हुए कुवचनों को सुनकर क्रोध से उस (अमरचन्द) को ही धमकाएँगे। अमात्यों के कहे हुए इत्यादि वचनों से, राजा चलायमान होकर, दिग्गज और समुद्रों के साथ पृथ्वी को कंपाता हुआ, खड्डे, कुमार्ग और पर्वतों को नाश करता हुआ चला।

छादयन् रविमुदग्ररजोभिः सादयन्हयखुरैरतलादीन्।
ल्हादयन्नतुलसैन्धवरागैर्नादयन्निज भटान्हरिगर्ज्जम्॥९॥

पेषयन्नुपलपादपगुल्मान्प्रेषयन्स्वपृतनां युधि जेतुम्।
श्लेषन्भर महीन्द्रफणाभिः प्रेषयन्नखिलदिक्ष्वतिभीतिम् ॥१०॥

स्पन्दयन्नधरकच्छपपृष्ठं स्यन्दयन्गिरिषु खानिजधातून्।
नन्दयन्स हितबान्धववर्गान्क्रन्दयन्न हित तस्करदुष्टान्॥११॥

जम्भयन्धनुरुदारकरेण स्तरभयन्विशिखविद्धविहङ्गान्।
दारयन्नवनिदारक दंष्ट्रां कारयन्पलभुजां मुदमुच्चैः॥१२॥

ऊपर को उड़ी हुई धूलि से मार्ग को ढकता हुआ, घोड़ों के खुरों से पाताल आदि लोकों को दुःखी करता हुआ, अत्यन्त सिन्धवी रागों (बड़े रागों) से हर्ष कराता हुआ, सिंहगर्जना से अपने वीरों को नाद कराता हुआ, पत्थर, वृत्त और लताओं को पीसता हुआ, युद्ध जीतने के अर्थ अपनी सेना को चलाता हुआ, शेषनाग के फणों से भार को मिलाता हुआ, सब दिशाओं में भार को भेजता हुआ, भूमि से कच्छप की पीठ को रगड़ता हुआ, पर्वतों की खानो में उत्पन्न होने वाली धातुओं को बहाता हुआ, हित के साथ बान्धव वर्ग (सम्बन्धियों के समूह) को आनन्द देता हुआ, शत्रु, चोर और दुष्टों को रुलाता हुआ, दाहिने हाथ से धनुष को खींचता हुआ अथवा वह उदार हाथ से धनुष को खींचता हुआ, बाणों से छिदे हुए पक्षियों को स्तंभन कराता हुआ, सूअरों

की दाढ़ों को तोड़ता हुआ अथवा वराह की दाढ़ों को तोड़ता हुआ, मांसाहारियों को बड़ा हर्ष कराता हुआ चला।

घोषयन्समरवादनवर्य्यान्पोषयन्पथि समागतदीनान्।
मोषयन्नसिरुचाऽचिरभाभां शोषयन् गमनधूलिभिरब्धीन्॥१३॥
साध्यन्स्वजनसङ्गरवृतिं बाधयन्परजनाननकान्तिम्।
सोऽरिसिंहशिविरं तरसेत्थं रावराडजितसिंह इयाय॥१४॥

युद्ध के श्रेष्ठ बाजे बजवाता हुआ, मार्ग में आए हुए दीनों का पोषण करता हुआ, तलवार की सुन्दर और चंचल कांति छिटकाता हुआ, चलने की धूलि से समुद्र को सुखाता हुआ, अपने लोगों की युद्ध-वृत्ति को साधता हुआ, शत्रुओं के मुख की कांति को मिटाता हुआ, वह रावराजा अजीतसिंह अरिसिंह के डेरे को चला।

मन्दाक्रान्ता

आगच्छन्तं शिविरा मधुना बुन्द्यधीशं निशम्य,
द्रागभ्यागात्सभटसचिवः सोऽपि राणोऽरिसिंहः॥
आनन्दोत्कं सुमिलनमबोभोद्द्वयोर्भूमिभर्त्रो,
र्वीरांश्चान्यानुभयत इतान्मेलयाञ्चक्रतुस्तो ॥ १५॥

बून्दी के पति को अपने डेरे आता हुआ सुनकर उमराव और मंत्रियों सहित वह राणा अरिसिंह भी शीघ्र सन्मुख आया, उन दोनों राजाओं का सुन्दर मिलाप आनन्द को बढ़ाने वाला हुआ और उन दोनों राजाओं ने दोनों ओर के वीरों को परस्पर मिलवाया।

द्रुतविलम्ब्रिम्

प्रथममिन्द्रगढाधिपतेः सुतो रणपटुः सनमानसमाव्हयः।
तदनु माधववंशमहार्णवोद्भवशशी भगवंत इति स्फुटः॥१६॥
अथ च धोवड़पत्तनपात्मजः समिति भैरव भैरव भैरवः।
इतिमुखा अरिसिंह महीभृता प्यजितसिंहभटा मिलिताः सुखम्॥१७॥

प्रथम तो इन्द्रगढ़ के पति का पुत्र, युद्ध में चतुर सन्मानसिंह, फिर माधवसिंह के वंश रूपी समुद्र से उत्पन्न हुआ चन्द्रमा के समान भगवन्तसिंह, उसके बाद धोवड़ा नगर के पति का पुत्र युद्ध में भैरव के समान स्पष्ट भयङ्कर

भैरवसिंह इत्यादि अजीतसिंह के उमराव आनन्दपूर्वक महाराणा अरिसिंह से मिले।

उपजातिः

अथाऽपरे तत्र सलूम्मरीशश्चुण्डाउतोभीम उपेत्य पूर्वम्।
आमेटनाथश्च ततो द्वितीयो बीरः फतैसिंह उदयभावः ॥१८॥
बिञ्झोलिशास्तापर मार जातिर्नीति प्रपञ्चा शुभकर्णनामा।
इत्यादयः सम्भविनः प्रथक् तेऽरिसिंहवीराऽमिलिता नृपेण ॥१९॥

अब दूसरी ओर के, सलूमर का स्वामी चूंडावत भीमसिंह, दूसरा आमेट का पति बड़ा पराक्रमी वीर फतहसिंह और तीसरा बींझोल्या का पति पँवार जाति वाला नीति में चतुर शुभकर्ण, इत्यादि महाराणा अरिसिंह के मिलने योग्य उमराव अजीतसिंह से पृथक-पृथक मिले।

शार्दूलविक्रीडितम्

बुन्दीशोऽजितसिंह एवमजितो भूपोऽरिसिंह स्तथा,
राणोट्टङ्किमितो मिथोऽमिल दिह श्रीचाहुवाणेश्वरः॥
स्मृत्वा तत्सचिवोक्तवाक्यकुलिशं नोपायनं चाप्यदा-
न्नाङ्घ्रिस्पर्शमपि व्यधान्नवयमाऽहीन्दु प्रमाणे शके ॥२०॥
पञ्चम्या सहितेऽवलक्षशकले श्रामे तपस्याऽऽह्वये,
सम्मिल्येत्थमुभावथो विविशतुः स्वं स्वं निचोलालयम्॥
मुद्राः कृष्ण गढाऽधिपस्य सुतया शीर्षोद्दराज्ञ्याऽनुजा,
भर्त्रे बुन्द्यधिपाय पञ्चशतकं खाद्यैः समं प्रेषिताः ॥२१॥
राणाऽपि द्रविणं खखेन्द्रिय मिता मुद्रास्तथा प्रेषिताः,
पश्चात्फाल्गुन शुद्धषष्ठ दिवसे चातुर्भुजो रावराट्॥
सुत्रामेव बलाऽऽलयं पटगृहं प्राप्तोऽरिसिंहस्य सो--,
भ्युत्थानादिविधेयरीतिरचनैः सत्कारितः स्वागतैः ॥२२॥

इस प्रकार जीतने में नहीं आये ऐसा बून्दी का पति अजीतसिंह और वैसे ही शत्रुओं पर सिंह रूप राणा पदवी को धारण करने वाला अरिसिंह दोनों परस्पर मिले, इस मिलाप में चहुवानों के ईश्वर रावराजा अजीतसिंह ने उस

अमात्य (अमरचन्द) के वज्र रूपी वचनों को स्मरण करके न तो राणा का नजराना किया और न चरण स्पर्श किया। यह मिलाप संवत् अठारह सौ उनतीस के फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी को हुआ, इस प्रकार दोनों मिलकर अपने-अपने डेरों में गये और किशनगढ़ के अधिपति की पुत्री जो सीसोदिया (अरिसिंह) की रानी थी, उसने अपनी छोटी बहिन के पति बून्दी के राजा अजीतसिंह के अर्थ मिठाई के साथ पाँच सौ रुपये भेजे। वैसे ही राणा ने भी पाँच सौ रुपये भेजे उसके बाद फाल्गुन शुक्ल के पक्ष की छठी के दिन चहुवान रावराजा जैसे इन्द्र, बलिराजा के स्थान पर प्राप्त हो वैसे राणा अरिसिंह के डेरे पर प्राप्त हुआ और ताजीम आदि उचित स्वागत से सत्कार पाया।

इन्द्रवज्रा

पश्चाद्रहोमन्त्रणदूष्यमागाद्राणा सनाढ्याऽमरचन्द्र युक्त।
शम्भूसनाम्ना सनवाडभर्त्रा राणाउतेनाऽपि तथा समेतः ॥२३॥

बुन्दीपुरीन्द्रो भगवंतसिंह माधाणिहड्डुं समिदुग्रवीर्यम्।
सीलोरसद्रङ्गपतिं सुनीतिं सत्कोकिलग्रामपुरानिवासम् ॥२४॥

बीरं द्वितीयं सनमानसिंह हड्डेन्द्रसल्लोतपदोपटङ्कयम्।
श्री भक्तरामस्य कुमारवर्यं संयोधिनं चेन्द्रगढाऽधिपस्य ॥२५॥

दाधीचवंशध्वजमार्यवन्द्यं व्यासं तृतीयं द्विजमुच्चमन्त्रम्।
गोपालरामाभिध माप्तताहँ सैतत्त्रयं मंत्रगृहे निनाय ॥२६॥

तत्र स्थितानां घटिका व्यतीता राणाऽरिसिंहेन सुगन्धतैलम्।
स्वर्णाभपर्णोत्तमवीटकाश्च स्तम्बेरमः स्वाच्छ्रयशङ्कितार्कः ॥२७॥

तब पीछे एकान्त में सलाह करने के निमित्त, सनाढ्य जाति के प्रधान अमरचन्द, सनवाड़ के पति राणावत शंभूसिंह के साथ राणा अरिसिंह अलग डेरे में गये। वहाँ पर बून्दी पति अजीतसिंह ने युद्ध में उग्र प्रतापी सीलोर नगर के पति को जो पहले कोकिल (कोइला) गाँव में रहता था उस माधोसिंहोत हाड़ा भगवन्तसिंह और दूसरे वीर इन्द्रगढ़ के पति श्रीभक्तराम के पुत्र योद्धा इन्द्रसल्लोत्त पदवी वाले सन्मानसिंह को और तीसरे प्रामाणिक आर्यों के पूज्य बड़ी सलाह देने वाले दाधीच वंश की ध्वजा रूप व्यास गोपालराम इन तीनों को उस सलाह करने के डेरे में साथ लिया। वहाँ पर एक घड़ी भर समय

व्यतीत हुआ इसके बाद राणा अरिसिंह ने, इत्र (अंतर) सुवर्ण के बरक लगे पान बीड़े, अपनी ऊँचाई से सूर्य को शङ्कित करने वाला (इसकी ऊँचाई की आड़ से कहीं अंधेरा नहीं हो जाए ऐसी शंका कराने वाला) एक हाथी प्रदान किया।

उपजातिः

निरस्तमूल्ये परिधान पूर्णे लोके स्फुटे ये सिरुपाव वाच्ये॥
तरङ्गमौ द्वौ जितवात वेगौ मण्यादिभिः सञ्जटिता च भूषा॥२८॥
इत्याद्यथाऽर्हाऽर्हणमुच्च मानैर्निवेदितं भूपयेऽजिताय॥
सत्कारितः सोऽजितसिंहवर्म्मा स्थूले स्वीकीयं समुपाजगाम॥२९॥

अमूल्य वस्त्रों से पूरित लोक में सिरुपाव के नाम से प्रसिद्ध दो सिरुपाव, वायु के वेग को जीतने वाले दो घोड़े, और मणियों का जड़ा हुआ एक आभूषण इत्यादि बड़े मान के साथ राजा अजीतसिंह के भेंट किये, इस प्रकार सत्कार पा कर वह अजीतसिंह अपने डेरे आया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावजितसिंहचरित्रे ऽपर चन्द्रविल्लहटानिमित्तकटुतरभाषणभविष्यत्सन्धियवनत्रासोद्देशन को पितरावराद्‌तत्प्रत्यागमनसचिव सुभटोक्त बून्दीन्द्रराणासैन्यसाधेयशङ्करगढ-गमनसम्मुखा गतारिसिंहसम्मिलन सुभटादिमिथोमेलन - चरणाऽपिस्पर्शत्सम्भरोपायनाऽढौक नस्वस्वशिविर विशन सपत्नीकशीर्षोद्दहड्डेशाऽर्थमुद्रा पञ्चशती प्रमुखस्वागतैव स्तुप्रेष-णरावराड्द्वितीय दिनराणापटाऽऽलयगमनसत्रय सद्वय भूपद्वय मन्त्रणराण-ासुगन्ध प्रर्ण गज बाजि वस्त्र भूषण हड्डेन्द्रनिवेदनतत्स्वसिविरागमनं षष्ठो मयूखः आदितः ॥ ३४६॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के, अजीतसिंह के चरित्र में, अमरचन्द का बीलहटा गाँव के कारण अत्यन्त कड़ुए वचन कहना और आगे आने वाले समय में सिंधी यवनों का भय देना। रावराजा को क्रोध करा कर उसका वापस जाना और बून्दी के पति का उमरावों और मंत्रियों के कहने से राणा की सेना से घिरे हुए शंकरगढ़ में जाना। सन्मुख आये हुए अरिसिंह से मिलना और उमराव आदि को परस्पर मिलाना। चहुवान का राणा के चरणों का स्पर्श नहीं करके नजराना नहीं करना और

दोनों का अपने डेरों में जाना। स्त्री सहित राणा का हाड़ाओं के पति के हाथ पाँच सौ रुपये आदि स्वागत (मेहमानी) के पदार्थों का भेजना। रावराजा का दूसरे दिन राणा के डेरे जाना और बून्दी के तीन और उदयपुर के दो जनों सहित दोनों राजाओं का सलाह करना। राणा का इत्र, पान, हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण, हड्डेन्द्र को देना और उसके अपने डेरे में आने का छठा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छियालीस मयूख हुए।

गीर्वाणभाषा

इन्द्रवज्रा

राणाऽरिसिंहोऽपि दिने द्वितीये बुन्दीन्द्रदौकूलनिवासमागात्।
सत्कारितोऽनेन च सर्वभावैस्तद्वत्समुत्थानसुभाषणाद्यैः॥ १॥

दूसरे दिन राणा अरिसिंह भी बून्दीपति के डेरे आये और अजीतसिंह ने उसी रीति से ताजीम, सुन्दर संभाषण आदि के सब प्रकार से सत्कार किया।

उपजातिः

प्रीत्येधनायाऽकुरुताऽन्यदेकं बुन्दीश्वरो हस्तयुगे वसूनाम्।
थेलीतिशब्दफुटबुद्ध्यमानद्वयं गृहीत्वा ह्यरिसिंहदेहात्॥ २॥
उत्तार्य तस्यैव च सेवकेभ्यो ददद्यथेन्द्रः कृतसत्रकायः।
द्रव्यं सुखं घ्रेय मथाऽपि चर्व्यं ताम्बूल मिद्धं पुरटप्रकाशम्॥ ३॥
निवेदयामास गजं सुदन्तद्वयं वियद्दर्शनघूर्णनेन।
संकेतयन्तं समरेऽसुहानेर्मुष्णान्तु नाकीयसुखं यथेच्छम्॥ ४॥

और प्रीति बढ़ाने के अर्थ बून्दी के पति अजीतसिंह ने एक बात यह की कि अपने दोनों हाथों से धन (रुपयों) की थैली जिसका स्पष्ट नाम है लेकर अरिसिंह के शरीर पर उतार (नोछावर) कर, राणा अरिसिंह के ही सेवकों को, जैसे इन्द्र यज्ञ समाप्त करके दे तैसे दी, फिर सुखपूर्वक गन्ध लेने योग्य इत्र, चबाने योग्य सुवर्ण के बरक लगे हुए पांन बीड़े और श्रेष्ठ दो दाँतों वाला एक हाथी दिया, वह हाथी आकाश की ओर देखकर मस्तक घुमाता था सो मानों वह संकेत करता था कि युद्ध में मरकर स्वर्ग का यथेच्छ सुख भोगो।

इंद्रवज्रा

महन्तकीलद्वय सेवनेन तिष्ठन्तु वा क्षेपयितास्मि नाके।
सञ्चालयंतं श्रवणौ विशालौ दाक्षायुय सम्पातिरिवाऽऽत्मपक्षौ॥ ५॥

मेरे इन दोनों दाँतों रूपी कीलों के सेवन से ठहरो तुमको मैं अभी स्वर्ग में फैंक देता हूँ और यह संकेत करके अपने दोनों बड़े कानों को गिद्ध पक्षी संपाति की भांति दिखाता था।

उपजातिः

अश्वौतथा क्षिप्रगतौ हि वायोः पृष्टिस्थितत्वादिव निर्बलत्वम्।
संसूचयंतौ खरहेषणेन प्रसन्नवस्त्राणि तथा नवानि॥ ६॥
हीराद्यमूल्योत्तमरत्न भूषा मित्यादि संगृह्य च सम्भरेशात्।
अथाऽऽज्ञया सैन्ययुतोऽरिसिंहः स्वयं निचोलालयमेष आयात्॥ ७॥

वैसे ही वायु के समान शीघ्र चलने वाले और अपने से पीछे छूट जाने वाली वायु की निर्बलता की अपने तीखी हींस से सूचना करने वाले दो घोड़े और सुन्दर नवीन वस्त्र, हीरे आदि रत्नों से जड़ा हुआ उत्तम मूल्य का भूषण (सिरपेच) इत्यादि चहुवान (अजीतसिंह) से लेकर, सीख लेकर सेना सहित अरिसिंह अपने डेरे गया।

इंद्रवज्रा

आगत्य च प्रेषितवान् स्वकीयं दूतं स यात्राऽजितसिंह भूपः।
संदेशहारेण तदा यदुक्तं तच्छ्रूयतां रामधराऽधिनाथ॥ ८॥

डेरे आकर राजा अरिसिंह ने अजीतसिंह के पास अपना दूत भेजा, उस दूत ने जो आ कर कहा सो हे राजा रामसिंह! सुनो।

उपजातिः

चुणाडाउतो बेघमपुर्यधीशः समाख्यया नाम सिवाईमेघः।
अन्यस्तथा शंकरदुर्गनाथो राणाउतः स्वामिविरोधचञ्चुः॥९॥
कन्हाउतो रामपुरश्च कोजूस्तथा तृतीयोऽमरदुर्गभर्त्ता।
राणाउतश्चापि जलिंधरीशे द्वेषानुगः साहसिकश्चतुर्थः॥१०॥

चत्वार एते भवदीय पक्षान्निरस्तशङ्का गणयंति नो नो।
वशेऽस्मदीये विनियोजनीया धूर्त्ताः खलास्ते भवता नियम्य ॥११॥

श्रुत्वेति दूतोक्तमुदारसत्त्वः श्रीरावराडाविरचीकथत्तम्॥
चुण्डाउतैर्बेघमपत्तनेशैः कृतोऽस्मदीयो बहुधोपकारः ॥१२॥

बेगूं का पति चुंडावत सवाई मेघसिंह, दूसरा शंकरगढ़ का पति राणावत, स्वामी से विरोध करना ही है धन जिसके (व्याकरण में चञ्चु और चणप् प्रत्यय धन अर्थ में होते है)। तीसरा अमरगढ़ का पति, राम शब्द से पहले है कोजू जिसके अर्थात् कोजूराम कान्हावत, चौथा द्वेष के साथ रहने वाला हठी राणावत जलिंघरी का पति ये चारों आपके पक्ष में निडर होकर हम को नहीं मानते हैं इस कारण आप इन दुष्ट धूर्तों को पकड़कर हमारे पक्ष में करो। दूत के कहे हुए ये वचन सुनकर बड़े पराक्रमी श्रीरावराजा ने स्पष्ट कहा कि बेगूं के पति चूंडावतों ने हमारे पर बहुत उपकार किये हैं।

विस्मृत्य युष्माभिरतस्तदागः सम्मेलनीयः स सिवाईमेघः।
वयं हि मध्यस्थपदं दधानास्तमानयेम प्रसभं पुरस्तात्॥ १३॥

राणाउतः शंकरदुर्गनाथः कन्हाउतश्चाऽमरदुर्गदुर्गी।
उभावमू नः शरणागतौ तद्वयं न तद्विप्रियमाचरामः ॥१४॥

अन्हाय यूयं कुरुत प्रकामं तौ जेतुमाजौ प्रततं प्रयत्नम्।
जलंघरीशं यमने यदीच्छा चमूं प्रयच्छंतु न मेत्र पक्षः ॥१५॥

मत्कोट्टपालोऽपि गमिष्यतीतः सार्द्धं तया केशवरामनामा।
विजित्य तत्रत्यजनान् सलीलं निस्सारयिष्यत्युत नात्र चित्रम्॥१६॥

इस कारण आप भी उसके अपराध को भूलकर सवाई मेघसिंह के साथ मिलाप कर लो, हम बीच में पड़कर उसको बलात्कार (जबरी से) आप के सामने ले आएँगे और शंकरगढ़ के पति राणावत और अमरगढ़ के गढ़वाला (पति) कान्हावत्त, ये दोनों हमारी शरण में आये हैं इस कारण हम दोनों का बुरा नहीं करेंगे। आप उन दोनों को युद्ध में जीतने का उपाय शीघ्र करो और जलिंघरी को (यहाँ अजहत्स्वार्था लक्षणा से जलिंघरी के पति का ग्रहण है) कैद करने की इच्छा है तो इसमें मेरा पक्ष नहीं है। केशवराम नाम का मेरा कोतवाल भी उस सेना के साथ जाएगा सो वहाँ के लोगों को लीला (सहज) से जीत कर निकाल देगा, इस में कोई आश्चर्य नहीं है।

श्रुत्वेति राणाः परिपंथिभावं गतोप्यऽमात्यं त्वमरादिचंद्रम्।
सम्प्रेषयामास जलिंघरीशं चतुःसहस्रेण बलेन युक्तम्॥१७॥
सकोट्टपालोऽपि नियोजितः संजगाम बेगादरिसिंहसिद्धयै।
जलिंघरीदुर्गनिवासिनो नृन्निस्सारयामास ददौ च दुर्गम्॥१८॥
राणाउताश्चाऽपि पथाप्रतिष्टं प्रवेशिता बुन्धवनौ सकांताः।
पश्चादपृष्ट्वाऽजितसिंहभूपं राणा गतः शंकरदुर्गभूतः॥१९॥

यह सुनकर राणा ने शत्रुभाव को प्राप्त हो कर उस प्रधान अमरचन्द को चार हजार सेना के साथ जलिंघरी भेजा। अरिसिंह की कार्यसिद्धी के साथ भेजा हुआ वह कोतवाल भी शीघ्र गया और जलिंघरी के गढ़ में रहने वाले मनुष्यों को निकाल कर गढ़ दे दिया और राणावत को प्रतिष्ठा के साथ निकाल कर स्त्रियों सहित बून्दी के देश में प्रवेश कराया फिर राजा अजीतसिंह से बिना पूछे ही, राणा शंकरगढ़ की भूमि से गया।

इंद्रवज्रा

खैरूणसंज्ञं पुरमध्यसंस्थं दग्ध्वाऽगमत्सोऽमरदुर्गभूमिम्।
बुध्वेति बुंदीपतिमात्तकोपं सर्वेऽवदन्यत्रगतस्स राणाः॥२०॥

फिर मार्ग में आये हुए खैरुणा नामक गाँव को जलाकर वह राणा अमरगढ़ की भूमि में गया, इस बात को जानकर क्रोध में हुए बून्दीपति को सब (उमराव और सचिवों) ने कहा कि जहाँ राणा गया है।

उपजातिः

गंतव्यमस्माभिरपीति वाक्यं निराकृतं भूपतिनाऽस्तु मेति।
न स्मः कदैवाऽनुचरास्तदीयाः पृष्ट्वागतं नापि कुतोऽनुसारः॥२१॥
योग्योस्मदीयो भवतीति वाचं ब्रुवन्नपीयाय भृशोक्त एभिः।
यातेन तत्राऽमरदुर्गभूमिं स्थितं समीपेऽमरचंद्रनाम्नः॥२२॥

वहाँ हम लोगों को भी चलना चाहिए, इन वचनों का राजा अजीतसिंह ने निषेध किया कि हम उनके कोई अनुचर (नौकर) नहीं हैं कि वे तो बिना पूछे ही गये और हम उनके साथ लगे रहे। यह बात हमारे योग्य नहीं है, ऐसे वचन बोलता हुआ वह उन उमराव और सचिवों के अत्यन्त कहने से वहाँ अमरगढ़ की भूमि में अमरचन्द के पास ठहरा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावजितसिंह-चरित्रे राणाबुन्दीन्द्रशिविरागमनरावराट्तद्देहवसुधानीद्वयोत्तारणसुगंध ताम्बूल गज बाजि वस्त्र भूषा ऽऽदिनिवेदन प्राप्तस्वपरत्यप्रेषितदूतराणा-बेघम शंकरगढाऽमरढगजलिंघरीशा ऽदिनिग्रहणाऽर्थकथन हड्डेंद्रतद-नूरीकरणजलिंघरीविध्वंसनाऽबोधितबुंदीशराणा ऽमरगढगमनस्वसुभट-सचिवनितांतोक्तरावराट्तदनुकरणं सप्तमो मयूखः आदित : ॥३४७॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टम राशि के अजीतसिंह के चरित्र में, राणा का बून्दीपति के डेरे आना और रावराजा का राणा के शरीर पर दो धन की थेलियाँ न्योछावर करना। इत्र, पान, हाथी, घोड़े, वस्त्र, भूषण आदि नजर करना और राणा का अपने डेरे आकर अपना दूत भेजकर बेघमपुर, शंकरगढ, अमरगढ, जलिंघरी के पति आदि को पकड़ने के अर्थ कहलाना और हाड़ा के पति का उसको अस्वीकार करना। जलिंघरी का नाश करके बून्दी के पति को बिना जतलाये राणा का अमरगढ जाना। अपने उंमराव और सचिवों के अत्यन्त कहने से उनके सदृश करने (अमरगढ जाने) का सातवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सैंतालीस मयूख हुए।

गीर्वाणभाषा

उपजातिः

अत्रापि यातोऽमरचंद्रशर्मा पुरो नृपस्याऽस्य तथाप्यतुष्टः।
दृष्ट्वैवमाशु प्रजगाद बुंदीपतिर्मया गम्यत अद्य बुंदी॥ १॥

श्रुत्वेतिभूपोऽप्यमरेंदुना द्रागवीवदत्प्रेषित अद्य दूतः।
यदुच्यते तेन विधाय कार्यं तद्गम्यतां स्वं नगरं यथेच्छम्॥ २॥

ततो गतौ स्वस्वनिकेतनं तौ संप्रैषयद्दूतमथौऽरिसिंहः।
उक्तं च तेन स्फुटमेत्य भूपं निवेद्यतां विल्लहटाख्य आशु॥ ३॥

ग्रामोऽस्मदीयस्तत एतु बुंदी निशम्य धीरोऽजितसिंह इत्थम्।
अलीलपत्तत्र त दुर्गमेकं कृतं मया चौरनिरोधनाय॥ ४॥

वहाँ अमरगढ़ में भी अमरचन्द शर्मा इस राजा अजीतसिंह के सामने गया तोभी इसको देखते ही अप्रसन्न होकर बून्दी के पति ने कहा कि मैं आज

ही बून्दी जाता हूँ। यह सुनकर महाराणा ने भी अमरचन्द द्वारा शीघ्र ही कहलाया कि आज दूत भेजा है वह जो कहे उस कार्य को करके फिर यथेच्छ अपने नगर को जाओ। इसके बाद दोनों अपने डेरे में गये तब अरिसिंह ने दूत भेजा उससे राजा ने स्पष्ट कहा कि हमारे बीलहटा नामक गाँव शीघ्र नजर करो तब बून्दी जाओ, यह सुनकर धीर अजीतसिंह ने कहा कि वहाँ पर तो मैंने चोरों को रोकने के लिए किला बनवाया है।

इन्द्रवज्रा

तद्दप्रदेशे स्वशयान्मयाऽपि क्षिप्ता शिलाऽयासभृता प्रसह्य।
तस्मात्क्षमध्वं बल चौरसंघाद्देशे वयं वोऽवनमाचराम:॥ ५॥

ग्रामोऽपरस्तदद्विगुणो यथेच्छं संगृह्यतां वा नियमो विधेय:।
एतावतो वित्तसमुच्चयस्य प्रत्यब्दमस्ति ग्रहणोन तुष्टि:॥ ६॥

इस देश में दुष्ट चोरों का समूह होने के कारण मैंने इसके कोट की नीम में बड़े परिश्रम और हठ के साथ अपने हाथ से पत्थर डाले हैं। इस कारण से क्षमा करो! हम आपकी प्रीति चाहने वाले हैं। इस से द्विगुण (दुगना) दूसरा गाँव आपकी इच्छा हो वह ले लें या कोई ऐसा नियम करें कि प्रतिवर्ष इतने रुपये लेने से आप प्रसन्न होंगे।

उपजाति:

श्रुत्वेति न स्वीकृत एषु पक्षो राणाऽरिसिंहेन कदाऽपि कोऽपि।
उक्तं च नास्मत्कधिनेन यर्हि प्रदीयते सन्धिभिरात्तशस्त्रै:॥ ७॥

निवेद्यतां संवसथ: स एवेत्येवं वचो जातविवृद्धमन्यु:।
श्रीरावराजाऽजितसिंहवर्मा तदा बभूव प्रलयाऽर्कचण्ड:॥ ८॥

ततश्च तद्वत्सर एवं चैताऽसिते दले पूर्व दिनेऽवशिष्टे।
घटीत्रये घोटसुखऽनुभूत्यै बहिर्जगामोद्धतदर्पराणा:॥९॥

अर्व्वाधिरूढश्चहुवाणभूपोऽप्यगाच्च तत्रैव महेन्द्रकल्प:।
हत्वा शशं द्वौ स्वबलेन युक्तौ तारागणैश्चन्द्रमसाविवान्यौ॥१०॥

सुरै: सुरेशाविव शुद्धसत्वौ समुद्यता आगमनाय सद्म।
तथाऽऽहवेच्छू अमलायताक्षौ यथाऽऽगतौ दिग्विजयाय सज्जौ॥११॥

यह सुनकर राणा अरिसिंह ने इनमें से एक भी बात स्वीकार नहीं की और कहा कि यदि हमारे कहने से नहीं देते हो तो उस गाँव को शस्त्रधारी सिंधियों से देना, इन वचनों से बड़े क्रोध में आया हुआ रावराजा अजीतसिंह प्रलय के प्रचण्ड सूर्य के समान हुआ। तब उसी संवत् में चैत्र कृष्ण प्रतिपदा के दिन दोपहर में (मध्यान्ह में) तीन घड़ी दिन बाकी रहे घमंड के साथ राणा घुड़दौड़ करने को बाहर गया। घोड़े पर चढ़कर इन्द्र के समान रावराजा भी वहीं गया वहाँ दो खरगोशों को मारकर अपनी-अपनी सेना के साथ जैसे तारा ग्रहों के साथ चन्द्रमा हो वैसे, जैसे देवताओं के साथ इन्द्र हो वैसे, निर्मल बड़े नेत्रों वाले, दिग्विजय के साथ तैयार हो जैसे, युद्ध की इच्छा वाले दोनों राजा डेरे आने को तैयार हुए।

मालिनी

हतदिनपतिकान्त्योः सङ्गमोऽसम्भविष्णु,
स्तरणिज इव लोकेऽपूर्वजन्येक हेतुः॥
अपिच पदकृतोऽपि भ्रान्तिकृत्पण्डिताना,
मृगपतिरपि सङ्गादत्र यातो मुधैकः॥१२॥
भवति विपुलताऽतो ह्यर्थसङ्कल्पनातो,
विविधबुधमनस्सु प्रत्ययानां तथाहि॥
तदुभय नृपतिभ्यां क्षिप्तदेशान्तरित्वे,
व्यवहृत इह बोध्ये द्वन्द्वलाभः प्रतिष्ठाम्॥१३॥

हत की है सूर्य की क्रांति जिन्होंने, उन दोनों का सगम असंभव वाला है, यमराज की भांति लोकों में अपूर्वता का एक कारण है, देखो पदों में संगम किया है सो भी पण्डितों को भ्रांति कराने वाला है, क्योंकि 'भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय वेद में होता है सो' यहाँ लोक में किया है। यहीं भ्रांति करने वाला है (कौमुदी के कर्ता भी इसके समाधान में 'निरंकुशाः कवयः' यही लिखते हैं)। निश्चय ही अजीतसिंह, रूपी सिंह के साथ से अरिसिंह अकेला व्यर्थ आया। जैसे पण्डितों के मन में विविध बातो की कल्पना से प्रत्ययों की विपुलता होती है, वैसे ही इसके अर्थ की कल्पना से विपुलता होती है। बोध्य (जानने योग्य) को व्यवहार में लाने से दोनों का लाभ और प्रतिष्ठा होती है, जिसको दोनों राजाओं ने दूसरे देश में फैंक दिया।

इतिमतिशतकारी तत्त्वबोधैकहारी,
सुर पुर पटुनारीकामनासम्प्रचारी॥
सकलसकलधारी स्वर्विहारोपकारी,
समजनि जनिताऽरिव्रातनिःशेषकारी॥१४॥
अवददमलबुद्धिर्बुन्द्यधीशो महात्मा,
भवितरि दिन एता बोभविष्याहं तु॥
गमनमिह विधेयं तथ्यमाज्ञाप्य राज,
न्निति विविथवचांसि प्रश्रुतान्यश्रुतानि॥१५॥

इस प्रकार सैकड़ों मति (बुद्धि) करने वाला, तत्त्वबोध (ज्ञान) का हरण करने वाला, स्वर्ग की चतुर स्त्रियों की कामना का प्रचार करने वाला, सम्पूर्ण रीति से, सगुण शिव को धारण करने वाला तथा सब कलाओं से युक्त सबको धारण करने वाला, जो जन्म से ही शत्रु हैं उनके समूह को निश्शेष (नाश) करने वाला, निर्मल बुद्धि वाला महात्मा बून्दी का पति बोला कि मैं तो आगामी दिन (कल) को जानने वाला हूँ सो हे महाराज! यहाँ पर ठीक आज्ञा देकर जाओ! पर उसने हाड़ा राजा के अनेक वचनों को सुने अनसुने किये और न दोनों नेत्रों से राजा अजीतसिंह को देखा। तब पीछे से राणा के किसी सेवक क्षत्रिय ने कठोर वचन कहा कि आगामी दिन में तुम्हारा जाना कैसे होगा?

नरपतिररिसिंहः कारयामास नैवं,
न च नयनयुगेनाऽदर्शि भूपोऽपि तेन॥
तदनु परुषवाचं क्षत्रियः कश्चिदूचे,
कथमुत गमनं स्यादागतोऽह्नि त्वदीयम्॥१६॥
उदयपुरनरेशो निर्बलो बुध्यते किं,
तदनु च रणशीलाः सन्धिनः किं दृष्टाः॥
नयनपथमुपे तैर्दुस्सहं भीरूहड्डु,
त्वयि सति यवनैस्तैरावृतेऽथोदुकूले॥१७॥
समलशमलमुक्तिं चर्करिष्यस्यपि द्रा-,
गिति कटुतरवाग्भिस्तर्जयन्तं स्वकीयम्॥

नहि नहि वचनामां पात्रमेषां धराराडिति,
किमपि स नोचेऽद्धाऽरिसिंहश्च शृण्वन् ॥१८॥

उदयपुर के राजा को तुम निर्बल जानते हो, क्या इन के स्वामिधर्मी सेवक सिंधियों को नहीं देखा हैं ? जिनको देखने से ही भय लगे ऐसे उन पवनों से जब घिर जाएगा तब हे कायर हाड़ा! तू शीघ्र धोती में मूत्र सहित विष्टा कर देगा, इत्यादि बहुत ही कटु वचनों से डराने वाले अपने मनुष्य को, उस अरिसिंह ने साक्षात् सुन कर भी यह नहीं कहा कि यह राजा ऐसे वचनों का पात्र नहीं है।

निजनिलयमुपेतं मुक्तपन्थानमारा-,
दुदयपुरनरेशं प्राऽवदद्बुन्द्यधीशः ॥
भवति जिगमिषाऽतः श्रीमता मुक्तिमिच्छं-,
स्थित इह पुर एवाऽस्मीति चाऽन्यच्चकार ॥१९॥
यवननयप्रवृत्तो यः शिरःस्पर्शरूपो-,
मुजरविति करेण क्रीयतेऽकारि सोऽपि ॥
तदुपरि नहि दृष्टयाऽदर्शि पृष्ठिं विधाय,
प्रचलितमतिवेगेनाऽरिसिंहेन मत्तम् ॥२०॥

अपने डेरे जाने के अर्थ मार्ग को छोड़ने वाले उदयपुर के राणा से बून्दी के पति ने समीप होकर कहा कि मेरी जाने की इच्छा है इसी कारण श्रीमानों की आज्ञा चाहने वाला मैं आगे को खड़ा हूँ। यह कह कर दूसरा काम यह किया जो यवनों की नीति से प्रवृत्त हुआ है और मस्तक के हाथ लगा कर किया जाता है जिसको मुजरा कहते हैं, वह मुजरा भी किया जिस पर भी दृष्टि नहीं दी और वह अरिसिंह रावराजा को पीठ देकर मत्त के समान चला।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्ट राशावजितसिंहचरित्रे राणाप्रासभ्यविज्ञहटामार्गणरावराद् तद्विडंवीतरदेयीकरण भूपद्वय विरोधीभावभजन बहिर्बाजिविनोदनसम्भरेशस्वप्रस्थाननिमित्तशिष्टाचार-श्रावणराणास्वदृष्टिपरिवर्त्तनत देकत्तमारून्तुदाऽऽयुधिकभृत्यविप्रलपन श्रुततद्रावराद्क्रुद्धीभवनमष्टमो मयूखः आदितः ॥३४८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के, अजीतसिंह

के चरित्र में, राणा का हठ पूर्वक बीलहटा नामक गाँव माँगना और रावराजा का उस के सदृश (बराबरी) दूसरा गाँव देना स्वीकार करना। दोनों राजाओं का विरोध भाव को प्राप्त होना और बाहर घोड़ों की क्रीड़ा करना। रावराजा का अपने घर (बून्दी) जाने के निमित्त शिष्टाचार सुनाना और राणा का अपनी दृष्टि को फेरना। एक शस्त्रधारी नौकर का मर्म भेदन करने वाले विरोध के वचन बोलना और उनके सुनने से रावराजा के क्रोधित होने का आठवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अड़तालीस मयूख हुए।

गीर्वाणभाषा

भुजङ्गप्रयातम्

ततः क्रोधसंज्वालिताक्षो महात्मा बभूवाऽजितो भूपतिर्भूतकम्पः।
यथा भीमसेनोऽभवद्धार्त्तराष्ट्रेनुवेन्द्रः प्रभुर्वृत्रदैतेय आदौ॥ १॥

यथा यक्षपक्षे ध्रुवः पर्शुरामो यथा हैहयेन्द्रे लसद्दोस्सहस्त्रे।
यथा वासुदेवो हरिर्दामघोषौ यथा चण्डिका दैत्यसम्राजि शुम्भे॥ २॥

तथाशक्तिहेतिः पुरोऽश्वं प्रसार्याऽरिसिंहाऽभिवक्रं चचालाथ बीरः।
स्वयं शक्तिघातेन युद्धप्रगल्भो भुवौ पातयामास निष्प्राणराणाम्॥ ३॥

नराकारमेघादिवोद्दीप्तशम्पा ततश्चैव वा चण्डधाम्नो मरीचिः।
यथा वन्हिकुण्डाच्च काली कराला तथा निःसृता शक्तिरुद्भिद्य राणां॥ ४॥

ततः खङ्गमाकृष्य बुन्दीनरेन्द्रे जिहिर्षौ शिरोऽरिप्रतीहार एकः।
भुजे साङ्गदे प्राऽहरत्तवर्णयष्ट्या कराभ्यां बलात्कारतो रावराजः॥ ५॥

तदाघातभङ्गस्यदोऽसिस्तदीयश्च्युताऽध्वाछिनत्राऽरिसिंहोत्तमाङ्गम्।
तथा वीक्ष्य तद्भ्रावतरामिः कुमारोऽहिनत्पात्यमानं कृपाणेन राणाम्॥ ६॥

तब तो क्रोध से प्रज्वलित नेत्रों वाला महात्मा राजा अजीतसिंह जीवों को कंपाने वाला हुआ, जैसे दुर्योधन पर भीम सेन, आदि दैत्य वृत्रासुर पर इन्द्र, सहस्त्रबाहु पर परशुराम, दमघोष के पुत्र (शिशुपाल) पर वसुदेव के पुत्र (श्रीकृष्ण) और दैत्यराज शुंभ पर चण्डिका हो वैसे शक्ति (बरछी) शस्त्रवाला प्रबल वीर युद्ध में निपुण राजा अजीतसिंह राणा अरिसिंह के मुख के आगे घोड़े को बढ़ा कर अरिसिंह के सामने चला और बरछी की घात से प्राण रहित राणा को भूमि पर पटका। वह शक्ति (बरछी) जैसे मनुष्य के शरीर

रूपी मेघ से बिजली, प्रचंड सूर्य से किरण और अग्निकुण्ड से कराल ज्वाला निकले वैसे राणा को छेद कर निकली। फिर खड्ग निकाल कर बून्दी का राजा, राणा का मस्तक काटना चाहता था, इतने में राणा के एक द्वारपाल छड़ीदार ने दोनों हाथों से बल पूर्वक सोने की (सुवर्ण की) छड़ी रावराजा के बाजुबन्ध सहित हाथ पर मारी उस छड़ी की चोट से तलवार हाथ से छूट गई और राणा का मस्तक नहीं कटा, यह देखकर भक्तिराम के कुमार सन्मानसिंह ने पड़े हुए राणा पर तलवार मारी।

आर्या

एवं जाते राणाजयसिंह सुतप्रतापसिंहस्य।
पौत्रो दोलतसिंह पुत्रो यः श्यामसिंहस्य॥ ७॥

ऐसा होने पर राणा जयसिंह के पुत्र प्रतापसिंह का पोता और श्यामसिंह का पुत्र जो महाराज पदवी को धारण करने वाला था।

गीतिः

स महाराजोट्टङ्की तुमुलं युध्वाऽसिभिर्ह्यभूत्तिलशः।
शम्भूसिंहश्च तथा सनवाडेशोऽत्र भारताऽवरजः॥८॥

एतौ नाकिनिकेतं प्राप्तौ राणाउतौ समं भर्त्रा।
वैश्यश्छोगालालोऽनुजजः सचिवस्य कृष्णगढभर्त्तुः॥ ९॥

एतेषु हतेषु त्रिषु राणां त्यक्त्वा प्रदुद्रुवुश्चाऽन्ये।
राणाप्राणाऽपघ्नीं शक्तिं स्वामुज्जहार बुन्दीशः॥१०॥

वह दौलतसिंह खड्ग से घोर युद्ध करके तिल-तिल प्रमाण में कटा, वैसे ही भारतसिंह का छोटा भाई सनवाड़ का पति शंभूसिंह भी कटा। ये दोनों राणावत अपने स्वामी के साथ स्वर्ग स्थान को पहुँचे और किशनगढ़ के मंत्री के छोटे भाई का पुत्र वैश्य छोगालाल भी मारा गया। इन तीनों के मारे जाने पर शेष सब राणा को छोड़कर भाग गये, तब बून्दी के पति ने राणा के प्राण लेने वाली अपनी बरछी को निकाला।

अर्व्वतं च तदीयं नीत्वाऽगच्छत्स्वकीयशिविरभुवम्।
श्रुत्वैतदमरचन्द्रो नेतुं कुणपानियाय सैन्ययुतः॥११॥

बुन्दीपुञ्जम्बूरैर्न्यवर्त्ततसपृत्सनाढ्यविप्रं तम्।
तन्मारणाकृतबुद्धिः पुनर्जगामाऽजितोभिमुखमेषाम्॥१२॥

द्वाभ्यां प्रसह्य रुद्धो दत्वा नृपभावसिंहशपथाऽऽदि।
सीलोर धोवडेड्भ्यां भगवन्त भवानिसिंह नामभ्याम्॥१३॥
प्रस्थापितश्च बुन्दीमेताभ्यां प्रसभमजितसिंहनृपः।
सम्प्राप्तः स निशीथे स्वपुरि ससैन्योऽरिसिंहमाहत्य॥१४॥

और राणा के घोड़े को लेकर अपने डेरों की भूमि में गया, यह सुनकर अमरचन्द सेना सहित उन मृतक शरीरों को लेने को आया। तब बून्दी की सेना के जम्बूरों से सेना सहित उन सनाढ्य ब्राह्मण को रोका और उसको मारने की बुद्धि करके अजीतसिंह फिर सामने गया। जिसको सीलोर के पति भगवन्तसिंह और धोवड़ा के पति भवानीसिंह, इन दोनों ने भावसिंह के सौगंध आदि दिला कर हठ से रोका। अजीतसिंह राणा अरिसिंह को मारकर सेना सहित आधी रात्रि के समय बून्दी में लौटा ।

तो बुन्दीश्वरसुभटौ स्थित्वा तत्रैव वैभवं स्वीयम्।
नेयं नेयं नेयं यातौ त्यक्त्वा पटालयाऽद्यन्यत्॥१५॥
ते सन्धिनस्तु यवना गताः क्वचित्तद्दिने समाजोत्काः।
सुभटाश्च पुर्वमेव च्छलबालकपक्षपातिनो भिन्नाः॥१६॥
अतएवाऽमरचन्द्रो बुन्दीसैन्ये गते समेत्य निशि।
अरिसिंहवपुरधिष्ठाप्यनृयानं स्वं रुदन् ययौ शिविरम्॥१७॥
हड्डेश्वरशिविरर्द्धिं विलुण्ठ्य दूष्याऽऽदिकां तदवशिष्टाम्।
अरिसिंहतनुं तत्पटसदने संस्थाप्य शोकमारेभे॥१८॥

वे दोनों बून्दीपति के उमराव वहीं ठहर कर लेने योग्य अपना वैभव लेकर, डेरे आदि अन्य वस्तुओं को छोड़कर आये। वे सिंधी यवन तो उस दिन सभा से इष्टलाभ के लिये कालक्षेप करने को (नमाज पढ़ने को) कहीं चले गये थे, और छलबाल (रत्नसिंह) के पक्ष के उमराव पहले से ही जुड़े थे। इस कारण बून्दी की सेना के चले जाने पर अमरचन्द रात्रि में वहाँ जाकर अरिसिंह के शरीर को पालकी में रखकर स्वयं रोता हुआ डेरे में गया और रावराजा की डेरे आदि समृद्धि को लूट कर अरिसिंह के शरीर को उस डेरे में रखकर शोक करनें लगा।

राणाः सप्त भुजिष्याः सत्यो मनभावनाऽदयस्तत्र।
तौर्यविनोदनवत्योऽतिष्ठन् रात्रो सजीवमिव परितः॥१९॥
प्रातश्चित्यारोहे कुणपं मनभावनेदमुक्तवती।
यदि निजकृतफलमेतत्तदस्तु यदि चान्यथा प्रभो तर्हि॥२०॥
त्वां वयमिव विलपन्त्यो भस्मीभूता भवन्तु तन्नार्यः।
येनैवेदृगवस्था प्राणेश्वर ते ह्यनागसो विहिता॥२१॥

वहाँ पर मनभावन आदि राणा की सात पतिव्रता पासवान स्त्रियाँ, नाच गान कराती हुई जैसे राणा जिन्दा हो वैसे रात्रि में उस राणा को चारों ओर से घेरकर बैठी रहीं। प्रात:काल में राणा के शरीर को चिता पर रखते समय मनभावन ने कहा कि, हे स्वामी! यदि अपनी ही करनी का यह फल है तब तो ठीक ही है, नहीं तो जैसे हम आप को रोती हैं वैसे ही हे प्राणनाथ! जिसने बिना अपराध आप की यह दशा की है उसकी स्त्रियाँ भी ऐसे ही विलाप करती हुई भस्म हों!

मनभावनेत्थमुक्त्वाऽऽरुरोह चितिकां षडाऽऽलिजन सहिता।
सह जग्मुरनुप्रेष्ठं साध्व्यः साल्हादमुच्चगायन्त्यः॥२२॥
नवनेत्रेभकु सङ्ख्ये शकवर्षे विक्रमार्द्धराभर्त्तुः।
प्रतिपदि माधवशुक्ले मुहूर्त शेषेन्हि हड्डुपतिनैवम्॥२३॥
शक्त्या हतोऽरिसिंहस्तदश्वमारुह्य बुन्दिकाऽगामि।
वैखानसेन पित्रा स भर्त्सितो नयविदाऽनुनीतश्च॥२४॥

मनभावन इस प्रकार कहकर छ: सखियों के साथ चिता पर चढ़ी और वे सातों ही पतिव्रताएँ हर्ष के साथ उच्चस्वर से गाती हुईं अपने पति के साथ गईं। इस प्रकार विक्रम संवत् अठारह सौ उनतीस के चैत्र कृष्णा एकम के दिन दो घण्टे बाकी रहे, इस प्रकार राणा को बरछी से मारकर, राणा के घोड़े पर चढ़कर हाड़ों का पति बून्दी आया और उस रावराजा को नीति के जानने वाले वानप्रस्थ पिता (उम्मेदसिंह) ने धमकाया और नीचा दिखाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेऽष्टम राशावजितसिंह चरित्रे रावराड्राणाऽरिसिंहनिपातनतद्द्वास्थस्वबाहुयष्टिप्रहरण भाक्त-रामिखड्गराणाभेदन वैश्यदोलतसिंह शम्भूसिंह मरणभृशभटोक्त-

समात्तराणाहय धृतस्वशक्ति सम्भरेशबुन्द्यागमनभगवन्तसिंह भवानीसिंह नेयवैभवानयनभीर्वमरचन्द्रकुणप स्वशिविर प्रापणभुजिष्यासप्तक राणासहगमनं नवमो मयूखः आदितः ॥३४९ ॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के अजीतसिंह के चरित्र में, रावराजा का राणा अरिसिंह को मारना और उनके द्वारपाल का अपने हाथ पर छड़ी की मारना। भक्तराम के पुत्र का खड्ग से राणा को भेदन करना और एक वैश्य, दोलतसिंह व शंभूसिंह को मारना। उमरावों के बहुत कहने से राणा के घोड़े को लेकर, अपनी बरछी को निकालकर चहुवानों के पति का बून्दी आना। भगवन्तसिंह और भवानीसिंह का लाने योग्य वैभव को लाना। कायर अमरचन्द का मृतक शरीर को अपने डेरे में लाना और सात पासवानों का राणा के साथ सती होने का नवमा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उनचास मयूख हुए।

गीर्वाणभाषा

गीतिः

सैन्ययुतोऽमरचन्द्रस्तार्तीयं कर्म भूपतेः कृत्वा।
गत्वोदयपुरमनुचितमेतदिति श्रावयांबभूवाऽसौं ॥१ ॥
कार्ष्णगढी तद्राज्ञ्यासन्नप्रसवा तु मण्डिले दुर्गे।
गत्वा सुतं प्रसुषुवे मासद्वयजीवितो मृतः सोपि ॥२ ॥
जननी तदाऽतिदुःखात्कृष्णगढं गतवती जनकवसतिम्।
द्वे राज्ञ्यावेकादश सह जठमुस्दयपुरेऽपि च भुजिष्याः ॥३ ॥
अन्या चैका महिषी पितृभवने श्रूयतां कथा तस्याः।
राजसमुद्रसमीपं मोह्याख्ये भट्टियादवग्रामे ॥४ ॥

अमरचन्द, राणा के तीसरे दिन का कृत्य करके सेना सहित उदयपुर गया और उसने यह अनुचित वृत्तान्त सुनाया। उस राणा अरिसिंह की किशनगढ़ वाली रानी समीप ही बालक को जन्म देने वाली (पूर्णगर्भा) थी जिसने मांडलगढ़ में जाकर पुत्र को जन्म दिया जो दो माह का होकर मर गया। तब अत्यन्त दुःख से उस बालक की माता अपने पिता के घर किशनगढ़ गई, और उदयपुर में भी दो रानियाँ और ग्यारह पासवान स्त्रियाँ सती हुई। एक

रानी पिता के घर में सती हुई जिसकी कथा सुनो कि राजसमुद्र के समीप मोही नामक गाँव भाटी शाखा के यादव क्षत्रियों का है।

आऽमरसिंहाद्राणाः परिणीताः सर्व एव भट्ट्याणीः।
ताः सर्वाः सह जग्मुर्निजपतिमङ्के निवेश्य परिवह्नि॥५॥

तत्रत्यभट्टितनयामत एव विवाह्य सोऽरिसिंहोऽपि।
न्यस्याऽत्रैव नवोढामित आयातो हतोऽजितेनैवम्॥६॥

सा सह जगाम मोहग्रामवगतपतिमृत्युयादवी साध्वी।
निजकुलपरम्पराया न निरस्ता सा तया कुरङ्गदृशा॥७॥

राणा अमरसिंह से लेकर सभी राणा वहाँ के भाटियों की पुत्रियाँ ब्याहे थे, जो सभी अपने-अपने पतियों के साथ सती हुई। इसी कारण से उस गाँव वाले भाटी की पुत्री के साथ वह राणा अरिसिंह भी विवाहा था। वह विवाह करके उस नई दुल्हन को वहीं छोड़कर आया था और इस प्रकार अजीतसिंह द्वारा मारा गया। वह पतिव्रता यादवी अपने पति की मृत्यु सुनकर मोही नामक गाँव में सती हुई। ऐसे उस मृगनयनी ने अपने कुल की परम्परा को नहीं छोड़ा।

मत्तमयूरम्

आगत्येत्थं सम्भरराजः स्वनिकेतं यद्यन्नीतं येन जनेनाऽरिहरिस्वम्
चेतोवेगं तस्य बिना पट्टतुरंगं तस्मै-तस्मै तत्तददादुद्यदुदारः॥८॥

भेदोपायैर्दानविमिश्रैरथ कोटा द्वाराऽध्यक्षान्क्ष्माऽमितलोभी परिभिद्य
युद्धप्राक्तद्देशजिगीषोः पुनरासीद्बुन्दीभर्तू रोगविशेषो विस्फोटः॥९॥

शान्तेप्यस्मिन्दैववशादायुरणिम्ना भागेऽतीते पञ्च मुहूर्ते दिवसस्य
पूर्णाख्यायां काव्यतिथौ माधवमासि त्यक्त्वा देहं स्वर्गमि यायाऽजितसिंहः॥१०॥

इस प्रकार रावराजा ने अपने स्थान पर आ कर, जिस-जिस मनुष्य ने अरिसिंह का जो-जो धन लिया था, उस-उस मनुष्य को, मन के वेग वाले एक खासा घोड़े के सिवाय, वह-वह द्रव्य उस उदार ने दे दिया। इसके बाद पृथ्वी लेने का बड़ा भारी लोभी, अजीतसिंह दान और भेद दोनों मिले हुए उपायों से कोटा के द्वारपालों को अपने में मिलाकर उस देश को जीतना चाहता था कि युद्ध से पहले बून्दी के पति (अजीतसिंह) को शीतला (चेचक)

का रोग हुआ। वह रोग भी शान्त हो गया था परन्तु प्रारब्धवश छोटी अवस्था में ही वैशाख शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवार के दिन दस बजे अजीतसिंह शरीर को छोड़कर स्वर्ग गया।

श्रूत्वा राज्ञी तत्त्वथ शृङ्गारकुमारी शृंगाराख्या द्रंगझलायाऽधियपुत्री।
दौहित्री चोम्मेदहरेः साहिपुरेशस्याऽन्यातन्वी भूपभुजिष्याशशिशोभा॥

व्योमाऽग्नीभेन्दुप्रमिते विक्रमशाके पूर्णा शौक्रे ऽहन्यव शिष्ठेऽन्तिमयामे।
चित्यारूढे कीलकराले हविराशे हुत्वा देहं द्वे हि सहायान्निजभर्त्रा॥१२॥

जिसको सुनकर झलाय के पति की पुत्री और शाहपुरा के पति उम्मेदसिंह की दोहिती शृंगार युक्त शृंगारकुमारी नामक रानी और दूसरी चन्द्रशोभा नामक पासवान स्त्रियाँ दोनों अपने पति अजीतसिंह के साथ, विक्रम संवत् अठारह सौ तीस में वैशाख शुक्ला पूर्णिमा, शुक्रवार के दिन एक पहर दिन बाकी रहे चिता पर चढ़ कर अग्नि की कराल ज्वाला में अपने शरीरों को होम करके सती हुईं।

अनुष्टुब्युग्मविपुला

पद्भ्यां गत्वाऽर्द्धं गव्यूतिं केदारेश्वरसन्निधौ।
करवीरं महाघोरं ते भर्त्रा सह जग्मतुः॥१३॥

तयोस्तु सहगामिन्योर्हाहाकारो महानभूत्।
अकाण्डमरणे राज्ञो रुरुदुः स्थावरा अपि॥१४॥

श्रीजित्तत्र महासत्त्वः सर्वा आश्वासयत्तदा।
प्रकृती रावराजास्ता निर्नाथा बालभूभुजः॥१५॥

मनागुत्साहमानीताः श्रीजिता संविदा स्वया।
अभिमन्यौ मृत सेना यथा स्वा धर्मभूभृता॥१६॥

कर्णेन वृषसेनेऽस्ते कुरुभर्त्रेव लक्ष्मणे।
दशास्येनेव वा व्यस्वोरिंद्रजित्कुम्भकर्णयोः॥१७॥

त्वष्ट्रा त्रिशिरसि प्रेते प्रल्हादेन विरोचने।
चित्राङ्गदे तथा पाराण्डौ गाङ्गेयेनेव धन्विना॥१८॥

वैखानसेन विश्वस्ताः सर्वे परिजनाः पुरम्।
प्राविशन्विष्णुसिंहस्य क्ष्माभृतो वृद्धिमीप्सवः॥१९॥

एवं दैववशाद्राजन्स युष्माकं पितामहः।
एकविंशे प्रविष्टेऽब्दे जन्मतो विग्रहं जहौ ॥२०॥

ये दोनों बून्दी से एक कोस पर केदारेश्वर के समीप घोर शमशान तक पति के साथ पैदल गईं। इस प्रकार राजा अजीतसिंह के अचानक और बिना अवसर के मरने से और उन दोनों के सती होने पर बड़ा भारी हाहाकार हुआ और स्थावर पदार्थ भी रोये। तब वहाँ पर राज्य की सम्पूर्ण प्रकृति (राज्य के अंग) को बड़े पराक्रमी श्रीजित (उम्मेदसिंह) ने विश्वास दिया और उस बालक राजा (विष्णुसिंह) की उस अनाथ प्रकृति को अपने ज्ञान से थोड़ा सा उत्साह दिया जैसे अभिमन्यु के मरने पर अपनी सेना को युधिष्ठिर ने, वृषसेन के मरने पर कर्ण ने, लक्ष्मण के मरने पर कुरुपति (दुर्योधन) ने, इन्द्रजीत और कुंभकर्ण के मरने पर रावण ने, त्रिशिरा के मरने पर त्वष्टा ने, विरोचन के मरने का प्रल्हाद ने, चित्रांगद के मरने पर धनुषधारी भीष्म ने आश्वासन किया वैसे वानप्रस्थ धर्म साधने वाले श्रीजित ने सम्पूर्ण परिजनों का आश्वासन किया और वे सब लोग राजा विष्णुसिंह की वृद्धि की इच्छा करने वाले नगर में आये। हे राजा रामसिंह! इस प्रकार प्रारब्ध के वश में उस आपके पितामह (दादा) अजीतसिंह ने जन्म से इक्कीसवाँ वर्ष लगते ही शरीर छोड़ा।

दिष्टायत्तत्वाद्धारणस्याप्यसूना मल्यायुष्कत्वादीशितुर्बुन्दिकायाः।
बोढुर्भूभारं सर्वमब्दद्वयान्तर्नायुः स्थानादेर्निर्मितिः क्वापि जाता ॥२१॥

प्राणों का धारण करना दैव (भाग्य) के अधीन होने से और सब भूमि के भार को उठाने वाले (अजीतसिंह) के अल्पआयु होने से इन दो वर्षों में स्थान आदि नहीं बने अर्थात् राज्याधिकार मिलने से दो वर्ष ही आयु रही जिसमें स्थान आदि का निर्माण नहीं हो सका।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे अष्टम राशावजितसिंहचरित्रे कृततृतीयाऽहकर्मा ऽमरचंद्रोदयपुरगमनप्रसूतमृतपुत्राराणाभोगिनी-कृष्णगढगमनतदितरभोगिन्येकादशको दयपुराऽनलप्रविशनतदन्या-भट्टयाणीपितृगृहज्वलनभस्मीभवन विस्फोटकामयरावराऽजितसिंह देहत्यजनसभुजिष्याचन्द्रशोभाराजाउन्भिराज्ञीसहगमन श्रीजित्स-र्वसमाऽऽश्वासनं दशमो मयूखः आदितः ॥३५०॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की अष्टमराशि के, अजीतसिंह

के चरित्र में, अरिसिंह के तीसरे दिन का कार्य करके अमरचन्द का उदयपुर जाना। मरा हुआ पुत्र पैदा करने वाली राणा अरिसिंह की छोटी रानी का किशनगढ़ जाना। राणा अरिसिंह की अन्य ग्यारह स्त्रियों का उदयपुर में सती होना। भटियानी का अपने पिता के घर में सती होना। शीतला (चेचक) के रोग से रावराजा अजीतसिंह का शरीर छोड़ना। पासवान चन्द्रशोभा सहित राजावती रानी का सती होना। श्रीजित का सब को आश्वासन करने का दशवाँ मयूख समाप्त हुआ आदि से तीन सौ पचास मयूख हुए।

इतिश्री मदखिलमही भृन्मुकुटमल्लीमाल्यमकरन्द मद्यमत्तमिलिंद मुखरित चरण चिन्हितास्स्रातिचूडबुन्दी पूर्विलासिनीविलासिचाहुवाण चूडामणि भारती भागधेय हड्डोपटड्क महाराजाऽऽधिराजमहारावराजेन्द्र-श्रीरामसिंह देवाऽऽज्ञप्तगीर्वाणगीरादिषड् भाषावेशसुभ्रूभुजंगकाव्या-ऽकप्राक्कर्णधारवीरमूर्त्तिचक्रिचरणारविन्दचञ्चरीकचारुचम-त्कृतचेतन-चारणचक्रचण्डांशुचण्डीदानात्मजमिश्रणसुकविसूर्य्यमल्लविहितवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे रावराड्डुम्मेदसिंहचरित्रसमयसमानाधिकरण-कोदन्तवर्णनं अष्टमो राशिस्समाप्तः ॥८॥